जैनाचार्यवर्य

पूज्यश्री जवाहरलालजी की जीवनी

(प्रथम भाग)

लेखक:—

शोभाचन्द्र भारिल्ल, न्यायतीर्थ

इन्द्रचन्द्र शास्त्री, एम० ए०

प्रकाशक:—

श्री श्वे० साधुमार्गी जैन-हितकारिणी संस्था

[illegible] संस्करण
१२००

विक्रम संवत्
२००४

मूल्य
राज संस्करण
साधारण संस्करण

प्रकाशक —
चम्पालाल बांठिया, मंत्री,
श्रीजवाहरजीवनचरित प्रकाशन-समिति,
श्री श्वे० सा० जैन हितकारिणी संस्था, बीकानेर

विषय-सूची

प्रकाशक —
चम्पालाल बांठिया, मंत्री,
श्रीजवाहरजीवनचरित प्रकाशन-समिति,
श्री श्वे० सा० जैन हितकारिणी संस्था, बीकानेर

विषय-सूची

३ तीसरा अध्याय

आचार्य-जीवन ११७–२६८

४ चौथा अध्याय

पद्यमयी श्रद्धांजलियाँ ४३१

परिशिष्ट ४४७

प्रकाशक का निवेदन

स्वर्गीय जैनाचार्यवर्य पूज्यश्री १००८ श्री जवाहरलालजी महाराज स्थानकवासी जैन समाज में इस युग के एक अपूर्व प्रतिभाशाली, अनुपम तेजस्वी, अद्वितीय विचारक, अद्भुत विवेचक और असाधारण वाग्मी महापुरुष थे। उनकी आत्मा ने वह आन्तरिक प्रकाश प्राप्त कर लिया था जिसके प्राप्त कर लेने पर संत की समस्त शक्तियाँ उन्मुक्त होकर अस्खलित प्रवाह के रूप में बहने लगती हैं।

असल में आत्मा अखंड और अविभाज्य है। विभिन्न द्वारों से प्रस्फुटित होने वाली समस्त शक्तियों का वही उद्गम स्थान है। जब आत्मा प्रकाशमय हो जाता है, आत्मा में उसकी अपनी ज्योति जागृत हो जाती है तो आत्मा की सभी शक्तियाँ विभिन्न द्वारों से प्रकाशित होने लगती हैं। यही कारण है कि कभी-कभी हम एक ही व्यक्ति में मानसिक, वाचिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक शक्तियों का एक साथ प्रादुर्भाव देखते हैं। प्रकाश-प्राप्त आत्मा मानसिक शक्ति के द्वारा सूक्ष्म और सूक्ष्मतर तत्त्व का चिन्तन करती है और अपनी वाणी की शक्ति से उसे सरल, सरस और सुबोध भाषा में अभिव्यक्त कर देती है। उसकी वाणी में हृदय की गहरी संवेदना ओत-प्रोत रहती है, इस कारण वह श्रोताओं के हृदय पर सीधा प्रभाव डालती है। पूज्य श्री जवाहरलालजी महाराज को यह सब सिद्धियाँ प्राप्त हो गई थीं और इसका कारण यही है कि उनकी आत्मा ने ध्यान, मौन, चिन्तन और स्वाध्याय आदि साधनों द्वारा-जो उनके जीवन में नियमित और सहज कर्त्तव्य बन गये थे—उस आत्मिक प्रकाश को प्राप्त कर लिया था।

पूज्यश्री के असाधारण गुणों के सम्बन्ध में लिखने का यहाँ अवकाश नहीं है। यह समग्र जीवन-चरित पढ़ जाने पर ही पूज्यश्री की महत्ता का खयाल आ सकेगा। श्रद्धांजलियों का अलग प्रकरण भी उनकी विशेषताओं पर अच्छा प्रकाश डालता है।

पूज्यश्री का व्यक्तित्व, संयम और उपदेश किस प्रकार उनके परिचय में आने वालों को प्रभावित करता था, यह बात तो ठीक तरह से वही समझ सकता है जो उनके परिचय में आया हो। मैं स्वयं इसका एक उदाहरण हूँ। मेरे पूज्य पिताजी धार्मिक वृत्ति के पुरुष थे और मेरा परिवार पूज्यश्री की ही परम्परा का भक्त रहा है। फिर भी धर्म की ओर मेरा कोई खास झुकाव नहीं था। यों पिताजी के साथ मैं भी मुनि-दर्शन करने चला जाता था और घर पर आये संतों का यथोचित सत्कार भी करता था, फिर भी साधुओं के प्रति हार्दिक भक्ति और धर्म के प्रति तन्मयता तथा समाज सेवा का चाव जैसी कोई चीज मुझमें नहीं थी। लेकिन पूज्यश्री का प्रभाव न मालूम कैसा आकर्षक था कि उनके सम्पर्क में आते ही मेरी भावना अधिकाधिक उज्ज्वल होती गई। धर्म की ओर मेरा आकर्षण बढ़ा और समाज सेवा का चाव भी बढ़ने लगा। यह तो मैं नहीं कहता कि अब भी मैं धर्मात्माओं की श्रेणी में गिना जा सकता हूँ या समाज-सेवकों की श्रेणी में खड़ा हो सकता हूँ, पर इसमें सन्देह नहीं कि धर्म और समाज के प्रति मेरे हृदय में जो अनुराग उत्पन्न हुआ है, उसका मुख्य श्रेय पूज्यश्री के दिव्य व्यक्तित्व को ही है। पूज्यश्री के महान् व्यक्तित्व ने बहुतों को धर्म की ओर उन्मुख किया है, समाज की सेवा करने को प्रेरित किया है, राष्ट्रीयता की ओर आकर्षित किया है और संयम तथा सादगीमय जीवन बिताने की प्रेरणा दी

है। उनकी विमल, शीतल, पीयूषस्राविणी, पावनी वाग्धारा में स्नान करके बहुत-से भावुक भक्त अपने जीवन को सफल बना सके हैं। बहुत-से लोग उन्मार्ग को त्याग कर सन्मार्ग पर आये हैं। वास्तव में ऐसा अद्भुत व्यक्तित्व विरला ही कहीं दृष्टिगोचर होता है।

मैं अपने जीवन के उन महीनों को अपने जीवन का सर्वोत्तम काल मानता हूँ जिनमें पूज्यश्री के घनिष्ठ सम्पर्क में आने का मुझे अवसर मिला और उनके अन्तिम समय में यत्किंचित् सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। निस्सन्देह वे मास मेरे जीवन को सदैव प्रभावित करते रहेंगे।

पूज्यश्री जब अन्तिम बार भीनासर-बीकानेर पधारे तब स्पष्ट ही जान पड़ने लगा था कि उनके जीवन का संध्याकाल आरंभ हो चुका है। अतएव वहां की श्री श्वे० साधुमार्गी जैन हितकारिणी संस्था बीकानेर ने पूज्यश्री की जीवनी तैयार करने का महत्त्वपूर्ण कार्य आरम्भ करने का निश्चय किया। उसके लिए एक जीवनचरित-समिति भी बना दी। समिति के मंत्रित्व का भार मुझपर डाला गया और पूज्यश्री के प्रति हार्दिक भक्ति होने के कारण मैंने वह भार प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लिया। उस समय तक मुझे इस आयोजन में आने वाली कठिनाइयों का पूरा-पूरा खयाल भी नहीं था।

विचार यह किया गया कि पूज्यश्री की विद्यमानता में ही जीवन-चरित तैयार हो जाय तो अच्छा रहेगा। अतएव पं० श्री इन्द्रचन्द्रजी शास्त्री, एम० ए० को चरित-लेखन का कार्य सौंपा गया और भीनासर में रहकर वे कार्य करने लगे। पूज्यश्री, तत्कालीन युवाचार्यश्री तथा पं० र० मुनिश्री श्रीमलजी महाराज वहीं विराजमान थे। इन सब महानुभावों की मौजूदगी से लेखन-कार्य में काफी सहायता मिलती रही। उस समय जो भाग लिखा गया उसे एक बार सुन लेने के लिए पूज्यश्री से प्रार्थना की गई, जिससे जीवन-चरित की घटनाओं की प्रामाणिकता में सन्देह न रह जाय। पूज्यश्री ने हमारी प्रार्थना स्वीकार कर ली और जो भाग तैयार हुआ था उसे सुन भी लिया। मगर अदृष्ट को यह सब स्वीकार नहीं था। बीच में ही पूज्यश्री स्वर्गवासी हो गये। फिर भी जीवन-चरित का कार्य आगे चलता रहा।

जीवन-चरित का मैटर जब पूरा लिखा जा चुका तो पं० र० मुनिश्री श्रीमलजी महाराज ने उदयपुर चातुर्मास में उसे आदि से अन्त तक देख लेने की कृपा की। तत्पश्चात् ब्यावर-चातुर्मास के बाद पूज्यश्री १००८ श्रीगणेशीलालजी महाराज ने भी श्री जैनगुरुकुल ब्यावर में करीब १५ दिन विराजकर, अपना अमूल्य समय देकर उसे आद्योपान्त सुन लिया और आवश्यकतानुसार संशोधन, परिवर्त्तन, परिवर्धन करने का परामर्श दिया। इस प्रकार मूल मैटर संशोधित हो चुका।

जो मैटर तैयार हो चुका था उसके आधार पर सुन्दर और साहित्यिक भाषा में दोबारा सारी जीवनी लिखना आवश्यक समझा गया। अतएव उसे अन्तिम रूप से लिख देने का भार पं० शोभाचन्द्रजी भारिल्ल, न्यायतीर्थ के सिपुर्द किया गया। पंडितजी ने अपनी सुसंस्कृत भाषा में उसे लिखना आरम्भ किया और दूसरे-दूसरे कार्यों में व्यस्त रहने पर भी करीब आठ मास में उसे पूर्ण कर दिया। यह उचित समझा गया कि प्रेस में देने से पहले एक बार उसे फिर दिखा लिया जाय। तदनुसार फिर पं० मुनिश्री श्रीमलजी महाराज को उज्जैन में और पूज्यश्री को बगड़ी चातुर्मास में सुना दिया गया और यथायोग्य सुधार कर दिया गया। इसके बाद सारा मैटर हमारे पास आ गया और हमने जीवन-चरित-समिति के समक्ष उपस्थित किया। समिति

के सदस्यों ने उसे देखकर छपा लेने की स्वीकृति दे दी। यहाँ तक तो संतोषजनक शीघ्रता से काम चलता रहा।

इतनी विशाल जीवनी के लिखने में शीघ्रता करने पर भी काफ़ी समय लग गया था और इसी बीच पूज्यश्री का स्वर्गवास भी हो गया था, इन दोनों कारणों से पूज्यश्री के भक्त श्रावकगण जल्दी से जल्दी उनकी जीवनी पढ़ना चाहते थे। हम स्वयं भी यही चाहते थे कि शीघ्र ही पाठकों के हाथ में जीवनी पहुँचा दें। इस शीघ्रता के ख़याल से हमने जीवनी को दिल्ली में छपाने का आयोजन किया। मगर कहावत चरितार्थ हुई—'चौबेजी छब्बे बनने चले और रह गये दुबे ही।'

प्रथम तो विश्वयुद्ध के कारण कागज़ों की बेहद कमी हो गई और कार्यकर्त्ताओं का मिलना कठिन हो गया, तिस पर प्रेसों का कार्य इतना बढ़ गया कि उन्हें काम भुगताना कठिन हो गया। जीवनी जल्दी छाप देने के लिए हम तक़ाज़े पर तक़ाज़े करते रहे, मगर खेद है कि हमारे तक़ाजे किसी काम न आये। बाद में देश का विभाजन होने के अनन्तर देहली में लम्बे अर्से तक घोर अशान्ति बनी रही और इस कारण भी काम होने में विलम्ब हो गया। इसी अर्से में पं० पूर्णचन्द्रजी दक न्यायतीर्थ को प्रूफ-संशोधन के लिए देहली भेजना पड़ा। वे वहाँ कुछ दिनों रहे और जीवनी का अधिकांश भाग छप भी गया। मगर बीच में छपाई का काम रुक जाने से वे वापिस लौट आये और अगला भाग छपने में फिर देरी हो गई। इस प्रकार जीवनी के छपने में अक्षम्य और आशातीत विलम्ब हो गया है। उत्सुक और प्रेमी पाठकों से इसके लिए हम क्षमा-प्रार्थना करते हैं। हमारे स्वयं करने का काम होता तो हम अपने सभी कार्य छोड़ कर इसे सर्वप्रथम पूर्ण करते। मगर लाचारी थी। प्रेस अपना था नहीं। तकाज़ा करने के सिवाय और कोई उपाय नहीं था। आशा है इस विवशता-जन्य विलम्ब के लिए पाठक क्षमा प्रदान करेंगे।

जीवनी का यह प्रथम भाग है। इसमें पूज्यश्री के बाल्यकाल से लेकर अन्तिम समय तक का विवरण चौमासों के क्रम से दिया गया है। वर्ष-क्रम से जीवनी लिखना विशेष उपयोगी इस कारण समझा गया कि इस शैली से लिखी हुई जीवनी में ब्यौरे की सभी बातों का समावेश हो जाता है। पाठक स्वयं देखेंगे कि पूज्यश्री की यह जीवनी, केवल उनकी जीवनी ही नहीं है, किन्तु पूज्यश्री हुकमीचंदजी महाराज के सम्प्रदाय का पचास वर्ष का इतिहास है। इसमें सम्प्रदाय संबंधी मुख्य-मुख्य सभी विषय आ गये हैं और साथ ही समग्र स्थानक-वासी समाज से संबंध रखने वाली बातों का भी यथास्थान समावेश कर दिया गया है।

जीवनी में एक प्रकरण श्रद्धाञ्जलियों का है, पूज्यश्री का विहारक्षेत्र बहुत विस्तृत रहा है। मारवाड़ और मालवा तो आपके मुख्य क्षेत्र थे ही आपने महाराष्ट्र, बंबई देहली जमनापार, गुजरात, काठियावाड़, आदि दूर-दूर के प्रदेशों में विहार किया था। आप अपने प्रभावक उपदेशों के कारण असंख्य नर-नारियों की श्रद्धा-भक्ति के पात्र बने हैं। ऐसी हालत में आपके प्रशंसकों की संख्या बहुत अधिक होना स्वाभाविक है। परिणामस्वरूप हमारे पास श्रद्धाञ्जलियाँ इतनी ज्यादा आईं कि यदि उन सब को स्थान दिया जाता तो ग्रन्थ और बहुत मोटा बन जाता। अतएव स्थानाभाव के कारण जिन लेखकों की श्रद्धाञ्जलि हम नहीं प्रकाशित कर सके हैं, उन के प्रति क्षमाप्रार्थी हैं।

जीवनी के अन्त में कुछ परिशिष्ट दिये गये हैं। उनका विशेष संबंध तेरापंथ सम्प्रदाय के साथ है। तेरापंथी भाइयों ने जिन चर्चाओं के विषय में गलतफ़हमी फैलाई है, उनका यथार्थ

स्वरूप प्रकट कर देना ही इन परिशिष्टों का प्रयोजन है। उनसे पाठकों को बहुत-सी ज्ञातव्य बातें मालूम हो सकेंगी।

जीवनी का दूसरा भाग 'जवाहरविचारसार' भी पाठकों की सेवा में उपस्थित किया जा रहा है। यह इसी आकार के लगभग २०० पृष्ठों का है। व्यक्ति का असली मूल्य उसके गंभीर और महत्त्वपूर्ण विचारों से आंका जा सकता है। पूज्यश्री की महत्ता को समझने के लिए यह दूसरा भाग अत्यन्त उपयोगी होगा। पूज्यश्री ने चिरकाल तक जो उपदेश दिये हैं, उनका निचोड़ आपको 'जवाहरविचारसार' में मिलेगा।

इस प्रकार हमने पूज्य श्री की जीवनी को सर्वांग पूर्ण बनाने का भरसक यत्न किया है। सफलता कितनी मिली है, यह निर्णय करना पाठकों के हाथ में है? माननीय फिरोदियाजी हमारी कान्फ्रेंस के और बंबई प्रान्तीय धारासभा के अध्यक्ष हैं। अनेक कार्यों में व्यस्त रहते हुए भी आपने प्रस्तावना लिखने का जो कष्ट उठाया है, उसके लिए हम आभारी हैं। सर्वश्री पं० शोभाचन्द्रजी भारिल्ल, पं० इन्द्रचन्द्रजी शास्त्री, एम. ए. और पं० पूर्णचन्द्रजी दक ने हमें जो सहयोग दिया है, उसके लिए हम उनके भी आभारी हैं।

विलम्ब के लिए पुनः क्षमायाचना करते हुए पाठकों से हम निवेदन करते हैं कि वे पूज्यश्री जी की इस पावन जीवनी से लाभ उठाएँ और हमारे श्रम को सार्थक करें। आशा है पाठक इसे अपने हाथों में पाकर हमारी त्रुटियों को भूल जाएँगे।

भीनासर
(बीकानेर)
१-१-४८

निवेदक.—
चम्पालाल बांठिया,
मंत्री,
श्रीजवाहर-जीवन चरित प्रकाशन समिति।

श्री वीतरागाय नमः

प्रस्तावना

(लेखक :—श्री कुन्दनमलजी फिरोदिया, अध्यक्ष बंबई-धारासभा)

स्वर्गस्थ पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज के चरित्र-ग्रंथ की प्रस्तावना लिखने का मुझे अवसर दिया गया इसलिए चरित्र-समिति का मैं प्रथम आभार मानता हूँ। पूज्यश्री का स्वर्गवास हुआ तब मैं सन् १९४२ के आन्दोलन के सबब से कारावास में था। कुछ दिनों के बाद मुझे वहां एक पत्र भी मिला कि मैं पूज्यश्री के बारे में, मेरी जो स्मृतियां हों, वह लिख भेजूं। कारावास में होने के सबब मैं लिखने में असमर्थ था। इसका मुझे दुःख होता रहा। प्रस्तावना लिखने का मुझे मौका मिला यह मैं अपना अहोभाग्य समझता हूँ। पूज्यश्री के चरणारविन्द में श्रद्धांजलि अर्पित करने का मेरा पवित्र कर्तव्य है। यह कार्य मैंने बड़े हर्ष से स्वीकार कर लिया।

पूज्यश्री के प्रथम दर्शन का लाभ मुझे तब मिला जब पूज्यश्री दक्षिण प्रान्त में पधारे और अहमदनगर शहर में ही आपका दक्षिण का प्रथम चातुर्मास संवत् १९६८ में हुआ। मेवाड़ मालवा छोड़कर पूज्यश्री दक्षिण में पधारे तब वह किंचित् व्यथित अन्तःकरण से ही पधारे थे। रतलाम जैन ट्रेनिंग कालेज के कुछ विद्यार्थियों ने दीक्षा लेने का निश्चय करके कालेज छोड़ दिया, उसका आरोप पूज्यश्री पर कालेज के उस वक्त के कार्यवाहक और "जैन हितेच्छु" पत्र के सम्पादक श्री वाडीलाल मोतीलाल शाह ने लगाया था। पूज्यश्री को इसका बड़ा दुःख होता था।

पूज्यश्री हमेशा कहते थे कि तीर्थंकरों की आज्ञा में रहकर उपदेश और आदेश का पूरा खयाल रखकर मैं साधु-जीवन व्यतीत करता हूँ। इसी चातुर्मास में दक्षिण के नेता शास्त्र-वेत्ता श्रीमान् बालमुकुन्दजी साहेब मुथा और श्रीमान् वाडीलालजी अहमदनगर पधारे। पूज्यश्री से रूबरू बात होने पर और पूज्यश्री का उपदेश और आदेश का शास्त्र-शुद्ध विवरण सुनने से आत्म-साक्षी

से पूज्यश्री ने ऊपर के नेताओं के और अहमदनगर के श्रावकों के सामने खुले दिल से रखीं उनसे सबको संतोष हुआ और पूज्यश्री के ऊपर लगाये हुए इलज़ाम का परिमार्जः

दक्षिण में पूज्यश्री पहली बार ही पधारे थे, तो भी उनके ओजस्वी तेजस्वी व्याख्य जनता के ऊपर गहरा असर हुआ और पूज्यश्री के प्रति दक्षिण प्रांत का आदर और भक्तिभ गया। पूज्यश्री की ज्ञान-लालसा बहुत बड़ी थी। पूज्यश्री का जैन शास्त्रों का अध्ययन तो ऊं का और मार्मिक हुआ ही था। परन्तु दक्षिण में आने पर पूज्यश्री को अच्छे-अच्छे धार्मिक ग्रन्थ अन्य वाङ्मय पढ़ने का अवसर मिला। पूज्यश्री रामतीर्थ, विवेकानन्द, तुकाराम आदि हिन्दु साधुओं की विचार-धारा से परिचित हुए। इसी वक्त संस्कृत भाषा का ज्ञान, धर्मों के तुलन अभ्यास के वास्ते बहुत जरूरी आपने समझा और उस बारे में विचार होने लगा। पूज्यश्र सामने एक बड़ा प्रश्न उपस्थित था कि अन्य धर्मीय पंडितों से साधु अध्ययन कैसे करे? पूज्यश्र इस बारे में बहुत विचार करके निश्चय किया कि इस वक्त की परिस्थिति में अन्य धर्मीय पंडित पास से भी संस्कृत व्याकरण आदि का अध्ययन करनेमें हरकत नहीं। आप अनेक वक्त ऐसा क करते थे कि पिता की जब दो आज्ञा पुत्र को होती हैं कि तुम अज्ञानी मत रहो और अन्य धर्मि से विद्या ग्रहण न करो। इन दोनों आज्ञाओं का पूर्ण पालन होना शक्य नहीं था। स्थानकवास संप्रदाय में वैसे कोई साधु हो दिखते नहीं थे जो संस्कृत का अध्ययन अपने साधुओं को क सकें। तब उन्होंने इन दो आज्ञाओं में से दूसरी आज्ञा में किंचित् दोष लगा तो भी प्रथम आज्ञ का पालन होने से स्थानकवासी समाज में संस्कृत के अध्यापकों की परम्परा निर्माण हो जायगी यह निश्चय करके पूज्यश्री ने अपने दो शिष्य वर्तमान पूज्यश्री गणेशीलालजी महाराज और पं० मुनिश्री घासीलालजी महाराजको संस्कृतका अध्ययन कराना शुरू किया। पूज्यश्री भी जब समय मिलता था तब स्वयं संस्कृत का अध्ययन करते थे। पूज्यश्री को ज्ञान-पिपासा दुर्दम्य थी। ज्ञान मिले तो वह उसको ग्रहण करके जैन तत्त्वज्ञान से मिलान करने का यत्न करते थे। पूज्यश्री ने देखा कि उपरिनिर्दिष्ट दोनों शिष्यों का संस्कृत व्याकरणका अभ्यास पूरा हो गया, परन्तु वह कैसा हुआ इसकी जांच होना जरूरी था। इसके लिए अहमदनगर शहर में ही उनकी परीक्षा का आयोजन किया गया। फरग्युसन कालेज के संस्कृत-अध्यापक महामहोपाध्याय वासुदेव अभ्यंकर शास्त्री तथा डाक्टर गुणे शास्त्री ने लेखी और मौखिक परीक्षा ली। उसका परिणाम बहुत संतोषजनक आया। दोनों ही साधु पहले वर्ग के गुण प्राप्त कर सके। इस आयोजन की व्यवस्था का मुझे ही लाभ मिला था। यह बात विशेष रीति से कहने का तात्पर्य यह है कि जो पूज्यश्री ने उस वक्त निश्चय करके संस्कृत अध्ययन शुरू न किया होता तो आज न्यारे-न्यारे संप्रदायों में संस्कृत का उच्च ज्ञान धारण करने वाले साधु-साध्वी दिखते हैं वह न होते। अब स्थानकवासी साधु-साध्वियों को अन्य धर्मीय पंडितों के पास से अध्ययन करने की जरूरत ही नहीं।

पूज्यश्री का जैन-शास्त्रों का अगाध ज्ञान, अन्य दर्शनों का तुलनात्मक किया हुआ अध्ययन विशाल कल्पना-शक्ति, स्फूर्तिप्रद ओजस्वी वाणी और श्रोताओं को चकित एवं प्रभावित कर देने वाली व्याख्यान-शैली से आपका प्रभाव जैन-अजैन सब श्रोताओं पर बहुत गहरा पड़ता था। शास्त्र में श्रावक को साधु का 'अम्मापियरो'

कहा है इस तरफ लोगों का ध्यान आप खींचते थे 'संति एगेहिं भिक्खूहिं गारत्था संजमुत्तरा' इस शास्त्र-वचन का आधार लेकर श्रावक-श्राविकाओं को उनके ऊंचे पवित्र स्थान का पूरा खयाल करा देते थे। आनन्दजी श्रावक, साधु नहीं थे, तो भी भगवान् महावीर ने गौतम स्वामी को उनकी क्षमा मांगने को कहा। यह भी दृष्टान्त हमेशा आप देते थे। तात्पर्य यह था कि श्रावक लोक अपना स्थान भूल गये थे। श्रावकों ने अपने कर्तव्य पूरे नहीं बजाये तो साधु-समाज पर उसका बुरा परिणाम होगा, यह बात पूज्यश्री के सामने थी। जैन स्थानकवासी संप्रदाय में भी बहुत लोग पुराने विचार के बन गये थे। वर्तमान विज्ञान-युग और जैन-धर्म का कैसे मेल मिलाना, यह बात वह समझ ही नहीं सकते थे। उपदेश-परम्परा भी इसी ढंग की हो रही थी। उससे तरुण शिक्षित लोक धर्म से दूर जा रहे थे।

पूज्यश्री का समस्त जैन-संघ पर बड़ा उपकार है कि उन्होंने इन युवकों को जैनधर्म की श्रद्धा में स्थिर किया। जो जो युवक आपके व्याख्यान सुनते थे वह सब अपनी श्रद्धा दृढ़ करके ही जाते थे। मैं तो स्वयं जब पूज्यश्री का व्याख्यान सुनता था तो मुझे तो एक व्याख्यान से ही १५ दिन तक विचार करने की सामग्री मिलती थी। पूज्यश्री का श्रावकों का अधिकार-विवरण तो अत्यन्त श्रवणीय और विचारणीय था। उपासकदशांग सूत्र में वर्णित आनन्दजी श्रावक के चरित्र से लोगों के दिलों में जो भूल भरे विचार थे वे आप निकाल सकते थे।

स्थानकवासी सम्प्रदायों में ऐसी मान्यता एक वक्त जैन भाई लेकर बैठे थे कि खेती करना पाप है। पूज्यश्री ने इसका जो खुलासा किया उससे वह भ्रम दूर हो गया। खेती करने में पाप होता तो महावीर भगवान् के दश श्रावकों में से प्रथम श्रावक आनन्दजी सैकड़ों हल की खेती कैसे कर सकते थे? आनन्दजी सरीखे पुण्यवान् श्रावक और महावीर सरीखे उपदेशक होते हुए भी खेती बड़े परिमाण में होती थी तो उसका अर्थ हमको जरूर समझना चाहिए। संसार की कोई क्रिया एकान्त पाप और एकान्त पुण्य की होती नहीं। पाप पुण्य का अल्प बहुत्व देखना चाहिये। अल्पारंभ और महारम्भ का विषय तो पूज्यश्री अपने व्याख्यानों में बारम्बार सुनाते थे। ऐसा मान लीजिये कि किसी भी आदमी ने खेती नहीं की, अनाज पैदा नहीं किया तो जनता भूखी मरेगी या मांसाहारी बन जायगी। इससे तो एक जैनी खेती करे तो वह हिंसा-अहिंसा का ख्याल रखकर विवेकपूर्वक ही करेगा। वह खेती बिना विवेक से होने वाले खेती-कार्य से बहुत ठीक है। पूज्यश्री का वक्तव्य इस बारे में इतना प्रभावशाली होता था कि पुराने विचारवाले बहुत-से श्रावकों ने और कुछ साधुओं ने भी अपने विचार में परिवर्तन कर लिया।

उपासकदशांग के श्रद्दालकजी के चरित्र से पूज्यश्री समाज को अन्य अन्य छोटी-मोटी जातियों की तरफ अपने कैसे ख्याल होने चाहियें, यह समझाते थे। श्रद्दालकजी कुँभार थे तो भी दश श्रावकों में उनकी गणना हुई। जैनधर्म में जाति और कुल को महत्व नहीं। महत्व है मनुष्य के कर्तव्य को। पूज्यश्री देखते थे कि चारों ओर इससे विरोधी बर्ताव हो रहा था। जो जैन कुल में जन्मे वही जैनी; यह समझ कितनी भूलभरी है यह बात पूज्यश्री अच्छी तरह से शास्त्रों के आधार से साबित करते थे। उत्तराध्ययन सूत्र का आधार लेकर पूज्यश्री फरमाते थे कि:—

कम्मुणा बम्हणो होई, कम्मुणा होइ खत्तियो।
कम्मुणा वेसियो होई, सुद्दो हवइ कम्मुणा॥

इस सूत्र का विवरण इतना सुन्दर होता था कि वह सुनकर जनता मुग्ध होती थी। जैन धर्म विश्व-धर्म है ऐसा हम कहते हैं, परन्तु हमारा बर्ताव बिलकुल इसके खिलाफ है। पूज्यश्री के इस बारे में विचार बहुत दृढ़ थे। छूत-अछूतों का विवरण तो आप ही के मुख से सुनना आनंददायक था। जैनधर्म में नहीं है जाति-भेद और नहीं बतलाया छूत-अछूतवाद। अछूतों के वास्ते जैनधर्म खुला नहीं होता तो मेतार्य मुनि और हरिकेशी मुनि, जो चांडालकुल में जन्मे थे, वे जैनधर्म की दीक्षा कैसे ग्रहण कर सकते थे ?

परन्तु दुर्भाग्य है हमारा कि हमारी कूप मंडूक वृत्ति ने और कोती दृष्टि ने जैनियों का दुनिया में स्थान नीचे गिरा दिया, जैनियों की संख्या दिन-पर-दिन घटती जा रही है और उनके प्रति अन्य समाजों में जो भाव पैदा हो रहे हैं उसके जिम्मेदार हम ही हैं। हम ऐसे मार्ग पर चलते हैं कि अपने स्वार्थ के सिवाय दूसरी बात हमारी नजर में ही नहीं आती। अन्यान्य समाजों से हमारा बर्ताव कैसी हमदर्दी से, प्रेम से, होना चाहिये यह हम सब भूल गये। जैनधर्म में कही हुई भावनाओं को हम पुस्तक में रखना जानते हैं। बहुत हुआ तो उसका वर्णन हम स्थानक में सुन लेते हैं, परन्तु बाहर संसार के मैदान में हमारा बर्ताव बिलकुल स्वार्थी, लोभी वृत्ति का बन गया। इसका पूज्यश्री को बहुत रंज होता था। जैनधर्म ने सबसे ऊंचा स्थान चारित्र्य को दिया है और हम सम्यक्-चारित्र्य को बिलकुल भूल गये हैं।

पूज्यश्री का जन्म-स्थान भिल्लों के प्रांत का है। इनको बचपन से ही गरीब, अज्ञानी लोगों की तरफ बहुत वात्सल्य और प्रेम था। इन सब लोगों के साथ हम प्रेम से रहें, उनकी सेवा करें, इसमें सच्ची अहिंसा है यह पूज्यश्री फरमाते थे। पूज्यश्री आनन्दजी श्रावक का उदाहरण लेकर हमेशा कहते थे कि आनंदजी जैसे राज-दरबार से सलाह मसलत लेने योग्य थे और उनकी सलाह मसलत ली जाती थी, अब कितने श्रावक हम बता सकते हैं जो अपने कर्तव्य से जैनधर्म के ऊंचे चारित्र्य को दीपा रहे हैं ?

पूज्यश्री के विचार तो बहुत ही क्रांतिकारी थे। समाज उन सब विचारों को अपना नहीं सका यह दुर्भाग्य है। मुझे पूरा ध्यान है कि जब पूज्यश्री दक्षिण में दूसरे वक्त लालचन्दजी महाराज को, जो दक्षिण में बीमार थे, दर्शन देने के वास्ते पधार रहे थे। पूज्यश्री अहमदनगर से करीब २५ मील दूर राहुरी ग्रामको पधारे। वहां मैं और अहमदनगर के कुछ भाई पूज्यश्री के दर्शनार्थ गये। राहुरी में पूज्यश्री ने जो व्याख्यान दिया, जो विचार प्रकट किये वह मैं कभी भूल नहीं सकता। दक्षिण देश में मारवाड़ आदि प्रांतों से आये हुए ओसवाल जैन भाई बहुत-से छोटे-छोटे ग्रामों में बसे हैं और व्यापार-धंधा करके गुजारा करते हैं। उनका कर्तव्य और बर्ताव कैसा होना चाहिये, यह पूज्यश्री ने उस वक्त फरमाया। आपने लोगों को कहा कि जिन लोगों में आप बसते हो, जिनसे कमाई करते हो उनके प्रति हमदर्दी, वात्सल्य, प्रेम रखना जरूरी है, 'Live and let live' जीओ और जीने दो; यह तत्त्व ध्यान में रखने की जरूरत आप पूज्यश्री ने बतलाई। "हम ही सुखी बनें और पड़ौस में बसनेवाले लोग कैसे भी दुःख में हों तो परवा नहीं, यह ख्याल नहीं छोड़ोगे तो आपका देहातों में रहना मुश्किल हो जायगा। वह प्रश्न आज प्रत्यक्ष खड़ा हुआ है और देहातों की जैन जनता संकट में है।

पूज्यश्री ने तो शास्त्रोंसे उदाहरण देकर बतलाया कि जिस स्थानमें हम बसते हैं वहांके लोगोंको

अपनाने का एक मार्ग तो उन्हींके साथ रोटी-बेटी का व्यवहार भी कर लेना है। पूज्यश्री ने शास्त्रों के दाखले देकर बतलाया कि पूर्वकाल में जब कोई श्रावक अन्य प्रांत में या देश में व्यापार निमित्त जाते थे तो वहां पर विवाहादि क्रिया भी वह कर लेते थे। यह सब विचार शास्त्र-समत होंगे तो भी हमारे वर्तमान जमाने के लोगों को कहां तक अच्छे लगेंगे, वह बात न्यारी है।

श्रावकों का कर्तव्य समझाने के वक्त पूज्यश्री उपासकदशांग के श्रावक-चरित्र का ही उपयोग करते थे। महासतकजी श्रावक के चरित्र पर से श्रावकों को कितनी सहिष्णुता रखनी चाहिये, इसका मार्मिक विवेचन आप करते थे। महासतकजी श्रावक की पत्नी मांसाहारी होने पर भी उसके साथ महासतकजी का कैसा बर्ताव था और आज हम छोटी-छोटी बातों पर से लोगों को समाज में से बाहर फैंक देते हैं। यह बात पूज्यश्री अच्छी तरह समझाते थे। पूज्यश्री के व्याख्यान सुनने वाले सभी युवक ऐसे ही व्याख्यान हमको चाहिये, ऐसा कहते थे और जैन धर्म पर भी अपनी श्रद्धा स्थिर बना लेते थे। पूज्यश्री कोई भी नई बात हो जो जैन तत्वों से मिलती हो और संयमी जीवन बिताने में उपयोगी हो उसको खुशी से ग्रहण करते थे।

महात्मा गांधी ने खादी का प्रचार हिन्दुस्तान में सन् १९२० से किया। महात्माजी की खादी की तरफ देखने की दृष्टि आर्थिक और राजकीय थी, परन्तु पूज्यश्री ने उसमें अहिंसा का पालन देखा। चरबी लगाये हुए मिल के कपड़ों का उपयोग करने से खादी का उपयोग करने में अहिंसा का पालन ज्यादा होता है। यह देखकर पूज्यश्री ने खादी का ही कपड़ा लेना मंजूर किया और पूज्यश्री व्याख्यानों में भी श्रावकों को उसका उपदेश बहुत जोर से करने लगे। आपके उदाहरण से कुछ साधुओं ने भी खादी का इस्तेमाल करने का निश्चय किया और श्रावकों ने भी उस बारे में प्रत्याख्यान किये।

पूज्यश्री व्याख्यानों में गोपालन का बहुत महत्व समझाते थे। चार गोकुल रखनेवाले कहाँ आनंदजी श्रावक और कहाँ मोल का दूध लेकर काम चलाने वाले वर्तमान श्रावक? हिन्दुस्थान सरीखे खेती प्रधान देश में गोपालन की कितनी जरूरत है यह तो कहने की जरूरत ही नहीं। आपके इस विषय पर जो प्रभावी प्रवचन होते थे उनका ही परिणाम घाटकोपर की जीवदया संस्था है। इस संस्था ने गत बीस वर्ष में ८००० गाय भैंसों को जीवन दिया और २५ मन शाम और सुबह अच्छा निखालस दूध लोगों को मिलने की व्यवस्था हुई है। मृत्यु-भोज, वृद्ध-विवाह, कन्या-विक्रय, व्याजखोरी आदि सामाजिक विषयों पर आपके विचार समाजोन्नति के पोषक और मनुष्य जीवन को नीतिमय बनाने में बहुत मददगार होते थे।

पूज्यश्री बालब्रह्मचारी थे। ब्रह्मचर्य का पालन जीवन सफल बनाने में अत्यन्त जरूरी है और जैन-शास्त्रों के अनुसार मनुष्य क्रमशः किस प्रकार ब्रह्मचर्य द्वारा उत्कर्ष कर सकता है इस विषय पर आपका विवेचन प्रभावी होता था।

पूज्यश्री का विभूतिमत्व बहुत बड़ा था। आपके मुखपर ब्रह्मचर्य का तेज हमेशा चमकता था। आपके गुणों के आकर्षण से हिन्दुस्थान के बड़े-बड़े नेताओं ने आपके दर्शन का लाभ लिया। अहमदनगर में आप विराजते थे उस वक्त लोकमान्य तिलक स्थानक में पधारे और आपश्री से वार्तालाप किया। राजकोट में आप विराजते थे उस वक्त महात्मा गांधी और सरदार वल्लभ भाई पटेल ने आपके दर्शन किये। इसके अलावा विट्ठल भाई पटेल, जमनालाल बजाज,

विनोबा भावे, ठक्करबाप्पा, रामेश्वरी नेहरू, कस्तूरबा गांधी, सेनापति बापट आदि बहुत से देश और समाज के नेताओं ने आपके दर्शन का लाभ लेकर परिचय किया।

पूज्यश्री दस प्रकार के धर्म पर जब व्याख्यान फरमाते थे तब देशधर्म क्या है और उसके प्रति हमारे जैनियों के क्या ख्याल होने चाहियें इसका सुन्दर विवरण आप फरमाते रहे।

स्थानकवासियों में से अलग हुये तेरा पंथी लोग शास्त्र-विरुद्ध और दुनिया की समझ के खिलाफ प्ररूपना कर रहे हैं और उनसे जैनधर्म के बारे में लोगों को भ्रम और गैरसमझ पैदा होती है। इसलिये आप उन मतों का हमेशा खंडन करने को तय्यार थे। आपने उसके वास्ते थली में विहार करके बड़ा कष्ट भी उठाया और इस विषय में 'सद्धर्ममण्डन' और 'अनुकम्पा-विचार' यह दो पुस्तकें लिखी हैं। आपने देश के न्यारे-न्यारे प्रांतों में विहार करके उपदेश द्वारा उपकार किया है। दो वक्त आपने दक्षिण देश में विहार किया। बंबई से लेकर पूरे महाराष्ट्र सतारा तक आपने पुनीत किया। काठियावाड़ और गुजरात को भी आपने दर्शन दिया। उत्तर में दिल्ली तक आपने देश स्पर्शा है। मेवाड़, मालवा, मारवाड़ और मध्यभारत यह तो आपका कार्य-क्षेत्र ही था।

जब दक्षिण में आप विराजते थे तब उस वक्त के पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज जो बड़े भाग्यवान् आत्मार्थी साधु थे, उन्होंने सब बातों का विचार करके आपको ही उत्तराधिकारी चुना और आपको युवाचार्य बनाने का निश्चय किया। इस बारे में जब अहमदनगर जिले के हिवड़ा ग्राम में आप विराजते थे वहां पत्र तार द्वारा और समस्त डेप्युटेशन लेकर कुछ श्रावक पधारे। तब आपने बहुत विचार किया और पूज्यश्री को (पू० श्रीलालजी म० को) मिले बिना नक्की कहने से आपने इन्कार किया। युवाचार्य सरीखी बड़े मान की पदवी घर चल आती है तब भी आप स्वीकार करने में क्यों आनाकानी करते थे इसका खुलासा पूज्यश्री के विचारों से जो परिचित हो वही कर सकते हैं। युवाचार्य होना और पूज्य बनना यह बड़ा जिम्मेदारी का कार्य होता है। श्रीहुक्मीचन्दजी महाराज के संप्रदाय जैसे बड़े सम्प्रदाय का, जिसमें साधु साध्वियों की संख्या काफी है, बोझ अपने कंधों पर लेने से अपनी आत्मा की उन्नति में किंचित् बाधा उपस्थित होती है। यही बाधा आपको खटकती थी और इसी कारण आपको स्वीकृति देने में देरी लगी।

पूज्यश्री ने यह बोझ उठा तो लिया, पर जहाँ तक मैं पूज्यश्री के विचारों को जान सका, मैं कह सकता हूँ कि इस बोझ के कारण आपके दिल में हमेशा यही भाव रहा कि आत्मा की उन्नति के वास्ते जितना ज्यादा समय देना चाहते थे, उतना नहीं दे सके।

न्यारे-न्यारे सम्प्रदाय होने की अपेक्षा एक ही महावीर का सम्प्रदाय हो तो बहुत अच्छा, यह आपके विचार तो सुपरिचित हैं। इसी कारण से अजमेर में सन् १९३३ में साधु-सम्मेलन का जो बड़ा आयोजन हुआ, उसमें आप प्रेक्षक और सलाहकार के रूप में ही हाजिर हुए। आपको इस बड़े आयोजन की फलश्रुति समाधानकारक नहीं दीखती थी। परन्तु इतना होते हुए भी जब साधु-सम्मेलन के निर्णयों को कान्फरेंस के अजमेर-अधिवेशन में स्वीकार किया गया तब उसका पूरा अमल पूज्यश्री ने किया और समाज की उन्नति के प्रति अपने प्रेम का सबूत दिया।

स्थानकवासी सम्प्रदायों श्रीहुकमीचन्दजी महाराज का सम्प्रदाय एक बड़ा सम्प्रदाय। इस सम्प्रदाय में ऊंची पदवी अनेक साधु हुए हैं। उन सबमें सितारे सरीखे आप चम-

कते हैं, यह कहने में कुछ अतिशयोक्ति नहीं है, ऐसा मैं मानता हूँ।

बड़े-बड़े व्याख्यानी साधुओं के जब चातुर्मास होते हैं तब दर्शन और श्रवण के उत्सुक श्रावकों की भीड़ लगती है। हजारों की मेदनी एकत्र होती है और इन सबको खाने, पीने, रहने की व्यवस्था करना एक बड़ा मुश्किल काम हो जाता है। बड़े शहरों में इन बातों की सुविधा मिल जाती है और वहां के लोग प्रायः ज्यादा पैसे वाले होने से सब काम सफलतापूर्वक सम्पन्न कर डालते हैं; मगर इसका परिणाम यह हुआ कि व्याख्यानी भाग्यवान् साधुओं के चातुर्मास छोटे गांवों में होना कठिन हो गया। इस बारे में पूज्यश्री के विचार बिलकुल निश्चित थे। आप तो हमेशा फरमाते थे कि शहरों की अपेक्षा ग्रामों में साधुओं को चातुर्मास में शांति ज्यादा रहती है और अध्ययन, अध्यापन और ध्यान एवं आत्मोन्नति की तरफ ज्यादा लक्ष्य दे सकते हैं। इससे पूज्यश्री जहां तक बन सके, ग्रामों में ही चातुर्मास करना पसन्द करते थे। परन्तु समाज की वर्त्तमान हालत देखते शहरों में आपको विराजना होता था। परन्तु आप इस विषय पर फर्माते हुए स्पष्ट कहते थे कि मूर्तिपूजक जैन यात्री जब यात्रा के वास्ते जाते अथवा हिन्दुस्तान के लोग यात्रा के वास्ते दूर-दूर जाते थे तब कौन उनके खान-पान का इन्तजाम करता था? ठहरने के लिए जगह की व्यवस्था हो गई तो दूसरी सब व्यवस्था दर्शनार्थ आने वालों को कर लेनी चाहिए। इस विचार की तरफ समाज ने अभी तक पूरा ध्यान नहीं दिया। इस प्रथा के अमल में आने से छोटे-मोटे सब ग्रामों को सब साधु-साध्वियों का सरीखा लाभ शक्य हो जाएगा।

पूज्यश्री का जीवन-चरित इतना गहन और विशाल है कि उसके न्यारे-न्यारे पहलू का, प्रस्तावना सरीखे अल्प स्थान में विचार करना शक्य नहीं और यह करने में मैं अपने को समर्थ नहीं समझता। यह प्रस्तावना तो पूज्यश्री के प्रति मेरे दिल में जो भाव थे और जो स्फूर्ति मैंने आपके उपदेश से पाई, उससे कुछ अंश में अनऋण होने की दृष्टि से ही लिखने का साहस किया है।

पूज्यश्री के जीवन-चरित से जैन-समाज के चारों तीर्थों को स्फूर्ति-सन्देश मिले और समाज को अपना जीवन सफल बनाने में यह चरित्र सहायभूत होगा, यह मेरा विश्वास है।

पूज्यश्री के जीवन-चरित की प्रस्तावना में पूज्यश्री के विचारों को मैं पूरी तरह दर्शित नहीं कर सका। अगर कुछ स्थलों पर अनजान में समझफेर पैदा करने वाला लेखन मेरे हाथ से हुआ हो तो मैं सब चतुर्विध संघ की क्षमा चाहता हूँ।

खामेमि सव्वे जीवा सव्वे जीवा खमंतु मे।
मित्ती मे सव्वभूएसु वेरं मज्झ ण केणई॥

श्रावण शु० ६
संवत्सरी
ता० २०-८-४७

चतुर्विध संघ का सेवक
कुं० सो० फिरोदिया

प्रथम अध्याय

प्रारम्भिक जीवन

विषय-प्रवेश

'भूतल पर मानव-जीवन की कथा में सबसे बड़ी घटना उसकी आधिभौतिक सफलताएं अथवा उसके द्वारा बनाये और बिगाड़े हुए साम्राज्य नहीं, बल्कि सचाई और भलाई की खोज के पीछे उसकी आत्मा की की हुई युग-युग की प्रगति है। जो व्यक्ति आत्मा की इस खोज के प्रयत्नों में भाग लेते हैं, उन्हें मानवीय सभ्यता के इतिहास में स्थायी स्थान प्राप्त हो जाता है। समय महावीरों को अन्य अनेक वस्तुओं की भांति बड़ी सुगमता से भुला चुका है, परन्तु संतों की स्मृति कायम है।'

—सर राधाकृष्णन्

भौतिक सफलताएं प्राप्त करने वाले बड़े-बड़े वीरशिरोमणि अपनी स्मृति कायम रखने के लिए जो स्मारक खड़े करते हैं, वे स्मारक उसी प्रकार क्षण-भंगुर हैं, जैसे उनकी सफलताएं। न जाने कितने शासक इस पृथ्वी पर आए और चले गए। खून की नदियां बहाकर, दुर्बलों को सताकर और अगणित अत्याचार करके उन्होंने अपनी विजय-पताका फहराई। वायु के वेग-से चंचल और निरन्तर कांपनेवाली पताका ने उनकी सफलताओं की चंचलता और अस्थिरता की ओर संकेत किया, मगर तात्कालिक सफलता के नशे में चूर शासकों ने उस ओर ध्यान ही नहीं दिया। किन्तु काल की कठोर चक्की ने कुछ ही क्षणों में उन्हें और उनकी पताकाओं को धूल में मिला दिया। अपना नाम अमर करने के लिए उन्होंने अपने नाम पर बड़े-बड़े नगर बसाए, वज्रमय दुर्ग खड़े किये और दृढ़तम स्तूप बनवाए, लेकिन आज उनका नाम-निशान भी शेष नहीं है। भूकम्प का एक धक्का, पारस्परिक द्वेष की एक चिनगारी, किसी अधिक बलवान् की हुंकार या प्रकृति का तनिक-सा कोई क्षोभ उनकी सारी सफलताओं को और उनके समस्त स्मारकों को जड़ से उखाड़ने के लिए पर्याप्त सिद्ध हुआ।

अब जरा अध्यात्म-जगत् की ओर देखिए। अध्यात्म-जगत् की प्रत्येक वस्तु स्थायी है। आधिभौतिक आक्रमण वहां असर नहीं करते। जो महान् व्यक्ति आत्मान्वेषण के प्रशस्त पथ पर चल पड़ता है उसे भौतिक सफलताएं विचलित नहीं कर सकतीं। जो पुरुष आध्यात्मिक जगत् का साम्राज्य प्राप्त करके, आत्मिक विभूतियों का स्वामी बन जाता है और आत्म-विकास का उज्ज्वल आदर्श जगत् के सामने प्रस्तुत कर देता है, काल उसका दास बन जाता है। उस काल-विजेता और मृत्युञ्जय महापुरुष का जीवन-आदर्श युग-युग के मनुष्य-समाज को प्रेरणा देता रहता है।

उसकी सफलता को कभी विफलता का सामना नहीं करना पड़ता ।

जो व्यक्ति जनता को आत्मान्वेषण के पथ पर ले चलने का प्रयत्न करता है, वही संसार का सच्चा हितचिन्तक है । ऐसा महान् व्यक्ति ही संसार में सुख और शान्ति का शाश्वत साम्राज्य स्थापित कर सकता है । वह किसी दरिद्र को हीरों, पन्नों या मोतियों का दान नहीं करता, किन्तु उसकी आत्मा में ऐसी शक्ति भर देता है जिससे वह नरपतियों की निधियों को ठुकरा सके । वह किसी दुर्बल को हाथी, घोड़े या तोप-तलवार देकर बलवान् नहीं बनाता; किन्तु उसमें ऐसे प्राण फूंक देता है कि वह एकाकी तोपों और मशीनगनों के सामने अविचलित मन से, शान्ति और मुसकराहट के साथ छाती खोलकर खड़ा हो सकता है । ऐसे महान् पुरुष की वाणी और उसका उपदेश युग-युग में जनता का मार्ग-प्रदर्शन करते रहते हैं । जबतक भव्य-पुरुष आत्म-विकास के लिए उद्योग करते रहेंगे तबतक ऐसे महापुरुषों की स्मृति कायम रहेगी ।

संसारमें अनादिकाल से दो शक्तियां कार्य कर रही हैं । एक आसुरी शक्ति और दूसरी दैवी शक्ति । भौतिक सफताओं के लिए सतत प्रयत्न में लगे रहना, उसके लिए आत्मा को भूल जाना, अपनी आकांक्षाओं में बाधक बनने वाले व्यक्तियों का हिंसात्मक उपायों से संहार करना तथा दिन-रात भोग-लिप्साओं में फंसे रहना आसुरी शक्ति का खेल है । जिस व्यक्ति में इसका प्राबल्य होता है वह सदा असन्तोष की आग में झुलसता रहता है । इस शक्ति का विकास करके मनुष्य राक्षस बन जाता है । वह दूसरों का ध्वंस करके खुश होता है । सैंकड़ों वर्षों की सभ्यता और संस्कृति को फूंक से उड़ाकर अट्टहास करता है । मनुष्य को मनुष्य का शत्रु बनाकर उसे हिंस-हशुओं के समान लड़ते देखकर हर्षित होता है । संसार से सुख और शांति को मिटा देना ही वह अपना कर्त्तव्य मानता है । शरीर में क्षय के कीटाणुओं की तरह ऐसे व्यक्ति का अस्तित्व संसार के लिए बहुत भयंकर होता है । आसुरी शक्ति को लेकर जो व्यक्ति किसी समाज या देश के नेता बन जाते हैं वे दुनिया में प्रलय-सी मचा देते हैं ।

दैवी शक्ति से सम्पन्न पुरुष भौतिक सफलताओं को महत्त्व नहीं देता । वह तो चाहता है हृदय में प्रेम, शांति और सन्तोष रहना चाहिए, धन चाहे रहे या न रहे । उसकी दृष्टि में सुख बाह्य साधनों में नहीं किन्तु आत्म में ही है । संसार में दैवी शक्ति का जितना अधिक प्रचार होता है उतनी ही सुख और शांति की वृद्धि होती है । ऐसी शक्ति का प्रचार करने वाले महापुरुष जगदुद्धारक कहे जाते हैं । सेना, शस्त्र, धन, शरीर आदि वस्तुओं पर निर्भर रहकर मनुष्य पशु बन जाता है । ऐसे व्यक्तियों में सोई हुई मनुष्यता को जगाना ही ऐसे महापुरुषों का काम है । कठोर तपस्या द्वारा वे अपनी आत्मा को निर्दोष बनाते हैं । कष्टों को सहकर उसे दृढ़ बनाते हैं तथा भयंकर उपसर्गों का सामना करके उसकी परीक्षा लेते हैं । जब सभी कसौटियों पर अपने को खरा पाते हैं तो जन-कल्याण के लिए निकल पड़ते हैं ।

उनके उपदेश अन्तरात्मा को प्रकाशित कर देते हैं । पाशविकता के अन्धकार में दबी हुई मानवता फिर चमकने लगती है । ऐसे महापुरुष अज्ञानान्धकार का भेदन करते हुए अध्यात्म-गगन में सूर्य के समान चमकते हैं । ऐसे महापुरुषों का जीवन संसार में आदर्श की स्थापना करता है । उनके उपदेश नए संसार को घड़ते हैं । उनके कार्य नव-निर्माण करते हैं । विश्व की प्रगति का इतिहास उठाकर देखें तो मालूम पड़ेगा कि वह इस प्रकार की थोड़ी-सी विभूतियों का

खेल है। जो विचारधारा इन विभूतियों में वही, बाह्यरूप धारण करके वही विश्व-प्रगति का इतिहास वन गई। ऐसे व्यक्तियों का जीवन-चरित तथा उनकी विचार-धारा ही संसार का इतिहास है।

यहां हमें ऐसी ही एक विभूति की जीवन-कथा अंकित करनी है। वे एक संत थे। कहा जाता है कि उन्होंने संसार को छोड़ दिया था। अगर उंगलियों पर गिने जाने वाले कुछ व्यक्ति और घर-गिरस्ती ही संसार है तो निस्संदेह उन्होंने संसार त्याग दिया था। मगर कुछ व्यक्तियों के बदले उन्होंने विश्व के प्राणी-मात्र के साथ अपना संबंध स्थापित किया था। 'सर्वभूतात्मभूत' की भावना उनमें सजीव हो गई थी। और यद्यपि उन्होंने ईंट-चूने का अपना कहलाने वाला मकान त्याग दिया था फिर भी वह लाखों मनुष्यों के हृदय-मंदिर में निवास करते थे। इस प्रकार संसार के त्यागी होकर भी उन्होंने संसार का बड़े-से-बड़ा उपकार किया है। उनकी जीवनी एक समाज के उत्थान का इतिहास है। उनका आत्म-निर्माण जन-कल्याण के महान् साधन का निर्माण है। उनका उपदेश प्रगति का बिगुल है।

जन्म

भारतवर्ष में मालवा प्रान्त का स्थान महत्त्वपूर्ण है। यह प्रान्त हिन्दुस्तान का हृदय है। विश्व-विख्यात विक्रमादित्य, महाराज उदयन तथा साहित्य रसिक भोज जैसे अनेक राजाओं की क्रीड़ा-भूमि होने का सौभाग्य उसे प्राप्त है। मगर इससे भी बड़ी विशेषता यह है कि मालवा की उर्वरा भूमि में अर्वाचीन काल ने भी अनेक संतों को जन्म दिया है। मालवा का नैसर्गिक सौन्दर्य आकर्षक है। मालवा की शस्य-श्यामला भूमि विख्यात है। कहावत है—

देश मालवा गल गंभीर।
पग-पग रोटी, डग-डग नीर॥

इसी मालवा प्रान्त में झाबुआ रियासत के अन्तर्गत थांदला नामक एक कस्बा है। नाग पर्वत के नाम से विन्ध्याचल की पश्चिमी पर्वत-श्रेणियों ने उसे अपनी गोद में छिपा रखा है। घोड़पुर नदी उसका पाद-प्रक्षालन करती हुई बहती है और उसके आसपास के खेतों को सरसब्ज बनाती है। गांव के चारों ओर भीलों की वस्तियां हैं।

इसी कस्बे में ओसवाल जाति शिरोमणि, कवाड़गोत्रीय सेठ ऋषभदासजी नामक सद्-गृहस्थ रहते थे। उनके दो पुत्र थे—बड़े का नाम धनराजजी और छोटे का जीवराजजी था। धनराजजी के तीन पुत्र और एक कन्या थी, जिनके नाम खेमचंदजी, उदयचंदजी और नेमचंदजी थे। कन्या ने आगे चलकर पूज्य श्रीधर्मदासजी महाराज के सम्प्रदाय में दीक्षा ली।

वहीं पर धोकागोत्रीय सेठ श्रीचंदजी रहते थे। उनके पूनमचन्दजी और मोतीलालजी नामक दो पुत्र थे। मोतीलालजी के दो सन्तान थीं—नाथीबाई और मूलचन्दजी।

जीवराजजी का विवाह कुमारी नाथीबाई से हुआ था। दम्पति में परस्पर खूब प्रेम था। दोनों की धर्म में दृढ़ श्रद्धा थी। स्वभाव अत्यन्त कोमल और दयालु था। श्रावक के व्रतों का पालन करते हुए दोनों सात्विक और पवित्र जीवन बिता रहे थे।

ज्ञानपंचमी की पूर्वभूमिका में, अर्थात् कार्तिक शुक्ला चतुर्थी विक्रम संवत् १९३२ के दिन नाथीबाई ने एक तेजस्वी पुत्र को जन्म दिया। यह वही पुत्र था, जिसने आगे चलकर ज्ञान का

प्रकाश फैलाया और अगणित नर-नारियों के आन्तरिक अंधकार को दूर करने में अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर दिया।

पुत्र की प्राप्ति माता-पिता के लिए बड़े हर्ष की बात होती है। फिर जवाहरलाल जैसा पुत्र-रत्न पाकर कौन निहाल न हो जाता! तिस पर भी वे पहली सन्तान थे और विशिष्ट शारीरिक सम्पत्ति लेकर प्रकट हुए थे। आपके बाद नाथीबाई ने एक कन्या को जन्म दिया, जिसका नाम जड़ावबाई था।

नामकरण

यथासमय बालक का नाम रखा गया—'जवाहरलाल'। माता-पिता अपनी समझ में अपने बालक का नाम सुन्दर और प्रिय रखना चाहते हैं। नाम और गुणों का सामंजस्य करने के लिए राशि और नक्षत्र देखे जाते हैं। फिर भी नाम के अनुसार गुण और गुण के अनुकूल नाम क्वचित् ही देखा जाता है। जहां दोनों बातें अनुकूल मिल जाएँ वहाँ घुणाक्षर-न्याय ही समझना चाहिए। हमारे चरितनायक के विषय में भी यही बात हुई। उस समय किसने सोचा होगा कि जिस बालक का नाम जवाहरलाल रखा जारहा है, वह अपने भावी-जीवन में अनेक जौहर दिखलाकर अपना नाम इस प्रकार सार्थक करेगा! कौन जानता था कि कुरूढ़ियों और कुसंस्कारों के अंधकार में, अज्ञानता की घोर-निशा में, ढोंगों और ढकोसलों के कोहरे में उसकी ज्योति सदा दीप्त रहेगी और वह प्रकाश का पुंज सिद्ध होगा।

शैशव

प्रायः सभी महापुरुषों के जीवन-विकास का इतिहास दुःखों, कष्टों, मुसीबतों, परेशानियों या संकटों से आरंभ होता है। सुख मनुष्य को बेभान बना देता है। सुख के समय आत्मा की विभिन्न शक्तियां सुस्त पड़ जाती हैं। सुख आत्मिक शक्तियों का जंग है, जिसके लगने पर मनुष्य अशक्त-सा बन जाता है। इसके विपरीत दुःख आत्मिक शक्तियों के विकास में अत्यन्त सहायक होता है। जो मनुष्य दुःख के समय दीनता को पास भी नहीं आने देता और वीरतापूर्वक दुःखों के साथ संघर्ष करता है, उसकी सोई हुई शक्तियां भी जाग उठती हैं और उन शक्तियों में ऐसा तीखापन आ जाता है जैसे सिल्ली पर घिसने से उस्तरे में। यही कारण है कि आत्मा की खोज के लिए उद्यत होने वाले महान् पुरुष सबसे पहले, प्राप्त सुख-सामग्री का परित्याग कर देते हैं। 'आयावयाही चय सोगमल्लं' अर्थात् कष्ट-सहिष्णु बनो, सुकुमारता त्यागो; यह सुखी बनने का मार्ग है।' भगवान् महावीर का यह आदेश विशाल अनुभव का फल है। भगवान् का आदि से लेकर अन्त तक का जीवन देख जाइए, उसमें यह उपदेश ओत-प्रोत मिलेगा। भगवान् अपने-आप आये हुए कष्टों को ही सहन नहीं करते थे वरन् कभी-कभी स्वयं कष्टमय परिस्थिति उत्पन्न करके उस पर विजय प्राप्त करते थे। यही उनके लोकोत्तर विकास का रहस्य है। इससे उनकी आत्मिक शक्तियों को बड़ा वेग मिलता था। मतलब यह है कि दुःख ही आत्मिक शक्तियों के विकासमें सहायक होता है।

स्वेच्छापूर्वक कष्ट-सहन करने में ही आत्म-विजय है। चाहे वह कष्ट स्वयं उत्पन्न किये गए हों, चाहे किसी अन्य व्यक्ति द्वारा अथवा प्रकृति ने उत्पन्न किए हों; यदि मनुष्य उनसे विचलित नहीं होता तो उसकी प्रगति रुक नहीं सकती।

आत्मोन्नति के ऊंचे उद्देश्य से प्रेरित होकर मनुष्य जो कार्य करता है, वह कार्य हमारे

चरितनायक के लिए प्रकृति ने किया। कौन जाने प्रकृति ने एक संत पुरुष का निर्माण करने के लिए ही ऐसी व्यवस्था की हो। प्रकृति ने उन्हें ऐसी परिस्थितियोंमें रखा कि बचपन से ही वे मोह-जाल को भेदने में समर्थ हो सकें। आप दो वर्ष के हुए थे कि हैजे के प्रकोप से माता का देहान्त हो गया। बालक अभी प्यासा ही था कि वह स्रोत सूख गया जिससे मातृ-स्नेह का अमी-रस झरता था। इस प्रकार प्रकृति ने उन्हें माता से वंचित करके जीवन का एक प्रगाढ़ बंधन दूर कर दिया। माता से वंचित होने पर भी मातृ-भक्ति के विषय में आपके विचार बड़े ही गम्भीर रहे हैं।

महापुरुषों में बचपन के संस्कार ही पल्लवित होकर विशाल रूप धारण कर लेते हैं। उनका जीवन-चरित समझने के लिए उन संस्कारों का अध्ययन करना आवश्यक है। साधारण व्यक्ति और महापुरुष में एक बड़ा अन्तर यह होता है कि साधारण व्यक्ति के बचपन के संस्कार बड़े होने पर अन्य बातों से दब जाते हैं या सर्वथा नष्ट हो जाते हैं। महापुरुष में बचपन के संस्कार प्रबल रूप में मौजूद रहते हैं। वे अन्य बातों को अपने निर्दिष्ट पथ में सहायक बना लेते हैं। इस प्रकार वे संस्कार यथासमय दृढ़ता पाकर विशाल रूप धारण कर लेते हैं और जगत्-कल्याण के साधन बन जाते हैं।

मानवजीवन में प्रेम का आरम्भ जन्म के साथ ही होता है किन्तु साधारण व्यक्ति में वह एक स्थान से दूसरे स्थान पर पलटता रहता है और महापुरुष में अपने असली स्थान को बिना छोड़े उत्तरोत्तर विकसित होता जाता है। महापुरुषों का प्रेम निर्मल होने के साथ ही असीम होता है। वह एक साथ सर्वत्र व्याप्त होकर रहता है। साधारण व्यक्ति के स्नेह में संकुचितता, सीमा-बद्धता होती है।

हमारे चरितनायक में माता के प्रति जो निर्मल प्रेम के संस्कार पड़े थे वे विकसित होकर मातृ-जाति की महत्ता के रूप में परिणत हुए। आपको प्रत्येक महिला में मातृत्व का दर्शन होता था। हृदय में और आंखों के आगे भी, आपके लिए स्त्री का काल्पनिक और भौतिक रूप सदैव मातृत्व से युक्त ही होता था। कहना चाहिए कि आपके हृदय में स्त्री की कल्पना माता के रूप में ही थी। किसी भी स्त्री का अपमान आपकी दृष्टि में माता का अपमान था। स्त्री-जाति की दयनीय दशा देखकर आपको असीम दुःख होता था। मातृ-जाति के प्रति किये जाने वाले दुर्व्यवहार की आप ओजस्वी भाषा में टीका करते हुए कहते थे:—

"मित्रो, स्त्री पुरुष का आधा अंग है। क्या यह सम्भव है कि किसी का आधा अंग बलिष्ठ और आधा अंग निर्बल हो? जिसका आधा अंग निर्बल होगा उसका पूरा अंग निर्बल होगा। ऐसी स्थिति में आप पुरुष-समाज की उन्नति के लिए जितने उद्योग करते हैं, वे सब असफल ही रहेंगे, अगर पहले आपने महिला-समाज की स्थिति सुधारने का प्रयत्न न किया।"

"स्त्रियां जगज्जननी का अवतार हैं। इन्हीं की कोख से महावीर, बुद्ध, राम, कृष्ण आदि उत्पन्न हुए हैं। पुरुष-समाज पर स्त्री-समाज का बड़ा भारी उपकार है। उस उपकार को भूल जाना, उसके प्रति अत्याचार करने में लज्जित न होना घोर कृतघ्नता है।

"पुरुषो, स्त्री-जाति ने तुम्हें ज्ञानवान् और विवेकी बनाया है फिर किस बूते पर तुम इतना अभिमान करते हो? किस अभिमान से तुम उन्हें पैर की जूती समझते हो?"

"धन्य है स्त्री-जाति ! जिस काम को पुरुष घृणित समझता है और एक बार में भी हाय-तोबा मचाने लगता है उससे कई गुना कष्टकर कार्य स्त्री-जाति हर्षपूर्वक करती है। वह कभी नाक नहीं सिकोड़ती, मुंह से कभी 'उफ्' तक नहीं करती। वह चुपचाप, अपना कर्त्तव्य समझकर अपने काम में जुटी रहती है। ऐसी महिमा है स्त्री-जाति की[1] !"

मातृ-जाति के विषय में उस महापुरुष का ऐसा उदात्त उपदेश था।

माता की गोदी छिन जाने पर आपके लालन-पालन का सारा भार पिताजी पर आ पड़ा। वे अपने हाथों से भोजन बनाते, अपने लाल को प्रेम के साथ खिलाते। आप अनेक असुविधाएं सह लेते पर मातृ-हीन बालक को किसी प्रकार का कष्ट न होने देते। पिता की मीठी प्रेम-रस से पकी हुई रोटियों को आप कभी नहीं भूले। उनकी मधुरता का वर्णन आप अपने प्रवचनों में भी अनेक बार किया करते थे।

इधर प्रकृति एक महान संत का निर्माण करने में लगी थी। उसने देखा कि पितृ-ममता का बन्धन मजबूत होता जा रहा है और इस कारण उसके प्रयत्न में बाधा पड़ने की संभावना है, वह सावधान हो गई। उसने एक बन्धन हटाने के पश्चात् एक दूसरे बन्धन को भी हटा देना उचित समझा। जब चरितनायक पांच वर्ष के हुए तो उनके पिता का भी देहान्त हो गया। मातृ-हीन बालक अब पितृ-हीन भी हो गया। पांच वर्ष की अवस्था में बालक को अपने पैरों पर खड़ा होना पड़ा।

ऊपरी दृष्टि से देखा जाय तो ऐसा लगता है कि प्रकृति ने हमारे चरितनायक के साथ अत्यन्त क्रूर व्यवहार किया है। उसकी निर्दयता की सीमा नहीं है। मगर गहरी दृष्टि से देखने पर निराला ही तत्त्व दिखाई देगा। कौन कह सकता है कि प्रकृति की क्रूरता और निर्दयता ने ही जवाहरलालजी को जगत् का असली स्वरूप नहीं समझा दिया ! विश्वामित्र ने राजा हरिश्चन्द्र को 'सत्य हरिश्चन्द्र' के रूप में संसार में विख्यात किया। उसी प्रकार प्रकृति की निष्ठुरता ने जवाहरलालजी को 'धर्माचार्य' और 'सन्त' के रूप में प्रसिद्ध किया। कुदरत की करामात को कौन समझ सकता है !

माता और पिता का आश्रय हट चुका। अब उन्हें अपनी योग्यता द्वारा ही आश्रय प्राप्त करना था। पांच वर्ष की अल्प-अवस्था में ही उन पर यह भार आ पड़ा। जो व्यक्ति आगे चल-कर एक विशाल समाज का नेता बनने वाला हो उसके लिए प्रकृति यह कैसे बर्दाश्त कर सकती है कि वह दूसरों के आश्रय पर पले। उसे तो बचपन से ही भयंकर आपत्तियों को हँसते-हँसते सहने का पाठ सीखना पड़ता है।

पिता का देहान्त होने पर आप अपने मामा के यहां रहने लगे। पिताजी के बड़े भाई श्री धनराजजी ने इन्हें अपने पास रखने का बहुत आग्रह किया। किन्तु आपके मामा श्री मूलचन्दजी धोका ने भगिनी-प्रेम के कारण इन्हें अपने ही पास रखा। वे प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। थांदला में कपड़े की दुकान करते थे। आप वहीं रहने लगे।

विद्यार्थी-जीवन

महापुरुषों का विद्यार्थी-जीवन किसी स्थान या काल-विशेष में ही समाप्त नहीं हो जाता।

---

1 जवाहर किरणावली, तृतीय भाग।

प्रत्येक स्थान उनकी पाठशाला है और प्रत्येक क्षण-उनका अध्ययन-काल। जन्म से लेकर मृत्यु-पर्यन्त वे नवीन-नवीन ज्ञान प्राप्त करते रहते हैं और अपने जीवन में उसका यथोचित उपयोग करते जाते हैं। सामान्य व्यक्ति पुस्तकों में लिखी बातों को अपने मस्तिष्क में ठूंस लेता है, समय पर उन्हें उगल भी देता है परन्तु अपने जीवन में नहीं उतारता। ऐसे व्यक्तियों के लिए ज्ञान भार होता है। महापुरुष ऐसा नहीं करते। वे जो कुछ भी सीखते हैं उसे अपने जीवन में उतारने का प्रयत्न करते रहते हैं। इस प्रकार का अमली ज्ञान ही वास्तविक शिक्षा या अभ्यास कहा जा सकता है। इसी से जीवन संस्कारमय और उन्नत बनता है।

साधारण व्यक्ति अधिकतर पुस्तकों पर निर्भर रहते हैं। किसी से सुने या पढ़े बिना उन्हें ज्ञान नहीं होता। किन्तु महापुरुषों के लिए सारा संसार ही एक खुली हुई पुस्तक है। प्रत्येक घटना, प्रत्येक परिवर्तन और प्रत्येक स्पंदन उनके सामने नवीन पाठ लेकर आता है और उन्हें नवीन बोध दे जाता है।

हमारे चरितनायक प्रकृति की ओर बड़ी बारीक नज़र से देखा करते थे। उन्होंने स्कूल की अपेक्षा प्रकृति की महान् पाठशाला में अधिक अध्ययन किया। अपने जीवन के अनुभव के आधार पर ही उन्होंने कहा—'प्रकृति की पाठशाला में जो संस्कारी ज्ञान मिलता है वह कालेज या हाई-स्कूल में मिलना कठिन है।······प्रकृति की प्रत्येक रचना में से महापुरुष कुछ-न-कुछ शिक्षा प्राप्त करते ही रहते हैं।'

आपका इस प्रकार का विद्यार्थी-जीवन आजन्म बना रहा। जीवन के अन्तिम क्षण तक वे नई-नई बातें और नये-नये विचार ग्रहण करते रहे और उन्हें अपने जीवन में उतारते गए।

यद्यपि आप में क्षयोपशमजन्य अनुभव-ज्ञान की प्रचुरता थी, तथापि आपका साहित्यिक अध्ययन भी बहुत विशाल था। जैनागम-साहित्य तो उनका मुख्य विषय था ही, उन्होंने उपनिषद्, गीता, संत-साहित्य, गांधी-साहित्य आदि का भी अध्ययन किया था। आपके अध्ययन की विशेषता यह थी कि आप अध्ययन किये हुए प्रत्येक विषय को अपने अनुभव के रस में मिलाकर सरस बना लेते थे। जैसे गाय नीरस घास को भी मधुर दूध के रूप में परिणत कर लेती है, उसी प्रकार आप अपने अध्ययन के विषय को अनुभव-ज्ञान द्वारा मिश्रित करके प्रभावशाली और विशद बना लेते थे। उनके प्रवचनों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि आपका अध्ययन कितना तात्त्विक, मार्मिक और सम्यग्दृष्टिपूर्ण था।

आपका जन्मस्थान थांदला गुजरात का पड़ोसी है। वहां की भाषा पर गुजराती भाषा का बहुत अधिक प्रभाव है। वहां के भील तथा दूसरे लोग गुजराती से मिलतीजुलती भाषा बोलते हैं। वहां की प्रारम्भिक पाठशालाओं में गुजराती भाषा ही पढ़ाई जाती है।

उन दिनों थांदला में ईसाइयों की तरफ से एक प्राइमरी स्कूल चल रहा था। जवाहर-लालजी को उनके मामाजी ने इसी स्कूल में प्रविष्ट करा दिया। मगर स्कूल का नीरस वातावरण आपको सुहाया नहीं। वहां की तोता-रटन्त से आपको संतोष नहीं हुआ। जीवित और जागृत-ज्ञान की अभिलाषा रखने वाला पुरुष वहां कैसे संतुष्ट हो सकता था। कुछ गुजराती, हिन्दी और गणित सीखकर ही आप स्कूल से हट गए और साथ ही आपका स्कूली जीवन समाप्त हो गया।

तीन दोहे

जवाहरलालजी में मातृ-प्रेम के बीज कब और कैसे बोये गए, इस बात का साधारण उल्लेख पहले किया गया है। उस समय आप अबोध शिशु थे। स्कूल में आने पर वे बीज अंकुरित हो गए।

स्कूल की पाठ्य पुस्तक में नीचे लिखे तीन दोहे थे:—

टगमग पग टकतूँ नहीं, खाई न शकतूँ खाज।
उठी न शकतूँ आपथी, लेश हती नहि लाज ॥१॥
ए अवसर आणी दया, बालक पर मां-बाप।
सुख आप्ये दुख वेठवे, ए उपकार अमाप ॥२॥
कोय करे एवे समय, वेहक घड़ी बरदाश।
आखी उमर थई रहे, ते नर नो नर दास ॥३॥

यह तीन दोहे चरितनायक के हृदय में सीधे उतर गए। आप इन्हें बार-बार पढ़ते, रास्ते चलते गुनगुनाते और अपने साथियों को सुनाते-समझाते। इनके मर्म पर विचार करते और सोचते 'मुझे माता-पिता की सेवा करने का अवसर मिलता तो मैं कितना भाग्यशाली होता,' मगर खेद है कि उनकी यह अभिलाषा मन में ही रह गई। माता-पिता में से अब कोई भी जीवित न था।

प्रायः अतृप्त अभिलाषाएं हृदय में घर कर लेती हैं और प्रबलतर होकर जीवन-व्यापिनी बन जाती हैं। माता-पिता की सेवा का महत्त्व उन्होंने भली-भांति अनुभव कर लिया। आगे चलकर यही सेवा-भाव विशाल रूप में परिणत हो गया और उसने मानव-सेवा का रूप धारण किया। आप जगत्-कल्याण और आत्म-कल्याण के पवित्र उद्देश्य से संसार के सुखों को ठुकराकर मुनि बने। प्राणीमात्र का कल्याण ही उनके जीवन का एक उद्देश्य था।

साहस और संकट

विपत्ति की संभावना मात्र से साधारण व्यक्ति भयभीत होजाता है और जब विपत्ति सम्मुख आजाती है, तो घबरा उठता है। उसकी यह घबराहट स्वयं एक भयानक विपत्ति बन जाती है, किन्तु महापुरुष विपदा आने पर उल्लास का अनुभव करते हैं। सशस्त्र शत्रु को सामने देखकर जैसे शूरवीर क्षत्रिय वीर रस में डूब जाता है और अपना जौहर दिखलाकर विजेता का पद प्राप्त करता है, उसी प्रकार महापुरुष विपत्तियों का सामना होने पर उल्लास के साथ उनसे जूझता है और विजय-लाभ करके अपनी शक्तियों का विकास करता है। ऐन मौके पर पीछे हटना, अवसर को खो देना उसे ऐसा मालूम पड़ता है जैसे आत्मोन्नति का बहुत बड़ा अवसर हाथ से चला गया हो। उस समय उसकी हालत उस व्यापारी के समान होती है जो बाजार में तेजी के समय कुछ न कमा सकने के कारण हाथ मलता रह गया हो! महापुरुष संकटों पर सवार होकर, विपदाओं के बीच, बाणों की बौछार झेलते हुए अपने संकल्प की ओर आगे बढ़ते चलते हैं। हमारे चरितनायक में महापुरुषों का यह लक्षण भी बाल्यावस्था से ही विद्यमान था।

एक बार आप कुछ साथियों के साथ बैलगाड़ी द्वारा यात्रा कर रहे थे। पहाड़ी रास्ता था—टेढ़ा-मेढ़ा और ऊबड़-खाबड़। ऊपर निकले हुए बड़े-बड़े पत्थरों पर गाड़ी के पहिये चढ़ते और धड़ाम से नीचे गिरते। जान पड़ता था, गाड़ी चूर-चूर हुए बिना न रहेगी। कहीं-कहीं रास्ता बहुत तंग था। एक ओर पाताल की प्रतिस्पर्धा करने वाली गहरी खाई और दूसरी ओर हिमा-

लय का मुकाबिला करने के लिए अकड़ कर खड़ा पहाड़। जरा चूक हुई कि खाई के सिवा और कहीं ठिकाना नहीं। पग-पग पर प्राणों का संकट !

भय के कारण गाड़ी-सवार नीचे उतर गए। उन्होंने पैदल चलने में ही अपनी खैर मानी। मगर दीक्षा लेने के पश्चात् सदैव पैदल विहार करने वाले और पैदल विहार की उपयोगिता समझाने वाले हमारे चरितनायक उस समय भी गाड़ी से नीचे न उतरे। संकट से बचने के लिए ऐसा करना कायरता समझकर साहस का दुर्लभ आनन्द उपभोग करने के लिए आप गाड़ीवान के साथ गाड़ी में बैठे रहे। उस समय आप तनिक भी भयभीत न हुए। गाड़ी लड़खड़ाती हुई आगे चलती रही। अब वह उतार में आ गई थी। बैल बेतहाशा भागने लगे। गाड़ीवान ने उन्हें काबू में करने का बहुतेरा प्रयत्न किया, मगर वह सफल न हो सका। गाड़ीवान समझ गया कि आज सवार की, उसकी, गाड़ीकी और बैलों की खैर नहीं, या तो गाड़ी उलट जायगी या किसी गड्ढे में गिरेगी। गाड़ीवान ने गाड़ी-बैल की चिन्ता छोड़ दी और प्राण-रक्षा की फिकर की। 'सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्द्धं त्यजति पण्डितः' अर्थात् पण्डित पुरुष, सर्वनाश के समय आधा छोड़कर आधा बचा लेता है। गाड़ीवान अपने प्राणों के विषय में पंडित सिद्ध हुआ। वह अपने प्राण बचाने के लिए नीचे कूद पड़ा। थोड़ी देर के लिए बैलों को स्वराज्य मिल गया। वह निरंकुश भागने लगे। कैसी मुसीबत की घड़ी थी ! मगर उस समय भी एक व्यक्ति निश्चिन्त मगर गम्भीर भाव से गाड़ी पर सवार था। वह चाहता तो गाड़ीवान से भी पहले कूद सकता था। और अपने प्राणों की रक्षा कर सकता था। लेकिन उसने ऐसा सोचा तक नहीं। वह था हमारा चरितनायक—अनुपम साहस का धनी जवाहरलाल !

गाड़ीवान के कूदने के कुछ ही क्षण पश्चात् जवाहरलालजी ने गाड़ीवान का स्थान ग्रहण कर लिया। रासें हाथ में लीं और बैलों को रोकने का प्रयत्न करने लगे। इतने ही में एक जोर का धक्का लगा और आप जुए पर आ गिरे। जुए पर लटकने की अवस्था में भी आपकी बुद्धि स्थिर रही। बुद्धि की स्थिरता की बदौलत ही आप रासें अपने हाथ में पकड़े रहे और संयोग से उन्हीं के सहारे लटके चले। तनिक भी घबराहट पैदा होती तो रस्सी हाथों से सरक जाती। फिर या तो गाड़ी से कुचले जाते या किसी खाई में जा गिरते। दोनों हालतों में प्राणों का संकट तो था ही।

'विकारहेतौ सति विक्रियन्ते, येषां न चेतांसि त एव धीराः।'

बुद्धि में विकार उत्पन्न करने वाले कारण उपस्थित होने पर भी जिनका चित्त विकृत नहीं होता, वही वास्तव में धीर पुरुष कहलाते हैं।

जवाहरलालजी के अगाध धैर्य और असीम साहस के फलस्वरूप गाड़ी-बैल बच गये और उनका भी कुछ बिगाड़ न हुआ। अन्त में वे सकुशल अपने निर्दिष्ट स्थान पर जा पहुंचे।

साहस के ऐसे उत्कृष्ट उदाहरण विरले हैं। इस प्रकार की घटनाएं महापुरुषों के जीवन के मर्म की ओर संकेत करती हैं।

बचपन में जवाहरलालजी अनेक दुर्घटनाओं से बाल-बाल बचे। एक वार आप किसी मकान की दीवार के पास खड़े बातें कर रहे थे। बातें समाप्त करके ज्यों ही आप वहां से हटे

त्यों ही दीवार धड़ाम से आ गिरी। दीवार मानो उनके हटने की ही बाट जोह रही थी!

कौन जाने यह घटना आकस्मिक थी या दूसरों के उपकार में लगने वाले जीवन को प्रकृति ने बचा लिया! जगत् में ऐसी घटनाएं होती हैं जिनका निष्कर्ष निकालना मानव-बुद्धि से परे की बात है। महापुरुषों के जीवन में खास तौर पर इस प्रकार की घटनाएं घटित होजाती हैं।

बचपन में आपको कई बार सन्निपात जैसे भयंकर रोगों का सामना करना पड़ा, मगर आयुकर्म की प्रबलता समझिए या भव्य जीवों के पुण्य का प्रभाव कहिए; आप समस्त संकटों का सामना करते हुए, मृत्यु पर विजय प्राप्त करने में समर्थ हो सके। ऐसे गंभीर प्रसंगों पर भी आपकी चित्त-वृत्ति असाधारण रूप से शान्त बनी रहती थी। आपकी यह शान्ति और सहन-शीलता धीरे-धीरे किस प्रकार विकसित होती गई, यह बात पाठकों को अगले पृष्ठों में अंकित मिलेगी।

व्यापार

ग्यारह वर्ष की कोमल वय में जवाहरलाल जी स्कूल छोड़कर अपने मामाजी के साथ कपड़े की दुकान पर बैठने लगे। पूरा मनोयोग लगाकर ही उन्होंने यह कार्य सीखना आरंभ किया। फल यह हुआ कि अपनी तीक्ष्ण बुद्धि और प्रतिभा के कारण कपड़े के व्यवसाय में आप शीघ्र ही निपुण हो गए। मामाजी ने यह देखकर संतोष की सांस ली और सारा कार्य-भार आपके सिर पर डाल दिया। मामाजी इस ओर से निश्चिन्त हो गये। जवाहरलाल जी में कपड़ा परखने की इतनी योग्यता आ गई थी कि यदि कीमत में बहुत थोड़े अन्तर वाले दो थान अंधेरे में आपके सामने रख दिये जाते तो उन्हें टटोल कर ही आप बतला देते कि इनमें एक या दो पाई प्रतिगज का अन्तर है और इनका अमुक नम्बर है। कपड़ा पहचानने की यह कला देखकर वस्त्रों के व्यापार में अपनी सारी आयु पूर्ण कर देने वाले बूढ़े व्यापारी भी चकित रह जाते थे।

बहुत से विद्वानों का कहना है कि प्रतिभा का विकास किसी एक निश्चित मार्ग में ही होता है। जिस व्यक्ति का झुकाव त्याग की ओर होता है वह व्यापार आदि दुनियादारी के कामों में विशेष निपुणता प्राप्त नहीं कर सकता। आध्यात्मिकता की ओर मनोवृत्ति वाला लौकिक बातों में विशेष सफल नहीं हो सकता। कई एक महान् पुरुषों के जीवन-चरित भी इस कथन का समर्थन करते हैं। मगर हमारे चरित-नायक का जीवन इसका अपवाद है। आपकी जीवनी से यह प्रमाणित होता है कि प्रतिभा के एक ही ओर विकास होने की बात सर्वांश में सत्य नहीं है। कोई-कोई महापुरुष विशिष्ट प्रतिभा के भी धनी होते हैं कि जिस ओर अपनी प्रतिभा दौड़ाएं उसी ओर सफलता प्राप्त कर लेते हैं। बिजली सभी ओर प्रकाश फैलाती है। जवाहरलालजी जिस प्रकार व्यापारिक क्षेत्र में पूर्ण सफल हुए उसी प्रकार आध्यात्मिक क्षेत्र में भी बहुत उन्नति की। आप जैसे सफल व्यापारी बने वैसे ही सफल धर्माचार्य भी सिद्ध हुए।

जहां प्रतिभा के साथ साहस और मनोयोग का समन्वय होता है, वहां सफलता मिलते देर नहीं लगती। यह त्रिपुटी सफलता की जननी है। जिस व्यक्ति में जितनी मात्रा में यह त्रिपुटी होगी वह उतनी ही मात्रा में सफलता का भागी बन सकेगा। यही तीन चीजें त्याग के साथ मिलकर मनुष्य को महान् धर्मात्मा भी बना देती हैं।

प्रतिभा द्वारा मनुष्य अपना मार्ग खोज निकालता है। साहस के द्वारा विपत्तियों की रवाह न करता हुआ उस मार्ग पर चलता है और मनोयोग से उस पर स्थिर रहता है—विचलित हीं होता। इसके बाद उसके विकास में बाधा डालने वाली कोई शक्ति नहीं रह जाती। मनोयोग की विकसित शक्ति द्वारा ही योगीजन आश्चर्य-जनक सिद्धियां प्राप्त कर लेते हैं। हमारे चरितनायक को विरासत में ही—जन्म-काल से ही—उक्त तीनों बातें प्राप्त थीं। यही कारण है कि जिस ओर वे झुके, सफलता उनकी दासी बनती गई। उनकी सम्पूर्ण सफलता का यही मूलमंत्र है।

मान्त्रिक के रूप में

जिन दिनों जवाहरलालजी कपड़े की दुकान कर रहे थे, आपने धरण ठीक करने का मंत्र सीख लिया। किसी की धरण टल जाती तो आप मंत्र पढ़कर उसे ठिकाने बिठा देते। धीरे-धीरे गांव भर में आपकी मंत्र-वादिता की प्रसिद्धि हो गई। आये दिन लोग आपको बुलाने आने लगे। दुकान के काम में व्याघात होने लगा, लेकिन आप समान भाव से सभी के घर चले जाते और धरण बिठा देते। मगर मामाजी को यह बात अच्छी न लगी। उन्होंने जवाहरलालजी से मंत्र का काम छोड़ देने के लिए कहा। आप उनका आदेश अस्वीकार न कर सके।

एक बार दीपावली का जमा-खर्च कर रहे थे कि तब एक दिन एक आदमी धरण ठीक करने के लिए बुलाने आया। आपने बहुत टाल-मटोल की मगर वह नहीं माना। आपने मन ही मन निश्चय किया—चला तो जाता हूं मगर मंत्र नहीं पढ़ूंगा, यों ही हाथ हिलाकर फूंक मारता जाऊंगा। इससे धरण ठीक नहीं होगी और लोग मेरा पिंड छोड़ देंगे।

उन्होंने यही किया। वे रोगी के सामने बैठकर हाथ हिलाने लगे, फूंक मारने लगे, मगर मंत्र-पाठ नहीं किया। मगर थोड़ी ही देर में उन्हें यह जानकर आश्चर्य हुआ कि मंत्र न पढ़ने पर भी धरण ठिकाने आ गई और दर्द बन्द हो गया। यह देखकर आपने सोचा कि वास्तविक शक्ति श्रद्धा में ही है। रोगी को श्रद्धा हो गई कि इन्होंने मंत्र पढ़ा है और इस मंत्र से धरण अवश्य ठीक हो जाती है। इसी श्रद्धा के कारण रोगी का दर्द मिट गया। आपका यह विचार धीरे-धीरे विश्वास के रूप में परिणत हो गया और आपने श्रद्धा और संकल्प का प्रबल अनुभव किया। इसी अनुभव के आधार पर आपने वाणी उच्चारी है:—

'क्या संकल्प में दुःख दूर करने का सामर्थ्य है? इस प्रश्न का उत्तर है—अवश्य। संकल्प में अनन्त शक्ति है। संकल्प से दुःख दूर हो जाते हैं, साथ ही नवीन दुःख का प्रादुर्भाव नहीं होता।'

''अपनी संकल्प-शक्ति का विकास ही आध्यात्मिक विकास है। सत्संकल्प का प्रभाव जड़ सृष्टि पर भी अवश्य पड़ता है।'

'संकल्प में यदि बल हुआ तो कार्य-सिद्धि में सुगमता और एक प्रकार की तत्परता होती है। वास्तविक बात तो यह है कि कार्य की सिद्धि प्रधानतः संकल्प-शक्ति पर अवलंबित है।'

चरितनायक के ये उद्गार अपने जीवन के अनुभव के स्रोत से ही निकले हैं। उनकी वाणी का अधिकांश भाग उनके विभिन्न कालीन निजी अनुभवों की अभिव्यक्ति मात्र है। उनका ज्ञान अन्तरतम से उद्भूत होकर बाहर निकला है, बाहर से ठूंसकर भीतर नहीं भरा गया है। ऐसा ज्ञान बड़ा ही तेजस्वी, सुदृढ़ और परिमार्जित होता है।

काला बाव

एक बार श्री जवाहरलालजी की पीठ पर काला बाव हो गया। अनेक जगहों पर इलाज कराने पर भी आराम न हुआ। वैद्यों से चिकित्सा करवाई मगर कुछ फल न निकला। डाक्टरों का सहारा लिया, वह भी व्यर्थ हुआ। आप इस परेशानी में थे कि एक दिन एक भील मिला। बातचीत होने पर उसने कहा—मैं सिर्फ चार पैसे की दवाई में इसे ठीक कर दूंगा। उसे तुरंत चार पैसे दिये गए। भील ने जंगल से एक जड़ी लाकर दे दी। कुछ खाई और कुछ बाव पर लगाई। तीन ही दिन में बीमारी सफा हो गई। आपने चार आने भील को इनाम में दिये।

इस घटना से आपके मन में यह धारणा जम गई कि भील निरे मूर्ख या जंगली ही नहीं हैं। उनके पास भी बहुत-सी ऐसी विद्याएं हैं, जिन्हें सीखने से हम बहुत-कुछ लाभ उठा सकते हैं। शहर में रहने वाले वैद्यों और डाक्टरों की अपेक्षा इन्हें जंगल की जड़ी-बूटियों का और उनके गुण-दोषों का अधिक ज्ञान है। इस घटना से आपका विश्वास जड़ी-बूटियों पर भी हो गया। भावी जीवन में आपने अनेक बार विदेशी औषधों के सेवन का सख्त शब्दों में विरोध किया है। यह विरोध भी अनुभव-जनित ज्ञान के आधार पर था।

धर्म-जीवन का प्रभात

जैन संस्कृति में जिस क्रिया-काण्ड का वर्णन पाया जाता है; उस सब का मूल सम्यक्त्व है। सम्यक्त्व की विद्यमानता में ही चरित्र मुक्ति या आत्मशुद्धि का निमित्त बनता है। जहां सम्यक्त्व नहीं, वहां कठोर-से-कठोर क्रिया-कांड भी संसार भ्रमण का ही कारण होता है। सम्यक्त्व से क्रिया-कांड सजीव हो जाता है, उसमें प्राण आजाते हैं। अकेला क्रिया-कांड ही नहीं, वरन् गंभीर से गंभीर ज्ञान भी सम्यक्त्व के अभाव में मिथ्या ज्ञान ही रहता है। सम्यक्त्व मोक्ष-महल का पहला सोपान है। मुमुक्षु जीव का मोक्षमार्ग यहीं से आरम्भ होता है। वास्तव में दृष्टि जबतक निर्मल न बने तबतक वस्तु का वास्तविक स्वरूप समझा ही नहीं जा सकता। दृष्टि की यह निर्मलता धर्म-श्रद्धा से उत्पन्न होती है। अतएव धर्म-श्रद्धा को अंगीकार करना ही व्यवहार से सम्यक्त्व ग्रहण करना कहलाता है।

सम्यक्त्व ग्रहण करते समय, ग्रहण करने वाला प्रतिज्ञा करता है कि 'मैं आज से वीतराग देव को ही अपना देव मानूंगा, अहिंसा आदि पांच महाव्रतधारी साधुओं को ही अपना गुरु समझूंगा और वीतराग कथित दयामयधर्म को ही धर्म स्वीकार करूंगा।'

किसी भी मत को परीक्षा करने का सर्वोत्तम और सरल उपाय यही है कि उसके देव, गुरु और धर्म की परीक्षा कर ली जाय। जिस मत में ऐसे देव की पूजा होती है जो अपने भक्त की स्तुति से प्रसन्न हो जाने के कारण रागी है, जो अपने निन्दक को घोर दंड देने के कारण द्वेषी है, जो भोग-विलाससे अतीत नहीं हुआ है, संक्षेपमें यह कि जिसके देव वीतराग नहींहै, वह मत आत्म-कल्याण का साधक नहीं हो सकता। इसी प्रकार जिस मत के साधु कंचन-कामिनी के त्यागी नहीं हैं, प्राणी-मात्र पर समभाव नहीं रखते और हिंसा आदि दोषों से पूर्णतया रहित नहीं हैं, वह मत मुमुक्षु जीवों के लिए उपादेय नहीं हो सकता। इसी भांति जिस मत में सम्पूर्ण भूत-दया का उपदेश नहीं है बल्कि प्रकारान्तर से हिंसा का विधान और दया-अनुकम्पा का निषेध है वह मत भी मोक्षाभिलाषियों के लिए ग्राह्य नहीं हो सकता।

सम्यक्त्व ग्रहण करने का अर्थ गुरु-पूजक होना है। सम्यक्त्व ग्रहण करते समय व्यक्ति यही प्रतिज्ञा करता है कि मैं अब से निर्दोष देव, निर्दोष गुरु और निर्दोष धर्म को स्वीकार करता हूं।

जिन दिनों जवाहरलालजी कपड़े की दुकान करते थे, थांदला में पूज्य धर्मदासजी महाराज के सम्प्रदाय के मुनि श्री गिरधारीलालजी महाराज पधारे। आप मुनिजी का व्याख्यान सुनने गए। धर्म की ओर आपका सोया हुआ आकर्षण जाग्रत हो गया। उसी समय खड़े होकर आपने सम्यक्त्व ग्रहण किया।

किसी भी मनुष्य का असाधारण विकास पूर्व-जन्म के संस्कारों के बिना नहीं हो सकता। बाल्यावस्था में धर्म के प्रति इस प्रकार की प्रीति उत्पन्न होना निश्चय ही पूर्वजन्म के संस्कारों का परिपाक है। आपकी यह धर्म-श्रद्धा तात्कालिक भावावेश का परिणाम नहीं थी किन्तु चिरकाल से संचित संस्कारों का फल था। इस सचाई का ज्वलन्त प्रमाण यही है कि वह धर्म-श्रद्धा द्वितीया के चन्द्रमा की भांति निरंतर बढ़ती ही चली गई। उस धर्म-श्रद्धा के फलस्वरूप उन्होंने एक महान् संत का गौरव प्राप्त किया, धर्माचार्य की प्रतिष्ठा पाई। और आत्म-शुद्धि के अधिकारी बने।

सम्यक्त्व ग्रहण करने के पश्चात् आपका इहलौकिक धार्मिक जीवन आरंभ हुआ।

यद्यपि जवाहरलालजी ने सम्यक्त्व ग्रहण करके धर्म-मार्ग की ओर नजर फेर ली थी, फिर भी वे अभी तक व्यवसाय में ही लगे हुए थे। जो प्रकृति शिशु-अवस्था से ही उनके मोह-बंधन काटने में लगी थी, उसे भला यह कैसे रुचिकर हो सकता था। प्रकृति ने माता और पिता के मोह का बंधन काट फेंका था मगर जवाहरलालजी के लिए मामा के मोह का एक नवीन बंधन उत्पन्न हो गया था। ऐसी स्थिति में प्रकृति कब निश्चेष्ट रह सकती थी। उसने इस बंधन को भी काट फेंकना ही उचित समझा। जब आप तेरह वर्ष के हुए तो आपके मामाजी तेंतीस वर्ष की उम्र में ही स्वर्गवासी हो गये। माता-पिता की गोद छिन जाने पर जो आश्रय मिला था वह भी अब सदा के लिए भंग हो गया।

मामाजी की मृत्यु से चरितनायक के हृदय को गहरी चोट लगी। इधर मामाजी का वियोग उनके लिए असह्य हो उठा उधर दुकान का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व उनके सिर आ पड़ा। विधवा मामी और पांच वर्ष के ममेरे भाई बालीरामजी के पालनपोषण की जिम्मेदारी भी इन्हीं पर आई।

मामाजी की अकाल-मृत्यु ने जैसे उन्हें निद्रा से जगा दिया। आपको संसार की दुःख-बहुलता का ज्ञान हुआ। मन-ही-मन सोचने लगे—जीवन पानी के बुलबुले के समान है। हवा का एक हलका-सा झोंका उसे समाप्त कर देता है। फिर भी मनुष्य न जाने किन-किन आशाओं से प्रेरित होकर ऊंचे-ऊंचे हवाई महल बनाता है। भवन, धन, तन और स्वजन—सब यहीं रह जाते हैं और हंस निकल जाता है। प्राणी इन पराई वस्तुओं के मोह में क्यों पड़े हैं! इस जीवन का क्या उद्देश्य है! कहां की सार्थकता है! संसार का वैभव-विलास क्या जीवन की सफलता की कसौटी है! यह क्षण-नश्वर भोग्य पदार्थ क्या 'अनंत जीवन' में काम आ सकते हैं! और यह शरीर! कितना बेवफा है! कैसा दगाबाज है! शरीर, आत्मा का उपयोग कर रहा है! और आत्मा, शरीर की कितनी व्यथाएं भोग रहा है? इस मूर्खता का अंत होना ही चाहिए।......

वैराग्य

'चैतन्य आत्मा ! तेरी यह गंभीर भूल है कि तू अब तक आत्माको भूला रहा । अब मेरीबात तुझेमान ले अपनी भूलको सुधारनेकी चेष्टा कर । तू परमात्माका भजन कर। परमात्माका सान्निध्य ही तुझे अपना लक्ष्य बनाना चाहिए । तू आप ही अपना कर्त्ता है और जगत् के अन्य पदार्थ तेरे सहायक हैं । तू उनसे काम लेने वाला स्वामी है । पर तू यह बात भूल रहा है। तू जिनका स्वामी है उनका दास बन रहा है—उनकी अधीनता में आनन्द मान रहा है । इसलिए अपना अज्ञान दूर कर और देख कि तेरे साधन तुझे किस कंटकाकीर्ण पथ पर घसीटे लिये जा रहे हैं । अज्ञान दूर होते ही दिव्य प्रकाश तेरा स्वागत करेगा और परम कल्याण का पथ प्रदर्शित करेगा ।'

'हे आत्मन् ! अनन्त काल व्यतीत हो चुका है फिर भी तूने धर्म की विशिष्ट आराधना नहीं की । इस कारण तू सिद्धरूपी कोयल होकर संसारी जीवरूप कौवा बना हुआ है । अब तुझे अत्यन्त अनुकूल अवसर हाथ लगा है । यह अवसर बार-बार नहीं मिलने का । इस समय तू अपनी शक्ति का प्रयोग कर । अपने पुरुषार्थ को काम में ला । अगर अब भी तू अपना जोश न दिखायेगा तो अनादिकाल से अब तक जिस स्थिति में रहा है, उसी स्थिति में चिर-काल पर्यन्त रहना पड़ेगा ।'

यह उद्‌गार, जिनमें अमृत का झरना बह रहा है और जो आत्मा को पवित्र प्रेरणा एवं स्फूर्ति देने वाले हैं, हमारे चरितनायक की अन्तरात्मा के उद्‌गार हैं । यह मुमुक्षु पुरुष का अन्त-र्नाद है । इन उद्‌गारों ने वाणी का रूप भले ही बाद में धारण किया हो मगर संसार से विरक्त होते समय उनके हृदय-प्रदेश में यह उत्पन्न हो चुके थे ।

इस प्रकार के विचारों में मग्न रहने के कारण उनका वैराग्य दिनों-दिन बढ़ता गया । जिस दुकान को उन्होंने बड़ी लगन के साथ चलाया था, अब उसमें उनका मन नहीं लगता था । उन्हें घर सराय के समान मालूम होता था । सराय में मुसाफिर दो दिन ठहरता और चल देता है । दो दिन के लिए लम्बी-चौड़ी दुकान जमाकर बैठ जाना और चलने की फिकर न करना अज्ञान है । मनुष्य को अपनी महायात्रा की भी कुछ चिन्ता करनी चाहिए । माता, पिता और मामा के वियोग का स्मरण आने पर चित्त में व्यथा उत्पन्न हो उठती थी; मगर इस समय उनकी प्रधान चिन्ता यही थी कि संसार के प्रपंच से किस प्रकार और कब छुटकारा मिले !

उन्होंने दुकान उठाने का निश्चय कर लिया । धीरे-धीरे काम समेटना शुरू किया । लेन-देन चुकता करने लगे । इस प्रकार विरक्त हो जाने पर भी आप अपने भविष्य का निर्णय न कर पाये । आप यह निश्चय न कर सके कि अब करना क्या चाहिए ? हृदय में प्रबल जिज्ञासा उत्पन्न हो गई । इस जिज्ञासा के कारण आप बेचैन से रहने लगे । वास्तव में किसी अच्छे गुरू का संसर्ग हुए बिना इस जिज्ञासा की निवृत्ति होना अशक्य था ।

गुरु की प्राप्ति

'पुस्तक सामने भले रहे; परन्तु उसका ज्ञान गुरु से ही प्राप्त करना उचित है । गुरु के बिना ज्ञान प्राप्त करना अंधेरे में आरसी लेकर मुंह देखने के समान है । आज गुरु की सहायता लिए बिना ज्ञान प्राप्त किया जाता है, यह बुराई है । प्रत्येक बात गुरु के समीप समझकर उस पर विश्वास करो तो भ्रम में पड़ने से बच सकते हो और आत्मा का कल्याण कर सकते हो ।'

हमारे चरितनायक का यह उपदेश उनकी उस समय की मनोवृत्ति का परिचायक है जब आप गुरु के बिना बेचैन हो रहे थे। संसार के प्रति विरक्ति हो जाने पर भी आपको अपना कर्त्तव्य नहीं सूझ रहा था। संयोग से उन्हीं दिनों थांदला में मुनिवर्य श्रीराजमलजी महाराज के शिष्य मुनि श्रीघासीलालजी महाराज तथा मगनलालजी महाराज और श्रीघासीलालजी महाराज के शिष्य श्रीमोतीलालजी महाराज तथा देवीलालजी महाराज पधारे। आप मुनियों के दर्शन करने गये। उनका प्रवचन भी सुना। चरितनायक को जैसे गुरु की तलाश थी वैसे ही गुरु मिल गए। मुनियों ने संसार से छुटकारे का मार्ग बतलाया और मुनिधर्म का स्वरूप समझाया। आप सांसारिक प्रपंचों से पहले ही निवृत्त हो चुके थे। दीक्षा का मार्ग जानकर आपको ऐसा हर्ष हुआ जैसे जंगल में मार्ग भूले मनुष्य को अपने घर का मार्ग मिल गया हो। उन्होंने मन ही मन मुनिव्रत धारण करने का विचार कर लिया।

पुण्यशाली पुरुषों के लिए थोड़ा-सा भी धर्मोपदेश हितकर साबित होता है। प्राचीन कथा-साहित्य में ऐसी अनेक घटनाओं का उल्लेख है। इन्हीं घटनाओं की पुनरावृत्ति हमारे चरितनायक की जीवनी में हुई।

दुविधा में

मुनि-दीक्षा अंगीकार करने का विचार कर लेने पर भी श्री जवाहरलालजी के मार्ग में एक बड़ी अड़चन थी। वह अड़चन किसी बाह्य व्यक्ति या वस्तु के कारण नहीं थी। वे इतने साहसी और निर्भय थे कि इस प्रकार की अनेक अड़चनें आने पर भी कभी कातर नहीं हो सकते थे। मगर यह अड़चन तो उन्हीं की अन्तरात्मा से उत्पन्न हुई थी और उसका सम्बन्ध उनके दूसरे कर्त्तव्य के साथ था। महापुरुष किसी बाहरी अड़चन की परवाह नहीं करते, किन्तु जहां कर्त्तव्य-बुद्धि स्वयं दो मार्गों की ओर प्रेरणा करती है वहां निश्चय करना कठिन हो जाता है। उस समय वे अत्यन्त अशान्त और बेचैन हो जाते हैं। दो ओर से जहां एक साथ आह्वान हो रहा हो वहां किस ओर जाना चाहिए? दुविधा की यह स्थिति बड़ी नाज़ुक होती है। ऐसी ही परिस्थिति में अर्जुन जैसा महान् योद्धा गांडीव छोड़कर किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो गया था। सौभाग्य से कृष्ण जैसे कुशल सलाहकार उस समय अर्जुन के समीप थे, मगर श्री जवाहरलालजी को स्वयं ही अपना कर्त्तव्य स्थिर करना था।

पहले बतलाया जा चुका है कि जवाहरलालजी का एक पांच वर्ष का ममेरा भाई था। मामाजी के देहान्त के बाद उसके भरण-पोषण का भार आपके कन्धों पर ही आ पड़ा था। जब-जब आप दीक्षा ग्रहण करने का विचार करते तब-तब मामा के उपकारों का स्मरण हो जाता। आपका हृदय गद्गद् हो उठता। आप सोचते—उस उपकार के नाते इस बालक के प्रति मेरा क्या कर्त्तव्य है? मेरे बाद इस बालक का क्या होगा? इसके पालन-पोषण की क्या व्यवस्था होगी।

जवाहरलालजी बहुत दिनों तक इस दुविधा में फंसे रहे। बहुत सोचने पर भी किसी निष्कर्ष पर न पहुंच सके। इस दुविधा के कारण उनके चित्त की व्याकुलता और भी बढ़ गई। वे अशान्त रहने लगे।

समाधान

'हमारे अन्दर अनेक त्रुटियों में से एक त्रुटि यह भी है कि हम अपनी अन्तरंग-ध्वनि की

ओर ध्यान नहीं देते। अन्तरात्मा जिस बात को पुकार-पुकार कर कहता है उसे सुनने और समझने की ओर हमारा ध्यान ही नहीं जाता। अगर मनुष्य अपने अन्तर्नाद की ओर ध्यान दे तो उसे प्रायः कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य के विषय में विमूढ़ न होना पड़े।'

हमारे चरितनायक ने शायद अपनी इसी अवस्था के अनुभवों के आधार पर यह वाणी उच्चारी है। अब तक आपके सामने जो विकट समस्या उपस्थित थी और सुलझाये नहीं सुलझती थी, उसका समाधान अन्तरात्मा की ध्वनि से क्षण भर में हो गया। मानो लोकोत्तर प्रकाश मिल गया।

बात यों हुई कि आप अपने उस भाई को छाती पर लिटाकर अपने कर्त्तव्य-मार्ग पर विचार कर रहे थे। भाई के स्नेह और संसार के प्रति वैराग्य में द्वन्द्व युद्ध चल रहा था। कभी एक ओर झुकाव होता, कभी दूसरी ओर। इतने में अन्तरात्मा ने प्रश्न किया—'जब तुम पांच वर्ष के थे तब क्या हुआ था?' बस, इसी प्रश्न में समस्या का पूर्ण समाधान समाया हुआ था। अन्तरात्मा ने फिर कहा—'संसार में कोई किसी पर निर्भर नहीं है। सभी अपना-अपना भाग्य साथ में लाये हैं। मनुष्य अपने को दूसरे का पालक-पोषक मानकर अहंकार बढ़ाता है। एक दूसरे का भाग्य-विधाता नहीं बन सकता।'

एक बार श्री जवाहरलालजी के मस्तिष्क में उनकी सारी जीवनी चित्रपट की भांति चक्कर काट गई। मां दो वर्ष का छोड़ गई थी और पिताजी पांच वर्ष का। उस समय मेरा पालन करने वाला कौन था? क्या यह बालक भी तकदीर लेकर न आया होगा? भाग्य विपरीत होने पर मेरा आश्रय भी कितने दिन टिक सकता है? अगर आज मेरी जीवन-लीला समाप्त हो जाय तो इसका आश्रय-दाता कौन होगा?

इस प्रकार विचार करके श्री जवाहरलालजी ने विना विलंब आत्म-कल्याण की ओर अग्रसर होने का फैसला कर लिया।

श्री जवाहरलालजी की प्रकृति आरंभ से ही गम्भीर रही है। मन में दीक्षा का निश्चय कर लेने पर भी उसे जल्दी प्रकट कर देना उन्होंने उचित न समझा। अब वे प्रति दिन व्याख्यान सुनने जाते, साधुओं की संगति करते और अधिक समय ज्ञान-ध्यान में बिताते। इस प्रकार वे मन ही मन दीक्षा के संकल्प को दृढ़ करने लगे।

आपके तीन सहपाठी भी आपके साथ दीक्षा ग्रहण करने के लिए तैयार हुए थे। उनके नाम थे—श्रीमीयाचन्दजी, भानचन्द्रजी और खेमचन्द्रजी। कुछ समय बाद उनका वैराग्य तो शान्त हो गया मगर आपका वैराग्य क्रमशः बढ़ता ही चला गया।

दृढ़ और स्थायी निश्चय सफलता का प्रधान कारण है। महापुरुष अपने हित-अनहित का और संभावनाओं का विचार करके एक बार जो निश्चय कर लेते हैं, उससे फिर विचलित नहीं होते। विघ्न-बाधाएं उन्हें अपने पथ से डिगा नहीं सकतीं। आपत्तियां और विपत्तियां उनका रास्ता नहीं रोक सकतीं। उनका संकल्प इतना प्रबल होता है कि सफलता उनकी ओर खिंची चली आती है। श्री जवाहरलाली ने मुनि-व्रत धारण करने का प्रबल संकल्प कर लिया था; फिर संसार की कौन-सी शक्ति थी जो उन्हें विचलित करने में समर्थ होती?

कसौटी

'तुम ऐसी जगह खड़े हो जहां से दो मार्ग फटते हैं। तुम जिस ओर चाहो, जा सकते हो। एक संसार का मार्ग है, दूसरा मुक्ति का। अर्थात् एक मार्ग बंधन का और दूसरा स्वाधीनता का। संसार के—बंधन के—मार्ग पर चलोगे तो चलने का कभी अंत ही नहीं आ सकेगा और लक्ष्य पर कभी पहुंच नहीं सकोगे। मुक्ति का मार्ग शीघ्र ही भव-भ्रमण का अंत लाता है। शास्त्रकारों ने मोक्ष-मार्ग पर चलने की प्रेरणा की है।'

'जो मनुष्य इस अमूल्य मानव-देह को पाकर भी मौज-शौक में इसे गंवा देता है उसके बराबर कोई मूर्ख नहीं कहला सकता। बुद्धिमान् मनुष्य इस देह को पाकर क्षण-क्षण में अपनी श्रेष्ठ-साधना का मंत्र जपता रहता है; पर मूर्ख यही समझता है कि मनुष्य जन्म पाया है—फिर ऐसी देह नहीं मिलेगी, इसलिए जो कुछ मौज-शौक करलूं, वही मेरी है।'

जिस महात्मा के हृदय से आगे चलकर इस प्रकार के उद्गार निकले हैं, वह भला कबतक दुनियादारी के चक्कर में फंसा रहता? जब उसने देखा कि मेरी मानसिक तैयारी पूर्ण हो चुकी है और अब विलम्ब करना उचित नहीं है तो उसने दीक्षा ग्रहण करने का अपना विचार अपने पिताजी के बड़े भाई धनराजजी के समक्ष प्रस्तुत कर दिया। ताऊजी को जवाहरलालजी का विचार सुनकर बहुत आश्चर्य और दुःख हुआ। उन्होंने जवाहरलालजी के विचारों की गहराई को नहीं पहचाना। सोचा—'नादान बालक है। साधु के बहकावे में आ गया है। डाट-फटकार से रास्ते पर आजगा।' यह सोचकर उन्होंने डाट-फटकार दिखलाकर चुप कर दिया। मगर यहां तो रंग पक्का चढ़ चुका था। वह उतरने वाला न था। ताऊजी की फटकार कामयाब नहीं हुई। जवाहरलालजी का विचार अटल ही बना रहा।

धनराजजी ने जब देखा कि डाट-डपट से काम नहीं चलेगा तो उन्होंने उनका साधुओं के पास आना-जाना बंद कर दिया। निगरानी के लिए अपने दो लड़के नियुक्त कर दिये और सख्त हिदायत कर दी कि उनमें से कोई एक हर समय जवाहरलालजी के पास रहे और उन्हें साधुओं के पास न जाने दे।

इस प्रतिबन्ध के कारण कुछ दिनों तक उनका साधुओं के पास आना-जाना रुका रहा। मगर प्रतिबन्ध ढीला होते ही फिर आवागमन आरंभ हो गया। साधुओं के पास न जा सकने पर भी उनके विचारों में तनिक भी शिथिलता न आई। वे पहले की भांति दृढ़ रहे। आपने उन्हीं दिनों सचित्त जल पीने का त्याग कर दिया।

दूसरी चाल

धनराजजी ने जब देखा कि साधुओंके पास आना-जाना बंद करके भी वे श्री जवाहरलालजी के विचार नहीं बदल सके तो उन्होंने दूसरी चाल चली। गांव के सभी लोग आपके दीक्षा लेने के विचारों से परिचित हो चुके थे। धनराजजी ने अपने सब मिलने-जुलने वालों को समझा दिया कि जब कभी जवाहरलालजी उनसे मिलें तो वे साधुओं की निन्दा किया करें। उन्हें साधुओं का भय दिखाएं—साधुओं को भयंकर रूप में चित्रित करें, जिससे उनके विचार बदल जायं।

ताऊजी की यह शिक्षा उनके सभी परिचित सज्जनों ने कण्ठ तक उतार ली। उनमें से जो जवाहरलालजी से मिलता वही भरपेट मुनियों की निन्दा करता। कोई बूढ़ा कहता—'बच्चा, तुम साधु मत होना। साधु लड़कों को ले जाकर जंगल में छोड़ देते हैं और उनका सामान खोस

लेते हैं !' कोई-कोई आलंकारिक भाषा में कहते—'साधु बच्चों को पीट-पीटकर हलुवा बना देते हैं। कड़कड़ाते तेल के कड़ाहे में कचौरी की तरह उबालते हैं।' इस तरह जितने मुंह, उतनी ही बातें जवाहरलालजी को सुनाई पड़तीं। मगर आप भी अपनी धुन के पक्के थे। वे किसी के बहकावे में न आये और अपने निश्चय पर निश्चल बने रहे। यही नहीं, वरन् इस प्रकार के व्यवहार से उन्होंने अपने निश्चय को और भी दृढ़ कर लिया।

एक बार एक वैरागी बाबा आपके मकान पर आये। नाम था उनका परमानन्दजी, मगर बाबाजी के नाम से ही वह मशहूर थे। खूब मालदार और खूब प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। वह धनराजजी के मित्र थे। जवाहरलालजी के दीक्षा संबंधी विचार उन्हें भी विदित हो चुके थे। वे तरह-तरह से इन्हें समझाने लगे। उन्होंने अपने जीवन भर में संचित समस्त बुद्धिमत्ता खर्च कर दी मगर सुदृग शैल की दृढ़ता धारण किये हुए श्री जवाहरलालजी पर उनकी बुद्धिमत्ता ने कुछ भी असर नहीं दिखाया।

बाबाजी की बातों का उत्तर देना व्यर्थ समझकर जवाहरलालजी मौन साधे बैठे रहे। ताऊजी के मित्र होने के नाते भी उन्होंने नम्रता धारण करना और विरोध न करना उचित समझा। मगर इस मौन का असर बाबाजी पर उलटा पड़ा। बातों ही बातों में वह बहुत आगे बढ़ गए। धमकाकर कहने लगे—'धनराजजी तुम्हें दीक्षा लेने की अनुमति कदापि नहीं देंगे। अगर गड़बड़ करोगे तो पकड़ कर खाट के साथ बांध दिये जाओगे।'

बाबाजी को आसमान पर चढ़ते देख जवाहरलालजी ने उत्तर देना ही उचित समझा। उन्होंने गंभीर और शांत स्वर में कहा—'बाबाजी, आप इतनी बातें तो कह गए मगर आपने यह विचार न किया कि इनका संभालना कठिन हो सकता है। मुझे दीक्षा लेने की अनुमति मिल गई तो आपकी बातों की क्या कीमत रह जायगी ? आप जैसे सयाने व्यक्ति की बातें एक बालक के सामने असत्य साबित हों, यह आप कैसे सहन कर सकेंगे ? आपके हक में अच्छा तो यही है कि आप विचार कर वचन निकालें। इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं कि दीक्षा की अनुमति मुझे मिलेगी।'

जवाहरलालजी के इस उत्तर में असीम आत्म-विश्वास भरा हुआ है। उन्हें पूर्ण विश्वास है कि मेरा संकल्प टल नहीं सकता। दुनिया मुझे विचलित नहीं कर सकती। इस प्रकार का दृढ़ आत्म-विश्वास जिसे प्राप्त हो, वह बड़ा ही भाग्यशाली है। वह सारे संसार को अकेला ही पराजित कर सकता है। धन्य है यह दृढ़ता ! धन्य है यह अक्षय अभिलाषा ! धन्य है यह साहस !

वैरागी बाबा ने यह कल्पना भी न की होगी कि छोटा दिखाई देने वाला यह बालक इतना साहस कर सकता है ! बाबाजी यह उत्तर सुनते ही चकित रह गए। वह मानो उड़े जा रहे थे और बीच में अचानक धक्का लगा और वह नीचे आ गिरे। इस अवज्ञा और दृढ़ता से भरे उत्तर को सुनकर उनका बोल बंद हो गया। कौन जाने, बाबाजी ने मन ही मन बालक की बुद्धिमत्ता, दृढ़ता और साहसिकता की प्रशंसा की या नहीं, मगर इतना वे समझ गये कि उसे समझा सकना उनके वश से बाहर की बात है।

इस प्रकार धनराजजी के धीरे-धीरे सभी शस्त्र बेकार होते गये। उन्होंने अनेक यत्न किये

मगर कोई सफल नहीं हुआ। किन्तु स्नेह का बन्धन भी साधारण बंधन नहीं है। इस बंधन से प्रेरित होकर धनराजजी इस बात पर तुले थे कि जवाहरलालजी किसी प्रकार अपना इरादा बदल दें; मगर महागंगा का प्रवाह अगर बदल सकता है तो जवाहरलालजी का इरादा भी बदल सकता है। यदि वह संभव नहीं तो यह भी असंभव है।

आंशिक त्याग

'अखंड ब्रह्मचारी में अद्भुत शक्ति होती है। उसके लिए क्या शक्य नहीं है? अखंड ब्रह्मचारी अकेला ही सारे ब्रह्माण्ड को हिला सकता है। अखंड ब्रह्मचारी वह है जिसने अपनी समस्त इन्द्रियों को और मन को अपने वश में कर लिया हो। इंद्रियां जिसे फुसला नहीं सकतीं, मन जिसे विचलित नहीं कर सकता। ऐसा अखंड ब्रह्मचारी शीघ्र ही ब्रह्म का साक्षात्कार कर सकता है।'

'ब्रह्मचर्य का पालन करने के लिए और साथ ही स्वास्थ्य की रक्षा के लिए जिह्वा पर अंकुश रखने की बहुत आवश्यकता है। जिह्वा पर अंकुश न रखने से अनेक प्रकार की हानियां होती हैं।'

हमारे चरितनायक ने ब्रह्मचर्य और रसना-निग्रह के विषय में जो प्रभाव-शाली उपदेश दिया है, उसे पहले अपने जीवन में उतार लिया था। यह उपदेश उनके जीवन के अनुभव पर अवलंबित है। जब आप वैरागी अवस्था में थे तभी से त्याग की ओर आपकी भावना बढ़ती जा रही थी। सचित्त जल पीने का त्याग आप पहले ही कर चुके थे। अब आपने सचित्त वनस्पति खाने का और रात्रि-भोजन का भी त्याग कर दिया। इस प्रकार जिह्वा पर अंकुश स्थापित करने के पश्चात् आपने कुछ दिनों बाद आजीवन ब्रह्मचर्य-व्रत धारण कर लिया।

आत्मिक उन्नति के लिए त्यागशील बनना आवश्यक है। सभी मत और सभी पंथ त्याग का विधान और समर्थन करते हैं। जैनधर्म तो त्याग की नींव पर ही खड़ा हुआ है। त्याग आत्मा में दृढ़ता उत्पन्न करता है और कठिनाइयों को जीतने में समर्थ बनाता है। यदि कोई व्यक्ति किसी स्वादिष्ट वस्तु को खाने का त्याग कर देता है तो उसे रसनेन्द्रि के संयम का अभ्यास करना ही होगा। रसनेन्द्रिय का संयम ब्रह्मचर्य के लिए आवश्यक है। जो जीभ को वश में नहीं कर सकता वह ब्रह्मचर्य का पालन भी नहीं कर सकता। ब्रह्मचर्य की महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता। ऊपर चरितनायक के जो उपदेश-वाक्य दिये हैं, उनमें थोड़े से शब्दों में ही ब्रह्मचर्य को महत्ता का प्रतिपादन कर दिया गया है।

इस प्रकार एक-एक वस्तु का त्याग भी धीरे-धीरे आत्म-विकास की ओर ले जाता है। खाने, पीने, सोने, बैठने आदि के काम आने वाली भोग्य वस्तुओं में से जिनका जितना त्याग किया जाता है, आत्मा उतना ही बलवान् बनता है। क्या धार्मिक और क्या सामाजिक, सभी दृष्टियों से इंद्रिय-संयम जीवन-विकास के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

हमारे चरितनायक पूर्ण-त्याग के मार्ग पर चलना चाहते थे, अतएव उसके लिए उन्होंने पहले से ही तैयारी आरंभ कर दी। ताऊजी ने स्नेह के वश होकर उन्हें त्याग से च्युत करने का प्रयत्न किया, मगर आप दृढ़ बने रहे। ताऊजी के द्वारा लगभग प्रतिदिन ही कोई-न-कोई अड़चन उपस्थित की जाती थी। यह देखकर आपने घर में भोजन करना छोड़ दिया। आप थांदला में

ही दूसरे श्रावकों के घर भोजन करने लगे। इस प्रकार श्रीधनराजजी के प्रयत्नों का फल विपरीत हुआ और उनके प्रयत्नों के कारण भी जवाहरलालजी त्याग के पथ पर शीघ्रतापूर्वक दृढ़ होते चले गए।

बाल्यावस्था की प्रतिभा

जवाहरलालजी में प्रतिभा का वैभव जन्म-जात था। वे उन भाग्यवान् महापुरुषों में से एक थे, जिन्हें प्रतिभा विरासत में मिलती है। इसी कारण वे बाल्यावस्था में भी तीव्र प्रतिभा-शाली और प्रत्युत्पन्नमति थे। किसी बात का तत्काल माकूल उत्तर देना आपकी विशेषता रही है। एक ही उदाहरण से उनकी प्रखर प्रतिभा का पाठकों को पता चल जायगा।

एक बार आप किसी ब्राह्मण पंडित के घर जाकर अपनी जन्म-पत्री दिखा रहे थे। उसी समय वहां पण्डित आत्मारामजी आ पहुंचे। वे राज्य के एक अधिकारी थे। मामा मूलचन्दजी के मित्र होने के कारण जवाहरलालजी उन्हें भली-भांति जानते थे।

जवाहरलालजी ने ज्योतिषी से पूछा—'कोई ऐसा ग्रह बतलाइए जो मेरी दीक्षा में सहायक हो।'

पंडित आत्मरामजी ने उन्हें चिढ़ाने के उद्देश्य से कहा—'क्या तुम ढूंढ़िया साधु बनना चाहते हो? क्या तुम्हें मालूम है, ढूंढ़ियों की उत्पत्ति कैसे हुई?'

जवाहरलालजी—'जी हां, मैं ढूंढ़िया साधु बनना चाहता हूं। आप बताइए, किस प्रकार उनकी उत्पत्ति हुई है?'

आत्मारामजी ने आरंभ किया—महात्मा गोरखनाथ के दो चेले थे—एक का नाम था मछेन्द्रनाथ और दूसरे का पारसनाथ। एक दिन गुरुजी ने दोनों चेलों को भिक्षा लाने के लिए भेजा। बेचारे बहुत घूमे पर भिक्षा नहीं मिली। एक जगह बनियों की पंगत हो रही थी। पारस-नाथ वहां पहुंच गए और उन्होंने भिक्षा की याचना की। पंगत के पास एक मरी बछिया पड़ी थी। बनियों ने कहा—इसे ले जाकर दूर फेंक आओ तो तुम्हें बढ़िया पकवान देंगे।

पारसनाथ ने बिना संकोच मरी बछिया खींचकर दूर फेंक दी। बनियों ने खूब मिठाई दी। उसे लेकर पारसनाथ अपने गुरूजी के पास पहुंचा।

उधर मछेन्द्रनाथ खाली हाथ लौटा। गुरु गोरखनाथ ने मछेन्द्र को बहुत धिक्कारा और पारसनाथ की प्रशंसा की! मछेन्द्रनाथ ने उसी समय पारसनाथ की पोल खोल दी। बछिया वाली बात सुनकर गुरूजी ने पारसनाथ को अपने आश्रम से निकाल दिया और शाप दिया—'तुमने जिन बनियों की बछिया खींची है, आज से तुम उन्हीं के गुरु हो गए।'

बस, तभी से ढूंढ़िया मत चल पड़ा। इसी घटना के चिह्न-स्वरूप ढूंढ़िया साधु हाथ में गाय की पूंछ के समान ओघा और अम्बाड़े के समान पात्र रखते हैं। क्या तुम उन्हीं पारसनाथ के चेले बनना चाहते हो?

पंडितजी की यह मनगढ़ंत कहानी सुनकर जवाहरलालजी ने उसी समय उत्तर दिया—'पंडितजी, आप अधूरी बात कह रहे हैं। इस कहानी में बहुत-सी बातें छूट गई हैं। आपकी आज्ञा हो तो मैं उन्हें पूरी कर दूं।'

पंडितजी के पूछने पर श्री जवाहरलालजी ने कहना आरम्भ किया—'वास्तव में बात यह

है कि बछिया बहुत भारी थी। पारसनाथ अकेले उसे खींच नहीं सके। सहायता के लिए उन्होंने मछेन्द्रनाथ को बुलाया। मिठाई के लोभ से वह भी आकर सम्मिलित हो गया। मछेन्द्र ने मुंह की तरफ से बछिया पकड़ी और पारसनाथ ने पूंछ की तरफ से, दोनों उठाकर उसे दूर फेंक आये। मगर बनियों ने कहा—हमने अकेले पारसनाथ को मिठाई देने का वायदा किया था, मछेन्द्रनाथ को नहीं। यह कहकर उन्होंने उसे मिठाई नहीं दी। इससे मछेन्द्रनाथ चिढ़ गया। उसने गुरु के पास जाकर पारसनाथ की शिकायत कर दी। गुरुजी को नाराज होते देख पारसनाथ ने भी मछेन्द्रनाथ की पोल खोल दी। गुरुजी मछेन्द्र पर भी क्रोधित हो गए। उन्होंने उसे शाप दिया—"आज से तुम ब्राह्मणों के गुरु हुए। इस पाप के लिए तुम्हारे हाथ में गाय का मुंह रहेगा और उसकी आंतें धारण करोगे।"

तभी से ब्राह्मण हाथ में गोमुखी रखते हैं और आंतों की तरह जनेऊ पहनते हैं। माला फेरते समय गोमुखी में हाथ रखते हैं और स्नान करते समय जनेऊ को आंतें मानकर खूब धोते हैं, जिससे उनमें बदबू न आने पावे। गाय की पूंछ में तेंतीस कोटि देवताओं का वास माना जाता है। उसका अम्बाड़ा अमृत का स्थान है। यह दोनों अंग गाय के शरीर में बहुत पवित्र माने जाते हैं। इसके विपरीत गाय का मुंह अपवित्र माना जाता है। उससे गाय अशुचि पदार्थों को भी खा जाती है। आंतें तो अपवित्र हैं ही। ये दोनों चीजें ब्राह्मणों के पल्ले पड़ीं। अब आप ही सोच देखिए, दोनों में बुरा कौन ठहरा ?'

श्री जवाहरलालजी का जैसे-का-तैसा उत्तर सुनकर आत्मारामजी अवाक् रह गए। यद्यपि यह एक कल्पित कहानी है, इसमें कोई तथ्य नहीं है, किन्तु श्री जवाहरलालजी की कल्पना-शक्ति और प्रतिभा का इससे भली-भांति अनुमान किया जा सकता है। छोटी-सी अवस्था में इतनी बड़ी बात तत्काल गढ़ लेना साधारण बात नहीं है। इसके लिए प्रखर प्रतिभा चाहिए; और एक राज्याधिकारी के सामने निर्भयता के साथ उसे कहने की हिम्मत होना भी कठिन है। मगर श्री जवाहरलालजी में इस हिम्मत की भी कमी नहीं थी। ईंट का जवाब पत्थर से देना भी उन्हें खूब आता था। वस्तुतः इन गुणों के अभाव में कोई भी व्यक्ति महत्ता प्राप्त नहीं कर सकता।

इन दिनों श्री जवाहरलालजी जल में कमल की भांति अलिप्त भाव से घर में रहते थे, तथापि उन्हें वर्त्तमान स्थिति में भी संतोष नहीं था। वे ऐसा कोई उपाय खोज रहे थे जिससे अनगार बनने की उनकी अभिलाषा शीघ्र पूरी हो सके। उधर ताऊजी दीक्षा न लेने-देने पर तुले हुएथे। जवाहरलालजी की प्रत्येक प्रवृत्ति पर उनकी निगाह रहती थी।

एक बार श्री जवाहरलालजी ने सुना कि संसार-सागर से पार उतारने वाले मुनिराज इस समय लींबड़ी में विराजमान हैं। यह स्थान थांदला से बारह कोस दूर है। जवाहरलालजी को बड़ी उत्कंठा हुई कि उनके दर्शन करके नेत्र सफल करूं किंतु कोई उपाय न था। तथापि श्रीजवाहरलालजी निराश होना नहीं जानते थे। उन्हें विश्वास था कि जहां इच्छा प्रबल है वहां कोई-न-कोई मार्ग निकल ही आता है। अतएव अवसर की प्रतीक्षा करने लगे।

जवाहरलालजी के चचेरे भाई (धनराजजी के पुत्र) उदयराज जी किसी काम से दाहोद जाने के लिए तैयार हुए। दाहोद से लींबड़ी नजदीक ही है। जवाहरलालजी भी उनके साथ चलने को तैयार हो गये। दोनों बैलगाड़ी में बैठकर चल दिये।

रास्ते में अनास नदी पड़ती थी। नदी तक पहुंचते-पहुंचते अंधेरा हो गया। नदी में बैल उतर तो गये किन्तु चढ़ाव में कचिया गये। चढ़ाने का प्रयत्न किया गया तो कभी इधर मुड़ जाते, कभी उधर। नदी पहाड़ी थी और उस समय उसमें पानी नहीं था किन्तु पत्थरों की भरमार थी। भयानक जंगल था, अंधकार से परिपूर्ण काली रात फैल गई थी। पथरीला रास्ता था; पग-पग पर गाड़ी उलटने की सम्भावना थी। जवाहरलालजी उस समय पन्द्रह वर्ष के और उदयराजजी सत्तरह वर्ष के थे। गाड़ीवान भी इन्हीं के अनुरूप छोटी उम्र का था। भीलों की आबादी होने के कारण लूटे जाने का भय सिर पर मंडरा रहा था।

तीनों ने मिलकर बहुत यत्न किया मगर गाड़ी नदी के चढ़ाव पर न चढ़ी। उदयराजजी और गाड़ीवान घबरा उठे। दोनों जोर-जोर से रोने लगे। मगर जवाहरलालजी किसी और ही धातु से बने थे। रोना उन्होंने सीखा ही नहीं था। विपत्ति आने पर वे घबराते नहीं थे। उन्होंने एक जगह कहा है—'विपत्ति को सम्पत्ति के रूप में परिणत करने का एक मात्र उपाय यह है कि विपत्ति से घबराना नहीं चाहिए। विपत्ति को आत्म-कल्याण का एक श्रेष्ठ साधन समझकर, विपत्ति आने पर प्रसन्न रहना चाहिए।' जिसका विचार इतना उच्च गंभीर है उसके लिए यह विपत्ति तो नगण्य है। वह इससे कैसे घबराता ?

श्री जवाहरलालजी इस समय एकदम शान्त थे। उन्होंने दोनों को धैर्य बंधाया और कहा—'घबराने की क्या बात है ? गाड़ी क्या यहीं पड़ी रहेगी ? वह निकलेगी और जल्दी ही निकल जायगी।' इतना कहकर उन्होंने अपना काला कोट पहिना और छड़ी घुमाते हुए भीलों की बस्ती की ओर चल दिये। वहां जवाहरलालजी का एक परिचित भील रहता था। आप अकेले अंधेरे में उसी को बुलाने के लिए रवाना हुए। हिंसक पशुओं से भरे भयानक जंगल में, रात्रि के समय, निर्भय होकर दो मील चलने पर आप भीलों की बस्ती में पहुंचे। परिचित भील को आवाज दी। उसे अपना हाल सुनाया और मिहनताना देने का वचन देकर उसे अपने साथ ले आए। गुलजी तड़वी नामक उस भील ने अपने साथ दस-बारह भील और लिये। उनकी सहायता से गाड़ी नदी के चढ़ाव पर चढ़ी और सबके जी में जी आया।

रात भर वहीं कहीं विश्राम लेकर दोनों भाई दूसरे दिन दाहोद पहुंचे। उदयचंदजी अपना काम पूरा करके थांदला लौट आये। श्री जवाहरलाल जी वहां से लींबड़ी चल दिये। वहां जाकर वे साधुओं की सेवा में रहने लगे और दीक्षा लेने के लिए तैयार हो गए।

उदयचंद जी जब अकेले थांदला लौटे और धनराजजी को पता चला कि जवाहरलालजी लींबड़ी पहुंच गये हैं, तो वह उसी समय लींबड़ी के लिए रवाना हुए। उन्हें भली-भांति पता था कि पंखी पींजरे में से निकल चुका है और अब सरलता से यों ही वापस नहीं लौटने का। अब ऐसे चुग्गे की आवश्यकता है जिसके लोभ में पड़कर पंखी फिर पींजरे में आ बसे। धनराजजी बड़े अनुभवी आदमी थे। जानते थे कि संसार का कोई भी प्रलोभन उस पंखी को आकर्षित नहीं कर सकता। अतएव उन्होंने ऐसे चुग्गे की व्यवस्था की कि पंखी वश में आ गया। वह चुग्गा क्या था ? थांदला के तत्कालीन सरपंच शाहजी प्यारचंद जी का पत्र था, जिसमें जवाहरलालजी को लक्ष्य करके लिखा था-'तुम थांदला लौट आओ। दीक्षा की आज्ञा दिलाने की जिम्मेवारी मुझ पर है।'

दीक्षा के प्रलोभन रूप चुग्गे से आकर्षित होकर उड़ा हुआ पंखी फिर लौट आया। आखिर दीक्षा के सिवाय उसे और चाहना ही क्या थी! उसने सोचा–'थांदला जाते ही मुझे दीक्षा लेने की आज्ञा मिल जायगी। मेरे मन की मुराद पूरी हो जायगी। अब बाबाजी के साथ चले जाने में हर्ज ही क्या है?'

इस प्रकार विचार कर आप बाबाजी (श्री धनराज जी) के साथ लौट आये। मगर थांदला आते ही बाबाजी ने अपना रंग पलट दिया। दीक्षा की आज्ञा देने से साफ इन्कार कर दिया। जवाहरलालजी को शाहजी का सहारा था। वे उनके पास पहुंचे। मगर सरपंच शाहजी अपनी लाचारी प्रकट करके रह गये! कहने लगे—'मैंने तुम्हारे बाबाजी को खूब समझाया मगर वे आज्ञा देने के लिए तैयार नहीं होते। मैं क्या जानता था कि वे इस प्रकार पलट जायंगे? उनकी लिखत मेरे पास होती तो कुछ कार्रवाई भी करता, मगर ऐसा कुछ है नहीं। जितना कह सकता था, कह चुका, उन्हें समझा चुका। अब क्या हो सकता है?'

सरपंच महोदय की यह सरलतापूर्ण लाचारी देख श्री जवाहरलालजी को घोर निराशा हुई। फिर भी उन्होंने अपना संकल्प नहीं छोड़ा और किसी दूसरे अवसर की राह देखने लगे।

पुनः पलायन

थांदले के भैंरा धोबी के पास एक घोड़ा था, जिसे वह किराये पर भी चलाया करता था। श्री जवाहरलालजी ने वही घोड़ा पांच रुपये में तय कर लिया। भैंरा अपने घोड़े पर उन्हें लींबड़ी पहुंचा देगा। मगर गांव से ही घोड़े पर सवार होने में कठिनाई थी। बाबाजी को पता लग जाता तो निकलना असम्भव हो जाता। इसलिए निश्चित किया गया कि भैंरा अपना घोड़ा लेकर नौगांवा नदी पर दो पहर तक पहुंच जायगा और बादमें किसी समय जवाहरलालजी वहां आ मिलेंगे।

श्री जवाहरलालजी अपने निश्चित समय पर घर से बाहर निकले। महात्मा बुद्ध रात्रि के घोर अंधकार में घर से रवाना हुए थे, श्री जवाहरलालजी ने दुपहरी के चमकते सूर्य के प्रकाश में प्रस्थान किया। फिर भी दोनों का उद्देश्य समान था। जैसे ही आप गांव से बाहर निकले कि रास्ता भूल गए। लींबड़ी के बदले झाबुआ की राह पकड़ ली। कुछ ही दूर गये थे कि एक रिश्तेदार से भेंट हो गई। वे आपके रिश्ते में बहनोई होते थे और आपके विचारों से परिचित थे। उनका नाम था कोदाजी घोड़ावत। उन्होंने सारा वृत्तान्त सुनकर आपको ठीक रास्ता बतला दिया।

नदी के किनारे चलते-चलते आप भैंरा धोबी के पास पहुंचे और घोड़े पर सवार होकर लींबड़ी की ओर रवाना हुए। पांच कोस चलने पर सूर्य अस्त हो गया। रास्ते की चौकी पर सिपाही ने रोका। अगले गांव में ठहर जाने का वायदा करके चौकीदार से पिण्ड छुड़ाया और आगे चले।

जो रास्ता सीधा लींबड़ी जाता था उसमें बड़े-बड़े पहाड़ थे और जंगल भी था। जंगली जानवरों का भी भय बना रहता था। रात में उस रास्ते जाना खतरनाक था। कदाचित् आप तैयार हो जाते तो भैंरा हरगिज जाना मंजूर न करता। उसे अपनी और अपने घोड़े की जान की जोखिम भी तो थी। अतएव श्री जवाहरलालजी ने सीधा मार्ग छोड़कर लम्बे मार्ग से ही जाना उचित समझा। चलते-चलते दाहोद के नजदीक पहुंचे। वहां खान नदी के किनारे एक खरबूजेवाले

की झोंपड़ी थी। उसी झोंपड़ी में शेष रात्रि बिताकर प्रातःकाल होते ही फिर रवाना हुए।

रास्ते में एक हूमड़ महाजन मिले। वे आपके मित्र थे। उन्होंने भोजन के लिए बहुत आग्रह किया परन्तु आप सचित्त जल के त्यागी थे और अचित्त जल तैयार नहीं था। विलम्ब करना असह्य होने के कारण सिर्फ भैरा को भोजन कराकर वे तत्काल वहां से चल दिये।

जिस बात की आशंका थी वही हुई। बहुत जल्दी करने पर भी जब आप लींबड़ी पहुँचे तो आपका स्वागत करने के लिए बाबाजी वहां मौजूद मिले! बाबाजी उनसे भी पहले पहुँच गये थे। उन्होंने मार्ग की भयानकता का खयाल नहीं किया और सीधे मार्ग से ही आ पहुंचे थे।

बाबाजी ने श्री जवाहरलालजी को थांदला लौटने के लिए शक्ति भर समझाया। मगर 'सूरदास की कारी कमरिया चढ़े न दूजो रंग' वाली उक्ति चरितार्थ हुई। श्री जवाहरलालजी टस-से-मस नहीं हुए। बाबाजी भी जल्दी हार माननेवाले नहीं थे। उन्होंने धमकाना शुरू किया। मगर जब तमाम धमकियां बेकार होगईं और श्री जवाहरलालजी ने लौटने से साफ इन्कार कर दिया तो बाबाजी फिर ढीले पड़ गए। उन्होंने अपने हृदय की सारी व्यथा जवाहरलालजी के सामने उंडेलकर रख दी। वृद्ध धनराजजी ने कहा—'देखो, मैं बूढ़ा हो गया हूं। तुम्हारे मामा के घर कोई पुरुष शेष नहीं बचा है। उस कुटुम्ब का भार कौन संभालेगा? मेरा खयाल भले ही न करो मगर मामा को मत भुलाओ। तुम्हारे ऊपर उनका कितना उपकार है? धर्म के नाम पर क्या यह कृतघ्नता शोभा दे सकती है? मामा के उस नादान बालक को किसके सहारे छोड़ आये हो? उसका उत्तरदायित्व तुम्हीं पर है। अपना उत्तरदायित्व छोड़कर भाग निकलना तो कायरता है; धर्म कायरता नहीं सिखलाता। हां, जब वह बालक सयाना हो जाय और मेरी आंखें मुंद जायं तब इच्छानुसार कर सकते हो। इसलिए बेटा! मेरी बात मानो। हठ मत करो। घर लौट चलो।'

प्रतिकूल उपसर्ग देखने-सुनने में कठोर मालूम होते हैं परन्तु सहने में उतने कठोर नहीं होते। इसके विरुद्ध अनुकूल उपसर्ग बड़े ही मनोरम और लुभावने जान पड़ते हैं परन्तु उन्हें सहन करना सरल नहीं होता। अच्छे-अच्छे योगी भी अनुकूल उपसर्गों के चक्कर में पड़कर अपनी साधना से नष्ट हो जाते हैं। शास्त्र में कहा है—

अहिमे सुहुमा संगा, भिक्खूणं जे दुरुत्तरा।
जत्थ रागे विसीयंति, ण चयंति जवित्तए॥

—सूयग० अ० ३, उ० २।

अर्थात् यह अनुकूल उपसर्ग बड़े ही सूक्ष्म होते हैं। साधु पुरुष बड़ी कठिनाई से इन्हें जीत पाते हैं। कई-एक तो इन उपसर्गों के आने पर अपने संयम की रक्षा करने में ही असमर्थ हो जाते हैं।

वे अनुकूल उपसर्ग कौन-से हैं, सो शास्त्रकार कहते हैं—

अप्पेगे नायओ दिस्स, रोयंति परिवारिया।
पोस णे ताय! पुट्ठोसि, कस्स ताय! जहासि णे?
पिया ते थेरओ तात! ससा ते खुड्डिया इमा।
भायरो ते सगा तात! सोयरा किं जहासि णे?

मायरं पियरं पोस, एवं लोगो भविस्सइ ।
एवं खु लोइयं ताय ! जे पालंति मायरं ॥
एहि ताय ! घरं जामो, मा य कम्मे सहा वयं ।
बितियं पि ताय ! पासामो जामु ताव सयं गिहं ॥

अर्थात्—साधु के परिवार वाले साधु को देखकर घेर लेते हैं और रोकर कहते हैं—तात ! तू हमें क्यों त्यागता है ? हमने लड़कपन से तुम्हारा पालन किया है, अब तुम हमारा पालन करो।

तात ! तुम्हारे पिता बूढ़े हैं और तुम्हारी बहन नादान है। यह तुम्हारे सगे भाई हैं। तुम हम लोगों को क्यों त्यागते हो ?

हे पुत्र ! अपने माता-पिता का पालन करो। उनका पालन करने से ही परलोक सुधरेगा। जगत् का यही आचार है और इसलिए लोग अपने माता-पिता का पालन करते हैं ।

हे तात ! चलो घर चलें। अब से तुम भले ही कोई काम मत करना। हम काम कर दिया करेंगे। एक बार काम से घबरा कर तुम भाग आये हो, पर अब चलो, अपने घर चलें।

इस प्रकार अनुनय, विनय, लाचारी और बेबसी प्रकट करने वाले तथा प्रलोभनों में फंसाने वाले यह अनुकूल उपसर्ग बड़े करारे होते हैं। शास्त्रकार के शब्दों में साधु भी बड़ी कठिनाई से इन्हें सहन कर पाते हैं। हमारे चरितनायक अभी साधु नहीं बने थे, साधु होने के उम्मीदवार ही थे। फिर भी उन्होंने अत्यन्त धैर्य के साथ बाबा जी के अनुकूल उपसर्गों को सहन किया। उन्होंने बाबाजी को नम्रतापूर्वक निवेदन किया—

गार्हस्थ्य एक जंजाल है। इस जंजाल में मैं पड़ना नहीं चाहता। दीक्षा लेने का पक्का निश्चय कर चुका हूं। धन-दौलत और संसार के अन्य सुख-साधन मेरी निगाह में तुच्छ हैं। जीवन का क्या भरोसा है ? आज है, कल नहीं। माता छोड़कर चली गई। पिताजी भी जल्दी ही चल दिये। मामाजी ने भी उनका अनुगमन किया। यह सब घटनाएं मेरी आखों के सामने घटीं। जीवन पर भरोसा कैसे किया जाय ? ऐसी स्थिति में एक क्षण गंवाना भी मेरे लिए असह्य है। जितनी जल्दी मनुष्य आत्म-कल्याण में लग जाय उतना ही श्रेयस्कर है।

मामाजी की मृत्यु होने पर भी उस बालक का पालन-पोषण हुआ ही था। इसी प्रकार अब भी होता रहेगा। अभी तो मैं दीक्षा ले रहा हूं, यदि मेरी मृत्यु हो जाय तो उसे कौन पालेगा ? मैं न होता तो भी उसका भरण-पोषण तो होता ही। वास्तव में कोई किसी पर निर्भर नहीं है। सब अपने-अपने कर्मों का फल भोगते हैं। यह तो मनुष्य का झूठा अहंकार है कि वह अपने आपको पालक-पोषक समझता है। कोई किसी का भाग्य पलट नहीं सकता।

बाबाजी ! मेरे विचारों को आप सोडावाटर का उफान न समझें। यह विचार क्षणिक नहीं, स्थायी और दृढ़ हैं। उनमें परिवर्तन करने का प्रयास निरर्थक है। विवेकी पुरुष के लिए संसार में आकर्षण की क्या चीज है ? सभी कुछ नीरस, दुःखमय और क्षणिक है। आपके लिए यही उचित है कि आप मुझे दीक्षा लेने की आज्ञा दे दें। अगर आप आज्ञा न देंगे तो मैं साधुओं की तरह रहकर सारा जीवन बिता दूंगा। मेरा निश्चय अब बदल नहीं सकता। मैं कोई बुरा कार्य करने के लिए उद्यत नहीं हुआ हूं। आप प्रसन्नतापूर्वक मुझे आज्ञा दीजिए और घर लौट जाइए।'

साधुता का अभ्यास

बाबाजी का श्री जवाहरलालजी पर गाढ़ स्नेह था। इसी स्नेह की प्रेरणा से उन्होंने दीक्षा न लेने देने का भरसक प्रयत्न किया। मगर अन्त में उन्हें निराश होना पड़ा। बाबाजी का श्री जवाहरलालजी पर जितना प्रेम था उससे कहीं बढ़कर श्री जवाहरलालजी का संयम पर प्रेम था। बाबाजी का प्रेम राजस था, श्री जवाहरलालजी का सात्विक। अन्त में सात्विक प्रेम ने राजस प्रेम पर विजय प्राप्त की। बाबाजी निराश होकर थांदला लौटे। इधर जवाहरलालजी ने साधु-वृत्ति का अभ्यास प्रारंभ कर दिया। अब आप किसी के घर भोजन नहीं करते थे। झोली में कटोरियां रखकर साधुओं की तरह गोचरी लाते थे। आप शास्त्रों के मूलपाठ और थोकड़े कंठस्थ करने लगे। कुछ दिनों बाद साधु तो वहां से विहार कर गये किन्तु आप वहीं रहकर साधु सरीखा जीवन बिताने लगे। आठ महीने तक आप इसी अवस्था में रहे।

सफलता

'हे आत्मन्! जब अंतरंग शत्रु तेरे ऊपर आक्रमण करेंगे, उस समय तू छिपकर बैठा रहेगा तो उन शत्रुओं पर विजय कैसे प्राप्त कर सकेगा? युद्ध के समय छिपे रहना वीरात्मा को शोभा नहीं देता। इसलिए तैयार हो जा। तेरा बल अनन्त है। तेरी क्षमता अपार है। संसार की समस्त शक्तियां तेरी शक्ति के सामने पानी भरती हैं। तेरे शत्रु भले ही प्रबल हैं, पर अजेय नहीं हैं। उन्हें जीतने का प्रबल संकल्प करते ही आधी विजय प्राप्त हो जाती है।

हे आत्मन्! अब उठ खड़ा हो। अपनी शक्ति को संभाल। अंतरंग शत्रुओं को छिन्न-भिन्न कर डाल। शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने से तुझे अलौकिक वैभव प्राप्त होगा। तू सनातन साम्राज्य का स्वामी बनेगा।'

चरितनायक की इस ओजस्वी वाणी में कितना बल है? इसमें संकल्प की महत्ता है, आत्मा की अनन्त और असीम शक्तियों पर दृढ़ आस्था भरी है, आत्मिक शुद्धि प्राप्त करने की तीव्र व्यग्रता छिपी है और आत्म-विकारों का क्षय करने के लिए प्रबल प्रेरणा नजर आती है। जिस महान् आत्मा के विचार इतने उच्च, उज्ज्वल और उन्नत हैं, उसे संसार के प्रलोभन अपने वश में कैसे कर सकते थे? उसके संकल्प को कौन पराजित कर सकता था? सचमुच उसकी तीव्र भावना के सामने संसार की शक्तियां पानी भरती थीं। अनेकानेक कठिनाइयां आने पर भी वह रंचमात्र भी विचलित नहीं हुआ। अन्तरायों की वर्षा के बीच भी वह ज्यों-का-त्यों खड़ा रहा। वास्तव में महापुरुषों का यही स्वभाव होता है!

आठ महीने तक साधु-वृत्ति का अभ्यास करने के अनन्तर जब आपनें देखा कि बाबाजी अब भी आज्ञा देने को तैयार नहीं हैं तो उन्होंने अपने सगे-सम्बन्धियों को पत्र लिखे। पत्रों में यह भी उल्लेख कर दिया कि—आप आग्रह करके बाबाजी से आज्ञा नहीं दिलायेंगे तो मुझे किसी अज्ञात स्थान को चला जाना पड़ेगा और फिर कभी थांदला नहीं आ सकूंगा।'

श्री जवाहरलालजी के निश्चय पत्थर की लकीर होते थे। सभी लोग उनकी आदत से परिचित थे। अतः पत्र मिलते ही सम्बन्धी-जन चिन्ता में पड़ गये। आखिर जाति के प्रतिष्ठित पुरुषों और सम्बन्धी-जनों की एक पंचायत हुई। सब पंचों ने बाबाजी से आज्ञा देने का आग्रह किया।

बाबाजी सभी प्रयत्न करके थक चुके थे। अज्ञात स्थान में चले जाने की धमकी से वे भी विचलित हो उठे थे। उन्होंने सोचा—'जवाहर का निश्चय बदल नहीं सकता। वह अपने विचारों का पक्का है। कहीं अनजान जगह चला गया तो देखना भी दुर्लभ हो जायगा। इससे बेहतर है कि आज्ञा लिख दूं। जब चाहूंगा, दर्शन कर आया करूंगा।'

बाबाजी आज्ञा के लिए तैयार हो गए। वहीं पंचायत में आज्ञा-पत्र लिखा गया और श्री जवाहरलालजी के पास भी एक पत्र भेज दिया गया। उसमें लिखा था—'विक्रम संवत् १९४८ की मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशी के बाद आपको दीक्षा लेने की आज्ञा दी जाती है।'

दीक्षा-संस्कार

'कर्म-रहित अवस्था प्राप्त करना अपने ही हाथ की बात है। संयम किसी भी प्रकार दुःख-प्रद नहीं वरन् आनन्ददायक है। विवेकपूर्वक संयम का पालन किया जाय तो संयम इस लोक में भी सुखदायक है और परलोक में भी।'

संयम को इह-परलोक में आनन्दप्रद मानने वाले श्री जवाहरलालजी को जब संयम धारण करने का आज्ञापत्र प्राप्त हुआ तो उनकी प्रसन्नता का पार न रहा। 'शुभस्य शीघ्रम्' वाली उक्ति का अनुसरण करके आपने मार्गशीर्ष शुक्ला द्वितीया (वि. सं. १९४७) को ही दीक्षा धारण करने का मुहूर्त्त निश्चय किया। दीक्षा के आमंत्रण-पत्र भेजे गये। सैंकड़ों श्रावक बाहर से एकत्रित हुए। बाबाजी स्वयं उपस्थित नहीं हो सके। उन्होंने अपने पुत्र श्री उदयचन्दजी को भेजा। निश्चित समय पर सैंकड़ों नर-नारियों के समक्ष मुनिश्री बड़े घासीलालजी महाराज[1] ने आपका केशलोंच किया और महाव्रतों का उच्चारण करके दीक्षा दे दी। उस समय आप श्री मगनलालजी महाराज के शिष्य बने थे। इस प्रकार हमारे चरितनायक की चिरकालीन अभिलाषा पूर्ण हुई। मुनिपन धारण करके आपने अपने को कृतकृत्य समझा। आपके लिए मानव-जीवन की सफलता का द्वार खुल गया। सिर पर लम्बे अर्से से जो बोझा-सा लदा था, वह हल्का हो गया। वैरागी श्री जवाहरलालजी को संयम क्या मिला, रंक को नव-निधियां मिलगईं, मानो दरिद्र के घर कल्पवृक्ष आ गया। आपका हृदय संतुष्ट हुआ और अन्तरात्मा को अपूर्व शान्ति का लाभ। इसके बाद चरितनायक के जीवन का नया प्रभात आरंभ हुआ।

प्रभु की गोद में

अब हमारे चरितनायक के जीवन में आमूल परिवर्त्तन हो गया। इस परिवर्त्तन के पीछे कौन-सी भावना काम कर रही थी, यह बात परोक्ष रूप में आ चुकी है। यहां उसे स्पष्ट कर देने की आवश्यकता है। मुनि-जीवन धारण करने में उनका क्या महत् उद्देश्य था, यह चीज चरितनायक के शब्दों में ही व्यक्त करना अधिक उचित होगा। निम्नलिखित उद्धरण उन्हीं की समय-समय पर प्रकट हुई वाणी से संग्रहीत किये गए हैं—

(१)

प्रभो ! जब तक मुझ में अपूर्णता विद्यमान है तब तक मुझे आपके चरणों की नौका का

---

[1] यह श्री घासीरामजी महाराज श्री हुक्मीचन्द्रजी म. के सम्प्रदाय की महान् विभूति थे। बड़े पंडित और चरित्र-सम्पन्न तपोवली थे। उनके शुभाशीर्वाद ने ही हमारे चरितनायक को इस पद पर पहुंचाया है।

आश्रय मिलना चाहिए। आपकी चरण-नौका का आधार पाकर मैं संसार-सागर से पार पहुंचना चाहता हूं।

(२)

प्रभो ! मेरी आशा-अभिलाषा ऐसी है कि तुम्हीं उसे पूर्ण कर सकते हो। तुम्हारे सिवाय दूसरा कोई उसे पूर्ण नहीं कर सकता। इसलिए मैंने तुम्हारी शरण ली है। पुत्र की आशा तो स्त्री भी पूर्ण कर सकती है। उसके लिए तुम्हारी शरण ग्रहण करने की क्या आवश्यकता है? मैं तुमसे ऐसी ही आशा करता हूं जिसकी पूर्ति किसी और से हो ही नहीं सकती। मैंने तुम्हारा स्वरूप जानकर तुम्हें हृदय में बसाया है और अपने हृदय को तुम्हारा मन्दिर समझने लगा हूं।

(३)

प्रभो ! मैं भागकर तेरे चरण-शरण में आया हूं। इन विकार-विषधरों से मुझे बचा। मेरी रक्षा कर। विकार-विष उतारकर मेरा उद्धार कर।

(४)

प्रभो ! मैं ऊर्ध्वगामी होना चाहता हूं, प्रगति के महान् और अंतिम लक्ष्य की दिशा में निरन्तर प्रयाण करने की कामना करता हूं। मुझे वह शक्ति दीजिए कि अधोगामी न बनूं। विश्व के प्रलोभन मुझे किंचित् भी आकृष्ट न कर सकें। भगवन्, अगर आप मेरे कवच बन जाएँ तो मैं कितना भाग्यशाली होऊं!

(५)

प्रभो ! संसार की कामना मेरा हाथ पकड़कर मुझे अपनी ओर खींच रही है। इस कामना से बचने के लिए तेरी शरण में आना ही एकमात्र उपाय है। प्रभो ! अगर तू मुझे अपनी शरण में लेकर मेरी बांह पकड़ ले तो सांसारिक कामना तुझसे डरकर मेरा पल्ला छोड़ देगी। इसलिए इस कामना के फंदे में से छुड़ाने के लिए मेरी बांह पकड़, मुझे अपनी शरण में ले।

(६)

प्रभो ! तीन लोक के समस्त पदार्थों में मुझे तू ही प्यारा है। तू मुझे प्राणों के समान प्यारा है। यही क्यों, तू मेरे लिए प्राणों का भी प्राण है। इसलिए प्राणों से भी अधिक प्यारा है।

(७)

भगवन् ! यदि तेरा तेज मेरे हृदय पर प्रतिबिम्बित हो जाय तो मैं अनन्त शक्तिशाली बन सकता हूं—मेरी समस्त सांसारिक वासना शांत हो सकती है। अतः प्रभो। अपने अनन्त तेज की कुछ किरणें इधर फैंक दो, जिससे मोह-ममता के तिमिर से आवृत मेरा अन्तःकरण उद्भासित हो जाय।

यही कतिपय उद्धरण चरितनायक की मनोभावना समझने में पर्याप्त सहायता दे सकते हैं। इन्हीं पवित्रतम आकांक्षाओं से प्रेरित होकर आपने प्रभु की गोद में बैठना उचित समझा।

द्वितीय अध्याय

मुनि जीवन

परीषहों पर विजय प्राप्त करना मुनिधर्म का खास अंग है। मुनियों को सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास आदि के परीषह प्रायः आते ही रहते हैं। उनसे घबरा उठने वाला व्यक्ति मुनिधर्म का पालन नहीं कर सकता।

मुनि जवाहरलालजी को दीक्षा लेते ही परिषहों का सामना करना पड़ा। दीक्षा के दिन उनकी तबीयत अच्छी न थी। नवीन साधुजीवन की गुरुता के विचार से मस्तिष्क में भारीपन आ गया हो, यह भी संभव है।

प्रथम परीक्षा

दीक्षित लेने के दिन ही अन्य साधुओं के साथ विहार करके आप गांव के बाहर महादेव के मन्दिर में ठहरे। सर्दी ठीक-ठीक परिमाण में आरम्भ हो चुकी थी। मन्दिर चारों ओर से खुला था। नदी नजदीक थी। ठंडी हवा के झोंके शरीर में कंपकंपी पैदा कर रहे थे। दीक्षा लिए अभी एक दिन भी नहीं हुआ था। आत्मा बलवान थी सही, मगर शरीर में सुकुमारता थी। शीतल वायु के थपेड़ों से आपका शरीर कांपने लगा। फिर भी उच्च उद्देश्य से दीक्षा धारण करने वाले बालक मुनिश्री जवाहरलालजी घबराये नहीं। सोचने लगे—'संयमी जीवन की यह पहली परीक्षा है। भविष्य किसने देखा है? कौन जाने अभी कितने और कैसे-कैसे कष्ट झेलने पड़ेंगे? ऐसे ही अवसर तो आत्मा को दृढ़ बनाते हैं। मुझे हर्षपूर्वक यह सब सहना चाहिए।'

नव-दीक्षित जानकर साथी मुनियों ने अपने वस्त्र उन्हें ओढ़ा दिये। मगर आपने अपने कष्ट की शिकायत किसी से नहीं की। धीरे-धीरे आप भी अन्य मुनियों की भांति सहिष्णु बन गये और फिर सर्दी-गर्मी की आपको उतनी चिन्ता नहीं रही। इस प्रकार आप पहली परीक्षा में उत्तीर्ण हुए।

अध्ययन और विहार

मुनिश्री जवाहरलालजी ने अपने गुरु श्री मगनलालजी महाराज से शास्त्रों का अध्ययन आरम्भ किया। आपकी बुद्धि अत्यन्त तीक्ष्ण थी अतः आप शास्त्रीय विषय की गहराई में बहुत शीघ्र प्रवेश कर जाते थे। स्मरण-शक्ति की तीव्रता के कारण आपने शास्त्रों की बहुत-सी गाथाएं और पाठ कण्ठस्थ कर लिये। बुद्धि तीक्ष्ण और स्मरण-शक्ति तीव्र थी ही, साथ में एकनिष्ठा और विनयशीलता का भी सम्मिश्रण था। इन सब कारणों से आपका ज्ञान निरंतर बढ़ने लगा। सीखते समय प्रत्येक बात आप बड़े ध्यान से सुनते, उस पर विचार करते और हृदयंगम कर लेते। बड़े

साधुओं की सेवा करने में सदैव तत्पर रहते। आपकी बुद्धि, एकाग्रता, और सेवा-शीलता आदि देखकर सभी साधु आप पर प्रसन्न रहते थे। मुनिश्री मगनलालजी महाराज तो यह सब गुण देखकर समझ चुके थे कि आप भविष्य में, समाज में सूर्य की भांति चमकेंगे। अतः वे बड़ी लगन के साथ आपको पढ़ाते और संयम में उत्तरोत्तर वृद्धि के लिए उपदेश देते रहते। गुरु के प्रति आपकी श्रद्धा-भक्ति भी उत्तरोत्तर बढ़ती जाती थी।

मुनिश्री लींबड़ी से विहार करके दाहोद, झाबुआ, रंभापुर और थांदला होते हुए पटलावद पहुंचे।

गुरु-वियोग और चित्त-विक्षेप

पटलावद पहुंचने पर मुनिश्री मगनलालजी महाराज बीमार हो गए। उनकी बीमारी उत्तरोत्तर बढ़ती ही चली गई। अन्त में माघ कृष्णा द्वितीया को, आपकी दीक्षा के डेढ़ मास पश्चात् ही उनका स्वर्गवास हो गया।

लोकोत्तर पुरुषों का चित्त एक ओर वज्र से भी कठोर होता है तो दूसरी ओर फूल से भी कोमल होता है। जो महापुरुष अपनी विपदाओं को कठोरतापूर्वक सहन करता चला जाता है, वही दूसरों का साधारण-सा कष्ट देखकर मोम की तरह पिघल जाता है। नव दीक्षित मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज की कठोरता और कोमलता भी इसी किस्म की थी। गुरुजी के स्वर्गवास से आपके हृदय को तीव्र आघात पहुंचा। माता, पिता और मामाजी की मृत्यु पर जिसने अनुपम धैर्य का परिचय दिया था वह गुरु की मृत्यु से विकल हो गया! डेढ़ महीने में ही श्री मगनलालजी महाराज ने इन्हें अपनी ओर इतना आकृष्ट कर लिया था कि उनके वियोग का धक्का सहन करना कठिन हो गया। गुरु-विरह के कारण वह दिन-रात शोक में डूबे रहते। किसी काम में मन न लगता। प्रायः एकान्त में बैठकर कुछ सोचते रहते। इस चिन्ता का प्रभाव उनके मस्तिष्क पर बहुत बुरा पड़ा।

निरन्तर चिन्तित रहने से आप विक्षिप्त-से हो गये। दिन-रात गुरुजी का ध्यान बना रहता। कभी सोचते—गुरु के अभाव में मोक्षमार्ग का उपदेश कौन देगा? शास्त्र कौन पढ़ाएगा? संयम में दृढ़ कौन करेगा? कभी इच्छा होती—अब संथारा करके जीवन का अंत कर देना ही उचित है। गुरु के बिना जीवन व्यर्थ है। कभी-कभी अकेले जंगल में जाकर तपस्या करने की सोचते। उन्हें किसी पर विश्वास नहीं होता था। अपने साथी साधुओं और दर्शनार्थ आने वाले श्रावकों को भय-दृष्टि से देखा करते। इतना सब होने पर भी इस बात का बड़ा ध्यान रहता कि कहीं संयम में कोई दोष न लग जाय।

मुनि की कठोर-चर्या का पालन करते हुए इस अवस्था में इन्हें संभालना बहुत कठिन कार्य था। फिर भी तपस्वी मुनिश्री मोतीलालजी महाराज ने हिम्मत न छोड़ी। वे आपको अच्छी तरह संभालते, सान्त्वना देते और हर समय आपका ध्यान रखते। चित्त-विक्षेप का समाचार सुनकर बाबाजी आपको लेने आये। किन्तु मुनिश्री मोतीलालजी महाराज ने उन्हें समझा दिया—अशुभ कर्मों के उदय से ऐसा हो रहा है। उदय में आनेवाले कर्म भोगने ही पड़ते हैं। थांदला ले जाने से ही कर्म नहीं छूट जायंगे। अतएव इन्हें यहीं रहने दो। हम इन्हें पूरी तरह संभालने का यत्न कर रहे हैं और करेंगे।

साधुओं की सेवा करने में सदैव तत्पर रहते। आपकी बुद्धि, एकाग्रता, और सेवा-शीलता आदि देखकर सभी साधु आप पर प्रसन्न रहते थे। मुनिश्री मगनलालजी महाराज तो यह सब गुण देखकर समझ चुके थे कि आप भविष्य में, समाज में सूर्य की भांति चमकेंगे। अतः वे बड़ी लगन के साथ आपको पढ़ाते और संयम में उत्तरोत्तर वृद्धि के लिए उपदेश देते रहते। गुरु के प्रति आपकी श्रद्धा-भक्ति भी उत्तरोत्तर बढ़ती जाती थी।

मुनिश्री लींबड़ी से विहार करके दाहोद, झाबुआ, रंभापुर और थांदला होते हुए पटलावद पहुंचे।

गुरु-वियोग और चित्त-विक्षेप

पटलावद पहुंचने पर मुनिश्री मगनलालजी महाराज बीमार हो गए। उनकी बीमारी उत्तरोत्तर बढ़ती ही चली गई। अन्त में माघ कृष्णा द्वितीया को, आपकी दीक्षा के डेढ़ मास पश्चात् ही उनका स्वर्गवास हो गया।

लोकोत्तर पुरुषों का चित्त एक ओर वज्र से भी कठोर होता है तो दूसरी ओर फूल से भी कोमल होता है। जो महापुरुष अपनी विपदाओं को कठोरतापूर्वक सहन करता चला जाता है, वही दूसरों का साधारण-सा कष्ट देखकर मोम की तरह पिघल जाता है। नव दीक्षित मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज की कठोरता और कोमलता भी इसी किस्म की थी। गुरुजी के स्वर्गवास से आपके हृदय को तीव्र आघात पहुंचा। माता, पिता और मामाजी की मृत्यु पर जिसने अनुपम धैर्य का परिचय दिया था वह गुरु की मृत्यु से विकल हो गया! डेढ़ महीने में ही श्री मगनलालजी महाराज ने इन्हें अपनी ओर इतना आकृष्ट कर लिया था कि उनके वियोग का धक्का सहन करना कठिन हो गया। गुरु-विरह के कारण वह दिन-रात शोक में डूबे रहते। किसी काम में मन न लगता। प्रायः एकान्त में बैठकर कुछ सोचते रहते। इस चिन्ता का प्रभाव उनके मस्तिष्क पर बहुत बुरा पड़ा।

निरन्तर चिन्तित रहने से आप विक्षिप्त-से हो गये। दिन-रात गुरुजी का ध्यान बना रहता। कभी सोचते—गुरु के अभाव में मोक्षमार्ग का उपदेश कौन देगा? शास्त्र कौन पढ़ाएगा? संयम में दृढ़ कौन करेगा? कभी इच्छा होती—अब संथारा करके जीवन का अंत कर देना ही उचित है। गुरु के बिना जीवन व्यर्थ है। कभी-कभी अकेले जंगल में जाकर तपस्या करने की सोचते। उन्हें किसी पर विश्वास नहीं होता था। अपने साथी साधुओं और दर्शनार्थ आने वाले श्रावकों को भय-दृष्टि से देखा करते। इतना सब होने पर भी इस बात का बड़ा ध्यान रहता कि कहीं संयम में कोई दोष न लग जाय।

मुनि की कठोर-चर्या का पालन करते हुए इस अवस्था में इन्हें संभालना बहुत कठिन कार्य था। फिर भी तपस्वी मुनिश्री मोतीलालजी महाराज ने हिम्मत न छोड़ी। वे आपको अच्छी तरह संभालते, सान्त्वना देते और हर समय आपका ध्यान रखते। चित्त-विक्षेप का समाचार सुनकर बाबाजी आपको लेने आये। किन्तु मुनिश्री मोतीलालजी महाराज ने उन्हें समझा दिया—अशुभ कर्मों के उदय से ऐसा हो रहा है। उदय में आनेवाले कर्म भोगने ही पड़ते हैं। थांदला ले जाने से ही कर्म नहीं छूट जायंगे। अतएव इन्हें यहीं रहने दो। हम इन्हें पूरी तरह संभालने का यत्न कर रहे हैं और करेंगे।

उन दिनों श्री जवाहरलालजी महाराज ने एक पद बना रखा था। उसे वे ऊंचे स्वर से पढ़ने लगते और पढ़ते-पढ़ते उसमें लीन हो जाते। वह पद यह था—

अरिहंत देव नेड़े
जीने तीन भुवन में कुण छेड़े ॥

अर्थात्—समस्त आंतरिक शत्रुओं को नष्ट कर डालने वाले—अरिहंत देव जिसके नजदीक मौजूद हैं—जिसकी अन्तरात्मा में विराजमान हैं—उसे तीन लोक में कौन छेड़ सकता है?

यह पद उस समय आपका रक्षा-मंत्र बन गया। यह पद बोलते-बोलते आप समस्त बातें भूल जाते। संसार की सुध-बुध न रहती। इससे उन्हें शान्ति मिलती। इस अवस्था में आपको जो अनुभव हुआ वह जीवन-व्यापी हो गया। आपने अपने प्रवचनों में भगवान् के नाम-स्मरण की महिमा बड़े ही ओजपूर्ण शब्दों में प्रकट की है। एक उद्धरण लीजिए—

[महापुरुषों के जीवन में नाम-स्मरण का स्थान बहुत ऊंचा रहा है। जिस समय वे सांसारिक उलझनों से ऊब जाते हैं, उनका चित्त अशान्त और उद्विग्न हो जाता है, उस समय भगवान् का नाम ही उन्हें सान्त्वना देता है। भयंकर विपत्तियों के उपस्थित होने पर भगवन्-नाम ही उन्हें धैर्य बंधाता है और किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाने पर मार्ग प्रदर्शन करता है। नाम-स्मरण अपूर्व शक्ति का स्रोत है। जब जब आत्मा निर्बल बनती है तो नाम-स्मरण उसमें नवीन शक्ति फूंक देता है। नाम-स्मरण में इतना बल, इतना रस और इतना प्रकाश कहां से आया? इस प्रश्न का उत्तर अनुभवगम्य है। वह युक्ति और शब्दों की पहुंच से परे है। फिर भी इतना कहा जा सकता है कि आत्मा में अनन्त शक्तियां विद्यमान हैं। अभी वे सभी अविकसित अवस्था में पड़ी हुई हैं। आत्मा में अनन्त ज्ञान है, अनन्त सुख है, अनन्त वीर्य है। जिस समय मनुष्य 'सिद्धोऽहं शुद्धोऽहं अनन्त ज्ञानादिगुणसमृद्धोऽहम्' का तत्त्व समझकर, भगवान् में तन्मयता स्थापित करके उनके नाम का स्मरण करने लगता है उस समय उसे अपने में छिपी हुई शक्तियों का आभास होने लगता है। यह आभास ज्यों-ज्यों निर्मल होता जाता है त्यों-त्यों परम आनन्द का अनुभव बढ़ता जाता है। भगवान् का स्मरण आत्मविकास को आमंत्रण देता है। नाम-स्मरण आत्मिक शक्तियों का उद्‌बोधन है; क्योंकि पूर्ण विकसित आत्मा ही भगवान् है।]

जीवन के प्रभात से लेकर जीवन की संध्या तक मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज में नाम-स्मरण की लगन वृद्धिंगत होती रही है। बड़े सवेरे उठकर ईश्वर का ध्यान करना आपका नित्य-कर्म था। दैनिक प्रवचन प्रारम्भ करने से पहले आप जिस श्रद्धा, भक्ति और तन्मयता से प्रार्थना किया करते थे, उसे देखने वाले ही जान सकते हैं। उस समय आप भक्ति-रस में डूब जाते थे। उस समय की आपकी मुद्रा आज भी दर्शकों के सामने सजीव हो उठती है। प्रार्थना करते-करते आप सूरदास का 'निर्बल के बल राम' वाला प्रसिद्ध भजन गाया करते। उस समय ऐसा मालूम होता कि आप अपना सारा बल, सारा ज्ञान, सारा सुख, ईश्वर के चरणों में समर्पित कर चुके हैं। स्वयं निर्बल हो गए। अपना अस्तित्व मिटा दिया। ईश्वर के साथ अभेद होते ही ईश्वरीय बल आत्मा में आ गया। ईश्वर के अस्तित्व में लीन हो गये।

आत्मा में परमात्मा का बल आ जाने पर असफलता दूर हो जाती है। उस समय ईश्वरीय शक्ति मनोवांछित कार्य पूरा कर देती है। इसी समय भक्त लोग भौतिक शक्तियों का विश्वास

छोड़कर आध्यात्मिक शक्तियों का आह्वान करते हैं। उस समय अज्ञान का परदा हटते ही उ: जो आनन्द होता है, जो शक्ति प्राप्त होती है तथा ज्ञान की जो ज्योति प्रकट होती है, उस सामने संसार की समस्त सम्पत्तियां तुच्छ हैं, नगण्य हैं, नाचीज हैं। इसी अलौकिक आनन्द व अनुभव करने के लिए अनेक मनुष्य राज-वैभव को ठुकराकर अकिंचनता धारण करते हैं। हमा चरितनायक में भी उस आनन्द की दिव्य धारा का स्रोत बहता था। यह बात उनकी भावमर मुद्रा से, उनकी मस्ती से और उनकी भक्तिमयी वाणी से सहज ही प्रकट हो आती थी।

पटलावद से विहार करके मुनिश्री अनेक गांवों में होते हुए राजगढ़ पधारे। वहां एक बार आपने जंगल में जाकर तपस्या करने का निश्चय कर लिया, किन्तु मुनिश्री मोतीलालजी महाराज के समझाने से मान गए थे। राजगढ़ से आप धार पधार गये। विहार में आप आत्म-चिंतन में लीन रहते थे। बड़े साधु खड़े होने को कहते तो खड़े हो जाते, चलने को कहते तो चल पड़ते। न आपको शास्त्रों का बोझ मालूम होता, न रास्ते की थकावट ही मालूम होती। कभी-कभी आप जंगल में चले जाने को उद्यत होते मगर उस अवस्था में भी संयम का इतना भान था कि अगर कोई मुनि आपका ओघा ले लेता तो वहीं पर खड़े रह जाते। बिना ओघा एक कदम भी आगे न बढ़ाते। संयम के अंतरंग तक उतरे हुए संस्कारों का ही यह प्रभाव था।

धार के प्रसिद्ध श्रावक पन्नालालजी ने वैद्यों का आयुर्वेद विधि से इलाज करवाया मगर कोई इलाज कारगर न हुआ। अन्त में वे एक डाक्टर को लाये। सिर के पिछले भाग में प्लास्टर लगाने के लिए बाल हटाना आवश्यक था। बाल हटाने के लिए नाई बुलाया गया। मगर नाई से बाल कटवाना साधु के आचार से विरुद्ध है, यह बात उस समय भी आपके ध्यान में थी। उन्होंने नाई से बाल नहीं कटवाये। मगर डाक्टर का कहना था कि बाल साफ होने चाहिए। अतएव उन्होंने अपने ही हाथ से लोच करना आरंभ कर दिया और बिना किसी कठिनाई के सभी बाल उखाड़ डाले। आपके सिर पर उस समय बहुत घने घुंघराले बाल थे। दीक्षा के बाद लोंच करने का यह पहला ही अवसर था। फिर भी बड़े धैर्य के साथ, बिना किसी हिचकिचाहट के उन्होंने लोंच कर डाला। संयम-पालन की उनकी लालसा बहुत गहरी और प्रबल थी। संयम के लिए बड़े-से-बड़ा कष्ट उनके लिए नगण्य था। उनकी यह स्थिरता और संयम सम्बन्धी तीव्र श्रद्धा देखकर वहां उपस्थित जनता चकित रह गई। उस समय मुनिश्री के पास डाक्टर एम० भाऊ और डाक्टर गोपालभाऊ उपस्थित थे।

केश-लुंचन हो जाने के पश्चात् डाक्टर ने नियत स्थान पर प्लास्टर लगाया। उस समय श्री जवाहरलालजी महाराज स्थिर और शांत बैठे रहे। सिर में से लगभग तीन सेर पानी निकला। वे बेहोश हो गए। धीरे-धीरे होश आ गया, मगर अशान्ति इतनी बढ़ गई कि एक भी शब्द बोलने की हिम्मत न रही। धीरे-धीरे आपकी कमजोरी हट गई और आप स्वस्थ हो गए। मानसिक अवस्था भी ठीक हो गई। मानसिक और शारीरिक अस्वस्थता दूर होते देखकर मुनियों और श्रावकों को अत्यन्त प्रसन्नता हुई।

मुनिश्री के इस अस्वास्थ्य का कारण क्या था, यह आपने स्वयं ही बाद में प्रकट किया है। राजकोट के एक प्रवचन में आपने कहा था—'आज बालकों के मस्तिष्क में भय के संस्कार बहुत डाले जाते हैं। इससे कितनी हानि होती है, यह बात मैं जानता हूं। मेरी माता मुझे दो

वर्ष का छोड़कर चली गई थीं और मेरे पिता पांच वर्ष का छोड़कर चले गये थे। मेरा पालन-पोषण मेरे मामा के घर हुआ था। वहां से थोड़ी दूर एक मकान था, जो बहुत नीचा होने के कारण अंधकारमय रहता था। स्त्रियां कहा करतीं—इस मकान में भूत रहता है। मैं यह बात सुनकर डरता था और इस कारण रात के समय दुकान से अपने मामा के मकान जाना होता तो उस मकान के पास से न जाकर लम्बा चक्कर काटकर दूसरे रास्ते से जाता। मेरे मस्तिष्क में भूत के जो संस्कार पड़ गये थे, वे दीक्षा लेने के बाद भी समूल नष्ट नहीं हुए। दीक्षा लेने के बाद मेरे दीक्षा-गुरु का डेढ़ मास बाद ही स्वर्गवास हो गया। उस समय मैं लगभग पांच महीना विक्षिप्त-सा रहा था। मेरे मस्तक में भूत के जो संस्कार पड़े थे उनके कारण उस समय मुझे ऐसा लगता था कि कोई प्रत्यक्ष ही मुझ पर जंत्र-मंत्र कर रहा है। मगर जब मैं स्वस्थ हुआ तो मालूम हुआ कि वास्तव में वह सब मेरा भ्रम था, और कुछ भी नहीं।'

महाभाग मोतीलालजी महाराज

मनुष्य-समाज में आज यदि संस्कारिता है, नैतिकता है, धार्मिकता है, तो उसका सारा श्रेय विभिन्न युगों में उत्पन्न होने वाले उन महापुरुषों को है, जिन्होंने मनुष्य जाति के उत्थान के लिए अपना जीवन अर्पित किया है। अपने जीवन-व्यवहार द्वारा, अपने उपदेशों द्वारा, साहित्य द्वारा जिन्होंने मनुष्य के समक्ष महान् आदर्श उपस्थित किया है, मानवीय भावनाओं का धरातल ऊंचा उठाया है और मनुष्य जाति को जाग्रत एवं शिक्षित बनाकर संसार का महान् उपकार किया है, उन महापुरुषों का जीवन-इतिहास ही सभ्यता का इतिहास है। संसार अनादि काल से ऐसे महापुरुषों की पूजा करता चला आया है।

महापुरुषों ने मानव-संस्कृति का निर्माण किया है, मगर महापुरुष सीधे आसमान से उतरकर नहीं आते। उनका निर्माण भी इसी संसार में होता है। परिस्थितियों के अतिरिक्त अनेक संबंधित जन भी ऐसे होते हैं जो महापुरुषों के निर्माण में प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप में सहायक होते हैं। अगर मनुष्य-समाज महापुरुषों का ऋणी है तो उन विशिष्ट व्यक्तियों का भी ऋणी है जिन्होंने किसी को महापुरुष के दर्जे पर पहुंचाने के लिए कोई कसर नहीं रखी। महाभाग मुनिश्री मोतीलालजी महाराज ऐसी ही विभूतियों में से थे। पं० मोतीलालजी नेहरू की छत्रच्छाया न मिलती तो पं० जवाहरलालजी नेहरू इस रूप में हमें प्राप्त होते या नहीं, कौन कह सकता है? इसी प्रकार मुनिश्री मोतीलालजी महाराज की छत्रच्छाया के अभाव में मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज का इस रूप में प्राप्त होना भी संदिग्ध ही था। पं० मोतीलालजी नेहरू की सार-संभाल के फल-स्वरूप पं० जवाहरलालजी राष्ट्रीय-क्षेत्र में तेजस्वी सूर्य की भांति चमक उठे। इसी प्रकार मुनिश्री मोतीलालजी महाराज की निरन्तर की सार-संभाल से मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज धार्मिक क्षेत्र में सूर्य की भांति चमके। मुनिश्री जवाहरलालजी और पं० जवाहरलाल नेहरू में कितना सादृश है, यह बताने का यहां अवकाश नहीं है। राणपुर (काठियावाड़) के प्रसिद्ध पत्र 'फूलछाब' के सम्पादक और अग्रगण्य गुजराती लेखक श्री मेघाणी ने आपके प्रवचन-संग्रह की समालोचना करते हुए लिखा है—'हिन्दुस्तान में जवाहरलाल एक नहीं, दो हैं। एक राष्ट्रनायक है; दूसरा धर्म-नायक है।' हम इस वाक्य में इतना और जोड़ देना चाहते हैं कि भारत में जवाहरलालजी के संरक्षक मोतीलालजी भी दो थे—एक पं० मोतीलाल नेहरू और दूसरे तपस्वी मुनिश्री

मोतीलालजी महाराज। हम यहां विस्तृत तुलना में नहीं पड़ना चाहते। किंतु मुनिश्री मोतीलालजी महाराज के संबंध में कतिपय बातों का उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता है।

मुनिश्री जवाहरलालजी का निर्माण करने में श्री मोतीलालजी महाराज का बहुत बड़ा हाथ रहा है। उन्होंने बड़ी-बड़ी मुसीबतें झेलकर, तरह-तरह की कठिनाइयां उठाकर मुनिश्री का संरक्षण किया है। चित्त-विक्षेप की अवस्था में उन्होंने जिस लगन के साथ मुनिश्री की सेवा-सुश्रूषा की, उसकी उपमा मिलना भी सरल नहीं है। समाज जैसे मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज का ऋणी है, उसी प्रकार मोतीलालजी महाराज का भी है। आपके संस्मरण हमारे चरितनायक के संस्मरणों के साथ सदा-सर्वदा जीवित रहेंगे।

तपस्वी मुनिश्री मोतीलालजी महाराज का जन्म सिंगोली (मेवाड़) में हुआ था। आपके पिता का नाम उदयचंदजी कटारिया और माता का नाम विरदीबाई था। अठारह वर्ष की आयु में जीवन के उद्यान में नवयौवन के बसंत का आगमन होता है। संसार की कामना रूपी कोकिलाएं अपनी कुहुक से मनुष्य को मदोन्मत्त बना देती हैं। मन रूपी भ्रमर रस-लोलुप बनकर अधखिली कलियों के चरण चूमने को उद्यत रहता है। जीवन-उद्यान में सरसता और अनुराग का साम्राज्य व्याप्त हो जाता है,उस समय विरक्ति—भोगोंके प्रति वैराग्य-होना सहज बात नहीं है। प्रबल प्रकृति से युद्ध करके उसे पराजित किये बिना वैराग्य का रंग ऐसे समय नहीं चढ़ सकता। मुनिश्री मोतीलालजी ऐसे ही प्रकृति-विजयी थे। उन्होंने अठारह वर्ष की आयु में संसार का त्याग किया और मुनिश्री राजमलजी महाराज के निकट मुनिदीक्षा अंगीकार कर ली। यह समय जीवन का ही बसन्त नहीं था वरन् प्रकृति का वसंत भी था। वि० सं० १९३२ के माघ शुक्लपक्ष में (वसंत पंचमी के लगभग)आपकी दीक्षा हुई और वि०सं०१९८३,फाल्गुन कृष्णा एकादशी के दिन जलगांव में आपने स्वर्गारोहण किया।

आप उच्च-कोटि के तपस्वी साधु थे। आपकी तपस्या प्रायः चलती रहती थी। एक से अड़तालीस (सैंतालीस को छोड़कर) तक का थोक किया था और इसके अतिरिक्त मासखमण आदि अनेक तप किये थे।

आप जैसे उच्चकोटि के तपस्वी थे वैसे ही उत्कृष्ट सेवा-भावी भी थे। आपकी सेवापरायणता साधुओं के सामने एक आदर्श उपस्थित करती है। मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज का चित्त जब विक्षिप्त हो गया था तब बाबाजी उन्हें लेने आये, मगर आपने सेवा का भार अपने सिर ले लिया था और बाबाजी को उनकी समुचित सेवा होते देखकर संतोष भी हो गया था। अतः वे लौट गये। चित्त-विक्षेप जब कुछ अधिक बढ़ गया तब श्रावकों ने मुनिश्री मोतीलालजी महाराज से निवेदन किया—'आप अकेले हैं। मुनिश्री की सेवा करने में आपको बेहद कष्ट उठाना पड़ता है। अतः आप इन्हें हमें सौंप दीजिए, हम सेवा करेंगे और स्वस्थ होने पर आपकी सेवा में उपस्थित कर देंगे। श्रावकों की प्रार्थना के उत्तर में श्री मोतीलालजी महाराज ने कहा—'जब तक मेरे तन में प्राण हैं, तब तक इनकी सेवा करता रहूंगा।'

इन्हीं दिनों श्रीजवाहरलालजी महाराज एकबार नग्न होगए। मोतीलालजी महाराज ने उन्हें चोलपट्ट पहनाना चाहा। चोलपट्ट पहनाते समय उन्होंने आपके पेट में काट खाया। काटने से घाव हो गया। फिर भी धन्य मुनि मोतीलालजी महाराज! आप जरा भी हताश न हुए। आप अकेले

ही अपना घाव संभालते और जवाहरलालजी महाराज को भी संभालते । साधु-मर्यादा के अनुसार दैनिक कृत्य भी करते ।

गुरु-शिष्य की संकीर्ण मनोभावना के कारण, रतलाम में तीस साधु मौजूद रहते हुए भी मुनिश्री मोतीलालजी महाराज के समीप कोई साधु न आया। इस संकीर्णता को नष्ट करने के उद्देश्य से ही आगे चलकर महाराज श्री जवाहरलालजी ने आचार्य-पद प्राप्त होने पर यह नियम बनाया कि समस्त शिष्य एकही गुरु(आचार्य)के हों । धर्मक्षेत्र का यह साम्यवाद इस अवस्था के कटु अनुभवों का परिणाम था । कई कारणों से यह नियम स्थायी न रह सका और उसे परिवर्त्तित करना पड़ा । अस्तु ।

वास्तव में मुनिश्री मोतीलालजी महाराज की सेवा-परायणता के फलस्वरूप ही मुनिश्री की रक्षा हो सकी । आगे चलकर आपने सदैव मुनिश्री के साथ ही चातुर्मास किया । सिर्फ एक अंतिम चातुर्मास साथ-साथ न हो सका । अंतिम समय में मुनिश्री मोतीलालजी महाराज की भी खूब सेवा हुई । आपके सुशिष्य तत्कालीन मुनि और वर्त्तमान् कालीन आचार्यश्री गणेशीलालजी महाराज आदि साधु सदैव आपकी सेवा में तत्पर रहे ।

हमारे चरितनायक मुनिश्री मोतीलालजी महाराज के असीम उपकारों को हृदयग्राही शब्दों में व्यक्त किया करते थे । मुनिश्री का स्मरण आते ही आपका हृदय गद्गद् हो उठता था । अंतिम समय तक मुनिश्री के प्रति वे कृतज्ञ रहे । आप अकसर कहा करते थे—'तपस्वी मुनिश्री मोतीलालजी महाराज के मेरे ऊपर असीम उपकार हैं ।'

प्रथम चातुर्मास

चातुर्मास का काल समीप आ गया था । विहार करके चातुर्मास के योग्य दूसरे स्थान पर पहुंचना कठिन था । अतएव धार में ही चातुर्मास करने का निश्चय हुआ । मुनिश्री में अब कुछ शक्ति आ गई थी । मस्तिष्क भी स्वस्थ और शान्त था । अतएव आपने अध्ययन आरम्भ कर दिया । शास्त्रों का पाठ कंठस्थ करने लगे । मगर आपका उर्वर मस्तिष्क इतने से ही संतुष्ट न हुआ । वह कोई ऐसा क्षेत्र खोज रहा था जिसमें कल्पना-शक्ति को पूरा अवकाश हो और साथ ही गम्भीर विचार की भी आवश्यकता हो ।

वर्त्तमान धार प्राचीन काल की धारा नगरी है, जिसमें राजा भोज जैसे राज कवि हुए हैं । भोज के समय में वहां सरस्वती का वास था । साधारण श्रेणी के लोग भी सुन्दर-से-सुन्दर कविता करते थे । ऐसे क्षेत्र में पहुंचकर मुनिश्री का कविताकला की ओर आकृष्ट होना स्वाभाविक था । आप कविता-रचना की ओर आकृष्ट हुए । उस समय आपने जम्बूस्वामी तथा अन्य महापुरुषों की स्तुति में कई कविताएं रचीं । इसी में आपको आनन्द प्राप्त होने लगा । नीतिकार का कथन है—

काव्य-शास्त्र विनोदेन कालो गच्छति धीमताम् ।

अर्थात्-बुद्धिमान् पुरुष काव्य-शास्त्र या काव्य और शास्त्र के विनोद में ही अपना समय व्यतीत करते हैं ।

हमारे चरितनायक पर यह उक्ति पूरी तरह चरितार्थ होती थी । उधर आप धर्म-शास्त्र का अध्ययन करते रहते थे और इधर भाषा-काव्य का निर्माण और आस्वादन भी करते थे । अल्प-काल में ही आप सुन्दर रचनाएं करने में सफल हुए ।

काव्य-शास्त्र के अनेक आचार्य कविता के लिए शक्ति, निपुणता, अभ्यास, लौकिक और शास्त्रीय बातों का निरीक्षण आदि की आवश्यकता बतलाते हैं। मगर किसी-किसी आचार्य के मत से प्रतिभा ही काव्य-रचना का प्रधान साधन है। मुनिश्री में उस समय प्रतिभा ही सबसे बड़ी पूंजी थी। उसी के आधार पर आप मधुर और सरस कविता करने में समर्थ हो सके।

मुनिश्री में प्रतिमा का वैभव जन्म जात था। इस प्रतिभा के आधार पर ही आप उस समय भी तत्काल कविता रच डालते थे। कभी-कभी व्याख्यान में बैठे-बैठे ही कविता रच डालते और वहीं श्रोताओं को सुनाकर आनन्द-विभोर कर देते थे। आपकी समस्त रचनाएं प्रायः भक्ति-रस-मयी हैं। किन्तु बीच-बीच में अन्यान्य रसों का भी उनमें बड़ा ही सुन्दर सन्निवेश है। पुस्तकीय अध्ययन अधिक न होने पर भी प्रकृति की पाठशाला में आपने गम्भीर अध्ययन किया था।

वास्तव में देखा जाय तो कविता का सम्बन्ध बाह्य वस्तुओं के साथ उतना नहीं है जितना कवि के हृदय को अनुभूति के साथ। हृदय की अनुभूति बढ़कर जब संगीतमय होकर बाहर निकलने लगती है तो उसका नाम कविता हो जाता है। मुनिश्री जवाहरलालजी में अनुभूति की प्रबलता थी। महापुरुषों में इसका होना आवश्यक भी है। कवि, धर्माचार्य, राष्ट्र-नेता, समाज-सुधारक. दार्शनिक, साहित्यकार आदि सभी में यही अनुभूति काम करती है और भिन्न-भिन्न रूप धारण करके प्रकट होती है। कवि में यह कविता बन जाती है, धर्माचार्य में संयम, त्याग और तपस्या का रूप ग्रहण करती है, राष्ट्र-नेता में वाणी तथा बलिदान के रूप में प्रकट होती है। दार्शनिक में वह गंभीरता का रूप धारण करती है। और साहित्यकार में कला के उद्गम का स्रोत बन जाती है। मगर हमारे चरितनायक में वह कविता संयम, वाणी आदि अनेक रूपों में प्रकट हुई है। उनके प्रवचन तीव्र अनुभूति के ज्वलंत प्रमाण हैं।

उग्र विहार

जीवन-निर्माण में यात्रा का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह यात्रा शिक्षा का प्रधान अंग मानी गई है। केवल लम्बी-लम्बी और साहस-पूर्ण यात्राओं के कारण ही बहुत-से व्यक्तियों का नाम इतिहास में अमर है। उनकी यात्राओं का वर्णन साहित्य की अमूल्य सम्पत्ति है।

भारतीय संस्कृति में यात्रा को आध्यात्मिक पवित्रता दी गई है। उसमें भी श्रमणसंस्कृति में इसे और भी अधिक महत्व प्राप्त है। उग्र विहारी होना श्रमण का कर्त्तव्य बतलाया गया है। चातुर्मास के अतिरिक्त किसी भी स्थान पर एक मास से अधिक ठहरना साधु के लिए निषिद्ध है। विशेषावश्यक भाष्य में लिखा है कि जो साधु भविष्य में आचार्य बनने वाला हो उसे भिन्न-भिन्न प्रान्तों में भ्रमण करना चाहिए।

यात्रा का सबसे बड़ा लाभ आध्यात्मिक विकास है। एक स्थान से दूसरे स्थान तक पैदल भ्रमण करने में मार्ग की अनेक प्रकार की परिस्थितियां सामने आती हैं। कहीं पहाड़ आते हैं, कहीं कल-कल करती हुई नदियां प्रवाहित होती हैं। कहीं हरे-भरे खेत और कहीं बीहड़ जंगल। कहीं सघन वृक्षावली और कहीं विशाल एवं रूखा रेगिस्तान। कहीं श्रद्धा-भक्ति के भार से झुके हुए भद्र ग्रामीण स्वागत के लिए उद्यत मिलते हैं तो कहीं क्रूरकर्मा डाकू लूटने के लिए तैयार होते हैं। कहीं सिंह, व्याघ्र आदि हिंसक प्राणियों का सामना करना पड़ता है तो कहीं क्रीड़ा करते हुए भोले मृग-शिशु दृष्टिगोचर होते हैं। यह सब देखने से प्रकृति का ज्ञान होता है और समभाव

रखने का अभ्यास बढ़ता है। हमारे चरितनायक पैदल भ्रमण करते हुए प्रकृति का बड़ी बारीक नजर से अवलोकन करते थे और उससे मिलने वाली शिक्षा का विचार किया करते थे। आपका यह कथन कि 'प्रकृति की पाठशाला में से जो संस्कारी ज्ञान मिलता है वह कालेज या हाईस्कूल में मिलना कठिन है।' आपके प्रकृति निरीक्षण का परिणाम था। एक झरने का निरीक्षण करके आपकी कल्पना कहां तक दौड़ती है, यह जानने योग्य है। आप कहते हैं:—

"जंगल में झर्-झर् ध्वनि करके बहते झरने को देखकर महापुरुष क्या विचार करते हैं? वे विचारते हैं—जब मैं इस झरने के पास नहीं आया था तब भी झरना झर्-झर् आवाज कर रहा था। अब मैं इसके पास आया हूँ तब भी यह झर्-झर् आवाज कर रहा है। जब मैं यहां से चला जाऊंगा तब भी इसकी यह ध्वनि बंद न होगी। चाहे कोई राजा आवे या रंक आवे, कोई इसकी प्रशंसा करे, या निन्दा करे मगर झरना सदैव एक ही रूप में अपनी आवाज जारी रखता है—न उसे कम करता है न ज्यादा। वह अपनी आवाज में तनिक भी परिवर्त्तन नहीं करता। इस प्रकार जैसे यह झरना अपना धर्म नहीं बदलता वैसे ही अगर मैं भी अपने धर्म को न बदलूं तो मेरा जीवन सार्थक हो जाय। इस झरने में राग-द्वेष नहीं है। जिस पुरुष में झरने का यह गुण विद्यमान है वह वास्तव में महापुरुष है।

इसके अतिरिक्त झरने में एक धारा से बहने का भी गुण है। यह जिस धारा से बह रहा है उसी धारा से बहता रहता है। मगर जब हम अपने जीवन की धारा की ओर दृष्टिपात करते हैं तो देखते हैं कि हमारे जीवन की धारा थोड़ी-थोड़ी देर में पलटती रहती है। हमारे जीवन की एक निश्चित धारा ही नहीं है। धन्य है यह निर्झर जो निरन्तर एक ही धारा से बहता रहता है।

झरने में तीसरा गुण भी है, जो खास तौर से हमारे लिए उपादेय है। यह झरना अपना समस्त जीवन (जल) किसी बड़ी नदी को सौंप देता है और उसके साथ होकर समुद्र में विलीन हो जाता है। वहां पहुंचकर वह अपना नाम भी शेष नहीं रहने देता। इसी प्रकार मैं भी किसी महापुरुष की संगति से परमात्मा में मिल जाऊं तो क्या कहना है!'

'जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि' इस कहावत के अनुसार एक प्राकृतिक पदार्थ को देखकर एक मनुष्य जो शिक्षा लेता है, दूसरा उससे विपरीत भी ले सकता है। हमारे चरितनायक ने झरना देखकर समताभाव, धर्म-दृढ़ता और परमात्मा में आत्मार्पण की जो महान् शिक्षा ली है वह उनके जीवन की पवित्रता का परिचय देता है। प्रकृति के विषय में आपके विचार बहुत गंभीर थे। आपके यह शब्द ध्यान देने योग्य हैं:—

'तुम समझे होओगे कि गूंगी प्रकृति तुम्हारी क्या सहायता कर सकती है? मगर यह तुम्हारा भ्रम है। प्रकृति मौन सहायता पहुंचाती रहती है।'

परन्तु प्रकृति के पर्यवेक्षण का अनुपम आनन्द पैदल चलने वालों को ही नसीब होता है। रेल, मोटर या वायुयान की छाती पर सवार होनेवाले और गोली की तरह सरसराहट करके एक जगह से दूसरी जगह जा पहुंचने वाले लोग इस आनंद से प्रायः वंचित ही रहते हैं। मार्ग के दृश्य उन्हें भागते हुए स्वप्न के समान दृष्टिगोचर होते हैं। उनके साथ हृदय का कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं होने पाता।

पैदल यात्रा करने वाला पुरुष रास्ते के ग्रामों और वन-खंडों के निवासियों के परिचय में

आता है। उनसे संभाषण करके प्रेम-संबंध स्थापित करता है! यहां तक कि जंगल के हिंसक प्राणियों के साथ भी मैत्री जोड़ लेता है। वह धीरे-धीरे विश्व-प्रेम की ओर अग्रसर होता है।

मार्ग की विषम परिस्थतियों का धैर्यपूर्वक सामना करने से आत्म-बल की वृद्धि होती है।

पैदल यात्रा से ज्ञान-वृद्धि में भी बहुत सहायता मिलती है। मानव-स्वभाव का परिचय प्राप्त करने के लिए पैदल भ्रमण अत्यन्त उपयोगी है। विभिन्न भाषाएं, बोलियां और संस्कृतियां समझने के लिए भी इसकी आवश्यकता है।

प्रचार की दृष्टि से तो पैदल भ्रमण अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ है। महावीर और बुद्ध जैसे संसार के महान् नेताओं ने भी पैदल भ्रमण करके ही जनता में धर्म-जागृति उत्पन्न की, क्रान्ति का मन्त्र फूंका और युग-युग से चली आई रूढ़ियों के स्थान पर वास्तविक कर्त्तव्य की स्थापना की थी। इस युग के आदर्श नेता महात्मा गांधीजी ने भी डांडी के लिए पैदल प्रयाण करके जनता में एक अद्भुत जोश पैदा कर दिया था।

चारित्र-रक्षा की दृष्टि से भी साधु के लिए एक नियत स्थान पर न टिककर पैदल भ्रमण करना आवश्यक है। अधिक समय तक एक स्थान पर टिके रहने से मोह की जागृति होने का भय रहता है। इस दृष्टि से जैन शास्त्रों में साधु के लिए नवकल्पी विहार आवश्यक माना गया है।

धार में चातुर्मास समाप्त करके मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज ने उग्र विहार आरम्भ किया। आपने अपने साधु-जीवन-काल में मारवाड़, मेवाड़, मालवा मध्यभारत, गुजरात, काठियावाड़ तथा महाराष्ट्र को पवित्र किया है। हरियाना, देहली और संयुक्त-प्रान्त में भी आपकी उपदेश-गंगा प्रवाहित हो चुकी है। जैन साधु की कठोर मर्यादाओं का पालन करते हुए इतना विस्तृत विहार करना आप सरीखे धर्मवीरों का ही काम है। इसी से आपकी साहसिकता और कष्ट-सहिष्णुता का अनुमान किया जा सकता है।

धार से आप इन्दौर पधारे। वहां एक मास ठहरकर विहार करते हुए उज्जैन पधारे। उज्जैन में आपने मालवी भाषा में थोड़ी देर तक व्याख्यान देना प्रारंभ कर दिया। इस प्रकार राजा भोज की राजधानी धारा नगरी में आपकी कविता-धारा का उद्गम हुआ और परम-प्रतापी महाराजा विक्रमादित्य की राजधानी उज्जयिनी में आपकी जयिनी व्याख्यान-धारा प्रवाहित हुई।

उज्जैन में पन्द्रह-बीस दिन ठहरकर आप बड़नगर, बदनावर होते हुए रतलाम पधार गए।

आचार्य का आशीर्वाद

रतलाम में उस समय श्री-श्री १००८ पूज्य श्री उदयसागरजी महाराज विराजमान थे। यह आचार्य श्री प. प्र. पूज्य श्री हुक्मीचन्द्रजी महाराज के सम्प्रदाय के तीसरे पद पर सुशोभित थे। मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज ने उनके दर्शन किये और अपने को भाग्यशाली समझा। पूज्यश्री ने उनकी कविताएं, व्याख्यान-शक्ति तथा प्रतिभा देखकर बहुत संतोष और हर्ष प्रकट किया। उन्होंने यह भी आशा प्रकट की कि मुनिश्री भविष्य में उत्कृष्ट साधु होंगे और जिन शासन को दिपायेंगे। पूज्यश्री की यह आशा मुनिश्री के लिए आशीर्वाद बन गई।

पूज्यश्री ने हमारे चरितनायक से जो सुनहरी आशा बांधी थी, वह आशा आशीर्वाद ही नहीं बनी वरन् मुनिश्री के लिए एक बड़ी जिम्मेवारी भी बन गई। मुनिश्री ने यह जिम्मेवारी पूरी

तरह अदा की और पूज्यश्री की आशा पूर्णतः सफल कर दिखाई। आप निरन्तर प्रगति करते गये और कुछ दिनों में चमक उठे।

पूज्यश्री ने आपको अपने पास रखने की इच्छा प्रकट की मगर कतिपय कारणों से ऐसा सुयोग न मिला। आपकी वक्तृत्व-शक्ति उस समय भी आरम्भ में ही इतनी विकसित हो चुकी थी कि पूज्यश्री भी उससे प्रभावित हो गये और शास्त्रज्ञ एवं स्थविर मुनियों की मौजूदगी में भी आपको ही व्याख्यान देने के लिए आमंत्रित करते।

कुछ दिन रतलाम ठहरकर आप जावरा पधारे। वहां मुनिश्री रत्नचन्द्रजी महाराज विराजमान थे। उनके दर्शन करके आप जावद पहुँचे। जावद में मुनिश्री (बड़े) चौथमलजी महाराज विराजते थे। श्रीजवाहरलालजी महाराज उनसे विभिन्न विषयों पर प्रश्नोत्तर किया करते और उन्हें अपनी कविताएं सुनाया करते। आपकी तर्क-शक्ति और प्रतिभा देखकर भावी आचार्य मुनिश्री चौथमलजी महाराज ने श्री घासीलालजी महाराज से कहा था—'यह बालक बड़ा प्रतिभाशाली और होनहार है। आपके पास इसे पढ़ाने की सुविधा नहीं है। अगर आपको सुविधा हो तो इसे रामपुरा (होल्कर स्टेट) ले जाइये। वहां शास्त्रों के अच्छे ज्ञाता श्रावक केशरीमलजी रहते हैं। उनसे इसे शास्त्रों का अभ्यास कराइये।'

द्वितीय चातुर्मास

मुनिश्री घासीरामजी महाराज को श्री चौथमलजी महाराज का परामर्श उचित प्रतीत हुआ। उन्होंने पांच ठाणों से रामपुरा की ओर विहार किया। उस समय आप निम्नलिखित पांच साधु थेः—

१—मुनिश्री घासीरामजी महाराज
२—मुनिश्री बदीचंदजी महाराज
३—मुनिश्री मोतीलालजी महाराज
४—मुनिश्री देवीलालजी महाराज
५—मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज

रामपुरा पहुँचकर श्री जवाहरलालजी महाराज ने शास्त्रज्ञ श्रावक श्रीकेसरीमलजी के पास आगमों का अध्ययन आरंभ कर दिया। संवत् १९५० का चातुर्मास वहीं किया। अल्पकाल में ही आपने दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, आचारांग, सूत्रकृतांग और प्रश्नव्याकरण सूत्र अर्थ सहित पढ़ लिये। इसी चातुर्मास में श्रावक-समाज में आपकी ख्याति फैल गई। समय-समय पर आप अपने व्याख्यानों से भी श्रावक-समाज को प्रभावित करने लगे।

तृतीय चातुर्मास

उस समय मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज को व्याख्यान देने का साधारण अच्छा अभ्यास हो गया था। आपकी वाणी में स्वाभाविक माधुर्य और ओज था। अब आप स्वतन्त्र रूप से व्याख्यान फरमाने लगे थे। आपका तीसरा चातुर्मास जावरा में हुआ। वहां आप ही मुख्य रूप से दैनिक व्याख्यान देते थे। व्याख्यानों में आपने नूतन शैली का भी समावेश करना आरंभ कर दिया था। फिर भी प्राचीन शैली के रूढ़ि-ग्रस्त वृद्ध और नवीन विचारों से ओत-प्रोत नव-युवक सभी आपके व्याख्यानों को समान रूप से पसंद करते थे।

जावरा में आपका उपदेश सुनने के लिए काफ़ी भीड़ इकट्ठी होजाती थी। जिस उपदेशक ने अभी तक प्रसिद्धि प्राप्त नहीं की थी, जिसने आगमों का तलस्पर्शी ज्ञान प्राप्त नहीं किया था और जो अभी तक उदीयमान उपदेशक ही था, उसने अपनी जन्म-जात प्रतिभा के प्रभाव से, अपनी आत्मा की गहराई से स्वयं प्रस्फुरित होने वाली वाणी से तथा अल्पकालीन प्रकृति-पर्यवेक्षण से जनता को अपनी ओर आकर्षित कर लिया। उनका उपदेश सुनने के लिए लोग उत्सुक होने लगे।

पूर्वभव के संस्कार कहिये या ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम एवं उपादेय नाम-कर्म का तीव्र उदय कहिए, हमारे चरितनायक का विकास दिन दूना रात चौगुना होता गया।

चातुर्मास में जावरा में अमृत-वर्षा करके आपने मुनिश्री मोतीलालजी महाराज के साथ थांदला की ओर प्रस्थान किया। मुनिश्री घासीरामजी महाराज वृद्धावस्था के कारण जावरा में ही विराजमान रहे।

थांदला आपकी जन्म भूमि थी। आप थांदला की धूल में खेले थे। वहां के अन्न-जल से बड़े हुए थे। वहां के लोगों ने आपको शिशु के रूप में, मातृ-हीन तथा पितृ-हीन बालक के रूप में और फिर वस्त्र-विक्रेता के रूप में देखा था। आज वही बालक नवीन रूप में थांदला में उपस्थित हुआ। उसे कठोर संयमी और प्रभावशाली उपदेशक के रूप में देखने की उत्कण्ठा किसे न हुई होगी? थांदला की जनता मुनिश्री को इस रूप में पाकर निहाल हो गई। उसने मुनिश्री के गौरव को अपना ही गौरव समझा। आपकी वाणी सुनकर लोगों को रोमांच हो आया। थांदला निवासी अपने आपको धन्य मानने लगे। कुछ दिन थांदला ठहरकर आपने वहांसे विहार कर दिया।

चौथा चातुर्मास

थांदला से विहार करके मुनिश्री जवाहरलामजी महाराज फिर जावरा पधारे। वहां से धार आदि अनेक ग्रामों और नगरों में उपदेश की धारा बहाते हुए फिर थांदला आये। वहां की जनता ने चातुर्मास समीप आता देख वहीं चातुर्मास करने का तीव्र आग्रह किया। अतएव सं० १९४२ का चातुर्मास आपने थांदला में ही किया। चातुर्मास में आपके उपदेशों से बहुत धर्म-जागृति हुई। जनता के जीवन में धर्म के संस्कार पड़े।

मातृभूमि के विषय में आपकी भावना बहुत उदार थी। आप भारतवर्ष को ही भारतीयों की जन्मभूमि कहा करते थे। प्रान्तीयता का संकीर्ण विचार आपको छू तक नहीं गया था। भारतवर्ष को लक्ष्य करके आपने कहा है—

'आपने इसी भारत-भूमि पर जन्म ग्रहण किया है। इसी भूमि पर शैशव-क्रीड़ा की है। इसी भूमि के प्रताप से आपके शरीर का निर्माण हुआ है। हंस ने मानसरोवर से जो कुछ प्राप्त किया है उससे कहीं बहुत अधिक आपने अपनी जन्मभूमि से पाया है। अतएव हंस पर मानसरोवर का जितना ऋण है, उसकी अपेक्षा बहुत अधिक ऋण आपके ऊपर अपनी जन्मभूमि का है। इस ऋण को आप किस प्रकार चुकायंगे?'

'जिस भूमि से तुम्हारा अपरिमित कल्याण हो रहा है, उसे तुच्छ मानकर स्वर्ग का गुण-गान करते रहना एक प्रकार का व्यामोह ही है।'

मातृभूमि के विषय में आपकी कल्पना अत्यन्त उदार थी। बड़े ही प्रभावजनक शब्दों

में आप मातृभूमि की महिमा का वर्णन किया करते थे। आपके यह विचार आपके साहित्य में जगह-जगह बिखरे पड़े हैं। जब आपके साहित्य का विषयवार संकलन होगा तो इस विषय का भाव-मय वर्णन बड़े-बड़े राष्ट्र-नेताओं को भी चकित कर देगा। अस्तु।

भारतवर्ष में भी थांदला विशेषरूप से आपका जन्म-स्थान था। उसका आप पर विशेष ऋण भी माना जा सकता है। यद्यपि आप साधु हो चुके थे और सांसारिक बंधनों को काट चुके थे तथापि मातृभूमि का ऋण अबभी आप अपने ऊपर चढ़ा समझते थे। साधुओं पर भी मातृभूमि का ऋण है। यह बात आप अपने प्रवचनों में कहा करते थे। मगर उस ऋण को चुकाने का गृहस्थों का तरीका और है और साधुओं का तरीका और। साधु वहां की जनता को धर्मोपदेश देकर, फैले हुए अन्याय और अधर्म को हटाकर, वहां का अज्ञान दूर करके उस ऋण से बरी हो जाते हैं। आप चार महीने तक धर्मोपदेश देकर और लोगों को धर्म-मार्ग में लगाकर उस ऋण से मुक्त होगये।

पांचवां चातुर्मास

थांदला का चातुर्मास समाप्त करके मुनिश्री घासीलालजी महाराज की सेवा का लाभ उठाने के पश्चात् आप रतलाम होते हुए तथा अन्य स्थानों में भ्रमण करते हुए शिवगढ़ पधारे। सं० १९५३ का चातुर्मास वहीं किया।

वहां भी आपके व्याख्यानों का खूब प्रभाव पड़ा। शिवगढ़ के ठाकुरसाहब के भाई जो बाद में स्वयं ठाकुर साहब हो गये, आपके उपदेश से खूब प्रभावित हुए। मुनिश्री के प्रति ठाकुर साहब की बड़ी श्रद्धा-भक्ति थी। आपने उपदेशों से प्रभावित होकर जीवन भर के लिए मद्य और मांस का परित्याग कर दिया। अन्य लोगों ने भी अनेक प्रकार के त्याग प्रत्याख्यान किये। बहुत से पशु मारे जाने से बचाये गए।

शिवगढ़ का चातुर्मास पूर्ण करके मुनिश्री रतलाम और फिर जावरा पधारे। उस समय जावरा में मुनिश्री बड़े जवाहरलालजी महाराज विराजमान थे। शास्त्रों के अध्ययन की भूख आप को बनी ही रहती थी। महाराज का सुयोग पाकर आपने फिर आगमों का अध्ययन आरम्भ कर दिया और कई आगमों की वाचना ली।

छठा चातुर्मास

जावरा से विहार करके आप सैलाना पधारे और सं० १९५४ का चातुर्मास सैलाना में ही व्यतीत किया।

अनुभव और अध्ययन की वृद्धि के साथ ही साथ आपकी वक्तृत्व-कला भी विकसित होती चली। सैलाना में राज्य के बड़े-बड़े पदाधिकारी आपके धार्मिक प्रवचनों से प्रभावित और आकृष्ट हुए। आपका तप, त्याग और संयम उत्कृष्ट श्रेणी का था ही, वाणी का भी विकास हो चुका था। यह सोने और सुगंध का संयोग था। इस संयोग से आपके प्रति जैन-जैनेतर जनता समान भाव से श्रद्धा प्रदर्शित करती थी।

आपके उपदेश के प्रभाव से लोगों ने अनेक प्रकार के दुर्व्यसनों का त्याग किया। बड़ी संख्या मे लोगों ने तपश्चर्या की। धर्म की अच्छी प्रभावना हुई।

चातुर्मास पूर्ण होने के अनन्तर मुनिश्री फिर जावरा पधारे। वहां तत्कालीन युवाचार्य मुनिश्री चौथमलजी महाराज विराजमान थे। कुछ दिन ठहरकर युवाचार्यजी के साथ आपने भी

रतलाम की ओर विहार किया। रतलाम में उस समयके महाप्रतापी आचार्य पूज्यश्री उदयसागरजी महाराज विराजमान थे। पूज्यश्री, युवाचार्यश्री तथा बहु-संख्यक मुनियों के एक साथ दर्शन करके आप आनन्द-विभोर हो गए। कहते हैं, उस समय रतलाम में करीब डेढ़ सौ संत और सतियां एकत्र थे।

उन्हीं दिनों, माघ शुक्ला दशमी को आचार्यश्री का स्वर्गवास होगया।

सातवां-आठवां चातुर्मास

रतलाम से विहार करके आप मुनिश्री मोतीलाल जी महाराज के साथ खाचरौद पधारे। खाचरौद पधारने पर आपने सोचा—यदि श्री घासीरामजी महाराज यहां विराजें तो उन्हें अधिक सहूलियत रहेगी। यह सोचकर आप फिर जावरा पधारे और श्री घासीलालजी महाराज को खाचरौद ले आये। संवत् १९५५ का चातुर्मास आपने खाचरौद में ही किया। खाचरौद में रहते हुए आपको संग्रहणी का रोग हो गया। उपचार करने पर भी कुछ लाभ नहीं हुआ।

जीवन-विकास के लिए एक अनिवार्य साधन है—जीवन का निरीक्षण। जो पुरुष अपने जीवन-व्यवहार को सावधानी के साथ जांचता रहता है, अपने मानसिक भावों को पहरेदार की तरह देखता रहता है, उसके जीवन का आश्चर्य-जनक विकास अल्प-काल में ही हो सकता है। अपने प्रति प्रामाणिक रहकर ऐसा करते रहने से आत्मा पापों से बचता है। यही कारण है कि साधु अपने संयम को रक्षा के उद्देश्य से प्रतिदिन आलोचना करते हैं। आलोचना में गुरु के समक्ष अपने सभी दोष प्रकाशित कर दिये जाते हैं और उन दोषों के निवारण लिए यथायोग्य प्रायश्चित्त अंगीकार किया जाता है। दैनिक कार्यक्रम में किसी भी कारण से व्यतिक्रम हो जाय तो उसका प्रायश्चित्त करने के लिए प्रायः प्रतिदिन कुछ उपवासों का दंड आता है। प्रतिदिन के उपवासों का दंड पूरा करने के लिए एक विशिष्ट विधि है। वह यह कि एक साथ किये गए दो उपवास (बेला), अलग-अलग समय में किये गए पांच उपवासों के बराबर होते हैं। तीन उपवास (तेला) करने से पच्चीस उपवासों का फल प्राप्त होता है। चार उपवास (चौला) सवा सौ उपवासों के बराबर होते हैं और पांच उपवास (पंचोला) छह सौ पच्चीस उपवासों के बराबर होते हैं। इस प्रकार उत्तरोत्तर पांच गुना फल एक-एक उपवास पर बढ़ता जाता है। उस तप के दूसरे दिन पौरसी का त्याग बढ़ाने से दुगुना लाभ होता है।

मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज के दैनिक कार्य-क्रम में हुए व्याघात के प्रायश्चित्त-स्वरूप कुछ उपवास चढ़ गये थे। बीमारी बढ़ती देखकर आपने विचार किया—जीवन का क्या भरोसा है? अगर इन उपवासों को उतारे बिना ही मेरी मृत्यु हो गई तो मुझ पर ऋण रह जायगा। अतएव पहले इन उपवासों को उतार लेना श्रेयस्कर है। शारीरिक रोगों की चिकित्सा करने से पहले आत्मा के रोग की ओर ध्यान देना आवश्यक है।

इस प्रकार मुनिश्री ने सभी उपवासों को उतारने के लिए लगातार छह उपवास कर लिये। इस तपस्या से वे ऋण-मुक्त ही नहीं हुए वरन् रोग-मुक्त भी हो गए।

इस आकस्मिक घटना ने उपवास का प्रत्यक्ष फल सामने प्रकट कर दिया। आपको अनशन की महत्ता का अनुभव हुआ। तत्पश्चात् आपने अपने उपदेशों में जहां-तहां अनशन तप के महत्त्व का प्रभावशाली और अनुभव-पूर्ण विवेचन किया है। वह विवेचन आपके इसी अनुभव का

परिणाम है, यह कहना असंगत न होगा। आपने फरमाया है—

'तप एक प्रकार की अग्नि है जिसमें समस्त अपवित्रता, सम्पूर्ण कल्मष एवं समग्र मलीनता भस्म हो जाती है। तपस्या की अग्नि में तप्त होकर आत्मा सुवर्ण की भांति तेज से विराजित हो जाता है। अतएव तप-धर्म का महत्त्व अपार है।'

'जैसे आहार करना शरीर-रक्षा के लिए आवश्यक है उसी प्रकार आहार का त्याग करना—उपवास करना भी जीवन-रक्षा के लिए आवश्यक है। आज अनेक स्वास्थ्य-शास्त्री उपवास का महत्त्व समझकर उसे प्राकृतिक चिकित्सामें प्रधान स्थान देते हैं। उपवाससे शरीर कृश अवश्य होता है परन्तु उस कृशता से शरीर को किसी प्रकार की हानि नहीं पहुंचती। शरीर की कृशता शरीर के सामर्थ्य के ह्रास का प्रमाण नहीं है।'

'जिन भयंकर रोगों को मिटाने में डाक्टर असमर्थ थे, वे रोग भी अनशन के द्वारा मिटाये गए हैं। उपवास के संबंध में मेरा स्वानुभव है और मैं कह सकता हूं कि उपवास से अनेक रोगों का विनाश होता है। संभव है, जिन्होंने उपवास-संबंधी अनुभव प्राप्त नहीं किया ऐसे लोग उपवास की यह महत्ता कदाचित् स्वीकार न करें, पर उनके अस्वीकार का कोई मूल्य नहीं है। अनुभवी इस सत्य को स्वीकार किये बिना नहीं रह सकते।'

'उपवास इन्द्रियों की रक्षा करने वाला है। धर्म साधना का सबल साधन है। इन्द्रियों की चंचलता का निग्रह उपवास से ही होता है।

इन्द्रियों को काबू में रखना बहुत कठिन है। महाशत्रु पर अधिकार करना सरल है पर इन्द्रियों पर अधिकार करना कठिन है। उपवास ही इन्द्रियों पर अधिकार करने का सरल साधन है।

मनुष्य हमेशा खाता है। सावधानी रखने पर भी कहीं भूल होजाना अनिवार्य है। प्रकृति भूल का दंड देने से कभी नहीं चूकती। किसी और से आप अपने अपराध क्षमा करा सकते हैं पर प्रकृति के दंड से आप किसी भी प्रकार नहीं बच सकते। अगर आप प्रकृति के किसी कानून को तोड़ते हैं तो आपको तुरन्त उसका दंड भोगने के लिए उद्यत रहना होगा। आप दूसरों की आंखों में धूल झोंक सकते हैं पर प्रकृति के आगे आपकी एक नहीं चलेगी। प्रकृति के कानून अटल हैं—अचल हैं। उनमें तनिक भी हेर-फेर नहीं हो सकता। ऐसी स्थिति में भोजन में कोई भूल हुई नहीं कि कोई-न-कोई रोग आ धमकता है। उस रोग के प्रतिकार का सरल और सफल उपाय उपवास ही है। आपने उपवास किया और रोग छू-मन्तर हुआ। अगर आपको कोई रोग नहीं है तो भी उपवास करने का अभ्यास लाभदायक ही है।

अपने नियम के अनुसार प्रकृति जितने मनुष्यों को उत्पन्न करती है, उनके खाने के लिए भी वह उतना ही पैदा करती है। पर मनुष्य अपनी धींगा-धींगी से आवश्यकता से अधिक खा जाता है। इस प्रकार अकेले भारतवर्ष ने छह करोड़ मनुष्यों की खुराक को छीन कर उन्हें भूखे मारने का पाप अपने सिर ले लिया है। भारत में तैंतीस करोड़ मनुष्य हैं। इनमें से छह करोड़ को अलग कर सत्ताईस करोड़ मनुष्य महीने में छह उपवास करने लगें तो क्या इन छह करोड़ भूखों को भोजन नहीं मिल सकता?

इस प्रकार उपवास भूखों की भूख मिटाने वाला, रोगियों के रोग हटाने वाला और

ईश्वरोपासक को ईश्वर से भेंट कराने वाला है। उपवास का अर्थ ही है—ईश्वर के समीप वास करना।'

मुनिश्री के उपदेश अधिकांश उनके विविध अनुभवों का ही परिणाम हैं। उपवास के विषय में आपने अधिकारपूर्वक, दृढ़ता के साथ जो मत व्यक्त किया है, उनका अनुभव ही उसका साक्षी है। अनुभव-ज्ञान में कितनी गम्भीरता, कितनी तेजस्विता और कितनी दृढ़ता होती है!

चातुर्मास पूर्ण होने पर मुनिश्री अनेक स्थानों में विचरते हुए फिर खाचरौद पधार गए और मुनिश्री घासीलाल जी महाराज की सेवा में रहने लगे। सं० १९५६ का चातुर्मास भी आपने खचरौद में ही किया। इसी चातुर्मास में श्री राधालालजी भटेवरा ने आपके पास दीक्षा ग्रहण की।

खचरौद में दूसरा चौमासा समाप्त करके आपने मुनिश्री मोतीलालजी महाराज और श्री राधालालजी महाराज के साथ जावरा की ओर विहार किया। वहां अन्य साधुओं के साथ आचार्य महाराज विराजमान थे।

पूज्यश्री चौथमलजी महाराज ने माघ शुक्ला दशमी के दिन आचार्य-पद अलंकृत किया था। उस समय वे वयोवृद्ध थे। नेत्र-शक्ति क्षीण हो गई थी। अधिक विहार नहीं कर सकते थे। ऐसी स्थिति में इतने विशाल सम्प्रदाय का संचालन और निरीक्षण करना उनके लिए कठिन था। अतएव उन्होंने भिन्न-भिन्न प्रान्तों में विचरनेवाले साधुओं की देख-रेख के लिए चार साधु नियुक्त कर दिए, जिनमें से एक हमारे चरितनायक भी थे।

मुनिश्री को दीक्षा लिये उस समय सिर्फ आठ वर्ष ही हुए थे। आपकी उम्र चौबीस वर्ष की थी। सम्प्रदाय में लम्बी दीक्षा और बड़ी उम्र के बहुत से मुनिराज थे। मगर प्रतिभा, संयम-परायणता, व्यवस्था शक्ति और दूसरी योग्यताओं के कारण आप इस पद के योग्य समझे गये। इतनी छोटी दीक्षा पर्याय में यह पद प्राप्त होना सूचित करता है कि आप उस समय भी साधु-समचारी के विशिष्ट ज्ञाता हो गए थे। उत्सर्ग और अपवाद-मार्ग के रहस्य को भली-भांति जानने लगे थे, व्यवस्था करने में कुशलता प्राप्त कर चुके थे और आगमानुकूल संयम-पालन की प्रतीति करा चुके थे।

आचार्य श्री चौथमलजी महाराज अस्वस्थ होने के कारण अंतिम तीन वर्षों में जावरा तथा रतलाम ही विराजे रहे। उस समय मुनिश्री श्रीलालजी महाराज उनकी सेवा में थे। तेजस्वी, प्रतिभाशाली तथा आचार-निष्ठ होने के कारण आचार्यश्री उन्हें अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहते थे। मुनिश्री श्रीलालजी महाराज को आचार्यश्री ने आस-पास के क्षेत्रों में ही विचरने का आदेश दिया और वे आस-पास ही विचरने लगे।

नौवां चातुर्मास १९५७

कुछ दिन पूज्यश्री की सेवा में रहकर मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज ने तीन ठाणों से महंतपुर की ओर विहार किया। उस समय मुनिश्री मोतीलालजी महाराज आपके साथ थे। महीदपुर उज्जैन के समीप एक छोटा-सा कस्बा है। संवत् १९५७ का चातुर्मास वहीं हुआ।

पूज्यश्री चौथमलजी महाराज का स्वर्गवास

पूज्यश्री चौथमलजी महाराज ने सं० १९५७ का चातुर्मास रतलाम में ही किया था। वृद्धावस्था के कारण आप अशक्त तो थे ही, शारीरिक अस्वस्थता भी चलती रहती थी। कार्तिक

शुक्ला प्रतिपदा की रात्रि को आचार्यश्री की व्याधि कुछ बढ़ गई। शरीर की अस्थिरता का विचार करके आपने दूसरे दिन चतुर्विध श्रीसंघ के सामने मुनिश्री श्रीलालजी महाराज को युवाचार्य जाहिर किया। उसके एक सप्ताह पश्चात् ही अष्टमी की रात्रि में आचार्यश्री चौथमलजी महाराज स्वर्ग सिधार गए।

उस समय श्री श्रीलालजी महाराज रतलाम में ही मौजूद थे। एक सप्ताह युवाचार्य-पदवी भोगकर कार्तिक शुक्ला नौवीं के दिन प० प्र० श्रीलालजी महाराज ने आचार्य-पद सुशोभित किया।

नवीन आचार्य के दर्शन

रतलाम में चातुर्मास पूर्ण करके पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज अनेक स्थानों पर धर्मोपदेश देते हुए इन्दौर पधारे। उसी समय मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज भी महंतपुर में चातुर्मास समाप्त करके इन्दौर पधार गये। पूज्यश्री के दर्शन करके आपको अत्यन्त प्रमोद हुआ।

इन्दौर से पूज्यश्री के साथ रतलाम की ओर विहार हुआ। बड़नगर तक सभी संत साथ-साथ पधारे। वहां से मुनिश्री मोतीलालजी महाराज और हमारे चरितनायक देहात में धर्म-प्रचार करने के लिए अलग हुए और पूज्यश्री के रतलाम पहुंचने के कुछ दिनों पश्चात् आप दोनों संत भी रतलाम पधार गये।

रतलाम से पूज्यश्री ने मेवाड़ की ओर विहार किया। मुनिश्री मोतीलालजी महाराज और मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज आदि कई सन्तों ने कुछ दिन ठहरकर उसी ओर विचरना आरम्भ कर दिया।

जवाहरात की पेटी

मेवाड़ प्रान्त में धर्म की जागृति करते हुए पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज उदयपुर पधारे। वहां आपके मधुर और प्रभावशाली प्रवचनों से अनेक धार्मिक कार्य हुए। आपके ही सदुपदेश से मेवाड़ के प्रधानमन्त्री रा० रा० कोठारीजी श्री बलवन्तसिंहजी साहब ने जैनधर्म अंगीकार किया।

एक दिन कोठारीजी तथा उदयपुर के श्रीसंघ ने पूज्यश्री से आगामी चातुर्मास उदयपुर में करने की प्रार्थना की। पूज्यश्री ने उत्तर दिया—'इस वर्ष यहां चातुर्मास करना मेरे लिए अनुकूल प्रतीत नहीं होता। मैं आपके लिए जवाहरात की पेटी के समान मुनि जवाहरलालजी को भेज दूंगा। उनके यहां पहुंचने से आनन्द मंगल होगा।'

उदयपुर के श्रीसंघ ने नतमस्तक होकर पूज्यश्री का कथन स्वीकार किया। धन्य है मुनिश्री जवाहरलालजी, जो अपनी योग्यता के द्वारा आचार्य महाराज के मुखारविन्द से प्रशंसा के पात्र बने! और धन्य है आचार्य महाराज; जो अपने छोटे सन्तों के सद्गुणों की प्रशंसा करके उन्हें उत्साहित करते हैं! सचमुच सन्तों का स्वभाव ऐसा ही भद्र और कोमल होता है!

दसवां चातुर्मास १९५८

पूज्यश्री के आदेश से मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज ने तीन सन्तों के साथ सं० १९५८ का चातुर्मास उदयपुर में किया। उदयपुर में प्रतिदिन प्रभावशाली प्रवचनों द्वारा आप श्रोताओं को प्रभावित करने लगे। हजारों श्रोता, जिनमें जैन और जैनेतर, हिन्दू और मुसलमान, पुरुष और स्त्रियों का समावेश था, आपके उपदेश से लाभ उठाते थे। मुनिश्री मृगापुत्र का अध्ययन फरमाते थे। कर्मों का फल किस प्रकार भोगना पड़ता है, इस विषय का आप हूबहू शब्द-चित्र खींच देते

थे। किसनगढ़ के रहने वाले एक मुसलमान भाई तो विना नागा उपदेश सुनने आते थे। उन पर भी उपदेश का खूब प्रभाव पड़ा और वे सदा के लिए मुनिश्री के भक्त बन गये।

उसी चातुर्मास में मुनिश्री मोतीलालजी महाराज ने ४५ दिन की तीव्र तपस्या की। तपस्या के पूर के दिन मेवाड़ सरकार के आदेश से उदयपुर के सभी कसाईखाने बंद रखे गये और बहुत से प्राणियों कोअभय-पान दिया गया।

चातुर्मास में उदयपुर में बड़ा आनन्द रहा। वातावरण में उत्साह और स्फूर्ति के साथ सात्विकता छा गई। उदयपुर की जनता पूज्यश्री के वचनोंको बार-बार याद करती और कहती—वास्तव में जवाहरलालजी महाराज जवाहरात की ही पेटी हैं।

इसी चातुर्मास में चरितनायक ने वर्तमान पूज्यश्री गणेशीलालजी महाराज को सम्यक्त्वरत्न प्रदान किया। उस समय किसे ज्ञात था कि सम्यक्त्व देकर जिसे आज धर्म के प्रवेश-द्वार पर खड़ा किया है, वही आगे चलकर उनका प्रधान शिष्य बनेगा और अन्त में उनका उत्तराधिकारी होकर शासन दिपायेगा।

उदयपुर में चातुर्मास पूर्ण करके मुनिश्री तरावलीगढ़ पधारे। वहां श्री घासीलालजी को मुनि-दीक्षा दी। वहां से मारवाड़ की ओर विहार किया। रास्ते में आपको कुछ लुटेरे मिल गए। उस समय श्री घासीरामजी महाराज नवदीक्षित ही थे। नवीन वस्त्र पहने थे। भिक्षा मांगकर जीवन-निर्वाह करने वाले और अन्न-जल का एक भी कण आज का कल न रखने की दृढ़ परम्परा का पालन करने वाले, संसार की सम्पत्ति को सांप की तरह भयावह समझने वाले अकिंचन मुनियों के पास और धरा ही क्या था ? कुछ लकड़ी के पात्र,कुछ वस्त्र और कुछ शास्त्र ही उनके पास थे। अभागे लुटेरों को लूटने के लिए मिले भी तो यह साधु मिले ! न जाने लुटेरे किस मुहूर्त में लूटने चले थे ! वे मन-ही-मन पछताते होंगे, झुंझलाते होंगे और अपनी तकदीर को कोसते होंगे।

अंग्रेजी भाषा में एक कहावत है—Some thing is better than nothing अर्थात् कुछ भी नहीं से कुछ भला। बेचारे कितना साहस बटोरकर घर से निकले होंगे ? जंगल में अपने शिकार की कितनी और कितनी देर प्रतीक्षा की होगी ? कितनी मनवार करके अपने मन को इस जोखिम के लिए मनाया होगा ? अब बहुत नहीं तो थोड़ा ही सही ? मंगलाचरण में असफलता तो नहीं कहलाएगी ? शकुन तो नहीं बिगड़ेगा ! इसके अतिरिक्त साधु मंगल-रूप हैं तो उनके वस्त्र भी शायद हमारे लिए मंगलमय सिद्ध हो जायं ! ऐसा ही कुछ सोचकर लुटेरों ने साधुओं के कई वस्त्र छीन लिये ! यहां तक कि श्री घासीलालजी का कमर में पहनने का वस्त्र-चोलपट्ट भी उनके शरीर पर न रहने दिया।

उस समय मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज ने लुटेरों को जैन साधु का परिचय दिया। उन्हें बतलाया—'हम जैन साधु हैं। रुपया-पैसा पास नहीं रखते। भिक्षा मांगकर निर्वाह करते हैं। भिक्षा के लिए यह पात्र हैं, लज्जा ढंकने के लिए वस्त्र और पढ़ने-पढ़ाने के लिए शास्त्र हैं। इनके सिवाय हमारे पास कुछ है नहीं। भाइयो ! हमें लूटकर तुम क्या पाओगे ? फिर जैसी तुम्हारी इच्छा !'

मुनिश्री के समझाने पर एक लुटेरे ने चोलपट्ट वापस कर दिया। कुछ वस्त्र लेकर वे एक ओर चले गए और मुनि-गण ने दूसरी ओर आगे प्रस्थान किया। अगले गांव पहुंचने पर

लोगों ने जब यह घटना सुनी तो उन्हें असह्य हो गई। उन्होंने रिपोर्ट करके चोरों को पूरा दंड दिलाने की ठानी। मगर मुनिश्री ने समभाव का उपदेश देकर सबको शान्त किया।

ग्यारहवां चातुर्मास

चातुर्मास के पश्चात अनेक क्षेत्रों में धर्म-प्रचार करते हुए मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज जोधपुर पधारे। संवत् १९५९ का चातुर्मास आपने जोधपुर में ही व्यतीत किया। संयोग से तेरह पंथ सम्प्रदाय के आचार्यश्री डालचंदजी का चातुर्मास भी जोधपुर में ही था।

दया-दान का प्रचार

जैन समाज की श्वेताम्बर शाखा में तेरहपंथ नाम से एक सम्प्रदाय है। इसके मूल प्रवर्त्तक भिक्खुजी स्वामी माने जाते हैं। प्रारंभ में वे स्थानकवासी सम्प्रदाय के आचार्य पूज्यश्री रघुनाथजी महाराज के शिष्य थे। कर्मोदय की विचित्रता से उनके मस्तिष्क में कुछ मिथ्या धारणाएं जम गईं। पूज्यश्री रघुनाथजी महाराज ने उनके निराकरण का भरसक प्रयत्न किया और अनेक शास्त्रों के मूल पाठ दिखलाए, मगर कोई किसी के कर्मोदय को कैसे पलट सकता है? भिक्खुजी जब अपनी धारणाओं पर अड़े रहे तो अंत में उन्हें संघ से पृथक कर दिया गया और उन्होंने अपनी मान्यताओं का स्वतंत्र रूप से प्रचार करना आरंभ कर दिया। 'मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्ना' कहावत के अनुसार सबकी अपनी-अपनी समझ अलग-अलग होती है और इसी कारण संसार में बहुत से मत, पंथ, सम्प्रदाय एवं परम्पराएं हैं। मगर तेरह पंथ सम्प्रदाय इन सबमें अपना विशेष स्थान रखता है। यह सम्प्रदाय, धर्म के मूलभूत तत्त्व दया-दान पर कुठाराघात करता है और इस प्रकार मानवता के विरुद्ध विद्रोह करता है। इसके कुछ मन्तव्य इस प्रकार हैं—

(१) मरते हुए जीव को बचाने में पाप है। अगर गौओं के बाड़े में आग लग जाय तो उन्हें बचाने के उद्देश्य से बाड़ा खोल देने वाला पाप का भागी होगा। बचा हुआ जीव अपने शेष जीवन में जो पाप करेगा उन सब पापों का भागी बचाने वाला भी होगा।

(२) प्यास से तड़पते हुए किसी भी मनुष्य या दूसरे प्राणी को पानी पिला देना पाप है, क्योंकि पानी में असंख्यात जीव हैं और पानी पिलाने से एक जीव की रक्षा करने में असंख्यात जीव मरते हैं। अगर कोई दयालु छाछ जैसी निर्वद्य चीज, जिसमें जीव नहीं है, पिलाकर किसी के प्राण बचा लेता है तो वह भी पाप का भागी होता है, क्योंकि जीव-रक्षा करना ही पाप है।

(३) माता का अपने बालक को दूध पिलाकर पालन-पोषण करना और गर्भस्थ बालक की रक्षा करना भी एकान्त पाप है।

(४) अगर कोई सुपुत्र माता-पिता की सेवा करता है तो उसका यह कृत्य भी पाप है।

भगवान् महावीर ने तेजोलेश्या से जलते गोशालक की रक्षा की थी। तेरह पंथी भाइयों के सामने जीव-रक्षा का यह उदाहरण जब उपस्थित किया जाता है तो वे बिना संकोच कह देते हैं कि—'उस समय भगवान महावीर चूक गए।'

यहां इतना बतला देना आवश्यक है कि संसार में जितने भी विशिष्ट विचारक और मत-प्रवर्त्तक हुए हैं, उन्होंने धर्माचरण का ही उपदेश दिया और जीव-रक्षा को सब धर्माचरणों में श्रेष्ठ धर्म बतलाया है। जैनागम तो जीव-रक्षा के लिए प्रसिद्ध हैं ही। उनका निर्माण इसी उद्देश्य

से हुआ है। जैन-शास्त्र में कहा है—'सव्वजगजीवरक्खणदयट्ठयाए पावयणं भगवया सुकहियं।' अर्थात् जगत् के सभी जीवों की रक्षा रूप दया के लिए भगवान् ने प्रवचन कहा है। जैनेतर शास्त्र भी जीव रक्षा को प्रधान धर्म स्वीकार करते हैं। यह बात इतनी स्पष्ट है कि इसके समर्थन के लिए उन शास्त्रों के उद्धरण देने की आवश्यकता ही प्रतीत नहीं होती।

पूज्यश्री रघुनाथजी महाराज ने भिक्खूजीको शास्त्र-पाठों से बहुत समझाया, परन्तु भिक्खूजी ने अपना हठ न छोड़ा तो उन्हें सम्प्रदाय से पृथक् कर दिया गया। भिक्खूजी के साथ उनके स्नेही छह साधु और निकल गये। स्थानकवासी समाज में ही एक दूसरे सम्प्रदाय के आचार्य पूज्यश्री जयमल्लजी महाराज थे। पूज्यश्री रघुनाथजी महाराज और उनके सम्प्रदाय के साधुओं में काफी घनिष्ठता थी। मिलना-जुलना, वार्त्तालाप तथा एकत्र निवास भी होता रहता था। अतएव भिक्खूजी ने उस सम्प्रदाय के छह साधुओं पर भी अपना असर डाल लिया। इस प्रकार तेरह व्यक्तियों ने मिलकर अपने नव-निर्मित अदया-अदान धर्म का प्रचार प्रारम्भ कर दिया। इन्हीं का सम्प्रदाय 'तेरहपंथ' कहलाता है।

भगवान् महावीर के अहिंसा-धर्म का इस प्रकार विपरीत प्रचार होते देखकर और भोली जनता को धर्म के नाम पर घोर अधर्म और निर्दयता का शिकार होते देखकर मुनिश्री जवाहर-लालजी महाराज का सदय हृदय पिघल गया। जीव-रक्षा को पाप बतलाना मानवता के नाम पर और धर्म के नाम पर घोर कलंक है। ऐसी भयानक मान्यताओं का प्रबल विरोध करना ही मुनिश्री ने अपना कर्त्तव्य समझा।

तेरह पंथ के आचार्य डालचन्दजी का चौमासा भी उस साल जोधपुर में ही था। इस कारण सत्य वस्तु जनता को समझाने का यह अच्छा अवसर था। मुनिश्री ने तेरह पंथ के प्रधान ग्रंथ 'भ्रम-विध्वंसन' का सूक्ष्म रीति से अवलोकन किया। 'भ्रम-विध्वंसन' के अवलोकन से आप की उक्त इच्छा अधिक बलवती हो उठी। आपने सोचा—सर्व-साधारण के सामने यदि यह बात आ जाय कि तेरहपंथियों का मत जैन शास्त्रों के विरुद्ध है तो यह कलंक जैन-धर्म के नाम पर न रहे। श्रावकों ने भी सत्य को प्रकट कर देने की मुनिश्री की इच्छा का समर्थन किया। मुनिश्री ने इस उद्देश्य की पूर्त्ति के लिए शास्त्रार्थ करने का उपाय ही समुचित समझा। शास्त्रार्थ का सिल-सिला शुरू करने के अभिप्राय से मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज ने सात प्रश्न तैयार किये। श्रावकों ने उन प्रश्नों को लेकर एक विज्ञप्ति निम्नलिखित रूप में प्रकाशित कर दीः—

तेरहपंथियों को विदित हो कि नीचे लिखे प्रश्न सविस्तर सूत्रार्थ के पाठ सहित तुम्हारे पूज्यजी से पूछकर लिखो। सात प्रश्न निम्नलिखित हैं—

(१) श्रीमन्महावीर भगवान् को दीक्षा लेने के बाद चूका बताते हो, सो वह पाठ दिखाओ।

(२) साधु के सिवाय किसी को दान देने में एकान्त पाप बताते हो, सो पाठ दिखाओ।

(३) बयालीस दोष टालकर आहार लेनेवाले पडिमाधारी श्रावक को दोष रहित आहार देने में पाप बताते हो, सो पाठ दिखाओ।

(४) साधुजी महाराज को किसी दुष्ट ने फांसी दी। किसी दयावान् ने धर्म-बुद्धि से उसे खोल दिया। तुम उन दोनों को पापी कहते हो और श्रद्धते हो, सो पाठ दिखाओ।

(५) गायों का बाड़ा भरा हुआ है, उसमें किसी दुष्ट ने आग लगा दी। किसी दयावान् ने किंवाड़ खोलकर गायों को बाहर निकाल दिया और उनके प्राण बच गए। तुम उन दोनों को पाप कहते हो, सो पाठ दिखाओ।

(६) पन्द्रहवां कर्मादान 'असंजती पोसणिया' कहते हो और सिखलाते हो, सो पाठ दिखलाओ।

(७) असंयती का जीना नहीं वांच्छना, ऐसा कहते हो सो पाठ दिखाओ।

इन प्रश्नों का उत्तर जल्दी लिखो। और भी बहुत से प्रश्न हैं।

तुम्हारा मत अर्थात् भीखमजी का चलाया हुआ मत जैन-सिद्धान्त तथा जैन आगमों के विरुद्ध स्पष्ट दिखाई देता है। तुम्हारे पूज्यश्री न्याय-पूर्वक चर्चा अर्थात् शास्त्रार्थ करना चाहें तो हमारे साधुजी चर्चा करने को तैयार हैं। स्थान तीसरा और निष्पक्ष विवेकी समझदार तीसरे मत के मध्यस्थ मोअज्जिज मुकर्रर होवें ताकि गलवा न हो सके। चर्चा जरूर होनी चाहिए। एक हफ्ते की मियाद दी जाती है, क्योंकि चौमासे के दिन थोड़े रहे हैं। जो इस मौके पर तुम्हारे पूज्यश्री चर्चा नहीं करेंगे तो हम लोग तो समझते ही हैं, और भी सब लोग तुम्हारे को झूठा समझेंगे। सम्वत् १६५६ कार्तिक सुदी २।

बाईस सम्प्रदाय की तरफ से

मुणोत अमरदास। भण्डारी किसनमल।

इस नोटिस के बाजार में बंटते ही तेरहपंथियों की तरफ से भण्डारी किशनमलजी का एक पत्र बाईस सम्प्रदाय के श्रावकों के पास आया। उसमें लिखा था—पू० डालचन्दजी शास्त्रार्थ करने के लिए तैयार हैं, शीघ्र चर्चा कर लो। पत्र में चर्चा-स्थान के लिए उदयमन्दिर तथा मध्यस्थ के लिए अन्य दो सज्जनों के अतिरिक्त उदयमन्दिर के महन्त गोसाईं गणेशपुरीजी को चुना था। उदयमन्दिर जोधपुर से काफी दूर पर है।

इस पत्र के उत्तर में बाईस सम्प्रदाय की ओर से भण्डारी किशनमलजी को लिखा गया कि शास्त्रार्थ के लिए स्थान उदयमन्दिर उपयुक्त नहीं है। पता नहीं शास्त्रार्थ कितने दिन चले, ऐसी दशा में प्रतिदिन शास्त्रों को लादकर दूर ले जाना और लाना बहुत कठिन है। वहां आने जाने में बहुत-सा समय व्यर्थ चला जायगा। मध्यस्थ, दर्शक तथा श्रोताओं को भी वहां जाने-आने में परेशानी होगी। इसलिए कोई समीपवर्ती स्थान चुनना चाहिए।

इसके अतिरिक्त गणेशपुरीजी महन्त तेरहपन्थियों के पक्षपाती हैं। उनके स्थान पर शास्त्रार्थ करना तथा उन्हें मध्यस्थ बनाना दोनों बातें अनुचित हैं।

मध्यमस्थ के लिए हम गुरां साहेब श्री जवाहरमलजी, मणिविजयजी, तथा कविराज श्री मुरारीदानजी का नाम पेश करते हैं। स्थान के लिए आप आहुवा की हवेली, ओसवाल जाति का नोहरा या किसी भी समीपवर्ती मकान को चुन सकते हैं। इससे जनता अधिक लाभ उठा सकेगी तथा शास्त्र लाने ले जाने में मुनियों को कष्ट न होगा।

तेरहपंथियों ने जवाहरमलजी तथा मणिविजयजीको मध्यस्थ बनाने से इन्कार कर दिया और गणेशपुरीजी के लिए फिर आग्रह किया। स्थान तथा समय के लिए भी वे टालमटोल करने लगे।

अन्त में उनसे कहा गया—दोनों पक्ष वाले कविराज श्री मुरारीदानजी को मध्यस्थ चुन

से हुआ है। जैन-शास्त्र में कहा है--'सव्वजगजीवरक्खणदयट्ठयाए पावयणं भगवया सुकहियं।' अर्थात् जगत् के सभी जीवों की रक्षा रूप दया के लिए भगवान् ने प्रवचन कहा है। जैनेतर शास्त्र भी जीव रक्षा को प्रधान धर्म स्वीकार करते हैं। यह बात इतनी स्पष्ट है कि इसके समर्थन के लिए उन शास्त्रों के उद्धरण देने की आवश्यकता ही प्रतीत नहीं होती।

पूज्यश्री रघुनाथजी महाराज ने भिक्खूजीको शास्त्र-पाठों से बहुत समझाया, परन्तु भिक्खूजी ने अपना हठ न छोड़ा तो उन्हें सम्प्रदाय से पृथक् कर दिया गया। भिक्खूजी के साथ उनके स्नेही छह साधु और निकल गये। स्थानकवासी समाज में ही एक दूसरे सम्प्रदाय के आचार्य पूज्यश्री जयमलजी महाराज थे। पूज्यश्री रघुनाथजी महाराज और उनके सम्प्रदाय के साधुओं में काफी घनिष्ठता थी। मिलना-जुलना, वार्त्तालाप तथा एकत्र निवास भी होता रहता था। अतएव भिक्खूजी ने उस सम्प्रदाय के छह साधुओं पर भी अपना असर डाल लिया। इस प्रकार तेरह व्यक्तियों ने मिलकर अपने नव-निर्मित अदया-अदान धर्म का प्रचार प्रारम्भ कर दिया। इन्हीं का सम्प्रदाय 'तेरहपंथ' कहलाता है।

भगवान् महावीर के अहिंसा-धर्म का इस प्रकार विपरीत प्रचार होते देखकर और भोली जनता को धर्म के नाम पर घोर अधर्म और निर्दयता का शिकार होते देखकर मुनिश्री जवाहर-लालजी महाराज का सदय हृदय पिघल गया। जीव-रक्षा को पाप बतलाना मानवता के नाम पर और धर्म के नाम पर घोर कलंक है। ऐसी भयानक मान्यताओं का प्रबल विरोध करना ही मुनिश्री ने अपना कर्त्तव्य समझा।

तेरह पंथ के आचार्य डालचन्दजी का चौमासा भी उस साल जोधपुर में ही था। इस कारण सत्य वस्तु जनता को समझाने का यह अच्छा अवसर था। मुनिश्री ने तेरह पंथ के प्रधान ग्रंथ 'भ्रम-विध्वंसन' का सूक्ष्म रीति से अवलोकन किया। 'भ्रम-विध्वंसन' के अवलोकन से आप की उक्त इच्छा अधिक बलवती हो उठी। आपने सोचा—सर्व-साधारण के सामने यदि यह बात आ जाय कि तेरहपंथियों का मत जैन शास्त्रों के विरुद्ध है तो यह कलंक जैन-धर्म के नाम पर न रहे। श्रावकों ने भी सत्य को प्रकट कर देने की मुनिश्री की इच्छा का समर्थन किया। मुनिश्री ने इस उद्देश्य की पूर्त्ति के लिए शास्त्रार्थ करने का उपाय ही समुचित समझा। शास्त्रार्थ का सिल-सिला शुरू करने के अभिप्राय से मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज ने सात प्रश्न तैयार किये। श्रावकों ने उन प्रश्नों को लेकर एक विज्ञप्ति निम्नलिखित रूप में प्रकाशित कर दीः—

तेरहपंथियों को विदित हो कि नीचे लिखे प्रश्न सविस्तर सूत्रार्थ के पाठ सहित तुम्हारे पूज्यजी से पूछकर लिखो। सात प्रश्न निम्नलिखित हैं—

(१) श्रीमन्महावीर भगवान् को दीक्षा लेने के बाद चूका बताते हो, सो वह पाठ दिखाओ।

(२) साधु के सिवाय किसी को दान देने में एकान्त पाप बताते हो, सो पाठ दिखाओ।

(३) बयालीस दोष टालकर आहार लेनेवाले पडिमाधारी श्रावक को दोष रहित आहार देने में पाप बताते हो, सो पाठ दिखाओ।

(४) साधुजी महाराज को किसी दुष्ट ने फांसी दी। किसी दयावान् ने धर्म-बुद्धि से उसे खोल दिया। तुम उन दोनों को पापी कहते हो और श्रद्धते हो, सो पाठ दिखाओ।

(५) गायों का बाड़ा भरा हुआ है, उसमें किसी दुष्ट ने आग लगा दी। किसी दयावान् ने किंवाड़ खोलकर गायों को बाहर निकाल दिया और उनके प्राण बच गए। तुम उन दोनों को पाप कहते हो, सो पाठ दिखाओ।

(६) पन्द्रहवां कर्मादान 'असंजती पोसणिया' कहते हो और सिखलाते हो, सो पाठ दिखलाओ।

(७) असंयती का जीना नहीं वांच्छना, ऐसा कहते हो सो पाठ दिखाओ।

इन प्रश्नों का उत्तर जल्दी लिखो। और भी बहुत से प्रश्न हैं।

तुम्हारा मत अर्थात् भीखमजी का चलाया हुआ मत जैन-सिद्धान्त तथा जैन आगमों के विरुद्ध स्पष्ट दिखाई देता है। तुम्हारे पूज्यश्री न्याय-पूर्वक चर्चा अर्थात् शास्त्रार्थ करना चाहें तो हमारे साधुजी चर्चा करने को तैयार हैं। स्थान तीसरा और निष्पक्ष विवेकी समझदार तीसरे मत के मध्यस्थ मोअज्जिज मुकर्रर होवें ताकि गलवा न हो सके। चर्चा जरूर होनी चाहिए। एक हफ्ते की मियाद दी जाती है, क्योंकि चौमासे के दिन थोड़े रहे हैं। जो इस मौके पर तुम्हारे पूज्यश्री चर्चा नहीं करेंगे तो हम लोग तो समझते ही हैं, और भी सब लोग तुम्हारे को झूठा समझेंगे। सम्वत १९५९ कार्तिक सुदी २।

बाईस सम्प्रदाय की तरफ से

मुणोत अमरदास। भण्डारी किसनमल।

इस नोटिस के बाजार में बंटते ही तेरहपंथियों की तरफ से भण्डारी किशनमलजी का एक पत्र बाईस सम्प्रदाय के श्रावकों के पास आया। उसमें लिखा था—पू० डालचन्दजी शास्त्रार्थ करने के लिए तैयार हैं, शीघ्र चर्चा कर लो। पत्र में चर्चा-स्थान के लिए उदयमन्दिर तथा मध्यस्थ के लिए अन्य दो सज्जनों के अतिरिक्त उदयमन्दिर के महन्त गोसाईं गणेशपुरीजी को चुना था। उदयमन्दिर जोधपुर से काफी दूर पर है।

इस पत्र के उत्तर में बाईस सम्प्रदाय की ओर से भण्डारी किशनमलजी को लिखा गया कि शास्त्रार्थ के लिए स्थान उदयमन्दिर उपयुक्त नहीं है। पता नहीं शास्त्रार्थ कितने दिन चले, ऐसी दशा में प्रतिदिन शास्त्रों को लादकर दूर ले जाना और लाना बहुत कठिन है। वहां आने जाने में बहुत-सा समय व्यर्थ चला जायगा। मध्यस्थ, दर्शक तथा श्रोताओं को भी वहां जाने-आने में परेशानी होगी। इसलिए कोई समीपवर्ती स्थान चुनना चाहिए।

इसके अतिरिक्त गणेशपुरीजी महन्त तेरहपन्थियों के पक्षपाती हैं। उनके स्थान पर शास्त्रार्थ करना तथा उन्हें मध्यस्थ बनाना दोनों बातें अनुचित हैं।

मध्यमस्थ के लिए हम गुरां साहेब श्री जवाहरमलजी, मणिविजयजी, तथा कविराज श्री मुरारीदानजी का नाम पेश करते हैं। स्थान के लिए आप आहुवा की हवेली, ओसवाल जाति का नोहरा या किसी भी समीपवर्ती मकान को चुन सकते हैं। इससे जनता अधिक लाभ उठा सकेगी तथा शास्त्र लाने ले जाने में मुनियों को कष्ट न होगा।

तेरहपंथियों ने जवाहरमलजी तथा मणिविजयजीको मध्यस्थ बनाने से इन्कार कर दिया और गणेशपुरीजी के लिए फिर आग्रह किया। स्थान तथा समय के लिए भी वे टालमटोल करने लगे।

अन्त में उनसे कहा गया—दोनों पक्ष वाले कविराज श्री मुरारीदानजी को मध्यस्थ चुन

लें। स्थान और समय के लिए उन्हीं से निर्णय करा लिया जाय। वे जो कहें, दोनों को मान्य हो। कविराज जोधपुर के एक प्रतिष्ठित विद्वान् सज्जन थे, मध्यस्थ भी थे। साहित्य-सेवी उनके नाम से भली-भांति परिचित हैं।

तेरहपंथियों ने इस बात को भी मंजूर नहीं किया। वास्तव में वे शास्त्रार्थ करने से डरते थे और उसे टालने का प्रयत्न कर रहे थे।

जनता ने समझ लिया कि तेरहपन्थी शास्त्रार्थ करना नहीं चाहते। अन्त में उनसे कहा गया—यदि आप शास्त्रार्थ करना नहीं चाहते तो जाने दीजिये, उन सात प्रश्नों का उत्तर दीजिए। इस पर तेरहपन्थियों की ओर से कोई उत्तर न मिला।

प्रतापमलजी का प्रतिबोध

मारवाड़ में पंचभद्रा नामक एक गांव है। वहां प्रतापमलजी चौपड़ा एक धर्म-प्रेमी गृहस्थ रहते थे। वे तेरहपंथ के अनुयायी थे। तेरहपंथ में उनकी बड़ी श्रद्धा थी।

एक बार विचार करते-करते तेरहपंथियों की प्ररूपणा में उन्हें कुछ संदेह हुआ। सन्देह-निवारण के लिए चौपड़ाजी अपने आचार्य डालचन्दजी के पास जोधपुर आये। डालचंदजी ने इधर-उधर की बातों से उन्हें समझाने का प्रयत्न किया मगर तत्त्व के जिज्ञासु को इससे सन्तोष नहीं हुआ। उन्होंने आगम का पाठ दिखलाने के लिए कहा। इस पर डालचंदजी बिगड़ खड़े हुए और उन्हें मिथ्यात्वी कहकर टाल दिया।

मनुष्य प्रायः अपनी दुर्बलता को छिपाने के लिए क्रोध का आश्रय लेता है। मगर धर्म तो कल्याण के लिए है। धर्म के क्षेत्र में दृढ़ता के साथ सत्य का विचार करना चाहिए। वहां किसी प्रकार की बनावट या दिखावट को स्थान नहीं हो सकता। धर्म के विषय में कोई समझौता काम नहीं देता। जिसे सत्य को खोजने की प्रबल आकांक्षा है वह गुपचुप बिना समझे-बूझे कोई बात न मानेगा। वह प्रत्येक बात को शास्त्र के अनुसार समझकर ही ग्रहण करेगा। वह शंका करने में संकोच भी नहीं करेगा और उसका धर्मगुरु उसकी शंका से क्रुद्ध नहीं होगा। इस विषय में हमारे चरितनायक स्पष्ट शब्दों में कहते हैं—'जैन-शास्त्र कहता है कि सूत्र-सिद्धान्त की बात चुपके-चुपके बताना उचित नहीं। अतएव तुम्हें जो कुछ भी बताया गया है उसके संबंध में पूछ-ताछ करो और उत्पन्न हुई शंका का समाधान प्राप्त करो।' बिना समझे-बूझे किसी बात को स्वीकार कर लेने के विषय में आपका कहना है—'धर्म के विषय में अक्सर ऐसा होता है कि शंका होने पर भी पूछ-ताछ नहीं की जाती और शंका को हृदय में स्थान दिया जाता है। कुछ लोगों का तो यहां तक कहना है कि हमारे सामने जो कुछ आवे, उसी को खा जाना चाहिए। इस प्रकार पशुओं की भांति सोचे-समझे बिना किसी वस्तु को खाने बैठ जाना अनुचित है।.........इसी प्रकार चाहे जिस बात को बिना विचारे मान लेना हानिकारक है। प्रतिपृच्छना के प्रश्न द्वारा जैन-शास्त्र इस बात का अनुमोदन करता है कि कोई बात बिना विचारे नहीं मान लेनी चाहिए वरन् पूछ-ताछ करके योग्य मालूम हो तो ही कोई बात माननी चाहिए।

जानकारी प्राप्त करने के उद्देश्य से शंका करना आवश्यक है। शंका किये बिना अधिक ज्ञान नहीं प्राप्त हो सकता। जिज्ञासा ज्ञानोपार्जन का एक कारण है। आज विज्ञान का जो आधिपत्य देखा जा रहा है, उस विज्ञान का आविष्कार भी जिज्ञासा से ही हुआ है।

तात्पर्य यह है कि जिसे सत्य पर सम्पूर्ण श्रद्धा है वह न शंका करने से घबराता है और न समाधान करने से। शंका-समाधान में झुंझला उठना सत्य के ऊपर अश्रद्धा का द्योतक है।

प्रतापमलजी जिज्ञासु तो थे ही, समाधानकर्त्ता की टाल-मटोल से उनकी जिज्ञासा और बढ़ गई। वे सत्य वस्तु का निर्णय करना चाहते थे अतः मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज के पास आये। मुनिश्री ने जैनागमों के पाठ बतलाकर उनकी सब शंकाओं का समाधान कर दिया। प्रतापमलजी ने मुनिश्री की युक्ति और आगम के अनुकूल व्याख्या सुनी तो उन्हें ऐसा मालूम हुआ कि मैं अंधकार में हूं और अब प्रकाश की रेखा देख रहा हूं। वे फिर डालचंदजी स्वामी के पास पहुंचे और शास्त्रीय पाठ बताकर उनसे खुलासा करने की प्रार्थना की।

डालचन्दजी स्वामी के पास जो अन्तिम शस्त्र था, उसी का उन्होंने प्रयोग किया। वह यह कि भीखमजी महाराजके वचनों पर अविश्वास नहीं करना चाहिए। अविश्वास करने से मिथ्यात्व का पाप लगता है!

प्रतापमलजी बोले—आपके कथनानुसार चार निर्मल ज्ञानों के धनी महावीर स्वामी भी छद्मस्थ-अवस्था में चूक गये तो भीखमजी स्वामी के या आपके वचन अचूक कैसे माने जा सकते हैं? मुझे तो एकमात्र भगवान् के वचनों पर ही भरोसा है। आप भगवान् का वचन—आगम का पाठ—दिखाइये, तभी आपकी बात मानी जा सकती है।

यह स्पष्ट और निर्भीक बात सुनकर तेरहपंथियों के पूज्य डालचंदजी नाराज हो गये और कहने लगे—तुम्हें बाईस टोलों के साधु ने बहका दिया है। उससे कहो शास्त्रार्थ के लिए तैयार हो जाए।

प्रतापमलजी ने आकर मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज से यह बात कह दी। मुनिश्री तो सत्यासत्य का निर्णय करने के लिए उद्यत ही थे। उन्होंने कहला भेजा कि प्रातःकाल अमुक स्थान पर मिल लें जिससे शास्त्रार्थ का स्थान, समय आदि का निर्णय किया जा सके।

तेरहपन्थी पूज्य डालचंदजी ने प्रतापमलजी के सामने तो मिलने की बात मंजूर करली किन्तु दूसरे दिन नियत स्थान पर वे नहीं पहुंचे। मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज तो नियत स्थान पर जाकर और वहां डालचंदजी को न पाकर लौटने लगे। प्रतापमलजी साथ थे। वे मुनिश्री को ऐसे रास्ते से लाये जिस पर डालचंदजी का निवास था। जब मुनिश्री उनके उपाश्रय के सामने पहुंचे और उनकी नजर आप पर पड़ी तो उनके शिष्य मगनजी बारह साधुओं के साथ बाहर निकल आये और अण्ड-बण्ड बोलने लगे।

मुनिश्री ने मगनजी से कहा—इस प्रकार के वचन बोलना साधु को शोभा नहीं देता। अगर आप शास्त्रार्थ करना चाहते हैं तब तो स्थान और समय का निर्णय कर लीजिए; अन्यथा स्पष्ट उत्तर दीजिए।

मगनजी ने कहा—इस सुनार के चबूतरे पर बैठकर शास्त्रार्थ कर लीजिए।

मुनिश्री ने उत्तर दिया—यों चलते रास्ते शास्त्रार्थ नहीं हुआ करते। इस समय शास्त्रार्थ कैसे हो सकता है? किसी तीसरे स्थान पर तथा पक्षपात-रहित एवं समझदार चार मध्यस्थ चुन लीजिए। वहां शान्ति-पूर्वक विचार-विनिमय तथा शास्त्रों के अर्थ का निर्णय हो सकेगा।

मगर मगनजी को यह कब अभीष्ट था ? वे बेसिर-पैर की बातें फिर कहने लगे और इस प्रकार बात को टालने की कोशिश करने लगे।

मुनिश्री ने यह रंग देखकर उनसे अधिक वार्त्तालाप करना उचित न समझा। वे सीधे डालचन्दजी के सामने पहुंचे और कहा—'अगर आपको शास्त्रार्थ करना है तो मध्यस्थ और स्थान का चुनाव कर लीजिये। मैं तैयार हूं।' इस प्रकार शास्त्रार्थ की चुनौती देकर मुनिश्री अपने स्थान पर पधार गये।

मुनिश्री के चले जाने पर तेरहपथी श्रावकों और साधुओं ने प्रतापमलजी का जो घोर अपमान किया उससे उन्हें तेरहपंथ से घृणा हो गई। अपनी शंका का समाधान करने और तत्त्वनिर्णय के लिए किए हुए प्रयत्न का यह दुष्परिणाम होगा, यह उन्हें मालूम नहीं था। बाद में वे मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज के पास आये और उन्होंने सारा वृत्तान्त कहा। मुनिश्री ने उन्हें सच्चे धर्म पर श्रद्धा करने का उपदेश दिया। प्रतापमलजी कुछ दिनों तक मुनिश्री की सेवा में रहे और धर्म का वास्तविक स्वरूप समझने का प्रयास करते रहे। जब उन्हें सन्तोष हो गया तो मुनिश्री से सच्ची श्रद्धा लेकर और उन्हें अपना गुरु मानकर वे अपने घर चले गये।

प्रत्युत्तरदीपिका

चातुर्मास पूर्ण हो गया। डालचंदजी स्वामी ने न शास्त्रार्थ किया, न सात प्रश्नों का उत्तर ही दिया। छः महीने बाद तेरहपंथियों की तरफ से 'प्रश्नोत्तरसमीक्षा' नाम की पुस्तिका प्रकाशित हुई। उसमें सात प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयत्न किया गया था और बाईस सम्प्रदाय से वही प्रश्न उलट कर पूछे गये थे। यह पुस्तिका भंडारी कृष्णमल, जोधपुर की ओर से प्रकाशित हुई थी।

इस पुस्तिका में प्रकट की हुई दया-दान-विरोधी भ्रमपूर्ण मान्यताओं पर विचार करने के लिए मुनिश्री ने 'प्रत्युत्तरदीपिका' नामक पुस्तक तेरह दिन की तपस्या करके तेरह दिनों में तैयार की। यह पुस्तक श्रीमान् सेठ बहादुरमलजी बांठिया लाइब्रेरी भीनासर (बीकानेर) की ओर से प्रकाशित हुई है। इस पुस्तक में विस्तारपूर्वक तेरहपंथ की भ्रम-मय धारणाओं का निराकरण किया गया है। इस पुस्तक के उत्तर में तेरापंथी फिर कुछ न लिख सके।

बालोतरा

जोधपुर में चातुर्मास व्यतीत करके मुनिश्री जवाहरलालजी विहार करते हुए समदड़ी पधारे। उसी समय तेरहपंथ के आचार्य बालोतरा पहुंचे। उस समय बालोतरा में बाईस सम्प्रदाय के दो साधु थे। वे शास्त्रों के विशेष जानकार नहीं थे। उन्हें देखकर डालचंदजी स्वामी का जोधपुर में ठंडा पड़ा हुआ जोश उफन आया। आपने अपने श्रावकों को भेजकर शास्त्रार्थ करने का चेलेन्ज दे डाला। बाईस सम्प्रदाय वालों ने उनकी यह चाल समझ तो ली, फिर भी उन्होंने चेलेन्ज स्वीकार कर लिया। साथ ही उन्होंने मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज को सूचना देने के लिए एक आदमी समदड़ी भेज दिया।

सूचना मिलते ही मुनिश्री ने समदड़ी की ओर विहार कर दिया और यथा-संभव शीघ्र बालोतरा पधार गए। डालचंदजी को पता चला तो वे सहम गए। किन्तु अब क्या हो सकता था ? उन्होंने स्वयं ही जाल फैलाया था और अब वही उसमें फँस गये थे! उसमें से बाहर निक-

लने की तरकीब सोची जाने लगी, मगर दुनिया क्या कहेगी, यह विचार परेशान कर रहा था।

आखिरकार स्वयं डालचंदजी तो अलग रहे। उन्होंने अपने शिष्य मगन मुनि को दस-बारह साधुओं और पचास श्रावकों की एक टुकड़ी के साथ भेजा। शास्त्रार्थ का स्थान सूरत-रामजी का मंदिर तथा मध्यस्थ श्रीचन्दनमलजी लोढ़ा चुने गये।

दूसरे दिन निश्चित समय पर मुनिश्री, सूरतरामजी के मन्दिर में पहुंच गये। आज भी डालचंदजी स्वामी गायब रहे; उनके शिष्य मगनजी पहुंचे। शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ।

मुनिश्री ने प्रश्न किया—आप लोग भगवान् महावीर को दीक्षा लेने के बाद छद्मस्थ-अवस्था में चूका बतलाते हैं। इसके लिए आगमप्रमाण क्या है?

मगनजी मुनि बोले—भगवान ने दीक्षा लेने के बाद दस स्वप्न देखे थे, ऐसा शास्त्रों के मूल पाठ में उल्लेख है। इसी से भगवान् का चूकना सिद्ध होता है।

मुनिश्री—भगवान् ने जो स्वप्न देखे थे वे यथार्थ ही थे। दशाश्रुतस्कंध सूत्र के पांचवें अध्ययन में उन्हें तीसरी चित्तसमाधि अर्थात् धर्मध्यान कहा है। अतः स्वप्न देखने से चूकना सिद्ध नहीं होता।

मगनजी ने इधर-उधर की थोथी दलीलें देना आरम्भ किया। समय अधिक हो जाने के कारण मध्यस्थ श्रीचन्दनमलजी ने कहा—'आज चर्चा यहीं समाप्त हो जानी चाहिए। कल मैं जोधपुर से पंडितों को बुला लूंगा। वे आकर सूत्र के अर्थ का निर्णय कर देंगे।'

दूसरे दिन लोढ़ाजी पण्डितों को बुलाने का प्रबंध कर ही रहे थे कि उन्हें पता चला—तेरहपंथ के पूज्य डालचंदजी विहार करने की तैयारी कर रहे हैं। लोढ़ाजी ने उन्हें रोकने के लिए दो आदमी उनके पास भेजे। तब उन्होंने उत्तर दिया—अब हमें यहां ठहरना नहीं कल्पता। मैं अपने साधु मगनजी को यहां छोड़ जाता हूं। वे चर्चा करेंगे।

चढ़ जा बेटा शूली पर, राम तेरा भला करेगा! गुरुजी ने अपना पिंड छुड़ाया और चेला रह गये! मगर चेला भी गुरु से कम चतुर नहीं थे। दूसरे दिन मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज शास्त्र आदि लेकर चर्चा के स्थान पर पहुंचे। उसी समय मालूम हुआ कि 'मगन' जी अपने नाम के बीच वाले अक्षर को पहला कर रहे हैं अर्थात् 'मगन'जी 'गमन' करने को तैयार हैं। मध्यस्थ श्रीचंदनमलजी को यह बतलाया गया तो वे स्वयं उनके पास पहुंचे और रुक कर शास्त्रार्थ करने के लिए आग्रह किया। मगर वह चेला ही क्या जो अपने गुरुजी का अनुसरण न करे! मगनजी मुनि भी न ठहरे और चले गये।

भद्र परिणामी सीधे-सादे मुनियों को देखकर तेरहपंथियों के जोश में उफान आ गया था। क्या पता था कि वादिगज-केसरी यहां आ धमकेगा और अपनी एक ही दहाड़ से मतवाले-हाथियों का गर्व खर्व कर देगा!

मुनि श्रीजवाहरलालजी महाराज बालोतरा में कुछ दिन ठहरे। उनके मुख से धर्म का रहस्य श्रवण कर जनता को अपूर्व बोध हुआ। सैंकड़ों व्यक्तियों ने यथायोग्य त्याग-प्रत्याख्यान किये। कईयों ने धर्म की सच्ची श्रद्धा ग्रहण की और आपको अपना गुरु बनाकर कृतार्थता समझी।

बालोतरा से विहार करके आप पंचभद्रा, समदड़ी, सिवाना, पाली, सोजत और ब्यावर में धर्मामृत की वर्षा करते हुए अजमेर पधारे।

बारहवां चातुर्मास

कुछ दिन अजमेर विराजकर मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज ब्यावर पधारे। श्रावकों के विशेष आग्रह से सं० १९६० का चातुर्मास ब्यावर में ही किया। चातुर्मास में खूब आनन्द रहा। धर्म का अच्छा उद्योत हुआ।

अजमेर जाने से पहले जब आप ब्यावर पधारे थे, तब अकस्मात् वहां डालचंदजी पधार गये। कुछ जिज्ञासु भाइयों ने यहां भी शास्त्र-चर्चा कराने का प्रयत्न किया मगर डालचंदजी चर्चा के लिए तैयार न हुए।

ब्यावर में चातुर्मास समाप्त करके मुनिश्री जयतारण पधारे। वहां तेरहपंथियों के सुप्रसिद्ध साधु फौजमलजी के साथ शास्त्रार्थ हुआ। इस शास्त्रार्थ में चार सज्जन मध्यस्थ चुने गये। उन्होंने शास्त्रार्थ संबंधी नियम बनाकर दोनों पक्ष वालों के सामने रखे और दोनों ने उन्हें स्वीकार किया। मध्यस्थों ने जो प्रारंभिक विवरण लिखा था, वह इस प्रकार है—

जयतारण शास्त्रार्थ

संवत् १९६० पौष कृष्णा तृतीया को जोधपुर राज्यान्तर्गत जयतारण नगर में बाईस सम्प्रदायान्तर्गत मुनिश्री हुक्मीचन्द्रजी महाराज की सम्प्रदाय के साधु मुनिश्री मोतीलालजी, जवाहरलालजी आदि तथा तेरहपन्थी साधु श्री डालचन्दजी की सम्प्रदाय के साधु श्री फौजमलजी, जयचन्दजी का पधारना हुआ। दोनों का आपस में शास्त्रार्थ करने का निश्चय हुआ। उसमें हम चार व्यक्तियों को दोनों तरफ से मध्यस्थ चुना गया जिनके नाम इस प्रकार हैं—

१—गान्धी सांकलचन्द	मन्दिर मार्गी
२—सेठ मुलतानमल	,,
३—व्यास रूपचन्दजी	वैष्णव
४—पंचोली उदयराजजी	,,

हम चारों ने शास्त्रार्थ के लिए नीचे लिखे नियम बनाए। सम्वत् १९५९ में बाईस सम्प्रदाय के साधु मुनिश्री मोतीलालजी महाराज व जवाहरलालजी महाराज का चातुर्मास जोधपुर में था। उस समय जवाहरलालजी की तरफ से तेरहपन्थियों के पूज्यश्री डालचन्दजी से सात प्रश्न पूछे गए थे। उनका उत्तर तेरहपन्थी श्रावक श्रीकृष्णमल्लजी ने अपने पूज्यश्री डालचन्दजी से पूछकर 'प्रश्नोत्तर' नामक पुस्तक के रूप में छपवाया था। अब यहां जयतारण में बाईस सम्प्रदाय के साधु श्री जवाहरलालजी व तेरहपन्थियों के श्री फौजमलजी विद्यमान हैं। अब जवाहरलालजी के प्रश्न और उनके उत्तरों का सत्यासत्य निर्णय हो जाना चाहिए। उसके लिए दोनों साधुओं में शास्त्रार्थ होना तय हुआ है, उसके नियम नीचे लिखे अनुसार हैं—

१—दोनों ओर से मध्यस्थ, निष्पक्ष, जैनशास्त्राभिज्ञ व प्रतिष्ठित व्यक्ति चुने जायं।

२—जो व्यक्ति मध्यस्थ चुने जायं वे शास्त्रार्थ को लेख-बद्ध करके अपने निर्णय के साथ दोनों सम्प्रदायों के श्रावकों को दे देवें।

३--दोनों तरफ के श्रावक शास्त्रार्थ में कुछ न बोलें। मध्यस्थ महोदय जैसा उचित समझें करें।

४--जो साधु शास्त्रार्थ करे वह अपने-अपने वक्तव्य को लिखित रूप में मध्यस्थों के सामने पेश करे।

५--शास्त्रार्थ के लिए स्थान तपगच्छ का उपाश्रय निश्चित किया जाय।

६--दोनों ओर के साधु अपने-अपने कल्प तक चर्चा को अधूरी छोड़कर विहार न करें।

७--शास्त्रार्थ में बत्तीस सूत्रों के मूल पाठ, अर्थ, टीका, दीपिका आदि पंचांगी प्रमाण रूप से उद्धृत की जा सकेगी।

८--समय प्रतिदिन १२ से ३ तक रहेगा।

ऊपर लिखी आठ बातों को दोनों तरफ के सन्तों ने तथा श्रावकों ने मध्यस्थों के सामने स्वीकार कर लिया। इसके बाद तय हुआ कि जोधपुर निवासी जवारमलजी गुरां सा या और कोई संस्कृत का विद्वान् संस्कृत टीका का अर्थ करने के लिए चुना जाय, वह जो अर्थ करे वह दोनों साधुओं को मान्य हो।

शास्त्रार्थ का प्रारम्भ करने के लिए तय हुआ कि जवाहरलालजी महाराज ने जो सात प्रश्न पूछे हैं तथा जिनका उत्तर 'प्रश्नोत्तर' में छपा है, सर्वप्रथम उनमें से पहले प्रश्न का निर्णय होगा। उसके बाद फौजमलजी प्रश्न पूछेंगे जिसका उत्तर जवाहरलालजी को देना होगा।

जिस पक्ष वाले इन विषयों के विपरीत चलेंगे, उन्हें दोषी समझा जायगा।

पौष कृष्णा पंचमी, बुधवार को शास्त्रार्थ प्रारम्भ करने का निश्चय हुआ।

चारों मध्यस्थों के हस्ताक्षर

१—गांधी सांकलचन्द
२—सेठ मुलतानमल
३—व्यास रूपचन्द
४--पंचोली उदयराज

यह शास्त्रार्थ एक महीने तक चलता रहा। शास्त्रार्थ में वादी और प्रतिवादी ने क्या-क्या युक्तियां और आगम के पाठ उपस्थित किये, यह विषय काफी विस्तृत है। मगर ज्ञातव्य है और महत्त्वपूर्ण भी है। अधिक विस्तृत होने के कारण उसे यहां नहीं दे रहे हैं मगर ज्ञातव्य होने से उसे देना आवश्यक भी है। अतएव वह अविकल रूप से परिशिष्ट में दिया जा रहा है। जिज्ञासु पाठक उस पर मनन करें और देखें कि किस बचपन के साथ, कितने घोर अज्ञान के अन्धकार में रहते हुए भगवान् महावीर को चूका-भूला कहने का दुस्साहस किया जा रहा है! यहां सिर्फ मध्यस्थों का अन्तिम फैसला दिया जाता है, जिससे यह प्रकट हो सके कि असत्य कब तक ठहर सकता है? असत्य वह कचकड़ा है जो सत्य की ज्योति के स्पर्शमात्र से दग्ध हो जाता है।

मध्यस्थों का फैसला

यह खुलासो जयपुर से साधुजी महाराज संवेगीजी श्री १०८ श्री शिवजीरामजी महाराजरो कियो हुओ फागण वदि ८ मितिरो गोलेचा धनरूपमलजी जोरावरमलजी रीं मार्फत मुलासो फागण वदि १० आयो। इणरो हाल ये मालूम हुवो कि श्रीवीर प्रभु ने दश स्वप्न आए

यो यथातथ्य है, मोहनीय कर्म के उदय में नहीं है और पंडित देवीशंकरजी वो पंडित बालकृष्णजी ने जो अर्थ किया है सो अशुद्ध (गलत) है और पंडित बिहारीलालजी ने जो अर्थ किया है वह शास्त्र में मिलता है, वह सत्य है। जिस वास्ते आज दिन खुलासो सुणावण ने तपगच्छ के उपासरा में आम सभा होय ने जो कुछ खुलासो जयपुर से आयो वो सुणायो गयो कि समेगीजी महाराजरो खुलासो आवणसूं वो बांचनेसुं या बात मालूम हुई कि बाईस सम्प्रदाय के साधुजी जवाहरलालजी का प्रश्न का कहना सत्य है और जो दस स्वप्न श्री महावीर स्वामी ने आये वह मोहनीय कर्म के उदय नहीं हैं। और तेरापंथियां का साधुजी फौजमलजी का उत्तर का कहना असत्य है। वह स्वप्न महावीर स्वामी ने आये सो मोहनीय कर्म के उदय नहीं है। सो सभाजनों से बीनती है। सम्वत् १९६० रा मिति फागुण सुदि ९ आदित्यवार।

द०—गांधी सांकलचन्द द०—व्यास रूपचन्द

द०—सेठ मुलतानमल द०—पंचोली उदयराज

प्रथम तो वादी और प्रतिवादी का कथन ही यह साबित कर देगा कि कौन पक्ष कितने गहरे पानी में था? संस्कृत भाषा का साधारण अभ्यासी भी समझ सकता है कि फौजमलजी जिस पंक्ति के प्रमाण से (एपाञ्च पिशाचाद्यर्थानां मोहनीयादिभिः स्वप्नफलविषयभूतैः सह साधर्म्यं स्वयं समूह्यम्) स्वप्नों को मोहनीय कर्म के उदय से होना बतलाते हैं, उसमें इस बात की गंध-मात्र भी नहीं है। बेचारे फौजमलजी संस्कृत तनिक भी समझते होते तो विद्वानों के समक्ष इस प्रकार हास्यास्पद कथन कदापि न करते। उन्हें इस पंक्ति में 'मोहनीय' शब्द नजर आगया और इसी बूते पर वे अपनी बात का समर्थन करने बैठ गये। इस पंक्ति का सरल और सीधा-सा अर्थ इतना ही है कि स्वप्नमें देखे हुए पिशाच आदि के साथ मोहनीय आदि कर्मों की जो समानता यहां विवक्षित है वह स्वयं सोच लेनी चाहिए। इस सीधे-से अर्थ को भी समझने में जो अयोग्य है वह किस योग्यता के बल पर दिव्यज्ञानी महाप्रभु महावीर को चूका बतलाता है! यह योग्यता किसी ऐसे-वैसे की नहीं, सारे सम्प्रदाय में जो महापंडित गिना जाता था उस व्यक्ति की यह योग्यता है!

केवल ज्ञान प्राप्त होने से पहले की बात है। एक बार भगवान् विहार कर रहे थे। गोशालक अपने-आप भगवान् का शिष्य बनकर उनके साथ रहने लगा था। मार्ग में एक तापस आतापना लेकर तपस्या कर रहा था। उसके सिर में बहुत सी जुंएं थीं। वे नीचे गिर रही थीं। तापस उन्हें उठाकर फिर सिर में रख लेता था। गोशालक ने यह दृश्य देखकर मजाक किया। इससे तापस को बहुत क्रोध आया और उसने तेजोलेश्या फेंकी। गोशालक का शरीर जलने लगा। भगवान् ने अनुकम्पा करके शीतल लेश्या द्वारा तेजोलेश्या को शांत कर दिया।

तेरहपंथ-मत के प्रवर्त्तक भिक्खूजी ने जब मरते हुए जीव को बचाने में एकांत पाप बताना शुरू किया तो प्रतिपक्षी उनके सामने भगवान् महावीर की इस अनुकम्पा का उदाहरण देकर जीव-रक्षा का समर्थन करने लगे। तेरहपंथियों को इस उदाहरण का कोई उचित उत्तर नहीं सूझा। उचित तो यह था कि इतने स्पष्ट उदाहरण के रहते हुए वे दुराग्रह ही न करते या दुराग्रह का परित्याग कर देते। मगर कर्मोदय के कारण उन्हें सत्य को स्वीकार करने का साहस न हुआ। उन्होंने अपनी भूल छिपाने का ऐसा अनोखा उपाय खोज निकाला जो संसार के पर्दे पर अन्यत्र

कहीं नहीं मिल सकता। उन्होंने भगवान् को ही भूला बताना शुरू कर दिया। धन्य हैं ऐसे भक्त, जो अपने भगवान् को भूला बतलाने में संकोच नहीं करते। ठीक ही कहा है—

भगत जगत में हो गये, होंगे तथा अनेक।
पर भूले भगवान् का भक्त पंथ है एक॥
कहां दयामय दानमय, जिनवर ! तेरा पंथ।
दया-दान-द्वेपी कहां, कलि का तेरापंथ॥

मगर भगवान् की भूल-सिद्ध करने के लिए भी प्रमाण की आवश्यकता थी; अतः उन्होंने दस स्वप्नों के समय भगवान् को मोहनीय का उदय बतलाना शुरू कर दिया। मगर यह भी कैसे सिद्ध किया जाय ? जब यह प्रश्न सामने आया तो शास्त्र का अर्थ ही उलटा-पुलटा करने लगे। जब सेर को सवा सेर मिल गया और काम बनते न दिखाई दिया तो ब्राह्मण पंडितों को लालच देकर इच्छानुसार उलटा अर्थ करवाया और भगवान् को शठ और कपटी तक कहलवाया। (देखो पंडित देवीशंकर का वक्तव्य, जिसमें उन्होंने लिखा है कि शठ होने के कारण भगवान् के चित्त में समाधि नहीं थी, इत्यादि)

एक असत्य को छिपाने के लिए अनेक असत्यों की कल्पना करनी पड़ती है और नाना प्रकार के जाल रचने पड़ते हैं। मनुष्य की यह दुर्बलता अत्यंत दयनीय है। शास्त्रार्थ में विजय प्राप्त करके मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज कालू, केकिन, बलुन्दा नागौर आदि क्षेत्रों को पावन करते हुए भीनासर पधारे।

भीनासर में पदार्पण करते समय मुनिश्री की अवस्था २६ वर्ष की थी। शरीर स्वभावतः सुन्दर था। यौवन और ब्रह्मचर्य के प्रताप से उसमें अद्भुत तेज और लावण्य की आभा चमकती थी। तपस्या ने आपका प्रभाव बढ़ा दिया था। आप में गजब की आकर्षण-शक्ति उत्पन्न हो चुकी थी। गौर वर्ण, विशाल और दीप्तिमान लोचन, उन्नत और चमकता हुआ भाल, सौम्य मुख-मंडल और दूसरी शरीर-सम्पत्ति के साथ सिंह-गति से जिस समय भीमासर में मुनिश्री ने प्रवेश किया तो लोग आश्चर्य करने लगे। उस समय ऐसा मालूम होता था, मानो सूर्य का समस्त तेज छीनकर कोई राजकुमार दीक्षित हुआ है।

अद्भुत शरीर-सौभाग्य के साथ आपकी वाणी में भी अमृत की मिठास थी और विचारों में मौलिकता थी। विषय-प्रतिपादन की शैली रोचक, सरल और अत्यन्त भावपूर्ण थी। कहानी कहने का आपका ढंग निराला ही था। साधारण-से-साधारण कथानक में भी वे जान डाल देते थे। अत्यन्त परिचित कथा भी जब उनके मुख से सुनी जाती थी तो अपूर्व जान पड़ती थी। कहानी में वे ऊंचे-से-ऊंचे तत्त्व का सरलता के साथ समन्वय कर देते थे।

भीनासर में मूर्तिपूजा के विषय में यतियों के साथ भी आपकी चर्चा हुई। आपकी युक्तियां अकाट्य होती थीं। आपकी प्रतिभा और तार्किकता आश्चर्य-जनक थी। उस समय के साधुओं और श्रावकों के विचार से हमारे चरितनायक मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज ही सम्प्रदाय में सबसे अधिक तेजस्वी साधु थे!

भीनासर के प्रमुख तेरहपन्थी श्रावक भी मुनिश्री के पास तत्त्वचर्चा के लिए आया करते

थे। कुछ दिनों के संसर्ग के फलस्वरूप उन्हें दया-दान को एकान्त पाप समझने की अपनी भूल मालूम हो गई और वे मुनिश्री के भक्त बन गए।

तेरहवां चातुर्मास

भीनासर से मुनिश्री बीकानेर पधारे। अब आपकी कीर्ति सर्वत्र फैल चुकी थी। लोग आपकी योग्यता देखकर प्रभावित थे। बीकानेर के विशाल संघ ने मुनिश्री से बीकानेर में ही चातुर्मास करने की प्रार्थना की। आपने प्रार्थना अंगीकार करके वहीं चातुर्मास व्यतीत किया। चातुर्मास में सामायिक, पौषध, व्रत, प्रत्याख्यान, दान आदि धर्मकार्य खूब हुए।

चातुर्मास के पश्चात् बीकानेर से विहार कर मुनिश्री नागौर पधारे। नागौर से अजमेर होते हुए आप आचार्य महाराज के साथ नसीराबाद पहुंचे।

चौदहवां चातुर्मास

नसीराबाद में पूज्यश्री ने आपको उदयपुर में चातुर्मास करने का आदेश दिया। पूज्य महाराज का आदेश शिरोधार्य करके आप अजमेर, ब्यावर, पाली मारवाड़-जंक्शन (खारची), सादड़ी आदि स्थानों में विचरते और धर्मोपदेश देते हुए उदयपुर पधारे। सम्वत् १९६२ का चातुर्मास उदयपुर में किया।

उदयपुर का यह चातुर्मास बहुत महत्वपूर्ण रहा। मुनिश्री के साथ कई तपस्वी सन्त थे। उन्होंने लम्बी-लम्बी तपस्याएं कीं। श्रावकों ने विविध प्रकार के त्याग-प्रत्याख्यान आदि किये और अन्य धार्मिक कार्य किये। कई कसाइयों ने हिंसा-वृत्ति त्याग कर अपना जीवन सुधारा।

इस चातुर्मास में उदयपुर में नौ सन्त थे, उनमें से छः संतों ने इस प्रकार तपस्या कीः—

१—मुनिश्री मोतीलालजी महाराज	४१	उपवास
२—मुनिश्री राधालालजी महाराज	३०	,,
३—मुनिश्री पन्नालालजी महाराज	६१	छाछ के पानी के आधार पर
४—मुनिश्री धूलचन्दजी महाराज	३५	,,
५—मुनिश्री उदयचंदजी महाराज	३१	,,
६—मुनिश्री मयाचन्दजी महाराज	४१	,,

तपस्या एक अमोघ शक्ति है। जैन धर्म में तप की महिमा का विशद वर्णन है और वह धर्म का प्रधान अंग माना गया है। हमारे चरितनायक तप के विषय में अत्यन्त मार्मिक और प्रभावपूर्ण उपदेश फरमाते थे। उनके निम्नलिखित वाक्य आज भी अंतःकरण में बिजली का संचार कर देते हैं—

'तप में क्या शक्ति है, सो पूछो उनसे जिन्होंने छः-छः महीने तक निराहार रहकर घोर तपश्चरण किया है और जिसका नाम लेने मात्र से हमारा हृदय निष्पाप और निस्ताप बन जाता है। तप में क्या बल है, यह उस इन्द्र से पूछो जो महाभारत के कथनानुसार अर्जुन की तपस्या को देखकर कांप उठा था और जिसने अर्जुन को एक दिव्य रथ प्रदान किया था।'

'तप एक प्रकार की अग्नि है। जिसमें समस्त अपवित्रता, सम्पूर्ण कल्मष और समग्र मलीनता भस्म हो जाती है। तपस्या की अग्नि में तप्त होकर आत्मा सुवर्ण की भांति तेज से विराजित हो जाता है। अतएव तपधर्म का महत्व अपार है।

'जो तप करता है उसकी वाणी पवित्र और प्रिय होती है और जो प्रिय, पथ्य तथा सत्य बोलता है उसी का तप, तप कहलाने योग्य होता है। तपस्वी को असत्य या अप्रिय भाषण करने का अधिकार नहीं है। तपस्वी सत्य और प्रिय भाषा ही बोल सकता है। उसे क्लेशजनक पीडाकारक या भयोत्पादक वाणी नहीं बोलना चाहिए। तपस्वी की वाणी में अमृत का माधुर्य होता है। भयभीत प्राणी उसकी वाणी सुनकर निर्भय बनता है। तपस्वी अपनी जिह्वा पर सदा नियंत्रण रखता है। उसकी वाणी शुद्धि और पवित्रता से पूत होती है।

यही नहीं, तपस्वी में वाचिक पवित्रता के साथ मानसिक पवित्रता भी होती है। अगर मधुर भाषण मन की अपवित्रता का आवरण बन जाय तो तपस्वी की तपस्या निरर्थक हो जाती है। जिस तप से मन शरद ऋतु के चन्द्रमा के समान निर्मल बन जाता है वह सच्चा तप है। मन का रजोगुण या तमोगुण से अतीत हो जाना ही निर्मलता है। तपस्वी को ऐसी निर्मलता प्राप्त करने के लिए सदा जागृत रहना चाहिए।'

'चक्रवर्ती भरत महाराज के पास सेना, अस्त्र-शस्त्र और शरीर के बल की कमी नहीं थी। लेकिन जब देवों से युद्ध का समय आता था तब वे तेला करके युद्ध किया करते थे। इसका तात्पर्य यह हुआ कि तेले का बल चक्रवर्ती के समग्र बल से भी अधिक होता है और तपस्या द्वारा देव भी पराजित किये जा सकते हैं।

यह तप की महिमा है। तप के प्रभाव से दुस्साध्य कार्य भी सुसाध्य हो जाते हैं। आत्मा जब तपस्या के तेज से तेजस्वी हो जाता है तो उसका दूसरों पर भी प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। उदयपुर के इस चातुर्मास में तपस्वी संतों की तपस्या का दूसरे व्यक्तियों पर अच्छा प्रभाव पड़ा। तपस्या के अन्तिम दिन सैकड़ों बकरों को अभयदान दिया गया। बहुत-से कसाई भी मुनिश्री का उपदेश सुनने तथा तपस्वियों के दर्शन करने आये। मुनिश्री ने अहिंसाधर्म पर प्रभावशाली भाषण दिया। 'हिंसा से प्राप्त होनेवाले दुखों का और अहिंसा से मिलनेवाले सुखों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया। प्रत्येक प्राणी किस प्रकार जीवित रहना चाहता है और मृत्यु के नाम मात्र से भयभीत हो जाता है, इसका सजीव चित्र खींच दिया। श्रोताओं पर आपके भाषण का जादू सरीखा असर पड़ा। महाराज श्री का कथन वास्तम में बड़ा ही ओजस्वी होता था। अहिंसा के विषय में आपने एक जगह कहा है—

'सब प्राणियों ने अपनी-अपनी रक्षा के लिए और खाने के लिए दाढ़ व दांत, देखने के लिए नेत्र, सुनने के लिए कान, सूंघने के लिए नाक, चखने के लिए जीभ आदि अंग-उपांग अपने-अपने पूर्व-कर्म के अनुसार प्राप्त किये हैं। इनको छीन लेने का मनुष्य को कोई अधिकार नहीं है। जो मनुष्य मक्खी के पंख को भी नहीं बना सकता उसको उसे नष्ट करने का अधिकार नहीं है। परन्तु स्वार्थ की ओट में कुछ भी नहीं दीखता। जो अंग-उपांग उस प्राणी के लिए उपयोगी हैं, मनुष्य कहा करते हैं कि यह तो हमारे खाने लिए पैदा किया गया है! ऐसा कहनेवालों से सिंह यदि मनुष्य की भाषा में कहे कि—तू मेरे खाने के लिए पैदा किया गया है, तो मनुष्य उसे क्या जबाब देगा ?'

मारे जाने वाले पशुओं का हृदय हिला देने वाला करुणापूर्ण वर्णन सुनकर कसाइयों का हृदय भी पिघल गया। किसी पशु के प्राण ले लेना जिनके लिए मामूली बात थी, जिनका दैनिक

काम भी यही था और जिनके हृदय में घोर क्रूरता का साम्राज्य स्थापित हो चुका था, उन कसाई भाइयों का चित्त भी मुनिश्री का उपदेश सुनकर द्रवित होगया। उसी समय कसाइयों के मुखिया किसनाजी पटेल ने खड़े होकर प्रतिज्ञा ली—

'महाराज! मैं जब तक जीऊंगा, कसाईपना नहीं करूंगा। कभी किसी जीव को नहीं मारूंगा और न मांस खाऊंगा। मारने के उद्देश्य से बकरा आदि पशुओं का व्यापार भी नहीं करूंगा।

किसनाजी पटेल ने अपनी प्रतिज्ञाओं का बराबर पालन किया। उसका एक मुकदमा अदालत में चल रहा था। उसके लगभग तीन हजार रुपये अटके हुए थे। प्रतिज्ञाएं लेने के कुछ ही दिन बाद उसकी जीत हो गई और उसे तीन हजार रुपये मिल गये। सरल हृदय किसना ने उसे धर्म का प्रताप समझा। इससे अहिंसा धर्म के प्रति उसकी श्रद्धा और बढ़ गई। उसने दूसरे भाइयों को भी हिंसावृत्ति से दूर करने का प्रयत्न किया। उसके प्रयत्न से ग्यारह कसाइयों ने पशु मारने का व्यवसाय छोड़ दिया और दूसरा धंधा अख्तियार किया।

श्रावकों ने उस समय इक्कीस रंगी सामायिकें की थीं। इसमें ४४१ आदमी सम्मिलित होते हैं। कई श्रावकों ने धर्मोत्साह के रंग में रंगकर एक साथ सौ-सौ सामायिकें कीं। उस समय वर्तमान आचार्य महोदय पूज्यश्री गणेशीलालजी महाराज गृहस्थावस्था में थे, तथापि आपके संस्कारों में धार्मिकता की गहरी छाप थी। आपने भी ४१ सामायिकें एक साथ की थीं। चरित-नायक के उदयपुर के पहले चातुर्मास में आपने सम्यक्त्व ग्रहण किया था और इस चातुर्मास में आप चरित्र की ओर काफी कदम बढ़ा चुके थे। प्रकृति अलक्षित रूप में चरितनायक के उत्तराधिकारी का निर्माण करने में लगी थी।

उस समय उदयपुर स्टेट के प्रधानमंत्री राजेश्री बलवन्तसिंहजी साहब कोठारी मुनिश्री के गाढ़ परिचय में आये और परम भक्त बन गये। आपका प्रतिष्ठित परिवार आज तक पूज्यश्री के परम भक्तों में गिना जाता है। लाला केशरीलालजी, लाला हरभजनलालजी आदि उच्च राज्य-पदाधिकारियों ने भी मुनिश्री के व्याख्यानों से खूब लाभ उठाया। महद्राजसभा कौंसिल के मेम्बर श्रीमदनमोहनलालजी पर तो इतनी गहरी छाप पड़ी कि वे महाराजश्री के परम भक्त बन गये।

मुनिश्री मोतीलालजी महाराज की तपस्या के पारणे के दिन अनेक व्यक्तियों ने विविध प्रकार के व्रत ग्रहण किये। लाला केशरीलालजी और उनकी धर्मपत्नी ने आजीवन ब्रह्मचर्य-व्रत धारण किया। कायस्थ होने पर भी इस परिवार को मुनिश्री के प्रति बड़ी ही श्रद्धा भक्ति थी।

उत्तराधिकारी की प्राप्ति

मुनिश्री का व्याख्यान सुनने के लिए जो बहुसंख्यक जनता एकत्र होती थी, उनमें श्रीगणेशीलालजी मारू का नाम खासतौर पर उल्लेखनीय है। वे प्रतिदिन व्याख्यान सुनते थे और जो कुछ सुनते थे उसे अपने कानों के द्वारा अपने अन्तरंग तक पहुंचाते जाते थे। सोलह वर्ष की नवीन उम्र थी मगर उनके धार्मिक संस्कार बहुत पुराने थे। उन संस्कारों का आरंभ कब, कहां और किस प्रकार हुआ, यह नहीं कहा जा सकता। उनके संस्कार पुराने होने के कारण इसी प्रकार आच्छादित थे जैसे भस्म से अग्नि आच्छादित रहती है। उसी समय मुनिश्री जवाहरलालजी

महाराज के प्रवचनरूपी प्रबल पवन से ऊपर का आच्छादन दूर हो गया और उसके भीतर की ज्योति चमकने लगी। अन्तःकरण उद्भासित होने लगा। जहां ज्ञान का प्रकाश है वहां मोह-ममता का तिमिर टिक नहीं सकता। अतः मारूजी के हृदय में वैराग्य की भावना प्रबल हो उठी। भाद्रपद शुक्ला नवमी को आपने ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार किया और आजीवन चौविहार का खंध कर लिया। उसी समय आपने दीक्षा लेने का अपना निश्चय भी प्रकट कर दिया। चातुर्मास समाप्त होने पर मार्गशीर्ष कृष्णा प्रतिपद् को आपने दीक्षा अंगीकार कर ली। उसी समय एक दूसरे सद्‌गृहस्थ श्रीपन्नालालजी भी दीक्षित हो गये। दीक्षा के अवसर पर बड़े-बड़े राज्याधिकारी तथा हजारों की संख्या में श्रावक उपस्थित थे।

दीक्षा लेने के पश्चात् मुनिश्री गणेशीलालजी महाराज ने संस्कृत भाषा और जैनशास्त्रों का अध्ययन आरम्भ किया। उर्दू और फारसी आप पहले से ही जानते थे। आजकल आप ही सम्प्रदाय के आचार्य हैं। आपका विशेष परिचय आगे दिया जायगा।

इस प्रकार उदयपुर का यह महत्त्वपूर्ण चातुर्मास समाप्त करके चरितनायक ने वहां से विहार किया। अनेक स्थानों में धर्मामृत बरसाते हुए आप नाथद्वारा पधारे। जहां कहीं मुनिश्री पधारे वहीं लोगों में जागृति हुई। उदयपुर के प्रधानमंत्री कई बार आपके दर्शन करने आये। गोगुंदा ग्राम के रावजी भी व्याख्यान सुनने आये और मुनिश्री के प्रति श्रद्धा-भक्ति लेकर लौटे।

नाथद्वारा में उस समय मुनिश्री मुन्नालालजी महाराज विराजमान थे। मुनिश्री जवाहर-लालजी महाराज भी वहां पधार गये। कुछ दिनों बाद आचार्य प्रवर पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज के भी उसी ओर विहार करने के समाचार प्राप्त हुए। मुनिश्री को इस संवाद से बड़ी प्रसन्नता हुई। पूज्यश्री के आगमन के समय आप सामने गये और भक्तिपूर्वक उनके दर्शन किये। पूज्यश्री के साथ तपस्वी मुनि बालचन्द्रजी भी थे। जब पूज्यश्री नाथद्वारा से तीन मील दूर कोठारिया ग्राम में पहुंचे तो अकस्मात तपस्वीजी को लकवा मार गया। कई साधुओं ने तपस्वीजी को उठाया और नाथद्वारा ले आये। उस समय नाथद्वारा में २३ सन्त एकत्र हुए।

नाथद्वारा में कुछ दिनों तक पूज्यश्री तथा अन्य स्थविर संतों की सेवा करके मुनिश्री ने विहार कर दिया। राजनगर, कांकरोली, कुमारिया, मानवली आदि स्थानों में उपदेश-गंगा बहाते हुए आप उंटाला पधारे। वहां से उदयपुर में पूज्यश्री के पुनः दर्शन करते हुए आपने दो ठाणा से झालावाड़ की ओर विहार किया। आपके साथ उस समय मुनिश्री बड़े चांदमलजी महाराज थे। उंटाले से झालौड़ (झालावाड़) सोलह मील दूर है। विकट पहाड़ी पथ है। मुनियों को मार्ग में आहार-पानी मिलना कठिन है। फिर भी मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज ने इन कठिनाइयों की परवाह नहीं की और आने वाली कठिनाइयों का आनन्दपूर्वक सत्कार करते हुए झालौड़ पधार गये। वहां के रावजी ने बड़े प्रेम से मुनिश्री के व्याख्यानों से लाभ उठाया। धीरे-धीरे उन पर जैनधर्म की गहरी छाप पड़ गई।

झालावाड़ से फिर नाथद्वारा होते हुए आप गंगापुर पधारे। गंगापुर में कुछ तेरहपंथी भाइयों से चर्चा हुई। उसके बाद आप पोहना पहुंचे। यहां भी बहुत से तेरहपन्थी भाई आपके पास शंका-समाधान करने आया करते थे। मुनिश्री उन्हें समभाव से शास्त्रीय प्रमाणों के

साथ तत्त्व समझाते और उनकी शंकाओं का सन्तोषजनक समाधान करते थे। फलस्वरूप अनेक तेरहपंथी आपके भक्त बन गए।

पोहना के पश्चात् आप पूर पधारे। यहां बाईस सम्प्रदाय के पांच-सात घर थे और तेरहपन्थी गृहस्थों के घर ज्यादा थे। तेरहपन्थी गृहस्थों ने मुनिश्री को ठहरने के लिए मकान देने तक की उदारता न बतलाई। अन्त में आप जैन-मन्दिर में ठहरे। पूर में उस समय तेरहपन्थी साधु भी मौजूद थे। पहले उन्होंने शास्त्रार्थ करने की इच्छा प्रदर्शित की मगर जब मुनिश्री का पूरा परिचय उन्हें मिला तो उनकी इच्छा गर्भ में ही विलीन हो गई!

पूर से विहार करके आप भीलवाड़ा, बेगूं, खदवासा होते हुए सिंगोली पधारे। सिंगोली मुनिश्री मोतीलालजी महाराज की जन्मभूमि है। वहां के लोगों का अधिक आग्रह देख मुनिश्री वहां मासकल्प विराजे। वहां से बेगूं होते हुए पारसोली पधारे। पारसोली के रावजी पर आपके उपदेशों का अच्छा असर पड़ा। उन्होंने कई प्रकार के त्याग-प्रत्याख्यान किये और पशु-हिंसा का त्याग किया। वहां से आप चित्तौड़ पधारे। चित्तौड़ के हाकिम साहब ने आपका उपदेश सुनकर कई प्रकार के त्याग-प्रत्याख्यान किए।

चित्तौड़ से राशमी, अरणिया, खाखला, पोटला, गंगापुर, साहड़ा, कोशीथल, देवरिया और मोकुंदा होते हुए मुनिश्री आमेट पधारे। यहां कई तेरहपन्थी भाई धर्म-चर्चा करने आये और मुनिश्री ने उनका सन्तोषजनक समाधान कर दिया। आमेट से झिलुरा, देवगढ़, मदारिया, निंबाहेड़ा, बोराना होते रायपुर पधारे।

सुगनचंदजी कोठारी को प्रतिबोध

अजमेर के पास मसूदा नाम का एक सम्पन्न ठिकाना है। वहां का कोठारी परिवार प्रतिष्ठित और विशाल है। इस परिवार के श्री सुगनचन्दजी कोठारी रायपुर में मुनिश्री के दर्शनार्थ आये। आप वहां नायब हाकिम थे। आपके पूर्वज जैन थे मगर आप आर्यसमाजी हो गये थे। अच्छे कार्यकर्त्ता, सुधारक और समझदार सज्जन थे। जैन-धर्म के वास्तविक स्वरूप का ठीक-ठीक प्रतिपादन करने वाले योग्य विद्वान् का समागम न होने से उनकी श्रद्धा बदल गई थी। उन्होंने यह समझ रखा था कि जैनधर्म में बाह्य क्रियाकाण्ड ही मुख्य है, आत्म-शान्ति का असली मार्ग वहां नहीं है। जैन-धर्म एकान्त त्याग का विधान करके अकर्मण्यता की ओर प्रेरित करता है।

मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज के व्याख्यान सुनने से और उनके साथ धर्म-चर्चा करने से आपको अपना भ्रम मालूम होने लगा। आपके विचारों में परिवर्त्तन हो गया। एक दिन व्याख्यान-परिषद् में ही खड़े होकर उन्होंने कहा 'महाराजश्री मेरा ख्याल था कि जैन-धर्म सिर्फ बाहरी आडम्बरों से ही भरा है। उसमें कोई सारगर्भित बात नहीं है। मुझे खयाल भी नहीं था कि आप जिन बातों का उपदेश दे रहे हैं वे जैन धर्म में हो सकती हैं। आपके भाषण से मेरी आंखें खुल गईं। अब मैं समझा कि जैनधर्म में आत्म-शान्ति के सभी आवश्यक तत्त्व विद्यमान हैं।

उसी समय से कोठारी सुगनचन्दजी की श्रद्धा में परिवर्त्तन हो गया। आप फिर जैनधर्म के अनुरागी और पूज्यश्री के भक्त बन गये।

रायपुर में धर्म का उद्योत करके मुनिश्री छह अन्य सन्तों के साथ गंगापुर पधारे।

पंद्रहवां चातुर्मास

संवत १९६३ का मुनिश्री का चातुर्मास गंगापुर में ही व्यतीत हुआ। इस चातुर्मास में महाभाग मुनिश्री मोतीलालजी महाराज ने ३३ दिन की तपस्या की। मुनिश्री पन्नालालजी और गंगारामजी महाराज ने भी लम्बी-लम्बी तपस्याएं कीं। मुनिश्री घासीलालजी महाराजने अमरकोष सीखा। मुनिश्री गणेशीलालजी महाराज (वर्त्तमान आचार्य) ने लगभग ४० थोकड़े, दशवैकालिक सूत्र मूल, सात अध्ययन का शब्दार्थ तथा उत्तराध्ययन के ९ अध्ययन कंठस्थ किये। तपस्याओं के पूर के अवसर पर अनेक व्रत-प्रत्याख्यान एवं खंध हुए। बाहर से भी अनेक सज्जन धर्म की प्यास बुझाने के लिए मुनिश्री की सेवा में पहुँचे। मुनिश्री के प्रभावशाली उपदेशों से प्रभावित होकर बहुत से लोगों ने मदिरा, मांस, पर-स्त्री-गमन आदि का त्याग किया। माहड़ा एवं राशमी के हाकिम साहबान तथा अन्य जैनेतर भाइयों ने भी मुनिश्री के उपदेश से अच्छा लाभ उठाया।

गंगापुर का चातुर्मास पूर्ण करके आप लाखोला, साड़ा, पोटला, राशमी होते हुए कपासन पधारे। कपासन से आकोला होते हुए बड़ी सादड़ी पधार गये। उस समय बड़ी सादड़ी में आचार्य महाराज पूज्यश्री १००८ श्री श्रीलालजी महाराज विराजमान थे। उनके दर्शन करके मुनिश्री को अपार हर्ष हुआ।

मुनिश्री लखमीचन्दजी के संसारावस्था के पुत्र श्री पन्नालालजी, आपकी पत्नी और श्री रतनलालजी की दीक्षा इसी समय हुई। श्रीरतनलालजी बाल-ब्रह्मचारी और होनहार थे किन्तु आयुष्य की कमी के कारण स्वर्गवासी हो गये।

मुनिश्री ने विभिन्न स्थानों पर विचरकर जो धर्म-प्रचार किया था, उसके लिए पूज्यश्री ने हार्दिक संतोष प्रकट किया। वहां से अलग विचरकर आपने कानोंड़ में फिर पूज्यश्री के दर्शन किए।

कानोंड़ से विहार करके आप डूंगरा, नकुम, छोटी सादड़ी, निंबाहेड़ा, जावद, नीमच, मन्दसौर, सीतामऊ, नगरी, जावरा होते हुए सैलाना पधारे। सैलाना में बाजार में आपका पब्लिक व्याख्यान हुआ। वहां से खाचरौद होते हुए रतलाम पधारे।

इस लम्बे प्रवास में मुनिश्री ने सर्वत्र हजारों व्यक्तियों को आत्म-कल्याण का प्रशस्त पथ प्रदर्शित किया। बहुत से मूक पशुओं को अभय-दान मिला। बहुतों को मदिरा, मांस, पर-स्त्री-गमन आदि के पापों से बचाया। बड़े-बड़े ठाकुरों, जागीरदारों, सरदारों और प्रसिद्ध शिकारियों को शिकार के घोर पाप से जिंदगी भर के लिए बचा दिया।

सोलहवां चातुर्मास

वि० सं० १९६४ में आपका चातुर्मास ठाणा आठ से रतलाम में हुआ। वहां विराजने से बहुत उपकार हुआ। प्रतिदिन हजारों व्यक्ति आपके व्याख्यान से लाभ उठाते थे। व्याख्यान में सूत्रकृतांग और भगवती सूत्र का सरल भाषा में स्पष्टीकरण किया जाता था। स्वतन्त्र-रूप से संस्कृत भाषा का अध्ययन न करने पर भी अपनी अध्ययनशीलता, क्षयोपशम की प्रबलता, जन्म-जात प्रतिभा और शास्त्रीय विषयों के सूक्ष्म परिचय के कारण आप सूत्रकृतांग की टीकाओं का आशय भली-भांति समझ लेते और श्रोताओं को समझाते थे। मुनिश्री दौलतऋषिजी महाराज

तथा गोदाजी मालवी, सेठ अमरचंदजी, रूपचंदजी, हीरालालजी तथा इन्द्रमलजी कावड़िया आदि गृहस्थ दोपहर के समय आपसे भगवती सूत्र का वांचन, मनन, श्रवण करने आया करते थे और मुनिश्री की मार्मिक विवेचना सुनकर अत्यन्त हर्षित होते थे।

इस चातुर्मास में भी अनेक सन्तों ने तपस्याएं कीं। वह इस प्रकार हैं—

१—मुनिश्री मोतीलालजी महाराज ४० उपवास

२—मुनिश्री राधालालजी महाराज ४० उपवास

३—मुनिश्री पन्नालालजी महाराज ४१ उपवास

४—मुनिश्री उदयचन्दजी महाराज ३६ उपवास

मुनिश्री मोतीलालजी महाराज की तपस्या के पारणे के दिन करीब १२० खंध हुए। तरह-तरह के त्याग-प्रत्याख्यान हुए। पारणा के दिन मुनिश्री मोतीलालजी महाराज स्वयं भिक्षा के लिए गए। इसका जनता पर बड़ा प्रभाव पड़ा।

चातुर्मास समाप्त होने के अनन्तर मुनिश्री परबतगढ़, बदनावर होते हुए कोद पधारे। कोद के ठाकुर साहब ने बड़ी श्रद्धा-भक्ति के साथ मुनिश्री के उपदेश सुने। बहुत से लोगों ने शराब, आदि मादक द्रव्यों का और मांस आदि अभक्ष्य वस्तुओं का त्याग किया। तीस-चालीस खंध हुए।

कोद से विहार करके विड़वाल, देसाई, कानून, नागदा होते हुए आप धार पधारे। मुनिश्री जहां भी पहुंचे, सर्वत्र जनता को दुर्व्यसनों से छुड़ाया। कोद के ठाकुर साहब ने भक्ति-भाव-पूर्वक मुनिश्री का उपदेश सुना और आभार माना। विड़वाल के ठाकुर साहब भी व्याख्यान सुनते तथा शंका-समाधान करते थे। आपने मुनिश्री के समक्ष कई त्याग-प्रत्याख्यान किये।

मुनिश्री के आगमन से धार की जनता में आनन्द की लहर दौड़ गई। प्रतिदिन बहुसंख्यक श्रोता आपके व्याख्यानों से लाभ उठाने लगे। वहां के सुप्रसिद्ध सेठ मोतीलालजी गेंदालालजी, और कन्हैयालालजी आदि का उत्साह विशेष रूप से प्रशंसनीय था। मुनिश्री के कई जाहिर व्याख्यान हुए। धार रियासत के बड़े-बड़े सरदार तथा राज्य-पदाधिकारी आपके व्याख्यानों से लाभ उठाने लगे। मुनिश्री के व्याख्यान की प्रशंसा सुनकर धार-नरेश ने भी व्याख्यान सुनने की इच्छा प्रदर्शित की। मगर उसी समय अचानक कार्यवश उन्हें बाहर चला जाना पड़ा।

धार से विहार कर मुनिश्री दिसाई, राजगढ़, पटलावद और कुशलगढ़ होते हुए और उपदेशामृत की वर्षा करके भव्यजीवों का कल्याण करते हुए बाजणा पधारे।

पशु-बलि बन्द

बाजणा तहसील में अधिकांश गांव भीलों के हैं। उनमें मदिरा और मांस का प्रचार अत्यधिक था। वे देवी-देवताओं के उपासक थे और नवरात्रि में उनके सामने भैंसों तथा बकरों की बलि चढ़ाया करते थे। मुनिश्री जब बाजणा पधारे, उस समय मेहता तखतसिंह जी वहां तहसीलदार थे। उन्हें धर्म से बहुत प्रेम था। वह मुनिश्री के भी परम भक्त थे और चाहते थे कि किसी प्रकार भीलों में अच्छे संस्कारों का बीजारोपण किया जाय। भीलों की यह निरर्थक हिंसावृत्ति, जो धर्म के नाम पर प्रचलित है और उन्हें दयाहीन बनाये हुए है, रोकी जाय।

मुनिश्री के आगमन से मेहताजी को अपनी चिरकालीन अभिलाषा पूरी होती नजर आने लगी। उनके तथा श्री जवाहरलालजी और त्रिलोकचन्दजी आदि मुख्य व्यक्तियों के प्रयत्न से लग-

भग ७० गांवों के पटेल मुनिश्री का व्याख्यान सुनने आये। उपदेश इतना प्रभावजनक हुआ कि हृदय तक असर कर गया। सरल हृदय पटेलों पर व्याख्यान का तत्काल प्रभाव पड़ा। उन्होंने खड़े होकर प्रतिज्ञा ली कि–हम लोग अपने-अपने गांव में,दशहरे के अवसर पर देवी के सामने भैंसों और बकरों की बलि नहीं चढ़ायेंगे और दूसरों को भी रोकने का प्रयत्न करेंगे।' सभी पटेलों ने एक प्रतिज्ञा-पत्र पर अपने-अपने अंगूठे लगाए और वह प्रतिज्ञा-पत्र वहां के श्रावकों को सौंप दिया। श्रावकों ने इस पवित्र प्रतिज्ञा का सत्कार करने के उद्देश्य से सभी पटेलों को पगड़ी बंधाई और प्रेम के साथ उन्हें विदा दी। इस प्रकार मुनिश्री के उपदेश ने एक ही तहसील में हजारों प्राणियों के प्राण बच गये।

कान्फ्रेंस के अधिवेशन पर

बाजणा से विहार करके शिवगढ़ होते हुए आप रतलाम पधारे। उन्हीं दिनों रतलाम में श्री श्वे० स्था० जैन कान्फ्रेंस का दूसरा अधिवेशन था। भारतवर्ष के विभिन्न प्रांतों से हजारों सज्जन कान्फ्रेंस में सम्मिलित होने आये थे। मोरवी के नरेश तथा राजपूताना एवं मध्यभारत के अनेक जागीरदार भी कान्फ्रेंस के अधिवेशन में शरीक हुए थे। करीब दस हजार की भीड़ थी। उसी अवसर पर विशाल सभा में मुनिश्री का व्याख्यान हुआ। आपने अपने व्याख्यानमें कान्फ्रेंस को सच्ची कामधेनु बनने की प्रेरणा करते हुए इस आशय के उद्‌गार व्यक्त किये।

भारत में कामधेनु की कल्पना अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित है। कामधेनु का असली स्वरूप क्या है? यह कहना आज कठिन है, क्योंकि साहित्यिक कामधेनु आज कहीं प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर नहीं होती। वह तो एक सुखद कल्पना के रूप में ही आज हमारे दिमाग में विद्यमान है। उसका स्वरूप कुछ भी हो, उस परोक्ष कामधेनु के बदले हमें प्रत्यक्ष कामधेनु की ओर ही ध्यान देना चाहिए। आंखों के आगे वाली वस्तु के प्रति उपेक्षा धारण करके अंधकारमय अतीत में भटकने से कोई लाभ नहीं हो सकता। अतएव हमारे सामने जो कामधेनु है, उसी की ओर हमें नजर दौड़ानी चाहिए। यही कामधेनु हमारा समस्त मनोरथ पूरा कर सकती है।

कामधेनु अपने चार पैरों पर अवलंबित रहती है, उसी प्रकार कान्फ्रेंस रूपी कामधेनु,–साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका रूप चतुर्विध संघ के सहारे खड़ी है। एक भी पैर अगर स्वस्थ और पुष्ट न हो तो कामधेनु लंगड़ी और प्रगति करने में उतनी समर्थ नहीं हो सकती। प्रगति करने के लिए चारों पैरों का शक्तिशाली होना आवश्यक है। इसी प्रकार कान्फ्रेंस कामधेनु भी तब ही प्रगति कर सकती है जब उसके पूर्वोक्त चारों पैर समान रूप से सामर्थ्यवान हों। अगर एक भी पैर दुर्बल या रुग्ण हुआ तो उसकी प्रगति में बाधा पड़ना अनिवार्य है। यद्यपि कामधेनु के दो पैर आगे और दो पैर पीछे रहते हैं, फिर भी प्रगति के लिहाज से चारों का महत्त्व है। इसी प्रकार कान्फ्रेंस अर्थात् महासंघ रूपी कामधेनु के दो पैर—साधु और साध्वी आगे हैं और दो पैर श्रावक और श्राविका—पीछे हैं, फिर भी प्रगति के लिहाज से सभी का महत्त्व है। चारों पैर एक दूसरे के सहायक हैं।

यह ध्यान रखना चाहिए कि कामधेनु जिस ओर प्रयाण करने की इच्छा करती है, उसके चारों पैर उसी ओर बढ़ते हैं। अगर चारों पैरों में यह एकरूपता न हो और चारों पैर चारों विरुद्ध दिशाओं में चलना चाहें तो बेचारी कामधेनु की क्या स्थिति हो? वह एक भी कदम आगे

नहीं बढ़ सकेगी और जीवित रहना भी उसके लिए दूभर हो जायगा। इसी प्रकार कान्फ्रेंस-कामधेनु के चारों आधार जब एक ही दिशा में प्रयाण करने के लिए तत्पर होंगे तभी वह आगे बढ़ सकती है। चतुर्विध संघ की दिशा अगर एक ही न हुई और सब अपनी अपनी मनमानी करने लगे तो वह आगे नहीं बढ़ सकती। यही नहीं, वरन् उसका जीवित रहना भी दूभर हो सकता है। कामधेनु के पिछले दोनों पैर अगले पैरों का ही अनुसरण करते हैं—अगले पैरों का जो लक्ष्य होता है वही पिछले पैरों का भी लक्ष्य होता है, उसी प्रकार कान्फ्रेंस-कामधेनु के पिछले दोनों पैरों को अगले पैरों का ही अनुसरण करना चाहिए—वही उनका लक्ष्य होना चाहिए।

हां, अगले पैरों पर अपनी भी जिम्मेवारी है और पिछले पैरों की भी जिम्मेवारी है, अतएव रवाना होने से पहले उन्हें अपने मार्ग का भली-भांति विचार करना चाहिए। पिछले पैरों को अगले पैरों का अनुसरण करना चाहिए।

कामधेनु में यह सामर्थ्य है कि वह घास जैसे तुच्छ पदार्थ को भी ग्रहण करके उसे दूध रूप में परिणत कर लेती है। अगर कामधेनु में यह शक्ति न होती तो कौन उसकी उपासना करता? इसी प्रकार कान्फ्रेंस-कामधेनु में भी यह शक्ति होनी चाहिए। भगवान् महावीर के संघ में जिसने प्रवेश किया—संघ ने जिसे अपनाया, वह चाहे घास की भांति तुच्छ ही क्यों न हो, उसे दूध के रूप में परिणत करने का सामथ्य उसमें होना चाहिए जैसे दूध निष्कलंक, उज्ज्वल और मधुर है उसी प्रकार वह व्यक्ति भी इस कामधेनु के अपना लिए जाने पर क्रिया से निष्कलंक मन से उज्ज्वल और वचन से मधुर बन जाना चाहिए। अगर इस प्रत्यक्ष कामधेनु में यह शक्ति न हुई तो कौन इसका शरण ग्रहण करेगा? कौन इसकी उपासना करेगा?

कामधेनु के चार स्तन होते हैं और चारों स्तनों के द्वारा निकलने वाले दूध को प्राप्त करके कामधेनु का सेवक अपने को कृतार्थ मानता है। कान्फ्रेंस अर्थात् संघ रूपी कामधेनु के भी चार स्तन हैं—दान, शील, तप और भावना। इन चारों स्तनों के द्वारा निकलने वाला दूध-रूपी फल भी समान होता है और उस फल को पाकर मनुष्य अपने को कृतार्थ बनाता है।

जैसे कामधेनु को दो सुन्दर सींग सुशोभित करते हैं उसी प्रकार यह कामधेनु भी सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चरित्र से शोभायमान होनी चाहिए। याद रखना चाहिए कि कोई भी एक सींग दूसरे के अभाव से शोभाजनक नहीं होता, उसी प्रकार चारित्र के बिना ज्ञान और ज्ञान के बिना अकेला चारित्र शोभा नहीं पाता। अतएव इन दोनों की आवश्यकता है।

कामधेनु में दो दृष्टियां हैं। दोनों से वह काम लेती है। इस प्रत्यक्ष कामधेनु को भी दो दृष्टियों से काम लेना चाहिए। एक दृष्टि से उसे अपने भीतर घुसे हुए कुसंस्कार को, कुरूढ़ियों को, अज्ञान, अनैक्य, अनुत्साह आदि दोषों को देखना चाहिए और दूसरी दृष्टि से उन आवश्यक बातों को देखना चाहिए जिनको स्वीकार किये बिना उसका निस्तार नहीं। इस प्रकार बुराइयों को त्यागने से और उनके स्थान पर अच्छाइयों को ग्रहण करने से कल्याण का, अभ्युदय का और प्रगति का मार्ग मिलेगा और जीवन आदर्श बनेगा।

लोक में कामधेनु की बड़ी महिमा है। लोग उसे बड़े आदर की चीज समझते हैं। मगर उसे यह महिमा और यह आदर निष्कारण नहीं प्राप्त हुआ है। वह अपने सर्वस्व का—जीवन-रस का—त्याग करके अपने आश्रितों का रक्षण और पोषण करती है। इसी त्याग की

बदौलत उसे महिमा मिली है। अगर आप कांफ्रेंस-कामधेनु को महिमामयी बनाना चाहते हैं तं आपको सर्वस्व-त्याग करके परोपकार करने का पाठ सीखना होगा। एक बात और। कामधे़ उसीको मनोवांछित फल प्रदान करती है जो उसकी सेवा करता है। अगर कोई कामधेनु को घास पानी भी न दे तो वह कैसे जीवित रहेगी और कैसे फल देगी? इसी प्रकार अगर आप कान्फ्रेंस कामधेनु की सेवा करेंगे, उसे पुष्ट करेंगे तो वह आपको पुष्ट करेगी। पारस्परिक आदान-प्रदान का नियम यहां पूर्ण-रूप से लागू होता है।'

मुनिश्री का वह व्याख्यान आज लिखित रूप में विद्यमान नहीं है। आपका व्याख्यान काफी लम्बा था। सच्चे सुधारक के रूप में जनता के सामने आपने जो विचार प्रस्तुत किए थे वे अत्यन्त मननीय हैं। उनमें धार्मिक और सामाजिक सुधारों के सभी तत्त्वों का समावेश है। उस व्याख्यान के बाद जनता आपका व्याख्यान सुनने के लिए अत्यन्त उत्सुक रहने लगी। जब भी आपकी वाग्धारा प्रवाहित होती, लोग मंत्र-मुग्ध होकर सुनते।

रतलाम से विहार करके मुनिश्री सैलाना पधारे। वहां कुछ दिन उपदेश देकर पंचेड़, नामली, शिवगढ़, रावटी, करवड़, पटलावद होते हुए थांदला पधारे। सभी स्थानों पर धर्म-जागृति हुई और अनेक श्रावकों ने यथाशक्ति त्याग-प्रत्याख्यान आदि किये। इस वर्ष एक तेजस्वी व्याख्याता के रूप में सारे समाज में आपकी प्रसिद्धि हो गई।

सत्तरहवां चातुर्मास

संवत् १९६९ का चातुर्मास आपने थांदला में व्यतीत किया। थांदला में बहुत से भोई रहते थे। नदी में जाल डालकर मछलियां पकड़ना उनकी जीविका थी। श्रावकों की प्रेरणा से भोई लोग मुनिश्री का उपदेश सुनने आने लगे। एक दिन उन्होंने निश्चय किया—'जबतक महाराज थांदला में विराजमान रहें तबतक कोई भोई मछलियां न पकड़े। श्रावकों ने भोई भाइयों के इस शुभ निश्चय के प्रति अपना प्रेम प्रदर्शित किया और चातुर्मास भर अपनी ओर से उनके भोजन का प्रबंध कर दिया।

विनीत निमंत्रण

उन्हीं दिनों कुछ विद्वान् शास्त्रार्थ करने की इच्छा से धार पहुंचे। धार-नरेश सुप्रसिद्ध विद्या-विलासी राजा भोज के उत्तराधिकारी हैं। इसी कारण विद्वान् वहां गये और शास्त्रार्थ करने की अपनी इच्छा उन्होंने प्रकट की। मगर इस समय का धार भोजकालीन धारा नगरी नहीं थी। वह धारा तो भोज के साथ ही समाप्त हो गई थी। राजा भोज की मृत्यु पर एक कवि ने कहा था—

> अद्य धारा निराधारा, निरालम्बा सरस्वती।
> पण्डिता खण्डिताः सर्वे, भोजराजे दिवंगते॥

अर्थात्—आज भोजराज के स्वर्ग-गमन करने पर धारा नगरी निराधार हो गई, सरस्वती के लिए सहारा नहीं रहा और सब पण्डित खण्डित हो गए।

धार-नरेश मुनिश्री की प्रशंसा सुन चुके थे। उनकी दृष्टि आप पर ही गई। उसी समय उन्होंने एक पत्र थांदला लिखा। उसमें लिखा था—'अगर मुनिश्री जवाहरलाल जी महाराज को

शास्त्रार्थ करने के लिए यहां आने का अवकाश हो तो शीघ्र सूचना दीजिए। उन्हें लाने के लिए हाथी-घोड़ा आदि लवाजमा भेज दिया जायगा।'

थांदला के श्रावकों ने उत्तर दिया—जैन साधु चातुर्मास में एक ही स्थान पर रहते हैं। इस समय विहार करना उनकी शास्त्र-मर्यादा में नहीं है। अतएव मुनिश्री वहां नहीं पधार सकते। अगर चातुर्मास के पश्चात आवश्यकता हो तो सूचना दीजिएगा। हम मुनिश्री से उसी ओर विहार करने की प्रार्थना कर देंगे। जैन साधु सदा पैदल ही विहार करते हैं। किसी भी प्रकार की सवारी का उपयोग नहीं करते। अतएव हाथी-घोड़ा आदि कुछ भी भेजने की आवश्यकता नहीं है।'

धार नरेश के लिए यह गौरव की बात थी कि उन्होंने आगत विद्वानों को यों ही नहीं टाल दिया। उन्होंने महाराज भोज की परम्परा को किसी अंश में कायम रखा और शास्त्रार्थ के लिए आयोजना की। मगर शास्त्रार्थ-अर्थी विद्वान् अधिक दिनों तक नहीं ठहर सकते थे। इस कारण शास्त्रार्थ तो न हो सका परन्तु धार-नरेश पर उस पत्र का बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। जैन साधुओं के पैदल विहार और अन्य कठोर तपश्चरण की बात जानकर उनके हृदय में भक्ति-भाव उत्पन्न होगया।

इस चातुर्मास में मुनिश्री मोतीलालजी महाराज और मुनिश्री राधालालजी महाराज ने ४२-४२ दिन की अनशन-तपस्या की। श्री पन्नालालजी महाराज ने भी लम्बी तपस्या की। पूर के दिन बहुत भीड़ हुई। अनेक खंध हुए। बहुत से भाइयों ने शिकार और मांसाहार का त्याग किया। अनेक जीवों को अभय-दान दिया गया। श्रावकों ने विविध प्रकार से धर्म-जागरणा की।

समाज सुधार

उस समय थांदला में समाज सुधार के लिए नीचे लिखा पंचायतनामा लिखा गया और सर्वसम्मति से वह स्वीकार किया गया।

ओसवाल सकल पंचपुर थांदला के खाता पा. १६१७ की नकल

संवत् १६६५ के साल में चौमासा की विनन्ती अरज संघ तरफ से होने से श्री १००८ श्री तपस्वीजी महाराज परमदयाल, कृपावंत, करुणा के सागर, गुण के आगर, ऐसी अनेक ओपमा योग श्री १००८ श्री मोतीलालजी महाराज साहेब, श्री १००८ श्री जवाहरलालजी महाराज साहेब ठाणा ६ से चातुर्मास की कृपा करके इस क्षेत्र की सौभाग्य दशा होने से पधारे। महाराज साहेब के पधारने के पीछे यहां श्री तपस्वीजी श्री १००८ श्री मोतीलालजी महाराज साहेब, श्री १००८ श्री राधालालजी महाराज साहेब ने तपस्या दिन ४२ की दोनों महाराज साहेब ने की। बाद श्री १००८ श्री जवाहरलालजी महाराज साहेब बखाण अमृतधारा मेह की तरह फरमाते हुए जीव दया तपस्या,त्याग, वेराग वगैरा वहोत सा उपगार हुआ। महाराज साहेब का फरमान व्याख्यान द्वारा धार्मिक व सांसारिक व्यावहारिक सुधारे बाबत उपदेश फरमाने से उसका असर होता रहने से आज रोज सकल पंच शहर पूरा शरीक होकर नीचे माफिक कलमवार सांसारिक व धार्मिक मुद्दा रेखाचंद ठहराव किया गया सकल पंचों की राय से।

नीचे मुजब कलमवार

१—कन्या विक्रय बन्द—याने सगपण लड़की को करचा में देज बावत सिर्फ रु० १) एक रुपया व खोल बावत ३५०) जुमले रुपैया ३५१) तीन सौ एक्यावन सीके कल्दार बेटी को बाप लेवे। सिवाय कोई ज्यादा रुपया लेवे तो वी कुल रुपया बाद सबूती पंच वसूल कर लेवे। अण के सिवाय कोई लड़की ने परदेश जाई ने जादा देज सूं परणाई देवे तो ज्यादा लिया हुआ कुल रुपया बेटी का बाप से पंच वसूल कर लेवे। तथा भात खिचड़ी का रुपैया नकदी लेवा का हकदार पंच है सो वसूल कर लेवे। अण में उजर व पत्र नहीं करेगा। लड़की की उमर ११ वर्ष पेश्तर नहीं परणावणी। व लड़के को तेरा बरस के नीचे व पीसतालीस बरस के उपरांत नहीं परणावणो। अणा के खीलाफ कोई भी करे तो वणा के पंच ठपको देवे।

२—बींद व बींदणी बरात भाणा में खरच जातरलम करवा की तादाद—बींद के यहां की रकम—

खीचड़ी नं० १ नारेल नं० १ मातो नं० १ आखा विवाह में।

रास की खारका मण ४ बींदणी के घरे मेलणी।

नारेल नं० ५१ बींदणी परणवाने जावे जदी रात खरचा का।

१२) चवरी का पंचायती।

५) वासण भांडा का भात खीचड़ी का।

३) देवका खीचड़ी का

२) खोल का

४) पौंषधशाला

बींदणी के यहां की रसम—

भात नग १ नारेल नग १ सातो नग १ आखा विवाह में।

७) पंचायती

३) देव का भात का

४) पौंषधशाला

१॥) टीकरो देव का बावत

३—विवाह में रण्डी को नाच करावणो नहीं।

४—रजा की जीमण में मोरस खांड नहीं गारणी।

५—लीला वाज दूना नहीं वापरणा कतई वंद, जात में गाम में।

६—न्यात का निराश्रित बाया भाया पर पंचायती निगाह सार संभार की रेवे।

७—परगाम पंचायती रसम से जावे तो राते मसाल का उजवारा सुं नहीं जावे।

८—भील का हाथ को पाणी गाम में व गामड़ा में कोई नहीं पीवे।

९—जात में बीरादरी की लुगायां वेजा गारीयां नहीं गावे। वेजा नाच नहीं नाचे।

१०—श्रावण भादवा में नयासर से नींव नाखने मकान को या दूसरो काम नहीं सरु करणो।

११—श्रावण भादवा में अष्टमी या चतुर्दशी के दिन गाड़ी भाड़े की या घर की नहीं चला-

वणी। वेसे गाड़ी में बेठकर जाणो भी नहीं, रकमभाव भी मंगावणी नहीं।

१२—घरू लेन देन बावत पंचायती रजा नहीं सके।

१३—माती मोत पंदरा साल तक की हुई जावे तो वणी पर पंचायती हक नहीं, सबब रजा नहीं देवे।

१४—हाथी दांत को चूड़ो आपणी न्यात में, रतलाम बीरादरी में बन्द होवे तो आपणा अठे भी बंद करी चुका हां।

१५—आतिशबाजी, झाड़ व हाथी नार वगैरह थांदला के अन्दर नहीं छोड़े, व परदेशी ने भी गाम में नहीं छोड़वा देना।

१६—पंचायती हक सिवाय जो बाबत आवेगा इजाफ की उस की हीसा रसीद सीरस्ता मुजब समझ ली जावेगा।

ऊपर माफक सोला ही कलम की पालन समस्त पंच थांदला का करेगा और अण के सिवाय खुशी से कोई भी वरोटी करेगा तो वासण भाड़ा का रु० २॥) व देव का रु० २॥) जुमला पांच रुपैया लेणा। ऊपर लिख्या सिवाय पंचायती हक दस्तूर नहीं है। लिख्या हुआ करियावर के सिवाय करियावर पर पंचायती हक नहीं है। यो ठराव समस्त पंच थांदला के रोबरु शाहजी साहब प्यारेलालजी के हुआ है, सो सही है।

संवत १९६५ मी. श्रावण वदी १३ रविवार।

(इस पर एक सौ पचपन व्यक्तियों के हस्ताक्षर हैं)

उक्त पंचायतनामा थांदला के ओसवाल भाइयों का पंचायतनामा है। मुनिश्री धार्मिक जीवन के अभ्युदय के लिए सामाजिक सुधारों के भी कट्टर समर्थक थे। वे जीवन में सर्वांगीण उत्कर्ष का ही उपदेश फरमाते थे। अतएव मुनिश्री के किसी भाषण से प्रभावित होकर थांदला के भाइयों ने यह पंचायतनामा तैयार किया था। इसकी सोलह कलमों में से प्रत्येक कलम मुनिश्री के उपदेशानुसार ही है, ऐसा समझना भ्रमपूर्ण होगा। उदाहरणार्थ कलम नंबर ८ में भीलों के हाथ के पानी को निषिद्ध ठहराया गया है। भील जाति अस्पृश्य नहीं है फिर भी उसमें मांस-मदिरा के सेवन का प्रचुर प्रचार था और शायद अब भी है। मांस-मदिरा से तीव्र घृणा करने वाले ओसवाल भाइयों ने संभवतः इसी कारण यह कलम बनाई है। इसमें मांस-मदिरा के सेवन का त्याग कर देने वाले भील भाइयों का भी समावेश हो जाता है और मांस-मदिरा का सेवन करने वाली अन्य जातियों का समावेश नहीं होता। मुनिश्री का इस प्रकार का मंतव्य कभी नहीं रहा। वे जातिगत अस्पृश्यता के तीव्र विरोधी थे और अपने भाषणों में बलपूर्वक इस विषय को प्रकट करते थे। अतएव यह निर्णय थांदला की पंचायत का स्वतन्त्र निर्णय ही समझना चाहिए। यही बात अन्य कलमों के विषय में भी समझनी चाहिए।

हाथी झुक गया

थांदला की ही बात है। मुनिश्री उपदेशामृत की वर्षा कर रहे थे और श्रोताओं का समूह मंत्र-मुग्ध होकर धर्म-रस का पान कर रहा था। स्थानक में जगह पर्याप्त न होने के कारण सड़क पर टीन का छप्पर उतारा गया था। इसी समय एक ओर से हाथी आया। छप्पर इतना ऊंचा

नहीं था कि हाथी यों ही निकल जाता। महावत के इशारे से हाथी ने चारों घुटने टेक दिए और घुटने टेके-टेके ही वह छप्पर के नीचे से पार हो गया।

मुनिश्री ने यह घटना देखकर बड़ा सुन्दर व्याख्यान दिया। आपके व्याख्यान का आशय इस प्रकार था—'मनुष्य अपने को सब प्राणियों से अधिक बुद्धिमान् समझता है किन्तु उसे बहुत-सी बातें पशुओं से भी सीखने की आवश्यकता है। मनुष्य अकड़ कर चलता है। वह झुकना नहीं जानता। गर्व की मात्रा उसमें अत्यधिक है। मगर इस हाथी को देखो, महावत के जरा-से इशारे से किस प्रकार घुटने टेकता हुआ नम्रतापूर्वक निकल गया! पशु इशारे से ही इतना सीख सकता है तो मनुष्य क्यों नहीं सीखता? आप लोगों को मान, दंभ आदि त्यागने का उपदेश प्रतिदिन दिया जाता है, मगर उसका विशेष असर पड़ा दिखाई नहीं देता। शास्त्र आपको प्रतिदिन धर्म-शिक्षा देते हैं, किन्तु क्या मैं पूछूं कि आपने जीवन में कितनी उतारी है? इस हाथी को अच्छा कहना चाहिए या अपना स्वभाव न छोड़ने वाले मनुष्य को?'

हाथी चौपायों में सबसे बड़ा प्राणी है, फिर भी इसमें कितनी नम्रता है? वह महावत की आज्ञा का किस प्रकार पालन करता है? क्या आप अपने महावत अर्थात् गुरु के उपदेशों का ऐसा पालन करते हैं? नम्रता धारण करना और बड़ों की आज्ञा का पालन करना बड़प्पन का का लक्षण है। इसे लघुता का चिह्न समझना अज्ञान है।

आपको मालूम होगा कि मेघकुमार का जीव भी पूर्वभव में हाथी था। उसने दूसरे प्राणियों को शरण देने के लिए ही अपने प्राण दे दिये। अपनी इस परोपकार-वृत्ति के कारण उसने शुभ गति का बंध किया और मोक्ष का मार्ग प्राप्त कर लिया। फिर भी हाथी तिर्यंचगति में माना जाता है। आप लोग मनुष्य-गति में हैं। आपको हाथी की अपेक्षा अधिक विनम्र और परोपकारी होना चाहिए।

पत्थर फेंकने वाले पर भी क्षमा

एक बार मुनिश्री कुछ साधुओं के साथ बाहर जा रहे थे। रास्ते में लड़के मिले-खेलते, भागते, दौड़ते हुए। उधर से साधुओं को निकलते देख एक लड़के ने पत्थर मार दिया। पास में खड़े एक आदमी ने यह देखा और गांव में आकर कह दिया। कुछ भाई उस लड़के के घर गये और उसे पकड़ लाये। लड़के के मां-बाप घबराए। पंचों ने उस बालक को दंड देने का विचार किया।

मुनिश्री ने जब यह सब सुना तो समझाया—'यह बालक किसी वृक्ष पर पत्थर फेंकता तो फल की प्राप्ति होती। हमारे ऊपर पत्थर फेंकने से तो इसे कुछ भी नहीं मिला। यही दुःख की बात है। इसे दंड मिलना तो हमारे लिए और भी लज्जा की बात होगी। साधुओं की सार-संभाल रखने की आपकी भावना प्रशस्त है मगर मेरी इच्छा है कि इस बालकको छोड़ दिया जाय हम इस बालक की आत्मा का सुधार चाहते हैं।'

मुनिश्री की इस उदारता का जनता पर बड़ा प्रभाव पड़ा। उस बालक पर भी कम असर नहीं पड़ा। उसके हृदय में मुनियों के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो गई। अपराधी को दंड देने की सुविधा होने पर भी दंड न देना महात्मा का लक्षण है।

सांप की एक घटना

एक बार पर्युषण पर्व के दिनों में श्रावकों ने पौषध किया। पौषध करने वाले श्रावक रात्रि के समय उपाश्रय में सो रहे थे। उपाश्रय में स्थान की कमी के कारण कुछ श्रावक एक दूसरे मकान में थे। रात में एक काला सांप वहां आ गया और जहां श्रावक थे वहां बैठ गया। अंधेरे में किसी को इस नवीन अतिथि के आगमन का पता नहीं चला। किसी श्रावक के सिर के पास जाकर उसने अपने आगमन की सूचना भी दी मगर उस श्रावक ने उसे कुत्ते का बच्चा समझकर पास में पड़े ओघे से दूर हटा दिया। किसी की उस पर निगाह भी न गई। मगर बिना बुलाये आये इस मेहमान ने अपने अनादर का खयाल न किया और वह किसी पर खफा भी न हुआ। ओघे से हटाने पर वह एक किनारे आकर बैठ गया और सुबह तक बैठा रहा। कुछ-कुछ प्रकाश होने पर जब लोगों की दृष्टि उस पर गई तो वे बुरी तरह घबराये। दूर हट गये। मगर सर्पराज शान्त थे। लोगों को घबराते देख और अपने सत्कार की सुविधा न देख वह वहां से शान्तभाव से चले गये। फिर कौन जाने वह कहां विलीन होगये।

इस घटना को लेकर मुनिश्री ने अपने व्याख्यान में फरमाया—'पर्युषण के इस पावन अवसर पर और विशेषतः पौषध के समय आप लोगों का प्राणी-मात्र पर समभाव होगा। आपका हृदय द्वेष और मलीनता से रहित होगा। इसका प्रभाव सांप पर भी पड़ा। उसने आप लोगों में आकर अपनी द्वेष-वृत्ति छोड़ दी। जब हमारे हृदय में रोष और दूसरेको हानि पहुँचाने की भावना होती है तभी सामने वाला हमसे द्वेष करता है। अगर हमारा हृदय प्रेम से परिपूर्ण हो तो दूसरे की द्वेष-वृत्ति भी शान्त होजाती है। यही अहिंसा की भावना है। इसी भावना के कारण तीर्थंकरों एवं अन्य महात्माओं के सामने प्रकृति से हिंसक प्राणी भी अपनी हिंसकता भूल जाते हैं।

'अहिंसा में ऐसी अपूर्व शक्ति है कि सिंह और हिरन, जो जन्म से ही विरोधी हैं अहिंसक की जांघ पर आकर सो जाते हैं। 'अहिंसाप्रतिष्ठायां वैरत्यागः' अर्थात् जहां अहिंसा की प्रतिष्ठा होती है वहां वैर का नाश होजाता है। अहिंसक के निकट जाति विरोधी पशुओं के एकत्र निर्वैर बसने के उदाहरण आज भले ही दिखाई न पड़ते हों, फिर भी अहिंसा की शक्ति के उदाहरणों की कमी नहीं है। अहिंसा के आराधक महात्माओं की चरणरेणु से हजारों को मारने वाला हत्यारा भी शुद्ध हो जाता है।

मृत्यु के मुंह में

इस प्रकार धर्मोपदेश देकर चातुर्मास समाप्त होने पर मुनिश्री ने थांदला से विहार किया और रंभापुर पधारे। वहां से मुनिश्री मोतीलालजी महाराज झाबुआ होकर कोद पधार गये। मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज ने जब झाबुआ की ओर विहार किया तो दो कोस चलते ही ग्रामनियां गांव में आपको बुखार हो आया! अतएव आपको फिर रंभापुर लौट आना पड़ा। यहां आपको कै और दस्त होने लगे। प्रतिदिन १२० के करीब कै दस्त का नंबर पहुंच गया। रात को नींद न आती। नौ दिन तक यही हाल रहा। कोई इलाज कारगर न हुआ। रंभापुर के श्रावकों ने आपके जीवन की आशा छोड़ दी। यहां तक कि अंतिम संस्कार करने की तैयारी कर ली और सब आवश्यक सामान मंगवा लिया। उस समय मुनिश्री राधालालजी महाराज और मुनिश्री गणेशीलालजी महाराज (वर्त्तमान आचार्य) आपकी सेवा में मौजूद थे। उन्होंने मुनिश्री की सेवा

करने में कोई कसर न रखी। हर प्रकार के कष्ट-सहन करके सेवा की। रंभापुर से दो कोस दूर लोहे की एक खान थी। वहां एक सरकारी डाक्टर रहता था। मुनिश्री गणेशीलालजी महाराज प्रतिदिन वहां जाते और दवा लाते। मगर उससे भी विशेष लाभ नहीं हुआ। आपकी बीमारी के समाचार बिजली के वेग से सब जगह फैल गये थे।

उन्हीं दिनों नाहरसिंह बुन्देला नामक वैद्य किसी का इलाज करने रंभापुर आये। वैद्यजी थांदला के रहने वाले थे। मुनिश्री की दशा देखकर उन्होंने कहा—'किसी प्रकार थांदला पहुँच सकें तो मैं इन्हें स्वस्थ कर सकता हूं।

मुनिश्री का जीवन इतना बहुमूल्य था कि उसकी रक्षा करने के लिए कोई भी कष्ट झेलना बड़ी बात नहीं थी। मगर इस समय तो यह प्रश्न था कि आपको किस प्रकार थांदला पहुंचाया जाय ? साथ में सिर्फ दो संत थे मगर दोनों सेवापरायण और पूर्ण कर्त्तव्यनिष्ठ थे। उन्होंने साहस करके मुनिश्री को थांदला ले जाने का निश्चय कर लिया। मुनिश्री बेहद कमजोर होगये थे! साधु की मर्यादा के अनुसार दो कोस से आगे दवाई भी साथ नहीं ले जा सकते। रंभापुर से थांदला चार कोस था। रंभापुर का आहार पानी और औषध दो कोस तक ही काम आ सकता था। आगे क्या होगा ? यह प्रश्न सामने था। मगर जहां हिम्मत होती है, रास्ता निकल ही आता है।

मुनिश्री ने धीरे-धीरे चलना आरंभ किया। आप लगातार चल भी नहीं सकते थे। अतः मुनिश्री गणेशीलालजी महाराज आपको सहारा देते और आगे बढ़ कर रास्ते के वृक्ष के नीचे बिछौना बिछा देते। मुनिश्री टरकते-टरकते जब बिछौने के पास पहुंचते तो विश्राम के निमित्त आपको लेटा देते और आपके पैर दबाने लगते। आप अकेले ही दोनों मुनियों का सारा सामान भी लादे हुए थे। इस प्रकार सहारा देते-देते, बिछौना करते और पैर दबाते-दबाते चलने से दिन भर में अढ़ाई कोस की यात्रा हो सकी। मुनिश्री राधालालजी आहार-पानी लाने के लिए रंभापुर ही रह गये थे। वे बाद में आये। रात्रि में तरावली में विश्राम किया। दिनभर चलने के कारण आपको थकावट हो गई थी इस कारण तथा राधालालजी महाराज थांदला से दवा ले आये थे इस कारण रात में कुछ नींद आ गई। नींद आने से कुछ शान्ति हुई। दूसरे दिन तरावली से विहार हुआ। मुनिश्री राधालालजी महाराज आगे बढ़ गये और थांदला जाकर आहार-पानी और औषध लेकर फिर लौटे और मुनिश्री की सेवा में उपस्थित हुए।

इस प्रकार दोनों मुनियों के साहस के कारण दूसरे दिन मुनिश्री थांदला पधार गये। वहां श्री नाहरसिंहजी बुंदेला का इलाज शुरू किया गया। धीरे-धीरे डेढ़ मास औषधि-सेवन करने के पश्चात् आप रोग मुक्त हुए।

कोद में विराजमान मुनिश्री मोतीलालजी महाराज को जब मुनिश्री की बीमारी के समाचार मिले तो उन्होंने उसी समय थांदला की ओर विहार कर दिया। रास्ते की तकलीफों की परवाह न करते हुए वे शीघ्र ही थांदला पहुंच गये थे। मुनिश्री का स्वास्थ्यलाभ देखकर आपको बड़ी प्रसन्नता हुई। मुनिश्री इस बार मृत्यु के मुंह से ही बाहर निकले।

कमजोरी दूर होने पर मुनिश्री ने कोद की ओर विहार किया। मार्ग में भीलों की बस्तियां थीं। उनमें थोड़ा-थोड़ा समय ठहरते हुए और भीलों को धर्मोपदेश देते हुए आप कोद पधारे। वहां के ठाकुर साहब ने आपका मधुर भाषण सुनकर श्रद्धा प्रकट की। पौष का महीना था। इसी

समय श्रीचन्दजी विनायका ने चालीस वर्ष की अवस्था में दीक्षा अंगीकार की।

कोद से विहार करके बिड़वाल, कड़ोद, होते हुए धार पधार कर और वहां कुछ दिन ठहरकर नागदा, कानून, बिड़वाल, बखतगढ़ आदि स्थानों को पवित्र करते हुए रतलाम पधारे। रतलाम से खाचरौद और फिर जावरा पहुंचे। यहां पहुंचकर सम्प्रदाय सम्बन्धी कुछ बातों पर विचार करने के लिए आपको पूज्यश्री से मिलने की आवश्यकता प्रतीत हुई। आप वहां से ब्यावर पधारे और पूज्यश्री के दर्शन कर प्रसन्न हुए। यहां आपने तीन वर्ष तक दक्षिण में विचरने की आज्ञा प्राप्त की और साथ ही निवेदन किया कि अगर धर्मप्रचार की दृष्टि से वह क्षेत्र मुझे अनुकूल लगे तो तीन साल के बाद और भी आज्ञा देने की कृपा करें। पूज्यश्री ने आपकी प्रार्थना स्वीकार की।

ब्यावर में कुछ दिन ठहर कर आपने मालवा की ओर विहार किया। जब आप नीमच पहुंचे तो उदयपुर के तथा कई अन्य स्थानों के श्रावक आपकी सेवा में चातुर्मास की प्रार्थना करने आये। किन्तु पूज्यश्री जावरा में चातुर्मास करने की आज्ञा दे चुके थे, अतएव सभी को निराश होना पड़ा।

उन्हीं दिनों मुनिश्री के पास खबर आई कि महासती तपस्विनी श्री उमाजी महाराज ने जावरा में संथारा कर लिया है और वे आपके दर्शन करना चाहती हैं। मुनिश्री जावरा पधारे। संथारा लम्बा हो गया। मुनिश्री, तपस्विनीजी को बार-बार शास्त्र सुनाते रहे। ५४ दिन बाद संथारा सीझ गया और महासतीजी का स्वर्गवास हो गया। मुनिश्री वहां से विहार करके ताल होते हुए फिर जावरा पधारे।

अठारहवां चातुर्मास

पूज्यश्री के आदेशानुसार मुनिश्री ने संवत् १९६६ का चातुर्मास जावरा में किया। जावरा के नवाब साहब के भाई ने भी मुनिश्री के उपदेशों का खूब लाभ लिया। सभी श्रेणी की जनता व्याख्यान में उपस्थित होती थी।

जावरा में चातुर्मास समाप्त करके आप रतलाम और फिर पटलावद पधारे। उस समय पूज्यश्री रतलाम पधार गये थे अतः मुनिश्री ने फिर रतलाम आकर पूज्यश्री के दर्शन किये। कुछ दिन पूज्यश्री की सेवा में रहकर आप पटलावद, राजगढ़, तेड़गांव, दिसाई, बिड़वाल आदि क्षेत्रों में विचरते हुए कोद और फिर नागदा पधार गये।

उन दिनों कोद तथा आसपास के गांवों में तड़बन्दी हो रही थी। मुनिश्री के पधारने पर बहुत से गांवों के लोग आपके दर्शनार्थ आये। मुनिश्री ने पारस्परिक प्रेम की आवश्यकता प्रदर्शित करते हुए प्रभावशाली उपदेश दिया और वैमनस्य दूर करने की प्रेरणा की। मुनिश्री के उपदेश-रूपी जल की वर्षा से लोगों के दिलों की कालिमा बह गई। अशान्ति की ज्वालाएं बुझ गई। लोगों के हृदय शांत और निस्ताप हो गये। सब भाई गले से गला लगाकर मिल गए। पार्टीबन्दी समाप्त हो गई। इसी सिलसिले में आपको एक बार फिर कोद पधारना पड़ा। वहीं सब पंचों ने वैमनस्य दूर करने का फैसला किया।

जिस दिन पंचों ने यह शुभ निश्चय किया उसी दिन कोद के प्रमुख सज्जन श्रीलालचंदजी ने भी एक मह[illegible] प्रशस्त निर्णय कर लिया। आपने दीक्षा लेने की इच्छा प्रदर्शित की

और मुनिश्री से कुछ दिन और विराजने की प्रार्थना की। लालचंदजी धनाढ्य तो थे ही मगर साथ ही उदार तथा गरीब-निवाज भी थे। गांव के सभी लोग उनका आदर करते थे। आपने यथासंभव शीघ्र ही हजारों का लेन-देन निपटाया। जिसने जितना दिया उससे उतना ही लेकर चुकौता कर लिया। न किसी को दबाया, न किसी को सताया, न किसी को धमकाया, और न किसी को लाल आंख दिखाई। आपने दीक्षा लेने से पहले वहां की समस्त जनता को प्रीतिभोज दिया और दीक्षा लेकर हलके हो गये।

दीक्षा-प्रसंग पर सभी आसपास के गांवों के विशिष्ट व्यक्ति उपस्थित हुए। भरपूर सम्पत्ति छोड़कर तीव्र वैराग्य के साथ आपने दीक्षा अंगीकार की।

जब दीक्षा की विधि हो रही थी तो कोद के ठाकुर साहब के बड़े कुंवर दीक्षा-स्थान में बैठे बैठे बीड़ी पीने लगे। मुनिश्री को यह अच्छा न लगा। महात्मा पुरुषों के निकट बड़े-छोटे, सधन-निर्धन का कोई भेद-भाव नहीं रहता। मुनिश्री को इस बात का भय भी नहीं था कि यह ठाकुर साहब के कुंवर हैं। अतएव मुनिश्री ने कुंवर से कहा—आप बड़े आदमी के लड़के कहलाते हैं। आपको धर्मसभा की सभ्यता का खयाल रखना चाहिए। बीड़ी पीना यहां की सभ्यता के विरुद्ध है।

कुंवर ने शायद कल्पना भी नहीं की होगी कि यह अकिंचन साधु इतने तेजस्वी हो सकते हैं कि मुझ सरीखे को इस प्रकार टोंके। वह एकबार अचकचा गये और कुछ लज्जित हुए। फिर बोले—महाराज, यह तो जीवन की एक साधारण आवश्यकता है।

मुनिश्री ने फरमाया—शारीरिक, राष्ट्रीय, सामाजिक और धार्मिक सभी दृष्टियों से बीड़ी हानिकारक वस्तु है। आप जैसे लोगों को पीना शोभा नहीं देता। और अगर जीवन इतना गिर जाय कि बीड़ी पिये बिना काम नहीं चल सकता तो क्या ऐसे स्थानों पर भी उसे नहीं त्यागा जा सकता? जीवन के लिए आवश्यक तो बहुत-सी वस्तुएं हैं मगर उन सबका क्या सभी जगह उपयोग किया जाता है?

कुंवर साहब ने उसी समय बीड़ी फेंक दी। अंत में उन्होंने महाराजश्री का आभार माना। महाराजश्री पर उनकी भक्ति हो गई।

कोद से विहार करके मुनिश्री धार और इन्दौर होते हुए देवास पधारे।

उन्नीसवां चातुर्मास

देवास से लौटकर मुनिश्री फिर इन्दौर पधारे और वि० सं० १९६७ का चातुर्मास इन्दौर में किया। इन्दौर मध्य भारत का प्रधान केन्द्र है। होल्कर रियासत की राजधानी है और उसमें सम्पत्तिशाली तथा विद्वानों का वास है। इन्दौर में मुनिश्री का व्याख्यान बाजार में होता था। हजारों श्रोता एकत्र होते थे। यहां आपके व्याख्यानों की धूम मच गई। मुनिश्री मोतीलालजी महाराज ने ३६ दिन का तप किया। पूर के दिन बहुत से कसाई भाई भी व्याख्यान सुनने आये। मुनिश्री ने उस दिन अहिंसा-धर्म पर प्रभावजनक भाषण दिया। मुसलमान कसाइयों पर भी आपके भाषण का अच्छा असर हुआ। एक कसाई ने चतुर्दशी को तथा दूसरे ने एकादशी को जीवहिंसा करने का त्याग किया। उस समय जीवदया के निमित्त लगभग छः हजार का चंदा कुछ उत्साही भाइयों ने एकत्र किया।

एक रुपया का महादान

मुनिश्री के व्याख्यान में एक भद्र सज्जन थे। उन्होंने भी बड़े ध्यान से व्याख्यान सुना था। कहना चाहिए उनके कानों ने नहीं, हृदय ने व्याख्यान सुना था और उनकी आत्मा ने उसका अनुमोदन किया था। उनके पास कुल पूंजी १०) थी। वह उन रुपयों से प्रतिदिन मूंगफली खरीद कर बेचते और जो कुछ बचत होती उसी से अपना निर्वाह करते थे। मुनिश्री के प्रभावक प्रवचन से प्रेरित होकर उन्होंने अपनी पूंजी में से एक रुपया देने की इच्छा प्रकट की। जहां हजारों की बात हो वहां एक रुपये को कौन पूछता है? श्रावकों ने गरीब समझकर उनका रुपया नहीं लिया। वह दान रुपये का नहीं, भावना का दान था—हृदय का दान था। उस दान को स्वीकार न करने के कारण उन सज्जन को इतना दुःख हुआ कि वे अपना रोना न रोक सके।

संत पुरुष सुखी की ओर उतना नहीं जितना दुःखी की ओर देखते हैं। वह सज्जन रोने लगे तो मुनि श्रीगणेशीलालजी महाराज (वर्त्तमान आचार्य महोदय) की दृष्टि तत्काल उन पर जा पहुंची। मुनिश्री के पूछने पर उन्होंने रोने का कारण बतलाया। अपने मर्म की चोट खोलकर दिखलाई। मुनिश्री गणेशीलालजी महाराज ने महाराजश्री को सब वृत्तान्त निवेदन किया। महाराजश्री ने अपने भाषण में उन सज्जन की सद्भावना की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की। मुनिश्री ने फरमाया—'भाइयो! इनके हृदय की भावना को देखो। जीव-दया के निमित्त अपनी शक्ति से भी बढ़कर त्याग करने के लिए इन भाई को कितनी उत्कंठा है? यह अपनी समस्त सम्पत्ति का दसवां भाग देने के लिए उत्सुक हैं। क्या आप लोगों में कोई ऐसा है जो इनके दान का मुकाबिला करता हो? कौन आगे आता है जो अपनी पूंजी का दसवां भाग त्यागने को तैयार हो? एक लखपती के लिए हजारों रुपयों का जो मूल्य है, उससे कहीं अधिक इन भाई के लिए एक रुपये का मूल्य है! ऐसी स्थिति में इस त्याग को तुच्छ समझना अज्ञान है, अहंकार है। करोड़पति के लाखों और लखपति के हजारों के दान से भी बढ़कर यह दान है। आप संख्या का मूल्य समझते हैं मगर हृदय का मूल्य भी समझना चाहिए। इनकी व्याकुलता को देखो। त्याग की उच्च भावना का सत्कार करो। उन्हें निराश करना उचित नहीं। यह दान महादान है।'

श्रावकों को अपनी भूल मालूम हुई। उन्होंने बड़े आदर और प्रेम के साथ उनका रुपया स्वीकार किया। उन्होंने उसकी प्रशंसा की और अपनी बड़ी-बड़ी दान की हुई रकमों से भी उसे बड़ा दान समझा।

धर्मसंकट

'व्यापारी व्यापार में हानि-लाभ का विचार करता है, पर हे मुनियो! तुम व्यापारी की तरह हानि-लाभ के प्रश्न में मत पड़ो। अपनी उद्देश्य-सिद्धि की ओर और कर्त्तव्य-पालन की ओर ही ध्यान रखो। लाभ हानि के द्वंद्व में न पड़ना संयम का मूल लक्षण है।

मुनियो! क्षमा रखने के साथ सुख-दुःख में भी समान रहो। कोई तुम्हें वंदना-नमस्कार करेगा, कोई भिखमंगा, मुफ्तखोर आदि कहकर तुम्हारा अपमान करेगा। इस प्रकार प्रशंसक और निन्दक—दोनों प्रकार के मनुष्य तुम्हें मिलेंगे। पर प्रशंसा सुनकर सुख न मानना और निन्दा सुनकर दुःख न मानना। ऐसे वाक्यों को अन्तरतम तक पहुंचने ही न देना। पृथ्वी गाली देने वाले और अपने को क्षत विक्षत करने वाले को भी आश्रय देती है; इसी प्रकार हे मुनियो!

जो तुम्हें गाली देता हो उसका भी कल्याण करो। गाली देने वाला तुम्हें निर्मल बना रहा है। तुम्हारी साधना में सहायक हो रहा है। ऐसा मानकर उसका भी कल्याण करो।

कपड़ा धोनेवाला धोबी अगर बिना पैसे कपड़ा धो दे तो प्रसन्नता होती है या अप्रसन्नता ? ज्ञानी पुरुष गाली देने वाले को आत्मा का धोबी मानते हैं—निर्मल बनाने वाला।'

'मुनियो ! तुम पृथ्वी के समान क्षमाशील बनो। पृथ्वी को कोई पूजता है, कोई लतियाता है, कोई सींचता है, कोई खोदता है, पर वह सबके प्रति समान है। वह गुण ही प्रकट करती है, अवगुण प्रकट नहीं करती। तुम भी पृथ्वी के समान समभावी बनो।'

जबतक आत्मा निन्दा और प्रशंसा में अंतर समझता है, कहना चाहिए तबतक उसने परमात्मा को पहचाना ही नहीं है। जब निन्दात्मक और प्रशंसात्मक बात सुनाई पड़े तो हमें यही विचारना चाहिए—'हे आत्मन् ! तू निंदा और प्रशंसा के भेद-भाव में पड़कर कबतक संसार-भ्रमण करता रहेगा !'

हमारे चरितनायक के यह उद्गार ही प्रकट कर देते हैं कि उनके अन्तःकरण में किस उच्च श्रेणी का समभाव रहा होगा ? यह उद्गार जिह्वा की नहीं हृदय की वाणी हैं। मुनियों को उद्देश्य करके जो महान् आदर्श इन वाक्यों में व्यक्त किया गया है वह पाण्डित्य का परिणाम नहीं, चिरकालीन जीवन-साधना का सहज सुफल है। मुनिश्री ने अपने साधु-जीवन में संयम की जो श्रेष्ठ साधना की थी, उसी के फल-स्वरूप उनके अन्तःकरण में यह अपूर्व समभाव आ गया था। उनके आगे निन्दा और प्रशंसा में कोई भेद नहीं रह गया था।

महापुरुषों के जीवन में कभी-कभी बड़े विकट प्रसंग उपस्थित हो जाते हैं। वे धर्म और अधर्म के द्वन्द्व से तो अनायास ही बच निकलते हैं मगर जहां धर्म का आदेश द्विमुखी—दो तरफ को होता है वहां मनीषी महापुरुष भी एक बार चक्कर में पड़ जाते हैं। मुनिश्री के जीवन में इसी प्रकार का एक धर्मसंकट उपस्थित हो गया।

रतलाम में स्थानकवासी जैन कान्फ्रेंस की ओर से श्वे. स्था. जैन ट्रेनिंग कालेज चल रहा था। जिस समय मुनिश्री का चौमासा इन्दौर में था, रतलाम में प्लेग फैलने के कारण कालेज के चार विद्यार्थी दीक्षा लेने के लिए तैयार हुए थे। उनके नाम थे—गोकुलचन्दजी, सोमचन्दजी, चुन्नीलालजी और मोहनलालजी। चारों विद्यार्थी मुनिश्री के पास आकर धर्म-चर्चा किया करते थे। उन्होंने कई बार मुनिश्री से आजीवन ब्रह्मचर्य अथवा दीक्षा आदि के लिए नियम दिला देने की प्रार्थना की। उनमें से दो तो कभी पहले ही प्रतिज्ञा ले चुके थे। मुनिश्री ने चुन्नीलालजी को लक्ष्य करके कहा—'नियम लेना तो सरल है मगर उसे निभाना कठिन होता है। ब्रह्मचर्य आदि व्रत बड़े अच्छे हैं। उनसे आत्मा का कल्याण होता है। किन्तु उन्हें अंगीकार करने से पहले शांत-चित्त होकर सोचना चाहिए कि प्रतिज्ञा निभ सकेगी या नहीं ? आत्म-बल को जांचे बिना जोश में आकर ली गई प्रतिज्ञा के लिए पीछे पछताना पड़ता है।

कालेज के नियम के अनुसार जो विद्यार्थी पूरी पढ़ाई किये बिना ही संस्था छोड़ दे उससे जितने दिन वह रहा हो उतने दिनों का पूरा खर्च वसूल किया जाता था। चारों विद्यार्थी दीक्षा लेने के उद्देश्य से कालेज छोड़ना चाहते थे मगर पूरा खर्च चुकाने में असमर्थ थे। चार में से एक गोकुलचन्दजी ने मन्त्री से आज्ञा लेकर कालेज छोड़ा, फिर भी उनसे पूरा खर्च देने का तकाजा किया गया और अन्त में पूरा खर्च देना ही पड़ा।

इस घटना से दूसरे तीन छात्रों में भय उत्पन्न हो गया और वे गुपचुप भाग निकलने की सोचने लगे। वे मुनिश्री के पास आये और आप से सलाह मांगने लगे। मुनिश्री ने कहा—जब तुम लोग संयम के मार्ग पर चलना चाहते हो तो पहले आत्मा को सबल बनाओ। यदि तुममें इतना भी साहस नहीं कि कालेज के अधिकारियों से अपनी भावना स्पष्ट रूप से कह सको तो संयम का पालन कैसे कर सकोगे? आत्मशुद्धि और सरलता संयम के मूलाधार हैं। इनका अभ्यास किये बिना शुद्ध चारित्र का पालन नहीं हो सकता। वेष धारण कर लेना मात्र चारित्र नहीं है।

मुनिश्री की यह बात सुनकर वे चुप तो हो गये मगर उन्होंने अपना भाग जाने का इरादा नहीं बदला। आखिर एक दिन अवसर पा कर वे चल दिये। कालेज के अधिकारियों और जैन हितेच्छु, अखबार ने इसके लिए मुनिश्री को दोषी समझा और मुनिश्री की निन्दा करने लगे।

मगर निन्दा और प्रशंसा को समान-भाव से ग्रहण करने का उपदेश देने वाले मुनिश्री 'आत्म के धोबियों' की बात से तनिक भी विचलित नहीं हुए। उन्होंने निन्दा या प्रशंसा की परवाह न करके संयम-पालन की दृढ़ता पर ही ध्यान दिया। सोचा हे आत्मन्! अगर तू ऐसे प्रसंग उपस्थित होने पर धर्म से विचलित हो जायगा—असत्य भाषण करेगा या विश्वासघात करेगा तो तेरी क्या स्थिति होगी? कामदेव जैसे श्रावक भी जब घोर मुसीबत पड़ने पर भी धर्म पर दृढ़ बने रहे तो क्या तू साधु होकर और उससे कम कष्ट आने पर भी विचलित हो जायगा? यह तेरी कसौटी है। इस कसौटी पर तुझे खरा उतरना होगा। सारा संसार एक ओर हो जाय तो उसकी चिन्ता नहीं, तेरे लिए धर्म का—सत्य का बल ही पर्याप्त है। अगर तूने धर्म का सहारा न छोड़ा तो तमाम निन्दा, स्तुति के रूप में परिणत हो जायगी। अगर धर्म छोड़ दिया तो फिर क्या रह जायगा?

इस प्रकार विचार कर मुनिश्री ने अपनी निन्दा की चिन्ता न करके अपने संयम-धर्म की रक्षा की ही चिन्ता की। मगर जब इस घटना ने ऐसा रूप धारण किया कि उससे मुनि-वर्ग पर आरोप आने लगा। और मुनि-पद की ही निन्दा होने की संभावना हुई तो आपको इस ओर ध्यान देना पड़ा। वे स्वयं तो सब-कुछ सहन कर सकते थे मगर मुनियों पर उनके निमित्त से कोई आरोप लगे, यह बात उन्हें रुचिकर नहीं हुई। अभी तक आपके सामने व्यक्तिगत निंदा और संयम का प्रश्न था मगर अब एक ओर संयम और दूसरी ओर मुनि-निन्दा के निराकरण की समस्या सामने आई। यह दूसरा धर्म-संकट था। इस संकट से बचने के लिए भी आपने संयम की उपेक्षा नहीं की।

मुनिश्री ने सोचा—'इस घटना पर अगर इन्दौर श्रीसंघ जांच-पड़ताल करके अपना निर्णय दे और वह प्रकाशित हो जाय तो समाज के सामने सचाई प्रकट हो जायगी। फिर किसी को मुनियों पर आरोप लगाने का साहस भी नहीं होगा।' इस उद्देश्य से संघ-द्वारा घटना की जांच की गई और सचाई सामने आगई। मुनिश्री निर्दोष थे और निर्दोष ही प्रमाणित हुए।

मुनिश्री ने अपनी निन्दा की तनिक भी चिन्ता न करते हुए अपने धर्म की ही रक्षा की। धन्य हैं ऐसे महात्मा जो ऐसे विकट प्रसंग पर भी धर्म पर, सत्य पर, संयम पर अविचल रहकर संसार को बोध पाठ पढ़ाते हैं। मुनिश्री एक वीरात्मा थे। उनके यह शब्द प्रेरक हैं कि—'मैं कई बार कह चुका हूं कि धर्म वीरों का होता है, कायरों का नहीं। वीर-पुरुष अपनी रक्षा के लिए

लालायित नहीं रहते, वरन् अपने जीवन का उत्सर्ग करके भी दूसरों की रक्षा के लिए सदा उद्यत रहते हैं। इस प्रकार की वाणी उच्चारने वाला क्या कभी अपनी रक्षा के लिए दूसरे को खतरे में डालकर—विश्वासघात करके धर्म से विमुख हो सकता था? कदापि नहीं। मुनिश्री की धर्म-दृढ़ता का यह एक उज्ज्वल उदाहरण है।

इन्दौर में आपने मरहठी भाषा का अच्छा अभ्यास कर लिया। मरहठी महाभारत का आपने पारायण किया। साहित्य-सेवन में ही आपका बहुत समय व्यतीत हुआ। चौमासे के पश्चात् आपने दक्षिण की ओर विहार किया।

दक्षिण की ओर

दक्षिण प्रान्त के भाइयों की बहुत समय से उधर विहार करने की प्रार्थना थी और मुनिश्री गंगारामजी महाराज का भी आग्रह था। इसके अतिरिक्त इन्दौर-चातुर्मास में श्रीचन्दनमलजी फिरोदिया तथा अन्य सद्गृहस्थों ने मुनिश्री से दक्षिण की ओर पधारने की पुनः प्रार्थना की थी। मुनिश्री का विचार भी उधर विहार करने का हो गया था और अपनी मर्यादाओं का ध्यान रखकर आपने दक्षिण की ओर विहार करने की प्रार्थना अंगीकार कर ली थी।

इसी विश्वास के अनुसार इन्दौर से विहार करके मुनिश्री बड़वाहा, सनावद, बोरगांव, आशीगढ़, बुरहानपुर आदि क्षेत्रों को पवित्र करते हुए फैजपुर पधारे।

क्या ठिकाना बे ठिकानों का

जिन दिनों मुनिश्री ने इन्दौर से विहार किया और सनावद से आगे पहुंचे लगभग उन्हीं दिनो भारतवर्ष में एक सनसनी फैलाने वाली घटना घटी थी। सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी श्रीयुत् खुदीराम बोस द्वारा गोली चलाये जाने के कारण सारे भारत में तहलका मचा था। देश भर में अशान्ति फैली हुई थी। पुलिस की चारों ओर दौड़धूप थी। सरकार को विशेषतः पुलिस अधिकारियों को प्रत्येक भारतीय खुदीराम ही दिखाई देता था। स्थानकवासी साधु दक्षिण प्रान्त के लिए नवीन थे। भिन्न प्रकार का वेष देखकर पुलिस मुनिश्री पर भी सन्देह करने लगी। सनावद-बोरगांव आदि के समीप जनता ने भी आपको संदिग्ध दृष्टि से देखना शुरू किया। अतएव मुनिश्री को स्थान और आहार मिलने में भी कठिनाई होने लगी। मगर मुनिश्री बिना किसी कष्ट की परवाह किये आगे ही बढ़ते चले। वे अपने निश्चय पर अटल रहे। विहार जारी रहा। आप जहां जाते वहां पुलिस-कर्मचारी आपका नाम ठिकाना पूछते। मुनिश्री के पास बताने को नाम तो था मगर ठिकाना वे त्याग चुके थे। शायद ऐसा ही कुछ उत्तर देते होंगे—'ठिकाना पूछते हो, क्या ठिकाना बेठिकानों का।' अर्थात् तुम मेरा ठिकाना पूछते हो परन्तु हम तो बेठिकाना अर्थात् अनगार हैं—हमारा कोई ठिकाना ही नहीं है!

संत समागम

फैजपुर के आस-पास तारनपन्थी दिगम्बर जैनों पर आपका बहुत प्रभाव पड़ा। फैजपुर से विहार करके मुनिश्री भुसावल पधारे। यहां श्री धर्मदासजी महाराज के सम्प्रदाय के मुनि श्री चम्पालालजी महाराज का, जिन्होंने बाद में उस सम्प्रदाय के आचार्यपद को सुशोभित किया, समागम हुआ। आप एक प्रतिष्ठित साधु थे। दक्षिण में आपका बहुत प्रभाव था। दोनों मुनिश्री आपस में मिलकर अत्यन्त प्रसन्न हुए।

पीर साहब की तारीफ फैला आये। बादशाह ने वजीर से कहा—चलो, एक दिन हम लोग भी पीर साहब के दर्शन करें।

वजीर चतुर था। वह मुल्लों की चालाकी समझता था। मगर यों कहने से बादशाह को यकीन नहीं आएगा, यह उसे बखूबी मालूम था। अतः उसने एक युक्ति सोची। वजीर का एक सात-आठ वर्ष का लड़का था। वजीर ने उसके पैर के नाप के बहुत खूबसूरत और कीमती जूते तैयार करवाए। मखमल के ऊपर बढ़िया सलमा-सितारे का काम किया हुआ था। बीच-बीच में असली हीरा-पन्ना जवाहरात वगैरह जड़वाये गये थे। कहते हैं—एक जूते की कीमत सवा लाख रुपया थी।

एक दिन पीर वाली कब्र पर मेला लगा। सैंकड़ों औरतें और मर्द चढ़ावे के लिए पहुंचे। उसी दिन बादशाह भी वजीर के साथ वहां गया। रात होने पर वापस लौटते समय वजीर ने अपने लड़के का एक जूता कब्र के पास गिरा दिया।

सुबह होते ही पीर साहब की धूम मच गई। इतनी बेशकीमती जूती भला और किसकी हो सकती है? एक ने कहा—'साहब, रात को खुद पीर साहब तशरीफ लाये थे।' दूसरे ने ताईद करते हुए कहा—'बिलकुल सही फरमाते हैं आप। कपड़ा हिलता हुआ मैंने भी देखा था।' तब तीसरे जनाब बोले—'अजी जूते उतारते तो मैंने भी देखा है। और सबूत इसका यह है कि वे अपनी एक जूती छोड़ गये हैं।'

मुल्लों को जूती पाकर इतनी खुशी हुई जितनी शायद पीरसाहब को पाकर भी न होती। जूती लेकर वे बादशाह के दरबार में हाजिर हुए। बादशाह को अब पूरा-पूरा यकीन हो गया कि जूती पीर साहब की ही है। उसने और उसके दरबारियों ने बारी-बारी से अपने-अपने सिर पर जूती रखी। पीर साहब की तारीफ हो ही रही थी कि वजीर वहां आ पहुँचे।

बादशाह ने बड़ी खुशी के साथ जूती की बात वजीर को सुनाई। वजीर ने धीरे-से मुसकरा कर कहा—हुजूर की मर्जी, जो चाहे समझें, मगर यह जूती मेरे लड़के की है। सबूत में उसने दूसरी जूती पेश करदी। बादशाह अपनी बेवकूफी पर शर्मिन्दा हुआ और मुल्लों ने अपना रास्ता नापा।

यह एक दृष्टांत है। इसका अर्थ इतना ही है कि निराधार और असत्य बातें बढ़-बढ़ कर फैलती हैं। मुल्लों के प्रपंच के कारण बादशाह को पश्चात्ताप करना पड़ा और जूती सिर पर उठानी पड़ी। इसी प्रकार स्वार्थी लोगों के प्रपंच में भले आदमी फंस जाते हैं और फिर उन्हें पश्चात्ताप करना पड़ता है। यह व्याख्यान सुन कर श्री वाड़ीलाल भाई ने अपने लेखों के लिए मुनिश्री से क्षमायाचना की। संघ में हर्ष छा गया।

इस चातुर्मास में मुनिश्री ने मरहठी भाषा का अभ्यास काफी बढ़ा लिया था। संत तुकाराम के बहुत-से अभंग तो आपको कंठस्थ हो गए थे। आपका मराठी भाषा का ज्ञान अल्पकाल में ही काफी अच्छा हो गया।

धर्म-बोध

स्था. जैन कान्फ्रेंस के वर्तमान अध्यक्ष, प्रसिद्ध समाज-नेता और देशसेवक श्रीकुन्दनमलजी फिरोदिया और श्री माणिकचन्दजी मूथा उन्हीं दिनों फर्ग्यूसन कॉलेज पूना से वकालत पास करके

वैतनिक पण्डित

संस्कृत पढ़ाने का निश्चय कर लेने पर एक कठिनाई सामने आई। उस समय स्थानकवासी समाज में कोई साधु या श्रावक ऐसा नजर न आया जो इन मुनियोंको नियमित रूप से पढ़ा सके। वेतन देकर पण्डित नियुक्त करने में बहुत लोगों को आपत्ति थी। उनका खयाल था—'अपढ़ रह जाना अच्छा है मगर वेतन देकर गृहस्थ विद्वान् से पढ़ना अच्छा नहीं है।' मुनिश्री अपने भाषणों में इस विषय पर भी प्रकाश फैंका करते थे।

एक बार अहमदनगर के कुछ प्रधान श्रावकों ने मुनिश्री के सामने यही प्रश्न रक्खा था। उन्होंने पूछा—'त्यागियों को गृहस्थों से पढ़ना चाहिये या नहीं? और साधु के निमित्त वैतनिक पण्डित रखने से मुनियों को दोष लगता है या नहीं?

मुनिश्री यह मानते थे कि जो व्यक्ति साधु के आचार को पूर्णरूपसे भली-भांति नहीं जानता वह उसका समीचीन रूप से पालन नहीं कर सकता। अपने आचार को भली-भांति समझने वाला ही आचार का पालन कर सकता है। ज्ञान के अभाव में साधुता की शोभा भी नहीं है। समाजके उत्थान के लिए भी ज्ञान की आवश्यकता है।

इसके अतिरिक्त जयतारण आदि के शास्त्रार्थों के समय वे संस्कृत-ज्ञान का महत्त्व भली-भांति समझ चुके थे। उस समय मुनिश्री को संस्कृत भाषा का ज्ञान था इसी कारण उन्हें उतनी शानदार विजय मिल सकी थी। संस्कृत भाषा के ज्ञान के अभाव में विद्वानोंके समक्ष कैसी हास्यास्पद स्थिति हो जाती है, यह बात वे तेरहपंथी साधु फौजमलजी की दशा देखकर अच्छी तरह समझ चुके थे। अपने धर्म की रक्षा करने के लिए प्रतिवादियों का मुकाबिला करने के लिए संस्कृतभाषा की जानकारी अनिवार्य है।

श्रावकों के प्रश्न का उत्तर मुनिश्री ने व्याख्यान में देना ही उचित समझा। दूसरे दिन आपने व्याख्यान में फरमाया—किसी सभ्य और समझदार गृहस्थ के एक पुत्र था। पिता ने मरते समय उससे कहा—बेटा, तुम्हारे हित के लिए मैं जो-कुछ कर सकता था, कर चुका। अब मैं सदा के लिए विदा होता हूं। अंतिम समय में एक शिक्षा और दिये जाता हूं। वह यह है—'तुम किसी से ऋण मत लेना और न भूखे ही रहना।' इतना कहने के बाद पिता की मृत्यु हो गई।

महाकवि कालीदास ने कहा है—'नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण।' मनुष्य की दशा सदैव बदलती रहती है। स्थिति कभी अच्छी और कभी खराब हो जाती है। बड़े-बड़े लखपति क्षणभर में कंगाल होजाते हैं और कंगालों को लखपति होते देर नहीं लगती। उस लड़के की स्थिति भी धीरे-धीरे गिरती गई। आखिर एक दिन वह आ पहुँचा कि ऋण लिये बिना कोई चारा न रहा। मगर उसे अपने पिता के अंतिम शब्द याद आगये कि उन्होंने ऋण लेने का निषेध किया था। वह एक क्षण के लिए सहम गया। पिताजी का अंतिम आदेश वह कैसे भंग करे? परन्तु ऋण न लेने का नतीजा प्राणों का विसर्जन करना था। अगर वह ऋण नहीं लेता तो भूखा रहना होगा और प्राण त्यागने होंगे। मगर यह भी वह कैसे मंजूर कर सकता है। पिता ने भूखे न मरने का भी तो आदेश दिया है। विचित्र संकट है। एक ओर कुआ और दूसरी ओर खाई। इधर भी पिता की आज्ञा का भंग और उधर भी। एक बार लड़का किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो गया।

इस प्रकार की [illegible] न के समय अंतर्नाद सहायक होता है। शान्त चित्त से विचार करने

पर आत्मा ऐसी सुन्दर सलाह देती है कि दूसरा कोई शायद ही दे सके। उस लड़के ने चित्त स्वस्थ करके विचार किया--इन परस्पर विरोधी प्रतीत होनेवाली दोनों आज्ञाओं का उद्देश्य सुखी जीवन व्यतीत करना है। ऋण लेने से जीवन का सुख नष्ट हो जाता है और भूखों मरने से जीवन ही नष्ट होजाता है तो जीवन के सुख की बात दूर ही रही। अतएव ऐसी परिस्थिति में थोड़ा ऋण लेकर जीवन कायम रखना ही श्रेयस्कर है। उसके बाद कठिन परिश्रम करके ऋण को उतार दूंगा और तब पिताजी के आदेश का भली-भांति पालन हो सकेगा। यह सोचकर उसने थोड़ा ऋण लेकर आत्मघात का भयंकर अनर्थ बचा लिया और थोड़े दिनों में ऋण भी चुका दिया।

भाइयो! इस लड़के के मामले का फैसला आपके हाथमें दे दिया जाय तो आप क्या फैसला करेंगे? क्या आप उस लड़के का भूखों मर जाना पसंद करेंगे? क्या आप उसके निर्णय को अनुचित कह सकते हैं? अगर आप थोड़ा-सा ही विचार करेंगे तो मालूम होगा कि उस लड़के ने उचित ही निर्णय किया।

यही बात गृहस्थ से साधुओं के अध्ययन के विषय में समझनी चाहिए। यह ठीक है कि साधु को गृहस्थ से कोई काम नहीं लेना चाहिए; मगर क्या आपके धर्म-गुरुओं को मूर्ख ही बना रहना चाहिए? क्या उन्हें धर्म पर होने वाले मिथ्या आरोपों का निवारण करने में समर्थ नहीं बनना चाहिए? शास्त्रों में ज्ञान की महिमा का बखान निष्कारण नहीं किया गया है। दशवैकालिक सूत्र में कहा है—

अन्नाणी किं काही किंवा नाही सेयपावकं।

अर्थात्—अज्ञानी बेचारा क्या कर सकेगा? वह भले-बुरे को—कल्याण और अकल्याणको, धर्म और अधर्म को क्या खाक समझेगा?

अध्ययन और अध्यापन कोई सावद्य कार्य नहीं है। मर्यादा में रहते हुए अगर गृहस्थ से अध्ययन किया जाय तो मूर्ख रहने की अपेक्षा बहुत कम दोष है। फिर प्रायश्चित्त द्वारा शुद्धि भी की जा सकती है। भगवान् ने गृहस्थ से काम लेने का निषेध किया है तो अल्पज्ञ रहने का भी निषेध किया है। मगर जैसे भूखों मर जाने की अपेक्षा थोड़ा ऋण लेकर जीवन कायम रखना लड़के का कर्त्तव्य था उसी प्रकार विद्वान् होना और यथोचित प्रायश्चित्त लेकर शुद्धि कर लेना साधुओं का कर्त्तव्य है। आप स्मरण रक्खें—नवीन युग, जो हमारे-आपके सामने आया है उसकी विशेषताओं पर ध्यान दिये बिना धर्म और समाज की रक्षा होना कठिन है धर्म और समाज की रक्षा के लिए अज्ञान का निवारण करना सर्वप्रथम आवश्यक है।

इस भाषण से बहुत-से लोगों को संतोष हुआ। मुनिश्री तो अपने दोनों शिष्यों को पढ़ाने का निश्चय कर ही चुके थे। तदनुसार पढ़ाई चल भी रही थी। दोनों मुनि परिश्रम के साथ अभ्यास करने लगे।

इक्कीसवां चातुर्मास

जुन्नेर से विहार करके मुनिश्री अनेक स्थानों में विचरे। जगह-जगह धर्म प्रचार करते हुए चातुर्मास समीप आने पर फिर जुन्नेर पधार गए। संवत् १९६६ का चातुर्मास आपने जुन्नेर में ही किया।

जुन्नेर में स्थानकवासी साधुओं का यह पहला चातुर्मास था। वहां चातुर्मास करके आपने एक नया क्षेत्र खोल दिया।

जुन्नेर के इलाके में श्रावकों के दो दल हो रहे थे। मुनिश्री के पधारने से दलबन्दी मिट गई और एकता तथा प्रेम स्थापित हो गया।

आपके लिए यह क्षेत्र एकदम नूतन था फिर भी सैकड़ों की संख्या में श्रोता एकत्र होते थे। बहुत-से राजकर्मचारी भी लाभ उठाते थे। वहां के तहसीलदार तो आपके परम भक्त हो गये थे।

इस चातुर्मास में मुनि श्रीमोतीलालजी महाराज ने ३३ दिन का उपवास किया। पूर के दिन जीवदया तथा दूसरे धार्मिक कार्य हुए।

इस चातुर्मास में मुनिश्री ने स्वयं भी संस्कृत भाषा का विशेष अभ्यास किया।

जुन्नेर का चातुर्मास पूर्ण करके मुनिश्री मंछर होते हुए खेड़ पधारे। यहां से चींचवड़ आदि स्थानों को पवित्र करते हुए आप पूना पधार गए। पूना दक्षिण का प्रसिद्ध विद्या केन्द्र है। आपका व्याख्यान सुनने के लिए पूना में बहुत बड़ी संख्या एकत्र होने लगी। जैनेतर लोगों पर भी आपके उपदेश का ऐसा असर पड़ा कि वे भी चातुर्मास की प्रार्थना करने लगे। उन्होंने आग्रह करते हुए कहा—'आप इस वर्ष पूना को ही पुनीत बनाइए। दर्शनार्थ आने वाले भाइयों की समस्त व्यवस्था का भार हम उठाएंगे।' मगर पूना बहुत बड़ा शहर है और वहां साधुओं को कई प्रकार की असुविधाएं थीं। अतएव पूना-निवासियों को निराश होना पड़ा।

पूना से विहार करके विचरते हुए आप चिंचवड़ पधारे। यहां श्रीयुत बक्तावरमलजी पोरवाड़ ने बड़े वैराग्य से फाल्गुन शुक्ला द्वितीया को दीक्षा अंगीकार की। उस समय आपकी आयु २४ वर्ष की थी। आप कष्टसहिष्णु और संयमशील हैं। जीवन सेवामय है। अंतिम दिनों तक आपने पूज्यश्री की जो अनवरत सेवा की है वह सभी के लिए आदर्श है।

चिंचवड़ से विहार करके मुनिश्री मंछर, नारायणगांव, बोरी आदि में धर्म जागृति करते हुए घोड़नदी पधारे।

बाईसवां चातुर्मास

मुनिश्री ने संवत् १९७० का चातुर्मास घोड़नदी में किया। आप नौ ठाणों से घोड़नदी विराजमान हुए। यहां भी मुनिश्री मोतीलालजी जी महाराज ने लम्बी तपस्या की। पूर के जीवदया के निमित्त बहुत-सा दान श्रावकों ने दिया।

नजर का भ्रम

चौमासे में एक बार मुनिश्री को बुखार आ गया। यह पहले ही कहा जा चुका मुनिश्री का शरीर गौरवर्ण और सुन्दर था। स्त्रियां स्वभाव से भोली होती हैं। कहने ल[illegible] महाराज साहब! आपको नजर लग गई है। आप का शरीर देखकर किसी औरत ने नजर लगा दी है। बात बिल्कुल सही है। आपको विश्वास न हो तो गिरधारीलाल[illegible] पूछ लीजिए।'

गिरधारीलालजी नामक सज्जन पास ही खड़े थे। उनके पास एक मोहरा था। जब कि[illegible] को ज्वर हो आता या ऐसी ही कोई बीमारी होती तो औरतें उसे गिरधारीलालजी के पास

आतीं। गिरधारीलालजी अपने मोहरे को पानी में रखते और उस पर अंगूठा रखकर उसे उठाते। अगर मोहरा अंगूठे के साथ उठ जाता तो कहते—इसे नजर लग गई है। देखो, मोहरा उठ रहा है। स्त्रियों को मोहरा उठते ही विश्वास हो जाता था।

स्त्रियों ने उसी समय गिरधारीलालजी को मोहरा लाने के लिए कहा। मोहरा वे ले आये। उठाने की क्रिया की तो मोहरा ऊपर उठ आया। सभी स्त्रियों को विश्वास हो गया कि महाराज को नजर लग गई है। मगर महाराज चकित थे। उन्हें यह तो विश्वास था कि नजर नामक कोई वस्तु नहीं होती, मगर मोहरे के उठने की बात उनकी समझ में न आई।

मुनिश्री मोहरा उठने का मर्म समझना चाहते थे। जब सब लोग चले गए तो आपने मुनिश्री गणेशीलालजी म० से मोहरा सरीखा एक पत्थर मंगवाया। उसे पानी में रखकर अंगूठे से दबाया। हाथ के साथ ही साथ पत्थर भी ऊंचा उठ आया।

मुनिश्री ने दूसरे दिन बाइयों को भलीभांति समझाया और अपने हाथ से मोहरा उठाकर उनका भ्रम दूर कर दिया। आपने बाइयों को समझाया—'भोली बहिनो! पानी में रखकर इस प्रकार दबाने से मोहरा अपने-आप उठ आता है। इसमें मंत्र-तंत्र या और कोई नजर आदि करामात नहीं है। आप अकारण ही झूठी बातों पर विश्वास करने लगती हैं। वास्तव में नजर नाम की कोई चीज ही नहीं है। यह तो कोरा वहम है। इस वहम में पड़कर तुम अपनी धर्मश्रद्धा से च्युत न होओ। अपने किये कर्मों के सिवाय कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। धर्म पर श्रद्धा दृढ़ रखो। फिर देवी-देवता, जादू-टोना आदि किसी से डरने की आवश्यकता नहीं।'

मुनिश्री के व्याख्यान से बहुत-से भाइयों और बहुत-सी बाइयों का भ्रम भंग हो गया।

मुनिश्री के इस उपदेश का जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ा। गुलाबचंदजी नामक एक सज्जन की पत्नी को भूत आता था। वे एक दिन एक मोटा और मजबूत-सा डंडा लेकर अपनी पत्नी के सामने जमकर बैठ गये। कहने लगे—'आज भूत आया और मैंने इस डंडे से उसका स्वागत किया! चाहे कुछ भी हो, तुम्हारी खोपड़ी फूट जाय तो फूट जाय मगर मैं भूत को बिना मारे नहीं छोड़ूंगा।' कहने की आवश्यकता नहीं कि डंडे के डर से भूत भाग गया और फिर कभी उनकी पत्नी की ओर उसने नहीं झांका।

लासणगांव के एक भाई चतुर्भुजजी थे। उन्होंने एक आप बीता किस्सा सुनाया। उनकी पत्नी को भी भूत आया करता था। जब उसे भूत आता तो एक नाइन बुलाई जाती थी। नाइन भूताविष्ट स्त्री को एक कमरे में बंद कर लेती और हाथ में पत्थर लेकर धमकाती—'भाग, भाग, नहीं तो तेरा सिर फोड़ती हूं।' सिर फूटने के भय से भूत थोड़ी ही देर में भाग जाता था। कुछ दिनों तक यही हाल रहा। एक दिन चतुर्भुजजी ने किंवाड़ में छेद करके सारी घटना देखी। पत्थर का महामंत्र देखकर उन्होंने भी भूत भगाने की कला सीख ली। अब भूत आने पर नाइन की आवश्यकता नहीं रही। चतुर्भुजजी स्वयं उक्त विधि से भूत भगाने लगे। कुछ दिनों बाद भूत ने पिंड छोड़ दिया।

इस प्रकार की अनेक घटनाएं मनोभावना से हुआ करती हैं। मुनिश्री के उपदेश से लोगों ने यह सत्य समझ लिया।

घोड़ नदी का चौमासा समाप्त करके मुनिश्री जामगांव, अहमदनगर, अम्बोरी, सोनई आदि स्थानों को पवित्र करते हुए फिर जामगांव पधारे।

तेईसवां चातुर्मास

वि० सं० १९७१ का चातुर्मास जामगांव में हुआ। यह स्थान अहमदनगर से आठ कोस दूर है। अध्ययन और धर्मध्यान की सुविधा देखकर मुनिश्री ने छोटे ग्राम में चौमासा करना ही उपयुक्त समझा। फिर भी मुनिश्री की प्रसिद्धि, प्रतिभाशालिता और तेजस्विता के कारण यहां भी काफी भीड़ होने लगी।

मुनिश्री मोतीलालजी महाराज ने यहां ३४ दिन की तपस्या की। पूर के दिन श्रावकों की ओर से दान आदि अनेक शुभ कार्य किये गये।

सेनापति बापट

जामगांव चौमासे से पहले मुनिश्री एक बार पारनेर पधारे। यहां एस०डी०ओ० प्रभृति बड़े-बड़े राज्याधिकारी मुनिश्री का व्याख्यान सुनने तो आते ही थे, पर उनमें एक विशिष्ट सज्जन थे—सेनापति बापट। बापट कट्टर देशभक्त और बृटिश शासन के घोर विरोधी थे। सरकार उनसे सदैव सतर्क रहती थी। खुफिया और दूसरी पुलिस हरदम छाया की तरह उनके पीछे लगी रहती थी। उन पर कड़ी निगरानी रक्खी जाती थी।

विद्यार्थी-अवस्था में वे बहुत प्रतिभाशाली विद्यार्थी थे। आई० सी० एस० के लिए वे परीक्षा में बैठे और सर्वप्रथम आये। नौकरशाहीरूपी मशीन का पुर्जा बनने के लिए वे इंग्लेण्ड भेजे गये। लाला लाजपतराय की भारत में गिरफ्तारी होने पर उन्होंने वहां एक भाषण दिया, जो सरकार की आंखों में बहुत खटका। उसी समय से वे खतरनाक आदमी समझे जाने लगे। पुलिस उन पर निगाह रखने लगी।

इंग्लेण्ड में रहकर आप बैरिस्टर हो गये और आई० सी० एस० को छोड़ बैठे। जर्मनी जाकर आपने बम बनाना सीख लिया। आई० सी० एस० के बदले बमबाजी की विद्या सीखकर बापट साहब स्वदेश लौटे। देश में आकर बहुत-से नवयुवकों को बम बनाना सिखाया। सेनापति उनका ऐसा ही विरुद था जैसे श्रीवल्लभ भाई का 'सरदार' विरुद है।

यह सेनापति बापट बड़ी श्रद्धा के साथ मुनिश्री का व्याख्यान सुना करते थे। आपके साथ सी० आई० डी० के दो सिपाही रहते थे। आपकी स्मरणशक्ति गजब की है। मुनिश्री का सारा भाषण उसी समय मरहठी-कविता में तैयार करके सुना देना आपके लिए साधारण बात थी। कभी-कभी आप कहा करते—'अगर यह ब्राह्मणी (आपकी पत्नी) मेरे साथ न होती तो मैं भी मुनिजी का शिष्य बन जाता।'

बापट साहब की दिनचर्या जानने योग्य है। सुबह उठते ही अपनी पत्नी के साथ टोकरी, कुदाली और झाड़ू लेकर घर से निकल जाते और सड़कें तथा नालियां साफ करते। लोग अपने-अपने घरों का कूड़ा-कचरा गलियों में फेंकते और आप चुपचाप उसे इकट्ठा करके, टोकरियों में भरकर गांव के बाहर डाल आते। इसके बाद प्रतिदिन मुनिश्री का व्याख्यान श्रवण करने आते। दिन में अंगरेजी अखबारों के लिए लेख लिखते। शाम को चार से पांच बजे तक गलियों में व्याख्यान देते। कोई सुनने वाला हो या न हो, समय पर आपका व्याख्यान आरम्भ हो जाता

था। धीरे-धीरे श्रोताओं की भीड़ लग जाती थी। रात्रि में अछूत बालकों को प्रेम से पढ़ाते थे।

सेनापति बापट बड़े विनोद शील भी हैं। ये कभी बच्चों में मिल जाते और गुल्ली-डंडा खेलने लगते। मजाक में कभी कहते—'अगर कोई मेरी ब्राह्मणी को लेकर मुझे एक टाईप की मशीन दे दे तो मेरा लिखने का परिश्रम कितना कम हो जाय? समय भी बहुत-सा बच जाय!

आपकी पत्नी बड़ी ही सहनशील, पतिपरायण और आदर्श महिला थी। बापट साहब के सभी कार्यों में पूरी सहानुभूति रखती और उनकी सुख-सुविधाओं का सदा ध्यान रखती थी।

सेनापति बापट बड़े ही संतोषी जीव! घर में चीनी या मिट्टी के दो-चार टूटे-फूटे वर्तन थे। खाने-पीने के मामले में राम भरोसे खेती थी। जब जैसा मिल जाता उसी में प्रसन्न थे। नागपुर के एक मित्र उन्हें २०) रु० मासिक भेजते थे, किन्तु दूसरे-तीसरे महीने मनी-ऑर्डर वापस कर दिया जाता था। उन्हें लिख दिया जाता था कि इस बार आवश्यकता नहीं है।

बापट साहब अत्यन्त प्रतिभाशाली पुरुष हैं। एक बार मुनिश्री के यह पूछने पर कि आप किस उद्देश्य से सफाई किया करते हैं? आपने करीब दस-बारह पृष्ठों का एक बड़ा ही सुन्दर और अनोखा लेख लिखा था।

वे अपने इस जीवन में मस्त थे। उनका फक्कड़पन वास्तव में ईर्षा की चीज है। मुनिश्री के प्रति उन्हें बड़ी श्रद्धा थी। सेनापति की सेवावृत्ति, देशभक्ति, सादगी, प्रतिभा आदि देखकर मुनिश्री को बड़ी प्रसन्नता हुई। हर्ष है कि बापट साहब अब भी मौजूद हैं।

गणी पदवी

संवत् १६७१ में जब मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज का चातुर्मास जामगांव में था तब जैनाचार्य श्री श्री १००८ पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज रतलाम में विराजते थे। चातुर्मास समाप्त होने से पांच दिन पहले अर्थात् कार्तिक शुक्ला दशमी को आपके पैर में अकस्मात् तीव्र वेदना उत्पन्न हुई। परिणाम स्वरूप चातुर्मास उठने पर आप विहार न कर सके। उसी दिन पूज्यश्री के मनमें आया कि पांव में वेदना होने के कारण मैं अधिक विहार नहीं कर सकता। ऐसी अवस्था में दूर-दूर फैले हुए विस्तृत सम्प्रदाय तथा साधुपरिवार की देख-रेख होना कठिन है। इसलिए सम्प्रदाय को कुछ भागों में विभक्त करके उन्हें भिन्न-भिन्न योग्य साधुओं की देख-रेख में सौंप देना चाहिए। पूज्यश्री ने अपनी इच्छा संघ के अग्रणी श्रावकों के सामने व्यक्त की। उसी समय पूज्यश्री की इच्छा के अनुसार व्यवस्थापत्र तैयार किया गया। उसकी प्रतिलिपि नीचे दी जाती है।

व्यवस्थापत्र की प्रतिलिपि

श्री जैन दयाधर्मावलम्बी पूज्यश्री स्वामीजी महाराज श्री श्री १००८ श्री हुक्मीचन्दजी महाराज के पांचवें पाट पर जैनाचार्य पूज्य महाराजाधिराज श्री श्री १००८ श्री श्रीलालजी महाराज वर्तमान में विद्यमान हैं। उनके आज्ञानुयायी गच्छ के साधु १०० से अधिक हैं। उनकी आज्ञ तक शास्त्र व परम्परानुसार साल सम्भाल आचार गोचार वगैरह की निगरानी यथा विधि पूज्यश्री करते रहे हैं। परन्तु महाराज श्री के शरीर में व्याधि वगैरह के कारण इतने अधिक सन्तों की साल संभाल करने में परिश्रम व विचार पैदा होता है। इसलिए पूज्य महाराज श्री ने यह विचार-पूर्वक गच्छ के सन्त मुनिराजों की सार संभाल व हिफाजत के लिए योग्य सन्तों को मुकर्रर कर तालुक सन्तों को इस तरह सुपुर्दगी कर दिये हैं कि वे अग्रेसर सन्त अपने गण की संभाल

सब तरह से रखें और कोई गण की किसी तरह की गलती हो तो ओलम्भा वगैरह देकर शुद्ध करने की कार्यवाही का इन्तजाम करें। फकत कोई बड़ा दोष होवे और उसकी खबर पूज्य महाराज को पहुंचे तो पूज्यश्री को उसका निकालने का अख्तियार है। सिवाय इसके जो अग्रेसर हैं वे थोक आज्ञा चातुर्मास आदिक की पूज्य महाराज श्री से अवसर पाकर ले लेवें।

इसके सिवाय जो कोई सन्त नीचे के गणों से कारणवश नाराज होकर पूज्यश्री के समीप आवे तो पूज्य महाराज श्री जैसी योग्य कार्यवाही होवे वैसी करें। यह अख्तियार पूज्य महाराजश्री को है। पूज्य महाराज श्री का कोई सन्त चला जावे तो अग्रेसर बिना पूज्य महाराज श्री की आज्ञा के उससे संभोग न करें। इसके सिवाय आचार गोचार श्रद्धा प्ररूपणा की गति है, वह गच्छ की परम्परा मुताबिक सर्वगण प्रतिपालन करते रहें।

यह ठहराव शहर रतलाम में पूज्यश्री की मरजी के अनुकूल हुआ है सो समस्त संघ को इसका अमलदरामद रखना चाहिए।

गणों के अग्रेसरों की खुलावट नीचे लिखे अनुसार है—

(१) पूज्य महाराज श्री के स्वहस्त दीक्षित अथवा पूज्य महाराज श्री की खास सेवा में रहने वालों की देख-रेख पूज्य महाराज श्री करेंगे।

(२) स्वामीजी श्री चतुर्भुजजी महाराज के परिवार में हाल वर्तमान में श्री कस्तूरचन्दजी महाराज बड़े हैं, आदि ठाणे जो सन्त हैं उनकी साल संभाल की सुपुर्दगी स्वामीजी श्री मुन्नालाल जी महाराज की रहे।

(३) स्वामीजी महाराज श्री राजमलजी महाराज के परिवार में श्री रत्नचन्दजी महाराज की नेश्राय के सन्तों की सुपुर्दगी श्री देवीलालजी महाराज की रहे।

(४) पूज्यश्री चौथमलजी महाराज के सन्तों की सुपुर्दगी श्रीडालचन्दजी महाराज की रहे।

(५) स्वामीजी श्री राजमलजी महाराज के शिष्य श्री घासीरामजी महाराज के परिवार में मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज साल संभाल करें।

ऊपर प्रमाणे गण पांच की सुपुर्दगी अग्रेसरी मुनिराजों को हुई है सो अपने सन्तों की साल सम्भाल व उनका निभाव करते रहें।

यह ठहराव पूज्य महाराज श्री के सामने उनकी राय मुताबिक हुआ है, सो सब संघ मंजूर करके इस मुताबिक वर्ताव करें।

इस ठहराव के अनुसार मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज भी एक गण के अग्रणी चुने गए।

चौबीसवां चातुर्मास

जामगांव का चौमासा पूर्ण होने पर विभिन्न क्षेत्रों में विचरते और धर्मोपदेश करते हुए मुनिश्री अहमदनगर पधारे। श्रावकों के विशेष आग्रह के कारण संवत् १९७२ का चौमासा आपने अहमदनगर में करना स्वीकार कर लिया।

मुनिश्री का व्याख्यान बहुत ही प्रभावक, व्यापक और सार्वजनिक होता था। सभी श्रेणियों के लोग बड़े चाव से सुनने आते और प्रभावित होते थे।

प्रोफेसर राममूर्त्ति का आगमन

उसी अवसर पर कलियुगी भीम प्रोफेसर राममूर्त्ति अपनी सरकस-कम्पनी के साथ अहमद-

नगर में आये। अहमदनगर में मुनिश्री के उपदेशों की प्रसिद्धि थी ही। प्रोफेसर राममूर्त्ति के कानों तक भी वह जा पहुंची। राममूर्त्ति ने व्याख्यान सुनने की इच्छा प्रदर्शित की।

दूसरे दिन नियत समय पर कम्पनी के कार्यकर्त्ताओं के साथ प्रोफेसर राममूर्त्ति उपदेश सुनने आये। मुनिश्री के व्याख्यान में यों ही भीड़ होती थी, आज राममूर्त्ति के कारण बहुत अधिक भीड़ थी।

मुनिश्री ने उस दिन जीवदया और गौ रक्षा पर बड़ा ही ओजस्वी भाषण दिया। जनता पर गहरा प्रभाव पड़ा। प्रोफेसर राममूर्त्ति ने देखा होगा वे अपने हृष्ट-पुष्ट शरीर के करतब दिखलाकर जनता को जितना प्रभावित करते हैं, उससे कहीं ज्यादा मुनिश्री छोटी सी जिह्वा के जादू से जनसाधारण को प्रभावित कर देते हैं। मुनिश्री के प्रभावशाली प्रवचन को सुनकर वे चकित रह गये।

मुनिश्री का भाषण समाप्त होने पर उन्होंने अपने संक्षिप्त भाषण में कहा—

'इस समय मैं क्या बोलूं ? सूर्य के निकल आने पर जिस प्रकार जुगनू का चमकना अनावश्यक है, उसी प्रकार मुनिश्री के अमृततुल्य उपदेश के बाद मेरा कुछ बोलना भी अनावश्यक है। मैं न वक्ता हूं, न विद्वान् हूं। मैं तो एक कसरती पहलवान हूं। किन्तु बड़े-बड़े विद्वानों का व्याख्यान सुनने का मुझे बड़ा शौक है। आज मुनिश्री का उपदेश सुनकर मेरे हृदय पर जो प्रभाव पड़ा है वह आज तक किसी के उपदेश से नहीं पड़ा। यदि भारतवर्ष में ऐसे दस साधु भी हों तो निश्चित रूप से भारत का पुनरुत्थान हो जाय।

जब मैं अपने डेरे से चला था तो मुझे यह आशा नहीं थी कि मैं जिनका उपदेश सुनने जा रहा हूं वे मुनिराज इतने बड़े ज्ञानी और ऐसे सुन्दर उपदेशक हैं। आज मेरा हृदय एक अभूतपूर्व आनन्द अनुभव करके प्रफुल्लित हो रहा है। मैं जीवन भर इस सुन्दर उपदेश को न भूलूंगा।

मैं क्षत्रिय हूं किन्तु मांसभोजी नहीं हूं। जीवों पर दया करने का सदैव पक्षपाती हूं। कुछ लोगों की धारणा है कि मनुष्य विना मांस खाए शक्तिशाली हो ही नहीं सकता। यह उनका भ्रम है। मैं स्वयं अन्न और वनस्पतियों के सहारे इतना बड़ा शरीर पाल रहा हूं। कुछ लोगों की मेरे विषय में यह गलत धारणा है कि मेरे शरीर में कोई दैवी शक्ति है। मेरे शरीर में कोई दैवी शक्ति नहीं है। केवल ब्रह्मचर्य और व्यायाम से मैंने यह शक्ति सम्पादित की है। आज भी यदि कोई छह से नौ वर्ष तक का लड़का मुझे मिल जाय तो मैं उसे बीस वर्ष के परिश्रम से अपनी सारी शक्ति दे सकता हूं। इसके लिए मैं जिम्मेवार हूं कि वह बीस वर्ष में ही राममूर्त्ति बन जायगा।'

इस प्रकार अहमदनगर में अपूर्व यशोराशि उपार्जन करके चौमासा समाप्त होने पर आपने घोड़नदी की ओर विहार किया।

लोकमान्य तिलक से भेंट

घोड़ नदी पहुंचकर मुनिश्री राजणगांव आदि क्षेत्रों में विचरते हुए फिर अहमदनगर पधारे। उन्हीं दिनों लोकमान्य बालगंगाधर तिलक कारागार से मुक्त हुए थे। अहमदनगर में आपका 'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' विषय पर जोशीला भाषण हुआ। श्रीकुन्दनमलजी

फिरोदिया, माणिकचंदजी मूथा, सेठ किसनदासजी मूथा तथा श्रीचंदनमलजी पीतलिया आदि के प्रयत्न से लोकमान्य भी मुनिश्री के निकट आये।

आपका सम्मिलन देखने के लिए करीब पांच हजार जनता वहां इकट्ठी हुई।

लोकमान्य तिलक ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'गीतारहस्य' में सभी धर्मों की तुलनात्मक वि- चना की है। आपने यह ग्रन्थ कारागार में रहते हुए बड़े ही कठोर परिश्रम से लिखा है। आपकी सूक्ष्म विवेचना शक्ति का, विशाल अध्ययन का और प्रखर पाण्डित्य का परिचायक है। इस ग्रंथ में बौद्ध धर्म का विवेचन करने के बाद जैनधर्म को कुछ बातों में भिन्न बताकर उसी के समान बतलाया है। 'गीतारहस्य' पढ़ने पर पाठक के मन पर यह छाप पड़ती है कि जैनधर्म भी बौद्धधर्म के समान केवल निवृत्ति प्रधान है। उदाहरणार्थ—गृहस्थ मोक्ष में नहीं जा सकता, पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिए संसार-त्याग अनिवार्य है। जीवन का एकमात्र लक्ष्य गार्हस्थ्य जीवन को छोड़कर मुनिवृत्ति अंगीकार करना होना चाहिए। मुनियों के लिए भी मुख्य बात निवृत्ति ही निवृत्ति है। विधेय या आचरणीय बातें बहुत कम अथवा नहीं हैं।

यद्यपि ऊपर-ऊपर से देखने पर यह बातें ठीक मालूम होती हैं किन्तु गंभीर विचार करने से मालूम होता है कि इनमें वैसा तथ्य नहीं है। तिलक स्वयं उच्च कोटि के विद्वान् थे। वे अपने ग्रन्थ को अधिक से अधिक प्रामाणिक बनाना चाहते थे। पक्षपात में पड़कर कोई मिथ्या बात लिखने की उनसे आशा नहीं की जा सकती। फिर भी जैनधर्म के मूल में जो दृष्टिकोण छिपा हुआ है, तिलक उस तक पूरी तरह नहीं पहुंच पाये थे। मुनिश्री उन्हें वह दृष्टिकोण समझाना चाहते थे। अतः मुनिश्री ने कहा—

जैनधर्म केवल निवृत्ति प्रधान नहीं है, इसकी प्रकृति अनासक्ति प्रधान है। जैनधर्म ने वेष या बाह्य आचार बाड़ की तरह सहायक माना है, धान्य का स्थान वह नहीं ले सकता। वेष मुक्ति का कारण नहीं है। कोई किसी भी वेष में हो, अगर वह विषयों में पूर्णरूपसे अनासक्त हो चुका है तो मोक्ष प्राप्त कर सकता है। निवृत्ति मार्ग का अभ्यास भी मुक्ति का कारण है, अत स्वलिंग सिद्ध भी कहा है। अनासक्ति का अभ्यास करने के लिए साधु धर्म और निवृत्ति मार्ग है। गृहस्थ होकर भी जो महापुरुष आसक्ति से सर्वथा अतीत हो जाते हैं वे गृहस्थलिंग से भी मुक्ति के अधिकारी हो जाते हैं। मुक्ति के लिए जैसे निवृत्ति आवश्यक है उसी प्रकार शुद्ध प्रवृत्ति भी आवश्यक है। साधु के अमुक प्रकार के वस्त्र पहने विना भी मोक्ष हो सकता है। भरत महाराज चक्रवर्ती सम्राट् थे। उन्होंने साधु के वस्त्र धारण नहीं किये थे, फिर भी शीशमहल में खड़े खड़े उन्हें केवल ज्ञान हो गया था। माता मरुदेवी और इलायची पुत्र आदि के अनेक उदाहरण हैं, जो गृहस्थलिंग से ही मुक्त हुए हैं। यह आन्तरिक भावना के प्रकर्ष का ही परिणाम था। जैनधर्म में मोक्ष जाने वाले जीवों के पन्द्रह भेद हैं। उनमें एक भेद अन्यलिंग सिद्ध भी है अर्थात् पूर्ण अनासक्ति या निर्मोह-अवस्था प्राप्त हो जाने पर किसी भी वेष में रहा हुआ व्यक्ति केवल ज्ञान प्राप्त कर सकता है। इससे स्पष्ट है कि जैनधर्म न तो सर्वथा निवृत्ति की हिमायत करता है और न मुक्ति के लिए अमुक प्रकार के बाह्य वेष की अनिवार्यता प्रकट करता है। अनासक्ति ही प्रधान है। अनासक्ति के अभाव में निवृत्ति अकर्मण्यता है। कामभोगों में मूर्छा, गृद्धि या आसक्ति का होना संसार का कारण है और न होना मोक्ष का कारण है। अतएव जैनधर्म को

सर्वथा निवृत्ति प्रधान बतलाने से उसका पूर्ण परिचय नहीं मिलता।

साधुओं के लिए त्याज्य बातें आवश्यक बतलाई गई हैं तो विधेय भी कम न। महाव्रतों में त्याज्य और विधेय दोनों अंश हैं। किसी प्राणी की हिंसा न करना अहिंस का त्याज्य अंश है किन्तु संसार के सभी प्राणियों पर मैत्रीभाव रखना, उनकी रक्षा क..., सभी के कल्याण की कामना करना उसका विधेय अंश है। असत्य भाषण न करना सत्यमहाव्रत का त्याज्य अंश है किन्तु हित, मित और सत्य वचन द्वारा जनकल्याण करना उसका विधेय अंश है। शास्त्र पढ़ना, स्वाध्याय करना, सत्य की खोज के लिए युक्ति संगत वाद करना ये सभी सत्य-महाव्रत के विधेय अंश हैं। बिना दी हुई वस्तु न लेना तीसरे महाव्रत का त्याज्य अंश है, किन्तु प्रत्येक वस्तु को ग्रहण करते समय उस के स्वामी की आज्ञा लेना विधेय अंश है। कामभोगों को छोड़ना चौथे महाव्रत का निवृत्ति प्रधान अंश है किन्तु आत्मरमण करना उसका प्रवृत्यंश है। किसी भी वस्तु में ममत्व न रखना पांचवें महाव्रत का निवृत्ति प्रधान अंश है और तप, परीषह जय आदि के द्वारा शरीर तथा वस्त्र आदि सभी वस्तुओं में अनासक्ति रखने का अभ्यास बढ़ाना प्रवृत्ति प्रधान अंश है। इसी प्रकार समिति, गुप्ति आदि का पालन, पैदल विहार तथा दूसरी सभी बातें ऐसी हैं, जिन में प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों रही हुई हैं। अशुभयोग से निवृत्ति और शुद्ध तथा शुभयोग में प्रवृत्ति जैन धर्म का सिद्धान्त है।

बौद्ध धर्म में ज्ञान सन्तान के सिवा कोई आत्मा नहीं है। मोक्ष अवस्था में वह भी नहीं रहता। इस लिए वहां अपने अस्तित्व को मिटा देना ही मुख्य ध्येय है। जैन धर्म में मुक्त होने पर भी आत्मा का अस्तित्व बना रहता है।

आत्मा कर्मों के अधीन होकर संसार में भ्रमण करता है। जैन साधक आत्मा को नवीन कर्मबन्धन से बचाना चाहता है और बंधे हुए कर्मों को आत्मा से अलग करना चाहता है। इसके लिए दो मार्ग हैं। संवर और निर्जरा। पहला प्रवृत्ति रूप है और दूसरा निवृत्ति रूप। संवर का अर्थ है अपने को अशुभ प्रवृत्तियों से बचाना। निर्जरा का अर्थ है तप, स्वाध्याय, ध्यान, समाधि आदि से, बंधे हुए कर्मों को आत्मा से पृथक् करना। इसके बारह भेद हैं। इस प्रकार जैन धर्म में प्रवृत्ति और निवृत्ति साथ साथ चलते हैं। मोक्ष अवस्था में भी जहां सभी दुःखों का अभाव है वहां अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य आदि सद्भूत गुण विद्यमान हैं। जैनियों का आत्मा वेदान्तियों के समान निर्गुण नहीं है।

आशा है, जैनधर्म का दृष्टिकोण आपके ध्यान में आ गया होगा।

मुनिश्री की जैन धर्म सम्बन्धी व्याख्या से तिलक को बहुत हर्ष हुआ। आपने 'गीता-रहस्य' में अगली आवृत्ति में उचित संशोधन करना स्वीकार किया।

इसके पश्चात् लोकमान्य ने खड़े होकर एक संक्षिप्त भाषण देते हुए कहा—जैनधर्म और वैदिकधर्म दोनों प्राचीन हैं, किन्तु अहिंसाधर्म का प्रणेता तो जैनधर्म ही है। जैनधर्म ने अपनी प्रबलता के कारण वैदिकधर्म पर कभी न मिटने वाली छाप लगा दी है। वैदिकधर्म पर जैनधर्म विजयी हुआ है। यह बात तो मैं पहले से ही मानता आया हूं।

जैनधर्म के विषय में मेरा ज्ञान बहुत थोड़ा है, जितना है वह भी जैनदर्शन के मूल ग्रन्थों के आधार पर नहीं है। अंग्रेज या दूसरे अजैन विद्वानों ने जो थोड़ा बहुत लिखा है उसी को पढ़-

कर मैंने इस मत का परिचय प्राप्त किया है। जैनदर्शन के ग्रन्थ या तो प्राकृत भाषा में हैं या संस्कृत में। उनमें भी ऐसा कोई ग्रन्थ मेरे देखने में नहीं आया जिसे पढ़कर जैन मत का मौलिक ज्ञान प्राप्त हो सकता। जैन विद्वानों द्वारा आधुनिक शैली पर लिखा हुआ तो एक भी ग्रन्थ नहीं है। समय की अल्पता के कारण संस्कृत-प्राकृत के विशाल साहित्य का मंथन करना मेरे लिए बहुत कठिन है। इसलिए अंग्रेज या अजैन विद्वानों द्वारा लिखे हुए फुटकल निबन्धों पर से ही अपने विचार घड़ने पड़ते हैं। मुनिश्री ने आज जो बातें समझाईं, उनसे मुझे बड़ा लाभ हुआ है। मैं मानता हूं, जैनदर्शन का गहराई के साथ अध्ययन करने वाला एक जैन विद्वान् जो सूक्ष्म बातें बतला सकता है, दूसरे विद्वान् उन पर नहीं पहुंच सकते। अहिंसा धर्म के लिए सारा संसार भगवान महावीर व बुद्ध का ऋणी है।

मैं मुनिश्री का आभार मानता हूं, जिन्होंने भारतवर्ष के एक महान् धर्म के विषय में मेरी गलतफहमी दूर की और उसका शुद्ध स्वरूप समझाया।

आज के भारतीय साधु समाज में जैन साधु त्याग तपस्या आदि सद्गुणों से सर्वोत्कृष्ट हैं। उनमें से एक मुनि श्री जवाहरलालजी महाराज हैं जिनका मैं दर्शन कर रहा हूं और जिनके व्याख्यान सुनने का आनन्द उठा चुका हूं। आप सर्व श्रेष्ठ तथा सफल साधु हैं। मैं जहां अनेक उपास्य देवों का उपासक हूं-वहां सन्तों का भी अनन्य भक्त हूं। अतएव अपने व्याख्यानों के प्रारम्भ में सन्त तुकाराम के अभंगों का मंगलगान करता हूं तथा उन्हें वेदवाक्य के समान मानता हूं।

गुणाः प्रियत्वेऽधिकृता न संस्तवः।

अर्थात् मनुष्य अपने गुणों के कारण प्रिय होता है,परिचय से नहीं। हमारे ये संत प्रिय हैं। मैं भारत की भलाई में ऐसे सत्पुरुषों से आशीर्वाद चाहता हूं।'

मुनिश्री को लक्ष्य करके आपने कहा—'मुनि महाराज आप सन्त हैं। सर्वस्व तथा सब कामनाओं का त्याग कर चुके हैं। फिर भी आपमें जीवमात्र के कल्याण की कामना है। भारत की स्वतन्त्रता में करोड़ों व्यक्तियों की भलाई सीमित है। जब भारत स्वतन्त्र होगा तभी जैनधर्म फूलेगा, फलेगा। यह आप जानते हैं। मैं यह भी जानता हूं कि आप सन्तों के आचार एवं धार्मिक नियमों से बद्ध हैं। आपको प्रायः राज्यविरोधी कार्य में भाग लेने की आज्ञा नहीं है। अतएव केवल आशीर्वाद दीजिए। करने वाले हम कई करोड़ हैं।'

अन्त में मैं इतना और कहना उचित समझता हूं कि जैनधर्म तो आरंभ से अहिंसा का प्रबल समर्थक रहा ही है किन्तु वैदिकधर्म भी जैनधर्म के प्रभाव से अहिंसा का आराधक बना है। अब अहिंसा के विषय में आप और हम एक मत हैं। अतः हम सब को कन्धे से कन्धा मिलाकर अपनी मातृभूमि के उद्धार में लग जाना चहिए।'

लोकमान्य चले गये और जैन विद्वानों को एक उपयोगी एवं आवश्यक परामर्श भी दे गये। तिलक सरीखे विद्वान् जैनधर्म की कई मान्यताओं को गलत समझें, इसमें उनका उतना दोष नहीं, जितना दोष युगानुकूल शैली से लिखे गये साहित्य के अभाव का है। ऐसे साहित्य के अभाव में अधिकांश जिज्ञासु जैनेतर विद्वान् जैनधर्म की वास्तविकता से अपरचित रह जाते हैं। लोकमान्य तिलक को यह कहे तीस वर्ष से अधिक हो गये। मगर यह कमी अब भी ज्यों की त्यों बनी हुई है।

उन्हीं दिनों तप्त मुद्रा लेने वाले कांची के संतों के साथ सनातनधर्मियों का शास्त्रार्थ होने वाला था। उसमें भारत धर्म-महामण्डल के महोपदेशक मुरादाबाद निवासी विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसाद जी आये। आप अपने दल के साथ मुनिश्री के व्याख्यान में पहुंचे। उस दिन व्याख्यान का विषय था—

'न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः।

अर्थात् संसार में कर्तृत्व और कार्यों का स्रष्टा ईश्वर नहीं है।

मुनिश्री ने गीता के इस वाक्य का वर्णन करते हुए कहा—'भगवान् भले ही भक्त के वश में हों; किन्तु वे सुख-दुःख के दाता नहीं हैं। अगर ऐसा हो तो सारी दुनियादारी का उत्तरदायित्व ईश्वर पर आ जाता है। जीवात्मा खिलौना बन जाता है।' इसके अतिरिक्त अन्य अनेक युक्तियों से मुनिश्री ने ईश्वर का अकर्तृत्व सिद्ध किया। पश्चात् आपने फरमाया—'यदि विद्यावारिधिजी कुछ बोलना चाहें तो बोल सकते हैं।' विद्यावारिधिजी कुछ न बोले।

मुनिश्री ने इस प्रकार विश्वविख्यात व्यक्तियों के हृदयों पर अपनी विशिष्टता, विद्वत्ता और तेजस्विता की छाप अंकित करके तथा धर्म की अपूर्व प्रभावना करके शेषकाल समाप्त होने पर अहमदनगर से विहार किया।

पच्चीसवां चातुर्मास

अहमदनगर से विहार करके स्थान-स्थान पर विचरते हुए मुनिश्री घोड़नदी पधारे। वहीं वि० सं० १९७३ का चातुर्मास हुआ। चातुर्मास आरंभ होने के कुछ ही दिनों बाद घोड़नदी और आसपास में प्लेग फैल गया। प्लेग के कारण आप पास के सिरूर नामक गांव में पधार गये। कुछ ही दिन व्यतीत हुए कि वहां भी प्लेग आरंभ हो गया।

ऋषि सम्प्रदाय की कुछ सतियों का भी वहां चौमासा था। मुनिश्री ने उन्हें भी अन्यत्र विहार करने का परामर्श दिया। मगर उन्होंने विहार करने में एक दिन का विलम्ब कर दिया। इसका परिणाम बहुत भयंकर हुआ। दो सतियां प्लेग से बीमार हो गईं। उनकी बीमारी के कारण दूसरी सतियों को भी ठहरना आवश्यक हो गया। दो सतियां और बीमार होगईं। अन्त में दो सतियों का स्वर्गवास हो गया।

ऐसे समय अगर साधु-साध्वी बीमारी वाले स्थान मे विहार न करें तो श्रावकों को भी भक्तिवश वहीं ठहरना पड़ता है और उन्हें हानि उठानी पड़ती है। प्लेग जैसी बीमारी के समय जब गांव खाली हो जाता है तो साधुओं को भी विहार करना लाजिमी हो जाता है।

प्रश्नोत्तर समीक्षा की परीक्षा

सं० १९७२ में पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज का चौमासा उदयपुर में था। न्यायविशारद, न्यायतीर्थ संवेगी मुनि श्री न्यायविजयजी का भी वहीं चौमासा था। इस समय तो न्यायविशारद जी साम्प्रदायिक संकीर्णता से बाहर से हैं और उनके विचारों में काफी औदार्य आ गया है, मगर उस समय वे नवयुवक ही थे और काशी से पढ़कर बहुत कुछ ताजा ही आये थे। उस समय उनमें साम्प्रदायिकता का अभिनिवेश पर्याप्त मात्रा में मौजूद था। वे अपने उपार्जित विपुल ज्ञान को पचा नहीं पाये थे। अतएव उन्होंने पूज्यश्री से विविध प्रकार के प्रश्न पूछना आरंभ किया। पूज्यश्री शान्तस्वभावी थे। वे उनके प्रश्नों का उचित समाधान कर दिया करते थे। न्यायविशारदजी

को इतना ही वस न जान पड़ा। पूज्यश्री सागर की तरह गंभीर थे। वहां उफान नहीं आया और उफान के बिना तूफान कैसे मचता? अतएव न्यायविशारदजी ने १०८ प्रश्नों की एक लम्बी-चौड़ी पोथी-सी तैयार करके पूज्यश्री के पास भेज दी। पूज्यश्री को यह सब बखेड़ा पसंद नहीं था। अपने तप-संयम में मग्न रहना उन्हें प्रिय था। पूज्यश्री ने उसका यथोचित उत्तर दे दिया मगर श्रावकों ने वह प्रश्नावली मुनिश्री के पास भिजवादी। मुनिश्री ने पहले-पहल प्रारंभिक आठ प्रश्नों के उत्तर संस्कृत भाषा में श्लोकबद्ध तैयार करवाकर भेज दिये। न्यायविशारदजी को तो उस समय अपने ज्ञान का प्रदर्शन करना अभीष्ट था। जिज्ञासा या तत्त्वचर्चा के भाव से प्रश्न नहीं किये गये थे। अतएव उन्होंने 'प्रश्नोत्तर-समीक्षा' नामक एक पुस्तक प्रकाशित करवा दी। मुनिश्री ने धामोड़ी में इस पुस्तक का खण्डन करते हुए 'समीक्षा की परीक्षा' नामक पुस्तक तैयार की। वह पुस्तक उसी समय प्रकाशित हो गई। उसे देखने से आपकी प्रकृष्ट प्रतिभा का पता चलता है।

प्रलोभन ठुकरा दिया

घोड़नदी और आसपास के ग्रामों में चौमासा पूर्ण करके मुनिश्री गणिया गांव पधारे। उन दिनों आचार्य पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज ने किसी अपराध के कारण जावरा वाले संतों को सम्प्रदाय से पृथक् कर दिया था। उन्होंने अलग होते ही अपना अलग संगठन स्थापित करने का विचार किया। इसके लिए उन्हें ऐसे आचार्य की आवश्यकता थी जो अपनी प्रतिभा, प्रभाव और वाक्शक्ति के द्वारा नवीन सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा जमा सके। इस उद्देश्य को पूर्ण करने के लिए उनकी दृष्टि मुनिश्री जवाहरलालजी पर गई। ख्यालीलालजी उर्फ हरखचंदजी नामक एक भाई मुनिश्री की सेवा में पहुंचे और इनसे आचार्य पदवी ग्रहण करने की प्रार्थना की।

साधारण साधु के लिए आचार्य पदवी उतनी ही प्रलोभन की वस्तु है, जितना साधारण गृहस्थ के लिए राजसिंहासन। संसार त्याग देने पर भी इस पद का प्रलोभन अनेक साधुओं में शेष रह जाता है। किन्तु मुनिश्री ने संयम को ही अपने जीवन में प्रधान समझा। संघ के संगठन और ऐक्य के लिये वे सदैव प्रयत्नशील रहे। साधु सम्मेलन के समय उन्होंने जो योजना तैयार की थी उसे देखने से उनके विचार स्पष्ट समझ में आ सकते हैं। वे समस्त स्थानकवासी परम्परा के सम्प्रदायों को एकता के सूत्र में बद्ध करने के इच्छुक थे। एक बार देहली में अपने भाषण में उन्होंने साफ शब्दों में घोषणा की थी:—

'मेरी स्पष्ट सम्मति यह है कि जब तक समस्त उपसम्प्रदायों के साधु अपने पृथक्-पृथक् शिष्य बनाना तथा पुस्तक आदि अपने-अपने अधिकार में रखना छोड़कर एक ही आचार्य के अधीन न होंगे तथा अपने शिष्य और शास्त्र आदि पूर्ण रूप से उन आचार्य को न सौंप देंगे, तब तक संघ की कोई मर्यादा स्थिर रहना कठिन है। यह कार्य चाहे आज हो चाहे कल हो या बहुत समय बाद हो, परन्तु जब तक ऐसा न हो जायगा तब तक संघ में प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देने वाली खराबियां दूर न होंगी।

मुझे अपनी ओर से यह बात प्रसिद्ध करने में किंचित् भी संकोच नहीं है कि यदि उक्त रीति से समस्त संघ एक सूत्र में संगठित होता हो तथा शास्त्राज्ञा का पालन होता हो तो इसके लिए सर्वस्व समर्पण करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। हां, साधुता को मैंने अपने जीवन का

प्राण समझकर अंगीकार किया है, इसलिए उसे अगर कोई प्राण लेने का भय बतलाकर भी छुड़ाना चाहे तो भी मैं उसे नहीं छोड़ सकता। अलबत्ता साधुता के अतिरिक्त और सब कुछ—उपाधि, शिष्य, शास्त्र आदि छोड़ने में मुझे तनिक भी संकोच नहीं हो सकता।'

मुनिश्री के यह उद्‌गार स्पष्ट घोषणा कर रहे हैं कि संघ की एकता के लिए वे अपना शिष्य समूह, आचार्यपद आदि सभी कुछ त्यागने को उत्सुक थे। साधु सम्मेलन के समय आपने साम्प्रदायिक एकता के लिए जोरदार प्रयत्न किया था। मुनिश्री अपने अंतिम समय तक एकता की पुकार करते रहे मगर वह आज तक न सुनी गई। अस्तु—

इस स्थल पर मुनिश्री के संगठन और एकता संबंधी प्रबल प्रयत्नों का दिग्दर्शन कराना हमारा उद्देश्य नहीं है। यहां सिर्फ इतना बतला देना ही पर्याप्त है कि जो महान् पुरुष संघ की एकता को अपने जीवन की बड़ी साधना समझता था और उसके लिए सर्वस्व त्यागने को तैयार था, वह संघ में अनैक्य पैदा करने वाले किसी प्रयत्न में कैसे शरीक हो सकता था? मुनिश्री ने साफ इंकार कर दिया।

गणियागांव से विहार करके महाराजश्री धामोरी पधारे। वहां कुछ दिन विराजकर खेड़ होते हुए घोड़नदी पधार गये। घोड़नदी में पृथक् किये हुए सन्तों की ओर से रतलाम वाले गब्बूलालजी नामक एक वकील आये और उन्होंने भी आचार्य पद ग्रहण करनेकी प्रार्थना की। पूज्यश्री के प्रति विरक्ति उत्पन्न करने के उद्देश्य से उन्होंने कई इधर-उधर की बातें भी कहीं।

महाराजश्री अपने एक सिद्धान्त पर चलने वाले सन्त थे। उन्होंने इस बार भी मनाही कर दी।

मुनिश्री का उत्तर सुनकर और आपकी दृढ़ता देखकर वकील साहब निराश होकर लौट आये। यह घटना मुनिश्री की उदात्त और संघश्रेयस् की पवित्र भावना को द्योतित करती है।

घोड़नदी से विहार करके मुनिश्री विभिन्न स्थानों में धर्मप्रचार करते हुए और संयम एवं तप से अपनी आत्मा को भावित करते हुए हिवड़ा पधारे। वहां कुछ दिन ठहरकर आपने फिर विहार कर दिया।

छब्बीसवां चातुर्मास

हिवड़ा से विहार करके अनेक क्षेत्रों में विचरते हुए मुनिश्री मीरी पधारे। सम्वत १९७४ का चौमासा मीरी में ही किया। आपके उपदेश से प्रभावित होकर लोगों ने यहां गौशाला की स्थापना की। भीनासर (बीकानेर) के प्रसिद्ध श्रावक स्वर्गीय सेठ बहादुरमलजी बांठिया ने गौशाला को २०००) रु० भेंट दिये।

मुनियों की परीक्षा

चातुर्मास समाप्त होने के पश्चात् मुनिश्री विभिन्न स्थानों में विचरते हुए और धर्मोपदेश देते हुए अहमदनगर पधारे।

बम्बई धारासभा के वर्तमान स्पीकर श्रीकुन्दनमलजी फिरोदिया तथा श्रीमाणिकचंदजी मूथा वकील ने एक दिन मुनिश्री से वार्तालाप के सिलसिले में कहा—आपके दोनों शिष्य संस्कृत का अध्ययन कर रहे हैं, यह आनन्द की बात है। मगर उनका अध्ययन किस प्रकार चल रहा है, और उन्होंने कितनी प्रगति की है, यह बात हमें और जनता को कैसे मालूम हो?

यद्यपि मुनियों को परीक्षा देने और प्रमाणपत्र लेने की कोई आवश्यकता नहीं होती और न इस ध्येय से वे अध्ययन ही करते हैं, तथापि समाज की शक्ति का दुरुपयोग नहीं हो रहा है और अध्ययनकर्त्ता मुनि अप्रमत्त भाव से अध्ययन करते हैं, यह जानने के लिए परीक्षा की आवश्यकता रहती है। उक्त वकीलों का कथन सुनकर मुनिश्री ने अपने दोनों शिष्यों से परीक्षा देने के लिए पूछा। दोनों ने स्वीकृति देदी। तब अहमदनगर में आपने दोनों मुनियों की परीक्षा दिलाने का निश्चय किया। प्रसिद्ध विद्वान् पं० गुणे शास्त्री, पी० एच० डी० तथा म० म० पं० अभ्यंकर शास्त्री परीक्षक निर्वाचित किये गये। श्रीसङ्घ तथा अनेक दर्शकों की उपस्थिति में परीक्षा ली गई। व्याकरण और साहित्य विषय में प्रश्न पूछे गये। व्याकरण विषय में मुनि श्रीघासीलालजी महाराज को तथा मुनिश्री गणेशीलालजी महाराज को ८२ प्रतिशत प्रथम श्रेणी के नम्बर प्राप्त हुए। साहित्य में मुनिश्री घासीलालजी म० को ६७ और मुनिश्री गणेशीलालजी महाराज को ६४ प्रतिशत अंक प्राप्त हुए। मौखिक परीक्षा में दोनों मुनियों ने सौ में से सौ अंक प्राप्त किये।

दोनों मुनिनों की यह सफलता सराहनीय थी। परीक्षकों ने अध्यापक तथा अध्येता दोनों की भूरि-भूरि प्रशंसा की। उन्होंने कहा आजकल इस प्रकार प्राचीन और नवीन मत का परिस्फोट करके पढ़ाने की पद्धति उठ सी गई है। दोनों मुनियों ने संस्कृत में पूर्ण परिश्रम किया है तथा अच्छी योग्यता प्राप्त की है।

मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज साधुओं को पढ़ाने के लिए जहां विद्वान् शिक्षक उपयोगी समझते थे वहां इस बात का भी उन्हें पूरा ध्यान था कि शिक्षक का सदुपयोग होरहा है या नहीं।

परीक्षा आदि से निवृत्त होकर मुनिश्री ने अहमदनगर से विहार किया और हिवड़ा पधारे।

सत्ताईसवां चातुर्मास

वि० सं० १९७५ का चातुर्मास हिवड़ा में हुआ। हिवड़ा के पास तेलकुड़ नामक एक ग्राम था। वहां एक सद्गृहस्थ थे। नाम था उनका भीमराजजी। बड़े धर्मात्मा और श्रद्धालु सज्जन थे। उनके पास उनके एक भानेज (भागिनेय) रहते थे। उनका नाम सूरजमलजी कोठारी था। पूज्यश्री का धर्म और अध्यात्म रस से परिपूर्ण उपदेश सुनकर सूरजमलजी को १८ वर्ष की उम्र में वैराग्य हो गया। उन्होंने संसार का अनित्य और दुःखमय स्वरूप समझकर दीक्षा लेने की इच्छा प्रकट की। भाद्रपद शुक्ला सप्तमी को हिवड़े में ही उन्होंने मुनिश्री से मुनिदीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षामहोत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया गया। लगभग दो हजार व्यक्ति दीक्षामहोत्सव में सम्मिलित हुए।

दुष्काल में सहायता

उन दिनों दक्षिण प्रान्त में भयंकर दुष्काल पड़ गया और साथ ही इन्फ्लुएंजा का भी प्रकोप हो गया। प्रतिदिन अनेक व्यक्ति भूख तथा इंफ्लुएंजा से मरने लगे। उनकी करुण कथाएं प्रतिदिन मुनिश्री के कानों में पड़ने लगीं। मुनिश्री तथा पन्नालालजी महाराज को छोड़ कर नौ सन्तों को भी रोग ने धर दबाया। मुनियों की देख-रेख तथा सेवा सुश्रूषा का सारा भार इन्हीं दोनों सन्तों पर आ पड़ा। मुनिश्री उत्तम कोटि के विद्वान् वक्ता और प्रभावशाली होते हुए भी इतने अधिक सेवा भावी थे कि रात दिन रुग्ण मुनियों की सेवा में तत्पर रहते थे। आपने मुनिश्री गणेशीलालजी म. पर अचित्त लालमिट्टी का प्रयोग किया, हवा में रखा और जब चित्त घबराते

उसने बच्चों से कहा—"आओ, अपन रोटी लेने चलें।" भोले बालकों को क्या पता था कि उन की भूख से तंग आकर मां का हृदय क्या करने जा रहा है? वे साथ हो लिए। बच्चों को लेकर वह गांव से बाहर निकली। थोड़ी दूर पर जंगल में एक कूआ था। बच्चों को एक वृक्ष के नीचे खड़ा करके वह बोली—'तुम यहीं खड़े रहना। मैं रोटी लेने जाती हूं।' यह कह कर वह कूए पर गई और उस में कूद पड़ी।

बच्चों ने समझा—मां रोटी लेने गई है। थोड़ी देर तो वे आशा में खड़े रहे किन्तु मां रोटी लेकर न लौटी। वे जोर जोर से रोने लगे और कूए में झांक कर मां मां पुकारने लगे। उन्हें क्या पता था उनकी क्षुधा से तंग आकर माता उन्हें छोड़कर किसी दूसरे लोक में पहुंच गई है और अब उनका क्रन्दन उसके पास न पहुंच सकेगा।

उसी समय बड़ा भाई घर लौटा। बेचारा मजदूरी खोजने गया था किन्तु वहां भी भाग्य ने पीछा न छोड़ा। तीन दिन भटकने पर भी कहीं काम न मिला। भूखा मरता घर लौटा तो किवाड़ खुले पड़े थे। घर में कोई न था। पड़ौसियों से सारी कथा सुनकर वह भी उसी ओर चल दिया जिधर उस की पत्नी गई थी। कूए के पास पहुंचने पर उसे रोते हुए बालक दिखाई दिए। पिता को देखते ही वे रोटी रोटी चिल्लाते हुए दौड़े। बाप ने झूठी सन्त्वना देते हुए पूछा—"मैं तुम्हें अभी रोटी देता हूं। बताओ! तुम्हारी मां कहां गई है?" बालकों ने कूए की तरफ इशारा करते हुए कहा—"यहां रोटी लेने गई है।" उसने कूए पर जाकर देखा तो अभी बुलबुले उठ रहे थे। कई दिन की भूख के कारण वह पहले ही बहुत घबराया हुआ था, यह दशा देख कर विक्षिप्त सा हो उठा। उसने बच्चों से कहा—"आओ! अपन भी रोटी लेने चलें।" यह कहकर एक बच्चे को पीठ से बांध लिया और दो को बगलों में रख लिया। कूए पर चढ़ कर वह भी धम से कूद पड़ा। भूख से तंग आकर उसने अपनी तथा अपने बच्चों की जीवन लीला समाप्त कर दी।

इस हृदय विदारक घटना को मुनिश्री ने अपने व्याख्यान में सुनाया। गरीबों की करुण दशा का वर्णन करते हुए दया दान का उपदेश दिया। परिणाम स्वरूप बाहर से दर्शनार्थ आए हुए तथा स्थानीय श्रावकों ने गरीबों को भोजन देने के लिए बहुत सा रुपया जमा किया। गांव के बहुत से व्यक्तियों ने दस दस मन जुआर दी। छोटी-छोटी भी बहुत सी सहायताएं प्राप्त हुईं। मजदूरी करने वाली एक बहिन ने अपनी मजदूरी में से चार आने दिए।

तदनन्तर एक विशाल भोजनालय प्रारम्भ हो गया। गरीबों को मुफ्त भोजन दिया जाने लगा। आस पास के गांवों में इस बात की घोषणा कर दी गई। लगभग दो-अढ़ाई सौ व्यक्तियों को प्रतिदिन दोनों समय भोजन मिलने लगा। उन में बहुत से व्यक्ति ऐसे भी होते थे जिन्हें एक हफ्ते से कुछ भी खाने को न मिला था।

युवाचार्य पदवी

उन दिनों पूज्यश्री का चौमासा उदयपुर में था। इन्फ्लुएंजा का प्रकोप प्रायः सर्वत्र था। आश्विन मास में उदयपुर पर भी उसका कृपाकटाक्ष बरस पड़ा। पूज्यश्री पर उसका असर हुआ। उनके शरीर में तीव्र ज्वर रहने लगा। किन्तु ज्वर की दशा में भी पूज्यश्री अपनी दैनिक धर्मक्रिया नियमित रूप से करते थे। महापुरुष अपनी नहीं, अपने आश्रित की चिन्ता पहले करते हैं।

पूज्यश्री ने अपनी रुग्ण अवस्था की चिन्ता न करते हुए संघ के हित का विचार किया। सोचा—जीवन का क्या भरोसा है? रोग का एक ही हल्का सा आक्रमण इसे समाप्त कर देने के लिए काफी है। रोग के अतिरिक्त भी मृत्यु के अनगिनते साधन संसार में विद्यमान हैं। आचार्य होने के कारण मेरे ऊपर सारे सम्प्रदाय का भार है। अतएव अब मुझे अपना कोई योग्य उत्तराधिकारी चुन लेना चाहिए, जो मेरे बाद सम्प्रदाय को भलीभांति संभाल सके और चतुर्विध संघ की धर्म-साधना निर्विघ्न होती रहे।

पूज्यश्री ने अपने सम्प्रदाय के मुनियों पर एक सरसरी निगाह डाली। उनकी निगाह एक तेजस्वी और सर्वथा सुयोग्य संत पर ठहर गई। वह संत कौन थे? यही हमारे चरितनायक पुण्य-कीर्त्ति मुनि श्रीजवाहरलालजी महाराज।

चरितनायक कई वर्षों से दक्षिण प्रान्त में विचरण कर रहे थे किन्तु उनकी कीर्त्ति सभी प्रान्तों में भ्रमण कर रही थी। पूज्यश्री स्वयं गुणग्राही और मनुष्य प्रकृति के पक्के परीक्षक थे। चरितनायक का ध्यान आते ही उन्हें सान्त्वना मिली, संतोष हुआ और एक प्रकार से वे निश्चिन्त हो गये। उन्होंने मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज को युवाचार्य चुनने का मन ही मन निश्चय कर लिया।

स्वास्थ्य कुछ ठीक होने पर पूज्यश्री ने उदयपुर में उपस्थित श्रीसंघ के सामने अपने विचार प्रस्तुत किये। उस समय वहां रतलाम, जावरा, बीकानेर आदि बहुत-से नगरों और ग्रामों के दर्शनार्थ आये हुए श्रावक भी उपस्थित थे। सभी श्रावकों ने पूज्यश्री के चुनाव का हार्दिक अभिनन्दन किया।

मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज के ज्ञान, दर्शन और चारित्र की महिमा उस समय सर्वत्र फैल चुकी थी। आपकी ओजस्विनी वाणी, प्रखर प्रतिभा, श्रेष्ठ संयम तथा अन्य अनेक गुणों से सभी लोग परिचित हो चुके थे। आपका व्यक्तित्व तो असाधारण था ही। आपकी शरीर सम्पत्ति के विषय में पहले ही लिखा जा चुका है।

अपने संयमशील शिष्यों से घिरे हुए जब आप व्याख्यान-मण्डप में विराजते थे तो तारा-मण्डल से घिरे हुए चन्द्रमा के समान सुशोभित होते थे। आश्चर्य तो यह है कि आपका मुख सूर्य की भांति देदीप्यमान था मगर मुख से निकलनेवाले वचन इतने मधुर और शान्तिप्रद होते थे मानों चन्द्रमा से अमृत बरस रहा हो। इस अमृत का पान करने के लिए हजारों चातक लालायित रहते थे। उस समय की आपकी दिव्य छवि जिसने एक बार निरख ली कि उसके हृदय में उतर गई। आपका उपदेश अनेकान्त तत्त्व से परिपूर्ण होता था, और आपका शरीर अनेकान्त की प्रत्यक्ष साक्षी उपस्थित करता था।

दक्षिण प्रदेश में जैसे महाराज शिवाजी ने अपनी वीरता की धाक जमाई थी उसी प्रकार मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज ने अपनी धर्मधीरता की धाक जमा दी थी। वहां आपने उसी प्रकार जैनधर्म की विजयपताका फहराई जिस प्रकार शिवाजी ने अपनी विजयपताका फहराई थी। जैसे शिवाजी ने अपने शत्रुओं को कुचल डाला था उसी प्रकार आपने समाज और धर्म संबंधी कुरूढ़ियों को कुचल दिया था। जैसे शिवाजी अपनी राजकीय स्वाधीनता के लिए जूझते रहे और अपने पथ में आने वाले कष्टों की उन्होंने कभी चिन्ता न की उसी प्रकार मुनिश्री अपनी आध्या-

त्मिक स्वाधीनता (मुक्ति) के लिए जूझते रहे और मार्ग में आने वाले विघ्नों की आपने तनिक भी परवाह नहीं की। महाराज शिवाजी की कीर्ति का बखान भूषण जैसे कवियों ने किया जबकि महाराज श्रीजवाहरलालजी की कीर्त्ति का बखान करने वाले, भारतवर्ष के तत्कालीन सर्वश्रेष्ठ नेता लोकमान्य तिलक और विश्वविख्यात पहलवान प्रोफेसर राममूर्त्ति, सेनापति बापट आदि थे।

धर्मनौका के ऐसे कर्णधार को पाकर मोक्ष-मार्ग के किस यात्री को अपार आनन्द न होता? सभी ने मुनिश्री की प्रशंसा की और पूज्य श्री के विचार के प्रति अपनी प्रसन्नता प्रकट की। सबकी अनुकूल सम्मति देखकर पूज्यश्री को और अधिक आनन्द हुआ। पूज्यश्री ने कार्तिक शुक्ला द्वितीया के दिन मुनि श्रीजवाहरलालजी महाराज को युवाचार्य पद पर नियुक्त करने की घोषणा कर दी। अपनी जन्मतिथि से दो दिन पूर्व ४३ वर्ष की अवस्था में आप युवाचार्य घोषित कर दिये गए।

उसी समय उदयपुर श्रीसंघ की ओर से हिवड़ा श्री संघ को तार दिया गया—पूज्यश्री ने मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज को युवाचार्य पद पर नियुक्त किया है। स्वीकृति लेकर खुशखबरी का तार दीजिए।

तार मुनिश्री की सेवा में उपस्थित किया गया। तार सुनकर आपके चेहरे पर एक खास तरह की गंभीरता झलक उठी, जैसे कोई परेशानी आ पड़ी हो। मगर उस समय आपने कोई उत्तर नहीं दिया।

महापुरुष सेनापति बनने की अपेक्षा सिपाही बनना अधिक पसंद करते हैं। सिपाही बनने में एक सुविधा यह है कि सिपाही को सिर्फ अपने शरीर की ही जोखिम रहती है। अपने शरीर को सेनापति के सिपुर्द करके वह आगे ही आगे बढ़ता जाता है। मगर सेनापति की परिस्थिति दूसरे प्रकार की है। सारी सेना ही सेनापति का शरीर बन जाती है और इस शरीर का नैतिक उत्तरदायित्व उस पर होता है। सिपाही का कर्त्तव्य सिर्फ जूझना है जब कि सेनापति पर जय-पराजय की भी जिम्मेदारी होती है। सिपाही अपने बल पर खड़ा होता है जब कि सेनापति को सेना के बल पर साहस करना होता है। सेनापति में अनुभव और बुद्धि होनी चाहिए जब कि सिपाही के लिए यह उतने आवश्यक नहीं हैं।

महापुरुष अपनी क्षमता को बराबर तोलते हैं और उनमें जितनी क्षमता होती है उससे भी कम मानकर चलते हैं। इससे उनकी क्षमता का निरन्तर विकास होता रहता है।

युवाचार्य पद पर नियत किये जाने का समाचार सुनकर मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज विचार में पड़ गए। वे अपनी शक्ति के बाँट से सम्प्रदाय का भार तोलने लगे। साधारण साधु होता तो इस अवसर पर फूला न समाता। मगर मुनिश्री इसे बहुत बड़ा भार समझते थे। उन्होंने अपनी विस्तीर्ण सम्प्रदाय पर दृष्टि डाली और सोचा—मैं लम्बे अर्से से दक्षिण में हूं। सम्प्रदाय के विशिष्ट क्षेत्रों से बहुत दूर हूं! मुझ से अधिक अनुभव, योग्यता, शास्त्रीय-ज्ञान तथा उम्र वाले अनेक साधु इस सम्प्रदाय में विद्यमान हैं। जिस भार को वहन करने में उन्हें असमर्थ माना गया, क्या मैं उसे वहन कर सकूंगा?

शासन का उत्तरदायित्वपूर्ण पद संभालने से पहले बुद्धिमान् शासक उन सब लोगों की रुचि और सम्मति जानना आवश्यक समझता है जिन पर उसे शासन करना हो। धर्म और प्रेम के

शासन में तो यह जान लेना बहुत ही आवश्यक है। तलवार का शासन भी आखिर लोकमत अनुकूल होने पर ही चिरस्थायी हो सकता है। अतएव आपने महाराष्ट्र प्रान्त में विचरने वाले संतों, सतियों और श्रीसंघों की सम्मतियां मांगी। सभी ने मुनिश्री को अपना भावी आचार्य स्वीकार करने में हार्दिक प्रसन्नता प्रकट की।

उत्तर में विलम्ब होते देख उदयपुर श्रीसंघ की ओर से दो तार और दिये गये, मगर मुनिश्री शीघ्रता में कोई कार्य नहीं करना चाहते थे।

जब तारों से काम न चला तो सतारा निवासी सेठ बालमुकुन्दजी तथा चन्दनमलजी मूथा हिवड़ा आये और मुनिश्री से युवाचार्य पद अंगीकार करने की प्रार्थना करने लगे। उन्होंने कहा— पूज्यश्री बड़े दूरदर्शी और गंभीर विचारक हैं। उन्होंने गहरा सोच-विचार करके ही आपके ऊपर यह भार डाला है। इस विकट परिस्थिति में प्रतिभाशाली योग्य व्यक्ति के बिना इस गुरुतर भार को कोई नहीं उठा सकता। पूज्यश्री ने आपको समर्थ समझा है। अस्वस्थता के समय उन्हें शीघ्र ही चिन्तामुक्त कीजिए और स्वीकृति प्रदान करके पूज्यश्री तथा समस्त सम्प्रदाय को आनन्दित कीजिए।'

सेठजी की बातें युक्तिसंगत और उचित थीं किन्तु मुनिश्री सहसा किसी निर्णय पर नहीं पहुंचना चाहते थे। अतएव उन्होंने उत्तर दिया—'मैं बहुत दिनों से महाराष्ट्र में हूं। उस तरफ की परिस्थितियों से अपरचित हूं। परिस्थितियों से परिचित हुए बिना पूर्ण स्वीकृति दे देना मेरे लिए उचित नहीं है। हां, पूज्यश्री की आज्ञा मुझे शिरोधार्य है मगर मुझे यह देखना है कि मुझ में वह शक्ति है भी या नहीं? अपनी शक्ति देखकर ही मुझे यह आज्ञा उठानी चाहिए, क्योंकि इसका सम्बन्ध सिर्फ मेरे साथ नहीं वरन् समस्त श्रीसंघ के साथ है। मुनि घासीलालजी और गणेशीलालजी का अध्ययन चल रहा है। उसे बीच ही में स्थगित कर देना भी उचित नहीं जान पड़ता। इनका अध्ययन पूरा होने पर मेरा विचार स्वयं पूज्यश्री की सेवा में उपस्थित होने का है। प्रत्यक्ष मिलने पर विशेष विचार कर लेंगे।

यह उत्तर लेकर दोनों सज्जन चले गये। मुनिश्री हिवड़ा-चातुर्मास पूर्ण करके मीरी पधारे। तीन-तीन तारों का उत्तर न पाकर उदयपुर से श्री गेरीलालजी खिवसरा तथा कई दूसरे सज्जन मुनिश्री की सेवा में उपस्थित हुए। उन्होंने बड़े आग्रह के साथ प्रार्थना की—'आप शीघ्र ही उधर पधार कर पूज्यश्री के दर्शन कीजिए और युवाचार्य पद स्वीकार करके हम सब को आनंदित कीजिए।' मगर मुनिश्री अपने दोनों शिष्यों के अध्ययन को इतना आवश्यक समझते थे कि उसे अधूरा छोड़कर शीघ्र विहार कर देना उन्हें उचित प्रतीत न हुआ। अतएव उदयपुर का शिष्टमंडल भी वापिस लौट गया।

विनय-पत्रिका

मीरी से विहार करते हुए मुनिश्री सोनई पधारे। आपके उपदेशों का बड़ा प्रभाव पड़ा। सार्वजनिक हित के बहुत-से कार्य हुए। उस समय सोनई-सेनेटरी बोर्ड के सदस्यों ने तथा स्कूल के प्रधानाध्यापक श्रीकेशव बाजीराव देशमुख ने मुनिश्री को विनयपत्रिका अर्पित करते हुए कहा—

'संसार में अनेक दुःख देने वाले मायामय बंधनों को तोड़ने वाले, काम क्रोध आदि दुः रिपुओं को वश में करने वाले, कामनाओं का सर्वथा त्याग करने वाले अर्थात् संसार से विरक्त,

'अहिंसा परमो धर्मः' के महा-मंत्र से ओतप्रोत, संकटाकीर्ण तथा कठोर संयम महाव्रत को धारण करने वाले, जगत् का कल्याण करने के लिए ग्रामानुग्राम विचरते हुए स्वनामधन्य, तपोधन श्री श्री १००८ श्री मुनि मोतीलालजी महाराज एवं पण्डितप्रवर श्री १००८ श्री जवाहरलालजी महाराज अपने विद्याविलासी एवं गुरुभक्त शिष्यों के साथ विचरते हुए ता० २२ जून, १९१८ ई० को प्रातःकाल ८ बजे सोनई ग्राम में पधारे। हम अपने ग्राम का सौभाग्य मानते हैं कि आप सरीखे पवित्र एवं विद्वान् महात्माओं के दर्शन एवं चरणस्पर्श से यह पवित्र हुआ। आपके विद्वत्ता और नैतिकता से परिपूर्ण उपदेशों से भरे व्याख्यान सर्वधर्मावलम्बियों ने बड़ी श्रद्धा और सम्मान के साथ सुनें और परमहर्ष प्रकट किया। उस समय वे अपना धार्मिक भेदभाव भूलगए।

पहले दिन दान विषय पर आपका भाषण बालाजी के मन्दिर में हुआ। ता० २३ से २७ तक पंचायती बाड़े में नीति, परोपकार, एकता, विद्या तथा अनुकम्पा विषयों पर आपके व्याख्यान हुए। इसके बाद भी जनता के विशेष आग्रह से विविध विषयों पर आपके व्याख्यान हुए। आपके उपदेशों का जनता पर गहरा एवं स्थायी प्रभाव पड़ा। विद्वत्ता तथा त्याग से भरे आपके उपदेशों ने हमारे सामाजिक जीवन में उथल-पुथल करदी है। आपका महत्व हमारे हृदयों में बैठ गया है। अपने पवित्र और उच्च विचारों द्वारा आपने जाति तथा धन के भेद-भाव को दूर करके प्रेम करना सिखलाया है। जो बातें बड़े-बड़े विद्वान् भी नहीं समझा पाते, उन्हें आपने बहुत ही सरल तथा संक्षेप रूप से समझा दिया है।'

मालवा की ओर प्रस्थान

उदयपुर के श्रावकों के लौट जाने पर सम्प्रदाय के प्रधान श्रावक रतलाम निवासी सेठ वर्धभानजी पीतलिया तथा भीनासर निवासी सेठ बहादुरमलजी बांठिया मीरी में मुनिश्री की सेवा में उपस्थित हुए। उन्होंने आचार्यश्री की वृद्धावस्था और अस्वस्थता का स्मरण दिलाते हुए कम से कम एक वर्ष के लिए मालवा में पधारने और युवाचार्य पदवी स्वीकार करने की आग्रह-पूर्ण प्रार्थना की। आप लोगों ने यह भी कहा कि इसके पश्चात् आप आवश्यक समझें तो फिर महाराष्ट्र पधार जावें। आचार्यश्री का तो यही फरमान है कि मुनि जवाहरलालजी को युवाचार्य पद पर नियुक्त करने की घोषणा तो हो ही चुकी है; परम्परागत विधि से मुनिश्री मोतीलालजी महाराज उन्हें चादर ओढ़ा देवें। फिर वे जब उचित समझें तब मालवा की ओर विहार कर सकते हैं। किन्तु समस्त श्रीसंघों की यही इच्छा है कि युवाचार्यपद-महोत्सव आप दोनों महापुरुषों की एक जगह उपस्थिति में ही मनाया जाय।

मुनिश्री स्वयं भी आचार्य महाराज के दर्शन करने से पहले और मालवा आदि की साम्प्रदायिक परिस्थिति का पूर्ण अध्ययन किये बिना यह भार स्वीकार करने में संकोच कर रहे थे। अतः आपने पीतलियाजी और बांठियाजी की बात मान ली और अध्ययन करने वाले दोनों मुनियों को महाराष्ट्र में ही छोड़कर मालवा की ओर विहार कर दिया। यह समाचार सुनकर आचार्यश्री को और समस्त श्रीसंघ को बड़ी प्रसन्नता हुई।

पूज्यश्री हुक्मीचन्द्रजी महाराज के सम्प्रदाय के लिए रतलाम क्षेत्र महत्वपूर्ण है। सम्प्रदाय के बड़े-बड़े महोत्सवों को मनाने का गौरव इसी स्थान को प्राप्त है। तृतीय पाट पर विराजमान पूज्यश्री उदयसागरजी महाराज ने रतलाम में ही पूज्यश्री चौथमलजी महाराज को युवाचार्य घोषित

किया था। यहीं पूज्यश्री चौथमलजी महाराज ने आचार्यपद सुशोभित करके सम्प्रदाय का भार संभाला था। पूज्य श्रीलालजी महाराज ने भी इसी स्थान पर युवाचार्य पद अलंकृत किया था। इसके बाद उन्होंने भी यहीं सम्प्रदाय का भार संभाला था। अब मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज को युवाचार्य पदवी देने का महोत्सव मनाने के लिए भी रतलाम स्थान ही उपयुक्त समझा गया।

पूज्यश्री ने भी उदयपुर में चौमासा पूर्ण करके रतलाम की ओर विहार किया। उधर से मुनिश्री भी रतलाम की ओर अग्रसर होने लगे। आप मीरी से विहार करके जलगांव, भुसावल बुरहानपुर तथा अन्य अनेक स्थानों को पावन करते हुए सनावद पधारे। वहां से आपने इन्दौर की ओर प्रस्थान किया।

भावी आचार्य का अभिनन्दन

मुनिश्री के महाराष्ट्र से रवाना होने के समाचार रतलाम में तथा अन्य प्रायः सभी स्थानों में पहुंच चुके थे। अपने भावी आचार्य का स्वागत करने के लिए जगह-जगह के श्रीसंघ उमड़ रहे थे। मालवा प्रान्त में पदार्पण करते समय अगवानी के लिए पांच-छह साधुओं ने रतलाम से विहार किया और जब आप इन्दौर से छह कोस दक्षिण में थे, आपकी सेवा में पहुंच गये।

यह पहले ही बतलाया जा चुका है कि महाराष्ट्र में विचरते हुए आपकी असाधारण कीर्त्ति सर्वत्र फैल गई थी। वे अपने अनेक गुणों के कारण सब के श्रद्धापात्र बन गये थे। अतः अपने श्रद्धास्पद को नेता के रूप में आते देखकर किसका हृदय प्रफुल्लित न हो जाता?

जिस दिन आप इन्दौर में पदार्पण करने वाले थे, ऐसा जान पड़ता था कि किसी महोत्सव की तैयारी हो रही है। जनता हर्षविभोर थी। सभी के वदन पर प्रसन्नता नाच रही थी। उत्साह और उमंगें उछल रही थीं। नर-नारियों के झुण्ड के झुण्ड मुनिश्री की अगवानी करने जा रहे थे। भगवान् महावीर के जयघोष के साथ आपने इन्दौर में प्रवेश किया।

केसरीचंदजी भंडारी की आत्म-शुद्धि

इन्दौर के केसरीचंदजी भंडारी को पाठक जानते होंगे। जैन ट्रेनिंग कालेज के विद्यार्थियोंके मामले में आपने भी मंत्री की हैसियत से मुनिश्री पर आरोप लगाया था। आप अपने कृत्य के लिए यद्यपि पहले ही क्षमायाचना कर चुके थे, फिर भी उन्हें आत्मसन्तोष नहीं हुआ था। एक पवित्र महात्मा पर मिथ्या दोषारोपण करने की बात स्मरण करके आपको ऐसा लगता जैसे किसी ने डंक मारा हो। ज्यों-ज्यों मुनिश्री की कीर्ति बढ़ती जाती थी त्यों-त्यों केसरीमलजी का संताप भी बढ़ता जाता था।

मुनिश्री जब इन्दौर पधारे तब केसरीचंदजी मुनिश्री की सेवा में उपस्थित हुए और लिखित क्षमापत्र पेश करके विनम्र क्षमायाचना की। मुनिश्री ने केसरीचंदजी को संत जनोचित उदारभाव से सान्त्वना देते हुए कहा—'आप अब निःशल्य हो। आपने मेरी आत्मा का कोई अपराध नहीं किया है। बल्कि मुझे अपनी अपकीर्त्ति सहन करके भी संयम की मर्यादा पर दृढ़ रहने का अवसर आपके निमित्त से मिल गया। इससे मेरा कुछ लाभ ही हुआ है। हानि कुछ नहीं हुई। आपके प्रति मेरे हृदय में अणु-मात्र भी दुर्भाव नहीं है। मेरी हार्दिक अभिलाषा यही है कि भविष्य में आप धर्म और सत्य के पक्ष-पाती बनें।

मुनिश्री का यह उदार भाव और संयम-प्रेम साधु-समाज के लिए आदर्श और अनुकरणीय

है। केसरीचंदजी आपकी क्षमाशीलता देखकर बहुत प्रसन्न हुए और धर्मध्यान में अधिक लीन रहने लगे।

रतलाम में पदार्पण

इन्दौर से विहार करके मुनिश्री रतलाम पधारे। रतलाम निवासियों के हर्ष का पार न रहा। बाहर के भी बहुसंख्यक लोग उपस्थित थे। फाल्गुन शु० १० को मुनिश्री मोतीलालजी महाराज तथा अन्य मुनियों के साथ जब आप रतलाम पधारे तो हजारों नर-नारी आपकी अगवानी के लिए सामने गये।

पूज्यश्री फाल्गुन शुक्ला पंचमी को ही पधार चुके थे। आपने आते ही सर्व-प्रथम पूज्यश्री के दर्शन किये और पूज्यश्री ने अपना प्रमोद व्यक्त किया। वर्त्तमान आचार्य और भावी आचार्य का यह सम्मिलन ऐसा जान पड़ता था जैसे चिरोदित और उदीयमान सूर्य मिलकर चमक रहे हों।

युवाचार्य पद महोत्सव

चैत्र कृष्णा नवमी बुधवार सम्वत् १९७५ ता० २६ मार्च १९१९ का दिन युवाचार्य पद-प्रदान के लिए नियत किया गया। आचार्य तथा युवाचार्य दोनों महापुरुषों का एक स्थानपर दर्शन करने तथा महोत्सव में सम्मिलित होने के लिए हजारों व्यक्ति बाहर से आने लगे। चैत्र कृष्णा सप्तमी तक सारा नगर भक्त श्रावक वृन्द से भर गया। रतलाम श्रीसंघ ने सभी के स्वागत का उत्तम प्रबन्ध किया था। रतलाम श्रीसंघ ने बाहर से आनेवालों के लिये जो कल्पना की थी उससे चार पांच गुणा लोक उतर आये, यह देख रतलामके लोगों में भी उत्साह का पूर उमड़ आया। तुरन्त ठहरने के लिये मकानों व सभी तरह का रातदिन एक करके प्रबन्ध किया गया और महोत्सव को यादगार बनाया। व्याख्यान हाल में इतनी गुंजायश नहीं थी कि उस जनता को समावेश कर सके इसलिए बहुत दूर तक सड़क पर जनता बैठी थी। बड़े-बड़े रायबहादुर और पांव में सोना पहने हुए राज्य मान्य लोगों को भी व्याख्यान हाल में प्रवेश करना कठिन हो गया था। स्वागताध्यक्ष सेठ वर्धभानजी साहब बड़ी कठिनाई से अन्दर जा सके। क्योंकि उनकी वहां जरूरत थी

चैत्र कृष्णा अष्टमी मंगलवार को समाज के प्रमुख श्रावकों की एक सभा श्रीमान् सेठ बहादुरमलजी साहब बांठिया भीनासर निवासी की अध्यक्षता में हुई। उसमें अगले दिन का कार्य-क्रम निश्चित किया गया और अन्य कई उपयोगी प्रस्ताव पास किये गए। जिनका विशद वर्णन उस समय के जैन प्रकाश में प्रकाशित हुआ है।

चैत्र कृष्णा नवमी बुधवार को प्रातःकाल छह बजे से ही उपाश्रय में दर्शकों की भीड़ जमा होने लगी। रंग-बिरंगी पोशाकों में सजे हुए विभिन्न प्रान्त निवासियों का यह सम्मेलन अपूर्व-सा दिखाई देता था। ऐसा मालूम पड़ता था जैसे जिन शासन का उद्यान रंगे-बिरंगे फूलों से भरा हो और विकास के यौवन में प्रवेश कर रहा हो। भिन्न-भिन्न प्रकार की पगड़ी धारण किए हुए पुरुषों का इतनी बड़ी संख्या में एक स्थान पर जमा होना और एक ही धार्मिक उद्देश्य के लिए इतना उत्साह प्रदर्शित करना इस बात की सूचना देता था कि भारतीय जीवन में धर्म अभी बहुत बल-वान है। भारतीय जनता धर्म की छाया में अपने प्रान्तीय तथा जातीय भेद-भाव को भुला सकती है। उसके लिए धार्मिक बन्धन सबसे बड़ा बन्धन और धार्मिक बन्धुत्व सबसे बड़ा बन्धुत्व है।

धीरे-धीरे भीड़ इतनी बढ़ गई कि उपाश्रय में जगह न रही। बाहर सड़क पर कई शामियाने ताने गए।

आचार्यश्री का उद्बोधन

लगभग आठ बजे आचार्यश्री बहुत से साधुओं के साथ बाहर पधारे और पाट पर विराज गए। साधु, साध्वी, श्रावक तथा श्राविका रूप चतुर्विध संघ ने खड़े होकर आपका अभिनन्दन किया और विराज जाने पर भक्तिपूर्वक वन्दना की। किन्तु उठकर वापस बैठने में बड़ी तकलीफ हुई। आचार्य श्री ने मंगलाचरण के बाद नन्दीसूत्र का स्वाध्याय किया। इसके बाद युवाचार्यश्री को सम्बोधित करके अपना सन्देश प्रारम्भ किया। आपने कहा—

मुनि जवाहरलालजी !

'प्राणिमात्र का जीवन क्षण भंगुर है। कोई भी अपने को नित्य या चिरस्थायी नहीं कह सकता। उसमें भी हम सरीखे सोपक्रम आयुष वालों पर तो मृत्यु प्रति क्षण सवार रहती है। ऐसी दशा में क्षण भर का भरोसा नहीं करना चाहिए। फिर भी स्वास्थ्य, युवावस्था आदि बाह्य कारणों का अवलम्बन लेकर व्यवहार चलाया जाता है। स्वास्थ्य गिर जाने पर या वृद्धावस्था आ जाने पर प्रत्येक व्यक्ति को तैयार हो जाना चाहिए। अपना सारा उत्तरदायित्व दूसरों को संभलाकर तथा सारे संबन्धों से नाता तोड़कर विदा होने के लिए तैयार रहना चाहिए। उदयपुर चातुर्मास के अन्तिम भाग में मेरे शरीर पर रोग ने भयंकर आक्रमण किया। उसी समय मुझे चेत हो गया कि अब छुट्टी लेने का समय आ पहुँचा है। आयुकर्म के शेष होने से मेरा जीवन बच गया किन्तु उस घटना ने मुझे सूचना दे दी है। दीक्षा लेते समय ही हम सांसारिक सभी बन्धनों को तोड़ देते हैं। सांसारिक बन्धु बांधवों की दृष्टि से तो हम उसी समय मृत्यु का आलिंगन कर लेते हैं। इसलिए शरीर को त्यागकर की जानेवाली इस महायात्रा के समय हमें किसी से विदा मांगने की आवश्यकता नहीं है। हम लोग तो उसी समय विदा ले लेते हैं। शरीर का छूटना हमारे लिए दुःख या अमंगल की बात भी नहीं है। हमारे लिए जन्म ही अमंगल है, दुबारा शरीर को धारण करना दुःख है। इसलिए मृत्यु को आई देखकर हमें किसी प्रकार का भय या शोक भी न होना चाहिए। हमें उस का सहर्ष स्वागत करना चाहिए।

ज्ञान, दर्शन और चारित्र की सम्मिलित उन्नति के लिए भगवान् महावीर ने चतुर्विध संघ की स्थापना की है। इस प्रकार सांसारिक परिवार को छोड़ देने पर भी हम धर्मपरिवार में प्रवेश करते हैं। इसके साथ-साथ हम पर कुछ उत्तरदायित्व भी आ पड़ता है। हम जिस समाज का अन्न, पानी लेकर धर्म की आराधना करते हैं, जो व्यक्ति अपने कल्याण की कामना से हमारी भक्ति करते हैं, जिनका आध्यात्मिक विकास हमीं पर निर्भर है, उन्हें व्यवस्थित करना तथा सत्य मार्ग बताते रहना हमारा कर्तव्य है। यद्यपि साधु सभी प्राणियों का समानभाव से अकारण मित्र होता है किन्तु ऐसे मुमुक्षु जीवों के लिए तो दूसरा आधार ही नहीं है। उन्हें सन्मार्ग की ओर लाना, अग्रसर करना तथा स्थिर रखना साधुओं का कर्तव्य है। इसी प्रकार बहुत से लघुकर्मा(हलुकर्मा) जीव संसार से विरक्त होकर अपना सारा जीवन धर्म की आराधना में लगाना चाहते हैं। वे पांच महाव्रत स्वीकार करके उनका शुद्ध पालन करने के उद्देश्य से हमारे साथ रहते हैं और हमारी आज्ञानुसार चलते हैं। ऐसे साधुओं के ज्ञान, दर्शन और चारित्र की उन्नति करना,

बढ़ाया है उससे जान पड़ता है कि मुझ पर संघ का प्रेम है और संघ मुझे यह भार उठाने में सहायता देगा। मैं संघ के सहयोग से अपना गंभीर उत्तरदायित्व निभाने में समर्थ हो सकूंगा। मुनिमण्डल के हार्दिक सहयोग के बिना क्षण भर भी कार्य चलना कठिन है अतएव मुनियों से मैं विशेष सहयोग की आशा करता हूं। इसी आशा और विश्वास के बल पर मैं पूज्यश्री तथा समस्त श्रीसंघ की आज्ञा शिरोधार्य करता हूं।

किसी नगर में राजा का देहान्त हो गया। राजा निस्संतान था, अतएव प्रश्न उपस्थित हुआ कि राजगद्दी किसे दी जाय ? परम्परा के अनुसार एक पक्षी छोड़ा गया और निश्चय हुआ कि यह जिसके सिर पर बैठ जाय उसी को राजा बना दिया जाय। पक्षी जंगल में जाकर एक घसियारे के सिर पर बैठ गया। मन्त्री तथा दरबारियों ने मिलकर उस घसियारे को राजा बना दिया। घसियारा राज्य करने लगा। वह मन्त्रियों के परामर्श से राज्य का भली-भांति संचालन करने लगा।

दरबार में राजा के पास ही मंत्री बैठा करता था। राजा जब खड़ा होता तो मंत्री के कंधे पर हाथ रख कर उसके सहारे खड़ा होता। एक दिन अधिक जोर देकर उठने के कारण मंत्री को हँसी आ गई। राजा ने तिरछी नजर से उसे हंसते देख लिया।

मंत्री को एकान्त में बुलाकर राजा ने हंसने का कारण पूछा। मंत्री पहले तो भयभीत हुआ मगर अभयदान मिलने पर उसने सच्ची बात कह दी। बोला—'महाराज ! जिस समय आप घसियारे थे उस समय बिना किसी की सहायता के ही घास का गट्ठा लादकर और दो कोस चलकर नगर में बेचने आते थे। आज राजा हो जाने पर अपना शरीर भी आपसे नहीं उठता ! खड़े होते समय आपको मेरे कंधे का सहारा लेना पड़ता है। इस परिवर्त्तन को देखकर मुझे हंसी आ गई।

राजा ने कहा—मंत्रीजी, आप मर्म की बात नहीं समझे। जिस समय मैं घसियारा था, मेरे ऊपर सिर्फ घास के गट्ठे का ही बोझ था। मैं उसे आसानी से उठा सकता था। अब सारे राज्य का और समस्त प्रजा का बोझ मेरे सिर है। उसे अकेले उठा लेना मेरी शक्ति के बाहर की बात है। आपके सहारे ही मैं वह भार उठा रहा हूं। इसीलिए खड़ा होते समय आपका सहारा लेता हूं।

सज्जनो ! मेरी स्थिति भी उस घसियारे के समान है। घसियारा इस अंश में अभागा था कि राजा के मरने के पश्चात् उस पर राज्य का भार आया था। मेरा सौभाग्य यह है कि पूज्यश्री की छत्र-छाया मेरे सिर मौजूद है और उनसे मैं बहुत कुछ शक्ति प्राप्त कर सकूंगा। हां, घसियारे के समान अभी तक मुझ पर सिर्फ मेरा ही भार था, अब सारे सम्प्रदाय रूपी राज्य का भार मेरे सिर आ रहा है। इसे संभालने में मैं अकेला असमर्थ हूं। मुझे भी मंत्री के समान स्थविर मुनिराजों की सहायता अपेक्षित है। उनकी सहायता पाकर ही मैं संघ रूपी प्रजा को संभाल सकूंगा।

व्यवहार में आचार्य-पदवी सम्मान की वस्तु समझी जाती है। धार्मिक क्षेत्र में यह सब से बड़ा पद है। मगर मैं तो इसे बड़े सेवक का पद मानता हूं। इस पद को प्राप्त करने के कारण मैं अपने को गौरवान्वित नहीं समझूंगा वरन् इस पद के अनुरूप श्रीसंघ की सेवा कर सका तो

में अपने को गौरवशाली समझूंगा। व्यवहार में, जो देता है उसी को लेने का अधिकार है। इसी प्रकार जो सेवा करता है उसी को सेवा कराने का अधिकार होता है। श्रीसंघ की दृष्टि में मैं भले ही आचार्य, पूज्य या ऊंचे पद पर आसीन समझा जाऊं मगर मैं अपनी नजरों में धर्म का एक अकिंचन सेवक ही रहूंगा।

पूज्यश्री का मुझ पर असीम उपकार है। मैं इनके ऋण से कभी मुक्त नहीं हो सकता। मुझे अध्ययन करने आदि की सब सुविधाएं आपने दी हैं। मेरे जीवन को ऊंचा उठाने में आपका महत्वपूर्ण हाथ रहा है। इसके लिए मैं इनका कृतज्ञ रहूंगा। इस अवसर पर मैं पूज्यश्री को विश्वास दिलाना चाहता हूं कि श्रीसंघ का कल्याण और जिनशासन की सेवा ही मेरे जीवन का ध्येय होगा और पूज्य श्री हुकमीचंदजी महाराज आदि महान पुरुषों द्वारा पावन इस सम्प्रदाय की गौरव रक्षा करने में मैं सदैव उद्यत रहूंगा।

युवाचार्य श्री के प्रवचन के पश्चात कई अन्य वक्ताओं के भाषण हुए। श्री वर्धभानजी पीतलिया ने आगत सज्जनों का आभार माना और उस समय का कार्य समाप्त हो गया।

मध्याह्न

मध्याह्न में जीवदया, शिक्षा प्रचार आदि के संबंध में कई सज्जनों के प्रभावशाली भाषण हुए। 'जैनों की उन्नति कैसे हो ?' इस उपयोगी विषय पर पूज्य महाराज ने अपना अभिप्राय प्रकट करते हुए फरमाया—किसी भी समाज की उन्नति प्रचारकों पर निर्भर है। हमारे समाज में ऐसे प्रचारकों की अत्यन्त आवश्यकता है जो सर्वत्र घूम-घूम कर समाज को संभालते हों। समाज में जहां जिस बात की आवश्यकता हो उसकी पूर्ति करना, धर्मविमुख लोगों को धर्म की ओर आकर्षित करना, जहां शिक्षा की समुचित व्यवस्था न हो वहां व्यवस्था करना—बालकों के अभिभावकों को समझा-बुझा कर धार्मिक संस्थाओं में भिजवाना या अनुकूलता हो तो शिक्षा संस्था की स्थापना करना, इस प्रकार समाज में से अज्ञान हटाकर ज्ञान और सदाचार का प्रसार करना; इत्यादि अनेक कार्य योग्य और सेवाभावी प्रचारकों के अभाव में नहीं हो सकते। प्रचारकों के बिना आर्थिक कठिनाइयों के कारण कष्ट पाने वाले स्वधर्मी बन्धुओं का पता कौन चलावे ? प्रचारक हों तो यह सब समाज और धर्म की उन्नति करने वाले कार्य सुचारूरूप से हो सकते हैं और समाज की दशा बहुत कुछ सुधर सकती है। सच्ची लगन वाले पचास उपदेशक समाज के लिए पर्याप्त हो सकते हैं।

किसी सम्मेलन या उत्सव में व्याख्यान देकर अग्रेसर का गौरव प्राप्त कर लेने मात्र से समाज का श्रेय नहीं हो सकता। इसके लिए तो रचनात्मक कार्यपद्धति अपनाना ही उपयोगी होता है। समाज को ठोस कार्य की आवश्यकता है। कोई निश्चित योजना बना कर उसे कार्यान्वित करने से ही जैन समाज का उत्थान होगा।

यह नहीं समझना चाहिए कि गृहस्थ प्रचारक जनता पर क्या असर डाल सकते हैं ? सच्ची लगन से कार्य किया जाय तो गृहस्थों का भी आदर हो सकता है। समाज में ऐसे अनेक क्षेत्र हैं जहां साधुओं का विचरण नहीं हो पाता। साधु की मर्यादा कायम रखकर वहां पहुंचना बहुत कठिन है। उन क्षेत्रों में श्रद्धाशील विद्वान और सच्ची निष्ठा वाले गृहस्थ ही कार्य कर सकते हैं। साधुओं पर सारा भार डालकर गृहस्थों को निश्चिन्त नहीं हो जाना चाहिए। साधु

अपनी मर्यादा के अनुसार धर्मप्रचार का कार्य करते ही हैं मगर श्रावकों को भी समाज की सर्वांगीण उन्नति के लिए पीछे नहीं रहना चाहिए।'

पूज्यश्री के उपदेश से उत्साहित होकर अनेक श्रावक-समाज सेवा के इन महत्वपूर्ण कार्यों में योग देने के लिए उद्यत हुए। मगर आखिर वह तैयारी यों ही रह गई। संवत् १९७५ में पूज्यश्री ने जो आवश्यक उपदेश दिया था, आज भी वह ज्यों का त्यों उपयोगी है। इतने लम्बे अर्से में भी इस दिशा में कोई व्यापक और ठोस प्रयत्न नहीं किया गया है। वास्तव में पूर्वोक्त योजना का अमल में आना समाज के अभ्युदय का कारण होगा।

रतलाम से विहार

रतलाम का समारोह सानन्द और सहर्ष सम्पन्न हो गया। आचार्यश्री और युवाचार्यश्री ने एक साथ विहार किया और दोनों महापुरुष जम्बूद्वीप के दो सूर्यों के समान प्रकाशमान होते हुए खाचरौद पधारे। वहां से पूज्यश्री ने उज्जैन की ओर तथा युवाचार्यश्री ने तालमंडावल की ओर विहार किया। कुछ दिनों बाद पूज्यश्री भी तालमण्डावल पधार गये। यहां से फिर दोनों महानुभाव साथ विहार करके नगरी पधारे।

सम्प्रदाय के शासन का अनुभव प्राप्त करने के उद्देश्य से युवाचार्यश्री पूज्यश्री के साथ ही चौमासा करना चाहते थे। किन्तु जावरा के नवाब और श्रीसंघ की प्रार्थना पर पूज्यश्री जावरा में चौमासा करने का वचन पहले ही दे चुके थे और युवाचार्यश्री को उदयपुर भेजना आवश्यक था। अतएव यहां से दोनों को दो दिशाओं में विहार करना आवश्यक हो गया। पूज्यश्री ने जावरा की ओर विहार किया और युवाचार्यश्री ने पूज्यश्री के आदेशानुसार उदयपुर की ओर प्रस्थान किया।

अट्ठाईसवां चातुर्मास

अपने चरणकमलों से मेवाड़भूमि को पवित्र करते हुए युवाचार्यजी महाराज उदयपुर पधारे। सं० १९७६ का चौमासा वहीं किया। उदयपुर की जनता आपके उपदेशामृत का पहले भी पान कर चुकी थी। किन्तु इस बार आप चिरकाल के पश्चात् पधारे थे, आपके अनुभव और आपकी योग्यता भी पहले से कई गुना बढ़ चुकी थी और अब आप युवाचार्य पद पर प्रतिष्ठित थे। युवाचार्य के रूप में आपका यह पहला ही चौमासा था। अतः उदयपुर की जनता को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। दिन-रात धर्म का ठाठ लगा रहता। सभी प्रकार की जनता आपके उपदेशों को सुनकर कृतार्थ होती थी। आपके उपदेश से बहुत से जीवों को अभयदान मिला और सैकड़ों श्रावकों ने विविध प्रकार के त्याग-प्रत्याख्यान किये।

एकता का प्रयास

चातुर्मास के बाद चित्तौड़ भीलवाड़ा होतेहुए आप ब्यावर पूज्यश्री की सेवा में पधारे। उस समय आगरा तथा जयपुर के कतिपय मुख्य श्रावकों का एक डेपूटेशन ब्यावर आया। पूज्यश्री से प्रार्थनाकी—'मुनिश्री मुन्नालालजी महाराज तथा उनके साथ के मुनि देहलीसे विहार करके पधार रहे हैं और आपसे मिलकर साम्प्रदायिक विषयों पर, विचार विमर्श करना चाहते हैं। अतः जयपुर या किसी अन्य स्थान पर मिलन हो तो ठीक होगा। साम्प्रदायिक वैमनस्य बढ़ रहा है; वह कम हो जायगा और कोई मार्ग निकल आएगा।

पूज्यश्री सरल हृदय महापुरुष थे। माया प्रपंच से दूर रहते थे। किसी प्रकार की चालबाजी उन्हें पसन्द नहीं थी। उन्हें इस मिलने में कोई तथ्य दिखाई नहीं दिया। अतः उन्होंने स्पष्ट शब्दों में इन्कार कर दिया। होली चातुर्मास के बाद पूज्यश्री तथा युवाचार्यश्री का मारवाड़ की तरफ विहार हो गया, किन्तु कुछ प्रतिष्ठित लोगों ने फिर प्रार्थना की कि आप एक बार कहीं पर अवश्य मिल लें और जो अपवाद लगाया जाता है कि हम तो मिलना चाहते हैं, और समझौता करना चाहते हैं मगर पूज्य महाराज मिलना नहीं चाहते और दूर-दूर जाते हैं, इस अपवाद को दूर कर दें और जनता को दिखा दें कि सत्य वास्तव में क्या है।

यह सुनकर पूज्यश्री ने अजमेर पधारना स्वीकार कर लिया, युवाचार्यजी को जो आगे पधार गए थे, अजमेर पहुंचने का सन्देश भेज दिया। दोनों महापुरुष वैशाख शुक्ला में अजमेर पधारे। श्री मुन्नालालजी महाराज आदि पहले ही पधार चुके थे। अजमेर संघ ने दोनों महानुभावों का हार्दिक स्वागत किया।

साम्प्रदायिक एकता संबंधी वार्तालाप हुआ। दोनों ओर से दो-दो व्यक्ति बातचीत करने के लिए चुने गये। पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज की ओर से राजे श्री कोठारी बलवंतसिंहजी साहब और मेहता बुधसिंहजी सा० वैद तथा दूसरी तरफ से ला० गोकुलचंदजी जौहरी और पीरूलालजी चौपड़ा। मगर श्रावकों के समक्ष सब बातें कहना उचित न समझकर पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज, मुनिश्री मुन्नालालजी महाराज तथा मुनिश्री देवीलालजी महाराज ने एकान्त में वार्तालाप करना तय किया। पांच-छह दिनों तक बातचीत होती रही। एकता के लिए जितना किया जा सकता था, वह सब और उससे भी अधिक पूज्यश्री ने किया। एकता के लिए आपने पूरी तत्परता दिखलाई। मगर भावी को वह मंजूर नहीं था। अंत में वार्तालाप असफल हो गया। जनता को सच्ची परिस्थिति का दिग्दर्शन कराकर दोनों महापुरुष अजमेर से पधार गए।

अजमेर की इस कार्रवाई का एक अलग ही प्रकरण बन सकता है। उस समय पूज्यश्री धर्मदासजी म० के सम्प्रदाय के सन्त श्री रतनचन्दजी म० श्री सिरेमलजी म० तथा श्रीसमरथमलजी म० वहां मौजूद थे। वे इस प्रकरण से पूरी तरह परिचित हैं, क्योंकि सन्देशवाहक का कार्य उन्होंने ही किया था।

अजमेर से विहार करके पूज्यश्री ब्यावर पधारे और युवाचार्यश्री ने बीकानेर की ओर प्रस्थान किया। पुष्कर से कुछ ही दूर जाने पर आपको मुनिश्री राधालालजी महाराज की अस्वस्थता के समाचार मिले। राधालालजी महाराज आपके दर्शन के लिए उत्सुक थे। अतः आप पुष्कर से ब्यावर पधारे। मुनि श्रीराधालालजी म० को दर्शन दिये। और पूज्यश्री के दर्शन किये। आपकी इच्छा पूज्यश्री की सेवा में रहकर चौमासा करने की थी, मगर पूज्यश्री के आदेश से आपने बीकानेर की ओर विहार किया। पूज्यश्री बड़े ही दूरदर्शी महापुरुष थे। उन्होंने अपनी मौजूदगी में ही आपको सम्प्रदाय के विशिष्ट क्षेत्रों में युवाचार्य के रूप में भेजना आवश्यक समझा होगा। तदनुसार आप मार्ग में धर्म का उपदेश देते हुए भीनासर पधारे।

पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज का स्वर्गवास

आषाढ़ कृष्णा चतुर्दशी का दिन था। पूज्यश्री जयतारण पधारे थे। अमावस्या के दिन व्याख्यान देते समय अकस्मात् आपके नेत्रों की ज्योति बंद हो गई। सिर में चक्कर आने लगे।

पूज्यश्री को मृत्यु का आभास होने लगा। आपने उसी समय उपस्थित साधुओं को संथारा करा देने के लिए कहा। श्रावक और साधु विविध प्रकार से औषधोपचार कर रहे थे किन्तु पूज्यश्री को विश्वास हो गया था कि यह सब उपचार अब वृथा हैं। अन्तिम समय सन्निकट आ पहुंचा है।

उसी समय मुनिश्री हरखचंदजी महाराज को सूचना की गई। वे उस समय ब्यावर में विराजते थे। लगभग १४-१५ कोस का उग्र विहार करके सुदि १ को नीमाज पधारे और दूसरे दिन सुदि २ को जयतारण पहुंच गए।

आषाढ़ कृष्णा प्रतिपद् को आचार्यश्री ने उपस्थित साधुओं को अपने समीप बुलाया। उनके सिर पर हाथ फेरा और अंतिम विदा लेते हुए कहा—

'मुनिराजो! संयम को दिपाना। परस्पर प्रीतिपूर्वक रहना। युवाचार्य श्री जवाहरलालजी की आज्ञा में विचरना। वे दृढ़धर्मा, चुस्त संयमी हैं। और मुझसे भी अधिक तुम्हारी सार-संभाल रख सकते हैं। मैं और वे एक ही स्वरूप के हैं, ऐसा समझना। उनकी सेवा करना। पूज्यश्री हुकमीचन्द्रजी महाराज के सम्प्रदाय को जाज्वल्यमान रखना। शासन की शोभा बढ़ाना। आत्म-कल्याण को सदा सामने रखना। खमाता हूं। क्षमा करना।

पूज्यश्री बोलते-बोलते रुक गये। पास में बैठे सन्तों के भी नेत्र आसुओं से भर गये। मृत्यु को महोत्सव मानने वाले मुनि भी अपने सरल हृदय और सुयोग्य धर्मनायक की यह स्थिति देखकर एक बार विचलित हो उठे। धर्मानुराग ने उन्हें विह्वल कर दिया। उनमें से एक मुनि ने कहा—

'पूज्य महाराज साहब! आपकी आज्ञा हमारे लिए शिरोधार्य रही है और अब भी रहेगी। आप निश्चिन्त हों। हम बालकों को आप क्या खमाते हैं? हम लोग आपको बारम्बार खमाते हैं, जो आपके उपकार के बदले में आपकी कुछ भी सेवा न कर सके। आप महापुरुष हैं। अविनय-आसातना के लिए क्षमा करें।'

क्षमा का आदान-प्रदान करने के पश्चात् पूज्यश्री ने अपना मनोयोग सभी ओर से एकदम निवृत्त कर लिया और श्री उत्तराध्ययनसूत्र की यह गाथा उच्चारण करने लगे—

सुत्तेसु यावि पडिबुद्ध जीवी, न वीससे पंडिए आसुपण्णे।
घोरा मुहुत्ता अबलं सरीरं भारंड पक्खीव चरे-ऽप्पमत्ते॥

अर्थात्—सदा जागृत रहकर जीनेवाला, विवेकशील और शीघ्रबुद्धि वाला मनुष्य जीवन का भरोसा न करे। काल भयंकर है और शरीर निर्बल है। काल के एक ही आक्रमण से शरीर छिन्न-भिन्न हो जाता है। यह जानकर भारंड पक्षी के समान प्रतिक्षण अप्रमत्तभाव से विचरना चाहिए।

पूज्यश्री इस प्रकार स्वाध्याय करके अपनी आत्मा में लीन हो रहे थे। अन्य सन्त भी आपके साथ स्वाध्याय में सम्मिलित हो गये। विषाद के स्थान पर गंभीर शान्ति का सात्विक वातावरण फैल गया।

आषाढ़ शुक्ला द्वितीया को व्याधि अधिक बढ़ गई। उस दिन आप प्रतिक्रमण आदि नित्य नियम भी न कर सके। पूज्यश्री कहा करते थे—'जिस दिन मुझसे नित्य नियम न हो सके समझना वही मेरे जीवन का अंतिम दिन है।' उपस्थित साधुओं को पूज्यश्री का यह कथन या

था। महान् सन्त की वाणी अन्यथा कैसे हो सकती है? इससे संतों को फिर चिन्ता ने घेर लिया। उसी रात्रि को मुनिश्री हरखचन्दजी महाराज ने पूज्यश्री को संथारा करा दिया। रात्रि के पिछले प्रहर में, ब्राह्म मुहूर्त्त में पूज्यश्री की आत्मा औदारिक शरीर का बन्धन छोड़कर चली गई।

शोक का पारावार

पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज के स्वर्गवास का समाचार फैलते ही सारा समाज शोकसागर में डूब गया। उस समय सबके लिए एक मात्र सहारा युवाचार्य श्री जवाहरलालजी महाराज थे। श्रीयुत डाह्याभाई ने जैनप्रकाश में उस प्रसंग को नीचे लिखे शब्दों में अभिव्यक्त किया था—

"जिन्होंने हमारे लिए इतना कष्ट उठाया, हम उन्हें जीते जी विशेष आराम न दे सके। उनके दुःख में उनके जीते जी हमने कुछ भाग न लिया। उनकी तप्त आत्मा को शान्ति न दे सके। उनके गुणगान करने की शक्ति को भी कार्यरूप में प्रकट न कर सके। कुछ कृतघ्न व्यक्तियों ने तो उनकी व्यर्थ टीका की। अपना श्रेय करने वाले सुकृत्यों को छोड़ कर ऐसे महात्मा, ऐसे सन्त और ऐसे कोमल हृदय दयालु पुरुष को दुःख पहुंचाने की बात जब याद आती है तो हृदय फटा जाता है........। परन्तु अहोभाग्य है कि आप सरीखे महारथी की जगह एक दूसरे सन्त महात्मा ने स्वीकृत की है और सम्प्रदाय के सेनापति का जोखिम भरा हुआ पद स्वीकार किया है। उन्हें यश प्राप्त हो।

लगभग बत्तीस वर्ष तक प्रव्रज्या पालकर और उसी के बीच बीस वर्ष तक आचार्य पद को सुशोभित करके अनेक भव्य जीवों को प्रतिबोध दे पूज्यश्री ने जीवन सार्थक किया। आपका जन्म, आपका शरीर, आपकी प्रव्रज्या, आपका आचार्य पद, यह सब अस्तित्व जनसमूह के कल्याण के लिए ही था। आपने अपनी नेश्राय में एक भी शिष्य न करने की प्रतिज्ञा कर ली थी, किन्तु बहुसंख्यक मनुष्यों को दीक्षा देकर उनका उद्धार किया और कई मुनिवरों पर अवर्णनीय उपकार किया। आपका चारित्र अत्यन्त अलौकिक था। आपके गुण अपार थे। उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। विद्वान् लेखक और शीघ्र कवि वर्षों तक वर्णन करते रहें तो भी आपके चारित्र का यथातथ्य निरूपण होना या आपके गुण समूह का पार पाना अशक्य है। आपके ज्ञान, दर्शन और चारित्र की शुद्धि, आपके पूर्वसंचित शुभकर्मों के उदय का अपूर्व प्रभाव, वर्तमानकालीन शुद्ध प्रवृत्ति, आगामी समय के लिए दीर्घदर्शीपना, इतने प्रबल थे कि जिनकी उपमा देना ही अशक्य है। इस पंचमकाल के जीवों में आपकी समानता करनेवाला कोई विरला ही व्यक्ति होगा।

तथापि आश्वासन पाने योग्य बात यह है कि आप के समान ही अनुपम आत्मीय गुण, अद्वितीय आकर्षण शक्ति, दिव्य तेज, अपार साहस, महान् आत्मबल, आपकी गादी पर विराजमान वर्तमान आचार्यश्री श्री १००८ श्री पंडित रत्न पूज्यश्री जवाहरलाल जी महाराज साहब में अधिक अंश में विद्यमान हैं। हमारी यह हार्दिक अभिलाषा है कि आपके ज्ञान, दर्शन और चारित्र के पर्यायों में समय-समय पर अधिकाधिक अभिवृद्धि होती रहे और वे निरामय तथा दीर्घ आयुष्य भोग कर जैन धर्म की उदार और पवित्र भावनाओं का प्रचार करने के अपने कार्य में पूर्ण सफलता प्राप्त करें।

इसी तरह अनेक जाहिर पेपरों में उनका विवरण प्रकाशित हुआ। कान्फ्रेंस की जनरल कमिटी की बैठक हुई, उसमें भी यह प्रस्ताव आया और समाज के कर्णधारों ने खड़े होकर पास

किया तथा जैन प्रकाश में मुनियों का नाम आना बंद था परन्तु कमिटी ने खास तौर से इसे प्रकाशित कराया।

भीनासर में स्वर्गवास-समाचार

पूज्यश्री का स्वर्गवास होने के समाचार युवाचार्य मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज को भीनासर में प्राप्त हुए। इस आकस्मिक अवसान से आपको बहुत दुःख हुआ। अभी शोक का भार हलका न हुआ था कि आप आचार्य घोषित कर दिए गए। समाज की सारी व्यवस्था का भार आप पर आपड़ा। इतने दिन पूज्यश्री की छत्रछाया थी। इसलिए सबकुछ करते हुए भी आप निश्चिन्त थे। अब सारा उत्तरदायित्व आप पर आ पड़ा।

महापुरुषों के जीवन में ऐसे अवसर बहुत आया करते हैं, जब एक तरफ वे शोक के आवेग से दबे रहते हैं, दूसरी तरफ महान् उत्तरदायित्व आ पड़ता है। उस समय शोक का भार मन ही मन दबाकर उन्हें कर्त्तव्य के मार्ग पर अग्रसर होना पड़ता है। मन मसोस कर, विवश होकर परिस्थिति को स्वीकार करने का यह अवसर बड़ा ही करुणाजनक होता है। किन्तु महापुरुष ऐसे विकट काल में भी कातर नहीं होते। यह उनकी परीक्षा का समय होता है।

जिस दिन पूज्यश्री के स्वर्गवास का समाचार भीनासर पहुंचा, उस दिन आपके तेला की तपस्या थी। आपने अपनी तपस्या लम्बी करदी और आठ दिन का उपवास कर लिया। आठ दिन बाद भी आप अपनी तपस्या कुछ दिन और बढ़ाना चाहते थे मगर श्रीसंघ के अत्यन्त विनम्र और करुण आग्रह के कारण आपने पारणा कर लिया।

यहां से हमारे चरितनायक पर सम्प्रदाय का गुरुतर उत्तरदायित्व आता है। आप अपने जीवन के एक नवीन अध्याय में प्रवेश करते हैं।

तीसरा अध्याय

आचार्य-जीवन

उनतीसवां चातुर्मास १६७७

अपने परमोपकारक आचार्य महाराज के स्वर्गवास का समाचार पाकर मुनिश्री शोक से अभिभूत हो गये। शोकाकुल और उपवास की अवस्था में जैनाचार्य पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज बीकानेर पधारे और पूर्वनिश्चयानुसार संवत् १६७७ का चौमासा आपने बीकानेर में ही किया।

गुरुकुल की योजना

महाराष्ट्र प्रांत के दीर्घकालीन प्रवास के समय पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज विभिन्न समाजों के नेताओं और कार्यकर्त्ताओं के सम्पर्क में आये थे। आपने जैन समाज की अवनति के कारणों पर गंभीर विचार किया था। जैनधर्म सरीखे श्रेष्ठ धर्म को प्राप्त करके भी जैनसमाज विभिन्न दृष्टियों से और अनेक क्षेत्रों में पिछड़ा हुआ क्यों है ? इस प्रश्न का आपने समाधान प्राप्त कर लिया था। आपके विचार से अज्ञान ही सब प्रकार की अवनति का कारण था। बहुमूल्य वस्तु पास में होने पर भी जो व्यक्ति उसका वास्तविक मूल्य नहीं समझता, उसके लिए उस वस्तु का कोई महत्त्व ही नहीं होता। जैन समाज की यही स्थिति है। जैनधर्म सरीखा अनमोल रत्न पाकर के भी उसका असली मूल्य न समझने के कारण जैनसमाज का आध्यात्मिक विकास नहीं हो पा रहा है।

अज्ञानता निवारण का एकमात्र उपाय सुशिक्षा का प्रचार करना है कि जिसके विषय में पूज्यश्री के विचार अत्यन्त गंभीर और सुलझे हुए थे। शिक्षा का उद्देश्य प्रकट करते हुए आपने फरमाया था—

'मनुष्य अनन्त शक्ति का तेजस्वी पुंज है। मगर उसकी शक्तियां आवरण में लिपटी हुई हैं। उस आवरण को हटाकर विद्यमान शक्तियों को प्रकाश में लाना शिक्षा का ध्येय है। मगर शिक्षा शक्तियों के विकास एवं प्रकाश में ही कृतकृत्य नहीं हो जाती।......शक्तियों के विकास के साथ उसका एक और महान् कर्तव्य है। वह यह कि शिक्षा मनुष्य को ऐसे सांचे में ढाल दे कि वह अपनी शक्तियों का दुरुपयोग न करके सदुपयोग ही करे।'

'बहुत कम माता-पिता शिक्षा के वास्तविक महत्व को समझते हैं। अधिकांश माता-पिता शिक्षा को आजीविका का मददगार अथवा धनोपार्जन का साधन मान कर ही अपने बालकों को शिक्षा दिलाते हैं। इसी कारण वह शिक्षा के विषय में कंजूसी करते हैं। लोग छोटे बच्चों के लिए कम वेतन वाले, छोटे अध्यापक नियत करते हैं, किन्तु यह बहुत बड़ी भूल है। छोटे बच्चों में

अच्छे संस्कार डालने के लिए वयस्क और अनुभवी अध्यापक की आवश्यकता होती है।'

इस प्रकार पूज्यश्री समय-समय पर शिक्षा की महत्ता और आवश्यकता का प्रतिपादन करते थे। पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज का स्वर्गवास हो जाने के बाद बीकानेर पधारने पर आपने शिक्षा पर बहुत जोर दिया। आपने व्याख्यान में फरमाया—'किसी महापुरुष का स्वर्गवास हो जाने पर उसकी स्मृति कायम रखने के लिए लोग स्मारक बनाते हैं, किन्तु ईंट और पत्थरों का बना हुआ स्मारक स्वयं अस्थिर होता है। किसी त्यागी और धर्म के सच्चे सेवक का स्मारक ऐसा न होना चाहिए। त्यागी महात्मा का सबसे बड़ा स्मारक, जो उसके अनुयायी बना सकते हैं, वह है उस महात्मा के कार्य को पूरा करना। जिस बात के लिए उस महापुरुष ने अपना सारा जीवन लगा दिया, जिस ध्येय की पूर्त्ति के लिए अनेक कष्ट सहे उसे पूरा करने का प्रयत्न करना ही उनकी सब से बड़ी सेवा है। महापुरुषों को अपने जीवन तथा नाम से भी बढ़कर कार्य प्रिय होता है। वे मान-मर्यादा तथा प्रतिष्ठा के भूखे नहीं होते। इन सब को ठुकरा करके भी वे यही चाहते हैं कि किसी प्रकार उनका कार्य पूरा हो जाय।

स्वर्गीय पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज ने अपना जीवन धर्म प्रचार तथा समाजहित में लगाया था। उनकी सदा यही अभिलाषा रहती थी कि किसी प्रकार समाज की उन्नति हो। प्रत्येक व्यक्ति धर्म का सच्चा स्वरूप समझे। समाज की उन्नति का पहला पाया है—अज्ञान दूर करना। धर्म का सच्चा स्वरूप समझने की योग्यता भी ज्ञानप्राप्ति के द्वारा ही आ सकती है। यदि आप लोग समाज में फैली हुई अज्ञानता को दूर करने का प्रयत्न करेंगे तो स्वर्गस्थ पूज्यश्री की आत्मा को संतोष होगा। जैन समाज में साधनों की कमी नहीं है। आप लोग सब तरह से समर्थ हैं। किन्तु प्रयोग में बिना लाये कोरे साधन क्या कर सकते हैं? समाज में ज्ञान का प्रचार करना आप सभी का कर्त्तव्य है। स्वर्गीय पूज्यश्री के प्रति भक्ति प्रदर्शित करने का यही उत्तम मार्ग है।'

स्वर्गीय पूज्यश्री के प्रति भक्ति तथा वर्तमान पूज्यश्री के उपदेश से प्रेरित होकर बीकानेर श्रीसंघ ने एक विशाल शिक्षण संस्था के रूप में पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज का स्मारक बनाना निश्चित किया। मुख्य-मुख्य श्रीसंघों के अग्रणी व्यक्ति निमंत्रित किये गये। लगभग दो सौ सज्जन बाहर से आये, जिनमें प्रायः सभी स्थानों के प्रमुख व्यक्ति थे।

ता० ८ अगस्त, १९२० के दिन आमंत्रित सज्जनों तथा बीकानेर एवं भीनासर श्रीसंघों की एक सभा हुई। सभापति के आसन पर सेठ दुर्लभजी त्रिभुवन झवेरी आसीन हुए।

पूज्यश्री के वियोग पर खेद और विचाराधीन आयोजन की सफलता की कामना प्रकट करने के लिए आये हुए तारों और पत्रों का वाचन होने के पश्चात् पूज्यश्री की स्मृति में एक विशाल शिक्षासंस्था की योजना पेश की गई। विचार विनिमय के पश्चात् नीचे लिखे प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत किये गये—

प्रस्ताव पहला

(क) निश्चय हुआ कि संघ की उन्नति के लिए एक गुरुकुल खोला जाय और उसका नाम 'श्री श्वेताम्बर साधुमार्गी जैन गुरुकुल' रखा जाय।

(ख) इस संस्था के लिए अनुमानतः पांच लाख रुपयों की आवश्यकता है, जिसमें दो लाख का चंदा वसूल हो जाने पर कार्य प्रारंभ कर दिया जाय।

(ग) कम से कम रु० २१०००) का विशेष दान करने वाला इस संस्था का संरक्षक (Patron) समझा जावेगा। संस्था की प्रबन्धकारिणी का सभापति संरक्षकों में से ही चुना जायगा।

(घ) रु० ११०००) ग्यारह हजार देने वाले गृहस्थ इस संस्था के सहायक गिने जावेंगे। और उनमें से संस्था की प्रबन्धकारिणी का उपसभापति या कोषाध्यक्ष चुना जावेगा।

(ङ) रु० ५०००) पांच हजार या ज्यादा और रु० ११०००) से कम देने वाले व्यक्ति इस संस्था के शुभेच्छुक (Sympathisor) गिने जाएंगे और उनमें से भी मन्त्री आदि पदाधिकारी चुने जा सकेंगे।

(च) रु० २०००) या इससे अधिक प्रदान करने वाले गृहस्थ इस संस्था के सभासद् माने जाएंगे और उनका चुनाव प्रबन्धकारिणी में हो सकेगा।

(छ) चन्दा प्रदान करने वाले गृहस्थों के नाम शिलालेखों में गुरुकुल भवन के दरवाजे पर मय चन्दे की तादाद के प्रकट किए जाएंगे।

(ज) प्रबन्धकारिणी अपनी इच्छानुसार पांच अन्य विद्वान् गृहस्थों को सलाह लेने के लिए शरीक कर सकेगी और उनके मत गणना में आ सकेंगे, उन पर चन्दे का कोई प्रतिबन्ध न रहेगा।

नोट—इस गुरुकुल का उद्देश्य समाज की भावी सन्तान को धर्मपरायण, नीतिमान्, विनयवान्, शीलवान् व विद्वान् बनाने का होगा।

प्रस्ताव दूसरा

बीकानेर श्रीसंघ ने प्रकट किया कि यदि बीकानेर शहर के बाहर गुरुकुल खोला जाय तो इस समय रु० १२००००) की रकम यहां के संघ की ओर से लिखी जाती है। चन्दा बढ़ाने का प्रयत्न जारी रहेगा। दो लाख रुपए इकट्ठे होने पर कार्यारम्भ किया जायगा।

उक्त कार्य के लिए सभा की ओर से बीकानेर श्रीसंघ को हार्दिक धन्यवाद दिया जाता है कि जिन्होंने उत्साहपूर्वक इतनी बड़ी रकम प्रदान कर ऐसी संस्था की बुनियाद डालने का साहस किया कि जिसकी परम आवश्यकता थी।

प्रस्ताव तीसरा

इस उपयोगी कार्य में सलाह देने के लिए तकलीफ उठाकर बाहर से पधारने वाले सज्जनों को यह सभा धन्यवाद देती है।

प्रस्ताव चौथा

श्रीयुत दुर्लभजी भाई के सभापतित्व में यह कार्य सफलतापूर्वक किया गया, अतएव यह सभा उनका उपकार मानती है।

जावरे वाले सन्तों के अलग हो जाने से उन दिनों समाज में कुछ अशान्ति छाई हुई थी। उस समय उनकी ओर से एक ट्रैक्ट भी निकला था। उसका जवाब देने के लिए इधर के भी श्रावक तैयार हुए किन्तु शान्ति रक्षा के उद्देश्य से पूज्य श्री ने अपने श्रावकों को मनाह कर दिया। इस विषय में कमिटी ने नीचे लिखे अनुसार प्रस्ताव पास किया—

प्रस्ताव पांचवां

आपस में निन्दा युक्त लेख छपने से समाज में पूरी हानि होती है। हाल में जो सत्या-सत्य कमिटी जावरे की तरफ से ३६ कलमों का एक ट्रैक्ट निकला है, उसका यथोचित उत्तर दिया जाना स्वाभाविक है। मगर आज रोज श्रीमान् परमपूज्य श्री १००८ श्री जवाहरलालजी महाराज साहेब ने शान्तिपूर्वक ऐसा उपदेश व्याख्यान द्वारा विस्तारपूर्वक फरमाया कि श्रीमान् सद्गत पूज्य महाराज साहेब के उपदेशामृत व श्री जैनधर्म के मूल क्षमाधर्म को अंगीकार करके श्रीमान् के भक्तों को शान्ति ही रखनी चाहिए और छापे द्वारा उत्तर प्रत्युत्तर नहीं करना चाहिए। महाराज साहेब के इस फरमान को सबने सहर्ष स्वीकार किया। यदि किसी की तरफ से भविष्य में भी निन्दायुक्त लेख प्रकट हो और न्यायपूर्वक उत्तर देना ही जरूरी समझा जावे तो नीचे लिखे पांच मेम्बरों के नाम से उसका प्रतिकार किया जाय—

(१) नगर सेठ नन्दलालजी बाफणा, उदयपुर।
(२) सेठ मेघजी भाई थोभण, बम्बई।
(३) सेठ कनीरामजी बांठिया, भीनासर।
(४) सेठ नथमल जी चोरडिया, नीमच।
(५) सेठ दुर्लभ जी भाई जौहरी, जयपुर।

सभा की बैठकें तारीख ८ से लेकर १० तक लगातार तीन दिन होती रहीं। बीकानेर श्रीसंघ में अपूर्व उत्साह था। त्याग की भावना जागृत हो रही थी। लक्ष्मी की कृपा तो इस नगर पर सदा से रही है। चन्दे का चिट्ठा भरा गया। श्रीमन्तों ने बड़ी बड़ी रकमें भरीं। अना-यास ही उस चिट्ठे में केवल बीकानेर और भीनासर वालों की तरफ से दो लाख रुपए से ऊपर भरे गए। जिन से एक विशाल संस्था की नींव रखी जा सकती थी।

किन्तु स्थानक वासी समाज के भाग में ऐसे महत्वपूर्ण कार्य का होना बदा न था। चातु-र्मास समाप्त होते ही पूज्यश्री को मेवाड़ और उस के बाद दक्षिण की ओर विहार करना पड़ा। शारीरिक अस्वास्थ्य और दूसरे कारणों से फिर सात वर्ष तक इधर पदार्पण न हो सका। किसी योग्य प्रभावशाली कार्यकर्ता के अभाव में वे रकमें दाताओं के पास ही पड़ी रहीं। समय बीतने पर किसी के विचार पलट गए और उसने रकम देना नामंजूर कर दिया। किसी की आर्थिक स्थिति डावांडोल हो गई, इस लिए उस के पास देने को कुछ न रहा। परिणाम स्वरूप गुरुकुल की स्थापना न हो सकी।

संवत् १९८४ का चातुर्मास जब पूज्यश्री ने फिर भिनासर में किया तो उस योजना की बात फिर उठी। कुछ सज्जनों ने अपने वचन का पालन करते हुए चन्दे में लिखाई हुई रकम भर दी। एक लाख के लगभग इकट्ठा हो गया। उस से 'श्री श्वे० साधुमार्गी जैन हितकारिणी संस्था' की स्थापना हुई। उसके द्वारा शास्त्रोद्धार हुन्नरशाला, एवं सहायता का कार्य प्रारम्भ किया गया। आजकल यह संस्था गांवों में कई स्कूल चला रही है तथा असमर्थ बहिनों और भाइयों की सहा-यता कर रही है। इसका पूरा विवरण संवत् १९८५ के बीकानेर चातुर्मास में दिया जाएगा।

साम्प्रदायिक साधुसम्मेलन

आचार्य पद स्वीकार करने के पश्चात् पूज्यश्री सम्प्रदाय के साधुओं को एकत्र करके भावी

हैं, यह सब जानते-बूझते हुए भी उन वस्त्रों का उपयोग करना अहिंसा की अवहेलना करना है।'

'अगर तुम चर्बी लगे मील के वस्त्रों का त्याग करो तो तुम्हारी क्या हानि होगी ? ऐसा करने में क्या सरकारी रुकावट है ? सरकार की ओर से ऐसी कोई रोकटोक नहीं है। फिर भी अगर कोई सरकार के डर से चर्बी के कपड़े नहीं छोड़ता तो वह देवादिक का उपसर्ग उपस्थित होने पर किस प्रकार निर्भय और निश्चल बना रह सकेगा ?'

'तुम जिस देश में जन्मे हो, जहां के अन्न, जल और वायु से तुम्हारे शरीर का पालन पोषण हुआ है, उसी देश में उत्पन्न होनेवाली वस्तुओं के अतिरिक्त दूसरी वस्तुओं का तुम्हें त्याग करना चाहिए। उस वस्तु से तुम्हारा जीवननिर्वाह सरलता से हो सकेगा और साथ ही तुम महा-आरम्भ से भी बच जाओगे।'

इस प्रकार पूज्यश्री ने स्वयं आजीवन खादी धारण की और जीवन भर चर्बी के वस्त्रों के त्याग का उपदेश दिया। अस्तु।

उदयपुर से विहार करके अनेक स्थानों में विचरते हुए पूज्यश्री सनवाड़ पधारे। सनवाड़ के तत्कालीन रावजी प्रतिदिन आपका व्याख्यान सुनते थे। एक दिन गीता पर पूज्यश्री का प्रवचन सुनकर उन्हें आश्चर्य हुआ। उन्हें मालूम हुआ कि गीता का कर्मयोग जैनधर्म के अनासक्ति मार्ग का ही रूपान्तर है। अहिंसा और जीवदया पर दिये हुए व्याख्यानों का उन पर ऐसा गहरा प्रभाव पड़ा कि प्रसिद्ध निशानेबाज और शिकारी होते हुए भी उन्होंने जीवन भर के लिए शिकार खेलने का त्याग कर दिया। उन्होंने दशहरे के अवसर पर मारे जाने वाले भैंसों का मारना बंद कर दिया।

सनवाड़ के इन रावजी ने पूज्यश्री से चौमासा करने का अत्यन्त आग्रह किया मगर कई कारणों से पूज्यश्री स्वीकार न कर सके।

सनवाड़ से विहार कर पूज्यश्री कानोड़ पधारे। कानोड़ के रावजी ने तथा जैन-जैनेतर भाइयों ने आपके उपदेश से खूब लाभ उठाया। तदनन्तर आप बड़ी सादड़ी, छोटी सादड़ी होते हुए नीमच पधारे। श्रीनथमलजी चोरड़िया के प्रयत्न से वहां के चमार भी पूज्यश्री का व्याख्यान सुनने आते थे। आपके उपदेश से चालीस चमारों ने यावज्जीवन मांस-मदिरा का त्याग किया।

नीमच से विहार करके पूज्यश्री जावद, रामपुरा और मन्दसौर होते हुए जावरा पधारे। यहां रतलाम श्रीसंघ के प्रमुख सेठ वर्धमान जी पीतलिया आपके दर्शनार्थ आये। पहले कहा जा चुका है कि पूज्यश्री के व्याख्यानों में चर्बी-लगे वस्त्रों का अकसर निषेध किया जाता था। उस दिन के व्याख्यान में भी यही विषय आ गया। आपने फरमाया—'दूध के घड़े में यदि गाय के खून की एक भी बूंद पड़ जाय तो उसे काम में नहीं लाया जाता। उसे अपवित्र समझकर लोग छोड़ देते हैं। किन्तु आश्चर्य की बात है कि गाय की चर्बी लगे वस्त्र पहनने में लोगों को संकोच नहीं होता। मित्रो ! इन वस्त्रों के लिए कितनी गायों और भैंसों के प्राण ले लिये जाते हैं, क्या आप इसे जानते हैं ? यह वस्त्र महा आरम्भ के द्वारा बने हुए हैं, इसलिए पाप के कारण हैं। आप सभी को ऐसे वस्त्रों का परित्याग कर देना चाहिए।'

इस प्रकार की अनेक युक्तियों और दृष्टान्तों से पूज्यश्री ने चर्बी के वस्त्र का निषेध किया।

कहते हैं, उन दिनों रतलाम-नरेश खादी से बुरी तरह चिढ़ते थे। गांधी टोपी उनके लिए बम की भांति भयंकर थी। कई-एक गांधी टोपी पहनने वाले सिर्फ यह टोपी पहनने के अपराध में ही गिरफ्तार कर लिये गये थे और उन्हें सजा दी गई थी। अपने महाराजा की मनोवृत्ति और पूज्यश्री के मनोभावों पर विचार करके पीतलियाजी पशोपेश में पड़ गये। वे पूज्यश्री का चौमासा रतलाम में करवाना चाहते थे। उन्हें आश्वासन भी मिल चुका था। उन्होंने सोचा—अगर पूज्यश्री ने रतलाम में भी ऐसा ही व्याख्यान दिया तो रतलाम-नरेश की नाराजी का पार नहीं रहेगा।

एक दिन एकान्त में पीतलियाजी ने पूज्यश्री से निवेदन किया—पूज्यश्री ! रतलाम नरेश की खादी पर तीव्र कोपदृष्टि है और हम आप का चातुर्मास रतलाम में अवश्य कराना चाहते हैं। वहां इस प्रकार का उपदेश देना क्या योग्य होगा ?

पूज्यश्री को रतलाम-नरेश की मनोवृत्ति जानकर आश्चर्य हुआ। साथ ही यह भी विचार आया कि ऐसे शासक को तो अवश्य ही समझाना चाहिए। उन्हें समझाने से बहुतों का उपकार हो सकता है।

मगर पूज्यश्री ने पीतलियाजी को संक्षेप में इतना ही कहा—'जैसा अवसर होगा, देख लिया जायगा।'

पीतलियाजी यह आश्वासन पाकर सन्तुष्ट हुए और रतलाम लौट गए। पूज्यश्री भी जावरा से विहार करके रतलाम पधारे।

तीसवां चातुर्मास (१९७८)

पूज्यश्री ने संवत् १९७८ का चौमासा रतलाम में किया। चातुर्मास में हजारों श्रोता आपके व्याख्यान से लाभ उठाते थे। आसौज कृष्णा एकादशी के दिन रतलाम-नरेश व्याख्यान सुनने आये। पूज्यश्री का प्रभावशाली उपदेश लगातार दो घंटे तक सुनकर वे चकित रह गये। पूज्यश्री ने बड़े ही असरकारक शब्दों में और बड़े ही कौशल के साथ रतलाम-नरेश को चर्बी के वस्त्रों की हेयता और खादी की उपादेयता समझाई। आपकी वक्तृता सुनकर उनकी खादी के प्रति जो चिढ़ थी वह दूर हो गई और उन्होंने पूज्यश्री को आश्वासन दिया। व्याख्यान की उन्होंने भूरि-भूरि प्रशंसा की।

इस प्रकार पूज्यश्री ने स्वयं आजीवन खादी धारण की और जीवन भर चर्बी के वस्त्रों के त्याग का उपदेश दिया। अस्तु।

उदयपुर से विहार करके अनेक स्थानों में विचरते हुए पूज्यश्री सनवाड़ पधारे। सनवाड़ के तत्कालीन रावजी प्रतिदिन आपका व्याख्यान सुनते थे। एक दिन गीता पर पूज्यश्री का प्रवचन सुनकर उन्हें आश्चर्य हुआ। उन्हें मालूम हुआ कि गीता का कर्मयोग जैनधर्म के अनासक्ति मार्ग का ही रूपान्तर है। अहिंसा और जीवदया पर दिये हुए व्याख्यानों का उन पर ऐसा गहरा प्रभाव पड़ा कि प्रसिद्ध निशानेबाज और शिकारी होते हुए भी उन्होंने जीवन भर के लिए शिकार खेलने का त्याग कर दिया। उन्होंने दशहरे के अवसर पर मारे जाने वाले भैंसों का मारना बंद कर दिया।

सनवाड़ के इन रावजी ने पूज्यश्री से चौमासा करने का अत्यन्त आग्रह किया मगर कई कारणों से पूज्यश्री स्वीकार न कर सके।

सनवाड़ से विहार कर पूज्यश्री कानोड़ पधारे। कानोड़ के रावजी ने तथा जैन-जैनेतर भाइयों ने आपके उपदेश से खूब लाभ उठाया। तदनन्तर आप बड़ी सादड़ी, छोटी सादड़ी होते हुए नीमच पधारे। श्रीनथमलजी चोरड़िया के प्रयत्न से वहां के चमार भी पूज्यश्री का व्याख्यान सुनने आते थे। आपके उपदेश से चालीस चमारों ने यावज्जीवन मांस-मदिरा का त्याग किया।

नीमच से विहार करके पूज्यश्री जावद, रामपुरा और मन्दसौर होते हुए जावरा पधारे। यहां रतलाम श्रीसंघ के प्रमुख सेठ वर्धमान जी पीतलिया आपके दर्शनार्थ आये। पहले कहा जा चुका है कि पूज्यश्री के व्याख्यानों में चर्बी-लगे वस्त्रों का अकसर निषेध किया जाता था। उस दिन के व्याख्यान में भी यही विषय आ गया। आपने फरमाया—'दूध के घड़े में यदि गाय के खून की एक भी बूंद पड़ जाय तो उसे काम में नहीं लाया जाता। उसे अपवित्र समझकर लोग छोड़ देते हैं। किन्तु आश्चर्य की बात है कि गाय की चर्बी लगे वस्त्र पहनने में लोगों को संकोच नहीं होता। मित्रो ! इन वस्त्रों के लिए कितनी गायों और भैंसों के प्राण ले लिये जाते हैं, क्या आप इसे जानते हैं ? यह वस्त्र महा आरम्भ के द्वारा बने हुए हैं, इसलिए पाप के कारण हैं। आप सभी को ऐसे वस्त्रों का परित्याग कर देना चाहिए।'

इस प्रकार की अनेक युक्तियों और दृष्टान्तों से पूज्यश्री ने चर्बी के वस्त्र का निषेध किया।

यद्यपि इधर आपके कई आवश्यक कार्य शेष रह गये थे, फिर भी भक्ति की इच्छा को टालना आपके लिये अशक्य हो गया। आपने समाचार मिलते ही विना विलम्ब महाराष्ट्र की ओर प्रस्थान कर दिया।

रतलाम से विहार करके पू०श्री कोद, विड़वाल, कड़ोद, धार, नालछा, मांडव, खलघाट निमरानी और ठीकरी होते हुए खुर्रमपुरा पहुँचे।

उग्र परीषह

खुर्रमपुरा में श्रावक का एक भी घर नहीं था। दूसरे लोगों को न गोचरी के नियमों का पता था न जैन साधुओं के विषय में कोई जानकारी थी। अतएव शुद्ध आहार-पानी मिलना कठिन हो गया। उस समय पूज्यश्री के साथ नौ संत थे। आहार-पानी की बेहद कठिनाई का विचार कर मुनिश्री मोतीलालजी महाराज ने सींदवा, सिरपुर की ओर विहार किया और पूज्यश्री अन्य चार संतों के साथ अलग हो गये।

हणुतमलजी महाराज का स्वर्गवास

मुनिश्री हणुतमलजी म० कुचेरा (मारवाड़) निवासी भण्डारी ओसवाल थे। गृहस्थावस्था में किनारी-गोटे का व्यापार करते थे। वे एक आदर्श और प्रामाणिक व्यापारी थे। उन्होंने एक आना फी रुपया से अधिक कभी मुनाफा नहीं लिया। कभी जक़ात की चोरी भी नहीं की। जक़ात के थानेदारों ने कई बार थोड़ी-सी रिश्वत लेकर बहुत से माल पर जक़ात छोड़ देने का प्रलोभन दिया किन्तु आप कभी सहमत नहीं हुए। इस प्रकार के प्रयत्नों को वे अत्यन्त जघन्य समझते थे। उन्होंने एक पैसे के लिए भी कभी अप्रामाणिक व्यवहार नहीं किया। बहुत बड़े धनाढ्य न होने पर भी अपनी प्रामाणिकता की प्रभूत पूंजी के प्रभाव से बड़े-बड़े नगरों में आपकी खूब प्रतिष्ठा थी। जब, जहां से और जितना माल वे चाहते, ला सकते थे। बड़े व्यापारी आपको उधार माल देने में किसी प्रकार की हिचकिचाहट नहीं करते थे। आसपास में आपका काफी सम्मान था। आपने हजारों की सम्पत्ति न्याय-नीति से कमाई थी। अन्त में वह सारी सम्पत्ति त्यागकर प्रबल वैराग्य के साथ मुनिश्री मोतीलालजी महाराज के पास दीक्षित हुए। दीक्षा लेने के बाद आपके परिणामों में उत्तरोत्तर निर्मलता आती गई। आपने संयम में किसी प्रकार का दोष नहीं आने दिया।

खुर्रमपुरा में आप पूज्यश्री के साथ थे। वहां ठहरने के लिए कोई अच्छा मकान भी नहीं मिला था। पौष का महीना था और कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी। तिस पर ठंडी हवा भी चल रही थी। ऐसे अवसर पर एक खुला मंदिर उतरने के लिए मिला। रात्रि के समय मुनिश्री गणेशीलालजी म० ने और आपने पूज्यश्री की सेवा की। पूज्यश्री विश्राम करने लगे और आप मुनि श्रीगणेशीलालजी महाराज की सेवा करने लगे। एकाएक आपकी छाती में दर्द उठा और वह बहुत तीव्र हो गया। साथ ही ज्वर भी चढ़ आया। रात्रि के समय और कोई उपाय नहीं किया जा सकता था अतः मुनि श्रीगणेशीलालजी म० ने आपकी छाती दबाई। मगर उसका कोई असर न हुआ। दर्द और साथ ही बुखार बढ़ता चला गया। दोनों मुनियों को ऐसा प्रतीत होने लगा कि अब आराम होना कठिन है। मुनि श्रीगणेशीलालजी म० ने उसी समय आपको आलोयणा आदि करवा दी। मुनि श्रीहणुतमलजी म० ने शुद्ध हृदय से अपने जीवन की आलोचना की। मुनि

जावरा वाले सन्तों के साथ पहले से मतभेद होने के कारण पूज्यश्री का अशान्त होने की सम्भावना थी। उसे रोकने के लिए आपने अपने सम्प्रदाय वालों से पहले ही यह प्रतिज्ञा करवा ली थी कि दूसरी ओर से चाहे जैसा व्यवहार हो, मगर अपनी ओर से उसका कोई वैसा उत्तर नहीं दिया जायगा। परिणामस्वरूप कुछ अशान्तिप्रिय लोगों की ओर से छेड़छाड़ होने पर भी इस तरफ का श्रीसंघ शान्त रहा। यहां तक कि पूज्यश्री पर भी कई प्रकार के आक्षेप करने से लोग न चूके मगर सागरवर-गंभीर पूज्यश्री एकदम शान्त रहे और अपने उत्तेजित श्रावकों को भी शांति रखने का उपदेश देते रहे।

चौमासे के पश्चात् पू०श्री धर्मदासजी महाराज के सम्प्रदाय के मुनिश्री चम्पालालजी म० रतलाम पधारे। उन्होंने चातुर्मास के वातावरण से परिचित होकर और पू०श्री का शान्तिप्रेम देख-कर आश्चर्य प्रकट किया। आपने एक दिन अपने व्याख्यान में फरमाया—पूज्यश्री पर कई प्रकार के निराधार आक्षेप किये गये। भोली और अज्ञान बाइयां किसी के बहकाने से पूज्यश्री की व्याख्यान सभा के पास से निन्दात्मक गीत गाती हुई निकलीं। उन्हें सुनकर श्रावकों में उत्तेजना फैली। कई बार वातावरण में क्षोभ भी उत्पन्न हो गया, मगर आचार्य महाराज सदैव जनता को शान्त करते रहे। वे मुंह तोड़ उत्तर दे सकते थे मगर शान्तिरक्षा के उद्देश्य से उन्होंने कभी एक भी शब्द नहीं कहा। ऐसे अवसर पर धैर्य रहना कठिन है, मगर आचार्य महोदय की शान्तिप्रियता प्रशंस-नीय है। ऐसे मौके पर मेरा शान्त रहना भी कठिन-सा ही था। आचार्य महोदय ने जो शान्ति रक्खी है वह उन्हीं के योग्य है। उससे दूसरों को शिक्षा लेनी चाहिए। आपने धर्म को बदनाम होने से बचा लिया है।'

इस चातुर्मास में मुनिश्री सुन्दरलालजी म० ने लम्बी तपस्या की थी। तपस्या के पूर के दिन राज्य की ओर से अगता पलाया गया। अर्थात् जीव-हिंसा बन्द रखने की आज्ञा जारी की गई।

इस चातुर्मास में पूज्यश्री ने चर्बी वाले वस्त्रों के निषेध पर खूब जोर दिया। परिणाम-स्वरूप बहुसंख्यक लोगों ने त्याग किया। जिन्होंने जावरा में इस प्रकार के उपदेश से खतरा अनु-भव किया था उन सेठ वर्द्धमानजी पीतलिया ने भी सपत्नीक चर्बी लगे वस्त्रोंका परित्याग किया। इसी चातुर्मास में श्री श्वे० स्था० जैन पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी म० की सम्प्रदाय के हितेच्छु श्रावक मंडल की स्थापना हुई।

फिर दक्षिण की ओर

रतलाम का चौमासा समाप्त होते ही पूज्यश्री को विदित हुआ कि दक्षिण में मुनि श्रीलाल-चन्दजी म० रुग्ण अवस्था में हैं और दर्शन करना चाहते हैं।

यद्यपि इधर आपके कई आवश्यक कार्य शेष रह गये थे, फिर भी भक्ति की इच्छा को टालना आपके लिये अशक्य हो गया। आपने समाचार मिलते ही बिना विलम्ब महाराष्ट्र की ओर प्रस्थान कर दिया।

रतलाम से विहार करके पू०श्री कोद, विड़वाल, कड़ोद, धार, नालछा, मांडव, खलघाट निमरानी और ठीकरी होते हुए खुर्रमपुरा पहुँचे।

उग्र परीषह

खुर्रमपुरा में श्रावक का एक भी घर नहीं था। दूसरे लोगों को न गोचरी के नियमों का पता था न जैन साधुओं के विषय में कोई जानकारी थी। अतएव शुद्ध आहार-पानी मिलना कठिन हो गया। उस समय पूज्यश्री के साथ नौ संत थे। आहार-पानी की बेहद कठिनाई का विचार कर मुनिश्री मोतीलालजी महाराज ने सींदवा, सिरपुर की ओर विहार किया और पूज्यश्री अन्य चार संतों के साथ अलग हो गये।

हणुतमलजी महाराज का स्वर्गवास

मुनिश्री हणुतमलजी म० कुचेरा (मारवाड़) निवासी भण्डारी ओसवाल थे। गृहस्थावस्था में किनारी-गोटे का व्यापार करते थे। वे एक आदर्श और प्रामाणिक व्यापारी थे। उन्होंने एक आना फी रुपया से अधिक कभी मुनाफा नहीं लिया। कभी जक़ात की चोरी भी नहीं की। जक़ात के थानेदारों ने कई बार थोड़ी-सी रिश्वत लेकर बहुत से माल पर जक़ात छोड़ देने का प्रलोभन दिया किन्तु आप कभी सहमत नहीं हुए। इस प्रकार के प्रयत्नों को वे अत्यन्त जघन्य समझते थे। उन्होंने एक पैसे के लिए भी कभी अप्रामाणिक व्यवहार नहीं किया। बहुत बड़े धनाढ्य न होने पर भी अपनी प्रामाणिकता की प्रभूत पूंजी के प्रभाव से बड़े-बड़े नगरों में आपकी खूब प्रतिष्ठा थी। जब, जहां से और जितना माल वे चाहते, ला सकते थे। बड़े व्यापारी आपको उधार माल देने में किसी प्रकार की हिचकिचाहट नहीं करते थे। आसपास में आपका काफी सम्मान था। आपने हजारों की सम्पत्ति न्याय-नीति से कमाई थी। अन्त में वह सारी सम्पत्ति त्यागकर प्रबल वैराग्य के साथ मुनिश्री मोतीलालजी महाराज के पास दीक्षित हुए। दीक्षा लेने के बाद आपके परिणामों में उत्तरोत्तर निर्मलता आती गई। आपने संयम में किसी प्रकार का दोष नहीं आने दिया।

खुर्रमपुरा में आप पूज्यश्री के साथ थे। वहां ठहरने के लिए कोई अच्छा मकान भी नहीं मिला था। पौष का महीना था और कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी। तिस पर ठंडी हवा भी चल रही थी। ऐसे अवसर पर एक खुला मंदिर उतरने के लिए मिला। रात्रि के समय मुनिश्री गणेशीलालजी म० ने और आपने पूज्यश्री की सेवा की। पूज्यश्री विश्राम करने लगे और आप मुनि श्रीगणेशीलालजी महाराज की सेवा करने लगे। एकाएक आपकी छाती में दर्द उठा और वह बहुत तीव्र हो गया। साथ ही ज्वर भी चढ़ आया। रात्रि के समय और कोई उपाय नहीं किया जा सकता था अतः मुनि श्रीगणेशीलालजी म० ने आपकी छाती दबाई। मगर उसका कोई असर न हुआ। दर्द और साथ ही बुखार बढ़ता चला गया। दोनों मुनियों को ऐसा प्रतीत होने लगा कि अब आराम होना कठिन है। मुनि श्रीगणेशीलालजी म० ने उसी समय आपको आलोयणा आदि करवा दी। मुनि श्रीहणुतमलजी म० ने शुद्ध हृदय से अपने जीवन की आलोचना की। मुनि

मगर आहार-पानी और बीमारी की समस्या कठिन से कठिनतर होती जाती थी। इधर आहार-पानी दुर्लभ था और उधर बीमारी के कारण आगे विहार होना कठिन था। उस गांव में चार घर अग्रवालों के और चार घर मरहठे ब्राह्मणों के थे। कुल पच्चीस घरों का छोटा सा गांव था। मुश्किल से दस घर ऐसे होंगे, जहां भिक्षा मिल सकती थी।

ऐसे विकट-प्रसंग का सामना करने के लिए पूज्यश्री ने तथा तपस्वी जी ने एकान्तर उपवास करना आरंभ किया। निमोनिया में लाभदायक होने के कारण हगुतमलजी म० को तीन दिन का उपवास कराया गया। इससे बीमारी में कुछ अन्तर पड़ा मगर कमजोरी ज्यादा बढ़ गई।

पूज्यश्री अपना कष्ट सहने में जितने कठोर थे, दूसरों के कष्ट के लिए उतने ही कोमल हृदय थे। आपसे संतों का यह दैनिक कष्ट नहीं देखा गया। बीमार मुनि की चिकित्सा के साधनों का अभाव भी आपको खटका। अतएव आपने विचार किया—'आसपास में अगर कोई दूसरा गांव हो जहां मुनि श्रीहगुतमलजी की बीमारी तक ठहरने की और उपचार की सुविधा हो सके तो वहां जाना उचित होगा। इस स्थान पर तो निर्वाह होना कठिन है।'

परिणाम स्वरूप मुनि श्रीगणेशीलालजी म० तथा मुनि श्रीसूरजमलजी म० दूसरा गांव देखने के लिए गए। चार कोस दूर एक बड़ा गांव था। लगभग १२०० घरों की आबादी थी। छह घर दिगम्बर जैनों के भी थे। दोनों मुनि वहां पहुंचे और एक दिगम्बर जैन सेठ के पास जाकर उन्होंने ठहरने के लिए स्थान मांगा। सेठजी ने पहले कभी श्वेताम्बर साधुओं को नहीं देखा था। अतः पहले पहल तो उन्होंने आनाकानी की किन्तु सारी बात समझाने पर एक खाली दुकान में उतरने के लिए जगह दे दी। दुकान क्या थी, चूहों का गांव ही समझिए, जिसमें उनके बहुसंख्यक बिल विद्यमान थे।

गांव में एक घर विवाह था। प्रायः सभी दिगम्बर भाई उसी घर भोजन करते थे। अतएव सभी घरों में घूमने पर भी बहुत थोड़ा आहार मिला। अजैनों के घर से जवार की दो रोटियां और थोड़ा-सा गर्म पानी मिला।

शाम के समय मुनि श्रीगणेशीलालजी महाराज का उपदेश हुआ। कुछ लोग उपदेश सुनने के लिए इकट्ठे हो गये। उनमें एक स्कूल-मास्टर भी थे। उपदेश का ठीक प्रभाव पड़ा।

दुकान में चूहे इतने अधिक थे कि रात्रि के समय विश्रान्ति लेना असंभव-सा था। अतः

मुनिश्री गणेशीलालजी महाहाज ने विश्राम के लिए स्कूल-मास्टर साहब से मकान मांगा। मास्टर साहब ने स्थान तो दे दिया मगर शर्त यह रक्खी कि सुबह होने पर—स्कूल के समय से पहले-पहले मकान खाली कर दिया जाय।

रात भर स्कूल में विश्राम करके सुबह दोनों मुनियों ने आहार-पानी की सुविधा देखने के लिए गांव में घूमना आरंभ किया। थोड़ा-सा आहार और कुछ पानी मिल गया। वहां इतनी सुविधा नहीं थी कि पांच साधु वहां कुछ दिनों तक ठहर सकें। अन्त में दोनों साधु खुर्रमपुरा लौट गये।

मुनिश्री हणुतमलजी म० की बीमारी फिर बढ़ने लगी। पूज्यश्री ने तथा अन्य साधुओं ने कल्पमर्यादा एवं सुविधा के अनुसार सभी संभव उपचार किये। पूज्यश्री कभी-कभी स्वयं गर्म जल मांगकर लाते और अपने हाथ से सेक करते। तपस्वीजी ठीकरी गांव से औषध लाते। अन्य मुनि भी रात-दिन यथायोग्य उपचार में लगे रहते। किन्तु नौवें दिन बीमारी बढ़ गई। ग्लान मुनि की मुखाकृति बदल गई। चेहरे पर भावी मृत्यु की अस्पष्ट छाया पड़ी दिखाई देने लगी। जीवित रहने की आशा क्षीण हो गई। पूज्यश्री ने उनके परिणामों को स्थिर रखने के लिए अंतिम उपदेश देना आरंभ किया। हणुतमलजी महाराज ने संथारा करने की इच्छा प्रकट की।

मुनिजी की बीमारी का समाचार कई स्थानों पर पहुंच गया था। आठवें दिन जावरा के श्रीप्यारचन्दजी डफरिया तथा एक दूसरे सज्जन वहां पहुंच गये। उन्होंने तथा सभी सन्तों ने संथारा करा देने की सम्मति दी, लेकिन पूज्यश्री शीघ्रता नहीं करना चाहते थे। आपने वहां के कुछ समझदार व्यक्तियों से परामर्श किया। सभी ने एक ही बात कही—'अब मुनिजी के बचने की कोई आशा नहीं है। परलोक-सुधार के लिए उचित अन्तिम क्रियाएं करा देना चाहिए।'

इस प्रकार सब का एक मत जानकर पूज्यश्री ने चार बजे दिन को तिविहार संथारा करा दिया। उसके बाद फिर अवस्था बिगड़ते देखकर चौविहार करा दिया। दूसरे दिन ग्यारह बजे मुनि श्रीहणुतमलजी महाराज ने स्वर्ग के लिए प्रस्थान कर दिया। आपकी परिणाम धारा अन्त तक निर्मल रही। पूज्यश्री पास में बैठकर अन्त तक संसार की असारता, जीवन की क्षण भंगुरता और धर्म की उपादेयता का उपदेश देते रहे।

गांव की जनता ने स्वर्गस्थ मुनिश्री की धर्म दृढ़ता और कष्टसहिष्णुता की बड़ी प्रशंसा की और विधिपूर्वक अंतिम संस्कार किया।

खुर्रमपुरा में इस प्रकार कष्टमय काल व्यतीत करके पूज्यश्री ने वहां से विहार किया। लालचन्दजी महाराज के नजदीक शीघ्र पहुंचना चाहते थे अतः आप जल्दी-जल्दी विहार करने लगे। जिस गांव के समीप सूर्य अस्त होने को होता वहीं ठहरते। रास्ते के ग्रामों में रूखा-सूखा थोड़ा-बहुत जो भी आहार-पानी मिलता उसी पर निर्वाह करते। इस प्रकार शीघ्रतापूर्वक विहार करते हुए पूज्यश्री बालसमंद पधारे।

बालसमंद में ठहरने के लिए कोई स्थान नहीं मिला। अन्त में पूछताछ करने पर एक धर्मशाला का पता चला। पूज्यश्री वहां पहुंचे। धर्मशाला एक प्रकार से पशुशाला थी। इधर-उधर से गाड़ीवान आते। अपने बैल उसमें बांध देते और आग तापते-तापते रात बिताकर चल देते। गोबर और पेशाब के कारण वहां बेहद डांस-मच्छर और जवे थे। जहां-तहां गोबर और

श्रीगणेशीलालजी महाराज आपको पास के एक कच्चे मकान में ले गये और रात्रि को दो बजे तक उनके पास बैठे रहे। इसके बाद तपस्वी मुनि श्रीसुन्दरलालजी म० ने उन्हें विश्राम करने के लिए कहा और वे स्वयं रात भर उनके पास बैठे रहे।

उस खुले मंदिर में निर्वाह होना कठिन समझ कर प्रातःकाल होने पर मुनि श्रीगणेशीलालजी म० दूसरे कुछ सुविधाजनक स्थान की खोज करने गये। नजदीक ही एक कपास की जीनिंग फैक्टरी थी। उसके मैनेजर कोई अहमदाबादी मंदिरमार्गी जैन तथा श्रीमाली सज्जन थे। मुनिश्री ने उन्हें जैन जानकर उनसे स्थान की याचना की तो उन्होंने एक कच्ची कोठरी बता दी। कोठरी में नीचे धूल का मोटा पलस्तर था और ऊपर कवेलू की छत थी। लेकिन उसमें विशेषता यही थी कि कोठरी बंद की जा सकती थी और इस तरह हवा से कुछ बचाव हो सकता था। कोठरी का मिल जाना गनीमत समझ कर श्रीहणुतमलजी म० को वहां लाया गया।

मगर आहार-पानी और बीमारी की समस्या कठिन से कठिनतर होती जाती थी। इधर आहार-पानी दुर्लभ था और उधर बीमारी के कारण आगे विहार होना कठिन था। उस गांव में चार घर अग्रवालों के और चार घर मरहठे ब्राह्मणों के थे। कुल पच्चीस घरों का छोटा सा गांव था। मुश्किल से दस घर ऐसे होंगे, जहां भिक्षा मिल सकती थी।

ऐसे विकट-प्रसंग का सामना करने के लिए पूज्यश्री ने तथा तपस्वी जी ने एकान्तर उपवास करना आरंभ किया। निमोनिया में लाभदायक होने के कारण हणुतमलजी म० को तीन दिन का उपवास कराया गया। इससे बीमारी में कुछ अन्तर पड़ा मगर कमजोरी ज्यादा बढ़ गई।

पूज्यश्री अपना कष्ट सहने में जितने कठोर थे, दूसरों के कष्ट के लिए उतने ही कोमल हृदय थे। आपसे संतों का यह दैनिक कष्ट नहीं देखा गया। बीमार मुनि की चिकित्सा के साधनों का अभाव भी आपको खटका। अतएव आपने विचार किया—'आसपास में अगर कोई दूसरा गांव हो जहां मुनि श्रीहणुतमलजी की बीमारी तक ठहरने की और उपचार की सुविधा हो सके तो वहां जाना उचित होगा। इस स्थान पर तो निर्वाह होना कठिन है।'

परिणाम स्वरूप मुनि श्रीगणेशीलालजी म० तथा मुनि श्रीसूरजमलजी म० दूसरा गांव देखने के लिए गए। चार कोस दूर एक बड़ा गांव था। लगभग १२०० घरों की आबादी थी। छह घर दिगम्बर जैनों के भी थे। दोनों मुनि वहां पहुंचे और एक दिगम्बर जैन सेठ के पास जाकर उन्होंने ठहरने के लिए स्थान मांगा। सेठजी ने पहले कभी श्वेताम्बर साधुओं को नहीं देखा था। अतः पहले पहल तो उन्होंने आनाकानी की किन्तु सारी बात समझाने पर एक खाली दुकान में उतरने के लिए जगह दे दी। दुकान क्या थी, चूहों का गांव ही समझिए, जिसमें उनके बहुसंख्यक बिल विद्यमान थे।

गांव में एक घर विवाह था। प्रायः सभी दिगम्बर भाई उसी घर भोजन करते थे। अतएव सभी घरों में घूमने पर भी बहुत थोड़ा आहार मिला। अजैनों के घर से जवार की दो रोटियां और थोड़ा-सा गर्म पानी मिला।

शाम के समय मुनि श्रीगणेशीलालजी महाराज का उपदेश हुआ। कुछ लोग उपदेश सुनने के लिए इकट्ठे हो गये। उनमें एक स्कूल-मास्टर भी थे। उपदेश का ठीक प्रभाव पड़ा।

दुकान में चूहे इतने अधिक थे कि रात्रि के समय विश्रान्ति लेना असंभव-सा था। अतः

बड़ी बात है। प्रतिदिन का लगातार लम्बा विहार ! सुबह से शाम तक पैदल चलना ! कई दिनों से भर पेट आहार तक न मिलना ! और फिर यह व्यवहार ! ठहरने को साधारण-सा भी स्थान नहीं ! डांस-मच्छरों को अपना शरीर समर्पित करना ! हे मुनि ! तुम्हारा मार्ग तुम्हीं को शोभा देता है !

अन्त में पूज्यश्री अपने शिष्यों के साथ वहां से चल दिये और उसी धर्मशाला का आसरा लिया। धर्मशाला के पास तेली का एक घर था। संत उससे थोड़ा-सा सूखा घास मांग लाये। वह नीचे बिछाया और किसी तरह रात काटी। प्रातःकाल घास वापस देकर वहां से विहार कर दिया।

विहार करके पूज्यश्री सेंधवा पधारे। इसके बाद और भी उग्र विहार आरम्भ कर दिया और ग्यारह कोस चलकर एक चौकी में ठहरे। रास्ते में पांच गांवों में गोचरी करने पर भी सिर्फ डेढ़ रोटी, आधा सेर के करीब भुने चने और थोड़ी-सी खट्टी छाछ मिली। उसी पर निर्वाह करके पूज्यश्री आगे बढ़े !

खुर्रमपुरा पहुंचने के बाद एक-दो दिन छोड़कर कभी भरपेट आहार नहीं मिला था। थोड़ा-बहुत जो भी मिल जाता उसी पर चार साधुओं को गुजारा करना पड़ता। उग्र विहार के कारण भूख भी कड़ाके की लगती थी। फिर भी सब साधु प्रसन्न थे। बीकानेर और उदयपुर आदि स्थानों में बड़े-बड़े रईसों और करोड़पति सेठों द्वारा भक्ति-भाव पूर्वक वंदना करते समय आपके हृदय में जैसे-भाव रहते थे, इस कष्टकर विहार के इस गाढ़े समय में भी वैसे ही भाव थे।

जिनके उपदेश से हजारों भूखों को रोटी मिल जाय वे अपनी भूख की परवाह नहीं करते। दूसरों की भूख उन्हें जितना सताती है उतना अपनी भूख नहीं सताती। पूज्यश्री अथवा दूसरे किसी भी साधु को तनिक भी खेद नहीं हुआ और वे निरन्तर उग्र विहार करते रहे।

चौकी से विहार करके पूज्यश्री शीरपुर और वगाणी होते हुए मांडल पधारे। उग्र विहार और अल्प आहार के कारण साधुओं का शरीर कुछ निर्बल-सा हो गया था मगर मन अधिक प्रबल बन गया था।

५-६ दिन मांडल ठहर कर आपने विहार किया और धूलिया पहुंचे। धूलिया में पूज्यश्री को ज्वर हो आया, अतः एक सप्ताह रुकना पड़ा। सात दिन में पूज्यश्री का उपदेश सिर्फ डेढ़ घंटा हो सका। इतने उपदेश से ही लोग बहुत प्रभावित हुए और कुछ दिनों ठहरने की प्रार्थना की। मगर पूज्यश्री को महाराष्ट्र पहुंचने की जल्दी थी; अतएव स्वास्थ्य कुछ ठीक होते ही आपने धूलिया से विहार कर दिया।

लालचन्दजी महाराज का स्वर्गवास

मुनिश्री लालचन्दजी महाराज उस समय चारौली में थे। पूज्यश्री धूलिया से विहार करके मालेगांव, मनमाड़ होते हुए राहोरी पहुँचे। यहां से चारौली पधारने वाले थे, मगर राहोरी पहुंचते ही आपको लालचन्दजी महाराज के स्वर्गवास का समाचार मिला। जिस भक्त की भावना पूरी करने के लिए अपने कई आवश्यक कार्य अधूरे छोड़कर पूज्यश्री राजपूताना से रवाना हुए थे और मार्ग में भयंकर से भयंकर कष्ट झेलते हुए, भूख-प्यास विसर कर थोड़े ही समय में आपने इतनी लम्बी यात्रा की थी, उस भक्त ने आपके पहुंचने से पहले ही महायात्रा कर दी। भक्त के नेत्र

पेशाब भरा घास बिखरा था। जो बहुतों का है वह किसी का भी नहीं है। ऐसी स्थिति में धर्मशाला की सफाई कौन करता? सार्वजनिक स्थानों को मैला-कुचैला करने की प्रवृत्ति शिष्ट भारतीय जनता में भी पाई जाती है। फिर इस धर्मशाला में तो अशिक्षित ग्रामीण और उनके पशु ही ठहरते थे। वहां सफाई का क्या काम?

थोड़ी देर तक तो पूज्यश्री धर्मशाला में बैठे रहे मगर रात्रि व्यतीत करना वहां असंभव जान पड़ा। आपने मुनि श्रीगणेशीलालजी म० को दूसरे स्थान की खोज करने के लिए भेजा। मुनिश्री बहुत घूमे-फिरे मगर कोई उपयुक्त स्थान न मिला। अलबत्ता एक गृहस्थ के घर के बाहर का चबूतरा दिखाई दिया। चबूतरे का मालिक कहीं बाहर गया था। मुनिश्री ने घर-मालिक की पुत्र वधू से चबूतरे पर रात-विश्राम करने की आज्ञा मांगी। वह आनाकानी करने लगी। वहां के लोगों की धारणा थी कि चोर और डाकू साधु के वेष में फिरते हैं और मौका पाकर हाथ साफ करके चलते बनते हैं।

मुनिश्री ने उस बहिन को बहुत समझाया। कहा—हमारे गुरुजी बहुत बड़े महात्मा हैं। वे अपने पास पैसा-टका कुछ नहीं रखते। बड़े-बड़े लखपति और करोड़पति उनके चरणों में गिरते हैं। वे अपने एक भक्त रोगी साधु को दर्शन देने के लिए उग्र विहार करते हुए दक्षिण की ओर जा रहे हैं। बहिन! तुम अपना अहो भाग्य समझो कि ऐसे महात्मा के दर्शन के लाभ का तुम्हें अवसर मिला है। रात भर विश्राम करके सुबह होते ही चले जाएंगे। रात को धर्म की बातें, भजन और भगवत्कथा सुनाएंगे। दिन भर चलते-चलते बहुत थक गये हैं। अब और कहीं नहीं जा सकते।

मुनिश्री की इन बातों से उस बाई का दिल पसीज गया, किन्तु वह अपने ससुर से डरती थी। ससुर बड़ा क्रोधी था। उसने कहा—'महाराज! वे आने ही वाले हैं और आते ही तुम्हें उठा देंगे। मेरी ओर से तो मनाई है नहीं।'

मुनिश्री गणेशीलालजी म० ने कहा—'अच्छा बाई, कोई हर्ज नहीं। हम तुम्हारे ससुर को भी समझा लेंगे।'

इस प्रकार उस बहिन की अनुमति पाकर चारों मुनि वहां ठहर गये। भण्डोपकरण उतारकर अभी बैठे ही थे कि घर-मालिक आ पहुंचा। अपनी जगह में साधुओं को बैठा देखते ही दूर से ही—उसने अपशब्दों की वर्षा करनी आरम्भ कर दी। पास आकर बोला—देखो, अपना भला चाहते हो तो फौरन से पेश्तर अपना सामान उठाओ और लम्बे बनो। ठहरना है तो धर्मशाला में जाओ। मेरा मकान धर्मशाला नहीं है। उठो, जल्दी करो। वर्ना तुम्हारे यह सब पात्र वगैरह फोड़कर टुकड़े-टुकड़े कर डालूंगा।'

पूज्यश्री ने तथा मुनि श्रीगणेशीलालजी म० ने उसे बहुत कुछ समझाने की चेष्टा की, मगर वह भलामानुस न समझा। सौ बातों का एक ही उत्तर उसके पास था—'बस उठ जाओ, जल्दी करो। मैं तुम्हें ठहरने दूंगा तो मेरा मकान धर्मशाला बन जाएगा। सभी भिखमंगे मेरे घर पर ही ठहरने लगेंगे। मैं ऐसा रिवाज नहीं डालना चाहता।'

मुनि की चर्या कितनी कठोर है! संयम की साधना करना दूध-बतासे का कौर नहीं है—तलवार की धार पर चलना है। ऐसी परिस्थिति को बिना किसी क्षोभ के मन से सह लेना बहुत

बड़ी बात है। प्रतिदिन का लगातार लम्बा विहार! सुबह से शाम तक पैदल चलना! कई दिनों से भर पेट आहार तक न मिलना! और फिर यह व्यवहार! ठहरने को साधारण-सा भी स्थान नहीं! डांस-मच्छरों को अपना शरीर समर्पित करना! हे मुनि! तुम्हारा मार्ग तुम्हीं को शोभा देता है!

अन्त में पूज्यश्री अपने शिष्यों के साथ वहां से चल दिये और उसी धर्मशाला का आसरा लिया। धर्मशाला के पास तेली का एक घर था। संत उससे थोड़ा-सा सूखा घास मांग लाये। वह नीचे बिछाया और किसी तरह रात काटी। प्रातःकाल घास वापस देकर वहां से विहार कर दिया।

विहार करके पूज्यश्री सेंधवा पधारे। इसके बाद और भी उग्र विहार आरम्भ कर दिया और ग्यारह कोस चलकर एक चौकी में ठहरे। रास्ते में पांच गांवों में गोचरी करने पर भी सिर्फ डेढ़ रोटी, आधा सेर के करीब भुने चने और थोड़ी-सी खट्टी छाछ मिली। उसी पर निर्वाह करके पूज्यश्री आगे बढ़े!

खुर्रमपुरा पहुंचने के बाद एक-दो दिन छोड़कर कभी भरपेट आहार नहीं मिला था। थोड़ा-बहुत जो भी मिल जाता उसी पर चार साधुओं को गुजारा करना पड़ता। उग्र विहार के कारण भूख भी कड़ाके की लगती थी। फिर भी सब साधु प्रसन्न थे। बीकानेर और उदयपुर आदि स्थानों में बड़े-बड़े रईसों और करोड़पति सेठों द्वारा भक्ति-भाव पूर्वक वंदना करते समय आपके हृदय में जैसे-भाव रहते थे, इस कष्टकर विहार के इस गाढ़े समय में भी वैसे ही भाव थे।

जिनके उपदेश से हजारों भूखों को रोटी मिल जाय वे अपनी भूख की परवाह नहीं करते। दूसरों की भूख उन्हें जितना सताती है उतना अपनी भूख नहीं सताती। पूज्यश्री अथवा दूसरे किसी भी साधु को तनिक भी खेद नहीं हुआ और वे निरन्तर उग्र विहार करते रहे।

चौकी से विहार करके पूज्यश्री शीरपुर और बगाणी होते हुए मांडल पधारे। उग्र विहार और अल्प आहार के कारण साधुओं का शरीर कुछ निर्बल-सा हो गया था मगर मन अधिक प्रबल बन गया था।

५-६ दिन मांडल ठहर कर आपने विहार किया और धूलिया पहुंचे। धूलिया में पूज्यश्री को ज्वर हो आया, अतः एक सप्ताह रुकना पड़ा। सात दिन में पूज्यश्री का उपदेश सिर्फ डेढ़ घंटा हो सका। इतने उपदेश से ही लोग बहुत प्रभावित हुए और कुछ दिनों ठहरने की प्रार्थना की। मगर पूज्यश्री को महाराष्ट्र पहुंचने की जल्दी थी; अतएव स्वास्थ्य कुछ ठीक होते ही आपने धूलिया से विहार कर दिया।

लालचन्दजी महाराज का स्वर्गवास

मुनिश्री लालचन्दजी महाराज उस समय चारौली में थे। पूज्यश्री धूलिया से विहार करके मालेगांव, मनमाड़ होते हुए राहोरी पहुँचे। यहां से चारौली पधारने वाले थे, मगर राहोरी पहुंचते ही आपको लालचन्दजी महाराज के स्वर्गवास का समाचार मिला। जिस भक्त की भावना पूरी करने के लिए अपने कई आवश्यक कार्य अधूरे छोड़कर पूज्यश्री राजपूताना से रवाना हुए थे और मार्ग में भयंकर से भयंकर कष्ट झेलते हुए, भूख-प्यास विसर कर थोड़े ही समय में आपने इतनी लम्बी यात्रा की थी, उस भक्त ने आपके पहुंचने से पहले ही महायात्रा कर दी। भक्त के नेत्र

पेशाब भरा घास बिखरा था। जो बहुतों का है वह किसी का भी नहीं है। ऐसी स्थिति में धर्मशाला की सफाई कौन करता ? सार्वजनिक स्थानों को मैला-कुचैला करने की प्रवृत्ति शिष्ट भारतीय जनता में भी पाई जाती है। फिर इस धर्मशाला में तो अशिक्षित ग्रामीण और उनके पशु ही ठहरते थे। वहां सफाई का क्या काम ?

थोड़ी देर तक तो पूज्यश्री धर्मशाला में बैठे रहे मगर रात्रि व्यतीत करना वहां असंभव जान पड़ा। आपने मुनि श्रीगणेशीलालजी म० को दूसरे स्थान की खोज करने के लिए भेजा। मुनिश्री बहुत घूमे-फिरे मगर कोई उपयुक्त स्थान न मिला। अलबत्ता एक गृहस्थ के घर के बाहर का चबूतरा दिखाई दिया। चबूतरे का मालिक कहीं बाहर गया था। मुनिश्री ने घर-मालिक की पुत्र वधू से चबूतरे पर रात-विश्राम करने की आज्ञा मांगी। वह आनाकानी करने लगी। वहां के लोगों की धारणा थी कि चोर और डाकू साधु के वेष में फिरते हैं और मौका पाकर हाथ साफ करके चलते बनते हैं।

मुनिश्री ने उस बहिन को बहुत समझाया। कहा—हमारे गुरुजी बहुत बड़े महात्मा हैं। वे अपने पास पैसा-टका कुछ नहीं रखते। बड़े-बड़े लखपति और करोड़पति उनके चरणों में गिरते हैं। वे अपने एक भक्त रोगी साधु को दर्शन देने के लिए उग्र विहार करते हुए दक्षिण की ओर जा रहे हैं। बहिन ! तुम अपना अहो भाग्य समझो कि ऐसे महात्मा के दर्शन के लाभ का तुम्हें अवसर मिला है। रात भर विश्राम करके सुबह होते ही चले जाएंगे। रात को धर्म की बातें, भजन और भगवत्कथा सुनाएंगे। दिन भर चलते-चलते बहुत थक गये हैं। अब और कहीं नहीं जा सकते।

मुनिश्री की इन बातों से उस बाई का दिल पसीज गया, किन्तु वह अपने ससुर से डरती थी। ससुर बड़ा क्रोधी था। उसने कहा—'महाराज ! वे आने ही वाले हैं और आते ही तुम्हें उठा देंगे। मेरी ओर से तो मनाई है नहीं।'

मुनिश्री गणेशीलालजी म० ने कहा—'अच्छा बाई, कोई हर्ज नहीं। हम तुम्हारे ससुर को भी समझा लेंगे।'

इस प्रकार उस बहिन की अनुमति पाकर चारों मुनि वहां ठहर गये। भण्डोपकरण उतारकर अभी बैठे ही थे कि घर-मालिक आ पहुंचा। अपनी जगह में साधुओं को बैठा देखते ही दूर से ही—उसने अपशब्दों की वर्षा करनी आरम्भ कर दी। पास आकर बोला—देखो, अपना भला चाहते हो तो फौरन से पेश्तर अपना सामान उठाओ और लम्बे बनो। ठहरना है तो धर्मशाला में जाओ। मेरा मकान धर्मशाला नहीं है। उठो, जल्दी करो। वर्ना तुम्हारे यह सब पात्र वगैरह फोड़कर टुकड़े-टुकड़े कर डालूंगा।'

पूज्यश्री ने तथा मुनि श्रीगणेशीलालजी म० ने उसे बहुत कुछ समझाने की चेष्टा की, मगर वह भलामानुस न समझा। सौ बातों का एक ही उत्तर उसके पास था—'बस उठ जाओ, जल्दी करो। मैं तुम्हें ठहरने दूंगा तो मेरा मकान धर्मशाला बन जाएगा। सभी भिखमंगे मेरे घर पर ही ठहरने लगेंगे। मैं ऐसा रिवाज नहीं डालना चाहता।'

मुनि की चर्या कितनी कठोर है ! संयम की साधना करना दूध-बतासे का कौर नहीं है—

बड़ी बात है। प्रतिदिन का लगातार लम्बा विहार ! सुबह से शाम तक पैदल चलना ! कई दिनों से भर पेट आहार तक न मिलना ! और फिर यह व्यवहार ! ठहरने को साधारण-सा भी स्थान नहीं ! डांस-मच्छरों को अपना शरीर समर्पित करना ! हे मुनि ! तुम्हारा मार्ग तुम्हीं को शोभा देता है !

अन्त में पूज्यश्री अपने शिष्यों के साथ वहां से चल दिये और उसी धर्मशाला का आसरा लिया। धर्मशाला के पास तेली का एक घर था। संत उससे थोड़ा-सा सूखा घास मांग लाये। वह नीचे विछाया और किसी तरह रात काटी। प्रातःकाल घास वापस देकर वहां से विहार कर दिया।

विहार करके पूज्यश्री सेंधवा पधारे। इसके बाद और भी उग्र विहार आरम्भ कर दिया और ग्यारह कोस चलकर एक चौकी में ठहरे। रास्ते में पांच गांवों में गोचरी करने पर भी सिर्फ डेढ़ रोटी, आधा सेर के करीब भुने चने और थोड़ी-सी खट्टी छाछ मिली। उसी पर निर्वाह करके पूज्यश्री आगे बढ़े !

खुर्रमपुरा पहुंचने के बाद एक-दो दिन छोड़कर कभी भरपेट आहार नहीं मिला था। थोड़ा-बहुत जो भी मिल जाता उसी पर चार साधुओं को गुजारा करना पड़ता। उग्र विहार के कारण भूख भी कड़ाके की लगती थी। फिर भी सब साधु प्रसन्न थे। बीकानेर और उदयपुर आदि स्थानों में बड़े-बड़े रईसों और करोड़पति सेठों द्वारा भक्ति-भाव पूर्वक वंदना करते समय आपके हृदय में जैसे-भाव रहते थे, इस कष्टकर विहार के इस गाढ़े समय में भी वैसे ही भाव थे।

जिनके उपदेश से हजारों भूखों को रोटी मिल जाय वे अपनी भूख की परवाह नहीं करते। दूसरों की भूख उन्हें जितना सताती है उतना अपनी भूख नहीं सताती। पूज्यश्री अथवा दूसरे किसी भी साधु को तनिक भी खेद नहीं हुआ और वे निरन्तर उग्र विहार करते रहे।

चौंकी से विहार करके पूज्यश्री शीरपुर और वगाणी होते हुए मांडल पधारे। उग्र विहार और अल्प आहार के कारण साधुओं का शरीर कुछ निर्बल-सा हो गया था मगर मन अधिक प्रबल बन गया था।

५-६ दिन मांडल ठहर कर आपने विहार किया और धूलिया पहुंचे। धूलिया में पूज्यश्री को ज्वर हो आया, अतः एक सप्ताह रुकना पड़ा। सात दिन में पूज्यश्री का उपदेश सिर्फ डेढ़ घंटा हो सका। इतने उपदेश से ही लोग बहुत प्रभावित हुए और कुछ दिनों ठहरने की प्रार्थना की। मगर पूज्यश्री को महाराष्ट्र पहुंचने की जल्दी थी; अतएव स्वास्थ्य कुछ ठीक होते ही आपने धूलिया से विहार कर दिया।

लालचन्दजी महाराज का स्वर्गवास

मुनिश्री लालचन्दजी महाराज उस समय चारौली में थे। पूज्यश्री धूलिया से विहार करके मालेगांव, मनमाड़ होते हुए राहोरी पहुँचे। यहां से चारौली पधारने वाले थे, मगर राहोरी पहुंचते ही आपको लालचन्दजी महाराज के स्वर्गवास का समाचार मिला। जिस भक्त की भावना पूरी करने के लिए अपने कई आवश्यक कार्य अधूरे छोड़कर पूज्यश्री राजपूताना से रवाना हुए थे और मार्ग में भयंकर से भयंकर कष्ट झेलते हुए, भूख-प्यास विसर कर थोड़े ही समय में आपने इतनी लम्बी यात्रा की थी, उस भक्त ने आपके पहुंचने से पहले ही महायात्रा कर दी। भक्त के नेत्र

अतृप्त ही रह गये। उन्होंने अपने आराध्य के दर्शन न कर पाये। किन्तु उस आराध्य की क्या स्थिति हुई होगी जो सैकड़ों कष्ट उठाकर और सैकड़ों मील का लम्बा विहार करके भी अपने भक्त की अन्तिम अभिलाषा पूरी न कर सका। मनुष्य की यह विवशता देखकर पूज्यश्री को बड़ी विरक्ति हुई।

जिस प्रकार मानव-जीवन क्षणभंगुर है उसी प्रकार विवश और पराधीन भी है। मनुष्य की ऐसी कोई योजना नहीं है जिसे वह पूरा करने का या उसका फल प्राप्त करने का दावा कर सकता हो। भगीरथ प्रयास करने पर भी ऐन मौके पर जरा-सी बात किसी भी योजना को सदा के लिए समाप्त कर देती है। विवशता की इस दुनिया में रहकर मनुष्य किस बूते पर गर्व कर सकता है? गर्व कर सकते हैं वे जो विवशताओं को जीत चुके हैं। यह जीत आध्यात्मिक बल से ही प्राप्त होती है। अतएव मनुष्य जीवन का सबसे बड़ा और प्रधान उद्देश्य आध्यात्मिक बल प्राप्त करना ही होना चाहिए।

मुनिश्री लालचन्दजी महाराज के स्वर्गवास का समाचार मिलने से पूज्यश्री ने चारोली जाना स्थगित कर दिया। आपने यहीं से मालवा की ओर लौट जाने का इरादा किया। मगर अहमदनगर श्रीसंघ का प्रतिनिधिमंडल आपकी सेवा में उपस्थित हुआ और अहमदनगर पधारने की प्रार्थना करने लगा। श्रीसंघ के तीव्र आग्रह को आप टाल न सके और अहमदनगर पधारे। यहां महासती श्रीरामकुंवरजी महाराज के पास एक दीक्षा होने वाली थी। श्रीसंघ के विशेष आग्रह से आपने दीक्षा-सम्मेलन तक ठहरना स्वीकार कर लिया।

उन दिनों अहमदनगर में दुर्भिक्ष था। २२ फरवरी, १६२२ के 'जैन-प्रकाश' में जैनसमाज का उल्लेख करते हुए सम्पादक ने लिखा था—

'अहमदनगर जिला-वासियों की दुर्दशा जिन्हें देखनी हो वे वहां जाकर स्वयं देखें, अथवा वहां के किसी नागरिक से दर्याफ्त करें; लेकिन इस ओर ध्यान अवश्य दें। जहां मनुष्य के लिए जीने की आशा, निराशा में परिणत हो रही हो वहां पशुओं की दुर्दशा का क्या ठिकाना है? हजारों मनुष्य विधर्मी हो रहे हैं। सैंकड़ों ओसवाल वंश के भूषण, होनहार बच्चे निराश्रित होकर इधर-उधर भटक रहे हैं। इस समय साधुमार्गी जैन समाज की ओर से एक भी संस्था नहीं है जो निराश्रितों को आश्रय दे। यह अभाव बहुत खटकता है।

इस समय अहमदनगर के सुदैव से दयामयहृदय, विद्यानुरागी, मार्मिक प्रभावशाली वक्ता, पंडित प्रकाण्ड पूज्यश्री १००८ श्रीजवाहरलालजी महाराज साहब वहां विराज रहे हैं। अतः अहमदनगर निवासी श्रावकों को उचित है कि वे इस कमी को पूर्ण करने का प्रयत्न करें।'

पूज्यश्री ने उस समय बड़े ही मार्मिक शब्दों में दुर्भिक्ष का वर्णन करते हुए भूखों मरने वाले प्राणियों की रक्षा करने का उपदेश दिया। फल-स्वरूप सेठ मोतीलालजी मूथा सतारा-निवासी और श्री कुन्दनमलजो फिरोदिया, बी० ए० एल० एल० बी० ने पीड़ित जनता की सेवा करने के लिए एक योजना तैयार की और कार्य आरंभ कर दिया। इससे बहुत-से भाइयों को सहायता मिली।

अहमदनगर में तेलकूड़-निवासी श्रीभीमराजजी, पूज्यश्री के दर्शनार्थ आये। श्रीभीमराजजी बड़े दयालु और धर्मात्मा थे। इसी कारण वह लोकप्रिय भी बहुत थे। न केवल गांव के वरन् उस

प्रान्त के किसान, गरीब, अमीर सभी आपका आदर करते थे। वे अपनी आजीविका धर्म-पूर्वक ही करते थे। किसान, हजारों की कीमत के खेत आपके यहां गिरवी रखते थे किन्तु जब पूरी रकम अदा करने में असमर्थ होकर, दुःखी हृदय से आपके पास आते तो आपका दिल पिघल जाता था। उसके पास जो भी कुछ देने को होता, ले लेते और खेत उसको लौटा देते ? जब आपके कोई कुटुम्बी आपके ऐसे व्यवहार का विरोध करते और कहते कि पूरी रकम अदा न करने से तो खेत ही अपना हो जायगा, तो श्री भीमराजजी प्रेम के साथ उन्हें समझाते थे। कहते थे इतने दिनों तक गिरवी रखे हुए इनके खेत का अन्न हम लोगों ने खाया है और अब खेत भी हजम कर जाना चाहते हो। बेचारे कितने दुखी हैं ! अपने पुरुषार्थ से कमाओ। दूसरों को लूटकर पेट भरना महापाप है।

श्रीभीमराजका व्यवहार अगर इतना दयामय न होता तो वे एक बड़े लखपति गिने जाते।

उन्होंने पूज्यश्री से तेलकूड़ पधारने की विनम्र प्रार्थना की। पूज्यश्री अहमदनगर से विहार करके मीरी होते हुए वहां पधारे। वहां आप मारुति-मंदिर में विराजे थे। उसी दिन भीमराजजी अपने पन्नालालजी और चुन्नीलालजी नामक दो पुत्रों के साथ पूज्यश्री के दर्शनार्थ आये। पुत्रों ने विनोद में कहा—पिताजी ! आप कहते थे कि अगर पूज्यश्री यहां पधार जावें तो मैं दीक्षा ले लूं। अब आपका क्या विचार है ?

भीमराजजी ने उत्तर दिया—'मैं तो अब भी तैयार बैठा हूं। तुम्हारी और तुम्हारी माता की अनुमति मिलने की देरी है। अनुमति मिल जाय तो मैं दीक्षा लेकर अपना जीवन सफल कर लूं।'

सबकी अनुमति मिल गई और भीमराजजी ने दीक्षा लेने का निश्चय कर लिया। वे वयस्क पुरुष थे। यह प्रश्न खड़ा हुआ कि उनकी सेवा कौन करेगा ? साधु, श्रावक से सेवा नहीं कराते। अतः भीमराजजी के साधु हो जाने पर उनकी सेवा करने वाले को भी साधु हो जाना चाहिए। अतएव प्रश्न यह था कि उनके साथ दूसरा कौन साधु होता है ? जब सब लोग इस सोच-विचार में थे तब एक वीर बालक साहस के साथ आगे आ गया। उसने कहा—'ताऊजी की सेवा मैं करूंगा। मैं भी आपके ही साथ दीक्षा-अंगीकार करूंगा।' आत्म कल्याण का और साथ ही संतसेवा का दोहरा लाभ मिलना बड़े भाग्य की बात है।'

बालक का यह उत्साह देखकर लोगों को आश्चर्य हुआ। वह बालक था—भीमराजजी का भतीजा। बालक का नाम—सिरेमल।

संसार के अनुभव से रहित एक बालक में इस प्रकार की धर्मभावना होना असाधारण नहीं तो विरल घटना अवश्य है। ऐसी धर्मभावना माता-पिता के धार्मिक संस्कारों से आती है। जो माता-पिता अपने बालक को शरीर ही नहीं वरन् सुसंस्कार भी प्रदान करते हैं उन्हीं का गृहस्थ जीवन सार्थक होता है।

पूज्यश्री ने अपने एक प्रवचन में कहा था—'बच्चों के संस्कार बचपन में ही सुधारने चाहिए। बड़े होने पर तो वह अपने आप सब बातें समझने लगेंगे। मगर उनका झुकाव और उनकी प्रवृत्ति बचपन में पड़े हुए संस्कारों के ही अनुसार होगी। बचपन में जिनके संस्कार नहीं सुधरे, उनकी दशा यह है कि कोई भी अच्छी बात इस कान से सुनते और उस कान से निकाल

देते हैं। इसके विपरीत सुसंस्कारी पुरुष जो अच्छी और उपयोगी बात पाते हैं उसे ग्रहण कर लेते हैं। यह बचपन की शिक्षा का महत्व है।'

माता-पिता सन्तान उत्पन्न करके छुटकारा नहीं पा जाते, किन्तु सन्तान उत्पन्न होने के साथ ही उनका उत्तरदायित्व आरंभ होता है। शिक्षक के सुपुर्द करने से भी उनका कर्त्तव्य पूरा नहीं होता। उन्हें बालक के जीवन-निर्माण के लिए स्वयं अपने जीवन को आदर्श बनाना चाहिए। संस्कार-सुधार की बहुत बड़ी जिम्मेदारी उन पर भी है। बालक को उत्पन्न कर देने से नहीं वरन् उसे संस्कारी बनाने से ही माता-पिता का कर्ज बालक पर चढ़ता है।'

'अच्छी और सदाचारी संतान उत्पन्न करने के लिए पहले माता-पिता को अच्छा और सदाचरी बनना चाहिए। बबूल के वृक्ष में आम का फल नहीं लग सकता।'

पूज्यश्री के इन महत्त्वपूर्ण उद्‌गारों की प्रत्यक्ष साक्षी श्री सिरेमलजी ने उपस्थित की। आपकी यह धर्मभावना आपके परिवार की धर्मभावना का प्रतिबिम्ब था। भीमराजजी का सारा परिवार धर्मप्रेमी था। श्रीसिरेमलजी की माताजी पहले ही दीक्षित हो चुकी थीं। कुटुम्ब के किसी भी व्यक्ति का दीक्षा लेना उस कुटुम्ब के सदस्य सौभाग्य की बात समझते थे। जिस समय की यह घटना है उस समय सिरेमलजी की सगाई की तैयारियां हो रही थीं। फिर भी उनके मार्ग में कोई रुकावट नहीं डाली गई। उन्हें भी दीक्षा लेने की अनुमति मिल गई। इस परिवार से और भी अनेक पुरुषों एवं स्त्रियों ने दीक्षा ली है। उनमें से सिरेमलजी म० उच्चकोटि का ज्ञान प्राप्त करके इस सम्प्रदाय में चमक रहे हैं। समाज को आपसे बड़ी-बड़ी आशाएं हैं।

तेलकुड़गांव में दो दिन ठहरकर और इन्हीं दो दिनों में दो भव्य पुरुषों को लोकोत्तर कल्याण का पथ प्रदर्शित करके पूज्यश्री कोकाना, हिवड़ा होते हुए वेलापुर पधारे।

श्री सिरेमलजी की सगाई के लिए जो सामग्री इकट्ठी की गई थी उसे बहिन-बेटियों में बांटकर सिरेमलजी को अपने साथ लिये श्रीभीमराजजी वेलापुर आ पहुंचे और पूज्यश्री की सेवा में रहकर साधु-प्रतिक्रमण सीखने लगे।

उसी समय अहमदनगर के मुख्य-मुख्य श्रावक पूज्यश्री की सेवा में उपस्थित हुए और अपने नगर में चातुर्मास करने की आग्रहपूर्ण प्रार्थना की। उधर जलगांव का श्रीसंघ भी उपस्थित हुआ और उसने भी चौमासे की प्रार्थना की। हैदराबाद (दक्षिण) और तासगांव में चौमासा करने की भी प्रार्थना की गई। सतारा निवासी सेठ चन्दनमलजी मोतीलालजी मूथा ने सतारा में चातुर्मास करने की प्रार्थना करते हुए कहा—'सतारे में आज तक न तो कोई दीक्षा हुई है और न आपश्री का चौमासा ही हुआ। अतएव दोनों कार्य सतारे में हों तो धर्म की बहुत प्रभावना होगी। अजैन जनता भी धर्म का महत्व समझने लगेगी।' यह सुनकर पूज्यश्री ने मूथाजी की प्रार्थना स्वीकार करली।

वेलापुर से विहार करके पूज्यश्री अहमदनगर पधारे। वहां मुनि श्री घासीलालजी महाराज आपसे मिल गये। श्रावकों ने चौमासे के लिए फिर प्रार्थना की मगर पूज्यश्री अबतो सतारे के लिए वचन दे चुके थे। फिर भी अहमदनगर संघ की प्रार्थना का खयाल करके मुनिश्री घासीलालजी महाराज और तपस्वी श्री सुन्दरलालजी महाराज को वहां चौमासा करने की आज्ञा फरमाई।

सतारा में दीक्षा-समारोह

अहमदनगर से सतारा ७५ कोस दूर है। पूज्यश्री विहार करके वैशाख शुक्ला अष्टमी, गुरुवार को प्रातःकाल सतारा पधार गये। आपके साथ पांच और साधु थे। तपस्वीराज स्थविर मुनि श्री मोतीलालजी महाराज भी साथ थे।

सतारा के श्रावकों और श्राविकाओं में अपार हर्ष छा गया। पूज्यश्री ने जिस समय रतलाम से दक्षिण की ओर विहार किया था, उसी दिन से सतारा की जनता आशा लगाये बैठी थी। चातुर्मास की स्वीकृति से आशा फूल उठी और जब पूज्यश्री साक्षात् पधार गये तो आशा फलवती हो गई। अतः सतारा के श्रीसंघ को असीम हर्ष होना स्वाभाविक ही था।

दोनों वैरागी पूज्यश्री के सतारा पहुंचने से २०-२५ दिन पहले ही वहां पहुंच चुके थे। वे साधु-प्रतिक्रमण सीख रहे थे। पूज्यश्री के पधारने पर दोनों ने शीघ्र ही दीक्षा ग्रहण करने की इच्छा प्रकट की।

पूज्यश्री ने फरमाया—'पहले घरवालों की आज्ञा नियमानुसार लेनी होगी, फिर दीक्षा का दिन निश्चित किया जायगा।'

भीमराजजी ने कहा—हम घर से सब की सम्मति लेकर आये हैं, अब फिर आज्ञा प्राप्त करने की कोई आवश्यकता नहीं रही है। इसके अतिरिक्त अपने घर में मैं सब से बड़ा हूं। मुझे आज्ञा कौन देगा? रहा सिरेमल; सो वह जब लगभग ९ वर्ष का था, तब उसकी माता ने दीक्षा लेने से पहले मुझ से कहा था—'मेरे बाद आप ही इसके मां-बाप हैं। इसका पालन करें और फिर किसी योग्य साधु के पास दीक्षा दिला दें। दीक्षा के लिए मेरी आज्ञा है।

उनका यह अंतिम आदेश मुझे भली-भांति स्मरण है। माता की अभिलाषा पूर्ण करना मेरा कर्त्तव्य है। मेरे ऊपर उसका उत्तरदायित्व है। सिरेमल की अवस्था अब १२ वर्ष की हो गई है। लड़का बड़ा बुद्धिशाली है। समयानुसार सब बातें समझता है। हम इसकी सगाई की तैयारी कर रहे थे मगर आपका पदार्पण हुआ और इसने सगाई करने से इंकार कर दिया तथा दीक्षा लेने को तैयार हो गया। हमने कई बार पूछा कि तुम विवाह करोगे या दीक्षा लोगे? यह अपने निश्चय पर अटल रहा और अंत तक दीक्षा लेने के लिए ही कहता रहा है। इस प्रकार उसकी माता पहले ही आज्ञा दे चुकी है और संरक्षक की हैसियत से मैं आज्ञा देने को तैयार हूं। हम दोनों घरवालों की सहमति लेकर ही आये हैं। आपश्री भी यह जानते हैं। फिर संदेह का क्या कारण है?

[अभिभावक अथवा घर वालों की स्वीकृति के बिना किसी को दीक्षा देना शास्त्रविरुद्ध है।] पूज्यश्री स्पष्ट रूप से लिखित आज्ञा-पत्र चाहते थे, ताकि शास्त्रीय-मर्यादा का सम्यक् प्रकार से पालन हो।

इस प्रकार की बातें चलही रही थीं कि सिरेमलजी के बड़ेभाई श्रीदानमलजी सतारा आये। घर में वही बड़े थे। भीमराजजी ने श्रीसंघ से कहा—अब आप पूछकर अपना संशय निवारण कर लीलिए।

श्रीदानमलजी से श्रीसंघ ने पूछताछ कर ली और दानमलजी ने स्वीकृति दे दी। स्वीकृति मिलने के दूसरे ही दिन दीक्षा का मुहूर्त्त निश्चय कर दिया गया। दानमलजी से लिखित

इकतीसवां चातुर्मास (१९७९)

पूज्यश्री ने सात सन्तों के साथ वि० सं० १९७९ का चातुर्मास सतारा में किया। तपस्वी मुनि श्रीमोतीलालजी महाराज की अवस्था अब पैंसठ वर्ष की हो गई थी, फिर भी आपने लम्बी तपस्या की। पूर के दिन अभयदान आदि अनेक उपकार के कार्य हुए। मच्छीमारों का बाजार दो दिन बन्द रक्खा गया। वे पूज्यश्री का व्याख्यान सुनने आये। अमावस्या के दिन वे लोग पहले से ही जाल नहीं डालते थे, व्याख्यान सुनकर उन्होंने ग्यारस को भी मछलियां मारने का त्याग कर दिया। कुछ ने तो जिंदगी भर के लिए मछली मारना छोड़ दिया।

सतारा-चातुर्मास में पूज्यश्री का व्याख्यान सुनने के लिए दादा करंदीकर तथा राव साहब काले जैसे प्रतिष्ठित जैनेतर सज्जन भी उपस्थित होते थे। एक दिन राव सा० ने संक्षिप्त भाषण करते हुए कहा—'जिसमें पूज्यश्री सदृश विद्वान् और खरे संत हैं वह समाज धन्य है। ऐसे महापुरुष के दर्शन करके हम धन्य हो गए। हमारे पूर्व संचित पुण्य के प्रभाव से ही आप यहां पधारे हैं। अब तक हमारी दृष्टि में जैनधर्म एक मामूली मत था; मगर पूज्यश्री के उपदेशों से उसका महत्व हमारी समझ में आ गया है। अब हम मानते हैं कि जैनधर्म का आश्रय लेकर भी मनुष्य आत्म-विकास की चरम सीमा पर पहुँच सकता है।'

पर्युषण पर्व

सतारा में पर्युषण पर्व बड़े समारोह के साथ मनाया गया। मारवाड़, मेवाड़, मालवा, गुजरात, नागपुर, महाराष्ट्र और काठियावाड़ आदि प्रान्तों के अनेक श्रावक और श्राविकाएं पूज्यश्री के दर्शन के लिए तथा पूज्यश्री की सेवा में रहकर पर्युषण महापर्व की अराधना करके लिए आये थे। पर्व के समय पूज्यश्री लम्बे समय तक व्याख्यान फरमाते थे। पहले पं० मुनि श्रीगणेशीलाल जी म० अपनी मधुर वाणी में टीका सहित शास्त्र की व्याख्या करते थे और फिर पूज्यश्री का

प्रवचन होता था। शास्त्र के आदेश और वर्त्तमान जीवन में असामंजस्य क्यों दिखाई दे रहा है? और इसे दूर करने का उपाय क्या है? इत्यादि विषयों पर पूज्यश्री बहुत ही मार्मिक विवेचन करते थे। जैन और जैनेतर श्रोता मंत्र मुग्ध होकर सुनते थे।

भाद्रपद शुक्ला चतुर्थी अर्थात् संवत्सरी के दिन पूज्यश्री का विद्यादान और अभयदान पर व्याख्यान हो रहा था। व्याख्यान भवन खचाखच भरा था। उसी समय सेठ मोतीलालजी मूथा ने श्री चन्दनमलजी मूथा की स्मृति में पन्द्रह हजार रुपयों के उदारतापूर्ण दान की घोषणा की। उसके उपयोग के सम्बन्ध में स्पष्टीकरण करते हुए आपने कहा—'जब तक किसी उपयोगी संस्था की स्थापना नहीं हो जाती तब तक इस रकम का ब्याज विविध प्रकार के धार्मिक कार्यों में खर्च किया जायगा। योग्य संस्था स्थापित होने पर सारी रकम उसे सौंप दी जायगी।' आपने यह भी कहा—'कई दिनों से हम पूज्यश्री का उपदेश सुन रहे हैं। मैं मानता हूं कि उपदेश सुनकर हमें बड़े से बड़ा त्याग करना चाहिए। मगर मेरा यह दान तुच्छ है। किन्तु पूज्यश्री के उपदेशों का हमारे हृदय में अभी अंकुर ही उगा है। हमारे भाग्योदय से तथा पूज्यश्री की कृपा से भावना का यह अंकुर एक दिन अवश्य वृक्ष का रूप धारण करेगा और हम अपने जीवन में शान्ति का अनुभव करेंगे, ऐसी आशा है। हमारे पहले के पुण्य का ही यह प्रभाव है कि जिस बात की कल्पना करना भी दुस्साहस समझा जा सकता था वही आज प्रत्यक्ष हो चुकी है। पूज्यश्री ने सतारा में चातुर्मास करने की कृपा की और सोने में सुगन्ध के समान आप महानुभावों की चरण-रज से हमारा नगर पवित्र हुआ है। हमारी आत्मा आज कृतकृत्य है। सत्य समझिये कि हमारे जीवन में इससे बढ़कर हर्ष का विषय कोई दूसरा नहीं हुआ। पूज्यश्री के महान् उपकारों का बदला हम धन, जीवन और सर्वस्व अर्पण करके भी नहीं चुका सकते। पूज्यश्री को सतारा तक पहुंचने में अनेक कठोर परीषह सहने पड़े हैं। आपने हमारे कल्याण के लिए ही सब कुछ सहन किया है। हम उनके इस ऋण से किसी भी प्रकार मुक्त नहीं हो सकते। अन्त में हम अपनी ओर से हुई अविनय-आसातना के लिए पूज्यश्री से क्षमा-याचना करते हैं।

चातुर्मास का अन्तिम दृश्य

चातुर्मास समाप्त होने जा रहा था। पूज्यश्री अंतिम व्याख्यान फरमा रहे थे। नगर के बडे-बड़े विद्वान्, वकील तथा इतर जैन एवं जैनतर श्रोताओं से व्याख्यान भवन भरा हुआ था। रीवां (मारवाड़) के प्रतिष्ठित रईस सेठ मगनमलजी और श्री नौरतनमलजी भी उपस्थित थे। पहले मुनि श्री गणेशीलालजी महाराज का व्याख्यान हुआ। तत्पश्चात् पूज्यश्री ने एक कुल पुत्र का उदाहरण देते हुए 'मानव-कर्त्तव्य' की अत्यन्त सुन्दर और मार्मिक व्याख्या की। आज व्याख्यान भवन में सर्वत्र विषाद की छाया स्पष्ट नजर आती थी। पूज्यश्री की आसन्न विदाई के विचार से जनता का हृदय गद्गद् हो रहा था।

सेठ मोतीलालजी मूथा भाषण करने के लिए खड़े हुए। मगर उनका हृदय गद्गद् हो उठा। आंखों से आंसुओं की धारा बहने लगी। किसी प्रकार जी कड़ा करके उन्होंने कहा—'सतारा में ऐसी कोई विशेषता नहीं थी जिसके कारण पूज्यश्री का पदार्पण यहां होता। किन्तु पूज्यश्री का यह महान् अनुग्रह है कि आपने हमारे नगर को पावन किया। हमारे निर्गुण क्षेत्र में ही पूज्यश्री ने गुणों की वर्षा करना उचित समझा। कहना चाहिए कि हमारी निर्गुणता ही

दूसरे दिन पूर्णिमा थी। चातुर्मास में पूज्यश्री ने सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र की कथा सुनाई थी। आज कथा की पूर्णाहुति थी। धर्म और सत्य का पालन करने के लिए चाण्डाल के हाथ बिक जाने वाले राजा हरिश्चन्द्र का चरित्र स्वभावतः करुणापूर्ण है। तिस पर पूज्यश्री ने अपनी वाणी के चमत्कार से उसे और भी प्राणवान् बना दिया था। एक तो पूज्यश्री की विदाई का विषाद दूसरे राजा हरिश्चन्द्र की करुण कथा! जनता की स्थिति विलक्षण हो गई। सभी श्रोता गद्‌गद् होगये। सेठ मोतीलालजी के संक्षिप्त वक्तव्य के बाद सेठ मगनमलजी ने कहा—'इस प्रकार का अतिशय और इस प्रकार की भक्ति मैंने अन्यत्र कहीं नहीं देखी।'

मार्गशीर्ष कृष्णा प्रतिपद् को पूज्यश्री का अंतिम उपदेश हुआ। नगर के अनेक विद्वान् और प्रतिष्ठित पुरुष उपस्थित थे। आज फिर सेठ मोतीलालजी ने अपने सहयोगी ब्राह्मण, माहेश्वरी, नाई आदि बन्धुओं का आभार माना और पूज्यश्री ने श्रोताओं को सान्त्वना देते हुए कहा—'धर्मोपदेश देना मेरा कर्त्तव्य है। यदि आप इसे अपना उपकार मानते हैं, प्रत्युपकार की भावना रखते हैं तो मैं आपसे एक ही वस्तु मांगना चाहता हूं और वह यह है कि मैंने जो बातें आपको बतलाई हैं उन्हें आप आचरण में लाने का अभ्यास कीजिये। धर्म पर श्रद्धा रखिए। अहिंसा-धर्म को ही संसार के लिए हितकारक मानिए। सत्य तथा धर्म का उपदेश देते समय बहुत-सी कठोर प्रतीत होने वाली बातें कहनी पड़ती हैं, किन्तु उनमें एकान्त हितभावना रही हुई है। मेरी किसी भी बात से किसी का दिल दुखा हो तो मैं क्षमा चाहता हूं।'

इसके बाद सतारा के प्रसिद्ध वकील राव साहब सोमन ने पूज्यश्री का आभार माना और पूज्यश्री के सदुपदेशों को अमल में लाने के लिए जनता को प्रेरणा की।

सतारा में पूज्यश्री के चातुर्मास से अनेक उपकार हुए। जैनेतर शिक्षित-अशिक्षित जनता की जैनधर्म के विषय में जो मिथ्या धारणाएं अर्से से चली आ रही थीं वह सब सफा होगईं।

लोगों को जैन-धर्म का सच्चा स्वरूप समझने का सुअवसर मिला। बहुत से लोगों ने तरह-तरह का त्याग-प्रत्याख्यान किया। भाऊ पटेल नामक एक सज्जन ने आजीवन ब्रह्मचर्य धारण किया। कइयों ने मांस-मदिरा का परित्याग किया। पारस्परिक मैत्री, सदाचार, गुणों से प्रेम, प्रामाणिकता आदि मानवीय गुणों के विषय में पूज्यश्री ने मार्मिक उपदेश दिया।

इस चातुर्मास में बलुन्दा (मारवाड़) निवासी श्रीमान् सेठ गंगारामजी साहब मूथा तथा सेठ गिरधारीलालजी सांखला आदि बेंगलौर श्रीसङ्घ के प्रमुख व्यक्ति बैंगलौर में चातुर्मास करनेकी प्रार्थना करने उपस्थित हुए। मगर इतनी जल्दी पूज्यश्री कोई आशाजनक उत्तर न दे सके।

पूना की ओर प्रस्थान

सतारा का स्मरणीय चौमासा पूर्ण करके विचरते हुए पूज्यश्री पूना पधारे। आपकी ख्याति सम्पूर्ण दक्षिण प्रान्त में पहले ही फैल चुकी थी। पूना में भी बड़ी संख्या में लोग आपके व्याख्यानों से लाभ उठाने लगे।

पूज्यश्री के उपदेशों से श्री जीवनलालजी नामक सद्गृहस्थ के वैराग्य की वृद्धि हुई। वह पहले से ही विरक्त थे। संयोग पाकर वैराग्य बढ़ा और पैंतीस वर्ष की अवस्था में, अपने भनेज श्रीरमणीकलाल को अपनी सम्पत्ति संभलाकर और कुछ शुभकार्य में लगाकर आपने दीक्षा ग्रहण कर ली। आपके पास काफी सम्पत्ति थी। एक दूसरे भाई जवाहरमलजी भी उसी समय दीक्षित हुए।

पूना-श्रीसङ्घ ने उत्साह के साथ दीक्षा-महोत्सव मनाया। लगभग तीन हजार जनता उपस्थित थी। बाहर से आये सज्जनों का पूना-सङ्घ ने सुन्दर स्वागत किया।

इन दीक्षाओं में एक विशेषता यह थी कि दोनों दीक्षाभिलाषियों ने तपस्या कर रखी थी। श्रीजीवनलाल जी ने चौविहार उपवास और जवाहरमलजी ने तेला किया था। दीक्षा ग्रहण करने के दूसरे दिन और चौथे दिन नवदीक्षित साधुओं का पारणा हुआ।

पूज्यश्री २१ दिन पूना में धर्मोपदेश की वर्षा करते रहे। इस अर्से में जैन और जैनेतर जनता पर धर्म का अच्छा प्रभाव पड़ा। धार्मिक कार्य करने के उद्देश्य से एक मंडल स्थापित हुआ। पूना-सङ्घ ने चातुर्मास के लिए अत्यन्त आग्रह किया मगर पूज्यश्री ने स्वीकार नहीं किया।

बम्बई के श्रावकों ने बम्बई में चौमासा करने की प्रार्थना की। किन्तु बड़ा शहर होने के कारण वहां साधुओं को अनेक असुविधाएं रहती हैं और संयम का सम्यक् प्रकार से पालन करना कठिन हो जाता है। यह सोचकर पूज्यश्री ने बम्बई में चौमासा करना भी अस्वीकार कर दिया।

पूना से विहार करके पूज्यश्री खिड़की, चिंचवड़, चारोली, खेड़गांव आदि स्थानों में उपदेश-वर्षा करते हुए मंचर पधारे। खेड़गांव में स्थानकवासी भाइयों की पच्चीस दुकानें थीं, मगर धर्म की ओर किसी का विशेष ध्यान नहीं था। पूज्यश्री के पधारने से कम-से-कम चतुर्दशी को एकत्र होकर सामायिक करने की प्रतिज्ञा ली। यहां महामती श्रीसूरजकुंवरजी म० विराजमान थीं, जो मुनिश्री श्रीमलजी म० की संसारपक्ष की मातेश्वरी होती थी।

मंचर में पुनः पूना-सङ्घ चातुर्मास की विनति करने उपस्थित हुआ। इधर मंचर के भाई भी यही आग्रह करने लगे। मगर पूज्यश्री ने उस समय कुछ भी निश्चित उत्तर नहीं दिया।

मंचर से विहार करके नारायणगांव, जुन्नेर होते हुए पूज्यश्री इगतपुरी पधारे। यहां दूर-दूर के लोग पूज्यश्री के दर्शनार्थ उपस्थित हुए। बम्बई-श्रीसङ्घ की ओर से यहां अग्रेसर सेठ मेघजी भाई थोभण जे. पी., श्रीअमृतलाल रायचंद झवेरी, श्रीरतनचंद झवेरी, माणकलाल भाई झवेरी आदि दस सज्जन घाटकोपर पधारने की प्रार्थना लेकर उपस्थित हुए। उन्होंने कहा—घाटकोपर इगतपुरी से करीब ३५ कोस है। यह बम्बई का उपनगर है। वहां बम्बई जैसा कोलाहल और भीड़-भाड़ नहीं है। वहां आपकी शान्ति भंग नहीं होगी। भले ही इस समय आप चातुर्मास करने का वचन न दें मगर एक बार वहां पदार्पण करें। वहां पहुंचने के पश्चात जैसा उचित समझें, कीजिएगा। यद्यपि यहां से घाटकोपर का रास्ता विकट अवश्य है फिर भी आपके पधारने से बम्बई में धर्म का बहुत प्रचार होगा। बंबई की विशाल जैन जनता का भी असीम उपकार होगा। कृपाकर हमारी अभ्यर्थना स्वीकार कीजिए और कष्ट झेलकर भी एकबार अवश्य पधारिए।

पूज्यश्री ने एक बार घाटकोपर पधारने की स्वीकृति दे दी। कुछ दिनों पश्चात् आप नासिक होते हुए घाटकोपर पधार गये। वहां आपके उपदेश में हजारों की भीड़ होना साधारण बात थी। तपस्वी मुनिश्री सुन्दरलालजी ने उस समय पंद्रह दिन की तपस्या की। बम्बई श्रीसङ्घ में अपूर्व उत्साह था। जब देखा कि पूज्यश्री को स्थान अनुकूल पड़ गया है और धर्म की खूब प्रभावना हो रही है तो श्रीसङ्घ ने चौमासे के लिए फिर प्रार्थना की। पूज्यश्री अब की बार भक्तों का आग्रह न टाल सके। आपने चातुर्मास स्वीकार कर लिया।

उन दिनों घाटकोपर में 'प्रान्तीय राजद्वारी परिषद्' की चहलपहल थी। परिषद् के सिलसिले में एकदिन जुलूस निकला, जिसमें तीन हजार व्यक्ति थे और सभी के हाथ में राष्ट्रीय ध्वजा शोभायमान हो रही थी। वे सब पूज्यश्री की सेवा में उपस्थित हुए और वंदन करके शांतिपूर्वक बैठ गये। पूज्यश्री ने राष्ट्रसेवा, मादक द्रव्य निषेध, मील के वस्त्रों की अपवित्रता आदि कई विषयों पर धार्मिक दृष्टि से संक्षिप्त और प्रभावजनक भाषण दिया। उस समय सैकड़ों व्यक्तियों ने चाय-तमाखू आदि का त्याग किया और सैकड़ों ने चर्बीवाले वस्त्रों का परित्याग किया।

होली—चातुर्मास घाटकोपर में व्यतीत करके पूज्यश्री माटुंगा होते हुए दादर पधारे। दादर बहुत संकीर्ण और कोलाहलपूर्ण स्थान है। वहां की जनता ने पूज्यश्री से कुछ दिन और विराजने की प्रार्थना की। किन्तु आपने फरमाया—दादर जैसे स्थान संतों के लिए नहीं, व्यवसायी लोगों के लिए हैं। ऐसे अशान्ति और कोलाहल से परिपूर्ण स्थानों में साधुओं का चरित्र निर्मल नहीं रह सकता। साधुओं को एकान्त चाहिए, शान्त वातावरण चाहिए। उसी समय आपने श्रीमेघजी भाई को लक्ष्य करके कहा—'मेघजी भाई! अगर आप साधुओं का संयम निर्मल चाहते हो तो ऐसे प्रवृत्तिमय और धमाल वाले स्थानों में साधुओं को लाना उचित नहीं है।'

पूज्यश्री दादर में सिर्फ दो दिन ठहरे और घाटकोपर लौट आये। यहां श्रीमहावीर जयन्ती पर भाषण देकर आपने विहार कर दिया। मुलून, थाना, पनवेल, उरण आदि स्थानों में विचर कर चौमासा समीप आने पर आप फिर घाटकोपर पधार गये।

बत्तीसवां चातुर्मास (१९८०)

विक्रम संवत् १९८० का चौमासा पूज्यश्री ने घाटकोपर में व्यतीत किया। इस चातुर्मास में तपस्वी मुनि सुन्दर लालजी ने ८१ दिन की तपस्या धोवन-पानी के आधार पर की। इतने

लम्बे उपवास का वृत्तान्त जानकर बड़े-बड़े डाक्टर और विद्वान् लोग भी आश्चर्य करते थे। डाक्टरों का विश्वास था कि केवल पानी के आधार पर मनुष्य इतने दिनों तक जीवित नहीं रह सकता। मगर अपने विश्वास का प्रत्यक्ष खंडन होते देखकर उनकी बुद्धि चकरा जाती थी। आखिर वे इस निर्णय पर पहुंचे कि साधारण व्यक्ति से महात्माओं की शक्ति को तोलना उचित नहीं है। वास्तव में आत्मबल का सामर्थ्य असीम है। जहां आत्मिक बल प्रबल होता है वहां दुःसाध्य कार्य भी सुसाध्य हो जाते हैं। पूज्यश्री ने आत्मबल के संबंध में कहा है:—

'आत्मबल में अद्भुत शक्ति है। इस बल के सामने संसार का कोई भी बल नहीं टिक सकता। इसके विपरीत जिसमें आत्मबल का अभाव है वह अन्यान्य बलों का अवलम्बन करके भी कृतकार्य नहीं हो सकता।'

'आत्मबल सब बलों में श्रेष्ठ है। यही नहीं वरन् यह कहना भी अनुचित न होगा कि आत्मबल ही एक मात्र सच्चा बल है। जिसे आत्मबल की उपलब्धि हो गई है उसे अन्य बल की आवश्यकता नहीं रहती।'

'आत्मबल प्राप्त करने की क्रिया है तो सीधी-सादी, लेकिन क्रिया करने वाले का अन्तःकरण सच्चा होना चाहिए। वह क्रिया यह है कि अपना बल छोड़ दो अर्थात् अपने बल का जो अहंकार तुम्हारे हृदय में आसन जमाये बैठा है उस अहंकार को निकाल बाहर करो। परमात्मा के शरण में चले जाओ। परमात्मा से जो बल प्राप्त होगा वही आत्मबल होगा।'

'आत्मबली को प्रकृति स्वयं सहायता पहुंचाती है।'

आत्मबल के द्वारा महात्माओं को भी चकित कर देने वाली शक्ति प्राप्त होती है। ८१ दिन की इस तपस्या को देखकर जैन शास्त्रों में वर्णित लम्बी तपस्याओं को अशक्यानुष्ठान समझने वाले बहुत-से लोग व्यवहार्य मानने लगे। बड़े-बड़े अंगरेज भी तपस्वी जी को देखने आते थे। उपवास-चिकित्सा के एक डाक्टर साहब तो अकसर आपके स्वास्थ्य का चढ़ाव उतार देखने के लिए आया करते। उन्हें अनायास ही अपने अनुभव की वृद्धि का साधन मिल गया।

तपस्या के अंतिम दिन हजारों जैन-जैनेतर व्यक्तियों ने मिलकर तप-उत्सव मनाया। उस दिन आने-जाने वाले व्यक्तियों की इतनी भीड़ थी कि रेलवे को स्पेशियल गाड़ियां चलानी पड़ीं। उसी दिन घाटकोपर पशुशाला के लिए चंदा हुआ। दीर्घ तपस्या और पूज्यश्री की वाणी के प्रभाव से अजैन भाइयों ने भी हजारों का त्याग किया। पूज्यश्री के जीवदया पर इतने प्रभावक भाषण हुए कि लोगों के दिल पिघल गये। चौमासे के अन्त तक जीवदया के निमित्त करीब सवा लाख का चंदा एकत्र हो गया। इसी अर्से में जुन्नेर निवासी श्रावक मूलचंदजी ने एक मास की तपस्या की।

जीवदया खाते की स्थापना

'मित्रो! दया का दर्शन करना हो तो गरीब और दुखी प्राणियों को देखो। देखो, न केवल नेत्रों से वरन् हृदय से देखो। उनकी विपदा को अपनी ही विपदा समझो और जैसे अपनी विपदा का निवारण करने के लिए चेष्टा करते हो वैसे ही उनकी विपदा निवारण करने के लिए यत्नशील बनो।'

घाटकोपर में होली चातुर्मास व्यतीत करके जब पूज्यश्री ने दादर के लिये प्रस्थान किया

तो रास्ते में मांस से भरे हुए टोकरे लेजाते हुए बहुत-से लोगोंपर आपकी दृष्टि पड़ी। दर्याफ्त करने पर ज्ञात हुआ कि बांद्रा और कुर्ला के कसाईखानों में जो पशु मारे जाते हैं उनका मांस बेचने के लिए टोकरे वाले ले जाते हैं। उस समय बंबई में एक लाख चवालीस हजार गाएं और भैंसें प्रति-वर्ष कटती थीं।

बम्बई में पशुओं का रखना महंगा पड़ता है। अतः दूध का व्यापार करने वाले घोसी अकसर यह करते हैं कि गाय-भैंस जब तक काफी दूध देती हैं तबतक अपने पास रखते हैं और ज्योंही दूध तीन-चार सेर या इससे कम हुआ कि उसे कसाई को सौंप देते हैं। बम्बई नगर में होने वाली इस भयानक हिंसा का हाल जानकर पूज्यश्री का हृदय दया से द्रवित हो गया। बम्बई के श्रावक पूज्यश्रीका चौमासा वहां कराना चाहते थे मगर पूज्यश्रीने चौमासा करना तो दूर,पाप के इस गढ़ में पैर रखना भी उचित न समझा। जहां हत्या का इस प्रकार विकराल ताण्डव-नृत्य होता है, जहां पाप का राज्य है और निर्दयता का वास है वहां सन्त पुरुषों को शान्ति नहीं मिल सकती। पूज्यश्री ने बम्बई में प्रवेश तक नहीं किया। वे दादर से लौटकर घाटकोपर आगये।

पूज्यश्री विचारने लगे—मनुष्य-सृष्टिका राजा—इतना घोर स्वार्थी है! उसके विवेक और उसकी बुद्धि का क्या यही-सही उपयोग है! वह पशुओं का दूध पी जाता है सो तो खैर, मगर समूचा पशुओं को ही इस प्रकार निगल जाता है! पेड़ में जब फल न हों तो पेड़ को ही खाजाने वाला मनुष्य क्या बुद्धिमान् कहा जा सकता है! यह स्वार्थपरायणता और मूर्खता जिसमें भरी हुई है वह मनुष्य राक्षस से किस बात में कम है? इन बेचारे मूक पशुओं की रक्षा के लिए पूज्य श्री कुछ उपाय सोचने लगे। घाटकोपर चातुर्मास में आपने जीव दया पर प्रभावशाली व्याख्यान दिये। अहिंसाधर्म का मार्मिक विवेचन करते हुए पशु हिंसा निवारण करने की प्रबल प्रेरणा की।

पूज्यश्री के उपदेश के प्रभाव से घाटकोपर में 'घाटकोपर सार्वजनिक जीवदया मंडल' नामक संस्था की स्थापना की गई। प्रारम्भ में संस्था का रूप छोटा था किन्तु भावना विशाल थी। पूज्यश्री के उपदेशामृत से समय-समय पर सींची जाती रहनेके कारण संस्था निरन्तर विकास करती रही और बड़े परिमाण में जीवों को बचाने में समर्थ हो सकी। चौमासे के अन्त तक लगभग सवा लाख रुपया संस्था के पास एकत्र होगये। बीस वर्ष में इस संस्था ने ८००० से अधिक गायों और भैंसों को कसाई के हाथों से बचा लिया। यह संस्था करीब २५ मन शुद्ध दूध सुबह और शाम जनता में पहुंचाती है। इस संस्था का दैनिक खर्च करीब ४००) रुपया है। संस्था की पशु-शाला में ६०० पशुओं का पालन होरहा है। दूध देना बन्द कर देने पर पशुओं का पालन करनेके लिए पनवेल, जलगांव, इगतपुरी तथा गोटी आदि कई स्थानों में उसकी शाखाएं खुल गई हैं।

पूज्यश्री गोपालन के विषय में शास्त्रीय-मर्यादा के अनुसार बड़ा ही सुन्दर विवेचन किया करते थे। उनकी करुणाभावना मानव-समाज तक सीमित न होकर प्राणीमात्र तक गहरी पहुँच गई थी। एक प्रवचन में आपने फरमाया था—

'शास्त्र में लिखा है कि प्राचीन काल में श्रावक जितने करोड़ मोहरों का व्यापार करता, उतने ही गोकुल (दस हजार गाय) का पालन करता था। जिस समय भारत में गौओं का ऐसा मान था उस समय भारत वैभवशाली क्यों न होता? भारतवासी मानते हैं कि गौ ऋद्धि-सिद्धि देनेवाली है।

श्रीकृष्ण मूर्ख नहीं थे, दरिद्र नहीं थे। फिर उन्होंने गौएं क्यों चराई ? उनके गायें चराने का मर्म समझने की चिंता किसे है ? एक कवि ने कहा है—गोवंश की रक्षा करने के लिए ही कृष्ण ने अवतार धारण किया था। हाथ में लकड़ी लेकर गौओं के साथ श्रीकृष्ण का जंगल में जाना कितना मार्मिक व्यापार है ? पिंजरापोल या गोशाला खोली जाती है और चन्दा उगाकर उनका निर्वाह किया जाता है। यह उपाय कहां तक कारगर होगा ? इस प्रणाली से कब तक काम चलेगा ? गोरक्षा का असली और बुनियादी उपाय श्रीकृष्ण ने बतलाया है। वही सच्चा और ठोस उपाय है।

आज लोगोंको गोरक्षाके प्रति उपेक्षा होगई है। इसी कारण ऋद्धि-सिद्धि देनेवाली गौ भार रूप प्रतीत होती है। इस समय गौधनपर जितना संकट आपड़ा है उतना पहले कभी नहीं आया था।

ऊपर कहा जाचुका है कि गौ ऋद्धि-सिद्धि देने वाली मानी जाती है। महंगाई के जमाने में भी क्या यह कथन सत्य साबित होता है, इस पर जरा विचार कीजिए। मान लीजिए, एक अच्छी दुधारू गाय अभी सौ रुपये में मिलती है। आप यह सौ रुपया गाय-खाते नाम लिख देंगे। गाय अकसर दस महीना दूध देती है। इस समय में आप उस पर दो सौ रुपया खर्च करेंगे। इस प्रकार कुल तीन सौ रुपये खर्च हुए।

सौ रुपये की अच्छी गाय प्रातःकाल और सायंकाल चार-चार सेर दूध कम-से-कम देगी। बाजार में अच्छा दूध चार सेर का बिकता हो तो दस महीने में कितने का दूध आपको मिलेगा। छह सौ रुपये का दूध आप प्राप्त कर सकते हैं अर्थात् तीन सौ रुपया खर्च करके आप छह सौ रुपया प्राप्त कर सकते हैं।

दस मास के पश्चात् गाय दूध देना बंद कर देगी, फिर भी उस पर कुछ खर्च करना होगा। मगर उसके बदले उसके वंश की वृद्धि भी होगी। इसके अतिरिक्त जिनके यहां खेती होती है उन्हें खर्च और भी कम पड़ता है। इस प्रकार महंगाई के जमाने में भी गाय आर्थिक दृष्टि से लाभदायक है। कम-से-कम हानिकर तो नहीं ही है। गाय का गोबर ईंधन के काम आता है। गाय का मूत्र वातावरण को ऐसा विशुद्ध रखता है कि उसके प्रभाव से अनेक बीमारियां नहीं उत्पन्न होतीं। गौ-मूत्र के गुण कस्तूरी से भी अधिक बतलाये जाते हैं। ऐसी आजकल के वैज्ञानिकों की मान्यता है।

'……हिन्दू लोग भी किसी-न-किसी रूप में गोवंश के विनाश में सहायक हो रहे हैं। उदाहरण के लिए वस्त्रों को लीजिए। गाय की चर्बी वाले वस्त्र बड़े शौक से पहने जाते हैं। क्या गाय की हत्या किये बिना चर्बी निकाली जाती है ? चर्बी के लिए बड़ी क्रूरता से गायों को कत्ल किया जाता है और उन चर्बी वाले वस्त्रों को पहनकर लोग कहते हैं—'हम गोभक्त हैं! गाय हमारी माता है!' धन्य है ऐसे मातृभक्त सपूतों को!

पर यह न समझ बैठना कि इससे गायों की ही हानि हुई है। इस पद्धति से जहां गोवंश को हानि पहुंची है वहां मानववंश को भी काफी हानि उठानी पड़ी है और पड़ रही है। दूध मर्त्य-लोक का अमृत कहलाता है। उसकी आजकल बेहद कमी हो गई है। परिणाम यह है कि लोगों में निर्बलता और निर्बलताजन्य हजारों रोग आ घुसे हैं। इसके अतिरिक्त तामसिक भोजन पेट में जाता है, जिससे सतोगुण का नाश होता जारहा है।'

पूज्यश्री के उक्त कथन में चेतावनी है, मार्ग-प्रदर्शन है। कहते हैं—सिर्फ बम्बई में एक

हजार में से करीब ६८९ नवजात शिशु काल का ग्रास बन जाते हैं। इसका प्रधान कारण शुद्ध दूध न मिलना है।

एकता की विज्ञप्ति

श्री श्वे० स्थानक वासी जैन सकल श्रीसंघ बम्बई की ओर से श्रीसंघ के प्रमुख सेठ मेघजी भाई थोभण को पूज्यश्री ने अपनी ओर से यह वक्तव्य प्रकट करने की अनुमति दी थीः—

'प्रत्येक समाज अपनी-अपनी स्थिति को सुधारकर आगे बढ़ने का प्रयत्न कर रहा है। साधुमार्गी समाज में सैकड़ों की संख्या में पांच महाव्रत-धारी साधुओं के होते हुए भी समाज की अवनति हो रही है। हम साधुओं पर भी इसका बड़ा उत्तरदायित्व है। अतः मैं अपना कर्त्तव्य समझकर श्रीसंघ को निवेदन करता हूं कि सब समाज और सम्प्रदाय परस्पर प्रेमभाव रक्खें। परस्पर निन्दात्मक लेख, हैंडबिल पुस्तक वगैरह किसी प्रकार का छापा न छपावें।

हम अपनी तरफ से प्रतिज्ञापूर्वक आज्ञा करते हैं कि हमारी आज्ञा में चलने वाले सङ्घ में किसी भी तरह का निन्दाजनक लेख, जिससे दूसरे का दिल दुखे, नहीं छापा जाय। दूसरे पक्ष वाले यदि इस प्रकार के लेखादि छपावें तो भी इस सम्प्रदाय के सङ्घ की तरफ से प्रत्युत्तर के रूप में कुछ भी न छपेगा। किसी दूसरे से छपवाकर कह देना कि हमने नहीं छपाया, यह मायामृषावाद है। सत्य को आदरणीय समझ कर इसे भी स्थान नहीं दिया जाएगा। यदि कोई व्यक्ति साधुओं पर झूठा कलंक लगायेगा तो योग्य मध्यस्थों द्वारा खुलासा करने में कोई आपत्ति नहीं है।

स्वर्गीय पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज और मेरे यश को जो सङ्घ चाहता है उसे निन्दाजनक किसी प्रकार का लेख नहीं छपाना चाहिए। हमें पूर्ण विश्वास है कि मेरी और स्वर्गीय पूज्यश्री की कीर्त्ति चाहने वाले भक्त उपयुक्त आज्ञा को भंग न करेंगे।

कार्तिक शुक्ला सप्तमी को छोटीसादड़ी (मेवाड़) निवासी श्रीकेसरीमलजी सिंघी ने बड़े वैराग्य से दीक्षा ली। आपने दीक्षा के लिए उत्सव और जुलूस आदि भी नहीं निकलने दिये। सादगी के साथ दीक्षा सम्पन्न हुई। आगे चलकर आप भी घोर तपस्वी हुए।

एक दिन घाटकोपर के सब गोवाल पूज्यश्री का व्याख्यान सुनने आये। उपदेश से प्रभावित होकर उन्होंने यह प्रतिज्ञा की कि यदि पशुशाला से हमें रुपये के चार आने भी मिल जायंगे तो हम कसाइयों के हाथ पशु नहीं बेचेंगे।

पूज्यश्री प्रायः व्यापक धर्म पर ही प्रवचन करते थे। प्रवचन सार्वजनिक होने से सभी सम्प्रदायों के जैन और जैनेतर बन्धु तथा देश नेता भी आया करते थे। श्रीमती कस्तूरबा गांधी जब पूज्यश्री के दर्शन के लिए आईं तो उनका प्रत्यक्ष आदर्श उपस्थित करते हुए पूज्यश्री ने महिला-समाज को खादी और सादगी का उपदेश दिया। बहुत-सी बहिनों ने जीवन-पर्यंत खादी के अतिरिक्त और कोई वस्त्र न धारण करने की प्रतिज्ञा ली। पूज्यश्री ने बा से भी कुछ बोलने के लिए कहा। वे बोलीं—'मैं आज अपना अहोभाग्य समझती हूं कि पूज्यश्री के दर्शन हुए। मैं जिस उद्देश्य से आई थी वह पूरा हो गया। मुझे अब बोलने की आवश्यकता नहीं रही। पूज्यश्री ने मेरा मन्तव्य पूरा कर दिया है।'

केन्द्रीय धारासभा के प्रेसीडेंट श्रीयुत विट्ठल भाई पटेल भी एक बार पूज्यश्री के दर्शनार्थ आये। पूज्यश्री के व्यापक और उच्च विचारों से, उनके तप और त्याग से तथा वक्तृत्वशक्ति से

ने बहुत प्रभावित हुए। प्रसिद्ध विद्वान् पं० लालन अनेक बार पूज्यश्री के उपदेश सुनने आये। पूज्यश्री के व्याख्यान सुनकर वे बहुत प्रसन्न हुए। मुक्त कंठ से व्याख्यानों की प्रशंसा की। इस चातुर्मास में श्री मेघजी भाई, श्री अमृतलाल रायचन्द झवेरी, जगजीवनदयाल भाई, मोहनलाल चन्दूलाल भाई, रतनचन्द भाई आदि भाइयों ने बहुत उत्साह दिखलाया।

विहार और प्रचार

घाटकोपर का महत्त्वपूर्ण चातुर्मास समाप्त होने पर पूज्यश्री विहार करके माटुङ्गा पधारे। उस समय पूज्यश्री के उपदेशों का मुख्य विषय जीवदया प्रचार होता था। अतः जगह-जगह जीव दया सम्बन्धी उत्तम कार्य हुए। माटुङ्गा से मुलून, थाना आदि में धर्मोपदेश करते हुए आप इगलपुरी पधारे। यहां बम्बई के बहुतसे श्रावक आपके दर्शनार्थ आये। उस समय वहां के दयालु श्रावकों ने घाटकोपर की संस्था से सम्बन्ध रखने वाली जीवदया संस्थाएं स्थापित कीं। घोटी में भी एक ऐसी संस्था स्थापित हुई।

अस्पृश्यता

नासिक में श्री मेघजी भाई थोभण जे० पी० पूज्यश्री के दर्शन करने आये। पूज्यश्री ने अछूतोद्धार के विषय में अत्यन्त प्रभावशाली प्रवचन किया। अछूतोद्धार आपका प्रिय विषय रहा है। इस विषय पर आपने सैंकड़ों मार्मिक और प्रभावक प्रवचन किये हैं। इस विषय में आप कहा करते थे—

'धर्मभावना का तकाजा है कि मनुष्य मात्र को भाई समझा जाय। प्रत्येक मनुष्य प्रत्येक मनुष्य का बन्धु है। बन्धु का अर्थ सहायक है। इस प्रकार शूद्र आपके सहायक हैं और आप शूद्रों के सहायक हैं। चमार ने जूता बनाया और आपको पहना दिया। क्या यह आपकी सहायता नहीं है? भंगी ने आपका पाखाना साफ किया, आपकी नाली स्वच्छ की और आपको बदबू एवं बीमारियों से बचा दिया। क्या भंगी ने आपकी मदद नहीं की? क्या आपकी सहायता का पुरस्कार यह होना चाहिए कि वह नीच गिना जाय? सफाई करके भयंकर बीमारियों की सम्भावना को दूर कर देने वाले मेहतर को नीच गिनना क्या कृतज्ञता की भावना के अनुकूल है? मानव-समाज का असीम उपकार करने वाले वर्ग को अस्पृश्य, घृणास्पद या नीच समझने वाले लोग अपने को जब उच्च वर्ग का कहते हैं तो समझ में नहीं आता कि उच्चता का अर्थ क्या है? क्या उच्चता का अर्थ कृतघ्नता है?

याद रक्खो, यह नीच कहलाने वाले हिन्दू समाज के प्यारे लाल हैं। इन्हें धिक्कार मत दो। इनका अपमान मत करो। इनके प्रति कृतज्ञता प्रदर्शित करो। इन पर दया करो। इनके साथ स्नेह पूर्ण व्यवहार करो।'

'शूद्र आपके समाज की नींव है। महल का आधार नींव है। नींव में अस्थिरता आ जाने से महल स्थिर नहीं रह सकता। अगर तुमने शूद्रों को अस्थिर कर दिया—विचलित कर दिया तो तुम्हारे समाज की नींव हिल उठेगी। तुम्हारी संस्कृति धूल में मिल जायगी।'

'अन्त्यजों के विषय में तनिक विचार कीजिए। वह आपकी अशुचि उठाते हैं तथा दूसरे सफाई के काम करते हैं। फिर भी आप उनसे घृणा करते हैं। आपकी अशुचि दूर करके स्वच्छता रखना क्या उनका इतना बड़ा अपराध है? एक आदमी यहां अशुचि बिखेरता है और दूसरा उसे

साफ कर डालता है तो आप दोनों में से किसे अच्छा समझेंगे ? आपकी अन्तरात्मा की सच्ची ध्वनि क्या होगी ? यदि साफ करनेवाले को अच्छा समझेंगे तो पाखानों में अशुचि फैलानेवाले अच्छे हैं या उनकी सफाई करनेवाले ? क्यों आप सफाई करनेवालों से घृणा करते हैं ?

'अन्त्यजों के प्रति दुर्व्यवहार करके आप धर्म का उल्लंघन करते हैं, मनुष्यता का अपमान करते हैं, देश और जाति को दुर्बल बनाते हैं, अपनी शक्ति को क्षीण करते हैं और अपनी ही आत्मा को गिराते हैं ?'

इस प्रकार पूज्यश्री अस्पृश्यता के विरोध में अकसर प्रवचन करते थे। आपके यह प्रवचन आधुनिक साहित्य की शोभा है और प्राचीन धर्मशास्त्रों का निचोड़ हैं। जनता आपके प्रवचन सुन-कर बड़ी प्रभावित होती थी। नासिक में आपका प्रवचन श्रवण कर जनता ने अछूतों के साथ घृणापूर्ण व्यवहार न करने का आश्वासन दिया।

नासिक से आप पालखेड़ पधारे। यहां दशहरे के दिनों में देवी के सामने भैंसा मारा जाता था। पूज्यश्री के उपदेश से यह अमानुषिक प्रथा बन्द हो गई।

ब्याज खोरी का निवारण

पालखेड़ से विहार करके पूज्यश्री नान्दुर्डी पधारे वहां लगभग १८०० की आबादी थी। जैन श्रावकों का प्रधान धन्धा सूद लेना था। कड़ा ब्याज लेने के कारण वहां की जनता श्रावकों के प्रति सन्तुष्ट नहीं थी। पूज्यश्री स्वयं अकिंचन अनगार थे और अपरिग्रह के समर्थ और अधिकारी समर्थक थे। आपके यह शब्द कितने सजीव हैं—

'तुम समझते हो हमने धन को तिजोरी में कैद कर लिया है, पर धन समझता है कि हमने इतने बड़े धनी को अपना पहरेदार मुकर्रर कर लिया है।

तुम अपनी कृपणता के कारण धन का व्यय नहीं कर सकते पर धन तुम्हारे प्राणों का भी व्यय कर सकता है।

तुम धन को चाहे जितना प्रेम करो, प्राणों से भी अधिक उसकी रक्षा करो, उसके लिए भले ही अपनी जान दे दो, लेकिन धन अन्त में तुम्हारा नहीं रहेगा—नहीं रहेगा। वह दूसरों का बन जायगा।

तुम धन का त्याग न करोगे तो धन तुम्हारा त्याग कर देगा। यह सत्य इतना स्पष्ट और ध्रुव है कि इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं किया जा सकता। ऐसी स्थिति में विवेकवान् होते हुए भी इतने पामर क्यों बने जा रहे हो ? तुम्हीं त्याग को पहल क्यों नहीं करते ? क्यों स्वत्व के धागे को तोड़कर फैंक नहीं देते ?'

'पूज्यश्री लालजी महाराज ने एक बार कहा था—ऐ धनिको ! सावधान रहो। अपने धन में से गरीबों को हिस्सा देकर उन्हें शान्त न करोगे, उनका आदर न करोगे, उनकी सेवा न करोगे तो साम्यवाद फैले बिना न रहेगा. सामाजिक स्थिति इतनी विषम हो जायगी कि गरीब लोग धनवानों के गले काटेंगे। उस समय हाय-हाय मच जायगी।'

नान्दुर्डी में आपका प्रवचन हुआ। अन्य जातियों के श्रोता भी उपस्थित होते थे। पूज्यश्री ने एक दिन दशहरा आदि अवसरों पर होनेवाली हिंसा के निषेध का उपदेश दिया। अन्य जातीय लोगों ने कहा—'महाराज ! हम लोग भैंसा मारते हैं मगर यह साहूकार लोग सूद ले-लेकर हम

मनुष्यों को मारते हैं ! अगर ये लोग अपनी करतूतों से बाज आएं तो हम भी भैंसा मारने का त्याग करने के लिए तैयार हैं।'

पूज्यश्री ने वहां के साहूकारों को समझाया—वैश्य देश के पेट के समान हैं। पेट आहार को स्थान अवश्य देता है परन्तु उस आहार का उपभोग समस्त शरीर करता है। वह सिर्फ अपने ही लिये आहार जमा नहीं करता। वैश्य देश की आर्थिक दशा का केन्द्र है। देश की आर्थिक दशा को सुधारना उसका कर्त्तव्य है। वैश्यों को आनन्द श्रावक का आदर्श अपने सामने रखना चाहिए और स्वार्थमय वृत्ति का त्याग कर जन-कल्याण की भावना को हृदय में स्थान देना चाहिए।

इस प्रकार के उपदेश से वहां के साहूकारों ने भी अनुचित और अन्याय-पूर्ण ब्याज लेने का त्याग कर दिया। दूसरी जातिवालों ने हिंसा का त्याग कर दिया। इस प्रकार पूज्यश्री के प्रभाव से दोहरा लाभ हुआ और गांव में पारस्परिक प्रेम का एक नवीन वातावरण उत्पन्न हो गया। वहां के जैन और जैनेतर सभी व्यक्तियों ने नीचे लिखी व्यवस्था की.—

नान्दुर्डी
२५—२—२४

मिती माघ वदी ५ शके १८४५ कथितोद्गारी नाम संवत्सरे ता० २५-२-२४ के दिन नान्दुर्डी निवासी नीचे हस्ताक्षर करनेवाले मनुष्य, श्री पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज के सन्मुख आगे लिखे मुताबिक बातों का ठहराव करते हैं—

(१) अब से आगे जो हिसाब होंगे या कर्ज लिया जायगा, उसमें मारवाड़ी लोगों ने १) रु० प्रति सैंकड़ा या इससे कम ब्याज लेना।

(२) किसान या ऋण लेनेवाला ब्याज तथा मुद्दल की अदायगी का ठीक-ठीक ध्यान रखे।

(३) चक्रवृद्धि ब्याज (पुलतो ब्याज) कभी न जोड़ा जाय।

(४) यदि किसान और साहूकार के बीच में झगड़ा पैदा हो जाय, तो उसका फैसला गांव के पंच करेंगे।

(५) यदि किसान को पंचों का फैसला मान्य न हो अर्थात् वह पंचों की बताई रीति से रुपया अदा न करे, तो साहूकार को अदालत में नालिश करने की स्वतन्त्रता होगी।

(६) जैनेतर मण्डली इससे आगे दशहरे पर भैंसा नहीं मारेगी। इसके अतिरिक्त अन्य दिनों में भी हिंसा करने की हमने आज दिन से बन्दी कर दी है।

"शस्त्र से जिस प्रकार हिंसा होती है, उसी प्रकार ही लोगों के पास से अधिक ब्याज वसूल करने अथवा अन्याय पूर्वक दूसरे की संपत्ति हजम करने से किसानों के गले कटते हैं। ऐसी दशा में बेचारे किसान के स्त्री-बच्चे मारे-मारे फिरते हैं।" यह बात जैनाचार्य पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज के उपदेश से हम लोगों की समझ में आगई। अतः जैन धर्म की पवित्र आज्ञा का अनुसरण करके हम नांदुर्डी निवासी जैन धर्मावलम्बी लोग आज से अधिक ब्याज लेने, अधिक नफा लेने, अथवा अन्याय पूर्वक दूसरे की सम्पत्ति को हजम करने के दुष्कृत्यों को अपनी इच्छा से छोड़ते हैं।

इसी प्रकार हम जैनेतर लोग यह प्रतिज्ञा करते हैं कि साहूकारों की मुद्दल रकम औ
ब्याज, खेती के नियमों के अनुसार ठीक टाइम पर अदा करते रहेंगे।

(७) यदि कोई साहूकार अपनी आसामी को अनाज दे, तो बाजार भाव से १)रु० प्र
मन अधिक का भाव लगाकर उससे चिट्ठी लिखा ले और उचित रीति से ब्याज लगावे।

(८) हर चीज की वसूली की रसीद देना आवश्यक है।

(९) अब से आगे के तथा पीछे के जो हिसाब हों, उन सबमें यही नियम लगाया जा
इससे अधिक अनाज पर बढ़ती का धान्य वसूल नहीं किया जावे।

यह ठहराव जैन व जैनेतर (ब्राह्मण, मराठे, कोली, चमार, महार वगैरह) सब लोगों क
स्वीकार है। इति।

गांव के आदमियों के हस्ताक्षर

नान्दुर्डी के एक भाई शोभाचन्द्रजी ने रुपयों की वसूली के लिए अदालत में नालिश कर
का सर्वथा त्याग कर दिया। इस उदारतापूर्ण त्याग के परिणामस्वरूप वे किसी प्रकार के घाटे
भी नहीं रहे। अदालतबाज साहूकारों के रुपये चाहे न पटे मगर इन भाई की वसूली पाई-पा
हुई। इनकी उदारता ने किसानों का हृदय जीत लिया था।

नान्दुर्डी से विहार करके पूज्यश्री निफाड़, नेताल, लासनगांव होते हुए मनमाड़ पधारे।
यहां भी बड़ी संख्या में लोग व्याख्यान सुनने आते थे। अनेक धार्मिक कार्य हुए। यहां से विहार
करके निआल डूंगरी पधारे। गांव के अस्पृश्य व्याख्यान सुनने आए और उन्होंने मांस एवं मदिरा
का त्याग किया। बहुत से मुसलमान भाइयों ने भी मांस-भक्षण एवं जीव-हिंसा का त्याग कर दिया।

पूज्यश्री जब निआल डूंगरी आदि गांवों में विचरते थे उस समय श्रावकों द्वारा जो कठोर
ब्याज किसान आदि गरीब जनता से वसूल किया जाता था, उसकी कहानी जब पूज्यश्री ने सुनी
तब उन्हें बहुत दुःख हुआ, अपने व्याख्यान में इस प्रकार के धनोपार्जन के निर्दय अत्याचार को
पूज्यश्री व्यावहारिक व धार्मिक दृष्टि को सामने रखकर असर कारक उपदेश देते थे वे कहते अगर
इसी प्रकार पठानी ब्याज वसूल करने वाले श्रावकों के यहां से मैं भिक्षा ग्रहण करूं तो मेरे ऊपर
व मेरे उपदेश का आप पर क्या असर पड़ सकता है। उसी समय से पूज्यश्री अंग मेहनत करने
वालों के घर से ही अपने लिए भिक्षा मंगवाते थे।

निआल डूंगरी से विहार करके पूज्यश्री चालीसगांव, बागली, पांचोरा और खेड़गांव होते
हुए जलगांव पधारे। मार्ग में छोटे-छोटे अनेक गांवों में जीव-दया का उपदेश दिया तथा लोगों को
कसाई के हाथ पशु बेचने का त्याग करवाया। जलगांव से विहार करके हिंगोणे, धारणगांव, अमलनेर
होते हुए फिर धारणगांव पधारे। यहां अछूतों ने मांस एवं मदिरा का त्याग किया।

धारणगांव से विहार करके पूज्यश्री हिंगोणे पधारे। यहां के निवासियों ने आपके उपदेश
से मांस, मदिरा एवं जीव-हिंसा का त्याग किया।

पंचों ने इकट्ठे होकर नीचे लिखे अनुसार व्यवस्था-पत्र लिखा—

१८४६ तारीख ५ माहे जून सन् १६२४ के दिन श्री १००८ श्री पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज ठाणे १० के उपदेश से हम सार्वजनिक पंच गण कबूल करते हैं कि हम कभी भी न तो जीव-हिंसा करेंगे, न मांस-भक्षण ही करेंगे। शराब को न तो घर लावेंगे, न पीएंगे। ऐसा हम सार्वजनिक पंचों ने महाराज साहब के सामने स्वीकार किया है। इसके विरुद्ध यदि कोई आदमी ये काम करेगा, तो उसे १५) रु० दण्ड दिया जावेगा। ऐसा ठहरा है।

इस ठहराव के अनुसार व्यवहार न करने वाले अर्थात् मदिरा मांस आदि का सेवन करने वाले की बात का यदि कोई मनुष्य अनुमोदन करेगा, तो वह भी दण्ड का भागी होगा। यह लेख हम सार्वजनिक पञ्चों ने राजी खुशी लिखा है। तारीख मजकूर

गांववालों के हस्ताक्षर तथा अंगूठे की निशानियां

यहां से विहार करके विभिन्न स्थानों पर विविध प्रकार का उपकार करते हुए आषाढ़ वदी नवमी को चौदह ठाणों के जलगांव पधारे। आषाढ़ वदी ११ को सुबह साढ़े नौ बजे पण्डित मुनि श्री घासीलालजी महाराज भी पधार गए। आषाढ़ वदी १० को महासतीजी श्रीरामकुंवरजी महाराज भी ठाणा ७ से पधार गईं। साधु और साध्वी मिलाकर कुल २४ ठाणों के विराजने से धर्म का ठाठ रहने लगा। पूज्यश्री तथा विद्वान् सन्तों के विराजने से धर्म का प्रद्योत होने लगा।

तेतीसवां चातुर्मास (सं० १६८१)

जलगांव के प्रसिद्ध सेठ लक्ष्मणदासजी श्रीश्रीमाल पूज्यश्री के अत्यन्त भक्त श्रावकों में से हैं। लम्बे अर्से से आपकी उत्कंठा थी कि पूज्यश्री जलगांव में पदार्पण करें और धर्म सेवा का सुअवसर प्राप्त हो। सेठजी की इच्छा इस बार फलवती हुई। पूज्यश्री जलगांव पधारे। संघ में अपूर्व उत्साह और आनन्द की लहर दौड़ गई। नर-नारियों ने बड़े ही चाव और भाव से पूज्यश्री का स्वागत किया।

पूज्यश्री ने ७ ठाणों से चातुर्मास किया। महासती श्रीराजकुंवरजी म० का चातुर्मास भी ठा० ७ से वहीं हुआ। व्याख्यान में जैन और जैनेतर श्रोताओं की बड़ी भीड़ रहने लगी। डाक्टर, वकील, शिक्षक आदि सभी श्रेणियों के संस्कारी व्यक्ति आपका उपदेश सुनने आते थे।

इस चातुर्मास में मुनि श्रीछगनलालजी महाराज ने तथा मुनि श्रीकेसरीमलजी म० ने इक्कीस-इक्कीस दिन की तपस्या की। मुनिश्री जिनदासजी ने तेले-तेले का पारणा तथा प्रतिदिन धूप में आतापना लेना आरम्भ किया। कुछ दिनों बाद आप पांच-पांच उपवासों के पश्चात् पारणा करने लगे। अन्य मुनियों ने भी फुटकर तपस्या की। तपस्या के प्रभाव से जनता भी धार्मिक कार्यों में खूब रस लेने लगी।

पूज्यश्री के दर्शनार्थ सेठ जमनालालजी बाजाज, आचार्य विनोबा भावे तथा सेठ पूनमचन्दजी रांका उपस्थित हुए। श्री विनोबा भावे से पूज्यश्री ने उपनिषदों के सम्बन्ध में वार्त्तालाप किया। तत्त्व-चर्चा का मधुर रस आस्वादन करने के लिए श्रीविनोबा तीन-चार दिन पूज्यश्री के साथ रहे।

पूज्यश्री जब चातुर्मास करने के निमित्त जलगांव पधारे थे तभी वहां के भगीरथ मिल में मिल-मालिक और मजदूरों ने आपका भाषण सुना था। उस समय पूज्यश्री ने मजदूरों की दुर्दशा का मार्मिक चित्र खींचते हुए मिल-मालिकों का कर्त्तव्य बतलाया था। आपने फरमाया था कि जो

मजदूर जनता को कपड़े देते हैं वही स्वयं नंगे फिरते हैं ! जिनकी कमाई से मिल-मालिक गुलछर्रे उड़ा रहे हैं। उनके बाल-बच्चों को भरपेट समुचित भोजन तक नहीं नसीब होता ! यह स्थिति कब तक कायम रह सकेगी ?

पूज्यश्री ने मदिरा-पान, तमाखू-सेवन आदि से होनेवाली भयंकर हानियों का दिग्दर्शन कराते हुए मजदूरों को भी उनके त्याग का सुन्दर उपदेश दिया था। तब से मजदूर भी समय पाकर पूज्यश्री के उपदेश सुनने आया करते थे।

रोग का आक्रमण

आषाढ़ की अमावस्या के आसपास पूज्यश्री की हथेली में अचानक दर्द होने लगा। दो-चार दिन बाद एक छोटी-सी फुन्सी निकल आई और पीड़ा बहुत बढ़ गई। पूज्यश्री ने तथा अन्य साधुओं ने उसे साधारण फुन्सी समझकर सोचा—पीव निकलने से वेदना शान्त हो जायगी और फुन्सी भी साफ हो जायगी। यह सोचकर मुनियों ने उसे चाकू से चीर दिया और पीव निकाल दी। मगर दो दिनों के बाद फुन्सी ने भयंकर रूप धारण कर लिया। फुन्सी की जगह एक भयंकर फोड़ा निकल आया। धीरे-धीरे कोहनी तक सारा हाथ सूझ गया। वेदना अधिक बढ़ गई।

चिकित्सा के लिए स्थानीय डाक्टर बुलाये गये। उन्होंने ऑपरेशन करके सारा मवाद निकाल दिया और घाव भरने के लिए पट्टी बांध दी। घाव जल्दी भरने के उद्देश्य से डाक्टरों ने पूज्यश्री को जलेबी जैसे तर पदार्थ सेवन करने का परामर्श दिया। इसका परिणाम विपरीत आया। कई बार ऑपरेशन किया गया और फोड़ा अधिकाधिक भयंकर रूप धारण करके निकलने लगा। मानो वह कोई भयानक दैत्य था जो काटने पर अधिक विकराल रूप में फिर खड़ा हो जाता था।

परिस्थिति इतनी भयंकर हो गई कि पूज्यश्री का जीवन भी खतरे में दिखाई देने लगा। पूज्यश्री को अपने शरीर की तो कोई चिन्ता नहीं थी और न जीवन का ही कोई मोह था; मगर संघ की चिन्ता उन्हें अवश्य हो गई। किसी योग्य उत्तराधिकारी के हाथ में श्रीसङ्घ का उत्तरदायित्व सौंपे बिना यह चिन्ता दूर नहीं हो सकती थी। पूज्यश्री ने अपने सम्प्रदाय के सन्तों पर दृष्टि दौड़ाई और उनका ध्यान पं० मुनिश्री गणेशीलालजी म० पर केन्द्रित हो गया। मुनिश्री विद्वान्, चरित्र-परायण और सुविनीत थे। सङ्घ का शासन-सूत्र आपके हाथों में सौंप देने का पूज्यश्री ने विचार किया।

समाज के प्रधान श्रावक, जो वहां मौजूद थे, उनसे विचार-विनिमय किया गया। सम्प्रदाय के अनेक सन्तों और श्रावकों से भी राय मंगाई और उन्होंने पूज्यश्री के विचार का समर्थन किया। इस प्रकार पूज्यश्री के चुनाव का सबने समर्थन किया। मगर मुनिश्री गणेशीलालजी म० को इस बात का अभी तक पता नहीं चला था।

अचानक सेठ वर्धमानजी सा० पीतलिया मुनिश्री के पास पहुंचे। उन्होंने कहा—महाराज! मैं आपसे एक निवेदन करने आया हूं। वह यह है कि पूज्यश्री का स्वास्थ्य इस समय ठीक नहीं है, यह तो आप जानते ही हैं। ऐसी स्थिति में आप पूज्यश्री को किसी प्रकार के पशोपेश में न डालें और पूज्यश्री आपको जो आज्ञा दें, उसे स्वीकार कर लें।

सेठजी की बात सुनकर मुनिश्री को आश्चर्य-सा हुआ। उन्होंने उत्तर दिया—मैंने कब पूज्यश्री की आज्ञा टाली है, जो आपको ऐसा कहने की आवश्यकता पड़ी ? मैं तो पूज्यश्री का एक तुच्छ सेवक रहा हूं और इसी रूप में रहना चाहता हूं।

सेठजी ने कहा—बस, ठीक है, आपसे हम सभी ऐसी ही आशा रखते हैं। आप पूज्यश्री की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करेंगे, यही समझकर तो पूज्यश्री आपको आज्ञा देंगे।

आखिर मुनिश्री, पूज्यश्री की सेवा में उपस्थित हुए। उनसे सम्प्रदाय का भार स्वीकार करने के लिए कहा गया। यह सुनकर मुनिश्री को पता चला कि पहले की समस्त आज्ञाओं से यह आज्ञा विलक्षण है और इसका पालन करना बड़ा ही कठिन है। मुनिश्री बड़े पशोपेश में पड़े। क्या करना चाहिए ? क्या मैं इस गुरुतर भार को उठाने में समर्थ हो सकूंगा ? मगर अस्वीकार करने का अर्थ पूज्यश्री को इस नाजुक अवस्था में ठेस पहुंचाना होगा ? स्वीकार करने के लिए जिस सामर्थ्य की आवश्यकता है, वह मैं अपने में नहीं पाता ! ऐसी स्थिति में मैं सङ्घ की सेवा कैसे कर सकूंगा ! इस प्रकार पशोपेश के पश्चात् आपने जब अपनी असमर्थता प्रकट की तो सेठ वर्धमानजी पीतलिया ने बनावटी रोष भरी आंखों से मुनिश्री की ओर देखा। उनकी दृष्टि में स्पष्ट संकेत था कि आज्ञाकारी और विनीत शिष्य होते हुए भी इस प्रसंग पर यह अस्वीकृति क्यों प्रकट कर रहे हैं ?

परिणाम यह हुआ कि मुनिश्री को विवश होकर वह भार स्वीकार करने की स्वीकृति देनी पड़ी।

सेठ पीतलियाजी ने मुनिश्री घासीलालजी म० को युवाचार्य पदवी का व्यवस्था-पत्र लिखने के लिए कहा। मगर उनके यह कहने पर कि मुझे लिखना नहीं आता, स्वयं सेठजी ने व्यवस्था-पत्र का ड्राफ्ट बना दिया और मुनिश्री घासीलालजी म० को उसकी नकल कर देने के लिए दे दिया। मुनिश्री घासीलालजी म० ने उसकी नकल की और वह पूज्यश्री ने अपने पास रख लिया।

श्रीसंघ पूज्यश्री की बीमारी से अत्यन्त चिन्तित हो उठा। आखिर बम्बई के प्रसिद्ध डाक्टर मुलगावकर को बुलाने का विचार किया गया। उनके बुलवाने का समाचार पाकर स्थानीय सर्जन ने पूज्यश्री के मूत्र की परीक्षा की और मधुमेह की बीमारी का निर्णय किया।

डाक्टर मुलगावकर ने रोग का इतिहास सुनकर भली-भांति परीक्षा की तो उन्होंने भी कहा कि पूज्यश्री को मधुमेह की भी शिकायत है। पौष्टिक और मिष्ट आहार के कारण वह घटने के बदले बढ़ गया था। फोड़े का मूल कारण भी यह मधुमेह ही था। डाक्टर ने एकदम ही अन्न बन्द करके सिर्फ छाछ पर रहने की सलाह दी। फोड़े का ऑपरेशन और साथ ही मधुमेह का इलाज आरम्भ हुआ। तबीयत में सुधार होने लगा। संवत्सरी के दिन पूज्यश्री में इतनी शक्ति आ गई कि वे व्याख्यान मण्डप में पधारे और करीब २० मिनट तक भाषण भी दे सके।

ऑपरेशन का दृश्य बड़ा ही हृदय-द्रावक था। ऑपरेशन देखनेवालों का हृदय कांप रहा था। मगर पूज्यश्री के चेहरे पर चिन्ता का कोई चिह्न तक नहीं था। उन्होंने बेहोशी के लिए क्लोरोफॉर्म नहीं सूंघा था। होश में रहते हुए ऑपरेशन करवाया। हथेली डाक्टर के सामने पसार दी। डाक्टर ने पहले तो चाकू से एक क्रोस-सा बनाया और फिर कैंची उठाकर हथेली की चमड़ी काट दी। पूज्यश्री के मुंह से उफ तक नहीं निकला। जान पड़ता था, शरीर की ममता त्यागकर

वे आत्म-लोक में रमण कर रहे हैं और आत्म-रमण की तल्लीनता में उन्हें अपने शरीर का भान ही नहीं है।

पूज्यश्री का यह अगाध धैर्य और असीम सहिष्णुता देखकर चकित हो जाना पड़ा। धन्य हैं ऐसे सहनशील महासन्त, जिन्होंने इस रुग्ण अवस्था में भी अपने आदर्श चरित द्वारा जनता को बोध पाठ दिया।

इस अवसर पर जलगांव के श्रीसङ्घ ने, सेठ लक्ष्मणदासजी श्रीश्रीमाल, सेठ सागरमलजी, प्रेमराजजी, जुगराजजी, किसनलालजी आदि और श्रीअमृतलाल रायचन्द झवेरी तथा भीनासर के सेठ बहादुरमलजी सा० बांठिया, सेठ वर्धमानजी पीतलिया, सेठ नथमलजी चोरड़िया आदि सज्जनों ने बहुत सेवा की।

पर्युषण पर्व के मौके पर पूज्यश्री के दर्शनार्थ खानदेश, बरार, मद्रास, मेवाड़, मालवा आदि विभिन्न प्रान्तों से लगभग छह हजार श्रावक जलगांव आये। सबके स्वागत की व्यवस्था श्रीसङ्घ के सहयोग से सेठ लक्ष्मणदासजी ने उत्साहपूर्वक की। जलगांव सङ्घ के अन्य श्रावकों ने भी अतिथियों का अच्छा सत्कार किया।

उसी अवसर पर घाटकोपर-जीवदया खाते की सहायता के लिए एक शिष्ट-मंडल आया। पूज्यश्री के स्वास्थ्य-लाभ का प्रमोद श्रीसङ्घ में काम हो रहा था, अतः तीन दिन के प्रयत्न से करीब बत्तीस हजार रुपया एकत्र हो गया।

उन्हीं दिनों गुजरात में बाढ़ आने के कारण भीषण तबाही हुई थी। श्रावकों ने बाढ़-पीड़ितों की सहायता के लिए भी लगभग तीस हजार रुपया प्रदानकर अपनी उदारता प्रदर्शित की।

लगभग इसी अवसर पर उदयपुर की जैन ज्ञान पाठशाला और ब्रह्मचर्याश्रम को करीब छह हजार की एक मुश्त सहायता और ९२६) रु० वार्षिक सहायता प्रदान की गई।

इस अवसर पर सेठ लक्ष्मणदासजी मूथा का उत्साह अतीव प्रशंसनीय था। उन्होंने अकेले ही करीब तीस हजार रुपया खर्च करके यह साबित कर दिखाया कि लक्ष्मी का स्वामी किस प्रकार अपने धन का सदुपयोग करता है। सेठ अमृतलाल रामचंद झवेरी और सेठ बहादुरमलजी बांठिया ने भी सराहनीय उत्साह प्रदर्शित किया। कई अन्य धर्म-प्रेमी श्रावक भी लम्बे अर्से तक पूज्यश्री की सेवा में रहे और धर्माराधन करके उन्होंने अपना जीवन सफल बनाया।

पूज्यश्री के स्वास्थ्य-लाभ के उपलक्ष में उदयपुर, रतलाम आदि विविध स्थानों में हर्षोत्सव मनाया गया और सार्वजनिक एवं आत्म-हित के अनेक कार्य हुए। जलगांव में इसी अवसर पर एक जैन बोर्डिंग की स्थापना की गई जो अब तक चल रही है।

चौमासा समाप्त होने पर भी दुर्बलता के कारण दो मास तक पूज्यश्री विहार न कर सके। मार्गशीर्ष कृष्णा पंचमी को आपके निकट द[illegible]तरा निवासी श्रीचुन्नीलालजी तानेड़ तथा बिनौली (मेरठ) निवासी श्रीवीरबलजी अग्रवाल ने दीक्षा ग्रहण की।

दीक्षा के अवसर पर प्रसिद्ध देश-सेवक सेठ जमनालालजी बजाज भी उपस्थित थे। आपने भाषण करते हुए कहा—भारतवर्ष के सद्भाग्य हैं कि म० गांधी जैसे महान् पुरुष यहां पैदा हुए। यदि भारतीय जनता इनके बताए मार्ग पर चले तो स्वराज्य प्राप्त करने में जरा भी देर न लगे; परन्तु भारत की जनता उनके बतलाये रास्ते पर नहीं चल रही है, यह हमारा दुर्भाग्य है। उसी

तरह जैन समाज का अहोभाग्य है कि पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज सा० जैसे आचार्य उन्हें प्राप्त हुए हैं। वे जो मार्ग बताएं उस पर जैन समाज चले तो थोड़े ही दिनों में वह अपना पूरा विकास व विस्तार कर सकती है। आपका बताया मार्ग एवं उपदेश हमें स्वतन्त्रता प्राप्त करने में सहायक है; परन्तु मैं देखता हूं कि जैन जनता आपके बताए हुए मार्ग पर नहीं चलती। यह उसका दुर्भाग्य है। इत्यादि।

कोलाड़ी-निवासी श्रीतिलोकचन्दजी जसरूपजी धोका ने दीक्षा के अवसर पर सात हजार रुपया घाटकोपर—जीवदया खाने को दान दिये और सात हजार दीक्षा के निमित्त लगाए।

चातुर्मास समाप्त होने पर बहुत-से साधुओं ने मालवा की ओर से पूज्यश्री के दर्शनार्थ जलगांव की ओर विहार किया।

प्रायश्चित्त

जैन शास्त्र प्रायश्चित्त से ज्ञान, दर्शन और चारित्र की विशुद्धि बतलाते हैं।...अन्य दर्शनकारों ने भी प्रायश्चित्त को स्वीकार किया है। सभी दार्शनिक पाप से की विशुद्धि के लिए कहते हैं और इस प्रकार सभी ने प्रायश्चित को अंगीकार किया है। जैनदर्शन कहता है—प्रायश्चित्त द्वारा पाप का विशोधन करो। पाप के सन्ताप से बचते रहने की इच्छा करना और पाप का त्याग न करना प्रायश्चित्त नहीं है। पाप के परिणाम से अर्थात् दंड से नहीं घबराना चाहिए वरन् पाप से डरना चाहिए।

साधु का मार्ग कितना कठोर है! संयम की मर्यादा के लिए कितना सावधान रहना पड़ता है! सच्चा साधु अपनी निर्मलता में लेश-मात्र भी धब्बा लगना सहन नहीं कर सकता। उसकी आत्मा मलीनता की आशंका मात्र से कराह उठती है! शारीरिक लाचारी की दशा में अगर संयम की किसी मर्यादा का उल्लंघन हो गया हो तो वह उसे छिपाने का प्रयत्न नहीं करता वरन् सर्वसाधारण के समक्ष अपनी वास्तविकता खोलकर रख देता है और इस प्रकार अपने अन्तःकरण को उज्ज्वल बनाता है। यह साधु की साधना है। स्वेच्छा-साधना ऐसी जीवित और जागृत होती है।

साधु अपनी सेवा गृहस्थ से नहीं कराता। मगर पूज्यश्री को लाचार होकर डाक्टरों की सहायता लेनी पड़ी। इस कारण जब डाक्टरों का उपचार चल रहा था तभी पूज्यश्री ने कहा—मेरे संयम में दोष लग गया है। अतः जब तक मैं प्रायश्चित्त लेकर शुद्धि न कर लूं तब तक मेरा आहार-पानी अलग रखो। सिर्फ एक साधु मेरी सेवा के लिए रहे। मगर सन्तों ने भक्ति-वश प्रार्थना की—हम आपसे अलग होना नहीं चाहते। यथा समय प्रायश्चित्त लेकर हम भी शुद्धि कर लेंगे।

रोग से मुक्त होने पर पूज्यश्री ने रुग्णावस्था में लगे हुए दोष का प्रायश्चित्त करना उचित समझा। अतः पौष कृष्णा १४ को व्याख्यान में चतुर्विध सङ्घ के सामने आपने आलोचना की और शास्त्रानुसार छः महीने का छेद-प्रायश्चित्त स्वीकार किया। अपनी सेवा में रहे सन्तों को भी चौमासी तप अर्थात् १२० उपवास का प्रायश्चित्त दिया गया।

उस समय भी पूज्यश्री में अन्न को पचाने की शक्ति नहीं आई थी। छाछ पर ही निर्वाह हो रहा था। अतः लम्बा विहार होना अशक्य था। फिर भी कुछ दिनों बाद थोड़ा-थोड़ा विहार

उद्यत थे। आप रुक गये और छोगी भी आ पहुंची मगर एकता का प्रयत्न सफल नहीं हुआ। अन्त में फाल्गुण की पूर्णिमा के दिन पूज्यश्री ने विहार किया। आप डेढ़ मील चले थे कि लालवाणीजी फिर आ पहुंचे। उन्होंने और रुकने की प्रार्थना की। पूज्यश्री फिर रुक गये मगर सफलता न हो सकी। सेठ राजीमलजी का प्रयत्न भी निष्फल हुआ। पूज्यश्री निराश होकर फिर विहार की तैयारी करने लगे। इतने में अलवर-निवासी श्रीउमरावसिंहजी की प्रेरणा से सेठ वर्धमानजी पीतलिया ने पुनः रुकने की प्रार्थना की। पूज्यश्री शान्ति के परम उपासक थे, अतः पीतलियाजी के आग्रह से फिर रुक गये।

दोनों आचार्य एकान्त में मिले। दोनों ने निम्न-लिखित एकता की शर्तें निश्चित कीं—

'आज मिति फाल्गुन सुदि पूर्णिमा संवत् १९८२ को रतलाम में पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी म० के सम्प्रदाय के दोनों पूज्य एकत्रित होकर नीचे लिखे अनुसार ठहराव करते हैं:—

(१) जो लिफाफे दोनों तरफ से एक-दूसरे को दिये गये थे वे दोनों अपनी-अपनी धर्म-प्रतिज्ञा से यह लिख देते हैं कि लिफाफों के लेखानुसार दोनों तरफ कोई दोष नहीं है।

(२) आज मिति पीछे दोनों पक्ष वाले मन काल सम्बन्धी किसी भी साधु का दोष प्रकाशित करेंगे तो वे दोष के भागी होंगे और चतुर्विध सङ्घ के अपराधी ठहरेंगे।

(३) आज पीछे दोनों पूज्य श्रीहुकमीचन्दजी महाराज के छठे पाट पर समझे जाएंगे।

(४) भविष्य में दोनों तरफ के सन्त परस्पर प्रेम-वत्सलता बढ़ावें।

(५) दोनों तरफ के सन्त परस्पर निंदा न करें। यदि किसी साधु या किसी को कसूर नजर आवे तो उस धनी को व उस गच्छ के अग्रेसर को सूचित कर देवें।

(दस्तखत दोनों पूज्यों के)

चैत्र कृष्णा प्रतिपद् को दोनों आचार्य रामबाग पधारे और दोनों अपने-अपने आसनों पर बराबरी से विराजमान हुए। एकता के इस सम्वाद को सुनकर जनता हर्ष के कारण उमड़ पड़ी। पूज्यश्री मुन्नालालजी महाराज ने मंगलाचरण करके पौन घंटा तक व्याख्यान दिया। फिर पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज का भाषण आरम्भ हुआ। रतलाम रियासत के दीवान श्रीब्रजमोहननाथ भी वहां उपस्थित थे। भाषण सुनकर वे अत्यन्त प्रसन्न हुए।

इसके बाद मुनि श्रीचौथमलजी म० ने पहले दिन का प्रस्ताव पढ़कर सुनाया। दोनों आचार्यों ने हस्ताक्षर करके उसकी एक-एक प्रति अपने पास रख ली। पूज्यश्री जवाहरलालजी म० ने अन्त में फरमाया—"साम्प्रदायिक एकता का द्वार आज खुल गया है। साधुओं को परस्पर में प्रेम बढ़ाने का मौका मिल गया है। यदि इसी प्रकार प्रेम की वृद्धि होती रही तो दोनों की एक सम्प्रदाय होते देर न लगेगी। हम सब को शान्ति तथा प्रेम की वृद्धि के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए।'

खेद है कि यह एकता लम्बे समय तक न टिक सकी।

प्रथम चैत्र कृष्णा ४ को पूज्यश्री जावरा पधार गये। उस समय ओसवाल पंचायत ने ८ ओसवालों को जाति बहिष्कृत कर रखा था। आपके सदुपदेश से समझौता हो गया और आठों व्यक्ति जाति में शरीक कर लिये गये। नवाब खानबहादुर साहबजादा शेर अलीखां साहब भी पूज्यश्री का व्याख्यान सुनने आये थे। उन्होंने भी जातीय समझौते के लिए प्रयत्न किया।

इसके सिवाय पर-स्त्री-सेवन, धूम्र-पान, विवाहादि अवसरों पर वेश्या-नृत्य, अश्लील गीतों का गाना, विधवाओं का भड़कीली पोशाक पहनना, आदि-आदि विषयों पर पूज्यश्री ने प्रभावशाली भाषण दिये। इससे जनता के विचारों और व्यवहार में पर्याप्त सुधार हुआ।

जावरा से विहार करके पूज्यश्री नगरी पधारे। यहां भटेवरा जाति में चार वर्षों से आपस में वैमनस्य फैला था और इस कारण कुछ गांवों में भी इसका प्रभाव पड़ा था। पूज्यश्री के उपदेश की वर्षा से सारा वैमनस्य धुल गया और लोगों के दिल साफ हो गए। रिंगणोद में आपके उपदेश से जनता ने गोशाला की स्थापना की और कन्या-विक्रय, जर्बी वाले वस्त्रों का उपयोग तथा अन्य कुरीतियों का त्याग किया।

वहां से आप निम्बोद, करजू, नन्दावता, करनाखेड़ी, आकोरड़ा, दलावदा, धुंधड़का होते हुए मन्दसौर पधारे। जगह-जगह गांव के ठाकुर और दूसरे लोगों ने हिंसा, मांस-मदिरा सेवन, चर्बी के वस्त्र आदि का त्याग किया। अनेक हितकर प्रतिज्ञाएं लीं।

मन्दसौर में आपके नौ व्याख्यान हुए। करजू वाले सेठ पन्नालालजी ने पांच हजार रुपया जीव-दया और विद्या-प्रचार के लिए दान किए।

मन्दसौर से आप नीमच पधारे। यहां भी कई व्याख्यान हुए। बहुतसे चमारों ने मदिरा-मांस तथा पशु-बलिदान आदि का त्याग यिया। मेहतरों ने भी आपके व्याख्यान से लाभ उठाया। अस्पृश्यता निवारण पर दिये हुए आपके व्याख्यान के कारण उच्च जाति वालों की अछूतों के प्रति घृणा कम हो गई। चमारों ने सबके पास बैठकर उपदेश सुना। जैनेतर जनता तथा अधिकारी वर्ग ने भी उपदेश का लाभ उठाया। इसी अवसर पर ब्यावर श्रीसङ्घ का प्रतिनिधि मण्डल चौमासे की प्रार्थना करने के लिए उपस्थित हुआ। पूज्यश्री ने सुख-समाधे ब्यावर गये बिना दूसरी जगह की चौमासे की प्रार्थना स्वीकार न करने का वचन दिया।

यहां से आप निम्बाहेड़ा, साटोला होते हुए और बिनौला से रुग्ण तपस्वी श्री उत्तमचन्दजी महाराज को साथ लेकर बड़ी सादड़ी पधारे। यहां समाज-सुधार, विद्या-प्रचार एवं जातीय प्रेम के अनेक कार्य हुए। एक पाठशाला की स्थापना हुई। बड़ी सादड़ी से जब आप कानौड़ पधारे तो वहां के रावतजी ने कृषकों को कई करों से मुक्त कर दिया। अनेक त्याग-प्रत्याख्यान हुए। कानौड़ से विहार करके पूज्यश्री उदयपुर पधारे।

उदयपुर में उपकार

वैशाख शुक्ला पूर्णिमा को पूज्यश्री २६ ठानों से उदयपुर पधारे। १३ वर्ष से केवल छाछ के आधार पर निर्वाह करने वाले तपस्वी मुनिश्री उत्तमचन्दजी महाराज भी आपके साथ थे। लोकोपयोगी विषयों पर पूज्यश्री के प्रभावशाली व्याख्यान हुए। बहुत से लोगों ने नीचे लिखे अनुसार त्याग पच्चखवाण किए।

(१) लोग परस्त्री को माता के समान समझने लगे और उसके सेवन का त्याग किया।

(२) छल-कपट आदि के द्वारा परद्रव्य-हरण का त्याग।

(३) गाय, भैंस, सूअर आदि की हिंसा के कारणभूत चरबी लगे वस्त्रों का त्याग।

(४) शिकार, मांस, मदिरा तथा जीव-हिंसा का त्याग। मुमताज नाम की एक वेश्या ने एक ही दिन के उपदेश से मांस व मदिरा का त्याग कर दिया।

(५) वेश्या-नृत्य, गन्दी गालियां गाना और मलीन वस्त्रों के पहनने का त्याग।

(६) विधवाओं द्वारा जेवर तथा भड़कीले वस्त्रों का पहनना और आपस में कदाग्रह करने के त्याग।

(७) बीड़ी, भांग, चाय, गांजा आदि मादक द्रव्यों का सेवन का त्याग। अधिक भोजन, मकानों की गन्दगी तथा दूसरी अस्वास्थ्य बातों का सेवन का त्याग।

(८) कसाइयों ने प्राणि-वध को कम करने तथा अगला आदि रखने का निश्चय किया।

(९) वर्त्तमान उदयपुर नरेश ने, जो उस समय युवराज थे, पूज्यश्री का व्याख्यान सुना और प्रजा-हित तथा जीव-दया के लिए विशेष ध्यान देने का वचन दिया। दो दिन तक अगना रखाया।

(१०) सार्वजनिक हित के लिए एक फण्ड कायम किया गया।

ज्येष्ठ शु० ४ को उदयपुर से विहार करके बेदला, धर्मशाला, गोगुंदा होते हुए ब्यावर पधारे।

पैंतीसवां चातुर्मास (१९८३)

पूज्यश्री का संवत् १९८३ का चौमासा १८ ठाणों से ब्यावर में हुआ। तपस्वी मुनि श्रीसुन्दरलालजी महाराज ने धोवन-पानी के आधार पर ७६ दिन की तपस्या की। तपस्वी मुनि केसरीमलजी महाराज ने ६६ दिन की तपस्या की। दोनों तपस्याओं के पूर पर अनेक धार्मिक उपकार हुए।

भाद्रपद शुक्ला षष्ठी को जयतारण-निवासी सुगालचंदजी मुकाणा ने २५ वर्ष की अवस्था में वैराग्य के साथ दीक्षा अंगीकार की। वैरागीजी ने चार हजार रुपया इसी अवसर पर शुभ कार्यों में लगाया। बलुंदानिवासी और बैंगलोर के प्रतिष्ठित व्यवसायी श्रीमान् सेठ गंगारामजी ने ब्यावर की पाठशाला के दस छात्रों को छात्र-वृत्ति के रूप में ३६००)रु० प्रदान किये।

ब्यावर के इस चौमासे में कुछ साम्प्रदायिक अभिनिवेश वाले लोगों ने अशान्ति फैलाने की चेष्टा की; किन्तु पूज्यश्री की असीम शान्ति के सागर में वह विलीन हो गई। ता० १ अगस्त को मौलाना मुहम्मद अली पूज्यश्री के दर्शन करने आये और उपदेश सुनकर बहुत प्रभावित हुए।

उन्हीं दिनों ता० ७ नवम्बर १९२६ के 'तरुण राजस्थान' के सम्पादक ने अपनी एक टिप्पणी में लिखा था—

आजकल नामधारी साधुओं की कमी नहीं है। इनकी संख्या इतनी अधिक है कि सच्चे साधु मिलना दुर्लभ-सा है। किन्तु साधु जवाहरलालजी ऐसे ही दुर्लभ साधुओं में हैं। आप जैनियों के मुख्य आचार्यों में गिने जाते हैं। उस दिन ब्यावर में हमें आपकी कथा सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। रहन-सहन और जीवन बिलकुल प्राचीन ढंग का होते हुए भी आपके विचार और शक्ति नवीन हैं। आप धर्म के प्राचीन सिद्धान्तों को देश, काल और पात्र के अनुकूल नए ढंग से इस प्रकार उपस्थित करते हैं कि श्रोताओं को अपने इस अर्वाचीन मार्ग पर चलने के लिए उत्तम मार्ग मिल जाता है। देश की आवश्यकताओं को आप खूब समझते हैं। खादी प्रचार और अछूतोद्धार पर आपका बहुत ध्यान है। (जीवन को सादा और सेवामय बनाने का आप अपने

अनुयायियों को बराबर उपदेश करते रहते हैं। सचमुच भारतवर्ष में यदि भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के आचार्य जवाहरलालजी महाराज का अनुकरण करें तो देश को बड़ा लाभ हो सकता है। हमारा अपने स्थानीय ओसवाल भाइयों से अनुरोध है कि इन सच्चे साधु को निमन्त्रण देकर उनके उपदेशों से लाभ उठावें।

चातुर्मास की समाप्ति पर विहार होने से पहले आर्यसमाज, ब्यावर, के उपप्रधान श्रीचांदमलजी मोदी ने नीचे लिखे उद्‌गार प्रकट किए—

पूज्यवर और अन्य महानुभावो !

समय बीतते देर नहीं लगती। आज पूज्य महाराज के चौमासे की अवधि समाप्त होती है, कल आपका विहार होगा।

इस अवसर पर मैं अपने हृदय के उद्‌गार पूज्य महाराज तथा आप लोगों के समक्ष प्रकट करना चाहता हूं।

मुझे पहले-पहल महाराज के व्याख्यान सुनने का सौभाग्य कुछ वर्ष पहले तब मिला था जब कि महाराज बीकानेर से पूज्य पदवी प्राप्त कर पधारे थे। उसी व्याख्यान से मेरी धर्म-चर्चा सुनने की रुचि हुई थी।

उसके पहले अंग्रेजी स्कूलों की शिक्षा के कारण मेरी धर्म-शास्त्र सुनने की रुचि नहीं थी, जैसे कि प्रायः स्कूल के लड़कों में नहीं होती है। मैं व्यावहारिक किताबों तथा अखबारों में ही सारी विद्वत्ता समझता था। लेकिन उस दिन का व्याख्यान सुनने से मेरी इच्छा धर्म के व्याख्यानों को सुनने की हो गई और उसके बाद मैंने रतलाम में भी पूज्य महाराज के व्याख्यान सुने। अन्य साधुओं का व्याख्यान सुनने और धर्म-शास्त्र पढ़ने की ओर भी रुचि हो गई।

इस लिए बहुत अर्से से अपने ऊपर पूज्यश्री का अतीव उपकार मानता हूं। इस चौमासे में भी मैंने आपके कई व्याख्यान सुने हैं। यदि कभी नहीं आया तो भी अपने काकाजी से व्याख्यानों के नोट सुन लिए हैं।

इस पर से यह कहने का साहस करता हूं कि महाराज ने हमेशा ऐसी रीति से व्याख्यान दिया है कि किसी अन्य मत की निन्दा न हो। आपके विचार सब मतों को समता में लाने के रहे हैं। ऐसी उदारता का प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि भिन्न-भिन्न मतावलम्बी महाराज श्री के पास बराबर आते हैं और मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करते हैं।

नोटिसों द्वारा जो थोड़ी गड़बड़ हुई है उसका ज्यादा विवेचन न करके मैं इतना ही कहूंगा कि यह हमारी अधूरी विद्या का परिणाम है, जिससे हम एक दूसरे के विचारों को नहीं सह सकते और उनके उपकारों को भूल जाते हैं।

महाराज की दूसरी विशेषता समाज-सुधार है। आपके व्याख्यान का अधिक भाग समाज सुधार की प्रेरणा करता है। आपने कई बार कहा है, सामाजिक सुधार के बिना आध्यात्मिक उन्नति पूर्ण नहीं हो सकती। आपने महाराज के व्याख्यानों में सामाजिक विषयों पर बहुत सुना होगा। बाल वृद्ध विवाह, विधवाओं की दशा, फिजूलखर्ची, गहने कपड़े, अछूतोद्धार इत्यादि विषयों पर धार्मिक दृष्टि से पूज्यश्री ने सुन्दर तथा असरकारक विवेचन किया है।

महाराज की तीसरी विशेषता जैन समाज के विचारों का सुधार करना है। धर्म को सम-

करने में जो गलत विचार फैले हुए हैं, उनका पूज्यश्री ने निर्भय होकर विरोध किया है। गोपाल आदि कार्यों को उच्च दृष्टि से देखने तथा जैन समाज में वीरता के भावों को फैलाने आदि क प्राचीन शास्त्रानुसार जोरदार समर्थन किया है और उन्हें अच्छी तरह सिद्ध किया है। महाराजज धार्मिक सुधारक, समाज सुधारक और जैन धर्म प्रचारक हैं।

ऐसे पूज्य महानुभावों का हमारे ब्यावर नगर में पधारना अत्यन्त सौभाग्य की बात है हम आशा करते हैं कि महाराज हमारे ऊपर विशेष कृपा करते हुए फिर भी दर्शन देंगे।

अन्त में मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूं कि वे महाराज को चिरायु करें जिससे जनसमा का आपके धर्मोपदेशों द्वारा विशेष कल्याण हो।

चातुर्मास समाप्त होने पर पूज्यश्री बावरा, जेठाणा, तबीजी आदि स्थानों में धर्मोपदे देते हुए अजमेर पधारे।

अजमेर में श्रीयुत जालिमसिंह जी कोठारी पूज्यश्री के दर्शनार्थ आये। वे आर्यसमाज के एक उत्साही कार्यकर्त्ता थे। पूज्यश्री का उपदेश सुनकर अत्यन्त प्रभावित हुए। एक दिन उन्हों कहा—'मैं समझता था कि जैनधर्म में कार्यकर्त्ता के लिए स्थान नहीं है। वह केवल निषेध सिख लाता है-यह मत करो, वह मत करो। इस प्रकार वह मनुष्य को प्रत्येक प्रवृत्ति से अलग हटात जाता है। समाज सेवा या लोक सेवा के लिए उसमें स्थान नहीं है। मेरा जीवन आरंभ से ह प्रवृत्तिमय रहा है। अकर्मण्य होकर बैठना मुझे पसंद नहीं है। एकान्त निवृत्तिमार्ग मेरी रु के प्रतिकूल है। आपके (पूज्यश्री के) व्याख्यानों से मैं मानने लगा हूं कि जैनधर्म में सम्य प्रवृत्ति के लिए भी बहुत बड़ा क्षेत्र है। वह सार्वजनिक कार्यों का विरोध नहीं करता। मुझे जैन धर्म का यह स्वरूप पहले सुनने को मिला होता तो सम्प्रदाय-परिवर्त्तन करने की कोई आवश्यकत ही न रहती।

व्याख्यान में इस प्रकार के उद्‌गार प्रकट करने के बाद वे कई बार दूसरे समय में भ पूज्यश्री की सेवा में उपस्थित हुए और अपनी शंकाओं का समुचित समाधान पाकर मुनिश्री के भक्त बन गये। उनका परिवार अब जैनधर्म का अनुयायी है।

जालिमसिंहजी जन्मतः जैन थे और फिर आर्यसमाज की ओर उनकी रुचि हो गई थी। उनकी यह घटना जैन समाज के लिए विशेष महत्त्व रखती है। जैनधर्म का वास्तविक स्वरूप समझाने वाले योग्य उपदेशकों की कमी के कारण पता नहीं कितने जैनी अन्य धर्मी बन गये हैं!

वाणी का प्रभाव

साधु की चर्या बड़ी कठिन है। निर्दोष संयम का पालन करते हुए किसी मुनि का सब जगह विहार कर सकना संभव नहीं है। नंगे पैर, नंगे सिर, पैदल विहार, बयालीस दोष टाल कर आहार-पानी लेना, समिति-गुप्ति आदि का पालन आदि ऐसे नियम हैं जिनकी सब जगह रक्षा होना कठिन है। फिर भी कुछ मुनि ऐसे स्थानों में भी कभी-कभी विचरते हैं और परीषहों को सहन करने में आनन्द मानते हैं, मगर प्रथम तो विद्वान् साधुओं की ही अत्यन्त कमी है और उनमें भी अपरिचित क्षेत्रों में विचरने वाले इनेगिने हैं। परिणाम यह है कि बहुत-से क्षेत्र ऐसे रह जाते हैं जहां धर्म की चर्चा ही कभी नहीं हो पाती। समाज में सुयोग्य विद्वान्,

श्रद्धाशील गृहस्थ उपदेशक हों तो वे जगह-जगह घूमकर धर्म-प्रचार कर सकते हैं और जैनों को विधर्मी होने से बचा सकते हैं।

विद्यमान धर्मोपदेशकों को भी इस घटना पर ध्यान देने की आवश्यकता है। जैनधर्म का मार्मिक स्वरूप समझ कर उसे जनता के समक्ष रखने की इस युग में बड़ी आवश्यकता है। ऐसा किये बिना धर्म की प्रभावना की विशेष आशा कैसे की जा सकती है ?

पौष कृष्ण १२ को आपश्री ने अजमेर से विहार किया। किसनगढ़ होते हुए जयपुर पधारे। जयपुर छोटी काशी माना जाता है। संस्कृत तथा अंगरेजी शिक्षा का अच्छा केन्द्र है। यहां पूज्यश्री के उपदेश में बड़े-बड़े विद्वान आने लगे और उपदेश से प्रभावित होकर सभी मुक्त कंठ से प्रशंसा करने लगे। उस समय 'जैनजगत्' के संपादक ने लिखा था—

"साधु लोग यदि विद्वान्, लोकस्थिति को जानने वाले और धर्म के वास्तविक सिद्धान्तों को प्रकट करने वाले हों तो उनके उपदेश का कैसा बढ़िया असर होता है, इसका एक ज्वलन्त उदाहरण गत ता० २४ फरवरी १६३७ को जयपुर में देखा गया, जब कि श्वेताम्बर बाईस टोला पंथ के पूज्य आचार्य श्रीजवाहरलालजी महाराज का एक सार्वजनिक व्याख्यान हुआ। साधुजी महाराज ने करीब तीन घंटे तक व्याख्यान दिया और बीड़ी, सिगरेट, भांग आदि मादक द्रव्य, वेश्यागमन, परस्त्री सेवन, कन्याविक्रय, वृद्ध विवाह आदि का विशेष, अछूतोद्धार, गोरक्षा व हिन्दूसंगठन पर ऐसा प्रभावशाली व्याख्यान दिया कि श्रोता गद्गद् हो गए।

व्याख्यान में बहुसंख्यक अजैन, प्रतिष्ठित सज्जन व विद्वान् लोग उपस्थित थे। सभी ने मुक्तकंठ से आपके उपदेश की प्रणाली की प्रशंसा की। आपके व्याख्यान की खास खूबी यह थी कि उसमें संकीर्णता की तनिक भी बू न थी। किसी भी मत वाले को कड़वी लगे ऐसी कोई बात न होती थी। व्याख्यान के अंत में बीसियों अजैनों ने आपके चरण छुए, जिनमें रायबहादुर डाक्टर दलजनसिंहजी खानका, चीफ मेडिकल आफिसर जयपुर का नाम विशेष उल्लेखनीय है। वास्तव में अगर उच्च चारित्र के साथ विद्वत्ता हो तो ऐसी आत्माओं के उपदेश का असर बहुत होता है। आज जैन समाज में विद्वान् साधुओं का बहुत बड़ा अभाव है और यह इस धर्म की बड़ी भारी कमी है।"

जयपुर समाज-सुधारक मंडल की ओर से पूज्यश्री के दो जाहिर व्याख्यान हुए। हजारों की संख्या में जनता ने लाभ उठाया। बाल विवाह, वृद्ध विवाह, वेश्यानृत्य, अश्लील गीत तथा रात्रि भोजन आदि बुराइयों को बंद करने के लिए लोगों ने हस्ताक्षर कर दिये। गोचरभूमि की व्यवस्था तथा दूध देनेवाले पशुओं को बचाने के लिए पिंजरापोल-कमेटी की स्थापना हुई।

इस अवसर पर पंजाब-सम्प्रदाय के युवाचार्य श्रीकाशीरामजी महाराज ने पूज्यश्री से पंजाब पधारने का अनुरोध किया था। अलवर, देहली, तथा दूसरे श्रीसंघों की भी प्रार्थना थी। जयपुर-श्रीसंघ चौमासे के लिए प्रबल आग्रह कर रहा था किंतु पूज्यश्री बीकानेर श्रीसंघ को आश्वासन दे चुके थे। अतः आपने बीकानेर की ओर विहार किया।

जयपुर नगर के बाहर पधारते ही जलगांव से तार द्वारा सूचना मिली कि तपस्वीराज मुनि श्रीमोतीलालजी महाराज ने, जिनका परिचय पहले दिया जा चुका है, अधिक बीमारी के कारण संथारा कर लिया है। पूज्यश्री वहीं ठहर गए। थोड़ी देर बाद स्वर्गवास का समाचार

आ गया। पूज्यश्री ने बड़े ही करुणोत्पादक शब्दों में तपस्वीजी की जीवनी सुनाई। श्रोताओं की आंखों से अश्रुधारा बहने लगी। उस समय जीवदया के लिए ६०००) रु० का चंदा हुआ। बहुत से व्यक्तियों ने अपनी-अपनी ओर से कसाइयों के शिकार होने वाले पशुओं के प्राण बचाने का निश्चय किया।

विदा के समय एक साहित्यरत्न पंडितजी ने नीचे लिखे उद्गार प्रकट किये—

यो जैनागमतत्त्वविद् भव महा सन्तापहारी गिरा,
नित्यं पूरयते दयारसमलं नो मानवानां हृदि।
पीत्वा यस्य वचः सुधां किलजना मुञ्चन्ति दोषान् खिलान्।
स श्रीयुक्त जवाहरो विजयतामाचार्य वर्यश्चिरम् ॥

मनहर छन्द

जय जवाहरलाल मुनि हम, धन्य कहते आपको।
आपने उपदेश से, सचमुच हटाया ताप को ॥
कोमल मधुर रचनावली, पीयूष-सी गुणवान है।
.. ..
धर्म की रक्षार्थ तन मन दे रहे स्वच्छन्द हो।
क्या पुरुष हो या दया के मूर्तिधर निर्द्वन्द्व हो ॥
आपसे इस जयपुरी ने उच्च गौरव पा लिया।
जो समाज-सुधार हित, सत संग कुछ तुम से किया ॥
लोग जयपुर के तुम्हें सब, धन्य ही कहते रहे।
पर प्रभो इस की सुआशा, के लिए गुण बह रहे ॥?॥
जो यहां से आज इतने, शीघ्र आप पधारते।
इस नगर पर और कुछ भी आप करुणा धारते ॥
तो सुसंभव था कि जयपुर कुछ सुधार दिखायगा।
दुर्जनों की वंचना से फिर न धोखा खायगा ॥
इसलिए है प्रार्थना, कृपया इसे उर धारिए।
आप चातुर्मास में जयपुर समोद पधारिए ॥
बस दया के सिन्धु हरि की जो कृपा इस पर रही।
तो जवाहर निज जवाहर फिर दिखावेंगे यहीं।

जयपुर से विहार करके बगुरु, दूदू, मकराणा, बडू रूपनगढ़, भादवा आदि छोटे बड़े गावों में धर्म-प्रचार करते हुए पूज्यश्री १२ ठाने से कुचेरा पधारे। बडू में सरावगी, ओसवाल, माहेश्वरी और अग्रवालों में वैमनस्य चल रहा था वह आपके उपदेश से दूर हो गया। मार्ग में प्रायः सभी ठाकुरों ने पूज्यश्री का हार्दिक स्वागत किया। कई ठाकुरों ने मांसाहार, मदिरा आदि का त्याग किया। रूपनगढ़ के ठाकुर साहब ने पूज्यश्री के प्रति खूब भक्ति-भाव प्रकट किया। आप अपने लवाजमे के साथ पूज्यश्री के स्वागत के लिए सामने आये पूज्यश्री की सेवा करके अच्छा लाभ लिया।

कुचेरे से विहार करके नागौर, नोखा, सूरपुरा, देशनोक, उदरामसर आदि स्थानों को पवित्र करते हुए जेठ शु० ५ को पूज्यश्री बीकानेर पधारे।

छत्तीसवां चातुर्मास (१९८४)

कुछ दिन बीकानेर विराज कर पूज्यश्री भीनासर पधार गए और ठा० १२ से सम्बत् १९८४ का चौमासा भीनासर में किया।

भीनासर का यह चौमासा बीकानेर के इतिहास में बड़ा महत्त्व रखता है। पूज्यश्री के व्याख्यानों का तथा तपस्वी मुनियों की तपस्या का जैन एवं जैनेतर जनता पर गहरा प्रभाव पड़ा। उसी अवसर पर श्वे० स्थानकवासी जैन कान्फ्रेंस का आठवां अधिवेशन तथा भारत जैन महामण्डल का वार्षिक अधिवेशन होने से सोने में सुगन्ध होगई।

इस चातुर्मास में सन्तों और सतियों ने निम्नलिखित तपस्या की:—

(१) तपस्वी मुनिश्री सुन्दरलालजी महाराज ६० दिन
(२) ,, श्री केसरीमलजी महाराज ९५ दिन
(३) ,, श्री बालचन्दजी महाराज २५ दिन
(४) ,, महासती श्रीगुरसुन्दरजी ४० दिन
(५) ,, श्रीचम्पाजी ३६ दिन

इनके अतिरिक्त मासखमण तथा उसके भीतर की बहुत-सी तपस्याएं हुईं। एक गृहस्थ महिला (भीनासर निवासी श्रीमान् धनराजजी पटवा की धर्मपत्नी) ने एक मास की (मासखमण की) तपस्या की। मुनिश्री सुन्दरलालजी महाराज की तपस्या का पूर भाद्रपद शुक्ला १४ को था और तपस्वी श्रीकेसरीमलजी म० की तपस्या का पूर आश्विन शुक्ला १२ रविवार को था। उस दिन राज्य की ओर से अगता रखा गया। कान्फरेंस के अधिवेशन के कारण हजारों व्यक्ति बाहर से आये। इन महातपस्वी मुनियों का दर्शन करके वे अपने को धन्य समझने लगे।

पूज्यश्री के व्याख्यान का मुख्य विषय श्रावक के १२ व्रत, अस्पृश्यतानिवारण, बाल-वृद्ध-विवाह, मृत्युभोज आदि कुरीतियों का निवारण, चर्बी वाले वस्त्रों एवं अन्य महारम्भी वस्तुओं का निषेध, ब्रह्मचर्य आदि होते थे, जिनसे व्यक्ति का जीवन उन्नत हो, समाज एवं राष्ट्र का कल्याण हो और इस प्रकार विश्व-कल्याण साधा जा सके।

एक बार आपका व्याख्यान सुनने के लिए लगभग तीन सौ अछूत आए। व्याख्यान में उन्हें सब के साथ बैठने को स्थान दिया गया। पूज्य महाराज ने उस दिन मांसाहार और मदिरापान की बुराइयों का विस्तार पूर्वक वर्णन किया। इनसे होने वाली आध्यात्मिक नैतिक, सामाजिक और राष्ट्रीय हानियों का मार्मिक विवेचन किया। परिणामस्वरूप बहुत से अछूतों ने मदिरा और मांस का त्याग करके अपना जीवन उन्नत बनाया।

कालेज तथा स्कूलों के विद्यार्थी, राज्य कर्मचारी, राजवंशीय एवं इतर सज्जन बड़ी रुचि के साथ आपका उपदेश सुनने आते थे। बीकानेर से भीनासर यद्यपि तीन मील दूर है तथापि बहुत से धर्मप्रेमी जैनेतर भाई भी प्रतिदिन उपदेश सुनने आते थे। एक बार पूज्यश्री का उपदेश बीकानेर नोबिल स्कूल (राजकुमार-विद्यालय) के विद्यार्थियों के समक्ष विशेषतः ब्रह्मचर्य पर ही

हुआ। उपदेश अत्यन्त प्रभावशाली और मार्मिक था। उसका श्रोताओं पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा। आपने कहा—

'आजकल ब्रह्मचर्य शब्द का सर्वसाधारण में कुछ संकुचित-सा अर्थ समझा जाता है; पर विचार करने से मालूम होता है कि वास्तव में उसका अर्थ बहुत विस्तृत है। ब्रह्मचर्य का अर्थ बहुत उदार है अतएव उसकी महिमा भी बहुत अधिक है। हम ब्रह्मचर्य का महिमागान नहीं कर सकते। जो विस्तृत अर्थ को लक्ष्य में रखकर ब्रह्मचारी बना है उसे अखण्ड ब्रह्मचारी कहते हैं। अखंड ब्रह्मचारी का मिलना इस काल में अत्यन्त कठिन है। आजकल तो अखंड ब्रह्मचारी के दर्शन भी दुर्लभ हैं। अखंड ब्रह्मचारी में अद्भुत शक्ति होती है। वह चाहे सो कर सकता है। अखंड ब्रह्मचारी अकेला सारे ब्रह्माण्ड को हिला सकता है। अखंड ब्रह्मचारी वह है जिसने अपनी समस्त इन्द्रियों को और मन को अपने अधीन बना लिया हो जो इन्द्रियों और मन पर पूर्ण आधिपत्य रखता हो। इन्द्रियां जिसे फुसला नहीं सकतीं, मन जिसे विचलित नहीं कर सकता। ऐसा अखंड ब्रह्मचारी ब्रह्म का शीघ्र साक्षात्कार कर सकता है। अखंड ब्रह्मचारी की शक्ति अजब-गजब की होती है।

..........अपूर्ण ब्रह्मचर्य केवल वीर्यरक्षा को कहते हैं। वीर्य वह वस्तु है जिसके सहारे सारा शरीर टिका हुआ है। यह शरीर वीर्य से बना भी है। अतएव आंखें वीर्य हैं, कान वीर्य हैं, नासिका वीर्य है, हाथ-पैर वीर्य हैं—सारा शरीर वीर्य है। जिस वीर्य से सारे शरीर का निर्माण होता है उसकी शक्ति क्या साधारण कही जा सकती है? किसी ने ठीक ही कहा है—

मरणं विन्दुपातेन जीवनं विन्दुधारणात्।

अर्थात् वीर्य के आधार पर ही जीवन टिका है। वीर्यनाश का फल मृत्यु है।

जो वीर्य रूपी राजा को अपने काबू में कर लेता है वह सारे संसार पर अपना दावा रख सकता है। उसके मुख-मंडल पर विचित्र तेज चमकता है। उसके नेत्रों से अद्भुत ज्योति टपकती है। उसमें एक प्रकार की अनोखी क्षमता होती है। वह प्रसन्न, नीरोग और प्रमोदमय जीवन का धनी होता है। उसके इस धन के सामने चांदी-सोने के टुकड़े किसी गिनती में नहीं हैं।

...जिस वीर्य के प्रताप से तुम्हारे पूर्वजों ने विश्व भर में अपनी कीर्त्ति-कौमुदी फैलाई थी, उस वीर्य का तुम अपमान करोगे?

वीर्य का अपमान न करने से मेरा आशय यह नहीं है कि आप विवाह ही न करें। मैं गृहस्थ धर्म का निषेध नहीं करता। गृहस्थ को अपनी पत्नी के साथ मर्यादा के अनुसार ही रहना चाहिए। वीर्य का अपमान करने का अर्थ है—गृहस्थ-धर्म की मर्यादा का उल्लंघन करके पर-स्त्री के मोह में पड़ना, वेश्यागामी होना अथवा अप्राकृतिक कुचेष्टाएँ करके वीर्य का नाश करना। भीष्म पितामह ने आजीवन ब्रह्मचर्य पाला था। आप उनका अनुकरण करके जीवनपर्यन्त ब्रह्मचर्य पालें तो खुशी की बात है। अगर आपसे यह नहीं हो सकता तो विधिपूर्वक लग्न करने की मनाई नहीं है। पर विवाहिता पत्नी के साथ भी सन्तानोत्पत्ति के सिवाय—वीर्य का नाश नहीं करना चाहिए। स्त्रियों को भी यह चाहिए कि वे अपने मोहक हाव-भाव से पति को विलासी बनाने का प्रयत्न न करें। जो स्त्री सन्तानोत्पत्ति की इच्छा के सिवाय केवल विलास के लिए अपने पति को विलास में फंसाती है वह स्त्री नहीं पिशाचिनी है। वह अपने पति के जीवन को चूसने वाली है।

ऐ भीष्म की सन्तानो ! भीष्म ने आजीवन ब्रह्मचर्य पालन करके दुनिया के कानों में ब्रह्मचर्य का पावन मंत्र फूंका था। आज उन्हीं की संतान कहलाते हुए उन्हीं के मंत्र को तुम क्यों भूल रहे हो ?

...... ब्रह्मचर्य पालने वालों को अथवा जो ब्रह्मचर्य पालना चाहते हैं उन्हें विलास पूर्ण वस्त्रों से, आभूषणों से तथा आहार से सदैव बचना चाहिए। मस्तिष्क में कुविचारों का अंकुर उत्पन्न करने वाले साहित्य को हाथ भी नहीं लगाना चाहिए। ......

पूज्यश्री का यह भाषण सुनकर अनेक श्रोताओं ने ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा ग्रहण की।

चर्बी लगे वस्त्रों को पूज्यश्री धार्मिक, सामाजिक और राष्ट्रीय दृष्टि से अत्यन्त हेय समझते थे। जो श्रावक कीड़ों-मकोड़ों की दया पालते हैं उनके लिए ऐसे वस्त्र पहनना कहां तक शोभा दे सकता है ? गो को माता मानने वाले हिन्दुओं के लिए तो गोवध कराने वाले वस्त्रों का स्पर्श करना भी अनुचित है। इन सब विषयों पर पूज्यश्री यदा-कदा विवेचन करते ही रहते थे। एक दिन विशेष रूप से इसी विषय पर आपका उपदेश हुआ और अनेक श्रोताओं ने चर्बी के वस्त्रों का त्याग करके खादी के अतिरिक्त अन्य वस्त्र न पहनने की प्रतिज्ञा ली। उसी दिन सेठ अमृतलाल रामचंद झवेरी ने तार देकर पांच सौ रुपया की खादी बम्बई से मंगवाई। वह आते ही बिक गई।

श्री श्वे० साधुमार्गी जैन हित कारिणी संस्था की स्थापना

खादी की इस उपयोगिता के साथ-साथ पूज्यश्री ने विधवाओं की दुर्दशा का भी रोमांचकारी वर्णन किया। श्रोताओं के हृदय सहानुभूति से भर गए। उसी समय बीकानेर तथा भीनासर के प्रमुख व्यक्तियोंकी एक सभा हुई और पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज के स्वर्गवास के अवसर पर गुरुकुल खोलने के लिए चंदे के जो वचन प्राप्त हुए थे उन्हें सहायता, शिक्षा-प्रचार तथा खादी-प्रचार के कार्यों में लगाने का निश्चय किया। इस कार्य के लिए विजयदशमी को 'श्री श्वे०साधुमार्गी जैन हितकारिणी संस्था' के नाम से एक सभा की स्थापना हुई। इसके प्रथम सभापति श्रीमान् सेठ भैरोंदान जी सेठिया और मन्त्री श्रीमान् कुंवर जेठमलजी सेठिया निर्वाचित हुए। इसके पश्चात् इसके सभापति श्रीमान् सेठ मगनमलजी सा० कोठारी हुए।

विचारों को कार्यरूप में परिणत करने के लिए जिन-जिन सज्जनों ने वचन दिया था, सब से रुपया दे देने की प्रार्थना की गई। अभी तक जिसने जितना रुपया देने का वचन दिया था, उसी के यहां वह जमा था। उस बात को आठ वर्ष बीत गए थे।

अब उन विचारों को कार्य में परिणत करने का अवसर आया। तब कितने ही सज्जनों ने अपने वचन के अनुसार रुपये दे दिये किन्तु कुछेक सज्जनों ने अपनी पूर्ववत् स्थिति रहते हुए भी रुपये नहीं दिये और कितने ही सज्जनों ने तो अपनी आगे वाली स्थिति न रहने की भावना की प्रबलता के कारण अपने वचनानुसार संस्था को रुपये दे दिये। परिणाम स्वरूप सवा दो लाख के वचनों में से एक लाख से कुछ अधिक रकम जमा हुई। उससे श्रीमान् मदनमलजीसा बोठिया के हाथ से 'हुन्नर शाला' का उद्घाटन हुआ। इसके अवैतनिक मैनेजर के रूप में श्रीमान् सूरजमलजी लोठा ने काम किया। इस संस्था के द्वारा विधवा बहिनें तथा दूसरे भाई सूत कातकर, कपड़ा बुनकर अथवा दूसरे किसी प्रकार का कार्य करके अपना भरण-पोषण करते थे। जो बहिनें

परदा या किसी दूसरे कारण से संस्था भवन में कार्य करने नहीं आ सकती थी उन्हें घर पर ही चरखा दे दिया गया था और ऊन पहुंचा दी जाती थी। कुछ दिनों में संस्था का कार्य अच्छा चलने लगा। ऊनी आसन, वस्त्र तथा दूसरी वस्तुओं के निर्माण के साथ-साथ बहुत-सी असमर्थ बहिनों तथा भाइयों को सहायता मिलने लगी।

आजकल इस संस्था द्वारा गांवों में शिक्षा-प्रचार तथा सहायता-कार्य चल रहा है। नोखा मण्डी, नोखा गांव, उदासर, भज्जू तथा सारुंडा में इसकी तरफ से पाठशालाएं चल रही हैं। रासीसर में भी एक पाठशाला आठ वर्ष तक चली। वहां तेरापंथियों की अधिक आबादी है। उन्होंने अपनी तरफ से पाठशाला खोलने का निश्चय किया। हितकारिणी संस्था का उद्देश्य किसी भी सम्प्रदाय के संघर्ष में खड़ा होने का नहीं है। जब उसने देखा कि एक दूसरा समाज शिक्षाप्रसार के कार्य को अपने हाथ में ले रहा है तो वहां की पाठशाला बन्द कर दी गई और सारुण्डे में एक पाठशाला खोल दी गई। यह स्थान नोखामण्डी से २४ मील है। आस-पास में कोई स्कूल नहीं है। सबसे नजदीक का स्टेशन नोखा ही है। इसी प्रकार संस्था आवश्यक स्थानों में शिक्षा का प्रचार कर रही है।

सहायता विभाग के द्वारा कुछ असमर्थ बहिनों तथा भाइयों को सहायता दी जाती है।

उपरोक्त कार्यों में संस्था के मूलधन का व्याज ही खर्च किया जाता है। एक लाख में से सत्तर हजार का व्याज शिक्षा-प्रचार में और शेष सहायता-कार्य में किया जाता है। समय-समय पर अन्य उपयोगी कार्य भी यह संस्था करती है। प्रस्तुत जीवन चरित्र तथा पूज्यश्री के अन्य साहित्य के प्रकाशन के निमित्त संस्था ने १२ हजार व्यय करना निश्चित किया है। संस्था का कार्य स्थायी और ठोस है।

विधवा बहिनें और सादगी

जीवन में जब कृत्रिमता आती है तो जीवन का वास्तविक अभ्युदय रुक जाता है। मगर जिसे संयममय जीवन विताना हो उसके लिए तो सादगी धारण करना और कृत्रिमता से बचना अनिवार्य है। पूज्यश्री अपने उपदेश में सर्वसाधारण को और विशेषतः विधवा बहिनों को सादे रहन-सहन की शिक्षा दिया करते थे। भड़कीले और रंगीन वस्त्र पहनना, जेवर पहनना या बारीक वस्त्रों का उपयोग करना ब्रह्मचारिणी के लिए शोभास्पद नहीं है। ब्रह्मचारी पुरुष या स्त्री को पवित्र श्वेत वस्त्रों के अतिरिक्त बहुरंगी वस्त्र पहनना शोभा नहीं देता। पूज्यश्री इस विषय में प्रभावशाली प्रवचन किया करते थे। विधवाओं के प्रति किये जाने वाले दुर्व्यवहार को आप भयानक समझते थे और सद्व्यवहार करने की शिक्षा दिया करते थे। भीनासर के एक उपदेश के आपके शब्द कितने सबल हैं—

'आपके घर में विधवा बहिनें शील—देवियां हैं। इनका आदर करो। इन्हें पूज्य मानो। इन्हें खोटे दुखदायी शब्द मत कहो। यह शीलदेवियां पवित्र हैं, पावन हैं। मंगलरूप हैं। इसके शकुन अच्छे हैं। शील की मूर्ति क्या कभी अमंगलमयी हो सकती है?'

समाज की मूर्खता ने कुशीलवती को मंगलवती को अमंगला मान लिया है। यह कैसी भ्रष्ट बुद्धि है।

याद रखो, अगर समय रहते न चेते और विधवाओं की मानरक्षा न की, उनका निरन्तर अपमान करते रहे, उन्हें ठुकराते रहे तो शीघ्र ही अधर्म फूट पड़ेगा। आपका आदर्श धूल में मिल जायगा और आपको संसार के सामने नतमस्तक होना पड़ेगा।

बहिनो ! शील आपका महान् धर्म है। जिन्होंने शील का पालन किया वे प्रातः स्मरणीय बन गईं। आप धर्म का पालन करेंगी तो साक्षात् मंगलमूर्ति बन जाएंगी।

बहिनो ! स्मरण रक्खो—तुम सती हो, सदाचारिणी हो, पवित्रता की प्रतिमा हो। तुम्हारे विचार उदार और उन्नत होने चाहिए। तुम्हारी दृष्टि पतन की ओर कभी नहीं जानी चाहिए। बहिनो ! हिम्मत करो। धैर्य धारण करो। सच्ची धर्मचारिणी बहिन में कायरता नहीं हो सकती। धर्म जिसका अमोघ कवच है उसमें कायरता कैसी ?'

बीकानेर का महिला समाज अशिक्षित और पिछड़ा हुआ माना जाता है। उसमें कुरीतियों का साम्राज्य है और पुराने विचारों से वह प्रभावित है। अगर कोई महिला अपने रूढ़ रहन-सहन में किसी प्रकार का परिवर्तन करके आदर्श की ओर कदम बढ़ाए तो उसे सत्कार नहीं तिरस्कार का पुरस्कार मिलता है। ऐसी स्थिति में पूज्यश्री के उपदेशों को अमल में लाना किसी महिला के लिए बड़े साहस का काम था। फिर भी कुछ साहसी विधवा महिलाएं निकल आईं और उन्होंने तितली की तरह रंग-बिरंगे वस्त्रों का तथा जेवरों का त्याग करके बिना चर्बी के श्वेत वस्त्रों को ही धारण करने का निश्चय किया।

अ. भा. स्थानकवासी जैन कांफ्रेंस के अधिवेशन में उन बहिनों को धन्यवाद देने का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ और दूसरों को उनके अनुकरण की प्रेरणा की गई।

कान्फ्रेंस का अधिवेशन

भीनासर—चातुर्मास की एक विशेष घटना अखिल भारतीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कांफ्रेंस का आठवां अधिवेशन होना है। कान्फ्रेंस के साथ ही भारत जैन महामण्डल का भी अधिवेशन था। दोनों के अध्यक्ष श्रीवाड़ीलाल मोतीलाल शाह थे। व्यापार प्रधान जैनसमाज में सभापतित्व का गौरव प्रायः श्रीमानों को प्राप्त होता है; मगर कान्फ्रेंस के इतिहास में यह पहली घटना थी कि केवल विद्वान् होने के कारण किसी व्यक्ति को सभापति चुना गया था। इस कारण शिक्षितवर्ग में और नवयुवकों में अपूर्व उत्साह था।

पूज्यश्री ने अपने ओजस्वी उपदेशों द्वारा समाज की अनेक कुरूढ़ियों की जड़ हिला दी थी। अंधकार में लोगों को प्रकाश की किरण दृष्टिगोचर होने लगी थी। आपने सामाजिक जीवन को ऊंचा उठाने के लिए जनता में साहस भर दिया था। क्षेत्र तैयार हो चुका था। इसी बीच कान्फ्रेंस का अधिवेशन हुआ। लोगों को ऐसा प्रतीत होने लगा मानों समाज में नवीन सूर्योदय का समय आ गया है। प्रातःकाल पूज्यश्री का उपदेश होता था। उनके उपदेशों में जोश, जीवन और जागृति का संदेश रहता। वे उपदेश असीम स्फूर्ति, साहस और उत्साह का संचार करते। पूज्यश्री के प्राणप्रेरक प्रवचन प्रगति की प्रेरणा करते। मध्याह्न में कांफ्रेंस का अधिवेशन होता और पूज्यश्री द्वारा प्रदर्शित पथ प्रायः प्रस्तावों का रूप धारण कर लेता था।

वाड़ीलाल भाई अधिवेशन से कुछ दिन पहले पूज्यश्री से समाजहित के संबन्ध में विचार-विमर्श करने के उद्देश्य से आ गये थे और अधिवेशन के कुछ दिन बाद तक पूज्यश्री की सेवा

में रहे। आपने जैन साहित्य की उन्नति के लिए दस लाख की अपील की थी। बीकानेर के उत्साही उदार श्रीमानों ने दो लाख रुपया देने का वचन दिया था।

पूज्यश्री के उन दिनों के व्याख्यानों के विषय में ३० अक्टूबर १६२७ के 'जैनप्रकाश' में इस प्रकार लिखा गया था—

यह व्याख्यान आदर्श तथा व्यवहार का सुन्दर तथा स्वाभाविक समन्वय करते हैं। विश्व-हित की भावना से ओतप्रोत हैं। उन्हें नियमित रूप से लिखने के लिए एक पंडित रखा गया है। सब व्याख्यान जिस समय पुस्तक के रूप में बाहर निकलेंगे, उस समय जैनधर्म की व्यावहारिकता तथा व्यापकता समझने के लिए जनता को सामग्री मिल जायगी। संघ, कान्फ्रेंस तथा व्यक्ति की आन्तरिक दशाओं का चित्र खींचने में तथा उनके स्वाभाविक तथा सुधार का पथप्रदर्शन करने में आपकी आश्चर्यजनक शक्ति है। व्यक्तित्व के साथ-साथ देश तथा धर्म का अभिमान विकसित करते की एक विशेषता होती है। बाह्य तथा आन्तर दृष्टि से पूज्यश्री बहुत-सी बातों का एक साथ स्पर्श कर सकते हैं। आपके मस्तिष्क में पृथक्करण और समन्वय की क्रियाएं एक साथ चलती रहती हैं। उनकी भाषा संस्कारी होने पर भी सादी है। उनके चेहरे पर आत्मगौरव तथा करुणा का सुन्दर सम्मिश्रण है। उनके व्याख्यान में सूक्ष्म रूप से देखने पर भी कहीं कृत्रिमता नहीं दिखाई देती। वर्त्तमान समस्त जैन समाज में धर्मज्ञान का इतना सुन्दर उपयोग करने की कला धारण करने वालों में आपका स्थान सर्वश्रेष्ठ है।

प्रमुख साहेब (श्री० वाड़ीलाल शाह) ने संवत्सरी, साधुवर्ग की एकता, जैन सीरीज आदि विषयों पर परामर्श करने के लिए आपसे विशेष वार्तालाप किया।"

यह पहले ही कहा जा चुका है पूज्यश्री का हृदय यद्यपि विशाल था और विभिन्न धर्मों का समन्वय करने में वे अत्यन्त कुशल थे, तथापि दया-दान जैसे धर्म के अत्यावश्यक अंगों को एकान्त पाप की कोटि में गिने जाते देखकर उनके हृदय को बड़ी चोट पहुंचती थी। मनुष्य निर्दय और स्वार्थी बन जाय और धर्म उसकी निर्दयता और स्वार्थ का समर्थन करे तो संसार की क्या स्थिति हो? ऐसा संसार नरक से क्या अच्छा होगा? फिर भी जो भाई इस भयंकर मान्यता के चक्कर में पड़कर स्व—पर का घोर अहित कर रहे हैं उन पर पूज्यश्री को अत्यन्त दया थी। दयाभाव से प्रेरित होकर आपने दया-दान आदि का समर्थन करने के लिए 'सद्धर्ममण्डन' नामक ग्रंथ इसी चौमासे में लिखना आरंभ किया। पूज्यश्री मध्याह्न में एक से चार बजे तक 'सद्धर्ममण्डन' का कार्य करते थे। मुनि श्रीगणेशीलालजी महाराज तथा श्री जिनदासजी म० लिखते और पूज्यश्री बोलते थे। इसी बीच इस संबंध के प्रश्नोत्तर भी होते थे।

इस प्रकार भीनासर का यह चातुर्मास न केवल आसपास वालों के लिए वरन् समस्त स्था० जैन समाज के लिए विशेष तौर पर लाभदायक सिद्ध हुआ। पूज्यश्री यह स्मरणीय चातुर्मास समाप्त होने पर बीकानेर पधारे और वहां अठारह दिन विराजे। जैन-जैनेतर जनता ने खूब लाभ उठाया।

पूज्यश्री और सर मनुभाई मेहता

पूज्यश्री का व्यक्तित्व तो उच्च था ही, उनकी विद्वत्ता उससे भी उच्चतर श्रेणी की थी। शास्त्रों का उनका ज्ञान शब्दस्पर्शी नहीं मर्मस्पर्शी था। अत्यन्त गहराई में उतरकर उन्होंने धर्म-

तत्त्व की पर्यालोचना की थी। इसी कारण उन्हें धर्म के व्यापक स्वरूप की उपलब्धि हुई थी। मगर धर्मतत्त्व को उपलब्ध कर लेने पर भी साधारण विद्वान् उसे अपने व्यवहार में नहीं ला पाता, जब कि पूज्यश्री ने उसे अपने जीवन व्यवहार में भी पूरी तरह उतारा था। वे उस श्रेणी के महात्मा थे, जिनके विषय में कहा है—

धर्मे स्वीयमनुष्ठानं कस्यचित्तु महात्मनः।

अर्थात्—'पर-उपदेश-कुशल बहुतेरे' होते हैं पर धर्म के अनुसार आचरण करनेवाले महात्मा भाग्य से विरले ही मिलते हैं।

इन्हीं सब कारणों से पूज्यश्री का प्रभाव एक सम्प्रदाय तक सीमित न रहकर बहुत व्यापक हो गया था। महात्मा गांधी, लोकमान्य तिलक, पण्डित मदनमोहन मालवीय, सरदार पटेल, जैसी भारत की विभूतियों के साथ आप परिचय में आये और उनपर अपनी विशिष्ट छाप भी अंकित करने में समर्थ हो सके थे।

यों तो भारत विख्यात अनेक राजनीतिज्ञों के साथ आपका परिचय हुआ और यत्र-तत्र उसका उल्लेख भी किया गया है और आगे किया जायगा मगर उनमें सर मनुभाई मेहता का स्थान विशेषता रखता है। सर मेहता भारत के यशस्वी प्रधान मंत्रियों में से एक हैं। पहले आप बड़ौदा रियासत के प्रधानमंत्री थे और फिर बीकानेर रियासत के प्रधानमंत्री होकर आये। बीकानेर में जब पूज्यश्री पधारे तो अनेक बार आप व्याख्यान में सम्मिलित हुए। आप पूज्यश्री के उपदेश से इतने प्रभावित हुए कि कई बार अपने समस्त परिवार के साथ बीकानेर और भीनासर उपदेश सुनने आये। आप पूज्यश्री के विशिष्ट अनुरागी हो गये।

एक बार सर मनुभाई की उपस्थिति में पूज्यश्री ने बाल-विवाह और वृद्ध विवाह के विरुद्ध बड़ा ही प्रभावशाली भाषण दिया[1]। सर मेहता पर उसका इतना प्रभाव पड़ा कि थोड़े ही दिनों बाद आपने बाल-वृद्ध-विवाह निषेध बिल बीकानेर-असेम्बली में उपस्थित किया। उस पर भाषण करते हुए आपने पूज्यश्री के उपदेश का भी उल्लेख किया। बिल असेम्बली में स्वीकृत होकर कानून बन गया।

लन्दन में होनेवाली पहली गोलमेज कॉन्फ्रेंस में सम्मिलित होने के लिए सर मनुभाई मेहता जब विलायत जाने लगे तब आप पूज्यश्री के दर्शनार्थ आये। उस समय पूज्यश्री ने उन्हें जो उपदेश दिया था, उससे पूज्यश्री के स्पष्ट वक्तृत्व एवं राष्ट्रहित की भावना का भली-भांति पता चलता है। आपके कथन का संक्षिप्त सार ही यहां दिया जाता है:—

आज मेरा और सर मनुभाई मेहता का यह मिलन एक महत्त्वपूर्ण अवसर पर हो रहा है। सर मेहता विलायत का प्रवास करने वाले हैं। आपका यह प्रवास अपने किसी निजी प्रयोजन या बीकानेर सरकार के किसी कार्य के लिए नहीं है। आज जो विकट समस्या केवल भारत में ही नहीं, सारे संसार में व्याप्त हो रही है, उसे सुलझाने में सहयोग देने के लिए आप जा रहे हैं। दूसरे शब्दों में, भारत के भाग्य का निपटारा करने जा रहे हैं।

इस अवसर पर मैं अकिंचन अनगार उन्हें जो भेंट दे सकता हूं, वह उपदेश ही है। साधुओं पर भी राजा का उपचार है। साधु-जीवन की रक्षा के लिए जो पांच वस्तुएं सहायक

१—व्याख्यान देखो, तीसरी किरणावली।

मानी गई हैं, उनमें तीसरा सहायक राजा है। राजा द्वारा धर्म की रक्षा होती है। राजा द्वारा राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की रक्षा होती है। प्रजा में शान्ति, सुव्यवस्था और अमन चैन रहने पर ही धर्म की आराधना की जा सकती है। जहां परतन्त्रता है, जहां अराजकता है, जहां परतन्त्रता के कारण हाहाकार मचा होता है, वहां धर्म को कौन पूछता है ?

सर मेहता की यह चौथी अवस्था संन्यास के योग्य है। एक कर्मयोगी संन्यासी का जो कर्त्तव्य है, आप वही कर रहे हैं। इसी के लिए आप विलायत जा रहे हैं। धर्म की रक्षा करने का आपको यह अपूर्व अवसर मिला है।

सर मनुभाई यद्यपि अनभिज्ञ नहीं हैं, फिर भी मैं इस अवसर पर खासतौर से स्मरण करा देना चाहता हूं कि धर्म को लक्ष्य बनाकर जो निर्णय किया जाता है, वही निर्णय जगत् के लिए आशीर्वाद रूप हो सकता है। धर्म की व्याख्या ही यह है कि वह मंगलमय कल्याणकारी हो। 'धम्मो मंगल मुक्किट्ठं।' अर्थात् जो उत्कृष्ट मंगलकारी है, वही धर्म है।

कोई यह न सोचे कि धर्म का सम्बन्ध केवल व्यक्ति से है। राउण्ड टेबल कांफ्रेंस में, जिसके लिए मेहताजी जा रहे हैं, धर्म का प्रश्न ही क्या है ? मैं अपले ही कह चुका हूं कि गुलाम और अत्याचार पीड़ित प्रजा में वास्तविक धर्म का विकास नहीं हो सकता। धार्मिक विकास के लिए स्वातन्त्र्य अनिवार्य है, और इसी समस्या का समाधान करने के लिए लन्दन में कांफ्रेंस की जा रही है।

श्रेष्ठ पुरुष अपने उत्तरदायित्व का भली-भांति ध्यान रखते हैं और गंभीर सोच-विचार करके, धर्म और नीति को सामने रखकर ऐसा निर्णय करते हैं, जिससे सबका कल्याण हो। ऐसा निर्णय ही सर्वमान्य होता है। जन कल्याण के लिए नीति-मर्यादा का विधान करने वालों को अगर 'विधाता' या 'मनु' का पद दिया जाय तो इसमें अनौचित्य ही क्या है?

सर मनुभाई स्वयं विवेकशील हैं, बुद्धिमान् हैं फिर भी हम परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि इन्हें ऐसी सद्‌बुद्धि प्राप्त हो जिससे वे सत्य के पथ पर डटे रहें। नाजुक से नाजुक प्रसंग उपस्थित होने पर भी वे सत्य से इंच मात्र भी विचलित न हों। सत्य एक ईश्वरीय शक्ति है जो विजयिनी हुए बिना नहीं रह सकती। चाहे सारा संसार उलट-पलट जाय, मगर सत्य अटल रहेगा। सत्य को कोई बदल नहीं सकता। प्रत्येक मनुष्य की जीवन लीला एक दिन समाप्त हो जायगी, ऐश्वर्य बिखर जायगा, परन्तु सत्य की सेवा के लिए किया गया उत्सर्ग अमर रहेगा। सत्य पर अटल रहने वालों का वैभव स्थायी रहेगा।

साधु के नाते मैं सर मनुभाई को यही उपदेश देना चाहता हूं कि दूसरे के असत्यमय विचारों के प्रभाव से दूर रह कर शुद्ध मस्तिष्क से सत्य विचार करना। चाहे विश्व की समस्त शक्तियां संगठित होकर विरोध में खड़ी हों तब भी सत्य को न छोड़ना। किसी के असत्य विचारों की परछाईं अपने ऊपर न पड़ने देना। शास्त्रानुसार और अपने अन्तरतर के संकेत के अनुसार जो सत्य है, उसी को विजयी बनाना। सत्य की विजय में ही सच्चा कल्याण है।

कार्य करने के लिए व्यक्ति कानून कायदे तथा बहुमत आदि का आश्रय लेता है। किन्तु यह सब परतन्त्रता है। प्रत्येक व्यक्ति ईश्वर का पुत्र है। प्रत्येक में बुद्धि है और उसकी जागृति भी है। जिसने सांसारिक लोभ में पड़कर उस पर परदा डाल दिया है उसकी बौद्धिक

शक्ति अवश्य छिप गई है। किन्तु जिसने अपनी बुद्धि से स्वार्थ का परदा हटा दिया है, वह तुच्छ से तुच्छ आत्मा भी महान बन गया है। इसी निःस्वार्थ विचार शक्ति के प्रभाव से वाल्मीकि और प्रभव चोर महर्षि के पद पर पहुंच गए। स्वार्थ के किवाड़ लगाकर विचार-शक्ति को रोक देना उचित नहीं है। अपनी बुद्धि को, विचार-शक्ति को सब प्रकार के विकारों से दूर रखकर जो निर्णय किया जाता है, वही उत्तम होता है।

जीवन व्यवहार के साधारण कार्य, जैसे खाना, पीना, चलना-फिरना आदि ज्ञानी भी करते हैं और अज्ञानी भी करते हैं। कार्यों में इस प्रकार समानता होनेपर भी बड़ा भेद है। अज्ञानी पुरुष अज्ञानपूर्वक, बिना किसी विशेष उद्देश्य के काम करता है। ज्ञानीपुरुष छोटे-से-छोटा और बड़े-से-बड़ा व्यवहार गम्भीर ध्येय से, निष्काम भावना से, वासना हीन होकर यज्ञ के लिए करता है। शास्त्रकारों ने यज्ञ के लिए काम करना पाप नहीं माना है। किन्तु प्रश्न यह है कि वास्तविक यज्ञ किसे कहना चाहिए। इसके लिए गीता में कहा है—

द्रव्ययज्ञा स्तपोयज्ञा, योगयज्ञास्तथाऽपरे।
स्वाध्याय ज्ञान यज्ञाश्च, यतयः संशित व्रतः॥ अ० ४० श्लोक २

यज्ञ अनेक प्रकार के होते हैं। किसी को द्रव्ययज्ञ करना है तो धन पर से अपनी सत्ता उठाले और कहे 'इदं न मम।' अर्थात् यह मेरा नहीं है। बस यज्ञ हो गया।

संसार में जो गड़बड़ी मची हुई है, उसका मूल कारण संग्रह बुद्धि है। संग्रह बुद्धि से संग्रहशीलता उत्पन्न हुई और संग्रहशीलता ने समाज में वैषम्य का विष पैदा कर दिया। इस वैषम्य ने आज समाज की शांति का सर्वनाश कर दिया है। इस विषमता को दूर करने का एक सफल उपाय है—यज्ञ करना। अगर आप लोग अपने द्रव्य का यज्ञ कर डालें, 'इदं न मम' कहकर उसका उत्सर्ग कर दें तो सारी गड़बड़ आज ही शान्ति हो जायगी।

द्रव्ययज्ञ के पश्चात् तपोयज्ञ आता है। तप करना उतना कठिन नहीं है, जितना तप का यज्ञ करना कठिन है। बहुत से लोग तप करते हैं किन्तु उनकी अमुक फल प्राप्त करने की आकांक्षा बनी रहती है। किसी प्रकार की आकांक्षा वाला तप एक प्रकार का सौदा बन जाता है। वह तप रूप नहीं रहता। तप करके उससे फल की कामना न करे और 'इदं न मम' कहकर उसका यज्ञ कर दे तो तप अधिक फलदायक होता है।

मैं सर मनुभाई मेहता को सम्मति देता हूं कि वे प्रधान मंत्री के अधिकारों का यज्ञ कर दें।

मेरा तात्पर्य यह है कि अगर सच्चे कल्याण की चाहना है तो सब वस्तुओं पर से अपना ममत्व हटा लें। 'यह मेरा है' इस बुद्धि से ही पाप की उत्पत्ति होती है। इस दुर्बुद्धि के कारण ही लोग ईश्वर का अस्तित्त्व भूले हुए हैं। 'इदं न मम' कह कर अपने सर्वस्व का यज्ञ कर देने से अहंकार का विलय हो जाएगा। और आत्मा में अपूर्व आभा का उदय होगा।

वे योगी, जो यज्ञ नहीं करते उपहास के पात्र बनते हैं। योगियो! अपना किया हुआ स्वाध्याय, प्राप्त किया हुआ विविध भाषाओं का ज्ञान, आचरित तप आदि समस्त अनुष्ठान ईश्वर को समर्पित कर दो। अगर तुमने सभी कुछ ईश्वर को अर्पित कर दिया तो तुम्हारे सिर का बोझ हलका हो जायगा। कामनाएं तुम्हें सता न सकेंगी। बुद्धि गंभीर होगी। अपना कुछ

मत रखो। किसी वस्तु को अपनी बनाई नहीं कि पाप ने आकर घेरा नहीं।)

भाइयो ! आप सब लोग भी हृदय में ऐसी भावना लाइए कि सर मनुभाई मेहता को ऐसी शक्ति प्राप्त हो जिससे वे इंग्लैंड जाकर गोलमेज कान्फ्रेंस में अपूर्व साहस का परिचय दें। मेरी हार्दिक भावना है कि सब प्राणी कल्याण के भाजन बनें।

सर मनुभाई मेहता का पूज्यश्री पर कितना अनुराग था, यह बात उनके द्वारा पूज्यश्री के प्रति अर्पित की गई श्रद्धाञ्जलि से भी स्पष्ट हो जाती है।

पूज्यश्री जब दया-दान का प्रचार करने के लिए थली की ओर प्रस्थान करने लगे तब रियासत के प्रधानमंत्री की हैसियत से आपने राजकर्मचारियों को कुछ आवश्यक आदेश भेज दिये थे। वे इस आदेश प्रकार थे—

(१) पूज्यश्री के व्याख्यान में कोई गड़बड़ी न डालने पावे।

(२) प्रश्नोत्तर के समय किसी प्रकार की असभ्यता न होने पावे।

(३) पूज्यश्री के धर्म-प्रचार में किसी प्रकार की बाधा न आने पावे।

इन आदेशों के अनुसार प्रत्येक तहसील में पूज्यश्री के पधारने से पहले ही स्थानीय राज्याधिकारी यह घोषणा कर देते थे कि बाईस टोलों के पूज्यश्री पधार रहे हैं। उनके प्रति कोई किसी प्रकार की गड़बड़ न करे, नहीं तो बाजाब्ता कार्रवाई की जायगी।

इस राजकीय आदेश के कारण पूज्यश्री शान्ति के साथ थली में दया और दान का प्रचार करने में समर्थ हो सके। इसका विवरण पाठक अगले पृष्ठों में पढ़ सकेंगे।

मालवीयजी का आगमन

जिन दिनों पूज्यश्री थली की ओर प्रस्थान करने वाले थे, उन्हीं दिनों पं० मदनमोहन मालवीय हिन्दू विश्वविद्यालय के सिलसिले में बीकानेर पधारे। पण्डितजी, पूज्यश्री के विषय में पहले ही सुन चुके थे। अतः आप पूज्यश्री के व्याख्यान में पधारे। पूज्यश्री ने समयोचित भाषण देते हुए फर्माया कि पुराण के अनुसार गोवर्धन पर्वत तो कृष्णजी ने उठाया ही था मगर दूसरे ग्वालों ने भी अपना सहयोग प्रदर्शित करने के लिए लाठियां तान ली थीं। इसी प्रकार मालवीयजी ने भारतीय संस्कृति की रक्षा और उन्नति के हेतु हिन्दू-विश्वविद्यालय रूपी गोवर्धन पर्वत का भार अपने कन्धों पर उठाया है तो श्रीमानों को भी उसमें यथोचित सहकार प्रकट करना चाहिए। पूज्यश्री का यह भाषण काफी विस्तृत और महत्त्वपूर्ण हुआ था, मगर खेद है कि वह लिखा हुआ न होने के कारण यहां नहीं दिया जा सका।

अन्त में मालवीयजी बोले। आपने पूज्यश्री के प्रभावशाली भाषण की मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हुए पूज्यश्री के प्रति हार्दिक सद्भाव प्रकट किया।

थली की ओर प्रस्थान

पिछले प्रकरणों से पाठक भली-भांति जान गये होंगे कि पूज्यश्री अनेक बार तेरापंथी भाइयों के सम्पर्क में आये थे। उन्होंने उनकी निराली और धर्म से असङ्गत मान्यताओं में सुधार करने के लिए यथासम्भव प्रयत्न भी किया था। बालोतरा और जयतारण में शास्त्रार्थ करके तथा व्याख्यानों में उपदेश देकर उन्हें सन्मार्ग पर लाने का प्रयत्न किया था। जब आप भीनासर में विराजमान थे, बहुत से तेरापन्थी भाई शङ्का-समाधान करने आते थे। पूज्यश्री उनकी अंधश्रद्धा देखकर

चकित रह जाते थे। भाव-रोग से पीड़ित इन भाइयों पर उन्हें करुणा आती थी। पूज्यश्री का नवनीत के समान कोमल हृदय दया-दान के विरोधी भाइयों की अज्ञानता देखकर द्रवित होगया। उन्होंने इनके उद्धार का विचार किया। मगर यह उद्धार-कार्य सरल नहीं था। उसके लिए अनेक कष्ट सहन करके प्रबल प्रयत्न करने की आवश्यकता थी। सर्वसाधारण जनता को धर्म का मर्म समझाना आवश्यक था।

थली तेरापंथियों की रंगस्थली है। वह उनका दुर्भेद्य दुर्ग है। पूज्यश्री बखूबी जानते थे कि इस किले में प्रवेश करने पर विविध कठिनाइयां झेलनी पड़ेंगी। फिर भी जन-कल्याण की कामना से प्रेरित होकर उन्होंने थली में प्रवेश करना निश्चित कर लिया।

एक बार भगवान् महावीर ने अनार्य क्षेत्र में विहार किया था। विश्व-कल्याण की भावना वाले महापुरुष अपने सुख-दुःख की चिन्ता छोड़कर पर सुख के लिए ही प्रयास करते हैं। थली यद्यपि अनार्य देश नहीं है तथापि वहां के बहुत-से मनुष्य दया, दान, परोपकार और परसेवा आदि सिद्धान्तों को अधर्म मानते हैं। पूज्यश्री इन बहुमूल्य गुणों का बहिष्कार करने वाले धर्म और धरा का कलंक धो डालना चाहते थे। थली के कुछ धर्मप्रेमी भाइयों का भी आग्रह था। सरदारशहर के सेठ खूबचंदजी चंडालिया, तनसुखदासजी दूगड़ तथा चूरू के सेठ मूलचंदजी कोठारी आदि ने भीनासर आकर पूज्यश्री से थली में पधारने की प्रार्थना की थी। इन कारणों से पूज्यश्री ने थली की ओर पधारने का निश्चय कर लिया।

मार्गशीर्ष शुक्ला तृतीया संवत् १९८४ को पूज्यश्री ने पं० मुनिश्री घासीलालजी, पं० मुनि श्रीगणेशीलालजी आदि २९ संतों के साथ थली की ओर प्रस्थान कर दिया। उदासर, गाढवाला, नापासर, सीथल, बेलासर, तेजरासर, नाहरसीसर, देरासर, ढुलचासर, सूदसर, बेनीसर, भोजासर, हेमासर आदि होकर आप डूंगरगढ़ पधारे। डूंगरगढ़ में चार व्याख्यान हुए। तहसीलदार आदि राज्यकर्मचारी भी व्याख्यान सुनने आये। पूज्यश्री रायबहादुर सेठ आशारामजी भंवर की बगीची में उतरे थे। सेठ आशारामजी जाति के माहेश्वरी हैं। बड़े उदारचित्त और धर्मनिष्ठ व्यक्ति हैं। आपने अत्यन्त तन्मयता के साथ पूज्यश्री की भक्ति की। 'यस्य देवस्य गन्तव्यं स देवो गृहमागतः' अर्थात् जिस देव के पास चलकर जाना चाहिए वह स्वयं घर आ पहुंचा! ऐसा समझकर भंवरजी ने पूज्यश्री की सेवा का अच्छा लाभ लिया। पूज्यश्री ने तेला की तपस्या करके डूंगरपुर में पदार्पण किया था। वहां पहुंचने पर आपका पारणा हुआ। चार दिन डूंगरगढ़ विराज कर आप सरदारशहर की ओर अग्रसर हुए।

पूज्यश्री की इस विहारयात्रा की कठिनाइयों की कल्पना उन्हें नहीं हो सकती जिन्होंने कभी इस रेगिस्तान के दर्शन नहीं किये हैं। चारों ओर असीम फैली हुई बालुकाराशि शीतकाल के प्रातःकाल में ओलों की तरह ठंडी पड़ जाती है। कभी मध्यम और कभी प्रबल वेग से बहने वाली वायु के ठंडे-ठंडे झोंके सीधे कलेजे तक पहुंचकर प्राणों को भी स्पंदनहीन बनाने के लिए यत्नशील रहते हैं। मार्ग में कोई वृक्ष नहीं जिसकी आड़ में पथिक क्षण भर संतोष की सांस ले सके। सर्वत्र अप्रतिहत वायु और अपरिमित बालुकापुंज उस मरुभूमि के पथिक का स्वागत करते हैं।

मध्याह्न में मरुभूमि मानों अपना रूप पलट लेती है। सूर्य की अनावृत धूप के स्पर्श से

वालुका उत्तप्त हो जाती है और अपना सारा उत्ताप पथिक के पैरों में भर देना चाहती है। पथिक अगर पूज्यश्री की भांति नंगे पैर हुआ तो फिर कहना ही क्या है! खुले सिर पर ऊपर आसमान से बरसने वाला सूर्य का प्रचंड संताप और नीचे भाड़ की भांति जलती हुई वालुका! दोनों ओर का यह दुस्सह संताप पथिक की प्राण-परीक्षा लेता है!

ऐसे विकराल पथ पर तीव्र स्वार्थसाधना के लिए चलने वाले तो बहुत मिल सकते हैं मगर शुद्ध परमार्थ-बुद्धि से विचरण करनेवाले महात्मा पूज्यश्री सरीखे विरले ही होंगे। पूज्यश्री प्रातःकाल के शीत को अपने तप की अग्नि से निवारण करते हुए और मध्याह्न के घोर संताप को हृदय के करुणाभाव रूपी शीतल निर्झर से दूर करते हुए मरुभूमि में अग्रसर होते गये। पूज्यश्री जिन जीवों का उद्धार करने के हेतु यह सब सहन करते हुए विहार कर रहे थे, उनकी ओर से पद-पद पर अनेक प्रकार की असुविधाएं उत्पन्न की जाती थीं। आहार-पानी एवं स्थान आदि की सब असुविधाएं पूज्यश्री के लिए तुच्छ थीं। दया-दान के विरोधी लोगों का विपरीत व्यवहार देखकर पूज्यश्री का हृदय दया से अधिकाधिक द्रवित होता जाता था। अज्ञानी जीव की बाल दशा ज्ञानी पुरुष के विषाद का कारण बन जाती है। ज्ञानी पुरुष उनकी बालदशा देखकर ही उनके उद्गार का संकल्प करते हैं। अतएव पूज्यश्री के पथ में ज्यों-ज्यों बाधाएं उपस्थित की गईं त्यों-त्यों उनका संकल्प दृढ़ से दृढ़तर होता गया!

दया-दान का प्रचार करने और दया-दान के विरोधियों को सन्मार्ग पर लाने के सुदृढ़ संकल्प के साथ विचरते हुए पूज्यश्री सरदारशहर पधारे।

सरदार शहर तेरापंथियों का सबसे बड़ा केन्द्र है। यहां ओसवालों के बारह सौ घर हैं। अधिकांश घर तेरापंथियों के हैं। उन दिनों तेरापंथ सम्प्रदाय के पूज्य कालूरामजी स्वामी वहीं मौजूद थे।

ज्यों ही पूज्यश्री सरदारशहर पधारे त्यों ही तेरापंथियों में खलबली-सी मच गई। सामना करने की अनेक योजनाएं बनाई गईं, मगर खेद है कि उनमें एक भी ऐसी योजना न थी जिसका सभ्य संसार अनुमोदन कर सके। उचित तो यह था कि आत्म-पर-कल्याण की सच्ची इच्छा से दोनों आचार्य मिलकर परस्पर तत्त्वनिर्णय करते और वीतराग भगवान के मार्ग का निश्चय करके अज्ञान जनता को मार्ग पा लाते। मगर तेरापंथ के आचार्य ऐसा करके अपनी जमी दुकान उजाड़ना पसन्द नहीं करते थे। इसमें उन्हें अपनी प्रतिष्ठा के भंग हो जाने का भय था। उन्होंने ऐसा नहीं किया। बल्कि उनके शिष्यों ने दूसरा ही रास्ता अख्तियार किया। वे पूज्यश्री को तथा उनके संतों को परेशान करके मैदान मारने की सोचने लगे। पूज्यश्री के संत साधुधर्म के अनुसार भिक्षा लाने में किसी प्रकारका भेद-भाव नहीं करते थे। जिस भाव से दूसरों के यहां भिक्षा के लिए जाते उसी भाव से तेरापंथी गृहस्थों के घर भी जाते। मगर कई एक पाषाणहृदय गृहस्थों ने संतों के पात्र में आहार के बदले पाषाण रख दिये। इसी प्रकार की और भी जघन्य चेष्टाएं की गईं जिनका उल्लेख करने में मनुष्यता लजाती है और सभ्यता भी शर्मिन्दा होती है। इन भाइयों ने अपनी चेष्टाओं से यह जाहिर कर दिया कि हम वचन से ही दया-दान के विरोधी नहीं अपितु व्यवहार में भी दया और दान के कट्टर दुश्मन हैं!

पूज्यश्री के जीवन की पिछली घटनाएं बतलाती हैं कि आप एक बार जो सत्संकल्प कर

पीने की बात कह दी है। अब यह हमारी इज्जत का प्रश्न बन गया है। हमारी इज्जत रखना तुम्हारे हाथ में है। नाथी बाई उस कुएड पर थी। किसी भी तरह उससे यह कहला दो कि बाईस टोला के साधुओं ने कच्चा पानी पीया है। इतना कह देने से हमारी इज्जत रह जायगी।

कानदास देहाती आदमी था। वह निर्धन और अशिक्षित था। मगर उसका हृदय पाप से डर गया। उसने स्पष्ट कहा—सेठजी, असत्य बात कहकर निर्दोष साधुओं को कलंक लगाना घोर पाप है। मैं यह पाप नहीं कर सकता। चाहे मेरी जीभ ही क्यों न काट ली जाय, मगर मैं साधुओं को झूठा कलंक लगाकर पाप का भागी नहीं बनूंगा। बहुत कुछ कहने-सुनने पर भी जब कानदासजी झूठ बोलने को तैयार न हुए तो सेठजी को निराशा हुई। तब उनकी सेठानीजी आगे आईं। उन्होंने कानदासजी को बुलाकर मुंह मांगी रकम देने का लोभ दिया। सेठानी ने सोचा—रुपया लेकर एक झूठ बोलना कौन बड़ी बात है। गरीब आदमी रुपया के लोभ में फंस जायगा। मगर कानदासजी ने धर्म को रुपये से बड़ा समझा और असत्य बोलने से साफ इन्कार कर दिया।

पूज्यश्री को विश्वास था कि हमारे साधु सचित्त पानी ग्रहण नहीं कर सकते, तथापि लोकापवाद मिटाने के लिए वे रणदीसर जाने को तैयार हुए। उस समय कुछ सन्त, तेरापन्थी साधुओं के पास गये और उनसे कहा—हम लोग रणदीसर जाकर कच्चा पानी पीने की घटना की जांच करने जा रहे हैं, आप लोग भी साथ चलिए, ताकि सत्यासत्य का निर्णय हो जाए। मगर उनका हृदय तो सत्य को समझता ही था अतएव वे साथ जाने को तैयार नहीं हुए। बोले—थें जाणों थांका काम जाणें।'

आखिर पूज्यश्री रणदीसर पधारे। घटना की जांच की तो मालूम हुआ कि यह सब तेरापन्थियों की करतूत है। वास्तव में किसी भी साधु ने कच्चा पानी ग्रहण नहीं किया है। पूज्यश्री ने गांव के मुखिया लोगों से पंचनामा लिख देने के लिए कहा तो सभी लोग सहर्ष तैयार हो गए। पंचनामा लिखा जाने लगा।

जब पंचनामा लिखा जा रहा था, तब छापर की ओर जाते हुए कुछ तेरापन्थी साधु रणदीसर के पास से निकले। पूज्यश्री के एक सन्त से उनका साक्षात्कार हो गया। सन्त ने उनसे कहा—गांव में पंचनामा लिखा जा रहा है। आप लोग चलकर देख क्यों नहीं लेते? तब उन साधुओं ने कहा—हमें इस प्रपञ्च में पड़ने की क्या आवश्यकता है? और मन ही मन लज्जित होते हुए वे चुपचाप आगे चल दिये।

अन्ततः पंचनामा लेकर पूज्यश्री छापर पधार गये। कुछ सन्तों ने तेरापन्थी साधुओं के पास जाकर कहा—रणदीसर के पंचों ने पंचनामा लिख दिया है और कच्चे पानी की बात जांच करने पर मिथ्या सिद्ध हो गई।

तेरापन्थी साधु बोले—तो हम क्या करें? हमारे पास बात बाजार भाव आई और हमने बाजार भाव बांट दी। इसमें हमारा क्या! उत्तर में कहा गया—ठीक है, तो जैसे पानी लेने की बात बाजार भाव बांट दी थी उसी प्रकार यह बात भी बाजार भाव बांट दीजिएगा। पंचनामे का नकल इस प्रकार है:—

काचो पानी जिदों ने पीधो जद में कयों के थां इसी बात झूठी नयूँ चलाई थाँरी थे भुगतों में तो झूँठ नही बोलूँ अँगूठारी निशानी कानदास सामीरी छैः दः जवर

या बात कानदासजी मां सच पंचो रे सामने कही थे पडियारा सूँ अठे आ गया था जिकासूँ हमने वेरा पड़गया और हमारा गांव रणधीसर का जागीरदार और चौधरी सारा पंच मुकनराम जी माजन साराजीना मिलकरने उप कागद लिखकर पूज्यश्री जुवारीलाल जी ने दीनों स० १६८४ मिती चेत सुदी १२ दीतवार श्री ठाकुरजी का मन्दीर में लिखियों पीरोयत सलजीरा कलम खुद.

१ सलजीपुरोहितरोसहो	१ सई, दीपचन्दपोकरना की	१ सई खेमजी पुरोईतरी
१ सईसुखदासपुजारी	१ सईभगवसजीपुरोईतरी	१ सई विसनजीपुरोईतरी
१ सई असज पुरोईतरी	१ सई मुकन रामजीमाजनक नीराम हाथरा	
१ सई पेमा जाटरी	१ बादरसिंगजी पुरोईतरी	१ सई मोती सिंगकी छै
१ दः जवर जी परोत	१ सई पुरुपों दुडोकी	१ सई चोखो गोदार कीं

सैंतीसवां चातुर्मास (वि० सं० १६८५)

सरदारशहर श्रीसंघ के सज्जनों के आग्रह से सं० १६८५ का चातुर्मास सरदारशहर में हुआ। पं० र० मुनि श्रीगणेशीलालजी महाराज का चातुर्मास चूरु में हुआ। इस प्रकार थली प्रांत के दो प्रधान क्षेत्रों में दोनों महापुरुष दया-दान-धर्म का प्रचार करने लगे। सरदार शहर में प्रातःकाल पहले मुनिश्री हर्पचन्दजी म० 'प्रश्नव्याकरण' सूत्र का व्याख्यान करते थे। उसके पश्चात् पूज्यश्री 'सुखविपाक' सूत्र के आधार पर अपनी ओजस्विनी वाणी उच्चारते थे। प्रासंगिक विवेचन करते हुए आप शास्त्रीय प्रमाण उपस्थित करके अत्यन्त प्रभावशाली शब्दों में दया और दान का समर्थन करते थे! मध्याह्न में तेरापंथी भाई तथा दूसरे लोग शंका-समाधान करने आते थे। पूज्यश्री प्रमाणपूर्वक उनकी शंकाओं का समाधान करते थे।

इस अवसर पर तपस्वी मुनिश्री मांगीलालजी महाराज ने उष्ण जल के आधार पर ४५ उपवास किये। तपस्वी श्री केसरीमलजी महाराज ने धोवन और गर्मजल के आधार पर ७१ दिन का तप किया।

सरदारशहर के सेठ श्रीमान् फूसराजजी दूगड़ तेरापंथियों के माने हुए कट्टर श्रावक थे। पूज्यश्री के व्याख्यानों से प्रभावित होकर वे शंका-समाधान के लिए आने लगे। कुछ दिनों समागम करने से उनका समस्त भ्रम दूर हो गया और वे पूज्यश्री के भक्त बन गये। इस उदाहरण का प्रभाव दूसरों पर भी पड़े बिना न रहा। थली में सैकड़ों लखपती और कई करोड़पति सेठ हैं। तेरापंथी श्रद्धा के कारण वे दया-दान में पाप मानते हैं। बाढ़ या दुर्भिक्ष आदि प्राकृतिक प्रकोपों से पीड़ित मनुष्यों और पशुओं की सहायता करना वे पाप समझते हैं। एक मनुष्य, दूसरे मनुष्य की सहायता करना अधर्म मानता है। उनके धर्मगुरु उन्हें ऐसा ही पाठ पढ़ाते हैं! धर्म का यह कैसा भयानक विकार है। धर्म की सफेद चादर ओढ़े स्वार्थ की इस कालिमा का नग्न स्वरूप दिखलाने के उद्देश्य से ही पूज्यश्री ने यह प्रवास किया था। थली लोगों में से एक भी व्यक्ति अगर दया और दान में धर्म मानने लगे तो कितने ही प्राणियों का भला हो सकता है!

सेठ फूसराजजी दूगड़ के साथ उनकी पतिपरायण पत्नी ने भी अपना भ्रम दूर कर दिया। वह दया-दान में धर्म मानने लगे।

द्वितीय श्रावण कृष्णा १४ के दिन तपस्वी मुनिश्री मांगीलालजी म० की तपस्या का पूर था। उस दिन बहुत से तेरापंथियों ने पूज्यश्री के चरण-कमलों में उपस्थित होकर सम्यक्त्व ग्रहण की और अपना जीवन धन्य बनाया।

संवत्सरी के दिन बाजार और कसाईखाना बन्द रखा गया। तेरापंथी भाई पूज्यश्री के बढ़ते हुए प्रभाव को सहन न कर सके। उन्होंने उस दिन दुकानें खुलवाने का बहुत प्रयत्न किया। दुकान बन्द रखने वालों का बहिष्कार करने की धमकी दी मगर सारे शहर में ८-९ दुकानों के अतिरिक्त सभी दुकानें बन्द रहीं। उस दिन तेलियों ने घानी नहीं चलाई। यह सब पूज्यश्री के उपदेशों का ही प्रभाव था।

इस निष्फलता को देखकर तेरापंथी भाई और चौकन्ने हो गये। उन्होंने देखा—अब हमारे किले की ईंटें धीरे-धीरे खिसकती जा रही हैं। वे उसकी रक्षा के लिए व्यग्र हो उठे। आहार-पानी संबंधी अड़चनें डालकर भी वे कुछ कामयाब न हुए तो उनके साधुओं ने अपने श्रावकों और श्राविकाओं को स्थानक वासियों के व्याख्यान सुनने का त्याग कराना आरम्भ कर दिया। इस पद्धति से व्याख्यान सुनने वालों की संख्या अलबत्ता कुछ कम हो गई किन्तु भीतर ही भीतर लोगों की जिज्ञासा बढ़ने लगी। [मानव स्वभाव गोपनीय वस्तु की ओर स्वभावतः अधिक आकृष्ट होता है।] कईयों ने प्रेरणा करके पूज्यश्री के जाहिर व्याख्यान करवाये। बाजार में तथा चौधरियों की धर्मशाला में आम व्याख्यान हुए। तेरापंथी और अन्य लोगों पर व्याख्यानों का बहुत प्रभाव पड़ा। इस प्रकार चार मास पर्यन्त पूज्यश्री धर्म का उद्घोष करते रहे।

सरदारशहर का विजयी चातुर्मास पूरा होने आया तो चूरु के कोठारीजी ने पूज्यश्री से चूरु पधारने की प्रार्थना की। प्रार्थना स्वीकार कर पूज्यश्री ने चातुर्मास समाप्त होने पर चूरु की ओर विहार कर दिया। विहार के समय का दृश्य बड़ा ही करुणापूर्ण और द्रावक था। सरदार-शहर की जनता ने उमड़ते हुए हृदय से और धर्म-प्रेम के कारण भीगी हुई आंखों से पूज्यश्री को विदाई दी। सैकड़ों की संख्या में लोग आपको पहुंचाने गये। बहुत-से व्यक्तियों ने विदाई के अवसर पर भी शुद्ध श्रद्धा ग्रहण की। इस बार चूरुमें श्रीमालचंदजी तथा श्री चम्पालालजी कोठारी ने पूज्यश्री से विविध प्रश्नोत्तर किये। पूज्यश्री के उत्तरोंसे संतुष्ट होकर उन्होंने सम्यक्त्व ग्रहण किया।

कुछ दिनों चूरु विराजकर आप ठेलासर होते हुए 'रामगढ़' पधारे। रामगढ़ लक्ष्मी और सरस्वती का गढ़ ही समझिए। यहां बड़े-बड़े सम्पत्तिशाली श्रीमान् भी हैं और धुरंधर विद्वान् भी हैं। यहां की जनता में बड़ी गुणग्राहकता है। सभी ने हृदय से पूज्यश्री का स्वागत किया। यहां विद्वन्मंडली होने के कारण तेरापंथियों को फिर शास्त्रार्थ के लिए आह्वान किया गया किन्तु किसी ने सामने आने का साहस न किया। राजवैद्य पं० नाथूरामजी ने एक विज्ञप्ति प्रकाशित करके तेरापंथियों को शास्त्रार्थ के लिए आमंत्रित किया और अजैन विद्वानों एवं श्रीमानों को मध्यस्थ बनाने की सलाह दी। फिर भी तेरापंथी भाइयों ने शास्त्रार्थ करना स्वीकार नहीं किया।

रामगढ़ से विहार कर पूज्यश्री फतहपुर पधारे। फतहपुर में श्रीयुत रामनरेश त्रिपाठी ने पूज्यश्री से मिलकर संतसमागम का लाभ उठाया। यहां कुछ दिन तक धर्म-प्रचार करके आप

पुनः रामगढ़ होते हुए चूरू पधार गये। चूरू में दो दीक्षाएं होने वाली थीं।

चूरू में दीक्षामहोत्सव

गंगाशहर निवासी वैरागी रेखचंदजी संसार से विरक्त होकर पूज्यश्री के निकट दीक्षा ग्रहण करना चाहते थे। कोठारी तथा अन्य सद्गृहस्थों के आग्रह से पूज्यश्री ने चूरू में दीक्षा प्रदान करने की स्वीकृति दे दी। फाल्गुन कृष्णा नवमी को धूमधाम के साथ वैरागी की सवारी निकली और धर्मशाला में पहुँची। दीक्षा के लिए यही स्थान नियत किया गया था। ५-६ हजार व्यक्तियों की भीड़ जमा थी। बाहर से भी बहुत-से गृहस्थ आये थे। ३६ साधु और २० आर्यिकाएं उपस्थित थीं।

इसी अवसर पर तेरापंथी साधु हमीरमलजी ने वहां खड़े होकर कहा—मैंने तेरहपंथी सम्प्रदाय में दीक्षा ली है। मगर उस सम्प्रदाय के अनेक साधु दोषी हैं। मैंने अपने पूज्यश्री से उनकी शुद्धि के लिए कहा, मगर वहां सुनवाई नहीं हुई। अतएव मैंने तेरहपंथ का परित्याग कर दिया है। साथ ही 'जीवरक्षा और दया-दान विषयक शास्त्रों का परिचय प्राप्त करके मैंने समाधान प्राप्त कर लिया है मैंने आत्म-कल्याण के लिए घर छोड़ा है। ऐसी स्थिति में जानबूझ कर असत्य मार्ग पर नहीं चलना चाहता। जीवरक्षा, दया-दान और परोपकार शास्त्रविहित हैं, यह बात पूज्यश्री ने स्पष्ट करके बतला दी हैं। मैं सब भाइयों की साक्षी से पूज्यश्री को गुरु मानकर दीक्षा लेना चाहता हूं। पूज्यश्री मुझपर कृपा करें।'

पूज्यश्री ने कोठारीजी तथा दूसरे प्रमुख व्यक्तियों की सम्मति से हमीरमलजी को भी दीक्षा दे दी।

हमीरमलजी ने अभी तक तेरापंथी सम्प्रदाय की दीक्षा पाली थी। उन्हें स्थानकवासी सम्प्रदाय के साधुओं की कठोर चर्या का भी पता नहीं था। इन साधुओं के संयम की कठोरता, आहार-पानी की नीरसता आदि देखकर हमीरमलजी १५ दिनों में ही साधुत्व के पालन में अपने को असमर्थ अनुभव करने लगे। मगर लोक-लाज के कारण वह खुलकर बोल नहीं सकते थे। नतीजा यह हुआ कि एक दिन आहार करते समय करड़ा धोवन पीना पड़ा। तब वह बोले—इसो धोवण पीणों करतां तो मरणोई चोखो।' और उसी रात्रि को वह चुपचाप उठकर चल दिये!

दीक्षा-प्रसंग पर चूरु के कोठारी-परिवार ने जो उत्साह दिखलाया वह प्रशंसनीय और आदर्श था। सभी के स्वागत के लिए आपने सुप्रबंध किया था। पूज्यश्री, सेठ मालचंदजी साहब की कोठी में ठहरे थे। उसी समय श्रीचम्पालालजी कोठारी तथा श्रीमालचंद जी कोठारी ने कई दिनों तक चर्चा करने के पश्चात् शुद्ध श्रद्धा ग्रहण की।

'जैनधर्म कायरों का नहीं, वीरों का धर्म है' इस विषय पर पूज्यश्री का अत्यन्त प्रभावशाली व्याख्यान हुआ। महाराज भैरोंसिंहजी साहब के. सी. आई. ई., जज, वकील तथा अन्य राज्याधिकारी उपस्थित थे। अजैन जनता भी बड़ी संख्या में व्याख्यान सुनने आई थी।

चूरु से विहार करके पूज्यश्री रतनगढ़, सुजानगढ़, राजलदेसर, बीदासर आदि स्थानों में दया-दान का प्रचार करते हुए अषाढ़ शुक्ला ८ को फिर चूरु पधारे। मार्ग में कई स्थलों पर तेरापंथी पूज्य कालूरामजी स्वामी को शास्त्रार्थ के लिए चुनौती दी गई, किन्तु वे सामने न आये। बहुत-से तेरापंथी भाई भी व्याख्यान सुनने आते थे। तेरापंथी साधु जगह-जगह घूमकर पूज्यश्री

का व्याख्यान सुनने का अपने श्रावकों को त्याग करवाते थे, फिर भी कुछ सुलभबोधि और सत्य जिज्ञासु व्यक्ति व्याख्यान सुनने आ ही जाते थे।

इसी विहार में पूज्यश्री ने अनुकम्पा की ढालों की रचना की, जिनमें तेरापंथियों की युक्तियों का खंडन करके शास्त्रीय प्रमाणों द्वारा अनुकम्पा का प्रबल समर्थन किया गया है। तेरापंथियों ने साधारण जनता को भ्रम में डालने के लिए थली प्रान्त की बोली में ऐसी कुछ ढालें बना रखी हैं जिनमें दया-दान का निषेध किया गया है। पूज्यश्री ने भी उसी बोली में उन ढालों का खण्डन करते हुए दया-दान का समर्थन किया है। पूज्यश्री का जन्म मालवा में हुआ और थली प्रान्त की बोली से वह प्रारंभ में परिचित नहीं थे, तथापि अल्प काल के परिचय से ही वे उस बोली में ढालें रचने में सफल हो सके। यह उनकी प्रखर प्रतिभा का परिचायक है। इसी समय में पूज्यश्री ने एक बृहत् ग्रंथ की रचना भी की, जिसका नाम 'सत्धर्म-मण्डन' है। यह ग्रंथरत्न सरदारशहर, चूरू और बीकानेर के चौमासों में लिखा जाता रहा। तेरापंथियों के 'भ्रम-विध्वंसन' नामक ग्रंथ में जैनागम के विपरीत जिन कपोल कल्पित बातों का समर्थन किया गया है, उन बातों की सद्धर्ममंडन में बड़ी कुशलता और सावधानी के साथ परीक्षा की गई है और तेरापंथ की मान्यताओं को जिनागम विरुद्ध सिद्ध किया गया है। इस सम्बन्ध का यह अद्वितीय और प्रामाणिक ग्रंथ है। इसके अध्ययन से जहां तेरापंथ की मान्यताओं की कल्पितता विदित हो ाती है वहां पूज्यश्री की तीक्ष्ण समीक्षा शक्ति, अगाध सिद्धान्त-ज्ञान और प्रखर प्रतिभा का भी हज ही पता चल जाता है।

अड़तीसवाँ चातुर्मास (सं० १९८९)

वि० सं० १९८९ का चौमासा पूज्यश्री ने चूरु में किया। वहां विराजने से अन्यतीर्थिकों र बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। सिर्फ दो घर श्रद्धान्तु थे, फिर भी सैकड़ों की संख्या में बहुत श्रोता व्याख्यान का लाभ लेते थे। जो लोग जैनधर्म को दया-दान-परोपकार आदि का निषेधक समझ-कर उसे घृणा की दृष्टि से देखते थे, उनके दिल में भी उसके प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो गई। श्रीयुत मूलचंदजी कोठारी ने धनतेरस के दिन अपने अनेक साथियों के साथ पूज्यश्री से श्रद्धा ग्रहण कर ली। श्रद्धा ग्रहण करते समय आपने घोषणा की—'मैं सत्य समझ कर यह श्रद्धा ग्रहण कर रहा हूं। इसमें मुझे लेश-मात्र भी संशय नहीं है। हां, अगर किसी को संदेह हो तो दोनों आचार्य आपस में शास्त्रार्थ करें। अगर मेरा पक्ष पराजित हुआ तो मैं एक लाख रुपया गोशाला के निमित्त दान दूंगा। अगर तेरापंथी पक्ष पराजित हो जाय तो वह भले ही कुछ भी न दे।' कोठारी जी यह ठोस चुनौती भी निरर्थक हुई। उसे किसी ने स्वीकार करने की हिम्मत न दिखलाई।

चौमासा समाप्त होने पर पूज्य ने चूरु से विहार किया और सरदारशहर पधारे। सरदार-शहर में आपके आम व्याख्यान हुए। नेमिचंदजी छाजेड़ और मोहनलालजी दूगड़ आदि कई भाइयों ने यहां पर भी तेरापंथी सम्प्रदाय का परित्याग कर पूज्यश्री से सम्यक्त्व ग्रहण किया।

सरदारशहर से विहार करके अनेक स्थानों पर धर्म का उद्योत करते हुए पूज्यश्री बीकानेर पधारे।

माघ शुक्ला सप्तमी को सुजानगढ़ में तेरापंथियों का माघ-महोत्सव होने वाला था। इस

उत्सव के अवसर पर उस सम्प्रदाय के प्रायः सभी साधु और साध्वियां एकत्र होते हैं। हजारों गृहस्थ दर्शन के निमित्त इकट्ठे होते हैं। इस अवसर पर दया और दान का प्रचार करने के निमित्त वहां की धर्मशील जनता के विशेष आग्रह से पूज्यश्री फिर सुजानगढ़ पधारे। तेरापंथियों का जमघट होने पर भी जैनेतर जनता बड़ी संख्या में पूज्यश्री के उपदेशों का लाभ उठाती थी। जनता की प्रबल इच्छा थी कि इस अवसर पर दोनों आचार्यों का शास्त्रार्थ हो और दया-दान संबंधी विवादग्रस्त विषय प्रकाश में आजाए, मगर तेरापंथी पूज्य श्रीकालूरामजी भूल करके भी शास्त्रार्थ के फंदे में नहीं फँसना चाहते थे।

तेरापंथी सम्प्रदाय के आचार्य को बारम्बार शास्त्रार्थ के लिए मध्यस्थ जनता ने उकसाया परन्तु वे सामना करने का साहस न कर सके। स्वभावतः जनता इस दुर्बलता को समझ गई थी और उनके अनुयायी भी इस सचाई को मन ही मन समझ रहे थे। अपनी इस दुर्बलता को छिपाने का कोई उपाय करना उनके लिए आवश्यक हो गया। आखिर एक उपाय ऐसा निकल आया जिससे न सांप मरे न लाठी टूटे। अर्थात्-शास्त्रार्थ की पराजय से भी बचा जा सके और दुर्बलता का अपवाद भी कुछ अंशों में दूर हो जाय। एक जाट पंडित नेमिनाथ को वे कहीं से पकड़ लाए और उसे अगुवा करके शंका-समाधान के लिए तैयार किया। इस शंका-समाधान में जाट पंडित को किस प्रकार निरुत्तर होना पड़ा, और क्या-क्या शंका-समाधान हुए, इत्यादि सभी बातें 'सुजानगढ़ चर्चा' नामक पुस्तक में विस्तार पूर्वक प्रकाशित हो चुकी हैं। जिज्ञासु पाठक परिशिष्ट में देख सकते हैं।

यद्यपि तेरापंथी पूज्य स्वयं सामने नहीं आये तथापि इस शंका-समाधान का प्रभाव बहुत सुन्दर हुआ। लोगों को बहुत अंशों में सत्य का भान होगया। पूज्यश्री की योग्यता से वहां की जनता पहले ही परिचित थी, इस शंका-समाधान के पश्चात् तो आपका लोहा मानने लगी। श्री रामनंदजी ने तथा जैनेतर जनता ने अत्यन्त श्रद्धाभाव से चौमासा करने का बहुत आग्रह किया किन्तु पूज्यश्री ने उस समय कोई निश्चित उत्तर नहीं दिया।

सुजानगढ़ से विहार करके पूज्यश्री छापर, पडिहारा, रतनगढ़, राजलदेसर आदि स्थानों को पावन करते हुए भीनासर पधार गये। रतनगढ़ में सेठ श्रीसूरजमलजी नागरमलजी का तथा अन्यत्र अनेक भाइयों का प्रबल आग्रह टालते हुए तपस्वी श्री बालचंदजी महाराज के संथारे के कारण पूज्यश्री शीघ्र ही गंगाशहर पधार गये।

तपस्वीराज श्रीबालचन्दजी महाराज का स्वर्गवास

घोर तपस्या और उत्कृष्ट चारित्र के लिहाज से पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी महाराज के सम्प्रदाय का स्थान बहुत ऊंचा रहा है। पूज्यश्री स्वयं बहुत बड़े तपस्वी थे। उन्होंने २१ वर्ष तक बेले-बेले पारणा किया था। उत्कृष्ट चारित्र, सरलता, विद्वत्ता आदि अनेक गुणों के कारण विरोधी भी उनके भक्त बन गये थे। उनके पश्चात् दूसरे आचार्यों के समय भी अनेक घोर तपस्वी और उग्र संयमी मुनिराज होते रहे हैं। पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज के समय भी यह परम्परा अक्षुण्ण रही। मुनिश्री बालचन्दजी महाराज का उग्र संयमी और तपस्वी मुनियों में एक विशिष्ट स्थान था। दीक्षा लेने के बाद आप तपस्या में तत्परता से प्रवृत्त हुए। ७० वर्ष की आयु तक आप

बराबर छोटी-बड़ी तपस्याएं करते रहे। दीक्षित अवस्था का हिसाब लगाया जाय तो दीक्षित होने के बाद आपका अधिकांश समय तपस्या में ही बीता।

संवत् १९८७ के चैत्र में आपको यह प्रतीत होने लगा कि इस जीवन का अंतिम समय अब सन्निकट आ गया है। आपकी आयु उस समय ७० वर्ष की थी। आपने उसी समय निराहार रहने की प्रतिज्ञा कर ली। पानी के अतिरिक्त सभी आहारों का त्याग करके तिविहार सथारा ले लिया। पूज्यश्री तपस्वीजी को दर्शन देने के लिये गंगाशहर पधार गये। तपस्वीराज ने आचार्य महाराज के दर्शन करके अपने को कृतकृत्य माना और पानी का भी त्याग कर देने का विचार प्रकट किया। आपकी परिणामधारा उत्तरोत्तर उत्कृष्ट होती जाती थी। आपने शरीर का और जीवन का मोह त्याग दिया था। पूज्यश्री ने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव देखकर उस समय पानी का त्याग कराना उचित नहीं समझा। तपस्वीजी किसी दिन पानी का सेवन कर लेते और किसी दिन नहीं भी सेवन करते थे।

ज्येष्ठ कृष्ण ४ की रात्रि को ९ बजे तपस्वीजी ने औदारिक शरीर त्याग दिया। अन्तिम समय तक आपके मुख पर एक प्रकार की अनुपम शान्ति और तेजस्विता विराजमान रही। अंतिम समय में आपने अनेक श्रावकों और श्राविकाओं को अनेक प्रकार के त्याग-प्रत्याख्यान करवाए। दूसरे दिन बड़ी धूमधाम के साथ आपका अन्तिम संस्कार किया गया।

ज्येष्ठ वदी ५ को पूज्यश्री भीनासर पधार गये।

उनतालीसवां चातुर्मास (सं० १९८७)

बीकानेर की जनता चातक की तरह पूज्यश्री की प्रतीक्षा कर रही थी। उसकी आकांक्षा बड़ी प्रबल थी कि इस बार का चौमासा बीकानेर में ही किया जाय। तदनुसार पूज्यश्री के प्रति आग्रहपूर्ण प्रार्थना की गई और वह स्वीकृत भी हो गई। चौमासे की स्वीकृति से बीकानेर की साधु मार्गी जैन जनता में उत्साह की लहर दौड़ गई।

आषाढ़ शुक्ला १० को पूज्यश्री १५ ठाणों से चौमासा करने के निमित्त बीकानेर पधार गये। उसी वर्ष श्रीनन्दकुंवरजी महाराज के सम्प्रदाय की महासती श्रीकिशनाजी ने १६ ठाणों से तथा श्रीरंगूजी महाराज के सम्प्रदाय की महासती श्री गुलाबकुंवरजी ने ठाणा ६ से बीकानेर में चौमासा किया।

इस चातुर्मास में तपस्वी मुनि श्री फौजमलजी म० ने धोवन के आधार पर ६८ दिन की तपस्या की। ७४ वर्ष की वृद्धावस्था होने पर भी आप एक दिन धोवन पीते थे और दूसरे दिन चौविहार उपवास करते थे। आपके अतिरिक्त अन्य सन्तों और सतियों ने भी विविध प्रकार की तपस्याएं की। पूज्यश्री ने स्वयं ७ दिन की थोक तथा प्रकीर्णक तपस्या की।

आसौज वदि ११ को तपस्वी मुनि श्रीफौजमलजी महाराज की तपस्या का पूर था। उस दिन राज्य की ओर से कसाई खाना बन्द रखा गया और स्थानीय श्रीसंघ की प्रेरणा से ठठेरों, लुहारों, भटियारों तथा तेलियों ने अपना धन्धा बन्द रखा। जीव-दया आदि अनेक उपकार हुए। आसौज वदि १२ को तपस्वीजी का पारणा निर्विघ्न हुआ। आप अन्त समय तक प्रसन्न रहे और प्रतिदिन व्याख्यान में उपस्थित होते रहे।

इस चातुर्मास में मन्दिर मार्गी भाइयों की ओरसे कुछ प्रश्न किये गये जिनका उत्तर पूज्यश्री

की ओर से दे दिया गया। ये प्रश्नोत्तर छप चुके हैं, अतः उन्हें यहां देने की आवश्यकता नहीं है।

पूज्यश्री का व्याख्यान सुनने के लिए हजारों की संख्या में श्रोता उपस्थित होते थे। राज्याधिकारी, व्यापारी, जैन, जैनेतर सभी श्रेणियों के श्रोता व्याख्यान से लाभ उठाते थे।

हिन्दी के प्रतिष्ठित लेखक श्रीरामनरेश त्रिपाठी पूज्यश्री के दर्शनार्थ उपस्थित हुए। आपने पूज्यश्री के अनेक व्याख्यान सुने। तत्पश्चात् श्रीत्रिपाठीजी ने प्रयाग की मासिक पत्रिका सरस्वती में एक लेख प्रकाशित किया,जिसका अंश इस प्रकार है:—

मेरी बीकानेर यात्रा

अब मैं एक बात की चर्चा और करने वाला हूं, जो राजपूताने से भिन्न प्रान्त-प्रान्त वालों के लिये नई ही नहीं, कौतूहलजनक भी है। बीकानेर में जैनधर्मावलम्बी ओसवाल वैश्यों की संख्या अधिक है। ये लोग कलकत्ते-बम्बई में बड़ा-बड़ा व्यापार करते हैं और बड़े ही धनी होते हैं। इनमें दो सम्प्रदाय हैं एक के आचार्य श्री कालूरामजी हैं जो तेरहपन्थी कहलाते हैं, दूसरे के आचार्य श्रीजवाहरलालजी महाराज हैं जो बाइस पंथ कहलाता है। गतवर्ष फतहपुर में जवाहरलालजी महाराज से मेरा साक्षात्कार हुआ था। उनका चरित बहुत ही अच्छा पवित्र और तपस्या से पूर्ण है। वे अच्छे विद्वान् निरभिमानी,उदार, सहृदय और निस्पृह हैं। चौमासे में वे किसी एक स्थान में ठहर कर चौमासा करते हैं और जनता को अपने व्याख्यानामृत से तृप्त करके सन्मार्ग पर ले चलते हैं। उनके व्याख्यान में सामयिकता रहती है। और देश की प्रगति का भी उन्हें काफी ज्ञान है। वे इतिहास से सत्पुरुषों के जीवन चरितों से उपकारी बातें लेकर अपने भक्तों को देने में कभी आलस्य और संकोच नहीं करते। इस वर्ष उनका चौमासा बीकानेर में था। मैं इस मौसम में खासकर उनका सत्संग करने के लिए ही बीकानेर में गया था। मैं प्रायः प्रतिदिन उनके व्याख्यान में जाया करता था। कई बार उन्होंने श्रीमुख से मेरी चर्चा भी की। इससे उनके भक्तों का मैं प्रिय पात्र हो गया और वे लोग मेरे साथ बड़ा प्रेम-प्रदर्शन करने लगे। आचार्यजी के भाषणों का प्रभाव उनके सम्प्रदाय के स्त्री-पुरुष दोनों पर बहुत अच्छा पड़ रहा है।

वे बड़े निर्भय वक्ता हैं, पर अप्रियवादी नहीं। उनका व्याख्यान सुनने के लिये बीकानेर के राजपदाधिकारी तथा अन्य मत-मतान्तरों के खास-खास लोग भी आते थे।

साधुओं की सेवा तन-मन-धन से करते हैं। अच्छी-से-अच्छी चीजें खिलाते हैं। बढ़िया-से-बढ़िया वस्त्र पहिनाते हैं और उत्तम-से-उत्तम स्थान में ठहराते हैं। स्त्रियों को रात के पहले और पिछले पहर में आचार्यजी का व्याख्यान सुनने की स्वतन्त्रता रहती है। इस सम्प्रदाय के लोग खूब मौज की जिन्दगी बिताते हैं। सुनते हैं कि राजपूताने में इस सम्प्रदाय वालों की संख्या साठ हजार के लगभग है। साठ हजार लोग बीसवीं सदी में ऐसी भयानक शिक्षा के शिकार हो रहे हैं, क्या यह कम आश्चर्य की बात है ?

'सरस्वती'
जनवरी १६३१

रामनरेश त्रिपाठी

सरदारशहर के सेठ तनसुखरामजी दूगड़ तथा अन्य सज्जनों ने सरदारशहर पधारने की प्रार्थना की। पूज्यश्री ने साधुभाषा में समुचित आश्वासन दिया।

बीकानेर का यशस्वी चौमासा समाप्त होनेपर पूज्यश्री गंगाशहर, भीनासर होते हुए मार्गशीर्ष कृष्ण १३ को देशनोक पधारे। २६ दिन तक विराजमान रहे। जैन जैनेतर जनता ने आपके उपदेशों से खूब लाभ उठाया। देशनोक के चारणों तथा दूसरे लोगों पर आपका बहुत प्रभाव पड़ा। आपके सदुपदेशों के प्रभाव से वहां निम्नलिखित सुधार हुएः—

(१) यहां के ओसवाल नुकतेके समय रात्रि में भोजन बनवाते थे। उसमें जीव-हिंसा बहुत होती थी। पूज्यश्री के ऊपदेश से सब भाइयों ने रात्रि में रसोई बनाने-बनवाने का त्यागकर दिया।

(२) यहां के चारण जागीरदारों में दो वर्ष से पारस्परिक उग्र वैमनस्य के फलस्वरूप एक आदमी के प्राण भी चले गये थे। पूज्यश्री के प्रभावक उपदेश से वैमनस्य की ज्वालाएं शांत हो गईं और प्रेम की धारा बहने लगीं।

(३) चारण, खत्री, सुनार आदि ने मांस, मदिरा, बड़ी, तमाखू आदि अभक्ष्य और मादक द्रव्यों तथा वृक्ष काटने का त्याग किया।

(४) खूब तपस्या हुई। तीन पंचरंगियां हुईं।

(५) अनेक अजैनों ने, तेरापंथी तथा मंदिरमार्गी भाइयों ने पूज्यश्री से सम्यक्त्व ग्रहण किया।

(६) देशनोक तथा आसपास के जैनों का संगठन करने के लिए 'श्रीसाधुमार्गी जैन सभा' स्थापित हुई।

(७) बहुत से लोगों ने कन्या-विक्रय करने तथा चर्बी लगे वस्त्र पहनने का त्याग किया।

देशनोक से विहार करके पूज्यश्री रासीसर पधारे। यहां चार तेरापंथी भाइयों ने सम्यक्त्व ग्रहण किया। सूरपुरा में तीन भाइयों ने सम्यक्त्व लिया। नारवा में बीस सुलभबोधि भाइयों को सम्यक्त्व दिया। पूज्यश्री नारवा से पांचू पधारे। वहां ७० तेरापंथियों ने शुद्ध श्रद्धा ग्रहण की। पांचू में शिथिल साधुमार्गी भाइयों को उपदेश देकर आपने दृढ़ धर्मी बनाया। तत्पश्चात् पूज्यश्री का सरदारशहर में पदार्पण हुआ। यहां शेष काल विराजे। दो बाइयों ने दीक्षा ग्रहण कर अपना जीवन सार्थक किया। सरदारशहर से आप चूरु पधारे। चूरु में शानदार स्वागत किया गया। कुछ दिन यहां विराजने के अनन्तर ता० १२-३-३१ को आप राजगढ़ पधारे। ग्राम से बाहर शान्त एकान्त वातावरण में धर्मशाला में

विराजमान हुए। पूज्यश्री के विहार का संवाद पाकर एक दिन पहले ही वहां तेरापंथी साधु भी आ पहुंचे थे। पूज्यश्री का प्रभावशाली स्वागत हुआ। ता० १३-३ को बाजार में आपने आम जनता को लाभ पहुंचाने के लिए सुन्दर उपदेश दिया। समस्त राज्याधिकारी और एक हजार के लगभग अन्य श्रोता उपस्थित थे। यहां के तेरापंथी बन्धु सरल और भद्र थे। जनता पूज्यश्री के दर्शन से तथा उपदेश से अत्यन्त प्रसन्न और प्रभावित हुई। सभी लोग मुक्त कंठ से व्याख्यान की प्रशंसा करने लगे।

सेठ अमृतलाल रामचन्द जौहरी, श्री आनन्दराजजी सुराणा और बीकानेर के अनेक श्रावक पूज्यश्री के दर्शनार्थ आये। तेरापंथी भाई प्रश्नोत्तर के लिए अकसर आते रहते थे। प्रभाव बहुत सुन्दर पड़ा। ता० २० को यहां के प्रसिद्ध तेरापंथी श्री भीखमचन्दजी सरावगी ने अपने सुयोग्य पुत्र के साथ पूज्यश्री से सम्यक्त्व ग्रहण किया। इस घटना ने ओसवालों में—तेरापंथियों में हलचल-सी मचा दी।

यहां हांसी और हिसार के श्रावक पूज्यश्री से अपने नगरों में पधारने की प्रार्थना करने के लिए उपस्थित हुए। उनका आग्रह इतना प्रबल था कि पूज्यश्री के लिए टालना अशक्य हो गया।

राजगढ़ में धार्मिक जागृति और विशेषतः दया-दान के प्रति प्रबल श्रद्धा उत्पन्न करके पूज्यश्री ने विहार किया। यद्यपि पूज्यश्री हिसार की ओर पधारना चाहते थे मगर भादरा के सेठ पूनमचंदजी नाहरा और खूबराम सराफ के अनिवार्य आग्रह के कारण आप भादरा की ओर पधारे। ता० ५-४-३१ को आप भादरा पधारे। लगभग २५० अग्रवाल भाइयों ने डेढ़ मील सामने जाकर पूज्यश्री का स्वागत किया। व्याख्यान में खासी उपस्थिति होती थी। राज्याधिकारीवर्ग ने खूब लाभ उठाया। यहां सेठ पूनमचन्दजी नाहरा पूज्यश्री के विशेष भक्त थे। सेठ खूबरामजी सर्राफ पूज्यश्री के उपदेशों से प्रभावित होकर पूज्यश्री के अनुरागी बने। तेरापंथी साधु अपने श्रावकों को संभाले रहने के उद्देश्य से यहां भी आ पहुंचे थे।

भादरा की भद्र-हृदय जनता को भव्य उपदेश देकर, भव-भ्रमण से छूटने का पथ प्रदर्शित करके पूज्यश्री विचरते हुए हिसार पधारे। यहां जाहिर व्याख्यान हुए। आर्यसमाज और दिगम्बर भाइयों के साथ प्रश्नोत्तर हुए। अच्छा प्रभाव पड़ा। हिसार के अनन्तर हांसी में भी आपके आम व्याख्यान हुए। तेरापंथी भाई प्रश्नोत्तर के लिए आये। देहली श्रीसंघ की ओर से कुछ प्रमुख सज्जन देहली में आगामी चौमासा करने की प्रार्थना करने आये। यहां पं० मुनिश्री मदनलालजी महाराज से भी मुलाकात हुई। आप जैनशास्त्रों के अच्छे ज्ञाता हैं। पूज्यश्री पर आपकी गाढ़ी श्रद्धा थी। परस्पर प्रेमपूर्ण व्यवहार रहा।

दादरी में पूज्यश्री मनोहरहरदासजी महाराज के सम्प्रदाय के मुनि श्री मोतीलालजी महाराज तथा मुनिश्री पृथ्वीदासजी महाराज जो बाद में आचार्य-पद पर आसीन हुए—तथा कविवर मुनिश्री अमरचन्दजी महाराज विराजमान थे। पूज्यश्री का इन संतों से प्रेमपूर्ण समागम हुआ। इन्हीं दिनों कान्फ्रेंस की ओर से एक संवत्सरी करने के लिए सभी मुनियों के पास विज्ञप्ति भेजी गई थी। पूज्यश्री ने तथा वहां विराजमान अन्य सन्तों ने उदारतापूर्वक कॉन्फ्रेंस के निश्चयानुसार संवत्सरी करने की स्वीकृति फरमाई।

चालीसवां चातुर्मास (१९८८)

रोहतक से विहार करके पूज्यश्री ता० ११-३-३१ को ठाणा १२ से देहली पधारे। देहली का श्रीसंघ चिरकाल से पूज्यश्री के लिए लालायित था। भक्ति में असीम शक्ति है। भक्त के हृदय की प्रबल भावना भक्तिपात्र को आकर्षित किये बिना नहीं रहती। तदनुसार पूज्यश्री देहली पधार गये और वहां ता० १७-७-३१ के दिन चौमासा करने की स्वीकृति दे दी। देहली के श्रीसंघ के लिए पूज्यश्री की स्वीकृति अत्यन्त उत्साह और आनन्द देने वाली सिद्ध हुई। संघ में एक प्रकार की नई जागृति आ गई। उल्लास का वातावरण फैल गया।

भारतवर्ष के इतिहास में देहली, दिल्ली या इन्द्रप्रस्थ का नाम अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। भारत का इतिहास बनाने में दिल्ली ने जो भाग लिया है वह किसी दूसरे नगर ने नहीं लिया। अत्यन्त प्राचीन काल से दिल्ली राजनीतिक हलचलों का केन्द्र रहा है। दिल्ली ने भारतीय वीरों की वीरता देखी है, मुगलों का वैभव-विलास देखा है और फिरंगियों की कूटनीति देखी है। देहली भारत का शासक है। भारतवर्ष के लिए राजशासनादेश दिल्ली से जारी होते रहे हैं।

ऐसे नगर में पूज्य श्रीजवाहरलालजी महाराज जैसे महान् धर्मोपदेशक का चौमासा होना भी एक विशेष घटना है। दिल्ली नगर भारत का राजनीतिक शासक है तो पूज्यश्री धर्मशासक थे। जैसे दिल्ली के आदेशों की प्रतीक्षा उत्सुकतापूर्वक की जाती है उसी प्रकार पूज्यश्री के आदेशों और उपदेशों की प्रतीक्षा लाखों व्यक्ति करते थे!

भारत की राजधानी में पूज्यश्री का यह चातुर्मास कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण रहा। पूज्यश्री देहली के प्रधान और दर्शनीय बाजार चांदनी चौक में; महावीरभवन में ठहरे थे। आपके व्याख्यानों में जैन-जैनेतर जनता की भीड़ लगी रहती थी। व्याख्यान इतने प्रभावशाली होते थे कि देहली जैसे विशाल नगर में भी उनकी कीर्ति फैलते देर न लगी। अनेक हिन्दू और मुस्लिम राष्ट्रीय नेता आपके विचारों से स्फूर्ति लेने के लिए व्याख्यान में आते थे। कांग्रेस के तत्कालीन प्रसिद्ध नेता शेख अताउल्लाशाह बुखारी और उनके भाई हबीबुल्ला शाह बुखारी आदि अनेक सज्जनों ने पूज्यश्री के व्याख्यान में सम्मिलित होकर नवीन प्रेरणा प्राप्त की। श्रीबुखारी ने संक्षिप्त भाषण करते हुए मुक्त कंठ से पूज्यश्री के उपदेशों की प्रशंसा की और विदेशी तथा मिल के वस्त्र त्यागने की जनता को प्रेरणा की। काका कालेलकर जैसे विचारक विद्वान् भी पूज्यश्री की सेवा में उपस्थित हुए। आपने राष्ट्रोन्नति के विषय में पूज्यश्री के विचार सुने। काका साहब ने अन्त में बड़ी प्रसन्नता प्रकट की।

ई० सन् १९३१ भारतवर्ष के स्वतंत्रता-संग्राम में बड़ा ही गौरवपूर्ण समय है। उस समय भारत में एक छोर से दूसरे छोर तक क्रांति की लहरें लहरा रही थीं। महात्मा गांधी के नेतृत्व

विराजमान हुए। पूज्यश्री के विहार का संवाद पाकर एक दिन पहले ही यहां तेरापंथी साधु भी आ पहुंचे थे। पूज्यश्री का प्रभावशाली स्वागत हुआ। ता० १३-३ को बाजार में आपने आम जनता को लाभ पहुंचाने के लिए सुन्दर उपदेश दिया। समस्त राज्याधिकारी और एक हजार के लगभग अन्य श्रोता उपस्थित थे। यहां के तेरापंथी बन्धु सरल और भद्र थे। जनता पूज्यश्री के दर्शन से तथा उपदेश से अत्यन्त प्रसन्न और प्रभावित हुई। सभी लोग मुक्त कंठ से व्याख्यान की प्रशंसा करने लगे।

सेठ अमृतलाल रामचन्द जौहरी, श्री आनन्दराजजी सुराणा और बीकानेर के अनेक श्रावक पूज्यश्री के दर्शनार्थ आये। तेरापंथी भाई प्रश्नोत्तर के लिए अकसर आते रहते थे। प्रभाव बहुत सुन्दर पड़ा। ता० २० को यहां के प्रसिद्ध तेरापंथी श्री भीखमचन्दजी सरावगी ने अपने सुयोग्य पुत्र के साथ पूज्यश्री से सम्यक्त्व ग्रहण किया। इस घटना ने ओसवालों में—तेरापंथियों में हलचल-सी मचा दी।

यहां हांसी और हिसार के श्रावक पूज्यश्री से अपने नगरों में पधारने की प्रार्थना करने के लिए उपस्थित हुए। उनका आग्रह इतना प्रबल था कि पूज्यश्री के लिए टालना अशक्य हो गया।

राजगढ़ में धार्मिक जागृति और विशेषतः दया-दान के प्रति प्रबल श्रद्धा उत्पन्न करके पूज्यश्री ने विहार किया। यद्यपि पूज्यश्री हिसार की ओर पधारना चाहते थे मगर भादरा के सेठ पूनमचंदजी नाहरा और खूबराम सराफ के अनिवार्य आग्रह के कारण आप भादरा की ओर पधारे। ता० ४-४-३१ को आप भादरा पधारे। लगभग २५० अग्रवाल भाइयों ने डेढ़ मील सामने जाकर पूज्यश्री का स्वागत किया। व्याख्यान में खासी उपस्थिति होती थी। राज्याधिकारीवर्ग ने खूब लाभ उठाया। यहां सेठ पूनमचन्दजी नाहरा पूज्यश्री के विशेष भक्त थे। सेठ खूबरामजी सर्राफ पूज्यश्री के उपदेशों से प्रभावित होकर पूज्यश्री के अनुरागी बने। तेरापंथी साधु अपने श्रावकों को संभाले रहने के उद्देश्य से यहां भी आ पहुंचे थे।

भादरा की भद्र-हृदय जनता को भव्य उपदेश देकर, भव-भ्रमण से छूटने का पथ प्रदर्शित करके पूज्यश्री विचरते हुए हिसार पधारे। यहां जाहिर व्याख्यान हुए। आर्यसमाज और दिगम्बर भाइयों के साथ प्रश्नोत्तर हुए। अच्छा प्रभाव पड़ा। हिसार के अनन्तर हांसी में भी आपके आम व्याख्यान हुए। तेरापंथी भाई प्रश्नोत्तर के लिए आये। देहली श्रीसंघ की ओर से कुछ प्रमुख सज्जन देहली में आगामी चौमासा करने की प्रार्थना करने आये। यहां पं० मुनिश्री मदनलालजी महाराज से भी मुलाकात हुई। आप जैनशास्त्रों के अच्छे ज्ञाता हैं। पूज्यश्री पर आपकी गाढ़ी श्रद्धा थी। परस्पर प्रेमपूर्ण व्यवहार रहा।

पूज्यश्री भिवानी भी पधारे। यहां भी आपके जाहिर व्याख्यान हुए। यहां के तेरापं भाइयों ने अनेक प्रकार से विरुद्ध प्रचार करना आरम्भ किया। मगर पूज्यश्री की विद्वत्तापूर्ण व और उत्कृष्ट संयम के सामने विरोधी प्रचार टिक न सका। आर्यसमाजी और दिगम्बर जैन भा के कारण वह प्रचार एकदम ठंडा पड़ गया।

भिवानी से विहार कर पूज्यश्री रोहतक पधारे। देहली के श्रीसंघ की ओर से पुनः च की प्रार्थना की गई। पूज्यश्री ने श्रीसंघ का आग्रह अनिवार्य-सा समझकर साधुभाषा में स आश्वासन दे दिया। आपने देहली की ओर ही प्रस्थान किया।

बाधा पहुंचने से चारित्र में न्यूनता आ जाना स्वाभाविक है। इस प्रकार आज का साधु समाज बड़ी विषम अवस्था में पड़ा हुआ है। एक ओर कुआं, दूसरी ओर खाई-सी दिखाई पड़ती है।

समाज-सुधार का भार साधुओं पर पड़ने का परिणाम क्या हो सकता है, यह समझने के लिए यति-समाज का उदाहरण मौजूद है। पहले का यति-समाज आज सरीखा नहीं था। लेकिन उसे समाज-सुधार का कार्य अपने हाथ में लेना पड़ा। इसका परिणाम धीरे-धीरे यह हुआ कि सामाजिकता की ओर अग्रसर होते-होते उनकी प्रवृत्ति यहां तक बढ़ी कि वे स्वयं पालकी आदि परिग्रह के धारक बन गये। यदि वर्त्तमान साधुओं को समाज-सुधार का भार सौंपा गया और उनमें सामाजिकता की वृद्धि हुई तो उनकी भी ऐसी ही—यतियों जैसी—दशा होना संभव है। अतएव साधु-समाज के ऊपर-समाज का बोझ न होना ही उत्तम है। साधुओं का अपना एक अलग ही कार्यक्षेत्र है। उससे बाहर निकल कर भिन्न क्षेत्र भी अत्यन्त विस्तृत और महत्त्व-पूर्ण है।

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि ऐसा कौन-सा उपाय है; जिससे समाज-सुधार का आवश्यक और उपयोगी काम भी हो सके और साधुओं को समाज-सुधार में पड़ना न पड़े?

हमारे समाज में मुख्य दो वर्ग हैं—साधु-वर्ग और श्रावक-वर्ग। पर उक्त बोझ पड़ने से क्या हानियां हो सकती हैं, यह बात सामान्य रूप से मैं बतला चुका हूं। रहा श्रावक-वर्ग, सो इसी वर्ग को समाज-सुधार की प्रवृत्ति करनी चाहिए। मगर हमारा श्रावक'वर्ग दुनियादारी के पचड़ों में इतना अधिक फंसा रहता है और उसमें शिक्षा का भी इतना अभाव है कि वह समाज-सुधार की प्रवृत्ति को यथावत् संचालित नहीं कर सकता। श्रावकों में धर्म-संबन्धी ज्ञान भी इतना पर्याप्त नहीं है, जिससे वे धर्म का लक्ष्य रखकर धर्म-मर्यादा को अक्षुण्ण बनाये रखकर, तदनुकूल समाज-सुधार कर सकें। कदाचित् कोई विद्वान् श्रावक मिलता भी है तो उसमें श्रावक के योग्य आदर्श चरित्र और कर्त्तव्यनिष्ठा की भावना पर्याप्त रूप में नहीं पाई जाती। वह गृहस्थी के पचड़ों में पड़ा हुआ होता है, अतएव उसकी आवश्यकताएं प्रायः अन्य सामान्य गृहस्थों के समान ही होती हैं। ऐसी स्थिति में वह अर्थ के धरातल से ऊपर नहीं उठ पाता और जो व्यक्ति अर्थ के धरातल से ऊपर नहीं उठा है, उसमें निस्पृह, निरपेक्ष भाव के साथ समाज-सुधार के आदर्श कार्य को करने की पूर्ण योग्यता नहीं आती। उसे अपनी आवश्यकताएं पूर्ण करने के लिए श्रीमानों की ओर ताकना पड़ता है, उनके समाज-हित-विरोधी कार्यों को सहन करना पड़ता

में असहयोग और सत्याग्रह-आन्दोलन अत्यन्त सफलता के साथ चल रहा था। पूज्यश्री इस अहिंसात्मक आन्दोलन का महत्त्व भली-भांति समझते थे। उन्हें विदित था कि यह अहिंसा की खरी कसौटी है। इसकी सफलता और असफलता पर अहिंसा की प्रतिष्ठा और अप्रतिष्ठा निर्भर है। अगर यह आन्दोलन सफल होता है तो यह अहिंसा धर्म की अभूतपूर्व विजय होगी। जैन-धर्म अहिंसा का प्रतिपादक और जैन-समाज अहिंसा का समर्थक और पोषक है। उसे अहिंसा की प्रतिष्ठा के लिए होने वाले इस विशुद्ध संघर्ष में अपना समुचित भाग अदा करना चाहिए। ऐसा करके वे अहिंसा की महान्-से-महान् सेवा बजा सकेंगे। यही कारण था कि पूज्यश्री अपने प्रवचनों में राष्ट्रधर्म का अत्यन्त प्रभावजनक शब्दों में प्रतिपादन करते थे। देहली-चातुर्मास के कतिपय व्याख्यान‘* जवाहरकिरणावली’ के प्रथम और द्वितीय भाग में प्रकाशित हो चुके हैं। उन्हें देखने से स्पष्ट हो जाता है कि पूज्यश्री ने अहिंसाधर्म के प्रचार का अनुकूल अवसर पहचान कर कितनी खूबी के साथ उसका उपयोग किया है। आचार्य महोदय की युगदर्शक तीक्ष्ण दृष्टि का इससे भली-भांति पता चल जाता है। उस समय के आपके उपदेश किसी भी राष्ट्रीय नेता के उपदेशों से कम प्रभावशाली नहीं हैं, फिर भी तारीफ यह है कि आपने अपनी साधुभाषा का कहीं उल्लंघन नहीं किया है और उन उपदेशों में धार्मिकता उसी प्रकार व्याप्त है जैसे दूध में मिठास व्याप्त रहती है। निस्संदेह आपके यह अमर उपदेश जनता को चिरकाल तक पथ प्रदर्शित करते रहेंगे।

जैसे समग्र राष्ट्र में नवीन चेतना दौड़ रही थी उसी प्रकार स्थानकवासी समाज में भी जागृति की एक नई लहर उठ रही थी। सारे समाज का संगठन करने के लिए अखिल भारतीय ‘साधु सम्मेलन’ करने की धूम थी। धर्मवीर सेठ दुर्लभजी त्रिभुवन जौहरी तथा दूसरे सज्जन जी जान से प्रयत्न कर रहे थे। समाज का प्रतिनिधि-मंडल प्रधान-प्रधान मुनिराजों से मिल रहा था और आशाजनक आश्वासन प्राप्त कर रहा था।

ता० ११-१०-३१ को दिल्ली में स्थानकवासी जैन कांफ्रेंस की जनरल कमेटी का अधिवेशन हुआ। मुख्य विचारणीय विषय साधु सम्मेलन था। प्रायः सभी प्रांतों के और सभी सम्प्रदायों के प्रधान श्रावक उपस्थित थे। पूज्यश्री के इस विषय के उपयोगी, सुन्दर और महत्त्वपूर्ण विचार सुनकर सभी श्रोता गद्‌गद् हो उठते और उनमें नवीन उत्साह आ जाता था। साधु-सम्मेलन के सिलसिले में एक दिन पूज्यश्री ने फरमाया—

पूज्यश्री का भाषण—ब्रह्मचारी वर्ग

आज निर्ग्रन्थवर्ग की स्थिति कुछ विषम-सी हो रही है। साधु-समाज और साध्वी-समाज में निरंकुशता फैलती जाती है। इसका कारण, किस प्रकार के पुरुष और किस प्रकार की महिला को दीक्षा देनी चाहिए, इस बात का पूरी तरह विचार नहीं किया जाता रहा है। दीक्षा संबंधी नियमों का पालन बहुत कम हो रहा है। इस नियमहीनता का दुष्परिणाम यहां तक हुआ है कि अपनी जैन सम्प्रदाय से भिन्न जैन सम्प्रदाय में दीक्षा लेने के कारण मुकदमेबाजी तक होजाती है।

साधु-समाज के निरंकुश होने और साधुता के नियमों में शिथिलता आ जाने के कारणों में से एक कारण है—साधुओं के हाथ में समाज-सुधार का काम होना। आज सामाजिक लेख

*यह पुस्तकें श्रीमान् सेठ चम्पालालजी साहब बांठिया, भीनासर (बीकानेर) से प्राप्त हो सकती हैं।

साधु-वर्ग पर जब समाज-सुधार का भार भी होगा तब उनके चारित्र का।...
बाधा पहुंचने से चारित्र में न्यूनता आ जाना स्वाभाविक है। इस प्रकार आज का साधु समाज बड़ी विषम अवस्था में पड़ा हुआ है। एक ओर कुआं, दूसरी ओर खाई-सी दिखाई पड़ती है।

समाज-सुधार का भार साधुओं पर पड़ने का परिणाम क्या हो सकता है, यह समझने के लिए यति-समाज का उदाहरण मौजूद है। पहले का यति-समाज आज सरीखा नहीं था। लेकिन उसे समाज-सुधार का कार्य अपने हाथ में लेना पड़ा। इसका परिणाम धीरे-धीरे यह हुआ कि सामाजिकता की ओर अग्रसर होते-होते उनकी प्रवृत्ति यहां तक बढ़ी कि वे स्वयं पालकी आदि परिग्रह के धारक बन गये। यदि वर्त्तमान साधुओं को समाज-सुधार का भार सौंपा गया और उनमें सामाजिकता की वृद्धि हुई तो उनकी भी ऐसी ही—यतियों जैसी—दशा होना संभव है। अतएव साधु-समाज के ऊपर-समाज का बोझ न होना ही उत्तम है। साधुओं का अपना एक अलग ही कार्यक्षेत्र है। उससे बाहर निकल कर भिन्न क्षेत्र भी अत्यन्त विस्तृत और महत्त्व-पूर्ण है।

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि ऐसा कौन-सा उपाय है; जिससे समाज-सुधार का आवश्यक और उपयोगी काम भी हो सके और साधुओं को समाज-सुधार में पड़ना न पड़े?

हमारे समाज में मुख्य दो वर्ग हैं—साधु-वर्ग और श्रावक-वर्ग। पर उक्त बोझ पड़ने से क्या हानियां हो सकती हैं, यह बात सामान्य रूप से मैं बतला चुका हूं। रहा श्रावक-वर्ग, सो इसी वर्ग को समाज-सुधार की प्रवृत्ति करनी चाहिए। मगर हमारा श्रावक-वर्ग दुनियादारी के पचड़ों में इतना अधिक फंसा रहता है और उसमें शिक्षा का भी इतना अभाव है कि वह समाज-सुधार की प्रवृत्ति को यथावत् संचालित नहीं कर सकता। श्रावकों में धर्म-संबन्धी ज्ञान भी इतना पर्याप्त नहीं है, जिससे वे धर्म का लक्ष्य रखकर धर्म-मर्यादा को अक्षुण्ण बनाये रखकर, तदनुकूल समाज-सुधार कर सकें। कदाचित् कोई विद्वान् श्रावक मिलता भी है तो उसमें श्रावक के योग्य आदर्श चरित्र और कर्त्तव्यनिष्ठा की भावना पर्याप्त रूप में नहीं पाई जाती। वह गृहस्थी के पचड़ों में पड़ा हुआ होता है, अतएव उसकी आवश्यकताएं प्रायः अन्य सामान्य गृहस्थों के समान ही होती हैं। ऐसी स्थिति में वह अर्थ के धरातल से ऊपर नहीं उठ पाता और जो व्यक्ति अर्थ के धरातल से ऊपर नहीं उठा है, उसमें निस्पृह, निरपेक्ष भाव के साथ समाज-सुधार के आदर्श कार्य को करने की पूर्ण योग्यता नहीं आती। उसे अपनी आवश्यकताएं पूर्ण करने के लिए श्रीमानों की ओर ताकना पड़ता है, उनके समाज-हित-विरोधी कार्यों को सहन करना पड़ता

में असहयोग और त्याग की मात्रा अधिक न होने से समाज में उसका पर्याप्त प्रभाव भी नहीं
अहिंसात्मक आर ..ति में किस उपाय का अवलम्बन करना चाहिए, जिससे समाज-सुधार के कार्य में
खरी कसौटी ..वे और साधुओं को भी इस कार्य से अलहदा रखा जा सके? आज यही प्रश्न
है। अगर ..मने उपस्थित है और उसे हल करना अत्यावश्यक है।
धर्म ..

मेरी सम्मति के अनुसार इस समस्या का हल ऐसे तीसरे वर्ग की स्थापना करने से ही सकता है, जो साधुओं और श्रावकों के मध्य का हो। यह वर्ग न तो साधुओं में ही परिगणित किया जाय और न गृह-कार्य करनेवाले साधारण श्रावकों में ही। इस वर्ग में वे ही व्यक्ति समाविष्ट किये जाएं जो ब्रह्मचर्य का अनिवार्य रूप से पालन करें और अकिंचन हों अर्थात् अपने लिए धन-संग्रह न करें। वे लोग समाज की साक्षी से, धर्माचार्य के समक्ष इन दोनों व्रतों को ग्रहण करें। इस प्रकार के तीसरे त्यागी श्रावक-वर्ग से समाज-सुधार की समस्या भी हल हो जायगी और धर्म का भी विशेष प्रचार हो सकेगा। साथ ही निर्ग्रन्थवर्ग भी दूषित होने से बच जायगा।

इस तीसरे वर्ग से समाज-सुधार के अतिरिक्त धर्म को क्या लाभ पहुँचेगा, यह बात संक्षेप में बतला देना आवश्यक है।

मान लीजिए कोई व्यक्ति धर्म के विषय में लिखित उत्तर चाहता है। साधु अपनी मर्यादा के विरुद्ध किसी को कुछ लिखकर नहीं दे सकता। अतएव ऐसी स्थिति में लिखित उत्तर न देने के कारण धर्म पर आक्षेप रह जाता है। अगर यह तीसरा वर्ग स्थापित कर लिया जाय तो वह लिखित उत्तर भी दे सकेगा।

इसी प्रकार अगर अमेरिका या अन्य किसी विदेश में सर्वधर्म-सम्मेलन होता है, वहां सभी धर्मों के अनुयायी अपने-अपने धर्म की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करते हैं। ऐसे सम्मेलनों में मुनि सम्मिलित नहीं हो सकते; अतएव धर्म-प्रभावना का कार्य रुक पड़ता है। यह तीसरा वर्ग ऐसे-ऐसे अवसरों पर उपस्थित होकर जैनधर्म की वास्तविक उत्तमता का निरूपण करके धर्म की बहुत कुछ सेवा बजा सकता है। आजकल ऐसे सम्मेलनों में बहुधा जैनधर्म के प्रतिनिधि की अनुपस्थिति रहती है और इससे जैनधर्म के विषय में इतर सहानुभूतिशील व्यक्तियों में भी उतना उच्च विचार उत्पन्न नहीं हो पाता। वे जैनधर्म के गरिमा-ज्ञान से वंचित रहते हैं। तीसरा वर्ग ऐसे सभी अवसरों पर उपयोगी होगा। इससे धर्म की प्रभावना होगी।

इसके अतिरिक्त और भी बहुतेरे कार्य हैं, जो सच्चे सेवा भावी और त्यागपरायण तृतीय वर्ग की स्थापना से सरलतापूर्वक सम्पन्न किये जा सकेंगे, जैसे साहित्य प्रकाशन और शिक्षा आदि। आज यह सब कार्य व्यवस्थित रूप से नहीं हो रहे हैं। इनमें व्यवस्था लाने के लिए भी तीसरे वर्ग की आवश्यकता है।

तीसरे वर्ग के होने से धार्मिक कार्यों में बड़ी सहायता मिलेगी। यह वर्ग न तो साधुपद की मर्यादा में बंधा रहेगा और न गृहस्थी की झंझटों में ही फंसा होगा। अतएव यह वर्ग धर्म-प्रचार में उसी प्रकार सहायता पहुँचा सकेगा, जैसे चित प्रधान ने पहुँचाई थी।.....तात्पर्य यह है कि तीसरे वर्ग की स्थापना से ऐसे अनेक कार्य सम्पन्न हो सकेंगे, जो न साधुओं द्वारा होने चाहिए और न (साधारण) श्रावकों द्वारा हो सकते हैं!

तीसरे वर्ग के होने से एक लाभ और भी है। आज अनेक व्यक्ति ऐसे हैं, जिनसे न तो

साधुता का भली-भांति पालन होता है और न साधुता का ढोंग ही छूटता है। वे साधु का वेष धारण किये हुए साधु की मर्यादा के भीतर नहीं रहते। तीसरे वर्ग की स्थापना से ऐसे व्यक्ति इस वर्ग में सम्मिलित हो सकेंगे और साधुत्व के ढोंग के पाप से बच जाएंगे। लोग असाधु को साधु समझने के दोष से बच सकेंगे।

तीसरे वर्ग की स्थापना से यद्यपि साधुओं की संख्या घटने की सम्भावना है और यह भी सम्भव है कि भविष्य में अनेक पुरुष साधु होने के बदले इसी वर्ग में प्रविष्ट हों, लेकिन इससे घबड़ाने की आवश्यकता नहीं है। साधुता की महत्ता संख्या की विपुलता में नहीं है, वरन् चारित्र की उच्चता और त्याग की गम्भीरता में है। उच्च चारित्रवान् और सच्चे त्यागी मुनि अल्प-संख्यक हों तो भी वे साधु-पद की गुरुता का संरक्षण कर सकेंगे। बहुसंख्यक शिथिलाचारी मुनि उस पद के गौरव को बढ़ाने के बदले घटाएंगे ही। अतएव मध्यमवर्ग की स्थापना का परिणाम यह भी होगा कि जो पूर्ण त्यागी और पूर्ण विरक्त होंगे वही साधु बनेंगे और शेष लोग मध्यम वर्ग में सम्मिलित हो जाएंगे। इस प्रकार साधुओं की संख्या कदाचित् घटेगी तो भी उनकी महत्ता बढ़ेगी। जो लोग साधुता का पालन पूर्णरूपेण नहीं कर सकते या जिन लोगों के हृदय में साधु बनने की उत्कंठा नहीं है, वे लोग किसी कारण विशेष से, वेष धारण करके साधु का नाम धारण कर भी लें तो उनसे साधुता के कलंकित होने के अतिरिक्त और क्या लाभ हो सकता है? इसलिए ऐसे लोगों का मध्यम वर्ग में रहना ही उपयोगी और श्रेयस्कर है। इन सब दृष्टियों से विचार करने पर समाज में तीसरे वर्ग की विशेष आवश्यकता प्रतीत होती है।'

पूज्यश्री ने ब्रह्मचारी वर्ग की स्थापना की जो योजना कान्फ्रेन्स के सदस्यों के समक्ष उपस्थित की थी, आज भी विचार करने पर वह अत्यन्त उपयोगी है। पूज्यश्री की इस योजना को लोगों ने बहुत पसन्द किया। कान्फ्रेन्स के अगले अजमेर अधिवेशन में वह स्वीकृत भी की गई और धर्मवीर श्रीदुर्लभजी भाई जौहरी ने उसी समय उसमें प्रविष्ट होने की पहली घोषणा भी की मगर खेद है कि वह योजना कार्यान्वित नहीं हुई। वह चाहे आज कार्यान्वित न हो सके मगर एक दिन आएगा जब उसे अमल में लाना अनिवार्य हो जायगा। अतएव पूज्यश्री की यह योजना अमर है और उसे काम में लाये बिना संघ का श्रेयस सध नहीं सकता।

देहली चातुर्मास में तपस्वी मुनिश्री केसरीमलजी म० ने ४१ दिन का उपवास केवल उष्ण जल के आधार पर किया। पूर के दिन गरीबों को अन्न बांटा गया, दूध की प्याऊ लगाई गई और जीव-दया के अन्य अनेक कार्य हुए।

पदवी-प्रदान

देहली की जनता पूज्यश्री के व्याख्यानों को मन्त्र-मुग्ध होकर सुनती थी। आपकी विद्वत्ता और संयम निष्ठा से प्रभावित होकर देहली श्रीसंघ ने निम्नलिखित मानपत्र पूज्यश्री की सेवा में समर्पित किया:—

श्रीमान् भगवान् महावीर परम्परागत श्री स्थानकवासी जैनाचार्य पूज्यश्री १००८ श्री जवाहरलालजी महाराज की पवित्र सेवा में सविनय समर्पित—

अभिनन्दन पत्र

मिथ्यात्विमत करिकुलकुहेतु कुम्भविदारण केसरिणम् ।
पूज्य जवाहरलालं जैनाचार्यं स्मरामि सद्भक्त्या ॥
प्रतिभाजित वाचस्पतिरिति कृत्वा मुग्धमानसा नित्यम् ।
निवसति धन्यंमन्या कंठे देवी सरस्वती यस्य ॥

पूज्यवर !

हमें आपके रोचक, मर्मस्पर्शी, हृदयग्राही, एवं महत्त्वपूर्ण व्याख्यान सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। आप अपने व्याख्यान में जैन साहित्य का जो न्यायसंगत दिग्दर्शन कराते हैं, उसे तथा आपके त्याग, वैराग्य और क्षमा शान्ति आदि गुणों को देखते हुए हम इस निश्चय पर पहुंचे हैं कि आप जैन साहित्य तथा जैन न्याय के प्रतिभाशाली विद्वान् और वक्ता हैं। हमें अपने आचार्य के गुण, विद्वत्ता, बुद्धिमत्ता और गम्भीरता पर गर्व है। आपकी अलौकिक प्रतिभा और विद्वत्ता हमें विवश कर रही है कि हम अपने आचार्य को कुछ भेंट करें। लेकिन क्या भेंट करें ! धन-सम्पत्ति को तो आपने स्वयं त्याग दिया है, इसलिए उसे आपकी भेंट करना आपका सम्मान नहीं कहला सकता। अतः हम आपकी सेवा में अपनी श्रद्धा और भक्ति का परिचय देने के लिए केवल 'जैन साहित्य चिन्तामणि' और 'जैनन्याय दिवाकर' ये दो उपाधियां भेंट करते हैं। आशा है कि आप हमारी इस तुच्छ भेंट को स्वीकार करके हमें कृतार्थ करेंगे। इति शुभम्।

हम हैं आपके सेवक गण
श्री स्थानकवासी जैन श्रीसंघ
देहली

पूज्यश्री की अस्वीकृति

जीवन में एक ऐसी अवस्था होती है जब मनुष्य को पदवियों की प्रबल लालसा रहती है। मगर जब वह अवस्था व्यतीत हो जाती है तब उपाधियां व्याधियां प्रतीत होने लगती हैं। जिसके जीवक का स्तर वास्तव में ऊंचा उठ जाता है—जो अपनी आत्मा को ही ऊपर उठा लेता है, वह उपाधियां लेकर क्या करेगा ? ऊपर से जोड़ी हुई उपाधि वास्तविक व्यक्ति की हीनता की सूचक है। जब जीवन हीनता से ऊपर उठ गया तो उसे उपाधियों की कोई आवश्यकता नहीं रही। जैसे बालक सुन्दर वस्त्र और आभूषण पहन कर खुशी के मारे उछलने लगता है उसी प्रकार हीन व्यक्तित्व वाला पुरुष अपने नाम के आगे-पीछे उपाधि लगी देखकर फूला नहीं समाता। पूज्यश्री इस कोटि के पुरुष नहीं थे। उनका व्यक्तित्व स्वतः इतना उच्चतर था कि वह उपाधियों से परे पहुंच चुका था। उपाधियां उनके जीवन की ऊंचाई तक पहुंच भी नहीं सकती थीं तो उनकी क्या महत्ता बढ़ातीं ?

इसके अतिरिक्त अवस्थासूचक पदवी के अतिरिक्त गुणों को व्यक्त करने वाली पदवियां एक प्रकार का आन्तरिक परिग्रह हैं। जो महात्मा बाह्य परिग्रह को भी नहीं सहन कर सकता वह आन्तरिक परिग्रह को कैसे स्वीकार कर सकता है ?

पूज्यश्री ने देहली श्रीसंघ द्वारा दी जाने वाली पदवियों को स्वीकार नहीं किया। श्रीसंघ ने यद्यपि अपनी प्रशंसनीय गुणग्राहकता का परिचय दिया था फिर भी पूज्यश्री ने धन्यवाद के

साथ पदवियां अस्वीकार कर दीं। इस अस्वीकृति के मूल में शायद एक कारण यह भी था कि यह परम्परा आगे चलकर गलत रूप धारण कर सकती थी और साधुओं को पदवी के प्रलोभन में डाल सकती थी। पूज्यश्री ने पदवियां अस्वीकार करके साधु-समूह के सामने एक सुन्दर आदर्श खड़ा किया।

मुनियों की परीक्षा

इस चातुर्मास में मुनिश्री श्रीमलजी महाराज तथा पं० मुनिश्री जेठमलजी म० का संस्कृत भाषा का अध्ययन चालू था। आप बड़े परिश्रम से अध्ययन करते रहते थे। एक बार कुछ श्रावकों ने कहा—मुनिश्री कितना और कैसा अभ्यास कर रहे हैं, इस बात का पता तो हमें भी चलना चाहिए? तब कलकत्ता विश्वविद्यालय के संस्कृत भाषा के लेक्चरार पं० सकलनारायण शर्मा ने मुनि महाराज की परीक्षा ली। संस्कृत की परीक्षाएँ यों तो अनेक जगह होती हैं परन्तु उन सबमें बनारस की परीक्षाओं का बहुत महत्त्व है और बनारस की परीक्षाएँ अच्छी योग्यता वाले ही उत्तीर्ण कर पाते हैं।

प्रोफेसर शर्मा ने मुनिश्री की संस्कृत-व्याकरण की मध्यमा परीक्षा के ग्रंथों में परीक्षा ली थी। हर्ष का विषय है कि मुनिश्री ने प्रथम श्रेणी के अंक प्राप्त करके अपनी कुशलता का परिचय दिया। परीक्षक अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने निम्नलिखित प्रमाणपत्र दिया—

अस्माभिः श्रीमुनिवर जवाहरलाल शिष्य श्री श्रीमल्लः श्वेताम्बरीयो मुनिर्वाराणसीस्थ-राजकीय संस्कृत व्याकरणमध्यमापरीक्षापाठ्यग्रन्थैः परीक्षितः। योग्यता चास्य समीचीनाऽऽस्ते। अनेन प्रथमश्रेण्या उत्तीर्णाङ्काः लब्धा। वयं परीक्षापाटवप्रदर्शनेन प्रीताः प्रमाणपत्रमुत्तीर्णतासूचक मस्मै प्रयच्छामः।

सकलनारायणशर्मणाम्।
कलकत्ता-विश्वविद्यालय व्याकरण व्याख्यातृणाम्।

यद्यपि साधुओं को परीक्षा देने की कोई आवश्यकता नहीं होती, तथापि उनके अध्ययन के लिए समाज का जो व्यय होता है, वह सार्थक होरहा है या नहीं, और पढ़ने वाले मुनि कहीं प्रमाद तो नहीं करते, यह जानने के लिए परीक्षा ही उपयोगी उपाय हैं। पूज्यश्री जब अपने शिष्यों को अध्ययन कराते थे तो वे इस बात की बड़ी सावधानी रखते थे।

इसी प्रकार मुनिश्री जेठमलजी म० सा० ने भी सफलता के साथ उत्तीर्णता प्राप्त की। खेद है कि आप अल्प वय में ही स्वर्गवासी हो गये।

देहली का चौमासा बड़ी शान्ति से व्यतीत हुआ। चौमासे में अनेक उपकार के कार्य भी हुए। बंगाल के बाढ़-पीड़ितों का दयनीय दशा का पूज्यश्री ने हृदयद्रावक शब्दों में वर्णन किया। श्रोताओं पर गहरा प्रभाव पड़ा और देहली श्रीसंघ की ओर से अच्छी सहायता पहुंचाई गई।

चौमासे में श्रीमणिलाल कोठारी पूज्यश्री की सेवा में उपस्थित हुए। पूज्यश्री उन दिनों भी खादी के सम्बन्ध में प्रभावशाली वक्तृता दिया करते थे। कोठारीजी पूज्यश्री से अत्यन्त प्रभावित हुए। एक दिन उन्होंने कहा—'मैंने अपने जीवन में साधुओं में से सिर्फ गांधीजी और 'पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज को तथा नरेन्द्रों में मेवाड़ के महाराणा फतहसिंहजी साहब को ही सिर झुकाया है। मेरा मस्तक और किसी के सामने नहीं झुका।'

श्रीमणिलाल कोठारी ने खादी के सम्बन्ध में एक अपील भी की और देहली के श्रावकों ने पर्याप्त खादी खरीद कर उनकी अपील का समुचित उत्तर दिया।

पूज्यश्री के सदुपदेश से बन्दरों के प्राणों की भी रक्षा हुई।

इस प्रकार दिल्ली चौमासा बड़ी शानदार सफलता के साथ समाप्त हुआ।

जमुना पार : गिरफ्तारी की आशंका

जिस समय पूज्यश्री दिल्ली में विराजमान थे, यमुना पार के बहुत से सज्जन सेवा में उपस्थित हुए। उन्होंने अपने क्षेत्र में पधारने की आग्रहपूर्ण प्रार्थना की। पूज्यश्री ने प्रार्थना स्वीकार कर ली और चातुर्मास समाप्त होने पर उस ओर विहार कर दिया।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि उन दिनों राष्ट्रीय आन्दोलन जोरों पर था। प्रायः सभी नेता जेल के सींखचों में बंद कर दिये गये थे। पूज्यश्री के व्याख्यान धार्मिकता से संगत किन्तु राष्ट्रीयता के रंग में रंगे होते थे। श्रोताओं में जैन-अजैन का भेद-भाव लगभग उठ गया था। सभी प्रकार की जनता आप का व्याख्यान सुनने के लिए टूट पड़ती थी। शुद्ध खद्दर के वस्त्र, राष्ट्रीयता से सनी हुई ओजस्विनी वाणी, अपार जनता के हृदयों पर जादू-सा प्रभाव आदि देख कर सरकार भयभीत हो गई। धर्माचार्य के रूप में यह नया राष्ट्रीय नेता सरकार की आंखों में खटकने लगा। सरकारी गुप्तचर पूज्यश्री के पीछे-पीछे फिरने लगे।

जब श्रावकों को इस परिस्थति का पता चला तो उनका चिन्तित होना स्वाभाविक था। श्रावकों को पूज्यश्री की गिरफ्तारी का भय होने लगा। कुछ श्रावकों ने पूज्यश्री से प्रार्थना की— 'आप अपने व्याख्यानों को धर्म तक ही सीमित रखें। राष्ट्रीय बातों के आने से सरकार को संदेह हो रहा है। कहीं ऐसा न हो कि आप गिरफ्तार कर लिये जाएं और सारे समाज को नीचा देखना पड़े।'

पूज्यश्री का सिंह नाद

पूज्यश्री ने उत्तर दिया—'मैं अपना कर्त्तव्य भली-भांति समझता हूं। मुझे अपने उत्तरदायित्व का भी पूरा भान है। मैं जानता हूं कि धर्म क्या है ? मैं साधु हूं। अधर्म के मार्ग पर नहीं जा सकता। किंतु परतंत्रता पाप है। परतंत्र व्यक्ति ठीक तरह धर्म की आराधना नहीं कर सकता। मैं अपने व्याख्यान में प्रत्येक बात सोच-समझ कर तथा मर्यादा के भीतर रहकर कहता हूँ। इस पर यदि राजसत्ता हमें गिरफ्तार करती है तो हमें डरने की क्या आवश्यकता है ? कर्त्तव्य-पालन में डर कैसा ? साधु को सभी उपसर्ग व परीषह सहने चाहिए, अपने कर्त्तव्य से विचलित नहीं होना चाहिए। सभी परिस्थितियों में धर्म की रक्षा का मार्ग मुझे मालूम है। यदि कर्त्तव्य का पालन करते हुए जैन-समाज का आचार्य गिरफ्तार हो जाता है तो इसमें जैन-समाज के लिए किसी प्रकार के अपमान की बात नहीं है। इसमें तो अत्याचारी का अत्याचार सभी के सामने आ जाता है।'

पूज्यश्री के दृढ़तापूर्ण और वीरतापूर्ण उत्तर को सुनकर प्रार्थना करने वाले श्रावक चुप रह गये। आपके व्याख्यानों की धारा निर्बाध-रूप से उसी प्रकार प्रवाहित होती रही।

निसार, कांधला, छपरौली आदि अनेक स्थानों में विचरे। पूज्यश्री के व्याख्यानों का वहां के किसानों पर बहुत प्रभाव पड़ा। बहुतेरे किसान सर्दी के दिनों में, प्रातःकाल उठकर पांच-पांच कोस की दूरी तक आकर पूज्यश्री के व्याख्यानों में सम्मिलित होते थे। हजारों किसान चातक की भांति आपके व्याख्यानों के लिए उत्कंठित रहते थे। जहां आपका व्याख्यान होता वहीं अपार भीड़ इकट्ठी हो जाती थी। पूज्यश्री थोड़े ही दिनों का कार्यक्रम बनाकर उस ओर पधारे थे, किन्तु कृषक जनता के भक्तिमय आग्रह से काफी दिन लग गये। किसानों में इस प्रकार धर्म और राष्ट्रीयता का प्रचार करने वाले आप प्रथम उपदेशक थे।

आपके उपदेशों से बहुत-से लोगों ने पुरानी अदावतें छोड़ीं, बीड़ी, सिगरेट, शराब, मांस आदि हानिकर पदार्थों के सेवन का त्याग किया और अनेक प्रकार के अनाचारों का त्याग किया।

खेखड़ा ग्राम में दिगम्बर समाज ने हृदय से आपका स्वागत किया।

खट्टा गांव में तमाखू का बहुत प्रचार था। आपके उपदेश से प्रायः सभी ने उसका त्याग कर दिया। पूज्यश्री खट्टा से लोहासराय पधार रहे थे तब मार्ग में जमींदारों ने आपको घेर लिया और व्याख्यान देने की विनीत प्रार्थना की। पूज्यश्री को रुकना पड़ा। व्याख्यान हुआ। श्रोताओं ने हुक्का तथा विदेशी वस्त्रों आदि का त्याग किया। इसी प्रकार बड़ौत में भी हुक्का और चर्बी के वस्त्रों का त्याग कराया गया। सिरसली में पंचों में आपस में वैमनस्य था। आपके प्रभाव से वैमनस्य दूर हो गया। जमींदारों ने हुक्के का तथा अमावस्या के दिन बैल जोतने का त्याग किया। नामनौली में पुराना झगड़ा मिट गया। जमींदारों ने अनेक प्रकार के त्याग किये। ईश्वर-भजन करने का नियम लिया।

इस प्रकार पूज्यश्री के उदात्त चरित्र तथा तेजस्वी व्यक्तित्व और प्रभावशाली वक्तृत्व से इस प्रांत में असीम उपकार हुआ।

इस ओर जैन साधुओं का विहार बहुत कम होता है। यहां की जनता ने चौमासा करने की प्रार्थना की—अत्यधिक आग्रह भी किया किन्तु कई आवश्यक कारणों से आपको मारवाड़ की ओर पधारना था, अतएव आपने यह प्रार्थना स्वीकार नहीं की। पूज्यश्री छपरौली होते हुए यमुना के इस पार पधार गये। वहां से भिवानी, हांसी, हिसार, राजगढ़ आदि क्षेत्रों को पवित्र करते हुए चूरु पधार गये। चूरु में जोधपुर से श्रीचंदनमलजी कोचर आये। आपने जोधपुर में चौमासा करने की प्रार्थना की। मगर पूज्यश्री ने सिर्फ नागौर की ओर विहार करने के भाव व्यक्त किये।

पूज्यश्री ने साधु-सम्मेलन तथा समाचारी आदि आवश्यक विषयों पर विचार करने के लिए मुख्य-मुख्य मुनिराजों को नागौर में एकत्र होने का आदेश दिया था। तदनुसार मुनि श्रीमोड़ीलालजी महाराज, मुनिश्री चांदमलजी महाराज, मुनि श्रीहर्षचन्द्रजी महाराज, पं० मुनि श्रीगणेशीलालजी महाराज, (वर्त्तमान आचार्य) आदि प्रधान मुनि वहां एकत्र हुए। पूज्यश्री ने मार्ग में ही 'श्रीवर्द्धमान संघ' की योजना तैयार की थी। यह योजना मुनियों के समक्ष पढ़ी गई और सबने स्वीकार की। योजना साधु-सम्मेलन के प्रकरण में दी जायगी।

नागौर में जोधपुर श्रीसंघ की ओर से चौमासा करने की पुनः प्रार्थना की गई। इस बार पूज्यश्री ने प्रार्थना स्वीकार कर ली। ता० १२-५-३२ को आपने नागौर से विहार कर गोगोलाव

श्रीमणिलाल कोठारी ने खादी के सम्बन्ध में एक अपील भी की और देहली के श्रावकों ने पर्याप्त खादी खरीद कर उनकी अपील का समुचित उत्तर दिया।

पूज्यश्री के सदुपदेश से बन्दरों के प्राणों की भी रक्षा हुई।

इस प्रकार दिल्ली चौमासा बड़ी शानदार सफलता के साथ समाप्त हुआ।

जमुना पार : गिरफ्तारी की आशंका

जिस समय पूज्यश्री दिल्ली में विराजमान थे, यमुना पार के बहुत से सज्जन सेवा में उपस्थित हुए। उन्होंने अपने क्षेत्र में पधारने की आग्रहपूर्ण प्रार्थना की। पूज्यश्री ने प्रार्थना स्वीकार कर ली और चातुर्मास समाप्त होने पर उस ओर विहार कर दिया।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि उन दिनों राष्ट्रीय आन्दोलन जोरों पर था। प्रायः सभी नेता जेल के सींखचों में बंद कर दिये गये थे। पूज्यश्री के व्याख्यान धार्मिकता से संगत किन्तु राष्ट्रीयता के रंग में रंगे होते थे। श्रोताओं में जैन-अजैन का भेद-भाव लगभग उठ गया था। सभी प्रकार की जनता आप का व्याख्यान सुनने के लिए टूट पड़ती थी। शुद्ध खद्दर के वस्त्र, राष्ट्रीयता से सनी हुई ओजस्विनी वाणी, अपार जनता के हृदयों पर जादू-सा प्रभाव आदि देख कर सरकार भयभीत हो गई। धर्माचार्य के रूप में यह नया राष्ट्रीय नेता सरकार की आंखों में खटकने लगा। सरकारी गुप्तचर पूज्यश्री के पीछे-पीछे फिरने लगे।

जब श्रावकों को इस परिस्थति का पता चला तो उनका चिन्तित होना स्वाभाविक था। श्रावकों को पूज्यश्री की गिरफ्तारी का भय होने लगा। कुछ श्रावकों ने पूज्यश्री से प्रार्थना की— 'आप अपने व्याख्यानों को धर्म तक ही सीमित रखें। राष्ट्रीय बातों के आने से सरकार को संदेह हो रहा है। कहीं ऐसा न हो कि आप गिरफ्तार कर लिये जाएं और सारे समाज को नीचा देखना पड़े।'

पूज्यश्री का सिंह नाद

पूज्यश्री ने उत्तर दिया—'मैं अपना कर्त्तव्य भली-भांति समझता हूं। मुझे अपने उत्तरदायित्व का भी पूरा भान है। मैं जानता हूं कि धर्म क्या है ? मैं साधु हूं। अधर्म के मार्ग पर नहीं जा सकता। किंतु परतंत्रता पाप है। परतंत्र व्यक्ति ठीक तरह धर्म की आराधना नहीं कर सकता। मैं अपने व्याख्यान में प्रत्येक बात सोच-समझ कर तथा मर्यादा के भीतर रहकर कहता हूँ। इस पर यदि राजसत्ता हमें गिरफ्तार करती है तो हमें डरने की क्या आवश्यकता है कर्त्तव्य-पालन में डर कैसा ? साधु को सभी उपसर्ग व परीषह सहने चाहिए, अपने कर्त्तव्य से विचलित नहीं होना चाहिए। सभी परिस्थितियों में धर्म की रक्षा का मार्ग मुझे मालूम है। यदि कर्त्तव्य का पालन करते हुए जैन-समाज का आचार्य गिरफ्तार हो जाता है तो इसमें जैन-समाज के लिए किसी प्रकार के अपमान की बात नहीं है। इसमें तो अत्याचारी का अत्याचार सब के सामने आ जाता है।'

पूज्यश्री के दृढ़तापूर्ण और वीरतापूर्ण उत्तर को सुनकर प्रार्थना करने वाले श्रावक चुप रह गये। आपके व्याख्यानों की धारा निर्बाध-रूप से उसी प्रकार प्रवाहित होती रही।

विहार और प्रचार

देहली से विहार करके पूज्यश्री सदर, शहादरा, बिनौली, बड़ौत, शिरसली, एलम

निसार, कांधला, छपरौली आदि अनेक स्थानों में विचरे। पूज्यश्री के व्याख्यानों का वहां के किसानों पर बहुत प्रभाव पड़ा। बहुतेरे किसान सर्दी के दिनों में, प्रातःकाल उठकर पांच-पांच कोस की दूरी तक आकर पूज्यश्री के व्याख्यानों में सम्मिलित होते थे। हजारों किसान चातक की भांति आपके व्याख्यानों के लिए उत्कंठित रहते थे। जहां आपका व्याख्यान होता वहीं अपार भीड़ इकट्ठी हो जाती थी। पूज्यश्री थोड़े ही दिनों का कार्यक्रम बनाकर उस ओर पधारे थे, किन्तु कृषक जनता के भक्तिमय आग्रह से काफी दिन लग गये। किसानों में इस प्रकार धर्म और राष्ट्रीयता का प्रचार करने वाले आप प्रथम उपदेशक थे।

आपके उपदेशों से बहुत-से लोगों ने पुरानी अदावतें छोड़ीं, बीड़ी, सिगरेट, शराब, मांस आदि हानिकर पदार्थों के सेवन का त्याग किया और अनेक प्रकार के अनाचारों का त्याग किया।

खेखड़ा ग्राम में दिगम्बर समाज ने हृदय से आपका स्वागत किया।

खट्टा गांव में तमाखू का बहुत प्रचार था। आपके उपदेश से प्रायः सभी ने उसका त्याग कर दिया। पूज्यश्री खट्टा से लोहासराय पधार रहे थे तब मार्ग में जमींदारों ने आपको घेर लिया और व्याख्यान देने की विनीत प्रार्थना की। पूज्यश्री को रुकना पड़ा। व्याख्यान हुआ। श्रोताओं ने हुक्का तथा विदेशी वस्त्रों आदि का त्याग किया। इसी प्रकार बड़ौत में भी हुक्का और चर्बी के वस्त्रों का त्याग कराया गया। सिरसली में पंचों में आपस में वैमनस्य था। आपके प्रभाव से वैमनस्य दूर हो गया। जमींदारों ने हुक्के का तथा अमावस्या के दिन बैल जोतने का त्याग किया। नामनौली में पुराना झगड़ा मिट गया। जमींदारों ने अनेक प्रकार के त्याग किये। ईश्वर-भजन करने का नियम लिया।

इस प्रकार पूज्यश्री के उदात्त चरित्र तथा तेजस्वी व्यक्तित्व और प्रभावशाली वक्तृत्व से इस प्रांत में असीम उपकार हुआ।

इस ओर जैन साधुओं का विहार बहुत कम होता है। यहां की जनता ने चौमासा करने की प्रार्थना की—अत्यधिक आग्रह भी किया किन्तु कई आवश्यक कारणों से आपको मारवाड़ की ओर पधारना था, अतएव आपने यह प्रार्थना स्वीकार नहीं की। पूज्यश्री छपरौली होते हुए यमुना के इस पार पधार गये। वहां से भिवानी, हांसी, हिसार, राजगढ़ आदि क्षेत्रों को पवित्र करते हुए चूरू पधार गये। चूरू में जोधपुर से श्रीचंदनमलजी कोचर आये। आपने जोधपुर में चौमासा करने की प्रार्थना की। मगर पूज्यश्री ने सिर्फ नागौर की ओर विहार करने के भाव व्यक्त किये।

पूज्यश्री ने साधु-सम्मेलन तथा समाचारी आदि आवश्यक विषयों पर विचार करने के लिए मुख्य-मुख्य मुनिराजों को नागौर में एकत्र होने का आदेश दिया था। तदनुसार मुनि श्रीमोड़ीलालजी महाराज, मुनिश्री चांदमलजी महाराज, मुनि श्रीहर्षचन्द्रजी महाराज, पं० मुनि श्रीगणेशीलालजी महाराज, (वर्त्तमान आचार्य) आदि प्रधान मुनि वहां एकत्र हुए। पूज्यश्री ने मार्ग में ही 'श्रीवर्द्धमान संघ' की योजना तैयार की थी। यह योजना मुनियों के समक्ष पढ़ी गई और सबने स्वीकार की। योजना साधु-सम्मेलन के प्रकरण में दी जायगी।

नागौर में जोधपुर श्रीसंघ की ओर से चौमासा करने की पुनः प्रार्थना की गई। इस बार पूज्यश्री ने प्रार्थना स्वीकार कर ली। ता० १२-२-३२ को आपने नागौर से विहार कर गोगोलाव

पधारे। वहां तथा मार्ग में सर्वत्र धर्मोपदेश देते हुए और यथाशक्य त्याग-प्रत्याख्यान कराते हुए आषाढ़ शुक्ला १ को आप जोधपुर पधार गये।

एकतालीसवां चातुर्मास (सं० १९८९)

विक्रम संवत् १९८९ का चौमासा पूज्यश्री ने ठाणा १३ से जोधपुर में व्यतीत किया।

आपके धर्मोपदेश से जोधपुर में बहुत उपकार हुआ। सैकड़ों व्यक्तियों ने मांस, मदिरा, बीड़ी, सिगरेट, चर्बी लगे वस्त्र आदि जीवन को पतित करने वाले पदार्थों का परित्याग कर उद्धार-मार्ग की ओर कदम रखा। कई व्यक्तियों ने आजन्म ब्रह्मचर्य जैसा दुरूह व्रत अंगीकार किया। राज्याधिकारियों ने तथा अन्य जैनेतर जनता ने भी खूब लाभ उठाया। महाराज श्रीफ सिंहजी सा० होम मिनिस्टर, रा० ब० रावराजा श्री नरपतसिंहजी मिनिस्टर, महाराज श्री विज सिंहजी आदि विशिष्ट सज्जनों ने पूज्यश्री का उपदेश श्रवण किया। धर्म-चर्चा की ओर खूब प्रभा वित हुए। जोधपुर के युवकरत्न श्रीइन्द्रनाथजी मोदी और श्री जसवंतराजजी मेहता जैसे सज्ज के हृदय में पूज्यश्री ने धर्म के प्रति विशिष्ट अनुराग का भाव उत्पन्न कर दिया।

जोधपुर में निम्नलिखित संतों ने तपस्या की:—

(१) श्रीसूरजमलजी महाराज ३१ दिन
(२) श्रीभीमराजजी महाराज ९ का थोक
(३) श्रीजेठमलजी महाराज ६ दिन
(४) श्रीधनराजजी महाराज ७ का थोक
(५) श्रीसुगालचन्दजी महाराज ६ दिन
(६) श्रीजवरीमलजी महाराज ९ का थोक

इनके अतिरिक्त कतिपय महासतियों ने भी अच्छी तपस्या की। इस चातुर्मास में जोध श्रीसंघ ने लोगों की टीका-टिप्पणी की परवाह न करके आगत दर्शनार्थी भाइयों का सादे भो से स्वागत किया। श्रीसंघ का यह साहस सराहनीय था। जोधपुर के श्रीसंघ ने अन्य श्रीसंघो सामने अच्छा आदर्श उपस्थित किया और छोटे श्रीसंघों को इससे राहत मिली।

साधु-सम्मेलन का प्रतिनिधि मण्डल

कार्तिक शुक्ला ११ को साधु-सम्मेलन का शिष्टमण्डल पूज्यश्री की सेवा में उपस्थित हु उसमें स्थानकवासी जैन समाज के निम्नलिखित प्रधान पुरुष सम्मिलित थे:—

(१) श्रीमान् राजाबहादुर एस० ज्वालाप्रसादजी हैदराबाद
(२) ,, वेलजी लखमसी नप्पू, बी. ए. एल. एल. बी. बम्बई
(३) ,, राय सा० ला० टेकचन्दजी झंडियाला
(४) ,, लाला रतनचन्दजी, अमृतसर
(५) ,, ला० त्रिभुवननाथजी, कपूरथला
(६) ,, सेठ दुर्लभजी त्रिभुवन जौहरी, जयपुर
(७) ,, श्रीधीरजलाल केशवलाल तुरखिया
(८) ,, सेठ वर्द्धमानजी पीतलिया, रतलाम

उक्त सज्जनों के अतिरिक्त अजमेर में साधु-सम्मेलन को आमंत्रित करने वाले चार स

और उपस्थित हो गये थे। शिष्टमण्डल ने पूज्यश्री से साधु-सम्मेलन के विषय में बातचीत की। उस समय मुख्य प्रश्न थे—'साधु-सम्मेलन किया जाय या नहीं ?' किया जाय तो कब और कहां ? साधु-सम्मेलन में किन-किन बातों पर विचार किया जाय ? सभापति किसे बनाया जाय ? संगठन किस प्रकार किया जाय ? समस्त सम्प्रदायों का आचार्य एक हो या अनेक ?

इन प्रश्नों पर पूज्यश्री ने बड़ी गंभीरता के साथ अपने बहुमूल्य विचार व्यक्त किये। शिष्टमंडल को इससे उत्साह और प्रेरणा प्राप्त हुई। पूज्यश्री के विचार संक्षेप में इस प्रकार थे—

(१) इस सम्मेलन का नाम 'जैन-साधु-सम्मेलन' रखा जाय। यहां पर साधु शब्द में उन्हीं का समावेश किया जाय जो मुख पर मुखनासिका बांधते हों, रजोहरण एवं प्रमाणोपेत श्वेत वस्त्र धारण करते हैं तथा धातुरहित काष्ठादि के पात्र रखते हों।

साधु का उपरोक्त लक्षण बताने का तात्पर्य यह है कि शास्त्र में साधु के बाह्य और आभ्यन्तर दो लक्षण बताए गए हैं। उनमें से महाव्रतादि साधु-धर्म का पालन अन्तरंग लक्षण है। यह लक्षण अलौकिक है, क्योंकि बाह्यरूप में दिखाई नहीं देता। अतएव संसार में साधु की पहिचान के के लिए बाह्यलक्षण होना अत्यावश्यक है। यह बात उत्तराध्ययन सूत्र के २३ वें अध्ययन में आई है। वह पाठ यह है "लोगे लिंगप्पओयणं"। टीका-लोके लिंगस्य प्रयोजनम्। साधुवेशस्य प्रवर्तनम् यत्तीर्थं करैरुक्तं तल्लोकस्य प्रत्ययार्थम्, लोकस्य गृहस्थस्य प्रत्ययार्थम्।" तीर्थंकरों ने लिंगधारण करने का प्रयोजन बताते हुए कहा है कि जिससे गृहस्थों को पता लग जाय कि यह साधु है। इसलिए लिंगधारण करने की आवश्यकता है। इसी सिद्धान्त को लेकर 'जैन-साधु-सम्मेलन' में आने वाले साधुओं के लिए हमने खास तौर पर बाह्यलिंग (वेश) पर जोर दिया है। उपरोक्त लक्षण वाला साधु अर्थात् मुख पर मुखवस्त्रिका बांधना, आदि लिंग रखने वाला साधु बाईस सम्प्रदाय का हो, तेरापंथ सम्प्रदाय का हो, शुद्ध श्रद्धा वाला हो या विपरीत श्रद्धावाला हो, उग्रविहारी हो या शिथिलविहारी हो गच्छविहारी हो या एकलविहारी हो, मोटी पक्ष का हो या छोटी पक्ष का हो, इस सम्मेलन में सम्मिलित न हो तो यह बात दूसरी है। सम्मेलन का द्वार उक्त चिह्न वाले प्रत्येक के लिए खुला होना चाहिए।

इस सम्मेलन में सम्मिलित होना किसी तरह के सम्भोग या आदर-सम्मान की प्राप्ति के लिए नहीं है किन्तु भूत और भविष्य के सम्यक् ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि गुणों की शुद्धि और वृद्धि के लिए है। इसमें सभी महानुभावों को निष्पक्ष होकर परस्पर प्रेमपूर्वक मिलकर एक समाचारी के लिए अपनी-अपनी स्वतन्त्र सम्मति भेजनी चाहिए। साधु-सम्मेलन में उसी समाचारी पर शान्तिपूर्वक शास्त्रीय ऊहापोह के साथ विचार होना चाहिए। इसी में साधु-सम्मेलन की सफलता है और इसी के लिए सभी को सम्मिलित होना चाहिए। शास्त्रीय प्रमाणपूर्वक सच्चे हृदय से अपने विचार प्रकट करने के लिए सम्मेलन में प्रत्येक मुनि को भाग लेना चाहिए, किसी को संकोच न करना चाहिए। साधु-सम्मेलन से किसी की मान्यता को धक्का पहुँचने का भय नहीं है। किसी की परम्परा को इससे बाधा नहीं पहुंचती। धर्म-चर्चा द्वारा धार्मिक उन्नति करने के लिए एक स्थान पर सम्मिलित होना सभी सम्प्रदायों को सम्मत है।

किसी की प्रतिष्ठा को धक्का न पहुंचे, इसलिए सभी महानुभावों की बैठक भूमि पर समान रूप से गोलाकार रहनी चाहिए। इसलिए मेरा यह अभिप्राय है कि सभी महानुभाव

निःसंकोच वृत्ति से इस जैन-साधु-सम्मेलन में पधारें ।

सम्मेलन में प्रेमालाप-द्वारा जो सच्चा और शास्त्रोक्त सुधार होगा, उस सुधार को जिन महात्माओं का जी चाहेगा वे अपनाएंगे और उस सुधार को अपनाने वाले महात्मा ही आपस में संभोग आदि एक करने की योजना बनाएंगे। उस सुधार से जो असहमत होंगे अर्थात् उस सुधार में सम्मिलित न होंगे वे उस सुधार-संघ से अलग समझे जाएंगे।'

इसके साथ ही आपने एक अत्यन्त दूरदर्शितापूर्ण सुझाव शिष्टमंडल के समक्ष उपस्थित किया था। वह यह था कि सामान्य साधु-सम्मेलन करने से पहले विभिन्न सम्प्रदायों के मुख्य-मुख्य मुनिराजों का सम्मेलन करना बहुत उपयोगी होगा। उसमें समस्त योजनाएं निश्चित कर ली जाएं। उसके पश्चात् सामान्य (General) साधु-सम्मेलन किया जाय तो लाभ होगा।'

पूज्यश्री का यह सुझाव अत्यन्त व्यवहार्य, सुविधा जनक, कार्य को सरलता से सम्पन्न करने वाला और उपयोगी था। साधारणतया विशाल सम्मेलन से पहले चुने हुए प्रधान पुरुष कार्य की दिशा निश्चित कर लेते हैं और ऐसा करने से ही कार्य सुकर बनता है। साधु-सम्मेलन के संबंध में यह सुझाव अमल में नहीं आ सका और इसी कारण लम्बे समय तक बैठकें करनी पड़ीं, फिर भी जिस सुन्दर परिणाम की आशा की गई थी वह प्राप्त न हो सका। शिष्टमंडल की प्रार्थना पर पूज्यश्री ने अजमेर पधारने की स्वीकृति दे दी।

की व्यथा साल रही थी।

पूज्यश्री विहार करके सरदारपुरा पधारे। पुष्टिकर हाई स्कूल और सरदार हाई स्कूल में आपका उपदेश हुआ[1]। यहां से विहार कर आप महामंदिर पधारे। यहां अनेक प्रकार के त्याग-प्रत्याख्यान हुए। यहां से आप नागौरी वेरा पधारे। श्रीयुत हरनाथजी पुरोहित उर्फ दल्लूजी—जो पुष्टिकर ब्राह्मण-समाज के नेता हैं और माली जाति के प्रमुख नेता तथा फरासखाने के सुपरिटेंडेंट श्रीनेनूरामजी पूज्यश्री से बहुत प्रभावित हुए। पूज्यश्री जोधपुर से विहार करके मंडोर के समीप माली भाइयों की बस्ती में पहुंचे तब श्रीनेनूरामजी ने सैकड़ों मालियों को आमंत्रण देकर व्याख्यान का लाभ दिलाया तथा आस-पास से आने वाली तीन हजार जनता के ठहरने की जंगल में समुचित व्यवस्था की। माली भाइयों की पूज्यश्री पर इतनी अधिक श्रद्धा बढ़ी कि उन्होंने तीन दिन तक पूज्यश्री को विहार नहीं करने दिया। पूज्यश्री भी भक्ति के आग्रह को टाल न सके। यह स्थान जोधपुर से करीब ६ मील दूर है। रेलवे कम्पनी की ओर से यहां तक के लिए स्पेशल ट्रेनें चलाने की व्यवस्था की गई। हजारों व्यक्ति पूज्यश्री के व्याख्यान सुनने के लिए जमा हो गए। अनेक राज्याधिकारी, ठाकुर साहबान, जागीर-दार और शिक्षित मंडल उपस्थित थे। उस समय का दृश्य बड़ा ही भव्य और सुहावना था। पूज्यश्री के स्थान के पास ऐसा जान पड़ता था मानों यहां स्टेशन बन गया है। करीव चार हजार व्यक्ति उपस्थित हुए। श्रीसंघ की ओर से आगतसज्जनों के भोजन को व्यवस्था की गई। श्रोताओं ने मांस-मदिरा आदि का त्याग किया।

पूज्यश्री यहां से विहार करके मथानिया, लोहावट तथा खिचन होते हुए फलौदी पधारे। यहां के पुष्करणा भाइयों पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। मथानिया में आपके उपदेश से जागीरदारों ने करणीजी के मंदिर में होने वाली हिंसा बंद कर दी। अछूतों ने मांस-मदिरा का त्याग किया।

फलौदी से विहार कर पूज्यश्री लोहावट आदि होते हुए फिर मथानिया पधारे। यहां दो-तीन विराजकर रीयां, पीपाड़ आदि में विविध उपकार करते हुए ता० २६—१—३३ को जयतारण पधारे।

जयतारण में दीक्षा-समारोह

जयतारण में पूज्यश्री ने श्रीमान् मोतीलालजी कोटेचा को दीक्षा प्रदान की। आप मलकापुर (खानदेश) के रईस थे। लाखों की सम्पत्ति के स्वामी थे। अखिल भारतीय श्वे० स्थानकवासी कान्फ्रेंस के छठे मलकापुर-अधिवेशन में आप ही स्वागताध्यक्ष निर्वाचित हुए थे। उस समय भी आप कान्फ्रेंस के एक सेक्रेटरी थे। पांच भाई, तीन सन्तान, पत्नी आदि करीब सौ आदमियों का परिवार छोड़कर उत्कट वैराग्य के साथ आपने दीक्षा लेने का निश्चय किया। उस समय आपकी भावना का वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है—

दारा परिभवकारा, बन्धुजनो बन्धनं विषं विषयाः।
कोऽयं जनस्य मोहो, ये रिपवस्तेषु सुहृदाशा॥

अर्थात्—पत्नी की बदौलत पर भव में परिभव प्राप्त होता है, बन्धु-बांधव बन्धन रूप

---

[1] यह व्याख्यान 'जवाहरकिरणावली' के चौथे भाग में प्रकाशित है।

हैं और इंद्रियों के विषय वास्तव में विष हैं। फिर भी न जाने मनुष्य का कैसा मोह है कि वह शत्रुओं में मित्र की बुद्धि रखता है!

इस प्रकार संसार से विरक्त होकर आप पूज्यश्री के चरण-शरण में आये। कुछ समय त: पूज्यश्री के साथ रहकर आपने मुनि-जीवन की चर्या सीखी।

माघ शुक्ला दशमी, ता० ४ फरवरी सन् १९३३ को जयतारण में बड़े समारोह के सा आपका दीक्षा-महोत्सव मनाया गया। दीक्षा के अवसर पर आपके लगभग सभी कुटुम्बीजन उ स्थित हुए। पूज्यश्री ने स्वयं दीक्षा देकर उनका जीवन सफल किया।

दूसरे दिन जयतारण से विहार करके फाल्गुन कृष्णा द्वितीया को पूज्यश्री का ब्यावर पदार्पण हुआ। अजमेर में होनेवाले साधु-सम्मेलन में सम्मिलित होने से पहले आप अपने सम्प्र दाय के मुनियों का सम्मेलन कर लेना चाहते थे। इस सम्मेलन के लिए ब्यावर स्थान उपयु समझा गया। सभी मुनियों को ब्यावर पहुंचने के लिए समाचार भेज दिये गये थे। पूज्यश्री ब्यावर पहुंचने तक ४२ साधु सम्मिलित हो चुके थे। अतएव जब पूज्यश्री ने ब्यावर नगर में ४ संतों के साथ पदार्पण किया तो भगवान् महावीर के समय का दृश्य लोगों को याद आने लगा अहा! कितना भव्य दृश्य रहा होगा वह जब पूज्यश्री जैसे महान् धर्मनेता के नेतृत्व में इत मुनियों ने एक साथ प्रवेश किया होगा? उस समय ऐसा जान पड़ता था मानों धर्म इन मुनि का वेष धारण करके ब्यावर में सजीव हो रहा है!

ब्यावर की जनता का क्या पूछना! उसके हृदय की उमंगें हृदय में समाती नहीं थीं उत्साह की उद्दाम ऊर्मियां मनुष्यों के मानस-सरोवर में उमड़ रही थीं। हर्ष का पार नहीं था ब्यावर की जनता ने बड़ी उत्कंठा और उत्सुकता के साथ पूज्यश्री का तथा समस्त सन्तों का स्व गत किया।

कुछ दिनों में ब्यावर में ४५ सन्त एकत्र हो गये। मुनिश्री मोड़ीलालजी महाराज, मुनि चांदमलजी महाराज, मुनिश्री हरखचन्दजी महाराज, मुनिश्री (बड़े) गब्बूलालजी महाराज, पं र० मुनिश्री गणेशीलालजी महाराज आदि साधु प्रमुख थे।

ब्यावर में पूज्यश्री ने सम्प्रदाय के प्रमुख मुनियों के साथ सम्मेलन के सम्बन्ध में, सम्प्र दाय के विषय में तथा अन्य आवश्यक विषयों पर विचार किया।

पूज्यश्री ने सम्मेलन में प्रतिनिधि के रूप में सम्मिलित होने के लिए अपनी ओर से पां नाम निर्वाचित किये:—(१) मुनिश्री मोड़ीलालजी महाराज (२) मुनिश्री चांदमलजी महारा (३) मुनिश्री हर्षचन्दजी महाराज (४) पं० मुनिश्री घासीलालजी महाराज[1] और (५) पं मुनिश्री गणेशीलालजी महाराज।

---

१ मुनिश्री घासीलालजी महाराज उस समय ब्यावर में उपस्थित नहीं थे, अतएव उ बुलाने के लिए पहले संघ की ओर से पत्र दिया गया। किन्तु न वे आये और न पत्र का स चित उत्तर ही दिया। तब ब्यावर के मा० उग्रसिंहजी उनके पास गये और उन्होंने कहा—सम्मे लन के समय सभी सम्प्रदायों के सन्त अजमेर पधार रहे हैं तो आपको भी अवश्य उपस्थित हो चाहिए, ऐसा पूज्यश्री का फर्माना है। अतः आप ब्यावर की ओर पधारें। मगर फिर भी मुनि

किन्तु मुनिराजों ने पूज्यश्री के बिना सम्मेलन में सम्मिलित होना उचित नहीं समझा। पूज्यश्री से प्रार्थना की—'आप हमारे नायक हैं। आपका पथ-प्रदर्शन ही हमारे लिए मंगलमय होगा। आपके सम्मिलित होने से सम्प्रदाय की भी शोभा बढ़ेगी और साधु सम्मेलन की भी। अतएव कृपा कर आप अवश्य पधारें।' इस प्रकार मुनिराजों के आग्रह को देखकर पूज्यश्री ने फ़रमाया—'आप सबका मुझपर पूर्ण विश्वास है और आप मुझे सम्मेलन में सम्मिलित होने का आग्रह करते हैं तो फिर उचित यह होगा कि मैं अकेला ही सम्मेलन में जाऊं।'

पूज्यश्री का यह कथन समस्त मुनिराजों ने सहर्ष अंगीकार किया।

जैसे इंग्लैण्ड में होनेवाली राउण्ड टेबिल कान्फ्रेंस के लिए राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) की ओर से एकमात्र प्रतिनिधि महात्मा गांधी चुने गये थे, उसी प्रकार अजमेर के अ० भा० स्था० जैन साधु-सम्मेलन के लिए पूज्यश्री एकमात्र प्रतिनिधि निर्वाचित किये गये। सम्प्रदाय के सभी साधुओं ने नीचे लिखे अनुसार प्रतिनिधि पत्र लिखकर पूज्यश्री की सेवा में उपस्थित किया था—

श्रीमान् निज-परशास्त्र सिद्धान्ततत्त्वरत्नाकर, विद्वन्मुकुट चिन्तामणि, भव्यजनमानसराज हंस, भक्तगणकमलविकासन प्रभाकर, वाणीसुधासुधाकर, गाम्भीर्य-धैर्य-माधुर्य-औदार्य-शान्ति दया-दाक्षिण्यादि सद्गुणगण परिपूर्ण, रमणीय विशालभवन, ऐक्येच्छुकशिरोमणि, ज्ञानादिरत्नत्रय-संरक्षक, सिरताज जैनाचार्य पूज्यपाद श्री १००८ श्री श्री श्री जवाहरलालजी महाराज के चरण-कमलों में सर्वसंभोगी मुनिमण्डल की यह सविनय प्रार्थना है कि आप जिनशासन के उत्थान के लिए जैन-साधु-सम्मेलन, अजमेर में पधारकर जो कार्य करेंगे, हमें सर्वथा मान्य होगा। सम्वत् १९८९ माघ शुक्ला ६, शनिवार।

(सभी उपस्थित साधुओं के हस्ताक्षर)

श्री० रंगूजी महाराज की सम्प्रदाय की प्रवर्त्तिनी श्री आनन्द कुंवरजी म०, श्री० खेतूजी महाराज की सम्प्रदाय की प्रवर्त्तिनी श्री केशर कुंवरजी म० के तथा मौजूदा सब सतियों के भी इस प्रतिनिधिपत्र पर हस्ताक्षर हुए। इस पत्र द्वारा पूज्यश्री १९३ साधु-साध्वियों के प्रतिनिधि नियत हुए थे।

ब्यावर में मुनि-मण्डल से आवश्यक विचार-विनिमय करके पूज्यश्री ने ता० २८ फरवरी को विहार कर दिया। साधु-सम्मेलन का समय सन्निकट होने से तथा सम्मेलन में सम्मिलित-होनेवाले अन्य मुनिराजों से विचार-विमर्श करने के हेतु आप ब्यावर के आस-पास विचरने लगे। आपका होली-चतुर्मास बावरा ग्राम में हुआ।

युवाचार्य श्रीकाशीरामजी महाराज से भेंट

बावरे से विहार करके पूज्यश्री जेठाणा पधारे। उधर से पंजाब केसरी युवाचार्य श्रीकाशी-रामजी महाराज भी सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिए पधार रहे थे। जेठाना में दोनों महानु-भावों की भेंट हुई। दोनों बड़े प्रेम से मिले और सम्मेलन तथा समाज-सुधार-सम्बन्धी बातचीत की। दोनों ने साधु-सम्मेलन में विचारणीय विषयों की एक सूची तैयार की। वह नीचे लिखे अनुसार थी—

घासीलालजी म० नहीं पधारे। अन्त में पूज्यश्री ने मुनिश्री गब्बूलालजी म० तथा श्री मोहन-लालजी म० को उन्हें लाने के लिए भेजा। मगर खेद है कि फिर भी उन्होंने पूज्यश्री की आज्ञा का पालन न किया और वे इधर न आये।

(१) पक्खी, संवत्सरी आदि पर्वाराधन सारे सम्प्रदायों का एक ही समय में होना चाहिए। पर्वों का निर्णय केवल पंचांगों के आधार पर न करना चाहिए। अंग्रेजी महीनों में जिस प्रकार तारीखें निश्चित हैं और सभी कार्य नियमित रूप से निश्चित तारीख पर होते हैं उसी प्रकार पर्वाराधन के लिए तारीखें निश्चित करके साधारण नियम बना दिए जांय। जिससे सभी सम्प्रदाय तथा सभी प्रान्तों में एक ही तिथि पर पर्वाराधन हो और पंचांग की परतंत्रता और उससे होने वाले मतभेद न हों।

(२) मुनि विहार का कल्प, चातुर्मास और शेष काल के नियम भी बना लिए जांय जिससे कोई भी मुनि कल्प-मर्यादा को तोड़कर न रह सके।

(३) आवश्यक विधि (प्रतिक्रमणादि) का समय, पंचम आवश्यक में 'लोगस्स' का ध्यान तथा देवसी, रायसी, पक्खी, चौमासी, और सम्वत्सरी में भी 'लोगस्स' का ध्यान सभी सम्प्रदायों का एक रूप से होना चाहिए।

(४) शय्यातर किसे किस समय से समझना, इसका निर्णय।

(५) प्रतिदिन एक घर से बिना कारण आहार-पानी ले सकते हैं या नहीं? यदि ले सकते हैं तो एक दिन में कितनी बार।

(६) केले आदि पके हुए फल कल्प्य हैं या अकल्प्य?

(७) दर्शनार्थ आये हुए का आहार-पानी कितने दिन बाद ले सकते हैं?

(८) विहार में साथ रहने वाले गृहस्थों से आहार-पानी ले सकते हैं या नहीं?

(९) श्रावक प्रतिक्रमण में श्रावकसूत्र गिनना या श्रमणसूत्र भी?

(१०) दीक्षा लेने वालों की उम्र और जाति का निर्णय।

(११) अपनी-अपनी सम्प्रदाय में, आचारांग और निशीथ बिना पढ़े साधु को अग्रेसर बनाकर विहार नहीं कराना चाहिए।

(१२) सारे शिष्य और शास्त्र सम्प्रदाय के आचार्य की नेश्राय में हों। आचार्य होने पर प्रवर्त्तक अथवा मुख्य साधु की नेश्राय में हों। साध्विनी में प्रवर्तिनी अथवा मुख्य साध्वी की नेश्राय में ही शिष्याएं तथा शास्त्र हों। दूसरे की नेश्राय में न हों।

(१३) बिना कारण ३ से कम साधु और ४ से कम साध्वियां न विचरें।

(१४) गोचरी के काल के सिवाय गृहस्थ के घर में दो से कम साधु या साध्वियां प्रवेश न करें।

(१५) दीक्षा के समय वैरागी या वैरागिन से नीचे लिखा प्रतिज्ञापत्र लिखा लिया जाय—

"मैं संयम पालन करता हुआ आचार्य और उसके अभाव में प्रवर्त्तक, मुखिया सन्त या प्रवर्तिनी की आज्ञा में रहूंगा। आज्ञा बिना कोई भी काम नहीं करूंगा। मेरे पास की पुस्तक, पन्ने, शास्त्र आदि सभी वस्तुएं आचार्य की नेश्राय की हैं। कदाचित् मैं मोहवश सम्प्रदाय छोड़ कर जाऊं तो शास्त्रादि उपाधि आचार्य की नेश्राय में होने से मैं नहीं ले जाऊंगा।"

(१६) दीक्षा लेने वाले को वस्त्र-पात्र आदि उपकरण जितने चाहिएं उससे ज्यादा

(१८) प्रतिवर्ष चातुर्मास के लिए साधुओं का परिवर्तन किया जावे। उसमें आचार्य (यदि आचार्य न हों तो प्रवर्त्तक या मुखिया साधु) जैसा उचित समझें वैसा परिवर्तन करें। साथ चातुर्मास करने वाले साधु कारण विशेष के लिए परिवर्तन करने वाले से प्रार्थना कर सकते हैं, लेकिन आचार्य और उसके अभाव में प्रवर्त्तक या मुखिया साधु की आज्ञा अन्तिम तथा मान्य होगी।

(१९) दीक्षा देने का अधिकार आचार्य (उसके अभाव में प्रवर्त्तक या मुखिया साधु) को रहे। यदि कारणवश या अवसर देखकर वे स्वयं दीक्षा न दे सकें तो उनकी आज्ञा से दूसरे साधु भी दीक्षा दे सकते हैं।

(२०) मुनि-वेश में रहकर जिसने चौथा व्रत नष्ट किया है, उसे सम्प्रदाय से बाहर किया जावे। उसे दुबारा दीक्षा न दी जाय।

(२१) दूसरे गच्छ से आए हुए साधु-साध्वी को पुनः समझा कर उसी गच्छ में लौटा दें। यदि उस गच्छ के मालिक की आज्ञा आ जावे और योग्यता आदि देखकर उचित समझा जावे तो अपनी मर्यादा के अनुसार गच्छ में मिला सकते हैं।

(२२) दीक्षा छोड़कर जो साधु-साध्वी चला जावे और फिर दीक्षा लेना चाहे तो सम्प्रदाय के मुख्य श्रावकों की राय बिना दीक्षा न दी जावे। तीसरी वार तो दी ही नहीं जानी चाहिए।

(२३) साधु-साध्वी अपनी नेश्राय के भण्डोपकर गृहस्थ की नेश्राय में न रखें, न उनसे किसी भी समय उपकरण आदि उठवावें। गृहस्थ की लाई हुई कोई वस्तु अपने काम में न लावें।

(२४) पुस्तक, पाने, शास्त्र आदि उपाधि के लिए गृहस्थ के रुपए इकट्टे नहीं करवावें।

(२५) किसी तरह का कागज या चिट्ठी लिखकर गृहस्थ को न देवें।

(२६) आचार्य के सिवा चार साधु से ज्यादा न विचरें, न चातुर्मास आदि करें। ठाणापति साधु की बात अलग है।

(२७) साधु-साध्वी को स्थिरवास रहने की जब जरूरत पड़े तो आचार्य की आज्ञानुसार रहें। आचार्य भी जहां तक सम्भव हो, अलग-अलग क्षेत्र न रोकें। वैयावच के लिए रखे गए साधुओं का भी यथावसर परिवर्तन किया जाय।

(२८) प्रत्येक सम्प्रदाय के सब साधु-साध्वी एक या दो वर्ष में एक समय अपने-आचार्य से मिलकर सम्प्रदाय की भावी उन्नति का और साधु-आचार का विचार दृढ़ करें।

(२९) सुखे समाधे सारे साधुओं को सभी प्रांतों में विचरना चाहिए।

(३०) कोई साधु सम्प्रदाय में नया परिवर्तन आचार्य की स्वीकृति के बिना न करें।

(३१) श्रमण सूत्र सीखे बिना वैरागी को दीक्षा न दी जाय।

(३२) साधु-साध्वी गृहस्थ को अपने दर्शनों का नियम न करावें।

(३३) किसी गृहस्थ को दीक्षा लेने से पहले मुनि-वेश पहिनने की सम्मति नहीं देना, सहायता भी नहीं करना, 'स्वयं दीक्षा लेलो' यह सम्मति भी वारिस की आज्ञा बिना न देना, वह अपनी इच्छा से स्वयं दीक्षा लेले तो उसे अपने साथ नहीं रखना, अपने उतरने के मकान में नहीं ठहराना, आहार-पानी न स्वयं देना न दिलाना। यदि कोई साधु-साध्वी ऐसा करे तो उसे शिष्यहरण का प्रायश्चित्त लेना होगा।

(३४) साध्वियों को साधु के स्थान पर और साधु को साध्वियों के स्थान पर बिना कारण नहीं जाना व बैठना। यदि आवश्यकता हो तो पुरुष-स्त्री की साक्षी बिना न बैठे।

(३५) साधु-साध्वी अपना फोटो नहीं खिंचवावें।

(३६) सारी सम्प्रदाय की श्रद्धा प्ररूपणा एक ही रहनी चाहिए।

(३७) उत्सर्ग मार्ग में साधु-साध्वी को स्वदेशी वस्त्र ही रखने चाहिएं, दूसरे नहीं।

(३८) प्रत्येक साधु-साध्वी को चारों काल स्वाध्याय करना चाहिए। चारों समय का स्वाध्याय कम से कम १०० श्लोक का होना चाहिए। यदि किसी को शास्त्र न आता हो तो नवकार मन्त्र का जाप करें।

(३९) बिना कारण साबुन से कपड़े नहीं धोने चाहिएं।

(४०) आचार्य अथवा सम्प्रदाय के मुख्य सन्त की आज्ञा बाहर विचरने वाले साधु-साध्वी का व्याख्यान संघ के श्रावक-श्राविका और साधु-साध्वी नहीं सुनें। उसका किसी तरह पक्ष भी न करें और साधु को की जाने वाली विधिवन्दना आदर-सत्कार आदि भी नहीं करें। अन्नादि देने का निषेध नहीं है।

(४१) व्याख्यान के सिवाय साधुओं के मकान में स्त्रियों को और साध्वियों के मकान में पुरुषों को नहीं आना चाहिए। किसी कारण से आना पड़े तो स्त्री-पुरुष की साक्षी बिना न आवें।

(४२) सारे साधु-सम्प्रदाय में आचार्य की और साध्वी-सम्प्रदाय में प्रवर्तिनी की स्थापना की जावे।

अजमेर साधु-सम्मेलन

जिस महान् आयोजन के लिए चिरकाल से तैयारियां हो रही थीं उसका समय निकट आ पहुंचा। ता० ५ एप्रिल १९३३ मिति चैत्र कृष्ण दशमी का दिन साधु-सम्मेसन प्रारम्भ करने के लिए शुभ माना गया था। चारों तरफ से मुनिराज अजमेर में एकत्रित होने लगे। पंजाब, गुजरात, काठियावाड़, मारवाड़, मेवाड़, मालवा आदि विभिन्न प्रांतों में विचरने वाले साधुओं का एक जगह इकट्ठे होना जैन-समाज के लिए बिलकुल नई बात थी। भगवान् महावीर स्वामी के बाद अढ़ाई हजार वर्षों में पहले तीन बार साधु इकट्ठे हुए थे। पहले पटना में, दूसरी बार लगभग ३०० वर्ष पश्चात् मथुरा में और तीसरी बार वीरसंवत् ९८० में देवर्द्धिगणि क्षमा श्रमण के प्रयत्न से वल्लभीपुर में। अन्तिम सम्मेलन को हुए १५०० वर्ष बीत चुके थे। पूर्वोक्त सभी सम्मेलन शास्त्रों के उद्धार के लिये हुए थे।

वर्तमान परिस्थिति को देखते हुए समाज के अग्रणी इस बात का अनुभव कर रहे थे कि साधुओं में ज्ञान दर्शन और चारित्र की उन्नति के लिए तथा साधु-समाज का पुनः संगठन करने के लिए एक साधु सम्मेलन करने की अत्यन्त आवश्यकता है। दो वर्ष से इस कार्य के लिए डेपुटेशन घूम रहा था। धर्मवीर सेठ दुर्लभजी त्रिभुवन झवेरी इस आयोजना के विधाता थे और महान् परिश्रम कर रहे थे।

अन्त में वह प्रयत्न सफल हुआ। आठ-आठ सौ मील का लम्बा विहार करके, सरदी-गरमी तथा दूसरे परीषहों की परवाह न करके मुनिराज अजमेर के प्राङ्गण में पधार गए। ५ एप्रिल को प्रातःकाल पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज ने अपने सन्तों के साथ अजमेर में पदार्पण

किया। २६ सम्प्रदायों के २४० एकत्र हो गए।

पांच एप्रिल को सुबह नौ बजे मसैयों के नोहरे में सम्मेलन प्रारम्भ हुआ। प्रथम दिन प्रातःकाल की कार्रवाई खुले रूप में करने का निश्चय हुआ था। इसलिए दर्शनार्थी हजारों की संख्या में पहले से ही जमा हो गए। जनता तथा साधुओं में अपूर्व उत्साह था। सभी के हृदय में समाजोन्नति की भावना थी। बाहर से इतने दर्शनार्थी आए थे कि अजमेर में स्थान मिलना मुश्किल हो गया था। स्वागत समिति ने तम्बू तथा दूसरी व्यवस्थाएं विशाल परिमाण में की थीं।

सभी साधु एक ही पंक्ति में समान भूमि पर विराजे थे। छोटे-बड़े का भेद-भाव भुला दिया था। श्रावकों को सभी के दर्शनों का एक साथ लाभ मिल रहा था।

सवा नौ बजे कार्य प्रारम्भ हुआ। पूज्यश्री मुन्नालालजी महाराज ने नवकार मन्त्र द्वारा मंगलाचरण किया। इसके बाद शतावधानीजी, कविश्री नानचन्दजी महाराज तथा पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज ने प्रार्थना की। इसके बाद पूज्यश्री हस्तीमलजी महाराज ने सम्मेलन की सफलता के लिए संस्कृत पद्य उच्चारण किये।

इसके बाद शतावधानीजी तथा कविश्री नानचन्दजी महाराज का सम्मेलन की कार्रवाई के लिए निर्देशक (डाइरेक्टर) चुना गया। विभिन्न मुनिराजों ने सम्मेलन की सफलता के लिए अपनी कविताएं तथा सन्देश सुनाए। इसके बाद श्री दुर्लभजी भाई ने अखिल भारतीय श्रीसंघ की ओर से मुनियों का आभार माना।

पूज्यश्री का स्पष्टीकरण

साधु-सम्मेलन समिति का प्रतिनिधिमंडल जब जोधपुर में पूज्यश्री की सेवा में उपस्थित हुआ था, तभी पूज्यश्री ने उसे अपने उपयोगी विचार दर्शा दिये थे। पूज्यश्री ने स्पष्ट शब्दों में बतला दिया था कि सम्मेलन से पहले मुख्य-मुख्य मुनिराजों का एक सम्मेलन हो जाना आवश्यक है, जिससे महत्त्वपूर्ण और विवादग्रस्त विषयों पर विचार-विमर्श हो जाय और निर्णय करने में सुविधा रहे। किन्तु सम्मेलन का समय इतना सन्निकट रखा गया था कि यह सुझाव अमल में नहीं आ सका। मगर इसके इसके बिना सम्मेलन की वास्तविक सफलता संदिग्ध ही थी।

इसके अतिरिक्त गुजरात-काठियावाड़ के छोटी पक्ष के सन्त-सम्मेलन में सम्मिलित नहीं हुए थे। साथ ही सम्मेलन से पहले मुख्य-मुख्य मुनिराजों से पूज्यश्री का जो वार्तालाप हुआ था, उससे पूज्यश्री को समझने में देरी नहीं लगी कि अभी तक विभिन्न सम्प्रदायों के मुनिराज संघ-श्रेयस् के लिए यथोचित त्याग करने के लिए उद्यत नहीं हैं। अपनी-अपनी सम्प्रदाय का सभी को आग्रह है और सब एक गच्छ में सम्मिलित होकर एकता का सूत्रपात नहीं करना चाहते।

ऐसी परिस्थितियों में पूज्यश्री की तीक्ष्ण दृष्टि में सम्मेलन का भविष्य साफ दिखाई देने लगा। अतएव अजमेर पधार करके भी आपने सम्मेलन में, प्रतिनिधि के रूप में सम्मिलित न होने का निर्णय किया।

जब सम्मेलन आरम्भ होने लगा तो पूज्यश्री ने प्रतिनिधि मुनियों के समक्ष अपनी स्थिति स्पष्ट करते हुए कहा—

मैं एक बात स्पष्ट कर देना चाहता हूं। मेरे सम्प्रदाय के समस्त मुनियों ने तथा मुझ पर पूज्य भाव रखने वाली सभी सतियों ने मुझे अपनी ओर से एक मात्र प्रतिनिधि-निर्वाचित किया

है। मगर कतिपय कारणों से मैंने प्रतिनिधि रूप में सम्मिलित न होने का निश्चय किया है। मैं एक दर्शक के रूप में यहां उपस्थित हुआ हूँ। अगर इस सभा में सिर्फ प्रतिनिधि ही सम्मिलित हो सकते हों तो मुझे चले जाने में किंचित भी संकोच नहीं है।

यह स्पष्ट कर देना आवश्यक समझता हूँ कि सम्मेलन के प्रति मेरा विरोधी भाव नहीं है। जबतक सम्मेलन जारी रहेगा तब तक मैं अजमेर में ही ठहरने की इच्छा रखता हूं और आप चाहेंगे तो यथायोग्य सलाह-सूचना आपको देता रहूँगा। ऐसा करने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है। आप शास्त्रानुसार जो नियम-उपनियम बनाएँगे, उन्हें मैं सहर्ष लेकर अपने सन्तों और सतियों में बांट दूंगा।

पूज्यश्री के इस वक्तव्य को सुनकर प्रतिनिधि मुनियों ने आपसे बैठक में ही विराजने की प्रार्थना की। और सलाहकार के रूप में योगदान करने का आग्रह किया। तदनुसार आप साधु-सम्मेलन में सलाहकार के रूप में सम्मिलित हुए और महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर अपनी सम्मति प्रकट करके सम्मेलन का मार्ग-प्रदर्शन किया।

पूज्यश्री ने वर्द्धमान संघ की महत्त्वपूर्ण योजना सम्मेलन में रखी। सभी मुनिराजों ने योजना का हार्दिक स्वागत किया मगर अमल में लाने में अपनी असमर्थता प्रकट की।

वास्तव में पूज्यश्री द्वारा प्रस्तुत योजना अत्यन्त उपयोगी थी और उसे काम में लाये बिना संघ का यथोचित अभ्युदय होना कठिन है। पाठकों की जानकारी के लिए योजना यहां दी जारही है।

श्रीवर्द्धमान संघ योजना

वर्तमान कालीन सम्प्रदायों की प्रवृत्ति भिन्न-भिन्न प्रणाली से चल पड़ने से शासन संगठन अस्त-व्यस्त हो गया है। इससे श्रद्धा पुरूपणा और आचार व्यवस्था की पुरूपणा एकमुखी होने के बदले शतमुखी हो गई है। इस आपत्ति को मिटाने का सरल और सीधा उपाय यह है कि एक ऐसा संघ निर्माण किया जावे, जिसमें सम्मिलित होकर आत्मार्थी मुनिगण एक प्रणाली में चल सकें। इसके लिए 'वर्द्धमान संघ' की स्थापना करना उचित होगा। क्योंकि जब तक शास्त्र सम्मत नाम वाला संघ न स्थापित किया जाय, तब तक किसी भी सम्प्रदाय के मुनिगण अपनी सम्प्रदाय को छोड़कर दूसरे की सम्प्रदाय में सम्मिलित न हो सकेंगे। इस आपत्ति को मिटाने के लिए 'वर्द्धमान संघ' नाम के संघ की स्थापना करना उचित होगा। यह नाम रखने से किसी भी सम्प्रदाय के मुनियों को यह खयाल न होगा कि मैं अपनी सम्प्रदाय को छोड़कर दूसरे की सम्प्रदाय में क्यों जाऊं। प्रत्युत यह खयाल आना स्वाभाविक है कि जब समस्त सम्प्रदायों के कल्याणार्थ और भविष्य में चिरकाल तक संघ मजबूत रीति से चलता रहे, इसके लिए एक शास्त्र सम्मत संघ का निर्माण होता है और उसमें किसी का पक्ष नहीं है। तो फिर ऐसे संघ में सम्मिलित होने से हमारा भी गौरव बढ़ता है और जैन शासन का भी गौरव बढ़ता है।

[अपना और पराए का कल्याण करना ही मुनि-समुदाय का परम कर्त्तव्य है।] किन्तु जब तक समस्त मुनि-महात्माओं की श्रद्धा पुरूपणा आदि एक न हो, तब तक विद्वान् मुनि महाराज अपना कल्याण तो किसी प्रकार कर भी सकते हैं, परन्तु साधारण स्थितिवाले मुनिगण एवं साध्वी-समुदाय और श्रावक-श्राविकाओं की, जब तक श्रद्धा पुरूपणा तथा व्यवहार समाचारी एक — —, कल्याण सधना अत्यन्त कठिन है। ऐसी अवस्था में ऐसे कौन मुनि महात्मा होंगे, जो पक्ष

को छोड़कर—सबके कल्याण में अपना कल्याण है, इस बात को मान नवनिर्मित वर्द्धमान संघ में सम्मिलित होने से इन्कार करेंगे। अपितु सभी मुनि-महात्मा इस संघ में सम्मिलित होंगे।

"वर्द्धमान संघ' यह नाम ही महान् कल्याणकारी है। इस नाम पर श्रीमान् चरम तीर्थंकर श्री वर्द्धमान जिन, जिन का यह शासन है, के नाम की छाप लगी हुई है। इसके सिवाय इस सङ्घ का नाम किसी व्यक्ति का सम्प्रदाय विशेष के नाम पर नहीं है। इसलिए इस नाम के विषय में किसी प्रकार के तर्क-वितर्क को स्थान नहीं है।

वर्द्धमान संघ के नियम

(१) इस सङ्घ का जातिकुल सम्पन्न, द्रव्य क्षेत्र काल और भाव का ज्ञाता, आचारादि मुनिक्रिया में निष्णात और नवीन सङ्घ का भार उठाने में समर्थ ऐसा एक सर्वमान्य मुख्याचार्य स्थापित करना चाहिए।

(२) मुख्याचार्य की अधीनता में उपरोक्त गुण युक्त अनेक उपाचार्य, उपाध्याय, प्रवर्त्तक, गणावच्छेदक, आदि स्थापित किए जायं और इनकी अधीनता में यथायोग्य मुनियों को कार्यकर्ता स्थापित कर कार्यभाग सौंप दिया जावे। अपनी अधीनता के मुनि-महात्माओं की देख रेख और आचार-विचार ज्ञान-ध्यान आदि की साल सम्भाल बड़े मुनि-महात्मा करें और अधीनस्थ मुनि-महात्मा, जिनकी अधीनता में हैं उनकी आज्ञानुसार विनय-भक्ति-व्यावच आदि समस्त कार्य करें।

(३) साध्वी-समुदाय में मुख्य प्रवर्तिनी और प्रवर्तिनी के नीचे गणावच्छेदिनी आदि स्थापित की जांय।

(४) मुख्याचार्य जिस साधु-साध्वियों का संवाड़ा बांध देवें, उन साधु-साध्वियों को उस संघाड़े में रहना होगा।

(५) देश-विदेश भेजने या चातुर्मास कराने के लिए जो संघाड़े बांधे जावें, उनमें साधुओं के एक संघाड़े में २ से कम साधु और साध्वियों के एक संघाड़े में ४ से कम साध्वियां न होनी चाहिए।

(६) चातुर्मास या पूर्ण शेष काल में साधु और साध्वी-किसी एक ही ग्राम में मुख्याचार्य की आज्ञा बिना न रह सकेंगे।

(७) आचार्य के समीप उस ग्राम नगर में साध्वियां मर्यादापूर्वक रह सकती हैं।

(८) जहां तक हो सके प्रवर्तिनी उसी ग्राम या नगर में चातुर्मास करें, जहां मुख्याचार्य का चातुर्मास हो।

(९) वर्द्धमान संघ की जो समाचारी तैयार की जावे, सभी साधु-साध्वियों को तदनुसार वर्तना होगा। यदि कोई साधु-साध्वी मोहवश उस समाचारी का उल्लंघन करे तो खोट बातों का प्रायश्चित्त उपाचार्य गणावच्छेदक, प्रवर्त्तक, प्रवर्तिनी आदि से लेना होगा और बड़ा प्रायश्चित्त छेद या मूल देना हो तो ऐसा प्रायश्चित्त देने का अधिकार उपाचार्य आदि को भी रहेगा, परन्तु उस दोष की आलोचना मुख्याचार्य को सुनानी होगी। आलोचना सुनने और प्रायश्चित्त में कम ज्यादा करने का अधिकार मुख्याचार्य को पूर्णरीति से होगा।

(१०) इस संघ के साधु-साध्वी जिसे भी श्रद्धा दें उसे वर्द्धमान संघ के नाम से श्रद्धा देवें। वर्द्धमान संघ के मुख्याचार्य को धर्माचार्य (गुरु) श्रद्धवें और श्रावक-श्राविकाओं को उन्हीं

की श्रद्धा में करें।

(११) जिस पुरुष-स्त्री को दीक्षा देनी होगी, उसकी आयु, प्रकृति, शिक्षा, जाति, कुल, वैराग्य और सम्बन्धियों की आज्ञा आदि की जांच जब तक मुख्याचार्य स्वयं या किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा न करा लें और दीक्षा देने को आज्ञा न दे दें तब तक कोई साधु-साध्वी किसी को दीक्षा न दे सकेंगे। प्रत्येक दीक्षा मुख्याचार्य की स्वीकृति से ही होगी।

(१२) शिष्य मुख्याचार्य की और शिष्या प्रवर्तिनी की नेश्राय में की जावें, जिससे खींचातानी और संघ के टुकड़े न हों।

(१३) साधु-साध्वियों को शास्त्र-साहित्य पढ़ाने और उपदेश की शिक्षा देकर योग्यता उत्पन्न करने के लिए मुख्याचार्य प्रबन्ध करें, जिससे विद्वान् साधु और विदुषी साध्वियां बन सकें। यदि मुख्याचार्य उचित समझें तो इस विषय में उपाचार्य, उपाध्याय, आदि की भी सम्मति ले लें।

(१४) हस्तलिखित शास्त्र पुस्तक, पाने आदि मुख्याचार्य की नेश्राय में रहें और वे योग्यतानुसार साधु-साध्वियों को पढ़ने के लिए दे दें। गच्छ छोड़ कर या संयम त्याग कर जाने वाले को शास्त्र आदि अपने साथ ले जाने का अधिकार न होगा।

(१५) शास्त्र आदि लिखने वाले साधु-साध्वी भी तैयार किए जावें, जिससे शुद्ध और सुन्दर लिपि के शास्त्र एवं साहित्य की वृद्धि हो।

(१६) साध्वियों से बिना कारण आहार-पानी लेना-देना आदि शास्त्र में वर्जित है, इस लिए आहार-पानी आदि का संभोग न किया जावे।

(१७) इस गच्छ में प्रवेश होने के लिए आलोचना का एक खरड़ा तैयार किया जाय और उस मुआफिक प्रत्येक साधु-साध्वी को प्रतिज्ञापूर्वक सच्चे दिल से पूर्वनिश्चित मुख्य-मुख्य महात्माओं के पास आलोचना कराकर, उस आलोचना में यदि व्रतों में त्रुटि न हो तो जिस दिन सर्वप्रथम दीक्षा ली है, उसी दिन को दीक्षामिति कायम किया जाय और उसी मुआफिक छोटे बड़े का दर्जा समझा जाय। इस खरड़े के मुताबिक कार्य हो जाने पर ही साधु-साध्वियों को संघ में सम्मिलित किया जावेगा, अन्यथा नहीं।

(१८) मुख्याचार्य जिस साधु-साध्वी को अयोग्य समझेंगे वह इस संघ में प्रविष्ट न हो सकेगा।

(१९) वर्द्धमान संघ के मुख्य आचार्य जिस साधु-साध्वी को अलग कर दें, उसके लिए सर्वसङ्घ को चाहिए कि वह उसे साधु-साध्वी न माने और साधु-साध्वी को की जाने वाली विधि वन्दना भी उसे न करें। यह नियम तभी तक है, जबतक वह मुख्याचार्य से प्रायश्चित्त लेकर संघ में सम्मिलित न हो जावे।

(२०) किसी साधु-साध्वी को दोष के कारण संघ से अलग करने का समय आवे तो उसे मुख्याचार्य की परवानगी लेकर ही अलग किया जावे। हां, मुख्याचार्य की स्वीकृति के बिना जिनके साथ वह साधु-साध्वी है, वे साधु-साध्वी आहार-पानी वन्दन आदि संभोगवृत्ति न करें, परन्तु जब तक मुख्याचार्य की आज्ञा न हो उस साधु-साध्वी को अपने पास से न तो अलग ही किया जावे न उसे अलग करने के विषय की कोई घोषणा ही संघ में की जावे। यदि जाहर

व्यवहार विगड़ गया हो तो संघ में यह प्रकट करे कि इस विषय की सब सूचना मुख्याचार्य को दे दी गई है और उनका हुक्म जब तक न आ जावे, तब तक इसके साथ सम्भोग न रखते हुए भी हम इसे अपने पास रखते हैं। मुख्याचार्य का हुक्म आने पर उनकी आज्ञानुसार कार्य किया जावेगा।

(२१) कोई साधु-साध्वी छन्द या कविता बनावे तो मुख्याचार्य को या मुख्याचार्य जिसके लिए कहे उसे बताए बिना और मुख्याचार्य की स्वीकृति लिए बिना लोगों में प्रसिद्ध न करे। केवल स्तुति-रूप बोलने की बात अलग है, परन्तु उस में संघ की श्रद्धा के विपरीत बात न आनी चाहिए। और आचार्य के पास रजू करने पर उनके कथनानुसार फेर-फार करना होगा।

(२२) वर्द्धमान-संघ के साधु-साध्वियों की श्रद्धा पुरूपणा एक रहनी चाहिए। जो मुख्याचार्य श्रद्धे, पुरुपे, वैसा ही सब साधु-साध्वियों को श्रद्धना प्ररूपणा चाहिए। यदि किसी को कोई तर्क उत्पन्न हो और वह तर्क संघ-परम्परा के विरुद्ध हो तो जब तक मुख्याचार्य से उसका समाधान न हो जावे तब तक प्रसिद्ध रूप में किसी के पास पुरूपणा नहीं करें। मुख्याचार्य के पास निवेदन करने पर भी यदि उन्हें वह तर्क ठीक जंचे तो उसके मुआफिक श्रद्धा पुरूपणा करने का मुख्याचार्य को अधिकार है। और उनसे पास हो जाने पर सबकी श्रद्धा पुरूपणा उसी मुआफिक रहे।

(२३) वर्द्धमान-संघ की जो समाचारी तैयार की जावे वह शास्त्रसम्मत और द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को देखकर होनी चाहिए। जिन बातों का शास्त्र में निषेध है। किन्तु अपवाद मार्ग में विधान शास्त्रसम्मत है, ऐसी बातों को ध्यान में रखकर तथा लौकिक लोकोत्तर से अविरुद्ध जिताचार से समाचारी बांधने की आवश्यकता है। उस समाचारी में समय-समय पर देश कालानुसार फेरफार करने का मुख्याचार्य को पूर्ण अधिकार रहेगा।

(२४) पाटपरम्परा के विषय में वर्द्धमान-संघ की यह धारणा रहेगी कि भगवान् महावीर स्वामी का संघ भगवती सूत्र २० शतक के उद्देश्य ८ के पाठानुसार इक्कीस हजार वर्ष तक अविच्छिन्न रहेगा। उसमें चतुर्विध संघ शुद्ध श्रद्धा पुरूपणा वाला रहा है और रहेगा। इसके अनुसार उन सब महानुभाव आचार्यों को यह संघ प्रमाण रूप मानता हुआ यह पाटपरम्परा कायम करता है कि अब से पाटपरम्परा वर्द्धमान-संघ के मुख्याचार्य से ही मानी जावेगी। क्योंकि वर्तमान काल में अलग-अलग सम्प्रदाय में अलग-अलग पाटपरम्परा की पाटावलियां हैं। इसलिए आगे एक परम्परा कायम करने के लिए उपरोक्त पाटपरम्परा कायम की जाती है।

(२५) वर्द्धमान-संघ की पाटावली में शास्त्रोक्त सर्वमान्य आचार्यों का उल्लेख करके बाद में वर्द्धमान-संघ के आचार्यों से पाटपरम्परा लिखी जावे। भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के भिन्न आचार्यों का नामोल्लेख न किया जावे। जिससे एकता कायम करने में किसी प्रकार की बाधा उपस्थित न हो।

शुद्धिपत्र

जो मुनि 'वर्द्धमान-संघ' में प्रविष्ट होना चाहें उन्हें अपनी शुद्धि के लिए अरिहन्त, सिद्ध तथा अपनी आत्मा की साक्षी से सत्य को सिर पर रख कर नीचे मुताबिक आलोचना करनी चाहिए।

ज्ञान—११ अंग, १२ उपांग, ४ मूल, ४ छेद तथा आवश्यक इन ३२ शास्त्रों के मूल

पाठ को अक्षरशः प्रमाणस्वरूप सत्य-रूप न माना हो तथा उक्त शास्त्रों से अविरोधी वचनों को छोड़ कर शेष ग्रन्थों को प्रमाण भूत माना हो।

दर्शन—१८ दोष रहित वीतराग देव, तथा उनकी आज्ञा में विचरने वाले निर्ग्रन्थ गुरु, एवं सर्वज्ञप्रणीत निरारम्भ निष्परिग्रह स्वरूप वाला अहिंसामय धर्म इन तीन तत्त्वों सत्य-स्वरूप न श्रद्धा हो तथा इनके विपरीत अर्थात् कुदेव, कुगुरु, कुधर्म को देव, गुरु, धर्म श्रद्धा हो। एवं आरम्भ परिग्रह मूर्ति मन्दिर आदि के सवद्य कार्यों में धर्म श्रद्धा प्ररूपा हो, धोवण आदि अचित्त पदार्थों में जीव की शंका की हो, धान्यादि बीज में जीव न श्रद्धे हों, अनुकम्पादान में एकान्त पाप श्रद्धा हो तथा मिथ्यात्वी की करणी को वीतराग की आज्ञा-स्वरूप मोक्ष का मार्ग श्रद्धा हो।

चारित्र—(१) जान बूझ कर प्राणियों की हिंसा की हो।

(२) ,, ,, झूठ बोला हो।

(३) ,, ,, स्वधर्मी या परधर्मी या परधर्मी का अदत्त लिया हो। शिष्य, वस्त्र, पात्र, पुस्तक आदि की चोरी की हो।

(४) जानबूझ कर विषय-विकार के लिए मनुष्यणी या तिर्यंचणी का स्पर्श किया हो, कुचेष्टा की हो, अनाचार सेवा हो, हस्त-मैथुन किया हो। ऐसे ही साध्वी ने पुरुष के साथ किया हो। तथा साधु ने किसी अन्य पुरुष के साथ हस्त-मैथुन किया हो या अन्योऽन्य मैथुन-कर्म किया हो या अन्य किसी तरह की कुचेष्टा की हो, ऐसे ही साध्वी ने किसी अन्य स्त्री के साथ दुर्व्यवहार किया हो।

(५) जानबूझकर पैसा, रुपया, मोहर, सोना, चांदी जेवर, धातु, नोट, कार्ड, लिफाफे, टिकिट आदि परिग्रह रखा हो।

(६) जान बूझकर अस्त्र, पान, खादिम, स्वादिम, औषध, सूंघने या मसलने की चीजें रात्रि में रखी हों, या भोगी हों, तथा प्रथम प्रहर की उपरोक्त चीजें सुखे समाधे चतुर्थ प्रहर में भोगी हों।

(७) जान बूझकर आधाकर्मी तथा मोल का आहार, वस्त्र, पात्र आदि भोगे हों।

(८) जान बूझकर आधाकर्मी मकानों में उतरे हों।

(९) जान बूझकर सचित्त पानी, बीज, हरित, फल, फूल आदि भोगे हों।

(१०) क्रोधवश किसी पर लाठी, मुक्की, थप्पड़, आदि से प्रहार किया हो।

(११) यन्त्र-मन्त्र, टूना, टोटका, यज्ञ, होम आदि सवद्य कार्य किए हों या कराए हों। गृहस्थ को इस लोक के वास्ते यन्त्र मन्त्रादि सिखाए हों।

तप—आहार करके अनशन की प्रसिद्धि की हो।

श्रावक-श्राविकाओं के संगठन के लिए श्रावक समाचारी

(१) वर्द्धमान-संघ की स्थापना हो जाने पर, वर्द्धमान संघ के मुख्याचार्य को ही सब श्रावक—श्राविका अपना धर्माचार्य मानें। अर्थात् गुरू आम्नाय श्रद्धा प्ररूपणा उन्हीं की रखें। किन्तु उनके सिवा दूसरे साधुओं की अलग गुरु आम्ना स्वीकार नहीं करें।

(२) मुख्याचार्य स्थापित हो जाने पर भूतकाल में जो गुरु आम्नाय श्रावक-श्राविका ने ले रखी हैं, उसे परिवर्तन करके वर्द्धमान-संघ के मुख्याचार्य की गुरु आम्ना स्वीकार करें। (खुलासा)

इसका मतलब यह नहीं है कि पूर्व गुरुओं को अगुरु समझ कर यह परिवर्तन किया। किन्तु पूर्व के सदाचारी गुरुओं का उपकार मानते हुए, जैसे भगवान पार्श्वनाथ के सन्तानिक साधु भगवान महावीर के शासन में प्रवेश होने के समय में अपने पूर्व–गुरु तथा प्रवज्या को शुद्ध मानते हुए शासन-संगठन के महान् उद्देश्य को लेकर प्रविष्ट होते हैं, उसमें उन महामुनियों की भावना संघ में एकता बढ़ाने की ही होती है। इसी तरह इस नव निर्मित वर्द्धमान-संघ के आचार्य की गुरु आम्नाय धारण करने के श्रावक-श्राविकाओं की पूर्व आचरित श्रद्धा में कोई दोष नहीं आता है। और न दोष समझ कर ही गुरु आम्नाय बदली जाती है। किन्तु संघ-संगठन रूप महान् उद्देश्य को लेकर गुरु आम्नाय का परिवर्तन किया जाता है। इसलिए कोई भी श्रावक-श्राविका यह सन्देह न करें कि इतने काल तक पालन की हुई हमारी श्रद्धा बेकार गई। किन्तु यह सरलता धारण करनी चाहिए कि जब अनेक सम्प्रदाय के साधु-साध्वी अपने-अपने गच्छ का परिवर्तन करके नूतन वर्द्धमान-संघ के मुख्याचार्य की आज्ञा स्वीकार करते हैं और उन्हीं की नेश्राय में रहते हैं, तो फिर हम श्रावक-श्राविकाओं को वर्द्धमान-संघ के मुख्याचार्य की आम्ना धारण करने में कोई हानि नहीं, किन्तु लाभ ही है।

(३) वर्द्धमान-संघ के मुख्याचार्य की नेश्राय बिना आज्ञा बाहर स्वच्छन्दता के विचरने वाले साधु-साध्वियों को गुरु समझ कर वन्दन-सत्कार आदि क्रिया न करें, किन्तु अनुकम्पा करके अन्नादि देने का निषेध न समझें।

(४) जिन साधु-साध्वियों को मुख्याचार्य अपनी आज्ञा से बाहर करदें, और फिर जब तक उनको सङ्घ में सम्मिलित न करें, तब तक उनके साथ किसी प्रकार का पक्षपात श्रावक-श्राविका न करें। उनको मदद न देवें, वन्दनादि सत्कार भी नहीं करें, और न उनका व्याख्यानादि ही सुनें।

(५) वर्द्धमान-सङ्घ के मुख्याचार्य की समाचारी के विरुद्ध यदि कोई साधु-साध्वी प्रवृत्ति करे, तो उसकी सूचना मुख्याचार्य को श्रावक-श्राविका करें। जिससे मुख्याचार्य विपरीत प्रवृत्ति करने वाले साधु का उचित प्रबन्ध करें या किसी साधु को आज्ञा देकर कराएं।

(६) धर्म-क्रिया तथा व्यवहार-क्रिया के लिए जो मकान श्रावक लोग खरीदें, अथवा नया तैयार करावें; उसमें साधु-साध्वियों का भाव न मिलावें, जिस से उस मकान में उतरने में साधु-साध्वियों को दोष न लगे। साधु-साध्वियों को उतारने के लिए बनवाया या खरीदा हुआ मकान हो तो उसमें साधु-साध्वियों को नहीं उतारें, न उतरने ही दें।

(७) वर्द्धमान-सङ्घ स्थापित होने से पहले जो मकान, धर्म-क्रिया के लिए बनाया या खरीदा हो, उन मकानों में साधु का भाव न मिलने का निर्णय, वर्द्धमान-सङ्घ का मुख्याचार्य अथवा उनकी आज्ञा से अन्य कोई साधु जब तक न करले, तब तक उन मकानों में साधु-साध्वी न उतरें। भाव न मिलने का निर्णय हो जाने पर मुख्याचार्य की आज्ञा से साधु-साध्वी उन मकानों में उतर सकते हैं।

(८) वस्त्र, पात्र, पुस्तक, अन्नादि उत्सर्ग अपवाद मार्ग में कल्पने वाली वस्तु जो साधु कल्प के विरुद्ध हों, उन वस्तुओं को कोई भी समझदार श्रावक-श्राविका, साधु-साध्वियों को न दें। और आमंत्रित भी न करें। कल्पाकल्प का निर्णय नहीं जानने वाले भोले श्रावक-श्राविकाएं

यदि उक्त प्रवृत्ति करें तो समझदार श्रावक-श्राविका उन्हें रोकें और साधु-साध्वियों को वे चीजें न लेने की अर्ज करें।

(९) साधु-साध्वी के नेश्राय के वस्त्र, पात्र, पुस्तकादि श्रावक-श्राविका अपने घर तथा अपनी देख-रेख में न रखें। यदि कोई अनजान श्रावक-श्राविका ऐसा करें, तो समझदार श्रावक-श्राविका उपाधि रखने रखाने वालों को रोकें और मुख्याचार्य को तुरन्त सूचित करें। जिस से कि मुख्याचार्य उस प्रवृत्ति करने वाले साध्व-साध्वी को रोके और उन्हें प्रायश्चित्त लेकर शुद्ध करें।

(१०) साधु के कल्पा-कल्प की जो समाचारी वर्द्धमान-सङ्घ के मुख्याचार्य की आज्ञा से तैयार हो, उसको प्रत्येक ग्राम-नगर का श्रावक-सङ्घ अपने सङ्घ में फैलाने की कोशिश करे। जिससे सर्व-साधारण को कल्पा-कल्प का ज्ञान रहे। यदि उस समाचारी में मुख्याचार्य की आज्ञा से कुछ फेर-फार हो, तो वह भी सर्वसाधारण को समझाएं, जिससे सङ्घ में दोष की ओर से विशुद्धि रहे। तथा पारस्परिक मत-भेद एवं फूट न फैलने पाए।

(११) प्रतिक्रमण की वन्दना में धर्माचार्य के स्थान पर वर्द्धमान-सङ्घ के मुख्याचार्य और उनकी आज्ञा में रहने वाले साधु-साध्वियों की वन्दना करें तथा चौबीसी की प्रार्थना के पश्चात् वर्द्धमान-सङ्घ के मुख्याचार्य की प्रार्थना पद्य में अवश्य बोलें और नवकार मंत्र आदि के स्मरण के साथ मुख्याचार्य के स्मरण की भी कम-से-कम एक माला अवश्य फेरनी चाहिए।

अजमेर से विहार

साधु-सम्मेलन की कार्रवाई पूर्ण होने के पश्चात् पूज्यश्री ने अजमेर से विहार किया और मार्गवर्त्ती स्थानों में धर्मजागरण करते हुए ठा० २२ से बगड़ी-सज्जनपुर पधारे। बगड़ी में आपके व्याख्यान सुनने के लिए वहां के ठाकुर साहब भी आते थे और हरिजन भाई भी आते थे। आपके उपदेश मनुष्य-मात्र के लिए थे। श्रोताओं पर आपकी वाणी का अच्छा प्रभाव पड़ा। मुसालिया में दो तेरहपंथी भाइयों ने सम्यक्त्व ग्रहण किया।

बगड़ी से विहार कर पूज्यश्री देवगढ़, गंगापुर, साहाड़ा, लाखोला, पोटला, आरणी आदि स्थानों में धर्मोपदेश करते हुए राशमी पधारे। पोटला में बहुत से तेरहपंथी भाइयों ने भी पूज्यश्री के उपदेशों से लाभ उठाया। आरणी में जैनेतरों ने माताजीके मंदिर में होने वाली बलि बंद कर दी।

यहाँ से पूज्यश्री कपासन पधारे। कपासन के माहेश्वरी भाइयों में तड़बंदी थी और वह भी साधारण नहीं बल्कि सौ घरों में नौ धड़े थे! धड़े भी बहुत पुराने पड़ गए थे। संवत् १९२२ से चले आते थे। पूज्यश्री के उपदेशामृत की वर्षा से सारा वैमनस्य साफ हो गया। धड़ाधड़ धड़े टूटने प्रारम्भ हुए। पूज्यश्री सिर्फ तीन दिन यहाँ विराजे और इतने अल्पकाल में ही सब धड़े टूट गये। ओसवालों और ब्राह्मणों का मन-मुटाव भी मिट गया। इस प्रकार चिरकाल से चली आई अशान्ति पूज्यश्री के उपदेश से शान्ति के रूप में परिणत हो गई!

चित्तौड़ आदि अनेक स्थानों के करीब हजार-आठ सौ भाई पूज्यश्री के दर्शनार्थ उपस्थित हुए। पूज्यश्री ने उन्हें भी प्रेम और एकता का उपदेश दिया।

पूज्यश्री कपासन से सनवाड़ और फिर मावली और उँटासा पधारे। यहाँ आपको पूज्यश्री मुन्नालालजी महाराज के स्वर्गवास के समाचार मिले। समाचार मिलते ही आपने ध्यान किया।

जयध्वनि और गीतों का गाना बंद करके स्वर्गीय महात्मा के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट की। पूज्यश्री ने तथा युवाचार्य पं० मुनिश्रीगणेशीलालजी महाराज आदि संतों ने उपवास किया।

कुछ दिन वहाँ विराजकर मावली पधारे। मावली में मुनिश्रीघासीलालजी महाराज पूज्यश्री से मिले। इस विषय का वर्णन आगे किया जायगा।

उदयपुर का श्रीसङ्घ अपने नगर में पूज्यश्री का चौमासा कराने के लिए अत्यन्त उत्कंठित था। अनेक बार श्रावकगण प्रार्थना करने के लिए पूज्यश्री की सेवा में उपस्थित हुए थे। इस बार अनुकूल संयोग होने से उनकी प्रार्थना स्वीकृत हुई। पूज्यश्री कई स्थानों में धर्म का प्रचार करते हुए चौमासे आरंभ होने के समीप उदयपुर पधार गये।

एकतालीसवां चातुर्मास (संवत् १९९०)

पूज्यश्री संवत् १९९० का चातुर्मास ठा० १३ से मेवाड़ की राजधानी उदयपुर में व्यतीत किया। उदयपुर की धर्मामृत-पिपासु जनता को इससे कितना हर्ष हुआ यह कौन कह सकता है? उसकी चिरकालीन लालसा पूरी हुई। आनन्द छा गया।

पूज्यश्री के व्याख्यानों में हजारों श्रोताओं की उपस्थिति होना, उच्चतम पदाधिकारियों का आना और उन पर प्रभाव पड़ना तो साधारण बात थी। वह सब यहां भी हुआ।

तपस्वी मुनिश्री किशनलालजी महाराज ने ४१ दिन की और तपस्वी श्रीकेसरीमलजी महाराज ने ६० की तपस्या गर्म जल के आधार पर की। गोगुन्दा निवासी श्रावक श्रीगणेशलालजी-ने ४५ दिन के उपवास किये।

साधु-सम्मेलन के नियमानुसार पूर के उपलक्ष्य में बाहर कहीं आमंत्रणपत्रिकाएं नहीं भेजी ईं। संवत्सरी के दिन श्रीकेसरीमलजी महाराज के तप का पूर था। उस दिन लगभग ७०० ौषध हुए।

उन्हीं दिनों उदयपुर में 'जैन-नवयुवक-मंडल' की स्थापना हुई। पूज्यश्री के उपदेश से ई स्थानों की तड़बंदियां मिट गईं और परस्पर प्रेम का संचार हुआ।

एक बहुत बड़ी और उल्लेखनीय घटना यहां यह हुई कि पूज्यश्री के एक ही उपदेश से स्थानीय तथा किसी जातीय प्रसंग पर बाहर से आये हुए करीब दो हजार चमारों ने मांस, मदिरा और परस्त्री-गमन का त्याग कर यह सिद्ध कर दिया कि शूद्र कहलाने वाले भाई भी उपेक्षा के ात्र नहीं। उच्च कुलीन लोग तो अपने कुलक्रम से आगत संस्कारों की बदौलत अभक्ष्यभक्षण आदि अनेक दोषों से प्रायः बचे रहते हैं और इस दृष्टि से उन्हें उपदेश की उतनी आवश्यकता नहीं रहती जितनी निम्नश्रेणी के कहे जाने भाइयों को रहती है। इसी कारण पूज्यश्री के व्याख्यान में आने की किसी को कोई रुकावट नहीं थी। कदाचित् कोई उच्च कुलाभिमानी किसी प्रकार की रुकावट डालता भी तो पूज्यश्री उसे सहन नहीं करते थे।

एक बार पूज्यश्री ने इस विषय में बड़ी ही दृढ़ता और तेजस्विता से परिपूर्ण वाणी उच्चारण की थी।

रतलाम में पूज्यश्री ने फरमाया था:—

'जब समाज व्यवस्था आरंभ हुई तब एक वर्ग को सेवा का कार्य सौंपा गया। वह वर्ग अगर सेवा करता है तो क्या कुछ बुरा करता है? एक ओर चँवर-छत्र धारण किये कोई महिला

हो और दूसरी और मेहतरानी हो तो इन दोनों में जन साधारण के लिए उपयोगी कौन है? सोने की डंडी वाले चँवर तो किसी विरले पर ही ढोरे जा सकते हैं तथा उनके अभाव में किसी का कोई काम भी नहीं रुकता; लेकिन मेहतरानी तो जन-साधारण के लिए उपयोगी है। ऐसा होते हुए भी अगर आपको चामर-छत्रधारिणी ही अच्छी लगती है तो कहना चाहिए कि आप वास्तविकता से दूर हट रहे हैं। अभी आपको ज्ञान नहीं है। मेहतरानी गटर साफ करती है और नगर की जनता को रोगों से बचाती है। वह नगर की जनता के प्राणों की रक्षिका है। उसकी सेवा अत्यन्त उपयोगी और अनुपम है। फिर भी चँवर वाली को बड़ी समझना और मुकाबिले में मेहतरानी को नीच मानना भूल है, अज्ञान है और कृतज्ञता से विरुद्ध है। क्या आपमें इतनी उदारता नहीं आ सकती कि आप इस प्रकार की सेवा करने वालों को भी मनुष्यता की दृष्टि से देखकर उनके साथ मनुष्योचित ही व्यवहार करें?

आज उलटी ही स्थिति दिखाई दे रही है। लोग उन्हें अछूत या अस्पृश्य कहकर उनके प्रति ऐसा हीनतापूर्ण व्यवहार करते हैं, मानों वह मनुष्य ही नहीं हैं!......गंदगी फैलाने वाले वे बुरे और हीन! न्याययुक्त बुद्धि से उनके साथ अपने इस कर्त्तव्य की तुलना करके देखो तो आपकी आँखें खुल जाएंगी।

'जैनधर्म कहता है कि चाण्डाल कुल में उत्पन्न व्यक्ति भी मुनि हो सकता है और मुनि होने पर वह महान्-से-महान् धर्म का ब्राह्मणों को भी उपदेश दे सकता है।'

पूज्यश्री के उपदेश से प्रतिबोध पाकर इन हीन कहे जाने वाले सरल हृदय भाइयों का असीम उपकार हुआ। उन्होंने उपदेश श्रवण सार्थक किया!

हेमचन्द भाई का आगमन

श्री श्वे० स्था० जैन कांफ्रेंस के इतिहास में अजमेर का नवां अधिवेशन अभूतपूर्व था। साधु-सम्मेलन के कारण उसमें लगभग पचास हजार जनता इकट्ठी होगई थी। समाज-संगठन तथा पुनर्निर्माण के लिए इसमें कई योजनाएं बनाई गईं। इस अधिवेशन के सभापति भावनगर स्टेट रेलवे के चीफ इंजीनियर श्री हेमचन्द रामजी भाई मेहता थे। कांफ्रेंस में पास हुए प्रस्तावों को कार्यरूप में परिणत करने के लिए उन्होंने समाज के अग्रणी व्यक्तियों के साथ एक दौरा करने का निश्चय किया। उसी सिलसिले में जब आप उदयपुर पधारे, पूज्यश्री वहीं विराजते थे। उस समय पूज्यश्री तथा हेमचन्द भाई ने जो उद्गार प्रकट किए उनका सारांश यहां दिया जाता है। कांफ्रेंस का डेपुटेशन उदयपुर में दो दिन ठहरा था। उस अवसर पर पूज्यश्री ने नीचे लिखे विचार प्रकट किये।

प्रथम व्याख्यान

ता० ९-९-३३

अभी कुछ ही दिन पूर्व आत्म-धर्म, साधु-धर्म और चारित्र-धर्म की शुद्धि के लिए साधु व श्रावकों ने बड़ा परिश्रम किया है। इसी के लिए अजमेर में सम्मेलन भी हुआ था। जिन लोगों या महात्माओं का केवल नाम ही सुना था, या नहीं भी सुना था, अजमेर में उन सभी का सम्मेलन हुआ। इसी प्रकार श्रावक भी बहुत से एकत्रित हुए। यदि श्रावकों में साधुओं के प्रति भक्ति न होती तो क्या कांफ्रेंस के किसी और अधिवेशन के समय भी इतने आदमी इकट्ठे

हुए थे ? जो लोग अजमेर में एकत्रित हुए थे, वे लोग कैसे कष्ट में रहे होंगे, इस बात को तो वे ही जानते होंगे, लेकिन यह तो स्पष्ट है कि लोगों की नसों में साधु-भक्ति है। इसी से लोगों ने अपना सब काम छोड़कर, खर्च उठाकर और कष्ट सहकर भी इस कार्य में भाग लिया।

चारित्र की शुद्धि कैसे हो, इस बात का निर्णय और ऊहापोह करने में साधु-सम्मेलन के समय, किसी ने कोई कसर नहीं रखी। परन्तु जब तक बाड़ी नहीं है तब तक रखवाली की चिन्ता नहीं होती। परन्तु बोने के बाद यदि बाड़ी सूनी छोड़ दी जाय तो बन्दर आदि उसे खा जावेंगे, या नष्ट कर डालेंगे। यही बात साधु-सम्मेलन के लिए भी है। दुर्लभजी भाई ने साधु-सम्मेलन के लिए ही सैकड़ों कोस का दौरा किया था। अब प्रेसिडेण्ट साहेब ने सारा बोझा अपने पर उठा लिया। इस प्रकार के परिश्रम से लगाई हुई बाड़ी को सूनी छोड़ देना ठीक नहीं है, यह जानकर ही प्रेसिडेण्ट साहेब ने प्रवास का यह कष्ट किया है।

प्रेसिडेण्ट साहेब का कांफ्रेंस के समय दिया हुआ सारा भाषण तो मैंने नहीं पढ़ा, परन्तु उसका कुछ अंश मैंने पढ़ा है। प्रमुख साहेब ने अपने भाषण में यह बतलाया है कि मुझ इन्जीनियर को कांफ्रेंस का प्रमुख क्यों चुना ? कांफ्रेंस के प्रमुख साहेब ने तो इस विषय में कुछ कहा ही, लेकिन मैंने कुछ दूसरी ही कल्पना की है। एक गाड़ी दौड़ती हुई जा रही है। उसके भीतर इन्जीनियर शांति से बैठा है। फिर भी शक्ति-गाड़ी की बड़ी है या इन्जीनियर की ?

इन्जीनियर की

यद्यपि इंजीनियर गाड़ी से छोटा है। गाड़ी का एक पुर्जा भी यदि इंजीनियर पर गिर जावे तो इंजीनियर को दबा सकता है। दूसरी तरफ गाड़ी ऐसी ताकतवाली है कि इंजीनियर को भी जहां चाहे वहां ले जा सकती है। फिर भी गाड़ी की शक्ति बड़ी नहीं है, किन्तु इंजीनियरी की शक्ति बड़ी है। क्योंकि एंजिन में पुर्जे इंजीनियर ही लगाता है। साधारण आदमी और इंजीनियर में यह अन्तर है कि गाड़ी के विषय में इन्जीनियर जो कुछ कर सकता है, साधारण आदमी वैसा नहीं कर सकता। इन्जीनियर में यह शक्ति है कि वह जोर भर दौड़ती हुई गाड़ी को रोक सकता है। रुकी हुई गाड़ी को चला सकता है। इसी प्रकार एंजिन से डिब्बे को अलग भी कर देता है और जोड़ भी देता है। इन्जीनियर टूटे फूटे लोहे को भी एंजिन के रूप में परिणत कर देता है। यद्यपि अग्नि और पानी में शक्ति है, फिर भी उस शक्ति से काम लेना सब कोई नहीं जानते। लेकिन इंजीनियर उससे काम ले लेता है। इस प्रकार इन्जीनियर पांचों भूतों पर मालिकी करता है, लेकिन देखना यह है कि इन्जीनियर जो कुछ भी करता है, वह शरीर की स्थूल शक्ति से करता है या ज्ञान-शक्ति से ?

ज्ञान-शक्ति से

यदि ऐसा करने वाले इन्जीनियर में से ज्ञान-शक्ति निकाल ली जावे, तो इन्जीनियर में क्या बाकी रहेगा ? यह कहने का अभिप्राय यह है कि हम प्रेसिडेण्ट सा० को स्थूल शरीर के रूप में ही नहीं देखना चाहते। किन्तु ज्ञान-शक्ति के रूप में देखना चाहते हैं।

गाड़ी दौड़ रही है और इन्जीनियर उसमें शक्ति से बैठा है। फिर भी इन्जीनियर कहता है कि 'यह गाड़ी का दौड़ना तो मेरा एक खेल है। मैं जब चाहूं तब इस दौड़ती हुई गाड़ी को रोक सकता हूं। क्योंकि मेरी ज्ञान-शक्ति इस गाड़ी की दौड़ से बहुत बड़ी हुई है।

एक चींटी चल रही है और एक गाड़ी दौड़ रही है। इन दोनों में बड़ा कौन है ? वैसे तो गाड़ी के नीचे नित्य ही अनेक चींटियां दब मरती होंगी फिर भी चींटी बड़ी है, क्योंकि चींटी चेतन और स्वतन्त्र है। चींटी अपनी शक्ति से एक खड़े पत्थर पर भी चढ़ सकती है परन्तु रेल नहीं चढ़ सकती। जब साधारण श्रेणी के जीव कीड़ों में भी यह शक्ति है—कीड़ी भी गाड़ी से बढ़ी हुई है तो मनुष्य और मनुष्य में भी इन्जीनियर की शक्ति का तो कहना ही क्या। इस प्रकार इन्जीनियर की शक्ति साधारण मनुष्यों से बढ़ी हुई होती है। इसी कारण समाज ने इन्जीनियर को अपना नेता चुना है।

यदि इन्जीनियर की शक्ति केवल रेलगाड़ी चलाने तक ही सीमित रह जावे तब तो ऐसे बहुत से इन्जीनियर हुए हैं। उनका कोई नाम भी नहीं लेता। यहां तो उस इंजीनियर की बात है जो समाज की चलती हुई गाड़ी के लिए इस बात का विचार रखे कि इस गाड़ी को किधर चलाकर किस दक्षता से निकाल ले जाय, ये हेमचन्द भाई गृहस्थ समाज के प्रमुख हैं। यदि ये समाज-रूपी गाड़ी को न सम्हालें और सोते ही रहें तो हानि के विषय में किस की जवाबदारी होगी ? आप समाज के नेता हैं, समाज-रूपी गाड़ी के ड्राइवर हैं, इसलिए समाज-रूपी गाड़ी की जवाबदारी आप पर है। इस जवाबदारी को निभाना आपका काम है। इस गाड़ी के विषय में प्रमुख साहेब को रात-दिन चिन्ता रहती होगी। लेकिन गाड़ी के चलाने में अकेला इन्जीनियर कुछ भी नहीं कर सकता। इन्जीनियर गाड़ी तभी चला सकता है जब पुर्जे और कोयला-पानी आदि सब सामग्री की सहायता बराबर प्राप्त हो। यदि पुर्जे न हों, कोयलेवाला कोयले न दे और पानी के लिए कुआं जवाब देदे तो इन्जीनियर क्या करेगा ? इसलिए यदि समाज की इस गाड़ी को सुव्यवस्थित रूप से चलाना है तो सबको अपनी-अपनी जिम्मेदारी समझकर उसके अनुसार कार्य करना होगा।

समाज की गाड़ी तभी चल सकती है जब इंजीनियर अपना काम करे, पुर्जे वाला अपना काम करे और पानी कोयले वाले अपना काम करें। ऐसा होने पर ही यह समाज की गाड़ी यथास्थान यानी निश्चित ध्येय पर पहुंच सकती है। समाज के किसी भी आदमी को यह समझ कर कभी निश्चिन्त नहीं होना चाहिए कि हमने समाज के लिए प्रमुख चुन लिया है। वे ही इंजीनियर की तरह इस समाज की गाड़ी को चलावेंगे। क्योंकि समाज के प्रमुख होने के कारण प्रमुख साहेब पर तो समाज की गाड़ी चलाने का भार है ही, लेकिन प्रमुख साहेब को प्रमुख पद के लिए समाज के लोगों ने ही चुना है। इसीलिए प्रमुख साहेब को चुनने वालों पर क्या जिम्मेदारी नहीं है ? चुनने वालों पर भी जिम्मेदारी है। ऐसा होते हुए भी यदि कोई आदमी यह कहे कि समाज की गाड़ी कहीं भी जावे, हमारा क्या ? तो ऐसा कहना कृतघ्नता है। प्रमुख साहेब को आप ही ने अपना प्रमुख चुना है और हाथी पर बैठा कर उनका जुलूस निकाला है। क्या आप ऐसा प्रमुख साहेब का अपमान करने के लिए किया है ? यदि अपमान के लिए न हो, किन्तु सन्मान के लिए किया है तो फिर आप अपना कर्त्तव्य समझो।

सीता ने राम के गले में हार डाला था। तो वह जब राम वन जाने लगे तब उनके साथ वन को गई थी या घर रही थी ? साथ वन गई थी।

इसी प्रकार आपने प्रमुख साहेबका स्वागत किया है और इनके गले में हार डाला है। अ

आपको भी सीता की तरह कंकर-पत्थर की ठोकरों के समान कष्टों से डरना उचित नहीं है। कार्य के समय घर में सो रहने से या कष्टों से भीत हो जाने से कदापि प्रशंसा नहीं होती। सीता की प्रशंसा राम के गले में हार डालने से ही नहीं है। किन्तु हार डालने के साथ ही राम के साथ वन जाने से है। हां, यदि राम बन को न जाते और अकेली सीता को ही बन भेजते तथा उस समय सीता बन को न जाती तब तो बात अलग थी लेकिन जब राम स्वयं बन को जा रहे हैं तब सीता का कर्त्तव्य क्या है? उस समय तो राम सीता को घर रहने के लिए भी कहते हैं। परन्तु ऐसे समय में सीता घर रहेगी या बन को जाएगी।

सीता कहती थी, कुछ भी हो। जब राम अपना कर्त्तव्य पाल रहे हैं तब मुझे भी अपना कर्त्तव्य पालना ही चाहिए। इसी प्रकार जब समाज के प्रमुख अपने कर्त्तव्य का पालन कर रहे हैं, तब समाज का भी कर्त्तव्य प्रमुख का साथ देना है। यदि प्रमुख को प्रमुख चुन कर भी समाज प्रमुख का साथ न दे और अपनी जिम्मेवारी को भूल जावे तो जैसे समाज अपने कर्त्तव्य को ही भूल गया।

यह बात तो समाज और प्रमुख साहेब के सम्बन्ध की हुई। अब मैं अपने सम्बन्ध की बात कहता हूं। प्रमुख साहेब ने या समाज ने साधु-सम्मेलन का और कांफ्रेंस का सम्बन्ध जोड़ा है। यदि साधु-सम्मेलन का और कान्फ्रेंस का सम्बन्ध न जोड़ा जाता तब तो शायद इन दोनों का जो महत्त्व समझ रहे हैं वह महत्त्व न समझते। साधु-सम्मेलन और कान्फ्रेंस के सम्बन्ध का आंकड़ा इस तरह मिला है कि साधु-सम्मेलन में सन्तों ने मिल कर कई ठहराव सर्वानुमति से और बहुमत से पास करके कान्फ्रेंस के प्रमुख साहेब को दिए। प्रमुख साहेब ने उन्हें समाज के सामने प्रकट किया। यद्यपि साधु-सम्मेलन की रिपोर्ट में जल्दी आदि कई कारणों से अपूर्णता एवं भूल रह गई है। फिर भी मैं इस समय इस बात को गौण करके ही बोल रहा हूं। मैं साधु-सम्मेलन में किसी नियम से गया होऊं लेकिन प्रमुख साहेब ने यह ठहराव पास किया कि—

"यहां हाजिर या गैरहाजिर और इन ठहरावों को मानने पर साधु-सम्मेलन के ठहराव बन्धनकारक हैं।"

प्रमुख साहेब ने ऐसा ठहराव तो कर दिया लेकिन हम साधु लोग प्रमुख साहेब के ठह-रावों को न मानें और साधु-सम्मेलन के ठहरावों का पालन न करें तो पालन कराने की जिम्मेवारी किस पर है?

प्रमुख साहेब ने उत्तर दिया—ठहराव करने वाले पर।

अर्थात् प्रमुख साहेब पर। क्योंकि प्रमुख साहेब ही कान्फ्रेंस हैं और कान्फ्रेंस ही प्रमुख साहेब हैं। इसलिए प्रमुख साहेब को यह ही मानना पड़ेगा कि हमारे ठहराव का पालन कराने की जिम्मेवारी हम पर है।

प्रमुख साहेब ने या कान्फ्रेंस ने साधु-सम्मेलन के ठहराव हाजिर, गैर हाजिर आदि सभी सन्तों के लिए बन्धन कारक ठहराए। तब साधुओं का कर्त्तव्य क्या है? इस प्रकार का ठहराव संघ का हुआ है। संघ के हुक्म को साधु के लिए मानना आवश्यक है या नहीं?

कभी कोई प्रश्न करे कि क्या संघ का हुक्म साधु पर भी चल सकता है? तो इसका उत्तर यह है कि इस नियम में, कथा में एक बात मिलती है। कथा में बताया है कि भद्रबाहु

स्वामी एकान्त में योगसाधन कर रहे थे। उन्हीं दिनों संघ में ऐसा विग्रह फैला कि महापुरुष के बिना उस विग्रह का निर्णय नहीं हो सकता था। संघ ने परामर्श करके दो साधुओं को भद्रबाहु स्वामी के पास भेजा और प्रार्थना की कि आप जल्दी से पधारें। आपके पधारे बिना संघ में शांति नहीं हो सकती। साधु भद्रबाहु स्वामी के पास गये। उन्होंने संघ की प्रार्थना के उत्तर में कहा कि मैं खाली नहीं हूं, योगसाधन में लगा हुआ हूं! मेरे आने से योगसाधन में कमी रहेगी। इसलिए मैं आने में असमर्थ हूं।

साधुओं ने वापिस आकर भद्रबाहु स्वामी का उत्तर संघ को सुना दिया। संघ ने साधुओं को फिर उनके पास भेजा और कहलवाया—संघ की आज्ञा बड़ी है या योग बड़ा है? यदि संघ की आज्ञा बड़ी है तो आपको शीघ्र आना चाहिए। यदि योग बड़ा है तो संघ का आपसे कोई सम्बन्ध नहीं है। साधुओं ने सारी बात भद्रबाहु स्वामी से कही। उनके मन में आया कि संघ की आज्ञा बड़ी है, योग बड़ा नहीं है और संघ में विग्रह होने देना कर्म बांधना है।

ठाणांग सूत्र में आठ आज्ञाएं देकर कहा है कि इन आज्ञाओं का पालन करने में कभी प्रमाद नहीं करना। उनमें आठवीं आज्ञा इस प्रकार है—

साहम्मिताणमधिकरणंसि उप्पण्णंसि तत्थ अनिरिसतो वासितो अमक्खागाही मज्झत्थभावभूते कहणसाहम्मिता अप्पसद्दा अप्पझंझा अप्पतुमतुमा उवसामणतो ते अभुट्ठियत्वं भवइ।

अर्थात् जब सार्धी में कलह हो तब किसी का पक्ष न लेकर उपशान्त हो यह देखना कि न्याय किधर है। ऐसे समय में मध्यस्थ बन यह निश्चय करना कि मैं किसी का नहीं हूं। न्याय का हूं। चाहे कोई मेरा मित्र हो या शत्रु, मैं सत्य बात ही कहूंगा। इस प्रकार के भाव रख कर जो सहधर्मी का कष्ट मिटाता है, भगवान् कहते हैं, उसे महानिर्जरा होती है। उत्कृष्ट रस आने पर वह तीर्थंकर गोत्र भी बांधता है। इस कार्य के करने में जितना आत्म-कल्याण हो सकता है उतना आत्म-कल्याण किसी दूसरे कार्य से नहीं होता।

जब सङ्घ में शान्ति कराने से महानिर्जरा होती है तो अशान्ति कराने से महापाप होगा ही। मेरी पूछ हो, इसलिए सङ्घ में अशान्ति कराने से महाचिकने कर्म बँधते हैं।

भद्रबाहु स्वामी ने विचार किया कि मैं योग साधूँ या न साधूँ, इससे तो एक ही व्यक्ति के हानि-लाभ का सम्बन्ध है। परन्तु सङ्घ के बिगड़ने पर परम्परा ही बिगड़ जाएगी। एक फल बिगड़ना दूसरी बात है और वृक्ष की जड़ ही बिगड़ जाना दूसरी बात है। मूल बिगड़ जाने से तो सभी फल बिगड़ जाएंगे। इसलिए न्याय धर्म किधर है, यह देख कर न्याय-धर्म रूपी मूल को ही सींचना चाहिए! यदि वृक्ष की और डालें सूख गई हों, केवल एक ही डाली हरी हो तब भी वृक्ष का मूल सींचने से सारा वृक्ष पुनः हरा होना सम्भव है। परन्तु मूल काटने पर तो सारा हरा वृक्ष भी नष्ट हो जावेगा।

भद्रबाहु स्वामी सङ्घ की आज्ञा मानकर सङ्घ के पास आए और सङ्घ से क्षमा मांग कर उसका काम किया।

मतलब यह है कि "सङ्घ की शक्ति ज़बर्दस्त है।"

इस बात पर विश्वास रखकर सङ्घ की आज्ञा मानना सभी का कर्त्तव्य है।

किसी बात से हमारा मत-भेद हो यह बात अलग है। परन्तु सत्य और यथार्थ बात के

लिए यदि हम सदा तैयार नहीं तो फिर सङ्घ में जाने से ही क्या ? हमारा ध्येय सदा से यही है कि सङ्घ में शान्ति रहे। इतने पर भी हम यही कहते हैं, हम सरीखा एक व्यक्ति सङ्घ में शामिल हो या न हो, सङ्घ में शान्ति रहे, ऐसे उपाय करते रहना उचित है।

सङ्घ की शक्ति बड़ी है। प्रमुख साहेब ने साधु-सम्मेलन के ठहराव सब साधुओं पर बन्धन-कारक किस शक्ति से ठहराए हैं ?

'संघ शक्ति से।'

संघ ने साधुओं पर जो प्रतिबन्ध लगाया है. साधुओं को उसे मान देना पड़ेगा। लेकिन हमारा कहना यह है कि यदि साधु सङ्घ के लगाए हुए प्रतिबन्ध तोड़े तो सङ्घ साधुओं की खुशामद न करे। यदि संघ ने खुशामद की तो साधु सङ्घ के ठहरावों को केवल कागजी ठहराव कहेंगे और ऐसा होने पर यह होगा कि—

तू न कहे मेरी, मैं न कहूँ तेरी।
पोल पाल में चलने दे, यह मजेदार हथफेरी॥

पोल-पाल रखने से काम न चलेगा। इसलिए आप मेरी या और किसी की खुशामद में मत पड़ो। जिसमें त्रुटि हो उसके साथ रियायत मत करो।

अन्त में मैं प्रमुख साहेब से यही कहता हूं कि आप आए हैं और हमसे सम्मेलन सम्बन्धी बातचीत की है। हम से सम्मेलन का ठहराव टूटा है या नहीं और सम्मेलन के ठहरावों का पालन करने में हम से कोई त्रुटि हुई है या नहीं, इस बात का सर्टिफिकेट आप को हमारे लिए देना होगा। हमने त्रुटि की है या नहीं इस बात की आप हमारी जांच करें और दूसरे की भी जांच करें। इस प्रकार जांच करने से ही संघ की आज्ञा का पालन हो सकता है और संघ की आज्ञा का पालन करने से ही कल्याण हो सकता है।

द्वितीय व्याख्यान

ता० १०-६-३३.

इंजीनियर की शक्ति हज़ारों ट्रेनों से अधिक होती है, और इसी कारण ट्रेन की जिम्मेवारी इंजीनियर पर रहती है। आप लोगों ने इस समाज-रूपी गाड़ी की जिम्मेवारी प्रमुख साहेब को दी है, तो इस गाड़ी पर नियन्त्रण रखने एवं इसे चलाने की शक्ति भी प्रमुख साहेब को आप से मिलनी चाहिए। मैं तो यह कहता हूं कि इंजीनियर में बहुत शक्ति होती होती है। लेकिन प्रमुख साहेब मेरे लिए कहते हैं कि 'आप में बड़ी शक्ति है।'' यदि प्रमुख साहेब की दृष्टि से मेरे में बड़ी शक्ति है तो मैं वह शक्ति प्रमुख साहेब को देता हूं। प्रमुख साहेब इस शक्ति को अपने में लेकर देखें कि यह शक्ति कैसी आनन्ददायिनी है।

अब इस समय आप लोग क्या करेंगे। केवल प्रमुख साहेब के शरीर के सत्कार में ही रहोगे या प्रमुख साहेब के बनाए हुए नियमों का भी सत्कार करोगे ? उदयपुर के श्रीसंघ की तरफ से प्रमुख साहेब का स्वागत किस उद्देश्य से किया गया है ? हम साधु हैं। हम प्रमुख साहेब का स्वागत किस तरह करें। हमारे पास वरमाला भी नहीं है जो हम प्रमुख साहेब के गले में डालें। लेकिन आप लोगों ने तो प्रमुख साहेब के गले में वरमाला डाली है और प्रमुख साहेब के सत्कार का प्रदर्शन किया है। किन्तु यह प्रदर्शन खाली तो नहीं है।

कल प्रमुख साहेब स्थूल शरीर से तो शायद आप लोगों से जुदा हो जाएंगे। परन्तु स्थूल शरीर दूर जाना ही जुदाई है या जुदाई अन्तःकरण से होती है ? प्रमुख साहेब का स्थूल शरीर यदि यहां से चला भी जावे तब भी अन्तःकरण में भेद नहीं है तो जुदाई भी नहीं है।

आप लोगों को यह न समझना चाहिए कि प्रमुख साहेब यहां आए, हमने इनका स्वागत किया और अब यहां से वे जाते हैं। इसलिए हमारी जवाबदारी पूरी हो गई। अब दूसरों पर जवाबदारी है। अन्तःकरण का मिलन और हिन्दुस्तानी लगन एक बार जुड़ने के बाद नहीं टूटते। प्रमुख साहेब से क्या आपके यूरोपीय लग्न सम्बन्ध जोड़ा है जो आज किया और कल टूट जावे ? ऐसा लग्न भारतीय नहीं करते। आर्य-बाला अपने लग्न में सच्ची प्रीति रखती है और एक बार प्रीति कर लेने के बाद फिर नहीं तोड़ती। प्रीति दूध मिश्री की तरह होनी चाहिए। इसलिए प्रमुख साहेब यहां से चले भी जावें तब भी आप लोग प्रमुख साहेब के अन्तःकरण में जो सम्बन्ध जोड़ चुके हैं, वह तोड़ना उचित न होगा।

मैं अपने लिए कहता हूं कि मेरे विषय की बात के लिए बाहर ही बाहर गड़बड़ करने से, कुछ लाभ नहीं। वैसे तो मुझ से सच्ची बात एक बच्चा भी कह सकता है और मैं मान सकता हूं। परन्तु यह नहीं हो सकता कि कोई कहे और मैं मान ही लूं। यदि इस प्रकार मानने लगूं तो मैं आचार्य क्या रहा, मिट्टी का पुतला रहा। हां, यदि सच्ची बात मैं न मानूं तो मुझे कोई भी टोक सकता है। मैं बार-बार यही कहता हूं कि मेरे विषय की जो भी बात हो, मेरे पास लाओ। मेरे पास न लाकर बाहर ही बारह गड़बड़ करने से चिकने कर्म बँधेंगे। मैं यही कहता हूं, बाहरी गड़बड़ करके धर्म की व्यवस्था को मत बिगाड़ो। [बादशाह के रत्नखचित दुपट्टे को खींचकर चींथड़े मत बनाओ। इस धर्म की बहुत महिमा है] [इस धर्म का भाग्य कम है इसी से वह आपकी गोद आया है। लेकिन आपका भाग्य तो इस धर्म के मिलने से बड़ा ही है।] गड़बड़ करके इस धर्म के चिन्दे मत उड़ाओ। एक कवि कहता है—

पुरा सरसि मानसे विकचसारसाली स्खलत्,
परागसुरभीकृते पयसि यस्य यातं वयः।
स पल्वल जलेऽधुना मिलदनेक भेका कुले,
मराल कुल नायक ! कथय रे कथं वर्तताम्॥

[एक राजहंस तलैया पर बैठा था। वह तलाई भी छोटी थी। पानी कम था, कीचड़ अधिक थी। मेंढक टर्राते हुए फुदक रहे थे। एक कवि वहां आया। राजहंस को देख कर कहने लगा—

हे राजहंस ! तेरी यह क्या दशा आई है ? तू मानसरोवर में रहता था। खिले हुए कमलों की पराग से सुगन्धित पानी को पीता था। मोती चुगता था। आज तू इस तलाई पर क्यों बैठा है ? तेरे भाग्य मन्द हैं। किन्तु रे तलाई ! तेरे भाग्य तो बड़े हैं। तेरे यहां ऐसा मेहमान आया है। तू अपने मेंढकों को रोक ले। उन्हें कहे कि वे इस तरह उछल-कूद न करें। वह मानसरोवर का हंस समय का मारा हुआ ही तेरे यहां आया है। लेकिन तेरा भाग्य तो बड़ा ही है।]

[तलाई को इस प्रकार कह कर वह कवि राजहंस से कहता है, हे राजहंस ! तू अपने पुराने दिन याद करके दुःख मत कर। यद्यपि इस तलाई पर तुम्हें मानसरोवर-सा आनन्द न मिलेगा

किन्तु जीवन-निर्वाह तो हो जाएगा। आज तुम्हें मानसरोवर का जल नहीं मिल रहा है। यदि तुम इस तलैया का जल नहीं पीओगे तो मर जाओगे। यदि धैर्य धारण करोगे तो मानसरोवर भी पहुंच सकोगे।

यह अन्योक्ति अलंकार है। इसके कहने का तात्पर्य यह है कि धर्म राजहंस-सा है। सिद्धान्त में कहा है—

चइत्ता भारहं वासं चक्कवट्टी महड्ढिओ,
सन्ती सन्ति करे लोए पत्तो गइ मणुत्तरं ॥

हे धर्मरूपी राजहंस! तू जगत् पर शासन करने वाले चक्रवर्ती रूपी मानसरोवर की गोद में रहने वाला था। बड़े-बड़े चक्रवर्ती तुझे धारण करते थे और तेरी प्रतिष्ठा रखते थे। गौतमस्वामी और सुधर्मस्वामी सरीखे महापुरुषों ने तुझे धारण किया था। उस समय तुझे किसी छोटे आदमी की खुशामद नहीं करनी पड़ती थी; परन्तु आज वही धर्म अपने यहां आकर पड़ा है। अपने लोग ठहरे तलाई के समान और धर्म मानसरोवर के समान चक्रवर्ती की गोद में रहनेवाला ठहरा। आपको यह समझ कर आनन्द होना चाहिए कि हमारे यहां धर्मरूपी राजहंस आया है, परन्तु बीच में प्रकृतिरूपी मेंडक कूद-फांद कर रहे हैं। अपनी प्रकृति के मेंढकों को शान्त करो।

इसी प्रकार हे धर्म! तुम अपने पिछले दिन याद करके दुःख मत करो। गर्मी के दिनों में माली वृक्षों को लोटा-लोटा जल पिलाकर जीवित रखता है। फिर वर्षा ऋतु में खूब पानी गिर जाता है। फिर भी वर्षा की अपेक्षा माली के जल का मूल्य अधिक है। क्योंकि माली के जल ने ही जीवन रखा है। इसीलिए यह कहा जाता है कि इस वृक्ष को माली ने सींचा है और इसके फल का अधिकारी वह माली ही है। इसी प्रकार हे धर्म! तेरे को रखने वाले वर्षा के जल के समान चक्रवर्ती आज नहीं हैं। परन्तु इन्हें गर्मी के दिन समझ कर धैर्य रख! आज जिनकी गोद में तू पड़ा है उन्हें लोटे का जल समझ कर सन्तोष रख! यद्यपि लोटे का जल वर्षा की अपेक्षा बहुत थोड़ा है, फिर भी जीवन रखने के लिए इसी का सहारा है। गर्मी के दिनों में जीवन बना रहेगा तो वर्षा ऋतु भी देखने को मिलेगी।

मित्रो! इस धर्म पर ग्रीष्म ऋतु के से दिन हैं। इसलिए इस बात का ध्यान रखो कि यह धर्म रूपी वृक्ष कुम्हला न जावे। यदि इस की रक्षा करोगे तो आप भी यशरूपी फल प्राप्त करोगे। धर्म के विषय में न्याय की बात समझो, समझाओ और भूल मिटाओ। तलैया के मेंडकों की तरह कूदा-फांदी मत करो। ऐसा करने से आपका भी सन्मान न रहेगा। धर्म पर दृढ़ रहो।

छोड़ो न धर्म अपना यदि प्राण तन से निकले।
त्यागो न कर्म अपना यदि प्राण तन से निकले ॥
जीना धरम को लेकर मरना धरम को लेकर।
जाना धरम को लेकर जब प्राण तन से निकले ॥
आपत्तियों के भय से मुंह मोड़ना न हरगिज।
मत छोड़ना धरम को यदि जान तन से निकले ॥
हो जाओगे अमर तुम, मरकर रहोगे जिन्दा।
हो धर्म पर निछावर यदि प्राण तन से निकले ॥

जिसने नहीं किया कुछ, अपना सुधार जग में।
जिन्दा रहा तो क्या है, चहे जान तन से निकले ॥
है भावना हमारी, हे दीनबन्धु वत्सल !
रहकर धरम में कायम यह जान तन से निकले ॥

पद की कड़ियां कैसी भी हों, परन्तु जब बात समझाई जाती है तब अपूर्व हो जाती है। इस पद्य का अर्थ समझाने को समय नहीं है, इसलिए इसका अर्थ थोड़े में ही कहता हूं कि अपना धर्म न छोड़ना।

इस पद में अपना धर्म न छोड़ने को तो कहा, किन्तु अपना धर्म कौन-सा है ? जैन, वैष्णव मुसलमान, ईसाई आदि सभी अपना-अपना धर्म कहते हैं। शास्त्र भी कहता है कि अपना धर्म नहीं छोड़ना चाहिए। किन्तु धर्म किसे कहना चाहिए ? इसका उत्तर यह है कि जिस से अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य आदि की स्थापना हो और झूठ आदि पापों का निराकरण हो, वही धर्म है। चाहे ऐसे धर्म का नाम कुछ भी हो। केवल जैन नाम धराने से ही कुछ नहीं होता किन्तु उसमें ऊपर वाली विशेषताएं होनी चाहिए। जिस धर्म में ये गुण हैं उसके लिए यदि प्राण भी देना पड़े तो बुरा नहीं है। पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज फरमाया करते थे कि कभी धर्म और धन दोनों में से एक के जाने का समय आवे तब यह भावना हो कि 'धन भले ही जावे किन्तु धर्म न जावे।' ऐसे ही धर्म और प्राण जाने का समय आवे तो प्राण जांय परन्तु धर्म न जावे, यह भावना रखना। इस प्रकार की दृढ़ता रखने से ही धर्म का पालन होता है। श्रीप्रमुख साहेब से मेरा यही कहना है।

× × ×

पूज्यश्री के भाषण के बाद प्रमुख साहेब ने नीचे लिखे शब्द कहे—

पूज्य महाराज, मुनिराज, बन्धुओ और बहिनो !

पूज्यश्री के जो व्याख्यान दो दिन सुने हैं, उनके बाद कहने की कुछ आवश्यकता नहीं रहती। आप बड़े भाग्यवान् हैं कि पूज्यश्री का चातुर्मास आपके यहां है और आप नित्य व्याख्यान सुनते हैं। यद्यपि मेरी इच्छा भी यहां ठहरकर व्याख्यान सुनने की है परन्तु मेरा प्रोग्राम बन चुका है, इसलिए मैं नहीं रह सकता। यदि भाग्य से अवसर मिला तो किसी दूसरे चातुर्मास में मैं पूज्यश्री के व्याख्यानों का लाभ ले सकूंगा।

मुझे सब से पहले माटुंगा में पूज्यश्री के दर्शन प्राप्त हुए थे। मैं उस समय बम्बई में केवल एक ही दिन रुका था। इस लिए पूज्यश्री की सेवा का लाभ केवल आध घन्टा ले सका। माटुंगा में जब मैं पूज्यश्री के दर्शन करके बैठा तो उन्होंने प्रश्न किया—आप पेसेंजरों को इधर-उधर पहुंचाने के लिए रेल की सड़क तो बनाते हैं; परन्तु ऊपर (मोक्ष) जाने के लिए सड़क बनाते हैं या नहीं ? पूज्यश्री के प्रश्न के उत्तर में मैंने उस समय क्या कहा था यह तो मुझे याद नहीं है, लेकिन मैंने ऊपर जाने के लिए अबतक भी सड़क नहीं बांधी है। अब मैं इसके लिए प्रयत्न करता हूं और इसीलिए मुझे श्रीसंघ से सहायता पाने की आवश्यता पड़ी है। यदि मुझे श्रीसंघ की पूर्ण सहायता प्राप्त हुई तो शायद मैं ऐसी सड़क भी बांध सकूं।

पूज्यश्री ने मेरा परिचय इन्जीनियर के रूप में कराते हुए इन्जीनियर पद के लिए बहुत

बड़ी जिम्मेवारी बताई है। लेकिन मेरी समझ से मेरी इंजीनियरी की अपेक्षा कुदरत की इंजीनियरी बहुत बड़ी है। प्रकृति दिन-रात तोड़-फोड़ किया ही करती है। जो निरुपयोगी को बिगाड़ कर नया उपयोगी बनावे वह सृष्टा प्रकृति ही है। [यद्यपि जैनशास्त्र और आधुनिक विज्ञान के अनुसार किसी वस्तु का नाश नहीं होता, केवल रूपान्तर होता है। फिर भी प्रकृति को जैसा अच्छा लगता है, वैसा होता है।]

मुझे उदयपुर श्रीसंघ के सन्मुख कुछ कहने के लिए अवसर मिला है, इसके लिए मैं उदयपुर श्रीसंघ का उपकार मानता हूं। वैसे तो जहां जाना होता है उस स्थल का नाम लेना ही पड़ता है, लेकिन यदि वहां जाने के लिए सड़क बनी हुई हो तो वहां सहूलियत से पहुंचा जा सकता है। ऊपर अर्थात् मोक्ष गति के लिए श्रीसंघ सड़क है। लेकिन किसी भी सड़क को कोई एक व्यक्ति नहीं बना सकता। सबके सहयोग से ही सड़क बन सकती है और तभी उस सड़क पर से मुसाफिरी की जा सकती है। आप सड़क को देखकर यह जान सकते हैं कि यह सड़क कैसे कष्ट से बनी है और एकबार कष्ट सहकर सड़क बना देने से प्रवास किस प्रकार सुखदायी हुआ है। जिस प्रकार मुसाफिरी की सड़क सहयोग और कष्ट-सहन द्वारा बनती है उसी प्रकार संघ की सड़क भी सहयोग और कष्ट-सहन द्वारा ही बन सकती है। किसी से धन की, किसी से विचारों की और किसी से शारीरिक परिश्रम की सहायता प्राप्त हो, तभी संघ की सड़क बन सकती है और छोटे-बड़े सभी के लिए सुखदायिनी हो सकती है।

संघ की सड़क बनाने और उसके लिए सहयोग प्राप्त करने के वास्ते ऐक्य-बल की आवश्यकता है। सड़क बनाते यदि नदी आ जावे और नदी के किनारे अप्रयत्नशील बनकर बैठ जावे तो नदी के दूसरे किनारे कदापि नहीं जा सकते। वहां ऐक्यबल से पुल बांधना ही पड़ता है, तभी पार जा सकते हैं। इसी प्रकार संघ की सड़क को बनाते समय, नदी की तरह कोई बात आजावे तो उसे भी ऐक्य-बल से पुल बनाकर पार करना चाहिए। आगे, फिर कोई न समझने वाला व्यक्तिरूपी पहाड़ मिला तो उस समय अपना कर्त्तव्य क्या होगा? क्या उस पहाड़ को देखकर चुप हो जाना चाहिए? रेल की सड़क बनाते समय यदि कोई छोटा पहाड़ आ जाता है। तब तो चक्कर देकर भी सड़क निकाल लेते हैं। लेकिन यदि कोई बड़ा पहाड़ होता है और चक्कर खाकर भी सड़क नहीं बना सकते तो सुरंग लगाकर आवश्यक मार्ग निकालना पड़ता है। यदि उस पहाड़ पर दया करके बैठ जावें तो सड़क नहीं बना सकते। इसी प्रकार संघ की सड़क बनाते समय पहाड़ की तरह कोई न समझने वाला व्यक्ति मिले, परन्तु वह हो छोटे पहाड़ की तरह, तब तो चक्कर खाकर भी सड़क निकाल लेनी चाहिए। लेकिन यदि विरोध बड़े पहाड़ के समान हो और चक्कर लगाने पर भी मार्ग न निकल सकता हो तो सुरंग लगाकर मार्ग निकालने की तरह, अपने को जितना चाहिए उतना मार्ग उस विरोध-रूपी पहाड़ में से निकाल लेना चाहिए। ऐसा करना ही अपना कर्त्तव्य हो सकता है।

रेल की सड़क तैयार करने में सबसे पहले मिट्टी डालकर कच्ची सड़क बनाई जाती है। संघ की सड़क बनाने के लिए अपन अभी इसी प्रकार की कच्ची सड़क बनाने में लगे हुए हैं। रेल की सड़क बनाने में पहले कच्ची सड़क मिट्टी डालकर बनाई जाती है और फिर कंकर डालकर उसे मजबूत किया जाता है। जब कंकर डालने से सड़क मजबूत हो जाती है तब उस पर पाटे

डाले जाते हैं। इस प्रकार जब सड़क ऐसी मजबूत हो जाती है कि उस पर गाड़ी धम-धम करके चले, तब भी रेल के पाटे मिट्टी में न घुसें, तभी गाड़ी चल सकती है। इसी प्रकार संघ के नेता भी ऐसे दृढ़ हों कि संघ की गाड़ी उन पर कैसे जोर से दौड़े तब भी वे धँसे नहीं, तभी संघ की गाड़ी चल सकती है। संघ की गाड़ी चलने के लिए मुनि रेल के पाटे के समान हैं। संघ के नेता पाटों के नीचे लगी रहने वाली लकड़ी के समान हैं। इन दोनों की मजबूती पर ही संघ की गाड़ी का चलना निर्भर है।

कभी सड़क भी बन गई और ट्रेन भी चल गई, लेकिन यदि सामने से दूसरी ट्रेन आ जावे, तो दोनों ट्रेनें आपस में लड़ जाएंगी, जिससे धन-जन की हानि सम्भव है। इस हानि से बचने के लिए चौकीदार की तरह स्टेशन-मास्टर रखने पड़ते हैं। इसी प्रकार संघ की गाड़ी चलने के लिए सड़क बन गई, फिर भी यदि विवेक से काम न लिया जावे तो काम बिगड़ जावेगा। जिस प्रकार-स्टेशन-मास्टर गाड़ी को मार्ग बताता है उसी प्रकार अपनी गाड़ी को मार्ग बताने वाला भी रखना होगा। जहाज जब समुद्र में चक्कर लगाता है तब उसे बत्ती बताई जाती है। यद्यपि यह बत्ती जहाज को शक्ति नहीं देती, फिर भी मार्ग अवश्य बताती है। इसी प्रकार संघ की गाड़ी को मार्ग बताने वाले की भी आवश्यकता है।

सड़क बन गई और गाड़ी भी चलने लगी। लेकिन यदि गाड़ी में एंजिन जोड़कर उससे चलने के लिए कहा जावे तो इंजिन चलेगा? बैल तो मारने से थोड़ा बहुत चल भी सकते हैं, परन्तु एंजिन न चलेगा। एंजिन तो यही कहेगा कि मुझे खाने को चाहिए। खाने को भी बहुत थोड़े कोयले चाहिएं। इसी प्रकार संघ की गाड़ी को खींचने वाला एंजिन यह कांफ्रेंस है। यदि आप भी कांफ्रेंस को संघ की गाड़ी खींचने वाला एंजिन समझते हैं तो इसे खाने को दीजिए। इसे भी बहुत थोड़ा खाने को चाहिए। यदि आप अपने खर्चे से बचा हुआ थोड़ा भी चन्दा रूपी कोयला इस कांफ्रेंस रूपी एंजिन को न दे सकें तो यह कैसे चल सकेगा? यह कांफ्रेंस किसी एक की ही संस्था नहीं है, यह तो सभी की संस्था है।

एंजिन को कोयले भी दे दिए और गाड़ी चल भी गई। चलने के पश्चात् अपने आप तभी रुकेगी जब या तो एंजिन में कोयले न रहें या गाड़ी पाटे से उतर जावे। यदि कोयले न मिलने से गाड़ी रुकी तब तो गाड़ी के लिए लगा हुआ पहले का समस्त द्रव्य व्यर्थ-सा हो जाता है। थोड़े-से कोयलों के पैसों के कारण गाड़ी के लिए लगा हुआ पहले का सब पैसा व्यर्थ जाने देना धन्यवाद दिलाने वाली बात होगी या धिक्कार दिलाने वाली बात होगी, इसे आप ही विचारें।

कोयले मिलने के बाद यदि गाड़ी यह कहे कि मैं दिल्ली नहीं जाऊंगी, आगरा जाऊंगी, तो गाड़ी से यही कहा जाएगा कि तेरा काम चलाता है। चलाना ड्राइवर का काम है। ड्राइवर जहां ले जाना उचित समझेगा, वहीं ले जावेगा। ड्राइवर गाड़ी को वहीं ले जावेगा। जहां ले जाने के लिए प्रबन्धक उसे आज्ञा देंगे। इसी प्रकार संघ की गाड़ी का ड्राइवर प्रेसीडेण्ट है। परन्तु प्रेसीडेंट रूपी ड्राइवर गाड़ी को वहीं ले जावेगा जहां ले जाने के लिए उसे प्रबन्ध-कमिटी आज्ञा देगी। अर्थात् प्रेसीडेंट कांफ्रेंस को चलाने वाला है फिर वह उसे उसी तरह चलावेगा जिस तरह चलाने के लिए प्रबन्ध-कमिटी प्रेसीडेंट को आज्ञा देगी। प्रबन्ध-कमिटी की आज्ञा होने पर भी गाड़ी को

चलाने में ड्राइवर को सावधानी से काम लेना होगा। जैसे किसी गाड़ी को ऊपर चढ़ाने के लिए प्रबन्ध-कमिटी की आज्ञा है। ड्राइवर ने गाड़ी चलाई और वह ऊपर चढ़ने लगी। निश्चित स्थान केवल एक ही मील दूर रहा कि गाड़ी थक गई और फक-फक करने लगी। यदि उस समय ड्राइवर होशियार हो, तब तो वह गाड़ी को नीचे न गिरने देगा। अन्यथा गाड़ी ऊपर न जावेगी और नीचे गिर जाएगी।

गाड़ी के लिए होशियार ड्राइवर भी मिल गया लेकिन गाड़ी तभी सकुशल यथास्थान पहुंचती है, जब डिब्बे मजबूत सांकल से आपस में जुड़े रहते हैं। यदि किसी चढ़ाई को पार करते समय जोड़नेवाली सांकल टूट जावे तो आधे डिब्बे ऊपर पहुँच जावेंगे और आधे नीचे गिर जावेंगे। गाड़ी के पीछे गार्ड रहता है। गाड़ी के अगले ओर की जिम्मेदारी ड्राइवर पर होती है और पिछले ओर की जिम्मेदारी गार्ड की होती है। जिन डिब्बों की जंजीर टूट गई है, उनको यदि गार्ड होशियार हुआ तब तो रोक लेगा, अन्यथा वे डिब्बे नीचे आते हुए उलट जावेंगे। इसलिए चाहे छोटी गाड़ी भी हो, परन्तु उसमें लगे हुए डिब्बों को जोड़ने वाली जंजीर मजबूत होनी चाहिए।

गाड़ी जब चलती है तब उसमें बैठे हुए मुसाफिर सोते या खेलते रहते हैं, परन्तु ड्राइवर और गार्ड जागते रहते हैं। ड्राइवर और गार्ड के भरोसे पर ही गाड़ी के मुसाफिर निश्चिन्त रहते हैं। परन्तु इन दोनों के भरोसे तभी निश्चिन्त रह सकते हैं जब सारा प्रबन्ध ठीक हो। इसी प्रकार आप इस कान्फ्रेंस की गाड़ी में प्रेसीडेंट के भरोसे पर निश्चिन्त होना चाहते हैं, तो पहले सब प्रबन्ध कर लीजिए। सब प्रबन्ध ठीक कर देने के पश्चात् ही आप प्रेसीडेंट के भरोसे पर निश्चिन्त हो सकते हैं। सम्वत् १६५३–५८ में रेलगाड़ी के एंजिन छोटे-छोटे थे। आज के से राक्षसी एंजिन न थे। इस कारण गाड़ी कभी-कभी चलती हुई रुक भी जाती थी। ऐसे समय में गाड़ी में बैठे हुए मुसाफिर गाड़ी से उतरकर उसे धकेलते थे। ड्राइवर या गार्ड से यह नहीं कहते थे कि तुमने गाड़ी रोक दी या खराब कर दी। अपनी कान्फ्रेंस भी अभी छोटे एंजिन के रूप में ही है। इस कान्फ्रेंस की गाड़ी को धकेलने के लिए कभी-कभी आपको अपना स्थान छोड़कर उतरना भी पड़ेगा। यदि इस तकलीफ से बचना हो तो प्रबन्ध और राक्षसी एंजिन की जरूरत है। राक्षसी एंजिन एवं कोयले आदि का प्रबन्ध तथा चौकीदार आदि की व्यवस्था करने के पश्चात् ही आप कान्फ्रेंस की गाड़ी में प्रेसीडेंड के भरोसे पर निश्चिन्त रह सकते हैं।

अब मैं इस बात पर प्रकाश डालता हूं कि इस स्थिति में कान्फ्रेंस की आवश्यकता क्या है। गाड़ी आदि सब ठीक होने पर भी बिना पैसे दिए क्या आप मुसाफिरी कर सकते हैं? कदाचित् आप यह कहें कि गाड़ी के बनाने में हमने सहायता दी है, यानी गाड़ी हमारी बनाई हुई है, तब भी आपको यही उत्तर मिलेगा कि आपको गाड़ी का किराया देना पड़ेगा। क्योंकि गाड़ी सभी लोगों ने मिलकर बनाई है और सभी लोग बिना किराया दिए मुसाफिरी करने लगें तो काम कैसे चल सकता है? इसी प्रकार इस कान्फ्रेंस की ट्रेन के लिए भी समझिए। कान्फ्रेंस को यदि प्रति कुटुम्ब प्रति दिवस एक ही पाई दी जावे तब भी एक वर्ष में डेढ़-दो लाख रुपया होता है। यदि सब लोग एक पाई रोज किराया देने लगें तो कान्फ्रेंस का कितना काम हो!

मैं यहां की शिक्षण संस्था, विद्या-भवन में गया था। वहां मैंने लड़कों से गणित का यह हिसाब पूछा कि एक और एक कितने होते हैं। यही प्रश्न मैं यहां भी करता हूं। साधारण

आदमी तो एक और एक दो ही कहेगा, लेकिन जो बुद्धिमान होगा वह एक और एक के बीच के सम्बन्ध यानी चिह्न पर ध्यान देगा।

एक और एक के बीच में यदि बाकी का निशान होगा तो परिणाम शून्य निकलेगा। यदि जोड़ का चिह्न होगा तो एक और एक दो होंगे। यदि एक और एक के बीच में गुणा का चिह्न होगा तो गुणन फल एक आवेगा और यदि भाग का चिह्न होगा तो भागफल भी एक ही आवेगा। इस प्रकार एक और एक के बीच में किसी प्रकार का भेद रहने पर एक और एक दो से अधिक न होंगे। परन्तु यदि एक और एक के बीच का भेद निकाल दिया जावे तो एक और एक ग्यारह होंगे। यदि तीन एक और बिना भेद-भाव के होंगे तो १११ हो जावेंगे तथा बिना भेद के चार एक ११११ होंगे। इसी प्रकार यदि भेद-रहित बीस एक हों तो कैसी बड़ी शक्तिवाली संख्या हो जावेगी, इसे आप सरलता से समझ सकते हैं। इसलिए मैं आप लोगों से यही कहूंगा कि आप लोग कान्फ्रेंस की शक्ति बढ़ाने के लिए बीच के भेद को मिटाना सीखें। अन्यथा एक-एक होने पर भी परिणाम एक दो या शून्य ही होगा।

घासीलालजी का पृथक्करण

पंडित रत्न मुनिश्री घासीलालजी महाराज पूज्यश्री की सम्प्रदाय के प्रमुख साधु थे। पूज्यश्री ने उन्हें अपने हाथों से दीक्षा दी थी और पढ़ा-लिखाकर विद्वान् बनाया था। पूज्यश्री उनकी प्रत्येक दृष्टि से उन्नति चाहते थे। फिर भी सहज ईर्ष्या के कारण वे खिंचे-से रहने लगे। कई ऐसे कार्य पूज्यश्री से बिना पूछे करने लगे जिनमें आचार्य की आज्ञा अत्यावश्यक मानी गई है। कुछ बातों में आज्ञा का उल्लंघन भी किया। पूज्यश्री का हृदय जहां करुणापूर्ण था वहां बुद्धि कठोर अनुशासन चाहती थी। घासीलालजी की यह प्रवृत्ति पूज्यश्री को अनुशासन भंग के रूप में मालूम पड़ी। उन्होंने चेतावनी दी, किन्तु सन्तोषजनक परिणाम न निकला। अन्त में कार्तिक कृष्णा १ बुधवार ता० ४ अक्टूबर १६३३ को उदयपुर में श्रीसंघ के सामने आपने नीचे लिखा एलान किया।

मेरे शिष्य घासीलालजी तरावलीगढ़ वाले (जिनका चातुर्मास इस वर्ष सेमल ग्राम में है) ने कई वर्षों से सम्प्रदाय तथा मेरी आज्ञा के विरुद्ध अनेक प्रकार के कार्य आरम्भ कर दिए थे। तथापि मैं उन्हें निभाता ही रहा। लेकिन दो वर्ष से वे चातुर्मास भी मेरी आज्ञा बिना करने लगे हैं और बिना आज्ञा ही दीक्षा जैसे बड़े-बड़े विरुद्ध कार्य भी उन्होंने कर डाले हैं। फिर भी मैंने उनको समझा बुझाकर प्रायश्चित्त-विधि से शुद्ध करने के लिहाज से सम्भोग से पृथक् नहीं किया। मैंने बावरा गांव (मारवाड़) से छोटे गब्बूलालजी तथा मोहनलालजी इन दोनों सन्तों को लिखित पत्र देकर मेवाड़ भेजा और घासीलालजी को साधु-सम्मेलन के समय अजमेर आने के लिए सूचना दी। परन्तु घासीलालजी ने मेरी आज्ञा का उल्लंघन किया और वे अजमेर नहीं आए। केवल मनोहरलालजी व तपस्वी सुन्दरलालजी, जिनको मैंने कुछ ही समय घासीलालजी के पास रहने की आज्ञा दी थी, नवदीक्षित मांगीलालजी को साथ लेकर साधु-सम्मेलन के मौके पर अजमेर में मुझसे मिले। इन दोनों सन्तों ने उस पत्र पर हस्ताक्षर भी किए जिस पत्र में सम्प्रदाय के सन्तों ने मुझे यह लिखकर दिया था कि अजमेर साधु-सम्मेलन में आप जो कुछ करेंगे वह हम सबको स्वीकार होगा।

अजमेर में पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी महाराज की दोनों सम्प्रदायों को एक करने के विषय में

पंच सन्तों ने भविष्य विषयक जो फैसला दिया था, उस फैसले को स्वीकार करना या नहीं इस विषय में मैंने मुझ सहित उपस्थित ४२ सन्तों से पृथक्-पृथक् राय ली तो सबने यही सम्मति दी कि फैसला स्वीकार कर लेना चाहिए। उस समय मनोहरलालजी एवं तपस्वी सुन्दरलालजी ने भी सब सन्तों के समान फैसला स्वीकार कर लेने की ही राय दी थी। तब मैंने पंचों का दिया हुआ भविष्य विषयक फैसला स्वीकार कर लिया और पूज्यश्री मुन्नालालजी महाराज के साथ ही फैसले की स्वीकृति के हस्ताक्षर किए तथा परस्पर सम्भोग किया। पश्चात् मेवाड़ के भूतपूर्व दीवान कोठारी जी सा० बलवन्तसिंहजी के द्वारा मेवाड़में मुझसे मिलने का वायदा करके मनोहरलालजी और सुन्दरलालजी विहार कर गए। लेकिन मैं जब मेवाड़ में पहुंचा तो सुन्दरलालजी मेरे पास नहीं आए। वे देलवाड़ा ही रह गए। घासीरामजी, मनोहरलालजी तथा कन्हैयालालजी मुझसे मावली गांव में मिले।

मावली में उदयपुर के नगर सेठ नन्दलालजी और मेवाड़ के भूतपूर्व दीवान कोठारी बलवन्तसिंहजी सरीखे समाज-हितैषी श्रावकों ने और मैंने घासीरामजी तथा मनोहरलालजी को सम्प्रदाय के नियमानुसार बर्ताव करने के लिए बहुत समझाया। परन्तु उन्होंने सम्मेलन के प्रस्ताव तथा कान्फ्रेंस द्वारा स्वीकृत पंचों के फैसले को भी मानने से इन्कार कर दिया। कई बार पूछने पर भी उन्होंने मेरे सामने ऐसी कोई बात नहीं रखी जो विचारणीय हो। बल्कि मैंने उनके सामने कई ऐसी बातें रखीं जो न्यायानुसार उन्हें अवश्य स्वीकार कर लेनी चाहिए थीं। परन्तु उन्होंने एक भी बात स्वीकार नहीं की। तब मेरा विचार उसी समय उन्हें सम्प्रदाय एवं मेरी आज्ञा से बाहर घोषित करने का था। परन्तु कोठारीजी सा० तथा नगर सेठ साहेब की प्रार्थना से मैंने वह विचार कुछ दिन के लिए स्थगित रखा। आखिर घासीलालजी मुझसे चौमासे की, आज्ञा मांगे बिना ही मावली से चले गए।

मैं उदयपुर आया। उदयपुर से सूरजमलजी तथा मोतीलालजी (मलकापुर वाले) इन दोनों सन्तोंको मैंने पत्र देकर सेमल भेजा और घासीरामजी को कहलवाया कि सम्मेलन के नियमानुसार एक स्थान पर पांच सन्तों से अधिक चातुर्मास न करें। आठ सन्तों में से तपस्वी सुन्दरलालजी, समीरमलजी और किसी तीसरे सन्त को मेरे पास भेज दें। लेकिन उन्होंने मेरी आज्ञा की अवहेलना की और सन्तों को ऐसा उत्तर दिया, जिससे वे निराश होकर मेरे पास लौट आए। मैंने यह भी सूचना कराई थी कि सम्मेलन के नियमानुसार धोवन-पानी की तपस्या अनशन के नाम से प्रसिद्ध न की जावे। परन्तु उन्होंने इस नियम को भी तोड़ दिया और धोवन-पानी की तपस्या भी प्रसिद्ध कर दी। तपस्या महोत्सव मनाने में उपदेश द्वारा भी रुकावट नहीं डाली। इसी प्रकार पक्खी के ८, चौमासी के १२ और संवत्सरी के २० लोगस्स के ध्यान विषय में साधु-सम्मेलन के ठहराव का पालन नहीं किया। इससे मुझे यह प्रतीत हुआ कि घासीरामजी ने मावली में पंचों का फैसला और साधु-सम्मेलन के ठहरावों को नहीं पालने का जो कहा था उसे कार्य-रूप में भी परिणत कर दिया। इतना होने पर सेठ वर्द्धमानजी आदि की प्रार्थना से मैंने उनको 'आज्ञा बाहर' करने की घोषणा कुछ समय के लिए और स्थगित रखी।

पश्चात् सेमल से सन्देश आने पर उदयपुर के श्रावक मेघराजजी खिवंसरा, पन्नालालजी धर्मावत और मोतीलालजी हींगड़ सेमल गए। उन्होंने घासीरामजी को समझाने का बहुत

प्रयत्न किया, किन्तु घासीरामजी ने अपने विचार नहीं बदले। तत्पश्चात् राय साहेब सेठ मोतीलाल जी मुथा, सतारावाले तथा जौहरी अमृतलाल भाई, बम्बई वाले भी उदयपुर आए और उन्हें समझाने सेमल गए। परन्तु उनके समझाने पर भी वे नहीं समझे और कहा—हमने कमिटी के नाम से कान्फ्रेंस के प्रेसीडेंट के पास एक चिट्ठी भिजवा दी है। उन्होंने अमृतलाल भाई और मोतीलालजी को उक्त चिट्ठी की नकल भी दी, जिसमें लिखा था कि हमने आयन्दा के लिए पूज्यश्री की आज्ञा मंगवाना भी बन्द कर दिया है, इत्यादि। वह नकल लेकर और निराश होकर मोतीलालजी और अमृतलाल भाई उदयपुर में मुझसे मिले और नकल मुझे दिखाई। उस नकल को देखकर मुझे बहुत खेद हुआ और मेरा कर्त्तव्य हो पड़ा कि अब मैं अविलम्ब उनके लिए 'सम्प्रदाय तथा आज्ञा बाहर' की घोषणा करदूं। लेकिन उसी समय प्रेसीडेंट हेमचन्द भाई मय डेपुटेशन के उदयपुर आए। मैंने घासीरामजी सम्बन्धी सारी हकीकत उन्हें सुनाई। कान्फ्रेंस के रेज़ीडेण्ट जनरल सेक्रेटरी सेठ मोतीलालजी तथा अमृतलाल भाई ने घासीरामजी के पत्र की नकल भी अपने हस्ताक्षरों के साथ प्रेसीडेंट साहेब को दी। इस पर प्रेसीडेंट साहेब ने भी मुझे यह सम्मति दी कि आप सम्मेलन के ठहराव के अनुसार उनके साथ बर्ताव कर सकते हैं। लेकिन रात को उदयपुर के कुछ भाइयों की प्रार्थना पर प्रेसीडेंट साहेब ने मुझसे कहा कि मैं अपनी तरफ से एक चिठ्ठी सेमल देता हूं और घासीरामजी महाराज को समझाने की कोशिश करता हूं। अतएव आप आश्विन शु. पूर्णिमा तक उनको 'आज्ञा बाहर' करने की घोषणा न करें।

मैंने प्रेसीडेंट साहेब की इस प्रार्थना को मान देकर उनकी बात स्वीकार कर ली। प्रेसीडेंट साहेब ने एक पत्र सेमल भेजा, वह घासीरामजी को मिल गया। उसके बाद उदयपुर के श्रावक थावरचन्दजी वाकणा तथा रणजीतसिंहजी हींगड़ ने सेमल जाकर घासीरामजी को समझाने की पूरी कोशिश की। परन्तु उनका प्रयत्न भी निष्फल हुआ। इन दोनों के लौट आने पर उदयपुर से मदनसिंहजी कावड़िया, जोरावरसिंहजी भादव्या और मोहनलालजी तलेसरा सेमल गए। किन्तु घासीरामजी को समझाने में वे तीनों भी सफल न हुए। अर्थात् घासीरामजी ने किसी की कोई बात नहीं मानी।

कान्फ्रेंस के प्रेसीडेंट साहेब की दी हुई अवधि (आश्विन शु. १५) समाप्त हो चुकी। लेकिन घासीरामजी ने मेरी आज्ञा और सम्प्रदाय में रहने सम्बन्धी कोई बात स्वीकार नहीं की। इसलिए निरुपाय होकर उदयपुर के श्रीसंघ की सम्मति प्राप्त करने के पश्चात् मैं श्रीसंघ के सामने यह घोषणा करता हूं कि—

(१) आज से घासीरामजी मेरी आज्ञा और सम्प्रदाय के बाहर हैं। इसलिए पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी महाराज की सम्प्रदाय के समस्त सन्त इनसे सम्भोग आदि कोई भी व्यवहार नहीं करें। इस सम्प्रदाय के साथ सम्बन्ध रखने वाले सन्त-सतियां भी घासीरामजी से वन्दन-सत्कार आदि परिचय नहीं करें।

(२) घासीरामजी के पास रहे हुए मनोहरलालजी सुन्दरलालजी, समीरमलजी आदि भी शीघ्र मेरे पास चले आवें। उनके पास रहने की मेरी आज्ञा नहीं है। मेरी आज्ञा को न मानकर उन्हीं के पास रहने वाले मेरी आज्ञा के बाहर समझे जावेंगे।

(३) चतुर्विध श्रीसंघ का भी कर्त्तव्य है कि जैन प्रकाश ता० ७-५-३३ के पृष्ठ ४५८ में

प्रकाशित ठहराव नं० ४ 'साधु-सम्मेलन द्वारा निर्णीत नियमों के उपयोगी सार की कलम नं० २५ के अनुसार इनके साथ बर्ताव करेंगे।

पुनश्च—यदि घासीरामजी अपने आज पर्यन्त के कृत्यों की प्रायश्चित्त विधि से शुद्धि तथा सम्प्रदाय आज्ञा के आजतक के नियमों को पालना स्वीकार करके सम्प्रदाय में शामिल होना चाहें, तो नियमपूर्वक सम्प्रदाय में शामिल करने को मैं हर समय तैयार हूं ?

उदयपुर मेवाड़

ता० ४-१०-१९३३

कार्तिक कृ १. सं. १९९०

पूज्यश्री की घोषणा के अनुसार कान्फ्रेंस के प्रेसीडेंट की ओर से नीचे लिखी सूचना प्रकाशित हुई—

आवश्यक सूचना

पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज साहेब ने अपने शिष्य घासीरामजी महाराज को अपनी सम्प्रदाय और आज्ञा के विरुद्ध कार्य करने के कारण, अपनी आज्ञा के बिना जहां चाहे चातुर्मास करने से, अपनी आज्ञा के बिना दीक्षा देने से श्री साधु-सम्मेलन के नियम जैसे—धोवन पानी की तपस्या को अनशन के नाम से प्रसिद्ध न करना, पक्खी, चौमासी और सवत्सरी के दिवसठ हराई हुई लोगस्स की संख्या, पांच साधु से अधिक एक ही जगह चातुर्मास न करना—आदि के भंग करने से श्री साधु-सम्मेलन के प्रस्ताव नं० ४ के अनुसार (देखो जैन प्रकाश ता० ७-५-३३ पृ.४५८) हुक्मीचन्दजी म० साहेब की सम्प्रदाय और आज्ञा के बाहर आसोजवदी (मारवाड़ी कार्तिक वदी १) ने कर दिया है। ऐसी खबर श्री साधुमार्गी जैन पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी महाराज के सम्प्रदाय के हितेच्छु श्रावक मण्डल, रतलाम कि जिसके प्रेसीडेंट श्री वर्द्धमानजी पीतलियाजी साहेब हैं, उनकी तरफ से तथा उदयपुर श्रीसंघ की तरफ से लिख कर भेजा गया है। जिसके ऊपर से यह खबर हिन्द के स्थानकवासी जैन के श्री चतुर्विध-संघ को दी जाती है, जिससे कि साधु-सम्मेलन और कान्फ्रेंस के धाराधोरण के अनुसार व्यवहार किया किया जा सके।

हेमचन्द रामजी भाई मेहता

प्रमुख, श्री श्वे. स्था. जैन कान्फ्रेंस

तेरहपंथी भाइयों का विफल प्रयास

साधु-जीवन का मुख्यतम उद्देश्य आत्मिक अभ्युदय साधन करना है। जगत् के जंजालों का त्याग कर व्यक्ति इसीलिए साधु बनता है कि वह सभी प्रकार के संभोगों से विमुक्त होकर आत्मा की चरम उन्नति कर सके। अतएव साधु-जीवन अंगीकार करने वाला अगर दुनिया से अपनी पीठ फेर ले और परकीय श्रेयस्-अश्रेयस् की चिन्ता छोड़ कर, एकाग्र होकर अपनी ही साधना में लीन हो जाय तो वह अपना अधिक हित सम्पादन कर सकता है। इससे उसकी साधना में किसी प्रकार की अपूर्णता नहीं आ सकती, वरन् पूर्णता ही आएगी। फिर भी साधु अपनी आध्यात्मिक आराधना के साथ जगत् के जीवों का कल्याण करने में भी योग देते हैं। इसका क्या कारण है ?

हमारी समझ में इसका प्रधान कारण यह है कि स्वभाव से परम दयालु मुनि जगत् के

मूढ़ जीवों को जब अहित मार्ग में जाते देखते हैं तो उनका हृदय दया से द्रवित हो जाता है और वे उन्हें कुमार्ग से हटा कर सन्मार्ग पर लाने का समुचित प्रयत्न करते हैं। शास्त्र में साधु को 'सव्वभूअप्पभूअस्स' विशेषण दिया गया है। यह सर्वभूत-आत्मभूतभाव अर्थात् समस्त प्राणियों को अपने आत्मा के समान समझने का भाव संतों में काफी उग्र हो जाता है। गीता के शब्दों में इसे 'आत्मौपम्यबुद्धि' कह सकते हैं। इस आत्मौपम्य बुद्धि के कारण साधु दूसरे जीवों के कल्याण साधन में प्रवृत्त होते हैं।

इस सहज दयालुता तथा आत्मौपम्य के कारण ही पूज्यश्री ने थली प्रान्त में विहार किया था और धर्म मानकर घोर अधर्म में फँसे हुए तेरापंथी भाइयों के उद्धार की चेष्टा की थी। मरु-भूमि का कष्टकर विहार तथा सर्दी-गर्मी, आहार-पानी आदि की असुविधाएं सहने का और कोई कारण नहीं था। अपने ध्यान-मौन आदि में किंचित् अन्तराय सहन करके भी आप इन भाइयों के उद्धार के लिए तैयार हुए थे। मगर अधिकांश तेरापंथियों ने पूज्यश्री के इस परम पुनीत और प्रशस्त प्रयास का मूल्य नहीं समझा। उन्हें उचित तो यह था कि वे इस अवसर से लाभ उठाते। सत्य को सर्वोपरि समझ कर, अपने आग्रह को थोड़ी देर के लिए भुलाकर अपने विवेक को आगे करते और पूज्यश्री के कथन को सुन समझ कर शास्त्रों से उसका मिलान करते। मगर उन्होंने विवेक का मार्ग न अपनाकर दूसरा ही मार्ग अख्तियार किया। उन्होंने सत्य को गौण और कदाग्रह को प्रधान स्थान दिया। इस मार्ग का अवलम्बन करके उन्होंने जो अभद्र और अशिष्ट व्यवहार किया उसका किंचित वर्णन पहले किया जा चुका है।

पूज्यश्री जब थली से विहार कर उदयपुर पधार गये तो तेरापंथी भाइयों ने एक और स्तुत्य (!) करतूत की।

पूज्यश्री ने तेरापंथी सम्प्रदाय की आलोचना करने के लिए 'सद्धर्ममण्डन' और 'अनुकम्पा-विचार' नामक दो ग्रंथों का निर्माण किया था। इनमें तेरहपंथियों के मान्य-ग्रन्थ 'भ्रमविध्वंसन' का और उनकी अनुकम्पा की ढालों का खण्डन करके दया, दान आदि को एकान्त पाप मानने का विरोध किया था। इन ग्रंथों में शास्त्रीय विचार करने के अतिरिक्त और कोई आक्षेप-जनक बात नहीं है। लेकिन तेरहपंथी सम्प्रदाय के अनुयायी इन ग्रंथों से ऐसे कुछ घबराये जैसे आजकल लोग अणुबम से घबराते हैं। उन्होंने बीकानेर राज्य की ओर से दोनों ग्रंथ जब्त कराने के चक्र चलाने शुरू किये। इसके लिए उन्होंने एड़ी से चोटी तक पसीना बहाया, मगर उनकी तकदीर में निराशा ही बदी थी-और अंत में वही उनके पल्ले पड़ी। बीकानेर रियासत के तत्का-लीन स्थानापन्न प्रधानमंत्री ठाकुर शादूलसिंहजी ने दोनों पक्षोंकी बात सुनकर जो न्याययुक्त निर्णय दिया वह इस प्रकार है:—

'नकल हुक्म दफ्तर साहेब प्राइम मिनिस्टर ता० ५-७-३३ मुसीव नकल नं० ६२ ता० मुरजुआ ५-६-३३ फैसला।

५-६-३३ मिसल मुकदमा जरिए रोवकार महकमा कौंसिल ता० २०-३-३३ दरबारे इसके कि एक किताब जिसका नाम 'चित्रमय अनुकम्पाविचार' है, बाइस टोला सम्प्रदाय की तरफ से छपाई गई है व तेरहपंथी समाज के चित्त को दुखाने वाली जाहिर की गई है। सेठ फूसराज वगैरह से दर्याफ्त होवे कि यह कि यह किताब जब्त क्यों न की जावे? और किताब 'सद्धर्ममण्डल'

नामकी भी जिसके लिए ता० २०-३-३३ को भी अलग दर्याफ्त किया है, क्यों नहीं ज़ब्त की जावे ? सीगा मुतफर्रकात माल।' मिन जुमले दूसरी किताबों के कि जिनका काबिल ऐतराज पाए जाने पर बीकानेर की सीमा के अन्दर दाखिल होना मना किया गया है, दो किताबें जिनका नाम 'चित्रमय अनुकम्पाविचार' और 'सद्धर्म मण्डनम्' है तेरह पंथियों ने पेश करके जाहिर किया है कि इनको भी ज़ब्त किया जाना चाहिए। मगर इनकी निस्वत पूरी तहकीत किए वगैर कोई हुक्म देना मुनासिब ख्याल न किया जाकर बाईस टोला सम्प्रदाय के मुअज्जिज शख्सों में से सेठ फूसराजदूगड़ साकिन सरदार शहर से, सेठ भैरोंदानजी सेठी बीकानेर, सेठ मूलचन्दजी कोठारी साकिन चूरू और सेठ कनीराम बांठिया साकिन भीनासर से दरियाफ्त किया गया कि बतलाया जावे कि इन किताबों को क्यों न ज़ब्त किया जावे। चुनाचे सेठ फूसराज वगैरह ने हाजिर होकर अपने जवाब के साथ-साथ किताबें 'भ्रमविध्वंसनम्' और 'शिशुहित शिक्षा द्वितीय भाग' नाम की पेश की जो तेरहपंथियों की ओर से छपाई हुई है और जाहिर किया कि यह इन तेरहपंथियों की बनाई हुई किताबों के जवाब में हमारे पूज्यश्री महाराज ने इस लिए बनाई हैं कि दूसरी सम्प्रदाय की तरफ से जैनधर्म की मान्यता के प्रति जो झूठे आक्षेप भ्रम में पड़कर कर रहे हैं न करें। और 'शिशुहितशिक्षा' और 'भ्रमविध्वंसनम्' नामक पुस्तकों को पढ़कर अपने धर्म के सम्बन्ध में कोई भ्रम न हो जावे। इससे केवल हमारा व्यक्तिगत सम्बन्ध नहीं है। बल्कि कुल स्थानकवासी सम्प्रदाय से है। साथ ही इस जवाब के फूसराज वगैरह ने एक लिस्ट उन अपमानजनक शब्दों की तैयार करके पेश की है कि जो इन तेरहपंथियों की बनाई हुई किताबों में दर्ज है। ऐसा होते हुए भी एक सम्प्रदाय की पुस्तकों का ज़ब्त करना और दूसरों का प्रचार रखना गवर्नमेण्ट बीकानेर के सहन करने योग्य नहीं है और न इन में किसी के मान-हानि कारक व अश्लील शब्दों का प्रयोग किया गया है। हमने इन दोनों किताबों को देखा तो जाहिर है कि ये किताबें जिनको तेरहपंथी ज़ब्त करने की चेष्टा में हैं उनकी 'भ्रमविध्वंसनम्' और 'शिशुहित शिक्षा द्वितीय भाग' नामक किताबों के जवाब में बाईस टोला सम्प्रदायवालों की तरफ से छपाई गई हैं कि जिसको गवर्नमेण्ट बीकानेर के नजदीक जब्त किया जाना मुनासिब नहीं है। लिहाजा कागज़ात हाजा दाखिल दफ्तर होवें। ता० ५-९-३३

द० ठाकुर शार्दूलसिंहजी
एक्टिंग प्राइममिनिस्टर ६-९-३३.

चातुर्मास के पश्चात्

उदयपुर का चौमासा समाप्त होने पर पूज्यश्री देलवाड़ा, नाथद्वारा, मोटागांव आदि स्थानों में धर्मदेशना करते हुए निम्बाहेड़ा पधारे। यहां बाहर से बहुत-से दर्शनार्थी आपके दर्शन और उपदेश से लाभ उठाने के लिए उपस्थित हो गये थे। अनेक राज्यकर्मचारी भी पूज्यश्री के व्याख्यान सुनकर आनन्दित होते थे।

अजमेर के साधु-सम्मेलन के अवसर पर पूज्यश्री हुक्मीचन्द्रजी महाराज के दोनों सम्प्रदायों में एकता स्थापित हो गई थी। इस संबंध में पंच मुनिराजों ने जो निर्णय दिया था उसके अनुसार पूज्यश्री मुन्नालालजी महाराज के स्वर्गवास के पश्चात् पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज

ही दोनों वर्गों के आचार्य हो चुके थे। मगर संघ का दुर्दैव ही समझिए कि अनेक उलझन बाद जो एकता हुई थी वह स्थायी नहीं रही और निम्बाहेड़ा में उस एकता की इतिश्री होग। एकता-भंग के कारणों में यहां उतरने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि तत्कालीन पत्रों में सा विवरण प्रकाशित हो चुका है।

निम्बाहेड़ा से विहार करके अनेक स्थानों को पवित्र करते हुए पूज्यश्री २३ ठाणा से जावद पधारे। भावी युवाचार्य पण्डित-प्रवर मुनि श्रीगणेशीलालजी महाराज भी साथ थे। यहां पूज्यश्री के व्याख्यानों में जैन, जैनेतर और राजकीय कर्मचारियोंकी बड़ी भीड़ रहती थी। पूज्यश्री मृत्युभोज की प्रथा के विरुद्ध समय-समय पर उपदेश दिया करते थे। मृत्युभोज करने से मृतात्मा को शांति प्राप्त होती है, यह धारणा तो मिथ्यात्वपूर्ण है ही; लौकिक दृष्टि से भी मृत्यु-भोज की बुराइयां असह्य हैं। मृत्युभोज'के संबन्ध में पूज्यश्री के निम्नलिखित वाक्य माननीय है—

'मोसर (मृत्युभोज) का भोजन महाराक्षसी भोजन है। वह गरीबों को अधिक गरीब बनाने वाला और धनवानों को दयाहीन बनाने वाला है।'

'इस कुरीति ने अनेक गरीबों का सत्यानाश कर डाला है। धनवान् लोगों को पैसे की कमी नहीं। वे इस प्रसंग पर पैसा लुटाते हैं और गरीबों पर ताने कसते हैं। बेचारे गरीब जाति में अपनी प्रतिष्ठा कायम रखने के लिए धनवानों का अनुकरण करते हैं। जाति में धनवानों की प्रधानता होती है और उन्होंने प्रतिष्ठा की कसौटी इस प्रकार की बना रखी है। पर याद रखना चाहिए, सच्चा जाति-हितैषी वह है जो अपने व्यवहार से गरीबों की प्रतिष्ठा बढ़ाता है, जो अपने गरीब जाति-भाइयों की सहूलियत देखकर स्वयं वर्त्ताव करता है, जो उनकी प्रतिष्ठा में ही अपनी प्रतिष्ठा मानता है। सच्चा जाति-हितैषी अपने बड़प्पन की रक्षा गरीबों के बड़प्पन की रक्षा करने में ही मानता है।'

'मित्रो! जरा विचार करो—क्या एक-दो दिन तक भोज में जीमने से आप मोटे-ताजे हो जाएंगे? अगर ऐसा नहीं है तो 'मोसर' में खर्च होने वाला धन किसी धर्मकार्य में, जाति-भाइयों की भलाई में, खर्च करना क्या उचित नहीं है? आपके अनेक जाति भाई वृथा भटकते फिरते हैं। उन्हें कहीं से कोई सहायता नहीं मिलती। अगर उनकी सहायता में आप कुछ व्यय करें तो क्या आपका धन व्यर्थ चला जायगा? यदि मोसर करने से नाम होता है तो क्या इससे नाम न होगा?'

'मित्रो! संसार की विषम स्थिति की ओर दृष्टि डालो। जिसके घर आप मोसर जीमने जाते हैं उसके घर की, उसके बाल-बच्चों की और उसके घर की महिलाओं की स्थिति देखो तो मालूम होगा कि मोसर जीम कर कैसा राक्षसी कृत्य किया जा रहा है।'

आपके इस प्रकार के उपदेश से बहुत से श्रोताओं पर अच्छा प्रभाव पड़ा। कइयों ने मोसर करना त्याग दिया और कइयों ने मोसर में जीमने का त्याग कर दिया।

पूज्यश्री के प्रभाव से यहां की दो पार्टियां मिलकर एक हो गई। अजैनों में भी अनेक प्रकार के त्याग-प्रत्याख्यान हुए।

जावद से विहार करके बड़ी सादड़ी आदि अनेक स्थानों में उपदेश की लोकोत्तर गंगा बहाते हुए पूज्यश्री ता० २६-१-३४ को कानौड़ पधारे। आपके पदार्पण के उपलक्ष्य में कानौड़ के

रावजी श्रीकेसरीसिंहजी ने ढिंढोरा पिटवाकर अगता पलवाया। यहां आपके चार व्याख्यान हुए। दो व्याख्यानों में रावजी साहब पधारे और पूज्यश्री के मार्मिक व्याख्यानों से अत्यन्त प्रभावित हुए। ठाकुर अमरसिंहजी, ठाकुर मानसिंहजी, ठाकुर नाहरसिंहजी और ठाकुर उम्मेदसिंहजी ने हिंसा करने का आंशिक त्याग किया। ता० २७ को विहार करके आप भिंडर पधारे। यहां से डूंगरा होकर आपने जावद पधारने की इच्छा प्रकट की।

युवाचार्य पद-महोत्सव

अजमेर-सम्मेलन में पण्डित-प्रवर मुनि-श्रीगणेशीलालजी महाराज को फाल्गुन शुक्ला पूर्णिमा से पहले-पहल युवाचार्य-पदवी प्रदान करने का निश्चय हुआ था। पूज्यश्री सम्मेलन के निर्णय के अनुसार किसी योग्य स्थान पर और प्रशस्त मुहूर्त्त में यह कार्य सम्पन्न करना चाहते थे। इस समारोह के लिए जावद-श्रीसंघ की आग्रहपूर्ण प्रार्थना थी। पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी महाराज के सम्प्रदाय के लिए जावद भी एक महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। पूज्यश्री शिवलालजी महाराज आदि अनेक महापुरुषों का युवाचार्य-पद महोत्सव तथा आचार्य-पद-महोत्सव मनाने का सौभाग्य इसी नगर को प्राप्त हुआ है।

इस प्रकार ऐतिहासिक महत्त्व रखने वाले जावद नगर के गौरव को फिर ताजा करने के लिए पूज्यश्री ने यहां के श्रीसंघ की प्रार्थना स्वीकार कर ली। फाल्गुन शुक्ला तृतीया पदवी-प्रदान के लिए शुभ मुहूर्त्त निश्चित किया गया।

जावद के उत्साही श्रीसंघ ने भारत के सभी प्रान्तों में आमंत्रणपत्रिकाएं भेजीं। सभी सन्तों और सतियों को सूचना दी गई। अपने भावी धर्म-नौका के खिवैया का युवाचार्य-पद-महोत्सव देखने और अपनी श्रद्धा-भक्ति प्रकट करने के लिए चारों तीर्थ जावद में जमा होने लगे। फाल्गुन कृष्ण द्वादशी के दिन पूज्यश्री युवाचार्यजी आदि संतों के साथ जावद पधारे। सहस्रों श्रावकों और श्राविकाओं ने अपूर्व उमंग और उत्साह के साथ सामने जाकर पूज्यश्री तथा युवाचार्यश्री का हार्दिक स्वागत किया। दर्शन-लाभ करके अपने नेत्र सार्थक किये। महाप्रभु महावीर और जैन-धर्म के जयघोष के साथ जावद नगर में प्रवेश हुआ।

उसी समय श्रीमोतांजी महाराज के सम्प्रदाय की महासती श्रीसुन्दर कुंवरजी ठा० ४ का शुभागमन हुआ और आप भी प्रवेश के समय सम्मिलित हो गईं। मुनिश्री चांदमलजी महाराज (बड़े), मुनिश्री हरसचन्दजी महाराज आदि ठा. ५, श्री रंगूजी महाराज के सम्प्रदाय की महासती श्रीनाथाजी म० ठाणा ७ और श्री मोतांजी म० के सम्प्रदाय की महासती श्रीभूरांजी ठा० ३ से पहले ही पधार चुके थे। यह सब संत और सतियांजी भी पूज्यश्री के स्वागत में सम्मिलित थे। इस प्रकार चारों तीर्थों के विशाल जनसमूह के साथ पूज्यश्री ने जावद में प्रवेश किया। पूज्यश्री ज्ञानमलजी चौधरी के दरीखाने में ठहरने वाले थे। आप सीधे वहीं पधारे। वहां आपका छोटा-सा भाषण हुआ। आपने फरमाया—

मैं डेढ़ महीना पहले जावद आया था और आज फिर यहां आया हूं। पहले आया था तब हेमन्त ऋतु थी और अब बसन्त का आरम्भ है। हेमन्त ऋतु अपने प्रखर शीत से वृक्षों के पत्तों को जला देती है। बसन्त ऋतु आकर उन उजड़े हुए वृक्षों को नवीन पल्लव प्रदान करती और द्विगुणित शोभायुक्त बना देती है। बसन्त के आगमन से जैसे वृक्षों में नये पल्लव और अंकुर

उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार आप लोगों में भी नया उत्साह उत्पन्न होगा और आप जैन शासन को उन्नत बनाने में प्रयत्नशील होंगे, ऐसा विश्वास है।

पूज्यश्री का यह संदेश और मंगल-वचन सुनकर जनता वहां से विदा हुई। कुछ देर के पश्चात् प्रवर्त्तिनी महासती श्रीआनन्दकुंवरजी महाराज ठा. ६ से पधार गईं। प्रवर्त्तिनी श्रीकेसर कुंवरजी महाराज भी ठा० ३ से पधार गईं।

इस तरह संतों और सतियों के आगमन का तांता लगा ही रहा। फाल्गुन शुक्ला द्वितीया को सन्तों की संख्या ३० और सतियों की संख्या ३५ हो गई। दर्शनार्थी श्रावक भी करीब ७००० की संख्या में एकत्र हुए। जावद श्रीसंघ के उत्साह का पार नहीं था। बड़ी स्फूर्ति और तत्परता के साथ आगत अतिथियों का सत्कार किया गया।

उस समय नीचे लिखे सन्त विराजमान थे—

१. जैनाचार्य पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज।
२. मुनिश्री चांदमलजी महाराज।
३. मुनिश्री हर्षचन्दजी महाराज।
४. मुनिश्री मांगीलालजी महाराज।
५. मुनिश्री धूलचन्दजी महाराज।
६. मुनिश्री शान्तिलालजी महाराज।
७. मुनिश्री गणेशीलालजी महाराज।
८. मुनिश्री सरदारमलजी महाराज।
९. मुनिश्री हजारीमलजी महाराज।
१०. मुनिश्री पन्नालालजी महाराज।
११. मुनिश्री शोभालालजी महाराज।
१२. मुनिश्री श्रीचन्दजी महाराज।
१३. मुनिश्री मोतीलालजी महाराज।
१४. मुनिश्री बख्तावरमलजी महाराज।
१५. मुनिश्री गब्बूलालजी महाराज।
१६. मुनिश्री कपूरचन्दजी महाराज।
१७. मुनिश्री हेमराजजी महाराज।
१८. मुनिश्री हर्षचन्दजी महाराज।
१९. मुनिश्री हमीरलालजी महाराज।
२०. मुनिश्री नन्दलालजी महाराज।
२१. मुनिश्री भूरालालजी महाराज।
२२. मुनिश्री जीवनमलजी महाराज।
२३. मुनिश्री जेठमलजी महाराज।
२४. मुनिश्री चांदमलजी महाराज।
२५. मुनिश्री सुभालचन्दजी महाराज।

२६. मुनिश्री घासीलालजी महाराज ।

२७. मुनिश्री जवरीमलजी महाराज ।

२८. मुनिश्री चतुरसिंहजी महाराज ।

२९. मुनिश्री अम्बालालजी महाराज ।

३०. मुनिश्री मोतीलालजी महाराज ।

श्री रंगूजी महाराज की सम्प्रदाय की महासती प्रवर्त्तिनी श्री आनन्दकुंवरजी महाराज ठा० २५ ।

श्री मोताजी महाराज की सम्प्रदाय की महासती प्रवर्त्तिनी श्री केसर कुंवरजी ठाना. १० ।

कुल सन्त-सती ६५ उपस्थित थे ।

युवाचार्यश्री का संक्षिप्त परिचय

उदयपुर में ओसवालकुलभूषण श्रीसाहबलालजी मारु रहते थे। आप मेवाड़ रियासत के प्रामाणिक कर्मचारियों में से एक थे। फौजदारी महकमे में खजांची थे। आपकी धर्मशीला धर्म पत्नी श्रीमती इन्द्राबाई की कोख से श्रावण कृष्णा ३, शनिवार संवत् १९४७ के दिन एक पुत्र-रत्न का जन्म हुआ। जैसे श्रावण मास पृथ्वी को हरा-भरा, सम्पन्न और शोभामय बना देता है उसी प्रकार उस पुत्र ने अपने माता-पिता और पारिवारिक जनों के हृदय को हरा-भरा, आनन्द-मय और उल्लास से परिपूर्ण कर दिया। ग्रीष्म के ताप से तपी पृथ्वी श्रावण की वर्षा से शीतल हो जाती है उसी प्रकार इस पुत्ररत्न की प्राप्ति से माता-पिता की चिरकालीन अभिलाषा पूर्ण होने के कारण उनका हृदय शीतल हो गया। यही पुत्र-रत्न आज साधु-रत्न है, जिसे युवाचार्य-पद पर प्रतिष्ठित करने की जावद में तैयारी हो रही है!

कौन जाने यह एक अकस्मात् था या विद्वान् ज्योतिषी की दीर्घ दृष्टि का परिणाम था कि बालक का नामक 'गणेशीलाल' रखा गया! कुछ भी हो, मगर 'गणेशीलाल' नाम सार्थक सिद्ध हुआ। उस समय बालक सिर्फ नामनिक्षेप से ही 'गणेश' था, अब युवाचार्य बन कर—साधुओं के गण—समूह का ईश बनकर भावनिक्षेप से भी 'गणेश' बना!

श्रीगणेशीलालजी ने अपने बचपन में हिन्दी और अंगरेजी भाषा के साथ-साथ विशेष रूप से उर्दू भाषा की शिक्षा प्राप्त की थी। चौदह वर्ष की अवस्था में आपका विवाह हो गया और आप अपने पिताजी के साथ कचहरी का काम-काज सीखने लगे। जब आप १५ वर्ष के हुए तो अचानक ही आप पर वज्रपात-सा हुआ। माता और पिता-दोनों स्वर्ग सिधार गए। कुछ ही दिनों बाद आपकी पत्नी ने भी अपने सास-ससुर का अनुगमन किया। इस प्रकार प्रकृति ने लगभग एक साथ ही आपको सब प्रकार के बन्धनों से मुक्त कर दिया।

जब गणेशीलालजी का बचपन ही था, तब आप अपने पिताजी के साथ स्व० पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज की सेवा में गये थे। पूज्यश्री ने उस समय दीक्षा लेने का उपदेश दिया था और आपके पिताजी से कहा था—'यदि आप अपने बालक को संयम दिला दें तो इससे धर्म की बहुत उन्नति होगी। यह बालक बहुत होनहार है।' पूज्य श्रीलालजी महाराज मनुष्य को परखने में कितने कुशल थे, यह बात इस घटना से सहज ही जानी जा सकती है। मगर पूज्यश्री के यह फरमाने पर भी आपके पिताश्री ने पुत्रवात्सल्य के कारण दीक्षा न दिलाई। बल्कि संसार

में अधिक जकड़ रखने के लिए आपको विवाह-बन्धन में बांध दिया। फिर भी जिसके भाग्य में आत्मोन्नति का प्रबल योग हो उसे निमित्त मिल ही जाते हैं। माता, पिता और पत्नी के स्वर्ग-वास के पश्चात् आप सब तरह से बन्धन-मुक्त हो गए। यद्यपि आपकी एक सगी बहिन थीं परन्तु पिताजी उनका विवाह पहले ही कर चुके थे। आपको किसी किस्म की कौटुम्बिक चिन्ता नहीं थी।

संयोगवश उसी वर्ष तपस्वी मुनि श्रीमोतीलालजी महाराज का और पूज्य श्रीजवाहरलाल-जी म० का उदयपुर में चातुर्मास हुआ। पूज्यश्री ने आपको संसार का असार स्वरूप समझाया और संयम की उत्कृष्टता बतलाई। आपका मन संसार से विरक्त तो हो ही गया था, पूज्यश्री के उपदेश से विरक्ति और बढ़ गई। मार्गशीर्ष कृष्णा प्रतिपद् संवत् १९६२ के दिन आपको मुनि श्रीमोतीलालजी महाराज की नेश्राय में पूज्यश्री ने स्वयं दीक्षा दी। इस प्रकार आपने संयम ग्रहण करके अपने जीवन के असली अभ्युदय के पथ पर प्रयाण किया।

मुनिव्रत धारण करने के बाद आपने अनेक थोकड़े और शास्त्र लिखे। इसके पश्चात् आप पूज्यश्री के साथ दक्षिण प्रान्त में पधारे और वहां संस्कृत, व्याकरण, साहित्य तथा न्याय-शास्त्र आदि का विशिष्ट अध्ययन किया। आपने जिस तत्परता के साथ इन सब विषयों का अध्ययन किया, उसका वर्णन पहले किया जा चुका है।

आप प्रायः पूज्यश्री के साथ ही विचरते रहे हैं। अतएव दिन-प्रतिदिन आपकी प्रतिभा का विकास होता गया। संवत् १९७६–७७ में जब पूज्यश्री मालक, मारवाड़ पधारे तब आपने चिंचवड़ और सतारा में चातुर्मास किये।

पूज्यश्री के प्रति आपकी भक्ति बड़ी प्रगाढ़ थी। आपने सदैव मनोयोग के साथ पूज्यश्री की सेवा की। संवत् १९८१ में, जलगांव-चातुर्मास के समय जब पूज्यश्री के हाथ में भयंकर फोड़ा हो गया था, आपने बड़ी ही तत्परता से सेवा की। उन दिनों एक बार पूज्यश्री की अवस्था चिन्ताजनक हो गई थी। उस समय सेठ वर्द्धमानजी पीतलिया, सेठ बहादुरमलजी बांठिया तथा सेठ लक्ष्मणदासजी, श्री श्रीमाल आदि सम्प्रदाय के मुख्य श्रावक वहां मौजूद थे। उनकी तथा वहां उपस्थित १७ संतों की एवं मुनिश्री कजोड़ीमलजी म०, श्री हीरालालजी म० आदि अन्यत्र विराजमान संतों की सम्मति आपने मंगवा रखी थी कि आपको युवाचार्य पदवी प्रदान कर दी जाय। संघ के प्रबल पुण्योदय से पूज्यश्री का स्वास्थ्य ठीक हो गया, अतः युवाचार्य पदवी देने की शीघ्रता नहीं रही। पूज्यश्री और मुनिश्री दोनों अनेक स्थानों पर विचरते हुए उपदेशामृत की वर्षा करने लगे।

संवत् १९८३ का चातुर्मास आपने जलगांव में ही व्यतीत किया। उस समय वहां महाभाग मुनि श्रीमोतीलाल जी महाराज बीमार थे। आपने जलगांव में उपदेश-अमृत बरसाते हुए अपने गुरुवर्य की तन-मन से अविश्रान्त सेवा की। तपस्वी महाराज चातुर्मास के पश्चात् भी अस्वस्थ रहे और फाल्गुन वदि ११ को स्वर्ग सिधार गए।

गुरुदेव के स्वर्गवास के अनन्तर आपने जलगांव से विहार किया और मालवा, मारवाड़ होते हुए संवत् १९८४ में पूज्यश्री की सेवा में भीनासर पहुंचे। संवत् १९८५ में पूज्यश्री का चौमासा सरदारशहर हुआ, जब कि आपने चूरू में चातुर्मास करके दया-दान आदि का प्रचार

किया। आपके व्याख्यानों का जनता पर खूब प्रभाव पड़ा। आपने संवत् १९८७ का चातुर्मास ब्यावर में १९८८ का फलौदी में किया। आपके सदुपदेश से माहुलियाजी में प्रतिवर्ष होनेवाली सात-आठ सौ बकरों की बलि बंद हो गई। आपके उपदेश से अनेक क्षेत्रों में विविध प्रकार के उपकार हुए।

आप स्वभाव के सरल, भद्र और सेवाभावी हैं। अपने साथ के छोटे-से-छोटे संत को किसी प्रकार की तकलीफ हो जाय तो आप भोजन करना तक भूल जाते हैं। अपने शरीर की उतनी चिन्ता नहीं करते मगर मुनियों के लिए व्यग्र हो जाते हैं। मुनियों के साथ आपका व्यवहार अत्यन्त मधुर होता है मगर संयम-पालन के विषय में अत्यन्त कठोर भी हैं। संयम की मर्यादा का भंग होना आपको असह्य है। यों आप क्षमा के सागर हैं मगर असंयम को आप तनिक भी क्षमा नहीं कर सकते।

अजमेर-साधु-सम्मेलन में पंच मुनियों ने जो निर्णय दिया था उसमें एक बात यह भी थी कि 'मुनि श्री गणेशीलालजी महाराज को युवाचार्य बनाया जाय।' उस निर्णय में यह भी प्रतिपादन किया गया था कि निर्णय की सभी बातें फाल्गुनी पूर्णिमा से पहले ही अमल में आ जानी चाहिए।

इस निर्णय के अनुसार फाल्गुन शुक्ला तृतीया को युवाचार्य पदवी देने का निश्चय हुआ। पदवी-प्रदान के समारोह के लिए एक विशाल मैदान चुना गया। वहीं प्रतिदिन व्याख्यान होता था। प्रतिपद् के दिन युवाचार्य का भाषण हुआ। तदनन्तर पूज्यश्री ने प्रभावशाली एवं रोचक व्याख्यान फरमाया। आपने कहाः—

"जिस समय सूर्य अपनी सहस्र किरणों से प्रकाश फैला रहा हो उस समय लोगों को दीपक की सहायता की आवश्यकता नहीं रहती। परन्तु सूर्य के अभाव में यदि सांसारिक लोग दीपक की सहायता न लें तो उनका कार्यव्यवहार सुविधापूर्वक कैसे हो सके? इसीलिए सूर्य के अभाव में दीपक की सहायता ली जाती है। सूर्य और दीपक में यह अन्तर अवश्य है कि सूर्य स्वयं प्रकाशमय है उसे किसी की अपेक्षा नहीं रखनी पड़ती। उसका प्रकाश प्रशस्त है। लेकिन दीपक स्वयं प्रकाशमय नहीं है। उसका प्रकाश सापेक्ष एवं अप्रशस्त है। सापेक्ष होने के कारण दीपक से प्रकाश लेने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि उसमें तेल दिया जाय और बत्ती रखी जावे और बत्ती को अग्नि लगाई जावे।

भगवान् तीर्थंकर सूर्य के समान हैं। बल्कि उनकी समता करोड़ों सूर्यों से भी नहीं हो सकती। वे केवल ज्ञानी, अन्तर्यामी, और घट-घट के भावों को जानने वाले होते हैं। उनका ज्ञान पूर्ण होता है। लेकिन वर्तमान समय में भगवान् तीर्थंकर भारतवर्ष में विद्यमान नहीं हैं। इसलिए उनके अभाव में चतुर्विध-संघ के लिए आचार्यादिक ही आधार हैं। भगवान् तीर्थंकर में और आचार्यादिक में वैसा ही अन्तर है, जैसा सूर्य और दीपक में है। अर्थात् एक सापेक्ष है और दूसरा निरपेक्ष। पूर्ण ज्ञानी होने के कारण भगवान् तीर्थंकर को किसी की अपेक्षा नहीं है, न किसी की सहायता की ही आवश्यकता रहती है। लेकिन आचार्य, तीर्थंकर के समान पूर्णज्ञानी नहीं होते। इस लिए आचार्य को चतुर्विध-संघ की अपेक्षा रहती है। चतुर्विध-संघ की सहायता होने पर ही आचार्य चतुर्विध-संघ के आधार-रूप हो सकते हैं। अन्यथा जिस प्रकार तेल

युवाचार्य गणेशीलालजी को युवाचार्य-पद की चादर दी जाने वाली है। यह विदित होने के कारण ही चतुर्विध-सङ्घ एकत्रित हुआ है। चादर की क्रिया करने से पूर्व मैं महापुरुषों के अनुभूत प्रवचन आप लोगों को सुनाता हूं।

चतुर्विध-सङ्घ में साधु और साध्वी पूर्ण त्यागी कहे गए हैं। श्रावक तथा श्राविका आंशिक त्यागी हैं। इन दो पूर्ण और आंशिक त्यागियों का समूह ही चतुर्विध-सङ्घ कहलाता है और यह चतुर्विध-सङ्घ भावतीर्थ भी है। चतुर्विध-सङ्घ में बताए गए श्रमण सङ्घ के अन्तर्गत भगवान् अरिहन्त का भी समावेश हो जाता है क्योंकि भगवान् अरिहन्त साधु से भिन्न नहीं हैं।

यह प्रश्न हो सकता है कि अरिहन्त भगवान् तो अभी साधु ही हैं, साधक हैं और इनके चार कर्म भी शेष हैं, लेकिन सिद्ध भगवान् के लिए साधना शेष नहीं है, वे कृतकृत्य हो चुके हैं तथा उनके आठों कर्म नष्ट हो चुके हैं। ऐसा होते हुए भी नमस्कार मन्त्र में भगवान् अरिहन्त को पहले और भगवान् सिद्ध को फिर नमस्कार क्यों किया जाता है? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि सिद्ध भगवान् की पहचान करानेवाले अरिहन्त भगवान ही हैं। उपकारी को पहले नमस्कार करना कर्त्तव्य है। इसी लिए भगवान् अरिहन्त को पहले नमस्कार किया जाता है।

कहा जा सकता है कि सिद्ध भगवान् की पहिचान कराने के कारण ही यदि अरिहन्त भगवान् को पहले नमस्कार किया जाता है तो फिर अरिहन्त भगवान् को नमस्कार करने से पहले आचार्य को नमस्कार क्यों नहीं किया जाता? जिस प्रकार सिद्ध भगवान् की पहिचान कराने वाले भगवान् अरिहन्त हैं उसी प्रकार अरिहन्त भगवान् की पहिचान कराने वाले आचार्य हैं। इसलिए अरिहन्त से पहले आचार्य को नमस्कार करना चाहिए। इस प्रश्न का उत्तर यह है कि आचार्य, उपाध्याय और साधु तीनों अरिहन्त भगवान् की परिषद् में हैं। भगवान् अरिहन्त उस परिषद् के नायक हैं। पहले सभा के नायक को ही नमस्कार किया जाता है, न कि सभासदों को। इसी कारण आचार्य से पहले भगवान् अरिहन्त को नमस्कार किया जाता है।

आचार्य, उपाध्याय और साधु वही हो सकते हैं जो भगवान् अरिहन्त की आज्ञा में चलते हों। जो अरिहन्त की आज्ञा के बाहर हैं वह न तो आचार्य हैं, न उपाध्याय और न साधु ही। किस प्रकार का आचरण करने वाले आचार्य, उपाध्याय और साधु भगवान् अरिहन्त की आज्ञा में हैं, इस की व्याख्या शास्त्रों में भली-भांति की गई है। यहां भावी आचार्य का ही प्रसंग है, इसलिए उपाध्याय और साधु के विषय में कुछ न कहकर आचार्य के ही विषय में थोड़ा-सा कहता हूँ।

श्री स्थानांग सूत्र के तीसरे स्थान में तीन प्रकार के आचार्य बताए गए हैं—कलाचार्य, शिल्पाचार्य और धर्माचार्य। कलाचार्य और शिल्पाचार्य का यहां कोई सम्बन्ध नहीं है। यहां तो धर्माचार्य से ही सम्बन्ध है। इस लिए धर्माचार्य की व्याख्या की जाती है।

धर्माचार्य की आराधना भगवान् अरिहन्त की आराधना है। स्थानांग सूत्र के चौथे स्थान में धर्माचार्य के चार भेद बताए गए हैं—नामाचार्य, स्थापनाचार्य, द्रव्याचार्य और भावाचार्य। भावाचार्य के लिए तो शास्त्र में यहां तक कहा है—

'तत्थणं जे ते भावामरिया ते तित्थदरमया।'

अर्थात् जो भावाचार्य है, वह तीर्थंकर के समान हैं।

कोई भी व्यक्ति दीक्षा लेने मात्र से ही धर्माचार्य नहीं हो जाता। धर्माचार्य पद चतुर्विध-

संघ द्वारा संस्कार किया हुआ व्यक्ति ही पा सकता है। चतुर्विध-संघ मिलकर जिस व्यक्ति को धर्माचार्य-पद पर स्थापित करे वही व्यक्ति धर्माचार्य है। अपने मन से कोई भी व्यक्ति धर्माचार्य नहीं हो सकता। जिस प्रकार राजा-योग्य गुणों से युक्त तथा राज्य-व्यवस्था में निपुण व्यक्ति का राज्यसिंहासन पर अभिषेक किया जाता है और जिसका राज्याभिषेक हुआ है वही व्यक्ति राजा कहलाता है; प्रत्येक व्यक्ति राजा नहीं कहला सकता, उसी प्रकार चतुर्विध-संघ द्वारा बनाया हुआ व्यक्ति ही धर्माचार्य हो सकता है। प्रत्येक व्यक्ति धर्माचार्य नहीं हो सकता। राजनीति में बल-प्रयोग हो सकता है मगर धर्म-नीति में बलात्कार संभव नहीं है। यहां कोई जबर्दस्ती आचार्य नहीं बन सकता।

शास्त्रानुसार धर्माचार्य में तीन गुणों का होना आवश्यक है। वे तीन गुण ये हैं-गीतार्थ, अप्रमादी और सारणा वारणा करने वाला। अर्थात् जो सूत्रार्थ को जानने वाला हो, प्रमाद रहित हो और संघ की व्यवस्था करने वाला हो। अर्थात संयम-मार्ग में सिदाते हुए की रक्षा करने, उदण्ड को दण्ड देकर आज्ञा में चलाने या गुच्छा बाहर करने और सबकी साल-सम्हाल रखने वाला ही सुयोग्य आचार्य है।

आचार्य-पद देने के समय तो किसी में ये तीनों गुण नज़र आए, परन्तु आचार्य-पद पाने के पश्चात् वह व्यक्ति मान-अभिमान में पड़कर मनमानी करने लग जावे, प्रमादी बन जावे, शास्त्र स्वाध्याय करना छोड़दे और संघ की उचित व्यवस्था न करे तो शास्त्र में ऐसे व्यक्तिको आचार्य-पद से पृथक कर देने का विधान है। ऐसे व्यक्ति को आचार्य-पद से पृथक करने का विधान करते हुए शास्त्र में तीन दृष्टान्त दिये गए हैं। पहला दृष्टान्त यह है—

किसी क्षेत्र में दुष्काल पड़ा। पीने को पानी तथा खाने को अन्न मिलना मुश्किल हो गया महामारी आदि रोग फैल गए। जिस प्रकार वह क्षेत्र तत्काल त्याज्य है उसी प्रकार अगीतार्थ आचार्य भी त्याज्य है।

दूसरा दृष्टान्त यह दिया गया है—कोई राजा राजसिंहासन पाने के पश्चात् मद्य, मांस परस्त्री-गमन आदि दुर्व्यसनों में पड़ जावे तो जिस प्रकार ऐसा राजा त्याज्य हैं उसी प्रकार वह आचार्य भी त्याज्य है जो आचार्य-पद पाने के पश्चात् पूजा-प्रतिष्ठा का लोभी बन कर खाने-पीने आदि के पदार्थों के भोग में पड़ जावे और साता का इच्छुक, रस लोलुप तथा बुद्धि का अभिमानी बन जावे।

तीसरा दृष्टान्त यह दिया है—जिस प्रकार कुलधर्म को न पालने वाला, कुल के लोगों की सँभाल न रखने वाला कुलपति या गृहपति त्याज्य है उसी प्रकार न्याय-अन्याय को न समझने वाला, अपराधी को दण्ड न देने वाला और निरपराध को दण्ड देने वाला आचार्य भी त्याज्य है संघ ऐसे अयोग्य आचार्य को आचार्य-पद से पृथक् कर सकता है।

इस प्रकार का विधान करते हुए शास्त्र में यह भी कहा है कि संघ-द्वारा आचार्य-पद से पृथक कर दिए जाने पर भी यदि कोई व्यक्ति आचार्य-पद को न त्यागे तो उतने ही दिन का दण्ड या छेद आता है जितने दिन उसने संघ-द्वारा पृथक् कर दिए जाने पर भी आचार्य-पद नहीं त्यागा।

मतलब यह है कि उक्त तीन गुणों से युक्त व्यक्ति ही आचार्य बनाया जा सकता है। जिस में ये तीन गुण नहीं हैं वह आचार्य नहीं हो सकता और कदाचित आचार्य-पद देने के समय किसी

व्यक्ति में ये तीन गुण नज़र आवें, लेकिन आचार्यपद देने के पश्चात् ये न रहें तो ऐसे व्यक्ति को आचार्यपद से पृथक् भी किया जा सकता है।

स्वर्गीय पूज्यश्री श्रीलाल जी महाराज फरमाया करते थे कि आचार्य पत्थर-सा कठोर भी न हो और पानी जैसा नम्र भी न हो। किन्तु बीकानेरी मिश्री के कूंजे की तरह हो। अर्थात् जिस प्रकार बीकानेर की मिश्री का कूंजा सिर पर मारने से तो सिर फोड़ देता है और मुंह में रखने पर मुंह मीठा कर देता है। उसी प्रकार आचार्य भी अन्याय का प्रतिकार करने के लिए कठोर से कठोर रहे और सत्य तथा न्याय के लिए मुंह में रखी हुई मिश्री के समान मीठा और नम्र रहे।

भगवान् महावीर ने अपना अधिकार श्री सुधर्मास्वामी को दिया था। श्री सुधर्मास्वामी के पास जम्बूस्वामी ने दीक्षा ली थी। दीक्षा लेते समय श्रीजम्बूस्वामी को यह पता नहीं था कि मैं सुधर्मास्वामी के पाट का अधिकारी होऊँगा। लेकिन सुधर्मास्वामी की कृपा से जम्बूस्वामी गुण-निधान बन कर सुधर्मास्वामी के पाट के अधिकारी बने। यह उन्हीं की चलती हुई परम्परा है। इस परम्परा में उग्रविहारी तपोधनी और आत्मा का उत्थान करने वाले श्रीहुक्ममुनी हुए। हुक्ममुनी जब गच्छा छोड़ कर निकले तब उनका अनादर भी हुआ। फिर भी वे अपने गुरु लालचन्दजी महाराज का उपकार ही मानते रहे और उनकी प्रशंसा करते रहे। तप आदि कारणों से हुक्ममुनी महाराज की आत्मा में एक दिव्य-शक्ति उत्पन्न हुई। उन्होंने यह नहीं चाहा था कि मेरे नाम से सम्प्रदाय चले। फिर भी उनके नाम से सम्प्रदाय चल रहा है। बैठा हुआ मुनि मण्डल उन्ही की तपस्या का प्रसाद है।

पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी महाराज का इसी जावद शहर में स्वर्गवास हुआ था। उनके पीछे श्री शिवलालजी महाराज की पूज्य-पदवी भी इसी शहर में हुई थी। उन्होंने ३३ वर्ष तक एकान्तर तप किया था। उनका स्वर्गवास भी जावद शहर में हुआ था। पूज्यश्री शिवलालजी महाराज के पश्चात् पूज्यश्री उदयसागरजी महाराज की पूज्य पदवी भी जावद में ही हुई थी। पूज्यश्री उदयसागरजी महाराज बहुत तेजस्वी और प्रभावशाली थे। उनके भक्तों में बड़े-बड़े राजा-महाराजा भी थे। पूज्यश्री उदयसागरजी महाराज ने इसी जावद शहर में विराजे हुए पूज्यश्री चौथमलजी महाराज को अपना युवाचार्य नियुक्त किया था और रतलाम से चादर भेजी थी। पूज्यश्री उदयसागरजी महाराज का स्वर्गवास रतलाम में हुआ। पूज्यश्री उदयसागरजी महाराज के बहुत समय तक विराजने से ही रतलाम नगर रत्नपुरी कहलाया। पूज्यश्री उदयसागरजी महाराज के पश्चात् होने वाले पूज्यश्री चौथमलजी महाराज का स्वर्गवास भी रतलाम में ही हुआ था। रतलाम में ही पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज की पूज्य-पदवी हुई थी। पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज से आप में से बहुत से लोग परिचित हैं। अतः उनका परिचय देने की आवश्यकता नहीं है। पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज ने अपने कर कमलों से मुझे रतलाम में युवाचार्य-पद की चादर प्रदान की थी और जयतारण में वे स्वर्ग सिधारे थे।

कुछ काल से इस—पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी महाराज की—सम्प्रदाय के दो विभाग हो गए थे। ऐसा होने के कारण से तो आप लोग परिचित ही हैं। गतवर्ष अजमेर में होने वाले साधु-सम्मेलन के अवसर पर सम्प्रदाय के दोनों विभागों को एक करने के लिए मुझे और पूज्यश्री मुन्ना-

लालजी महाराज को छठे पाट पर मानकर पंच मुनियों ने सातवें पाट पर श्रीगणेशीलालजी को युवाचार्य बनाने का फैसला दिया।

पंच मुनियों ने सातवें पाट पर गणेशीलालजी को युवाचार्य बनाने आदि का जो ठहराव किया था, उसका समर्थन इस समाज की कांफ्रेंस ने भी किया और कांफ्रेंस के प्रेसीडेंट तथा सोलह सदस्य, इस प्रकार १७ व्यक्तियों के डेपुटेशन ने मेरी व पूज्यश्री मुन्नालालजी महाराज की स्वीकृति से यह ठहराव दिया कि युवाचार्य पद की चादर फाल्गुण सुदि १५ से पहले करने का निश्चय किया जाता है इस प्रकार युवाचार्य पद के लिए गणेशीलालजी का चुनाव केवल मेरे या इसी सम्प्रदाय के संघ द्वारा नहीं हुआ है वरन् भारतवर्ष के समस्त चतुर्विध संघ द्वारा हुआ है। तदनुसार ही आज युवाचार्य पद की चादर देने का कार्य किया जा रहा है।

अजमेर में पंच मुनियों द्वारा दिए गए फैसले के अनुसार गणेशीलालजी को युवाचार्य पद की चादर देने के साथ ही खूबचन्दजी को उपाध्याय पद की चादर भी देनी, चाहिए थी। इसके लिए मैंने खूबचन्दजी को जावद आने की सूचना करवादी थी और जावद संघ ने अपने दस्ती पत्र सहित खूबचन्दजी के पास डेपुटेशन भेजकर उनसे जावद आने के लिए प्रार्थना भी की थी, लेकिन वे नहीं आए। यदि खूबचन्दजी आजाते तो युवाचार्य पद की चादर देने के साथ ही उपाध्याय पद देने की क्रिया भी कर दी जाती। वे नहीं आए, इसलिए युवाचार्य पद की चादर देने की एक ही क्रिया की जा रही है।'

पूज्यश्री का व्याख्यान समाप्त होने पर मुनिश्री बड़े चांदमलजी महाराज, मुनिश्री हरखचन्दजी महाराज और मुनिश्री बड़े पन्नालालजी महाराज (सादड़ी वाले) ने पूज्यश्री के व्याख्यान और मुनिश्री गणेशीलालजी महाराज को युवाचार्य पद देने का समर्थन किया। शेष सन्तों की ओर से मुनिश्री छोटे गब्बूलालजी महाराज ने समर्थन किया। इसी प्रकार प्रवर्त्तिनी श्रीआनंदकुंवरजी महाराज तथा प्रवर्त्तिनी श्री केसरकुंवरजी महाराज ने भी अनुमोदन किया।

इसके बाद बाहर से शुभकामना व सन्देश के रूप में आये हुए तार तथा पत्र पढ़कर सुनाए गए। उनमें से नीचे लिखे नाम विशेष उल्लेखनीय हैं—

(१) ब्यावर—पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी महाराज की सम्प्रदाय में सबसे बड़े दीक्षा स्थविर मुनिश्री प्यारचन्दजी महाराज।

(२) बालोतरा—मुनिश्री मोडीलालजी महाराज और मुनिश्री बड़े गब्बूलालजी महाराज

(३) सरसा (पंजाब) तपस्वी मुनिश्री विनयचन्दजी महाराज। पंजाब के स्व० पूज्यश्री श्रीचन्दजी महाराज के सन्त जो इस सम्प्रदाय की आज्ञा में विचरते हैं।

(४) ब्यावर—महासती श्रीलालाजी महाराज।

(५) भीनासर—महासती श्री राजकुंवरजी महाराज।

(६) भावनगर—श्रीमान् हेमचन्द रामजी भाई मेहता, प्रेसिडेंट अखिल भारतीय श्वे० स्था० जैन कांफ्रेंस।

(७) बम्बई—श्रीमान् डाह्यालाल मणिलाल मेहता, सम्पादक "जैन जागृति।

(८) उदयपुर—पं० प्यारेकिशनजी कौल, मेम्बर काउंसिल।

(९) जयपुर—धर्मवीर श्रीमान् सेठ दुर्लभजी त्रिभुवन जौहरी।

(१०) जयपुर—श्रीमान् केसरीमलजी चोरड़िया।

(११) अहमदनगर—श्रीमान् बाबू कुन्दनमलजी फिरोजिया बी. ए. एल. एल. बी.

(१२) चिंचवड़ (पूना) श्रीमान् रामचन्दजी पूनमचन्दजी लूंकड़ अध्यक्ष श्रीफतहचन्द जैन विद्यालय चिंचवड़।

(१३) चिंचवड़ (पूना) श्रीमान् नवलमलजी खींवराजजी पारख अधिपति, गराड़ा ट्रस्ट।

(१४) बोदवड़ (खानदेश) श्रीमान् सेठ लालचन्दजी रघुनाथदासजी।

(१५) जोधपुर—श्रीमान् सेठ लच्छीरामजी सांड़।

(१६) जोधपुर—पूज्यश्री रत्नचन्दजी महाराज की सम्प्रदाय का हितैषी मंडल, जोधपुर।

(१७) पंचकूला—पं० श्रीकृष्णचन्द्रजी, संस्थापक श्रीजैनेन्द्र गुरुकुल पंचकूला।

(१८) प्रतिभाशाली आचार्य पूज्यश्री हस्तीमलजी महाराज ने नीचे लिखा सन्देश भेजा—

'बड़ा ही हर्ष का विषय है कि पूज्य श्रीहुक्मीचन्दजी महाराज की सम्प्रदाय के भावी आचार्य का पद शान्त, दान्त, गम्भीर, मधुर वक्ता गणेशीलालजी महाराज को दिया जा रहा है। वैरागी, प्रपंच त्यागी गणेशीलालजी महाराज जैसे भावितात्मा अनगार में आचार्य पद रूप मणि को रखकर पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज ने शुद्ध स्वर्ण में मणि को जड़ने वाले जौहरी के समान अपनी परीक्षा-बुद्धि का परिचय दिया है। आशा है कि भावी पूज्य गणेशीलालजी महाराज अपने शुद्ध व उदार विचारों से जन-मानस को पवित्र बनाते हुए महावीर के शासन को दिपाने में समर्थ होंगे।''

बाहर के सन्देश पढ़े जाने के बाद नीचे लिखे श्रीसंघ के प्रधान पुरुषों ने युवाचार्य पद प्रदान का समर्थन किया—

(१) बम्बई—श्रीमान् सेठ अमृतलाल भाई झवेरी।

(२) दक्षिण—दीवान बहादुर सेठ मोतीलालजी मूथा, सतारा।

(३) बीकानेर—श्रीमान् सेठ बहादुरमलजी बांठिया, भीनासर।

(४) मद्रास—श्रीमान् सेठ ताराचन्दजी गेलड़ा।

(५) मारवाड़—श्रीमान् बाबू उभयराजजी मुणोत, जोधपुर।

(६) मेवाड़—श्रीमान् नगरसेठ नन्दलालजी, उदयपुर।

(७) मालवा—श्रीहीरालालजी नांदेचा, खाचरोद।

(८) दिल्ली—श्रीमान् लाला कपूरचन्दजी जौहरी।

(९) खानदेश—श्रीमान् रावसाहब सेठ लक्ष्मणदासजी, जलगांव।

(१०) कोटा हाड़ोती—श्रीमान् सेठ बसन्तीलालजी नाहर, रामपुर।

(११) नीमच व जावद—श्रीमान् पन्नालालजी चौधरी, नीमच। इसी प्रकार अनेक श्राविकाओं ने भी समर्थन किया।

चादर प्रदान

चतुर्विध-संघ का अनुमोदन हो जाने पर युवाचार्यजी, पूज्यश्री के सामने खड़े हुए। पूज्यश्री ने नन्दी सूत्र का पाठ किया और अपनी चादर उतारकर युवाचार्यश्री को ओढ़ा दी। चादर ओढ़ाते समय दूसरे सन्तों ने भी चादर के पल्ले पकड़ कर अपने सहयोग का प्रदर्शन किया।

सवा बारह बजे यह कार्य सम्पन्न हो गया। जनता ने जयनाद के साथ अभिनन्दन किया। पूज्यश्री ने चादर ओढ़ाकर नवकारमन्त्र सुनाया। चतुर्विध-संघ ने युवाचार्यश्री की वन्दना की। उसके बाद पूज्यश्री ने छोटा-सा प्रवचन दिया। आपने फरमाया—

श्रीमज्जैनाचार्य पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी महाराज के सातवें पाट पर श्री गणेशीलालजी आचार्य नियुक्त हुए हैं। ये मेरे युवाचार्य हैं। चतुर्विध-संघ का कर्त्तव्य है कि इनके वचनों को 'सद्दहामि, पत्तयामि, रोइयामि' रूप से स्वीकार करें। युवाचार्यजी का भी कर्त्तव्य है कि धर्म-मार्गमें सदा जागृत रहते हुए आस्था और विवेकपूर्वक चतुर्विध-संघ को धर्ममार्ग में प्रवृत्त करते रहें। मुझे विश्वास है कि युवाचार्यजी इस पद की जिम्मेवारी को दक्षतापूर्वक निभावेंगे। इनका नाम गण + ईश=गणेश है। यह नाम इस पद के कारण सार्थक हुआ है। आशा है, ये उत्तरोत्तर संघ की उन्नति करेंगे।

एक बात मैं और स्पष्ट कर देना उचित समझता हूं। मेरी आज्ञा से बाहर किए हुए घासी-लालजी आदि ईर्ष्या-द्वेष के कारण युवाचार्यजी में दोष बताते हैं, परन्तु मैं अपनी जानकारी के आधार पर निश्चयपूर्वक कहता हूं कि युवाचार्यजी में कोई दोष नहीं है। इस पर भी मुझे किसी प्रकार का पक्षपात नहीं है। यदि विश्वस्त रूप से किसी भी समय यह मालूम होगा कि युवाचार्यजी में दोष है तो मैं इनको उसी समय दण्ड देने के लिए तैयार हूं। लेकिन द्वेषपूर्ण बात पर ध्यान देना किसी को भी उचित नहीं है।"

पूज्यश्री का प्रवचन समाप्त होने पर युवाचार्यजी के नीचे लिखे अनुसार फरमाया—

अकामी यो भूत्वा निखिल मनुजेच्छां गमयति।
मुमुक्षुं संसाराम्बुनिधितरि वक्तारय विभो।॥
महाराग द्वेषादि कलह मल हारिन्नामृतदाम्।
सुबुद्धिं मह्यं हे जिन! गणपते! देहि सततम्॥

मैं परमात्मा से प्रार्थना करता हूं कि मुझे वह शक्ति प्रदान करे जो शक्ति सारे संसार का कल्याण करने वाली है। आज मुझे जो गुरुतर उत्तरदायित्व सौंपा गया है, उसे मैं ऐसी शक्ति के सहारे ही वहन कर सकता हूं। मैं सदैव भावना रखता था कि जीवन भर आचार्य द्वारा प्राप्त आज्ञा का पालन करता हुआ सन्तों की सेवा करता रहूं। मेरी इस भावना के विरुद्ध पूज्य आचार्यश्री एवं चतुर्विध-संघ ने मुझ अल्पशक्ति वाले को यह भार सौंपा है। इसलिए मैं नम्रतापूर्वक आचार्य महाराज से भी ऐसी शक्ति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूं जिसके द्वारा मैं इस महान् बोझ को उठाने में समर्थ होऊं।

पूज्यश्री के साथ ही सन्तों ने हाथ लगा कर मुझे जो चादर प्रदान की है, वह चादर तन्तुओं की बनी हुई है। संस्कृत में तन्तु का दूसरा नाम गुण है। अर्थात् यह चादर गुणमयी है। मुझे आशा है कि इस गुणमयी चादर के साथ ही मुझे गुणों की भी प्राप्ति होगी, जिससे मैं इसकी रक्षा करने में समर्थ होऊँ। यद्यपि यह गुणमयी चादर मेरी रक्षा करने में समर्थ है, तथापि इस चादर की रक्षा होना भी आवश्यक है। मुझे यह चादर आचार्य महाराज सहित सब सन्तों ने प्रदान की है और चतुर्विध-संघ ने इसका अनुमोदन किया है। इस कारण मुझे विश्वास है कि चतुर्विध-संघ इसका रक्षक है। चतुर्विध-संघ ऐक्य-बल से इसकी रक्षा करता रहेगा तभी इस चादर

का गौरव सुरक्षित रहेगा और तभी यह संघ की उन्नति करनेमें भी समर्थ होगी। मैं शासननायक और गुरु महाराज से यही भिक्षा मांगता हूं कि इस चादर के गौरव की रक्षा करने की शक्ति मुझे प्राप्त हो।

भूकम्पपीड़ितों की सहायता

उन दिनों बिहार प्रान्त में भयंकर भूकम्प के कारण हजारों व्यक्ति बेघरबार होकर घोर कष्ट का अनुभव कर रहे थे। हजारों के प्राण चले गये थे और शायद हजारों जीवित रहते हुए भी मृत्यु का कष्ट भुगत रहे थे। वहां की दशा अत्यन्त हृदयद्रावक थी। पर दुःखकातर पूज्यश्री बिहार की इस करुणाजनक स्थिति को सुनकर बहुत क्षुब्ध थे। उत्सव के समय उसे कैसे भूल सकते थे? महापुरुष महोत्सव के समय दुखियों का करुण-क्रन्दन भूल नहीं सकते। समुचित अवसर पाकर पूज्यश्री ने बिहार प्रान्त की कष्ट-कथा उपस्थित श्रावकों को सुनाई और उन्हें अपने कर्त्तव्य का स्मरण दिलाया। पूज्यश्री ने फरमाया—

'इस प्रकार के शुभ अवसरों पर श्रावकगण सैकड़ों जीवों को अभयदान देते हैं। इस समय भारत में भूकम्प आया है और बिहार में उसने प्रलय की याद दिला दी है। हजारों मनुष्यों के प्राण चले गये हैं और लाखों अन्न तथा वस्त्र के अभाव में कष्ट पा रहे हैं। मनुष्य-शरीर ईश्वर की सजीव प्रतिमा है। मनुष्य, ईश्वर का प्रतिनिधि और सर्वोत्कृष्ट प्राणी है। इस कारण मनुष्य की रक्षा करना प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है। भूकम्प के कारण करोड़ों को सम्पत्ति भूमि के गर्भ में विलीन हो गई है। जो लोग मरने से बच गये हैं, वे भयंकर संकट में हैं, आश्रयहीन हैं। उनकी सहायता का भार उन लोगों पर है जिन्हें इस प्रकार की आपत्ति का सामना नहीं करना पड़ा है। मनुष्य परस्पर सम्बन्धित हैं, इस पर भी आप जैन हैं। जैनधर्म का अनुयायी अपने-आपको कष्ट में डाल कर भी दूसरे की रक्षा और सहायता करता है। संकटग्रस्त प्राणी की रक्षा करना मनुष्य का कर्त्तव्य है। इस कर्त्तव्य को कभी भूलना नहीं चाहिए। दूसरों की सेवा-सहायता में ही आपके सामर्थ्य और द्रव्य की सार्थकता है।

इसी समय स्व० श्रीमान् नथमलजी चोरड़िया ने प्रस्तुत समारोह के उपलक्ष में 'कान्फ्रेंस भूकम्प रिलीफ फण्ड' खोलने और उसमें यथाशक्ति चन्दा देने की अपील की। परिणामस्वरूप उस थोड़े से समय में ही लगभग दो हजार रुपया एकत्र हो गया।

धन्यवाद तथा विभिन्न सन्तों और सतियों के उद्गारों के बाद तीन बजे सभा विसर्जित हो गई। बीकानेर से आये हुए सज्जनों की ओर से प्रभावना बांटी गई।

कुछ दिनों बाद पूज्यश्री ने ठा. १२ से बेगूं (मेवाड़) की ओर तथा युवाचार्यजी ने ठा. ६ से रामपुरा की ओर विहार किया। पूज्यश्री भी कदवासा, सींगोली, ढीकेन, कुकडेश्वर होते हुए रामपुरा पधार गये। मुनिश्री बड़े चांदमलजी म., श्री हर्षचन्द्रजी म. तथा युवाचार्यजी ठा. १० से वहां पहले ही विराजमान थे। यहां की जैन और जैनेतर जनता ने विशाल संख्या में उपस्थित होकर पूज्यश्री के उपदेशों से लाभ उठाया। जनता ने पूज्यश्री से चौमासा करने की प्रार्थना की। उत्तर में आपने फरमाया—आपका क्षेत्र खाली नहीं रहेगा। यथावसर देखा जायगा। मेरा चातुर्मास न भी हो सका तो किसी अन्य संत को भेजने का भाव है। रतलाम और कपासन में चातुर्मास करने के लिए भी वहां के श्रीसंघों की ओर से प्रार्थनाएं की गईं। पूज्यश्री ने युवाचार्यजी

का रतलाम में चौमासा निश्चित कर दिया।

यहां से विहार कर पूज्यश्री विविध स्थानों को पावन करते हुए युवाचार्यजी के साथ ठा. १० से मंदसौर पधारे। यहां बाहर से बहुत से सज्जन दर्शनार्थ उपस्थित हुए। पूज्यश्री के व्याख्यानों का जैन-जैनेतर जनता को लाभ मिला। यहां से आंज कपासन पधारे। कपासन के भाइयों का अतीव आग्रह टाल न सकने के कारण पूज्यश्री ने वहां चौमासा करना स्वीकार कर लिया। पूज्यश्री की इस स्वीकृति से कपासन के श्रीसंघ में आनन्द छा गया।

बयालीसवां चातुर्मास (सं० १९९१)

कपासन-श्रीसंघ के पुण्योदय की सराहना करनी चाहिए कि पूज्यश्री जैसे महान् संत का उन्हें सुयोग प्राप्त हुआ। पूज्यश्री ने ठा० ९ से विक्रम संवत् १९९१ का चौमासा मेवाड़ के इस छोटे से किन्तु महत्त्वपूर्ण कस्बे में किया। प्रवर्त्तिनी श्रीकेसर कुंवरजी म० ठा० ३ से तथा श्री-जसकुंवरजी म० ठा० ५ वहीं विराजमान थीं।

पूज्यश्री की प्रकृष्ट प्रतिभा तथा अमृतवाणी से यहां की जनता परिचित ही थी। हजारों की संख्या में श्रोताओं का जमघट होने लगा। बाहर से भी दर्शनार्थी श्रावकों का तांता लग गया। यहां के जैन और अन्य भाइयों ने बड़े उत्साह के साथ आगन्तुक श्रावकों का स्वागत किया। सब लोगों ने सराहनीय उदारता प्रदर्शित की। आस-पास के ग्रामों से आये हुए लोगों की इतनी भीड़ होने लगी कि प्रति दिन पचास मन आटे की पूड़ियां तैयार करनी पड़ती थीं। अच्छे-अच्छे घरों के नवयुवक अपने कंधे पर पानी के घड़े उठाकर लाते किन्तु अतिथियों को असुविधा नहीं देना चाहते थे। सेवा का प्रत्येक कार्य स्वयं करने में उन्होंने अपना गौरव समझा।

पूज्यश्री के भक्तों में एक बुढ़िया खातिन उल्लेखनीय है। उस भाग्यशालिनी बुढ़िया का नाम तो मालूम नहीं, मगर वह बहुत अधिक वृद्धा होगई थी। फिर भी बहुत दूर से चलकर वह पूज्यश्री का व्याख्यान सुनने आती। चातुर्मास से पहले उसने पूज्यश्री को अपने गांव में एक दिन ठहराया था और दर्शनार्थी जनता की सम्पूर्ण व्यवस्था की थी। विदुर के घर जाकर श्रीकृष्णजी के हर्ष का पार नहीं रहा था उसी प्रकार इस धर्मशीला वृद्धा के गांव में पहुँच कर और उसकी भक्ति की प्रबलता देखकर पूज्यश्री भी प्रसन्न हो गये। वृद्धा खातिन पूज्यश्री को अपना आराध-नीय देव समझती थी।

चातुर्मास से पहले पूज्यश्री के शरीर में कुछ अशान्ति उत्पन्न हो गई थी। धीरे-धीरे अशान्ति दूर हो गई और श्रावण कृष्णा ५ से आपने उपदेश आरंभ कर दिया।

पर्युषण के अवसर पर खूब तपस्या हुई। संवत्सरी के दिन ७१९ पौषध हुए। समाज-सुधार के कई महत्त्वपूर्ण कार्य भी हुए। वहां की जनता ने निम्नलिखित निर्णय किये:—

(१) जहां कन्या-विक्रय हुआ हो उस विवाह में भोजन न करना।
(२) मृत्युभोज में मिठाई न खाना, न बनाना। मृत्युभोज न करना या उसमें न जीमना।
(३) वर-विक्रय रोकने के लिए पहले से 'तिलक'का निश्चय न करना।
(४) भाई, भाई के विरुद्ध कचहरी में फरियाद न करे।

गोगुंदा के श्रावक श्रीयुत गणेशलालजी ने गर्म पानी के आधार पर ४३ उपवास किये। दलित जातियों के उत्थान और नैतिक विकास के लिए पूज्यश्री बहुत जोर दिया करते

थे। बहुत-से अछूत आपका व्याख्यान सुनने आया करते थे। कार्तिक महीने में चार सौ रेगरों ने आपके उपदेश से प्रभावित होकर मदिरा और मांस के सेवन का त्याग कर दिया।

यहीं श्रीयुत फूलचंदजी चुड़ (मेवाड़) के निवासी ने दीक्षा धारण की।

राजकोट श्रीसंघ की प्रार्थना

पूज्यश्री ने अपने साधु-जीवन में विभिन्न प्रान्तों में दूर-दूर तक विहार किया था। दक्षिण-महाराष्ट्र में आपने कई चातुर्मास व्यतीत किये थे। मेवाड़, मालवा, मारवाड़ तो आपके मुख्य विहारस्थल थे ही। देहली और पंजाब में भी आपका पदार्पण हो चुका था। सिर्फ गुजरात-काठियावाड़ को अभी तक पूज्यश्री के विहार का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था। पूज्यश्री की भारतव्यापी कीर्त्ति अवश्य ही वहां तक जा पहुंची थी। उस कीर्ति और वाणी की तेजस्विता ने गुजरात-काठियावाड़ की धर्मप्रेमी जनता को पूज्यश्री के दर्शन और उपदेश-श्रवण के लिए लालायित बना रखा था। धर्मवीर श्रीदुर्लभजी भाई जौहरी भी इसके लिए विशेष उत्सुक थे। अपनी जन्म भूमि मोरवी में पूज्यश्री का एक चौमासा अवश्य कराना चाहते थे।

जिस प्रान्त ने धर्मवीर लौंकाशाह जैसे महान् सुधारक पुरुष को जन्म दिया, जिस प्रान्त में लवजी ऋषि, धर्मसिंहजी, धर्मदासजी आदि महान् संत हुए, उस प्रान्त में एक बार भी पूज्यश्री जैसे महान् पुरुष के चरण-कमल न पड़े, यह बात भला कैसे बनती?

अन्ततः श्रीदुर्लभजी भाई के साथ गुजरात-काठियावाड़ के श्रीसङ्घ के निम्नलिखित प्रमुख-व्यक्ति २० अक्टूबर, १९३४ को पूज्यश्री की सेवा में उपस्थित हुए:—

(१) श्रीचुन्नीलाल नागजी वोरा, सेक्रेटरी श्रीसङ्घ
(२) राव साहब ठाकरसी भाई मकनजी घीया
(३) श्रीप्राण जीवन मोरारजी. एज्यूकेशन इंस्पेक्टर, राजकोट
(४) शेठ गोपालजी लवजी मेहता
(५) शेठ गुलाबचन्दजी मेहता
(६) सेठ प्रेमजी वसनजी
(७) श्रीदुर्लभजी त्रि० जौहरी

शिष्टमंडल के इन प्रतिष्ठित सदस्यों ने अत्यन्त आग्रहपूर्वक काठियावाड़ में पधारने की प्रार्थना की। पूज्यश्री तत्काल कोई निश्चित उत्तर न दे सके। आपने अवसर देखकर निश्चय करने के लिए कहा।

पूज्यश्री के विराजने से कपासन की अजैन जनता अत्यन्त प्रभावित हुई। ता० १९-११-३४ को एक सार्वजनिक सभा करके वहां की जनता ने पूज्यश्री के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की। सभा में उपस्थित लगभग २५०० जनता ने सर्वसम्मति से निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकार किया।

'श्रीमज्जैनाचार्य पूज्य श्रीजवाहरलालजी महाराज साहब का चातुर्मास यहां (कपासन में) होने से धर्म का उपदेश प्राप्त हुआ है और साथ ही अनेक प्रकार के पापों तथा दुर्व्यसनों का त्याग हुआ है, जिससे जनता को बहुत लाभ हुआ। पूज्यश्री ने कपासन की जनता का यह उपकार किया है, उसके लिए कपासन की जनता पूज्यश्री की चिरऋणी है। तथा पूज्यश्री का चातुर्मास कपासन में कराया है, इसके लिए यह सभा कपासन के जैन सङ्घ को धन्यवाद देती है।

चातुर्मास की पूर्ति के समय बाहर की करीब ५००० जनता उपस्थित थी। मार्गशीर्ष कृ० १ को पूज्यश्री ने विहार किया। पूज्यश्री की विदाई का दृश्य बड़ा ही भावपूर्ण रहा। सब मिलकर सात हजार नर-नारी आपकी विदाई में सम्मिलित हुए।

कपासन से पूज्यश्री ने उदयपुर की ओर विहार किया। मार्ग के छोटे-छोटे ग्रामों में आपके उपदेशों का बहुत प्रभाव पड़ा। मुख्य रूप से जैनेतर जातियों ने व्याख्यान का लाभ उठाया। जासमा में श्रीयुत अमीन जफ़रहुसेन ने, जो एक बड़े प्रसिद्ध शिकारी थे, जीवन भर के लिए शिकार करने का त्याग कर दिया। नाथद्वारा में लाला डूंगरसिंहजी ने साधु-दीक्षा अंगीकार की। आप बड़े ही सरल हृदय और सेवाभावी संत हैं। बड़े धैर्य के साथ ठाणापति संतों की प्रेमपूर्वक सेवा कर रहे हैं। आपका सेवा-भाव सचमुच अन्य साधुओं के लिए अनुकरणीय है। राजा खुमानसिंहजी पर पूज्यश्री के उपदेशों का बहुत प्रभाव पड़ा। उन्होंने अपने परिवार के साथ मद्य-मांस-सेवन का तथा शिकार खेलने का त्याग कर दिया। पूज्यश्री गढ़वारा पधारे। यह प्रायः चारणों की बस्ती है। नवरात्रि के दिनों में यहां करणीजी के मंदिर में बलिदान होता था। पूज्यश्री के उपदेशों से वह बंद हो गया। पचास-साठ राजपूत सरदारों ने शराब,मांस, जीव-हिंसा और तमाखू आदि का त्याग कर दिया। यहां से गुरड़ी होते हुए मगसिर शु० १४ को पूज्यश्री उदयपुर पधार गए।

उदयपुर की जैन-जैनेतर जनता ने आपका हार्दिक अभिनन्दन और स्वागत किया। जनता हजारों की संख्या में अगवानी के लिए सामने आई। आपके व्याख्यानों का इतना व्यापक प्रभाव हुआ कि पं० प्यारेकिशनजी कौल (भूतपूर्व दीवान सैलाना स्टेट) मेम्बर स्टेट काउंसिल, पं० गोपीनाथजी ओझा, मेम्बर स्टेट काउंसिल, हाकिम मोहनचन्दजी आदि उच्च श्रेणी के राज्याधिकारियों ने विशेष रूप से प्रार्थना करके चार व्याख्यान और ज्यादा करवाए। यह सब सज्जन अपनी मित्र-मण्डली को साथ लेकर व्याख्यान में उपस्थित होते थे और पूज्यश्री की सुधास्राविणी वाणी का लाभ उठाते थे।

पूज्यश्री के उपदेश से कन्या-विक्रय, वर-विक्रय, मद्य-मांस सेवन तथा परस्त्री-गमन आदि अनेक पापों का श्रोताओं ने त्याग किया। कई सज्जनों ने ब्रह्मचर्य-व्रत अंगीकार किया। इस अवसर पर स्थानीय जैन शिक्षण संस्था को तथा अन्य संस्थाओं को आर्थिक सहायता मिली।

पूज्यश्री पतित-पावन थे और आपकी वाणी में उग्र संयम का ऐसा तेज अन्तर्निहित रहता रहता था कि श्रोता प्रभावित हुए बिना नहीं रहते थे। उदयपुर के श्रोतावर्ग में जहां रियासत के उच्च से उच्च पदाधिकारी और प्रतिष्ठित से प्रतिष्ठित नागरिक जन थे, वहां उदयपुर की प्रसिद्ध वेश्या मुमताजबाई भी थी। पूज्यश्री का उपदेश सबके लिए समान हितकर था और उसे सुनने के लिए मनुष्य मात्र के लिए द्वार खुला था। इस लिहाज से पूज्यश्री किसी वर्ग विशेष या जाति-विशेष के नहीं, सभी के थे। वह जगत् की अनमोल संपदा थे और सारा जगत् उसका अपना था। मुमताजबाई ने पूज्यश्री का उपदेश सुना। उपदेश उसके अन्तर तक पहुंचा और उसका जीवनव्यापी कलुष धुल गया। उस बाई ने जीवन भर के लिए वेश्या-वृत्ति का परित्याग कर दिया और मांस-मदिरा के सेवन का भी त्याग कर दिया। उसके त्याग का बड़ा प्रभाव पड़ा। स्थानीय कन्या-विद्यालय की मुख्याध्यापिका ने मुमताजबाई को गले लगाया तथा बहिन कहकर उसे सम्बो-

धन किया। पं० प्यारेकिशनजी कौल ने उस बहिन की शुद्धि के लिए पूज्यश्री का आभार माना और मार्मिक शब्दों में उसके प्रति सहानुभूति प्रकट की। मुमताजबाई ने यह सिद्ध कर दिया कि पतित समझे जाने वाले व्यक्तियों में भी उज्ज्वल आत्मा विद्यमान रहती है। चाहिए कोई पूज्यश्री सरीखा प्रभावशाली और सहानुभूतिशील सन्त, जो उस आत्मा को जगा सके, उठा सके। दुर-दुराने वाले दूसरों की भलाई नहीं कर सकते।

पौषकृष्ण दशमी को पूज्यश्री ने विहार किया। पं० प्यारेकिशनजी, पं० गोपीनाथजी, पं० गंगारामजी मोहले आदि के साथ हजारों नर-नारियों ने उमड़ते दिल से पूज्यश्री को विदाई दी।

उस दिन पूज्यश्री देहली दरवाजे के बाहर कोठारी बलवन्तसिंहजी साहब की बगीची में विराजमान हुए। बगीची और आहिड़ गांव में एक-एक दिन विराजने की इच्छा होने पर भी जनता के अनिवार्य आग्रह से दोनों जगह तीन-तीन दिन ठहरना पड़ा। महाराज खुमानसिंहजी, दक्षिण प्रान्त से आये हुए दर्शनार्थी और रेलवे-कर्मचारियों का विशेष आग्रह था आपके उपदेश से अनेक श्रोताओं ने मांस, मदिरा तथा हिंसा आदि का त्याग किया।

यहां से बंबोड़ा और कानौड़ होते हुए आप बड़ीसादड़ी पधारे। आपके पदार्पण के उपलक्ष्य में एक दिन अगता पलवाया गया। जैन भाइयों के अतिरिक्त यहां के राजराणा श्रीदूलहसिंहजी, उनके सुपुत्र कल्याणसिंहजी, ठाकुर सामन्तसिंहजी तथा दीवान गणेशरामजी आदि ने व्याख्यानों का अच्छा लाभ लिया। अनेक व्यक्तियों ने हिंसा आदि पापों का परित्याग किया।

यहां से विहार करके आप छोटी सादड़ी, नीमच, जीरण; मन्दसौर, नगरी होते हुए फाल्गुन शुक्ला चतुर्थी के दिन जावरा पधारे। उस समय युवाचार्यजी महाराज, मुनिश्री बड़े चांदमलजी महाराज आदि सन्त सम्मिलित हो गए थे। इस प्रकार ठा. १६ से आपने जावरा में पदार्पण किया। यहां भी दया, त्याग प्रत्याख्यान आदि अनेक धर्म-कार्य हुए।

होली के दूसरे दिन जावरा से विहार करके आप सरसी, सेमलिया, नामली आदि होते हुए चैत्र कृष्णा ४ को ठाणा १२ से रतलाम पधारे। जनता ने सोत्साह और अपूर्व स्वागत किया। हितेच्छु श्रावक मंडल की बैठक के कारण बाहर से अनेक सज्जन आए हुए थे। सभी ने इस अवसर से अच्छा लाभ उठाया।

रतलाम श्रीसंघ ने अत्यन्त आग्रह के साथ इस बार रतलाम में ही चातुर्मास व्यतीत करने की प्रार्थना की। पूज्यश्री ने अवसर देखकर अपनी मर्यादा के अनुसार स्वीकृति दे दी। इस स्वीकृति से जनता के हर्ष का पार न रहा।

चैत्र शुक्ला ६ को पूज्यश्री ने झम्मुबाई तथा सम्पतबाई को दीक्षा दी।

पूज्यश्री खाचरौद पधारे। सोलह वर्ष बाद यहां आपका शुभागमन हुआ था, इस कारण जनता में अपूर्व उत्साह था। आपके व्याख्यान प्रायः खुले बाजार में होते थे। सभी प्रकार की जनता बड़ी संख्या में लाभ उठाती थी।

वैसाख कृष्ण ६ के दिन श्रीवीरचन्दजी की पौत्री गुलाबबाई को पूज्यश्री ने प्रवर्त्तिनी श्रीआनन्दकुंवरजी महासती की नेश्राय में दीक्षित किया।

यहां से विहार कर आप जब बरडावदा पधारे तो महागढ़ के श्रावकों ने अपने यहां पधारने की प्रार्थना की। महागढ़ में वैसाख शुक्ला ७ को श्रीरतनलालजी वीराणी की दीक्षा होने वाली

घर में बनाकर खाने में ? इसी तरह कपड़े और मकान के लिए भी प्रश्न करते हैं। वे यहां तक पूछ बैठते हैं कि हाथ से चमड़ा चीरकर जूता बनाकर पहिनना ठीक है या सीधा खरीद कर ?

कई लोग तो मेरे विवेक विषयक विचार कथन को यह रूप देते हैं कि महाराज तो हाथ से रोटी बनाकर खाने का उपदेश देते हैं। और इस प्रकार बात बिगाड़कर मुझपर सावध उपदेश देने का दोष लगाते हैं। लोग पाप से बचना चाहते हैं और समाज में सावध उपदेश देनेवाले को साधु नहीं माना जाता। इस प्रकार के कथन का उद्देश्य तो यही हो सकता है कि लोगों का मन मेरी ओर से हट जाय। फिर भी आप लोगों का चित्त मेरी ओर से नहीं हट रहा है। यह पूर्वजों का प्रभाव है। फिर भी मैं आप से अनुरोध करता हूं कि मन में किसी प्रकार की शंका न रहने दीजिए। शास्त्र में शंका कांक्षा आदि को समकित का अतिचार माना है और इन्हें 'पयाला' शब्द देकर और व्रतों के अतिचारों की अपेक्षा बड़ा माना है।

सङ्कोच, अवकाश न मिलना, प्रकट करने की सामर्थ्य न होना आदि कारणों से चित्त में शंका रह जाती है। किन्तु गीता में कहा है—'संशयात्मा विनश्यति।'

श्रद्धा को सबने महत्त्व दिया है और कहा है-'श्रद्धामयोऽयं पुरुषः, यो मनछ्रद्धः स एव सः।' अर्थात् पुरुष श्रद्धामय है। जैसी श्रद्धा होती है वैसा ही वह बन जाता है। इस प्रकार श्रद्धा को सब ने बड़ा माना है। शंका से श्रद्धा में दोष आता है। श्रद्धा में दोष आने के बाद कुछ नहीं बचता। इसलिए शंका मिटाते समय सङ्कोच न करना चाहिए। शंका बनी रहने से हानि होती है।

अल्पारम्भ और महारम्भ का प्रश्न उन्हीं के लिए हो सकता है जो सम्यक्दृष्टि और व्रती हैं। मिथ्यात्वी के लिए यह नहीं हो सकता। जैसे जहां बड़ा कर्ज लदा हुआ है वहां छोटे कर्ज की गिनती नहीं होती। जैसे १२३५ में से बड़ी संख्या दस हजार की है। जिस पर १० हजार रुपए का कर्ज है, वहाँ पाँच या पैंतालीस के लेन-देन की बात नहीं होती।

जो मिथ्यात्वी है उसके लिए दूसरी बात करने की आवश्यकता नहीं रहती। किन्तु जो सम्यक्दृष्टि है उसे इस बात का विचार रखना ही चाहिए कि अल्पपाप और महापाप कहाँ कैसे होता है ? मैं निश्चय से नहीं कह सकता कि यह काम अल्पपाप का है और यह महापाप का। मैं तो यह कहता हूं कि जहां विवेक है वहां अल्पपाप है, जहां विवेक नहीं है वहां महापाप है। मैंने सदा यही कहा है कि पाप की न्यूनाधिकता विवेक पर अवलम्बित है।

जो काम महारम्भ से होता है वही काम विवेक से अल्पारम्भवाला भी हो सकता है। इसी प्रकार अल्पारम्भ वाला कार्य अविवेक के कारण महारम्भ वाला बन जाता है।

जब मेरी आयु १० वर्ष की थी उस समय की बात है। हमारे गाँव के कुछ लोगों ने गोठ करने का निश्चय किया। उसमें मक्की के भुजिए बनाये गए। उसमें मेरे मामाजी भी सम्मिलित थे। वे धर्म का विचार रखते थे। चौविहार करते थे। नित्य प्रतिक्रमण करते थे। मेरे हृदय में उनके प्रति बड़ी श्रद्धा थी। माता-पिता का देहान्त हो जाने के कारण मैं उन्हे पिता की तरह मानता था।

कुछ लोगों ने भांग के भुजिए बनाने की सोची। मामाजी ने मुझे भांग की पत्तियां लाने के लिए कहा। मैं दौड़ा गया और लगभग सेर पत्तियाँ तोड़ लाया। यह पत्तियां लाते देखकर उन्होंने मुझसे कहा—"थोड़ी भांग काफी थी, इतनी पत्तियां क्यों तोड़ लाए ?" उनके हृदय में

धर्म का विचार आया और मुझे कोसने लगे। मैं बच्चा था, विवेकशून्य था। इसीलिए ऐसा हुआ। समझदार होता तो उतनी ही पत्तियां तोड़ता जितनी आवश्यक थीं। मामाजी ने भी पहले मुझे यह शिक्षा नहीं दी। इसलिए उस महारम्भ का कारण अविवेक हुआ। यदि वे स्वयं जाते तो थोड़ी पत्तियां लाते। इसलिए उनके करने के बजाय कराने में अधिक पाप हुआ। सेठ वरदभाणजी कहते थे कि जब मैं शौच गया तो नौकर से पानी लाने के लिए कहा। वह लीलन फूलन आदि रौंदता हुआ गया और जल्दी से अनछना पानी भर लाया।" यह अधिक पाप किसको हुआ? क्या इस पाप की जिम्मेवारी कराने वाले पर भी नहीं है? यदि सेठजी स्वयं पानी भरने जाते और विवेक से काम लेते तो कितना आरम्भ टाल सकते थे। उन्होंने नौकर को भेजा इसलिए क्या सेठजी को पाप नहीं हुआ? इसी प्रकार के अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं जिन से यह स्पष्ट हो जाता है कि स्वयं करने की अपेक्षा कराने में अधिक पाप हो सकता है। यदि किसी भाई के मन में शंका हो तो वह जिज्ञासु-वृत्ति से पूछ सकता है।

इस धर्म के उत्पादक क्षत्रिय थे। उन्होंने बड़े-बड़े राज्य किए थे। उदायन सोलह देशों का राजा था। फिर भी वह अल्पारम्भी था या महारम्भी? इतना बड़ा राज्य होने पर भी विवेक के कारण वह अल्पारम्भी बना रहा। भगवान् ने विवेक में धर्म बताया है। यदि विवेक में धर्म न होता तो यह धर्म क्षत्रियों के पालने योग्य न रहता। विवेक रखकर एक राजा बड़े-से-बड़े राज्य को चला सकता है और अल्पारम्भी बना रह सकता है।

कभी करने में ज्यादा पाप होता है, कभी कराने में और कभी अनुमोदन में। विवेक न रखने पर जितना अनुमोदना में पाप हो जाता है उतना करने और कराने में नहीं होता।

एक राजा के सामने ऐसा अपराधी आया जो फांसी का अधिकारी था। राजा सोचने लगा कि मैं इसके प्राण नहीं लेना चाहता, किन्तु यदि दण्ड न दिया गया तो न्याय का उल्लंघन होगा और अव्यवस्था फैल जायगी।" न्याय की रक्षा के लिए राजा ने बड़े संकोच के साथ उसे फांसी का हुक्म दे दिया। फांसी लगाने वाले उस अपराधी को ले चले और सोचने लगे इस प्रकार दूसरों के प्राण लेने का काम बहुत बुरा है। लेकिन राजाज्ञा माननी ही पड़ेगी। वे अपनी विवशता और लाचारी पर पश्चात्ताप कर रहे थे। इस प्रकार सोचते हुए वे अपराधी को फांसी के स्थान पर ले गए।

वधस्थान पर एक और आदमी खड़ा था। वह उस व्यक्ति को फांसी चढ़ते देखकर बड़ा खुश हुआ और मन ही मन अनुमोदना करने लगा।

राजा और जल्लाद काम करने पर भी मन में अच्छे विचार होने के कारण अल्पारम्भी हैं। वह व्यक्ति कुछ न करने पर भी अपराधी हैं। इस प्रकार अनुमोदना से भी महारम्भ हो सकता है। इन सब में विवेक ही प्रधान है।

फांसी लगाने की जगह पर और लोग भी थे। कुछ लोगों को उस पर दया आ रही थी और वे सोच रहे थे, यदि इसने पाप न किया होता तो ऐसा परिणाम क्यों होता? हमें पाप से बचना चाहिए। कुछ लोग खुश हो रहे थे। वे उसकी मृत्यु पर हर्ष मना रहे थे। इन दोनों विचार वाले दर्शकों में महापापी कौन और अल्पपापी कौन है?

मैं यह नहीं कहता कि करने से ही पाप होता है या कराने से ही होता है। मैं तो सिर्फ

यह कहता हूँ, जहां अविवेक है, वहां महापाप है। जहां विवेक है, वहां अल्पपाप है।

एक और उदाहरण लीजिए। एक डाक्टर चीर-फाड़ का काम जानता है। लेकिन वह कहता है कि मुझे घृणा आती है, इसलिए मैं ऑपरेशन नहीं करता। वह अनाड़ी कम्पाउंडर से ऑपरेशन करने के लिए कहता है। ऐसी दशा में उस डाक्टर को स्वयं करने की अपेक्षा कराने में अधिक पाप है। एक डाक्टर स्वयं ऑपरेशन करना नहीं जानता, वह यदि जानने वाले से कहता है कि तुम ऑपरेशन कर दो तो इस कराने में अल्पपाप है। कराना दोनों जगह समान होने पर भी एक जगह अल्पपाप है दूसरी जगह महापाप। स्वयं न जाननेवाला यदि जानने वाले को रोक कर स्वयं ऑपरेशन करता है तो ऐसा करने में महापाप है। ऐसे आदमी का किया हुआ ऑपरेशन यदि सफल भी हो जाय तो भी सरकार उसे अपराधी मानेगी। पहले डाक्टर के कराने पर महापाप लगा, दूसरे के कराने पर अल्पपाप। तीसरे के करने पर भी महापाप। तीनों का अन्तर विवेक पर निर्भर है। इस प्रकार धर्म में विवेक की परम आवश्यकता है।

एक और उदाहरण है। एक बहिन विवेकवाली है और दूसरी विवेकशून्य। विवेकवाली बहिन सोचती है कि रोटी बनाने में पाप है किन्तु अपना तथा परिवारवालों का पेट भरना ही पड़ता है। इसलिए वह विवेक शून्य बाई को रसोई के कार्य में लगा देती है। असावधानी के कारण उसे आग लग गई और मृत्यु हो गई। उसके मरने पर विवेकवाली बहिन क्या यह सोच सकती है कि मैं पाप से बच गई? वह सोचेगी यदि मैं स्वयं कार्य करती तो इतना अनर्थ न होता। इस प्रकार कराने में अधिक पाप हुआ। यदि विवेकशून्य बहिन स्वयं करने बैठ जाती है और विवेक वाली बहिन को नहीं करने देती तो उस करने में अधिक पाप है।

स्वयं करने की अपेक्षा कराने और अनुमोदन करने में एक दूसरी दृष्टि से भी अधिक पाप है। स्वयं हाथ से कार्य करने पर कोई कितना भी करे, फिर भी मर्यादित रहेगा। कराने पर लाखों-करोड़ों व्यक्तियों से कहा जा सकता है। करने में दो ही हाथ रह सकते हैं। कराने में लाखों-करोड़ों हाथ लग सकते हैं। करने का समय भी मर्यादित ही होगा। कराने में अपरिचित समय रह सकता है। करने का क्षेत्र भी मर्यादित ही होगा। कराने में क्षेत्र की कोई मर्यादा नहीं है। इस तरह करने में द्रव्य, क्षेत्र और काल तीनों मर्यादित रहते हैं। कराने में सभी विस्तृत हो जाते हैं। इस प्रकार स्वयं करने की अपेक्षा कराने में पाप का द्वार अधिक खुला है। अनुमोदन तो इससे भी आगे बढ़ा हुआ है। करने या कराने के लिए व्यक्ति आदि साधनों की आवश्यकता होती है। किन्तु घर बैठे ही सारे संसार के कार्यों का अनुमोदन किया जा सकता है। व्यक्ति ने आवश्यकता के लिए महल बनवाया किन्तु उसकी सराहना नहीं की। देखने वाले ने उसकी बड़ी सराहना की। तो महल बनवाने वाला अल्पपापी रहा और अनुमोदन करने वाला महापापी।

विलायती कपड़ा यहां नहीं बनता, किन्तु यहां बैठे ही उसका अनुमोदन हो सकता है। विज्ञापन देखकर कह सकते हो कि यह कपड़ा बहुत बढ़िया है। यह हमें मिल जाता तो कितना अच्छा होता। इस प्रकार विलायत में होने वाली हिंसा का यहां बैठे अनुमोदन हो जाता है। इस प्रकार अनुमोदन के द्रव्य, क्षेत्र और काल करने एवं कराने से बहुत अधिक हैं। अनुमोदन का पाप ऐसा है कि बिना कुछ किए ही महारम्भ हो जाता है।

भगवती सूत्र के २४ वें शतक में तन्दुल मत्स्य की कथा आई है। वह बड़े मगरमच्छ की

पलकों पर रहता है और इतना छोटा होता है कि किसी जीव को नहीं मार सकता। फिर भी वह मर कर सातवें नरक में जाता है। इसका कारण अनुमोदन या विचार हैं। बड़े मगर के मुंह में घुसती हुई और निःश्वास के साथ निकलती हुई मछलियों को जब वह देखता है तो सोचता है यह मत्स्य बड़ा मूर्ख है जो इतनी मछलियों को वापिस जाने देता है। मैं होता तो एक भी मछली को न निकलने देता। इसी प्रकार हिंसामय अनुमोदन से वह सातवें नरक में जाता है। करने या कराने की उसमें कुछ भी सामर्थ्य नहीं है।

पूज्यश्री उदयसागरजी महाराज एक स्तवन फर्माया करते थे—

जीवड़ा मत मेलो रे मो मन मोकलो, मन मोकलड़े रे हाण।
जिण हीज नयणेरे निरखे सुन्दरी तिनहीज ब्रेनड़ जाण॥
पुण्य तणे परिणामे विचरतां मोटी निपजेरे हाम। जीवड़ा।

एक व्यक्ति जिन आंखों से अपनी बहिन को देखता है, उन्हीं आंखों से पत्नी को देखता है, किन्तु दोनों दृष्टियों में महान् अन्तर है। आंखें किसी को बहिन या स्त्री नहीं बनातीं। यह सारा काम मन का है। जो स्त्रियां कामी पुरुष को विलासिनियां दिखाई देती हैं वे ही महापुरुष के पास पहुंचने पर बहनें बन जाती हैं। मन से पाप भी होता है और पुण्य भी। "मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।"

कोई कह सकता है कि जैनशास्त्रों में तो मन, वचन और काय तीनों को कर्मबन्ध का कारण माना है। यह ठीक है, किन्तु मन पर बहुत कुछ निर्भर है। बहिन और स्त्री दोनों को देखना समान होने पर भी मन के कारण पुण्य और पाप बन जाता है। बिल्ली अपने बच्चों को जब एक स्थान से दूसरे स्थान ले जाना चाहती है तो मुंह में दबा कर ले जाती है। इसी प्रकार वह चूहों को भी ले जाती है। आप चूहे को छुड़ाने के लिए दौड़ते हैं किन्तु बच्चों को नहीं छुड़ाते। इसका कारण यही है कि दोनों जगह बिल्ली की भावना में फरक है। एक जगह हिंसा की भावना है दूसरी जगह प्रेम की। बिल्ली सब चूहों को नहीं मार सकती फिर वह सब की वैरिन मानी जाती है। इसका कारण यही है कि उसके मन में सभी चूहों के विनाश की भावना समाई हुई है। अतः मन ही पाप का प्रधान कारण है।

मैं सच्ची प्ररूपणा कर रहा हूँ। इसमें मुझे किसी प्रकार का भय नहीं है। चाहे ऐसा करने में प्राण चले जावें। सत्य के लिए प्राण देने से बढ़कर खुशी का अवसर मेरे लिए क्या हो सकता है? मैं कोई नई बात नहीं कह रहा हूं। शास्त्र और परम्परा के अनुसार ही कह रहा हूं। पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज तथा पूज्यश्री उदयसागरजी महाराज भी ऐसा ही फर्माते थे। लेकिन आज यह कहा जा रहा है कि मैं पूर्वजों के विरुद्ध प्ररूपणा कर रहा हूं। कहने वालों का मुंह नहीं पकड़ा जा सकता, किन्तु आप लोगों को सत्य का निर्णय कर लेना चाहिए। मन में किसी प्रकार की शंका नहीं रखनी चाहिए।

यह प्रश्न हो सकता है कि यदि कराने वाला और जिससे कराया जाय दोनों विवेकी हों तो कार्य को स्वयं न करके दूसरे से कराने में क्या हानि है? उस दशा में तो कराने में ज्यादा पाप न होगा? इसका उत्तर यह है कि विवेक की अपेक्षा से तो कराने में अधिक पाप नहीं है। किंतु यदि कराने का द्रव्य क्षेत्र और काल अधिक होवे तो ज्यादा पाप लग सकता है। इस विषय

में विवेक तथा मन के भावों से अधिक जाना जा सकता है।

एक और प्रश्न होता है कि सामायिक में करने और कराने का ही त्याग किया जाता है। जब अनुमोदना में पाप ज्यादा है तो उसका त्याग क्यों नहीं किया जाता! बड़े पाप का त्याग तो पहले करना चाहिए। इसका उत्तर यह है कि अनुमोदना का त्याग करने की शक्ति नहीं होती। इसीलिए उसका त्याग नहीं कराया जाता। प्रत्येक कार्य शक्ति के अनुसार ही कराना ठीक होता है। एक जगह छोटी और बड़ी कई प्रकार की मोगरी पड़ी हुई हैं। छोटा बालक बड़ी मोगरी नहीं उठा सकता, इसलिए उसे छोटी मोगरी उठाने के लिए कहा जाता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि बड़ी मोगरियां छोटी होगईं और छोटी बड़ी। भगवान् ने शक्ति देखकर त्याग कराने का विधान किया है। उन्होंने श्रावक में इतनी ही शक्ति देखी कि वह करने और कराने का ही त्याग कर सकता है, अनुमोदना का नहीं। तदनुसार करने और कराने के त्याग का ही विधान है। इसका अर्थ यह नहीं है कि करने और कराने के पाप से अनुमोदना का पाप छोटा है। आप गृहस्थ होने के कारण अनुमोदना के पाप से बच भी नहीं सकते। जिस समय आप सामायिक में बैठते हैं उस समय स्वयं करने और कराने का त्याग तो करके बैठते हैं किन्तु घर, दुकान कारखाने आदि में जो काम हो रहा है उसका त्याग नहीं करते। इसलिए अनुमोदन तो हो ही जाता है।

उत्तराध्ययन सूत्र के ५ वें अध्ययन की २० वीं गाथा में बताया है कि सब श्रावक एक तरफ हो जांय और एक साधु दूसरी तरफ, तो उनमें साधु ही बड़ा है। इसका कारण यही है कि साधु के अनुमोदना का भी त्याग होता है। श्रावक के करने और कराने का त्याग होने पर भी अनुमोदना का त्याग नहीं होता। इसलिए अनुमोदना का पाप बड़ा है।

(भाद्रपद शु० ३ सम्वत् १९९२)

रतलाम में पूज्यश्री के विराजने से बहुत उपकार हुआ। दो सज्जनों ने पत्नी सहित ब्रह्मचर्य-व्रत अंगीकार किया। इसी प्रकार परस्त्री गमन, मादक वस्तुओं के तथा चर्बी वाले वस्त्र, रेशमी वस्त्र, आदि के भी बहुत से त्याग हुए। दया, पोषा उपवास आदि बड़ी संख्या में हुए। साधु तथा श्रावकों ने विविध प्रकार की तपस्या की। गोगुंदा वाले श्रावक गणेशमलजी ने ४५ तथा कानोड़ वाले श्रावक माणकचन्दजी ने २२ उपवास एक साथ किए। अन्य छोटी-मोटी तपस्याएं भी हुईं।

युवाचार्यश्री को अधिकार प्रदान

पाठक यह जान ही चुके हैं कि पूज्यश्री ने जावद में मुनिश्री गणेशलालजी महाराज को युवाचार्य पद पर प्रतिष्ठित कर दिया था; किन्तु सम्प्रदाय की देखरेख और व्यवस्था का भार अब तक आप स्वयं सँभालते थे। कुछ दिनों के पश्चात पूज्यश्री ने विचार किया—'अपनी मौजूदगी में ही युवाचार्यजी को साम्प्रदायिक व्यवस्था का भार सौंप देने से अनेक लाभ होंगे। प्रथम तो मैं निश्चिन्त होकर एकाग्र भाव से आत्मसाधना में लीन हो सकूंगा, दूसरे युवाचार्यजी को विशेष अनुभव हो जाएगा और आगे चलकर उन्हें सुविधा रहेगी।

इस प्रकार विचार करके आश्विन-कृष्णा ११, सोमवार, ता० २३ सितम्बर १९३५ को आचार्यश्री ने व्याख्यान में उक्त विचार की घोषणा कर दी और युवाचार्यश्री को अधिकारपत्र

प्रदान कर दिया। आपने फर्माया:—

मैं दक्षिण में, पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज से दूर था। लेकिन पूज्यश्री ने, न मालूम मेरे हृदय को कैसे जाना ? उन्होंने कौन जाने क्या अनुभव किया ? उदयपुर में उन्होंने सम्प्रदाय का भार मुझे सौंपना तय कर लिया। मैं दूर दक्षिण में था और वे उदयपुर में थे। सम्प्रदाय का भार मेरे ऊपर रखना साधारण बात नहीं थी। यह उनके विशाल अनुभव और विचारशीलता की हद है। पूज्यश्री को विश्वास था कि मैं जो कुछ कहूंगा उसे वह (पूज्यश्री जवाहरलाल जी म०) अवश्य मान लेगा। इसी विश्वास के आधार पर रतलाम में सब तैयारी कर ली गई। मैं पूज्यश्री की सेवा में उपस्थित हुआ। मैंने लिखित प्रार्थना की कि मुझ पर भार डालने पर भी सारा कार्य आपको ही करना होगा। पूज्यश्री ने मेरी प्रार्थना स्वीकार कर ली। मैं यह पद स्वीकार करने को विवश हो गया।

कुछ समय तक पूज्यश्री कार्य संभालते रहे। तत्पश्चात् एक दिन उन्होंने फर्माया—अब चौमासे नियत करने आदि का कार्य तुम्हीं करो। मेरा चौमासा भी तुम्हीं निश्चित करो। जब तुम मेरा भी चौमासा निश्चित करोगे तो मैं प्रत्येक कार्य के लिए सबसे यही कहूंगा कि अब सब कुछ जवाहरलालजी जाने।' पूज्यश्री ने यह फर्माया सही· मगर मैं ऐसा न कर सका। पूज्यश्री की विद्यमानता में मैं अपने हाथ में सब कार्य न ले सका। यह किसे मालूम था कि मुझे उत्तरदायित्व सौंपने के कुछ ही समय बाद पूज्यश्री स्वर्ग सिधार जाएँगे ? पूज्यश्री जयतारण में स्वर्ग पधार गये। उस समय मैं वहां मौजूद न था। अचानक सम्प्रदाय का समस्त भार मेरे माथे आ पड़ा। मैं तब अनुभव करने लगा कि अगर पूज्यश्री की मौजूदगी में ही मैं कार्य करने लगा होता तो यह अचानक आया हुआ भार मुझे दुस्सह न जान पड़ता।

इसी अनुभव को लेकर मेरी वृद्धावस्था ने मुझे प्रेरित किया है कि जो अवसर मिला है उसका उचित उपयोग कर लिया जाय। तदनुसार सम्प्रदाय का कार्यभार, जैसे—दण्ड-प्रायश्चित देना, चौमासे निश्चित करना, सम्प्रदाय के अन्य कार्यों को संभालना आदि, मैं युवाचार्य गणेशीलालजी को सौंपता हूँ।

कई भाइयों का खयाल है कि मैं व्याख्यान देना बंद करके मौन ग्रहण कर लूंगा। लेकिन सम्प्रदाय का भार सौंपने और व्याख्यान देने के कार्य का ऐसा कोई संबंध नहीं है। यह कार्य अलग है। मैं सम्प्रदाय के कार्य का भार युवाचार्यजी को सौंप रहा हूँ।

युवाचार्यजी को सम्प्रदाय के कार्य का भार सौंपने के संबंध में मैंने जो पत्र लिखा है, वह इस प्रकार है। (पूज्यश्री के आदेश से मुनिश्री जौहरीमलजी महाराज ने पढ़कर सुनाया)।

अधिकारपत्र

सम्प्रदाय के आज्ञावर्त्ती सन्तश्री बड़े प्यारचंदजी महाराज आदि सब सन्तों, रंगूजी महासतीजी की सम्प्रदाय की प्रवर्त्तिनीजी आनन्दकुंवरजी आदि आज्ञावर्ती सतियां, मोताजी महासतीजी की सम्प्रदाय की प्रवर्त्तिनीजी केसरकुंवरजी, महताबकुंवरजी, आदि उनकी सब सतियां, एवं खेतांजी महासतीजी की सम्प्रदाय की प्रवर्त्तिनीजी राजकुंवरजी आदि उनकी सब सतियां, इसी तरह पूज्यश्री हुक्मीचंदजी महाराज की सम्प्रदाय के हितेच्छु सब श्रावकों और श्राविकाओं से मेरी यह सूचना है कि—

(१) अखिल भारतवर्षीय श्रीसंघ और मैंने श्रीगणेशीलालजी को सम्प्रदाय के युवाचार्य-पद पर स्थापित कर ही दिया है।

(२) अब मैं अपनी वृद्धावस्था व आन्तरिक इच्छा से प्रेरित होकर आपको सूचित करता हूं कि मेरे पर जो सम्प्रदाय की जिम्मेवारी है; अर्थात् सारणा वारणा करना, सब सन्त व सतियों को आज्ञा में चलाना, सम्प्रदाय-सम्बन्धी कार्यों की योजना करना एवं सम्प्रदाय सम्बन्धी नियमों का पालन करने के लिए संघ को प्रेरित करना आदि यह सब कार्यभार अब मैं युवाचार्य श्रीगणेशीलालजी के ऊपर रखता हूँ। अतः आप चतुर्विध-संघ आज से सम्प्रदाय के कुल कार्य की देखरेख, पूछ-ताछ, आज्ञा लेना आदि सब कार्य उन्हीं से लेवें। मैं आज से सम्प्रदाय का पूर्ण अधिकार उन्हीं को देता हूँ। केवल मेरी सेवा में जिन्हें उचित समझूंगा, उन सन्तों को अपने पास रखूंगा और उन सन्तों पर मेरी देख-रेख रहेगी।

(३) आप श्रीसंघ ने मेरी आणा, धारणा मानकर जैसा मेरा गौरव रखा है वैसा ही युवाचार्य श्रीगणेशीलालजी का भी रखेंगे, यह मेरे को पूर्ण विश्वास है। युवाचार्य श्रीगणेशीलालजी भी श्रीसंघ के विश्वास-पात्र हैं। अतएव श्रीसंघ ने उन्हें युवाचार्य-पद प्रदान किया है। इसलिए इस विषय में मुझको विशेष कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है।

(४) युवाचार्य श्रीगणेशीलालजी के प्रति मेरी हार्दिक सूचना है कि अब आप सम्प्रदाय के पूर्वजों के गौरव को ध्यान में रखते हुए सम्प्रदाय का और श्रीसंघ का कार्य विवेक के साथ इस प्रकार करें कि जिससे श्रीसंघ सन्तुष्ट होकर किसी प्रकार की त्रुटि का अनुभव न करे।

श्री शासनाधीश श्रमण भगवंत महावीर स्वामी एवं शासन श्रेयस्कर श्रीमन् हुक्ममुनि आदि पूज्यपाद महानुभावों के तपोमय तेज प्रताप से श्री युवाचार्य गणेशीलालजी इस विशाल गच्छ को सुचारु रीति से चलाकर पूर्वजों के यशः शरीर की रक्षा करते हुए शोभा बढ़ावेंगे, ऐसा मेरा ही नहीं श्रीसंघ का भी पूर्ण विश्वास है।

ॐ शान्ति. शान्तिः शान्तिः

काठियावाड़ की प्रार्थना

एक लम्बे अर्से से गुजरात और काठियावाड़ की धर्मप्रिय जनता पूज्यश्री के दर्शन और उपदेश-श्रवण के लिए उत्कंठित थी। काठियावाड़ प्रान्त के कतिपय प्रधान श्रावकोंने कपासन-चातुर्मास के समय वहां आकर पूज्यश्री से काठियावाड़ पधारने की प्रार्थना की थी। रतलाम में फिर १५ प्रमुख सज्जनों का एक शिष्टमंडल उपस्थित हुआ। मोरबी, जूनागढ़, गडढ़ा, अमरेली आदि के श्रीसंघों ने तारों और पत्रों द्वारा शिष्टमंडल की प्रार्थना में सहकार दिया। अहमदाबाद श्रीसंघ और वहां विराजे हुए मुनिमंडल ने भी उस ओर पधारने की आग्रहपूर्ण प्रार्थना की। इस सबल और व्यापक आग्रह को टालना पूज्यश्री के लिए कठिन हो गया। शरीर वृद्ध था और काठियावाड़ का कष्टकर लम्बा प्रवास करना था।

पूज्यश्री ने युवाचार्यजी से परामर्श किया और द्रव्य, क्षेत्र, काल-भाव के अनुसार उत्तर देने का आश्वासन दिया।

श्रीहेमचन्द भाई का आगमन

उन्हीं दिनों श्री श्वे. स्था. जैन कान्फ्रेंस का प्रचार करते हुए उसके अध्यक्ष श्री हेमचन्द

रामजी भाई मेहता ता० १६ अक्टूबर १६३५ को रतलाम पधारे। उस समय श्रावकों और साधुओं का पारस्परिक सम्बन्ध प्रकट करते हुए पूज्यश्री ने व्याख्यान में फर्माया:—

भगवान् महावीर स्वामीने श्रावकों को साधुओं के लिए 'अम्मा-पिया' बतलाया है। इस प्रकार प्रभु ने हम साधुओं को श्रावकों की गोद में रखा है। आपकी गोद में रखते समय भगवान् ने यह लिहाज नहीं किया कि साधु महाव्रत-धारी और श्रावक अणुव्रत-धारी ही होता है। उन्होंने सिर्फ यह ध्यान रखा कि जिस प्रकार माता-पिता पुत्र का पालन करते हैं, उसी प्रकार श्रावक संघ का पालन करता है, अतएव वह साधु के लिए भी माता-पिता के समान है। भगवान का तो यह फर्मान है। अब आप श्रावक लोग हम साधुओं को सुधारोगे या बिगाड़ोगे ? हमारी भूल की उपेक्षा करके हमें फिर भूल करने के लिए प्रोत्साहन देना हमें बिगाड़ना है। एक बार आदत बिगड़ने के बाद फिर सुधार होना सरल नहीं रहता।'

यही बात पूज्यश्री ने नाना दृष्टान्त आदि देकर बड़ी सुन्दरता के साथ समझाई और श्रावकवर्ग को अपने उत्तरदायित्व का भान कराया।

रतलाम-नरेश का आगमन

रतलाम के महाराजा कई बार पूज्यश्रीके परिचय में आचुके थे। वे पूज्यश्री की ओजस्विनी वाणी, प्रखर प्रतिभा, उत्कृष्ट संयम आदि गुणों से परिचित थे। पूज्यश्री पर उनकी बड़ी श्रद्धा थी। पूज्यश्री जिन दिनों थली-प्रान्त में विचरते थे, रतलाम-नरेश उनके विषय में अकसर पूछते रहते थे। रतलाम में चातुर्मास होने के संवाद से उन्हें अत्यन्त प्रसन्नता हुई।

कार्तिक शुक्ला नवमी, ता० ५ नवम्बर १६३५ को रतलाम-नरेश पूज्यश्री के दर्शनार्थ एवं उपदेश-श्रवण-के लिए पधारे। महाराजकुमार, मेजर शिवजी साहेब, कमिश्नर, डाक्टर आदि रियासत के प्रायः सभी उच्च पदाधिकारी भी उस दिन वहां मौजूद थे। पूज्यश्री ने राजा और प्रजा के पारस्परिक सम्बन्ध एवं कर्त्तव्य पर बड़ा ही प्रभावशाली उपदेश दिया। रतलाम-नरेश उत्कंठा के साथ पूज्यश्री के मुखचन्द्र से झरने वाले अमृत का पान करते रहे। जब उपदेश समाप्त हुआ तो पुनः सेवा में उपस्थित होने की इच्छा प्रदर्शित करते हुए गये। जाते समय नरेश का मुखमंडल ऐसा प्रसन्न था मानों उन्होंने कोई अनमोल और दुर्लभ वस्तु पाई हो !

और जनता ? जनता की प्रसन्नता का पार न था। जहां-तहां 'धन्य-धन्य' की ध्वनि गूंज रही थी। ऐसे समर्थ और प्रभावशाली पथ-प्रदर्शक अगर कुछ अधिक होते तो प्रजा और राजा के बीच जो गहरी खाई पड़ गई है वह न पड़ी होती। अवांछनीय संघर्ष का यह अवसर न आया होता ! राजा अपने को प्रजा का सेवक समझता और प्रजा, राजा को अपना संरक्षक समझती ! दोनों का सम्मिलित स्वार्थ होता। एक का सुख दूसरे का सुख और एक का दुख दूसरे का दुख होता ! प्राचीन भारतवर्ष की परम्परा-रूपी स्वच्छ चादर में जो अनेक मैले धब्बे लग गये हैं वे न लगे होते ! मगर इस विशाल देश में एक निस्पृह उपदेशक जो कर सकता है, उससे कहीं बहुत अधिक पूज्यश्री ने कर दिखाया। उन्होंने नरेशों के नेत्र खोले, प्रजा को प्रतिबोध दिया और दोनों में नीति और धर्म को प्रतिष्ठित करने का प्रशस्त प्रयास किया।

बीकानेर की विनति

इसी अवसर पर बीकानेर-श्रीसंघ के प्रमुख श्रावक पूज्यश्री से बीकानेर की ओर पधारने

की प्रार्थना करने आये। पूज्यश्री के समक्ष काठियावाड़ का प्रश्न उपस्थित था। अतएव पूज्यश्री ने उत्तर में फर्माया—'यदि मैं कठियावाड़ न गया तो बीकानेर फ़रसे बिना कहीं की विनति स्वीकार नहीं करूंगा।'

विहार

चातुर्मास समाप्त होने पर पूज्यश्री ठा० १० से सैलाना पधारे। वहां आपके तीन-चार व्याख्यान हुए। जनता तथा राज्याधिकारियों की प्रार्थना स्वीकार करके मृगशिर कृष्णा ७ को आपका एक विशिष्ट व्याख्यान हुआ। इस व्याख्यान की प्रशंसा सुनकर नवमी को सैलाना-नरेश ने व्याख्यान सुनने की अभिलाषा प्रकट की। मगर अष्टमी की रात्रि को अचानक पूज्यश्री के कान में दर्द हो उठा अतः दूसरे दिन आपका व्याख्यान न हो सका। दो-तीन दिनों तक इलाज करने के पश्चात् भी दर्द कम नहीं हुआ। अतएव छोटे ग्रामों में घूमने का कार्यक्रम स्थगित करके आप अमावस्या को रतलाम पधार गये।

कुछ दिनों पश्चात् युवाचार्यश्री भी पूज्यश्री की सेवा में पधार गये। इलाज तथा संयम से पूज्यश्री के कान का दर्द कुछ कम हो गया। पौष शुक्ला दशमी को आप ठा० १४ से जावरा की ओर पधार गये।

कुछ दिन जावरा विराजकर पूज्यश्री निम्बाहेड़ा, चित्तौड़, भीलवाड़ा, आसीन, गुलाबपुरा विजयनगर, बदनौर आदि स्थानों को पवित्र करते हुए चैत्र कृ० १४ को ब्यावर पधारे।

दो आचार्यों का सम्मिलन

पूज्यश्री हस्तीमलजी महाराज ने मारवाड़ में विचरते हुए पूज्यश्री से मिलने की इच्छा प्रकट की थी। तदनुसार अजमेर की ओर आपका विहार भी हो चुका था। पूज्यश्री हस्तीमलजी महाराज चैत्र शुक्ला ५ मंगलवार को प्रातःकाल जेठाणा पधार गये। उसी दिन सायंकाल पूज्यश्री भी युवाचार्यजी के साथ ११ ठाणों से जेठाणा पधारे।

दोनों आचार्य प्रेम और वात्सल्य के साथ परस्पर मिले। दो दिन एक ही जगह व्याख्यान हुआ। दोनों आचार्यों का एक ही स्थान पर विराजमान होने का संवाद पाकर जोधपुर, अजमेर, मालवा, मेवाड़, मारवाड़, काठियावाड़ आदि से सैकड़ों श्रावक दर्शनार्थ आ पहुँचे। जोधपुर और अजमेर के श्रीसंघ ने अपने-अपने यहां दोनों आचार्यों से इकट्ठा चातुर्मास करने की प्रार्थना की। उधर काठियावाड़ की ओर से श्रीचुन्नीलाल नागजी वोरा राजकोट-निवासी ने कठियावाड़ की ओर पदार्पण करने की प्रार्थना की। ब्यावर, बीकानेर और चित्तौड़ के श्रीसंघों ने भी आग्रह किया।

ऐसे प्रसंग बड़े विकट होते हैं। सदय हृदय किसे निराश करे? और औदारिक शरीर से एक साथ अनेक जगह पहुंचे भी कैसे? अतएव पूज्यश्री ने युवाचार्यजी तथा प्रधान श्रावकों के साथ इस विषय पर विचार-विमर्श किया। अन्त में काठियावाड़ की ओर पधारना निश्चित हुआ। पूज्यश्री ने ता० २९–३–३६ को निम्नलिखित अभिप्राय व्यक्त किया:—

द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अनुकूलता हो और हम दोनों को साथ रहने का अवसर मिले, यह हम दोनों चाहते हैं। परन्तु पूज्य हस्तीमलजी ने जयपुर फरसने की वहां के श्रीसंघ को आशा बँधाई है, अतएव उन्हें जयपुर पधारना पड़ेगा। हम दोनों के मिलाप से आनन्द हुआ है। प्रेम की वृद्धि हुई। आशा है वह प्रेम भविष्य में बढ़ता ही रहेगा।

मैंने बीकानेर-श्रीसंघ को यह वचन दिया है कि काठियावाड़ न गया तो बीकानेर फरसे बिना अन्यत्र चौमासे की स्वीकृति देने का भाव नहीं है। अतएव बीकानेर जाऊँ तो अजमेर भी पहुंचने का समय नहीं है और न इतनी शारीरिक शक्ति ही शेष है। काठियावाड़ी भाइयों का बहुत समय से तीव्र आग्रह है और इनके कथन से मालूम होता है कि उधर जाने से विशेष उपकार होगा। मुख्य मुनियों और श्रावकों के साथ विचार-विनिमय करने के बाद मैं कहता हूं— द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के अनुसार छूट रखकर, कोई साम्प्रदायिक मामला हो और बीच में रुकावट आ पड़े तो बात अलग, वर्ना सुखे-समाधे राजकोट-चातुर्मास के लिए काठियावाड़ की ओर विहार करने का भाव है। रुकावट का कारण उपस्थित होने पर राजकोट-श्रीसंघ को सूचना दी जाय तो वह उदारतापूर्वक मुझे छुट्टी दे दे।'

काठियावाड़ को लक्ष्य करके पूज्यश्री, युवाचार्यजी के साथ फिर ब्यावर पधार गए। ब्यावर से पाली की ओर विहार हुआ। वैसाख कृष्णा ६ को पूज्यश्री १६ ठाणों से पाली पधार गये। एकादशी को वहां से विहार किया और सांड़ेराव पधारे। यहां तक युवाचार्यजी आदि सभी संत साथ रहे। इसके बाद युवाचार्यजी ने सादड़ी तथा मेवाड़ की ओर विहार किया और पूज्यश्री ने, पं० मुनि श्रीसिरेमलजी महाराज आदि ने ठा० ९ से काठियावाड़ की ओर प्रस्थान किया।

गुजरात के प्रांगण में

गुजरात और काठियावाड़ की जैन जनता पूज्यश्री की ऐसी प्रतीक्षा कर रही थी जैसे पपीहा मेघ की प्रतीक्षा करता है। भले ही पूज्यश्री प्रथम ही बार इस प्रान्त में पदार्पण कर रहे थे मगर आपकी कीर्त्ति तो भारतवर्ष के कौने-कौने में व्याप चुकी थी। आपके यश के सौरभ से कौन प्रांत वंचित रहा था? आपके असाधारण तेज की प्रखर किरणावली सभी दिशाओं को आलोकित कर चुकी थी। यही कारण था कि ज्यों ही आपने गुजरात की सीमा में प्रवेश किया कि उस प्रान्त के श्रद्धाशील और भावुक भक्त श्रावक आपके दर्शनों के लिए उमड़ पड़े। यहां की सुबोध जनता को देखकर पूज्यश्री को भी विशेष हर्ष हुआ। सुयोग्य पात्र पाकर उपदेशक को हर्ष होना स्वाभाविक था। इस प्रदेश में आकर पूज्यश्री ने जनता की सुविधा के लिए गुजराती भाषा में उपदेश देना आरंभ किया।

वैसाख शुक्ला १५ को आप पालनपुर पधारे। उधर अहमदाबाद की ओर से मुनिश्री बड़े चांदमलजी महाराज तथा मुनि श्रीगब्बूलालजी महाराज ठा० ५ पधार गये। ज्येष्ठ कृष्णा ९ तक पालनपुर विराजमान रहकर मेहसाणा होते हुए आचार्य महाराज वीरमगाम पधारे।

काठियावाड़ में

पूज्यश्री जब वीरमगाम पधारे तो वहां की जनता में अपूर्व उत्साह का वातावरण फैल गया। जनता ने बड़ी दूर तक सामने जाकर पूज्यश्री का स्वागत किया और चिरकाल से हृदय में जो भावना रही हुई थी उसे सफल किया। सेठ हठी भाई सौभाग्यचंद की धर्मशाला में पूज्यश्री का प्रवचन हुआ। मूर्तिपूजक जैन तथा जैनेतर भाई भी पर्याप्त संख्या में उपस्थित हुए। अहमदाबाद के सेठ मणि भाई जैसिंह भाई आदि प्रमुख गृहस्थ एवं राजकोट के प्रतिनिधि भी दर्शनार्थ उपस्थित हुए।

ता० ३१-५-३६ को वीरमगाम से विहार करके पूज्यश्री ता० ४-६-३६ को सायंकाल

बढवाण शहर में पधारे। शहर तथा छावनी की जनता विपुल-संख्या में पूज्यश्री के स्वागतार्थ दूर तक सामने गई। दूसरे दिन महाजनवाड़ी में विशाल जनसमूह के समक्ष पूज्यश्री का प्रवचन हुआ। पूज्यश्री ने परमात्मा की महिमा भावमयी वाणी में समझाई और जीवनोपयोगी विषयों पर व्याख्यान फरमाया।

इस व्याख्यान में राजकोट-संघ तथा युवक-सङ्घ के प्रमुख व्यक्ति उपस्थित थे। मध्याह्न में युवक-सङ्घ के प्रतिनिधि पूज्यश्री की सेवा में आये। उस समय जैन समाज की परिस्थिति, उपदेश के विषय, प्रजा और राजा का अस्तित्त्व, युवकों का कर्त्तव्य इत्यादि विषयों पर वार्त्तालाप हुआ। राजकोट में होने वाली काठियावाड़ जैन-युवक-परिषद् के विषय में भी चर्चा हुई।

बढवाण शहर में दूसरा व्याख्यान फरमाकर आप बढवाण कैंट पधार गये। यहां राजकोट से आई बहुसंख्यक जनता भी मौजूद थी। पूज्यश्री से अपने-अपने क्षेत्रों में पधारने की प्रार्थना करने के लिए बोटाद तथा लाठी आदि सङ्घों के प्रतिनिधि भी यहां उपस्थित हुए। रविवार को बढवाण छावनी में उपदेश फरमाकर पूज्यश्री मूली, चोटीला आदि होते हुए ता० १७-६-३६ को राजकोट पधार गये।

सांसारिक स्वार्थों के आधार पर जगत् में जितने भी वर्ग खड़े हैं, पूज्यश्री उन सबसे ऊंचे उठे हुए महापुरुष थे। वे किसी एक वर्ग के नहीं थे फिर भी, और शायद इसीलिए सभी वर्ग के थे। वे सभी को समान दृष्टि से देखते थे और इसलिए सभी वर्ग उन्हें समान श्रद्धा-भाव से झुकते थे। राजा-प्रजा, अमीर-गरीब आदि का कोई भी भेद-भाव उनके लिए नहीं था। अतएव इस विहार में भी चोटीला आदि के साहबान ने भी पूज्यश्री के दर्शन और उपदेश-श्रवण का लाभ लिया। मूली के ठाकुर साहब श्री हरिश्चन्द्रसिंह जी, कुमार सुरेन्द्रसिंहजी तथा जयेन्द्रसिंह जी एवं वहां के दीवान साहब आदि ने उपदेश सुनकर अत्यन्त प्रसन्नता प्रकट की।

राजकोट-प्रवेश

ता० १७-६-३६ के शुभ मुहूर्त्त में पूज्यश्री ने राजकोट में पदार्पण किया। राजकोट में उस दिन असीम उल्लास का प्रसार था। वनवास की अवधि समाप्त करके रामचन्द्रजी जब पुनः अयोध्या में आये होंगे और अयोध्यावासियों के हृदय में जो आनन्द उमड़ा होगा, राजकोट के नर-नारियों को देखकर उसकी कल्पना साकार-सी हो उठती थी। जिधर देखो उधर चहल-पहल ही दृष्टिगोचर होती थी। नर, नारी, बालक और बालिकाएँ उमंगों से उड़ते हुए, कतार-सी बाँधे उसी ओर बढ़े चले जाते थे, जिस ओर से पूज्यश्री का आगमन होता था। बहुत से लोग मीलों तक पूज्यश्री के सामने पहुंचे।

नयेगांव से राजकोट आते-आते तो एक लम्बा जुलूस बन गया। इम्पीरियल बैंक के सामने पहले से ही हजारों स्त्री-पुरुष एकत्र थे। पूज्यश्री जैसे ही वहां पधारे कि एक विशाल जनसमूह और उमड़ पड़ा।

जैन बालाश्रम में पहुंचकर पूज्यश्री ने एक संक्षिप्त व्याख्यान देते हुए कहा—'आज मैं जो उत्साह देख रहा हूं, आशा है उसे आप लोग स्थायी बनाये रखेंगे।

सङ्घ के मंत्री रायसाहब मणिलाल शाह ने पूज्यश्री का उपकार माना। तत्पश्चात् स्थानीय युवकों की ओर से जैन-युवक-सङ्घ के मंत्री श्री जटाशङ्कर मेहता ने पूज्यश्री का स्वागत किया

तथा उनकी प्रभावक व्याख्यानशैली और समाज को जगाने की भावना की सराहना की।

प्रत्युत्तर देते हुए पूज्यश्री ने कहा—'महाप्रभु महावीर के आदेशानुसार उपदेश देना हमारा मार्ग है। उसी में समाज तथा राष्ट्र की उन्नति का समावेश हो जाता है।

इसके पश्चात् पूज्यश्री ने तीन दिन मौन और उपवास में व्यतीत किये। पण्डित मुनिश्री श्रीमल्लजी महाराज ने व्याख्यान फरमाया।

ता० २२ जून को स्वर्गीय पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज की स्वर्ग तिथि मनाई गई। तत्पश्चात् पूज्यश्री शहर में पधारे। जनता ने एक लम्बा और व्यवस्थित जुलूस का रूप धारण कर पूज्यश्री का स्वागत किया। जैनशाला तथा बालाश्रम आदि के बालक एक-सी पोशाक पहनकर सम्मिलित हुए, इस कारण जुलूस अधिक भव्य दिखाई देने लगा। शहर के मुख्य-मुख्य स्थानों में होता हुआ जुलूस महाजनवाड़ी में पहुंचा। चातुर्मास में पूज्यश्री उसी स्थान में ठहरने वाले थे।

चवालीसवां चातुर्मास (संवत् १९९३)

संवत् १९९३ का चातुर्मास पूज्यश्री ने राजकोट में व्यतीत किया। पूज्यश्री दशाश्रीमाली महाजनों की भोजनशाला के विशाल भवन में विराजमान हुए थे। ३० ठाणों से महासतियां भी राजकोट में विराजती थीं। जैनेतर हिन्दू भाइयों के अतिरिक्त अनेक मुस्लिम भाइयों ने भी पूज्यश्री के उपदेश का अच्छा लाभ उठाया।

राजकोट-दरबार श्री वीरबालाजी साहब, स्टेट और एजेंसी के छोटे-बड़े अधिकारी तथा बाहर से आये मेहमानों ने भी पूज्यश्री का वचनामृत पान करके लाभ उठाया। बाहर के बहुत से गृहस्थ, मकान किराये पर लेकर चातुर्मास भर पूज्यश्री की सेवा में रहे और संतवाणी-श्रवण तथा समागम से अपने जीवन की कृतार्थता साधने लगे।

प्रातःकाल साढ़ेसात बजे पण्डित मुनिश्री श्रीमल्लजी महाराज गुजराती भाषा में व्याख्यान फरमाते थे। नवयुवकों को धर्म की ओर प्रवृत्त करने में उनकी बड़ी लगन थी। आठ बजते ही पूज्यश्री व्याख्यान-मण्डप में पधारते। उस समय वहां के वातावरण में सहसा स्फूर्ति समा जाती। पूज्यश्री भी गुजराती में ही व्याख्यान फरमाते थे। प्रतिदिन प्रारम्भ में आप प्रार्थना करते, प्रार्थना पर हृदयस्पर्शी विवेचना करते, तत्पश्चात् शास्त्र बांचते और अन्तिम समय में कथा सुनाते थे। पूज्यश्री ने जब सती जसमा की कथा सुनाई तो श्रोताओं की आँखों से आँसू बहने लगे। जसमा का गुजरात के इतिहास में अमर नाम है। उसका चरित्र उदात्त, तेजस्वी और आदर्श है। सती जसमा बड़ी भाग्यवती निकली कि पूज्यश्री जैसे वक्ता उसे मिले! उन्होंने सती जसमा का चरित्र भी अमर बना दिया। जनता पर उसका बड़ा प्रभाव पड़ा। इसी प्रकार शील के अग्रदूत सेठ सुदर्शन की कथा भी अत्यन्त भावपूर्ण, हृदय को हिला देने वाले, और आत्मस्पर्शी शब्दों में आपने सुनाई। कोई भी कथा पूज्यश्री की वाणी का सहयोग पाकर निहाल हो जाती थी! पूज्यश्री के व्याख्यानों में धर्म और व्यवहार का अपूर्व सामंजस्य होता था। जैसे मानव-जीवन अखंड है—उसे धर्म और व्यवहार के क्षेत्र में बांटा नहीं जा सकता, आत्मा के दो विभाग नहीं हो सकते, उसी प्रकार जीवन को समुन्नत बनाने के लिए अखण्ड रूप से धर्म और व्यवहार के समन्वय की आवश्यकता है। व्यवहार धर्मशून्य और धर्म व्यवहारहीन होगा तो उससे आत्मा का उत्थान होना संभव नहीं है। मगर इस मर्म को बहुत कम लोग समझ पाते हैं। उपदेशक भी बहुत से

इस तथ्य से अनभिज्ञ हैं। यही कारण है कि व्यावहारिक जीवन में धर्म का अभाव देखा जाता है और अनेक लोग व्यवहार से विमुख होकर धर्म की साधना का प्रयत्न करते हैं। मगर यह कल्याण का मार्ग नहीं। पूज्यश्री ने धर्म और व्यवहार का सम्बन्ध स्थापित करके धर्म को सजीव और व्यवहार को संयत बनाने का महत्त्वपूर्ण प्रयत्न किया। यही कारण था कि आपके व्याख्यानों में राष्ट्रीयता के अंगभूत तत्त्वों का भी समावेश बड़ी सुन्दरता के साथ होता था। आप यथा समय कुरीति-निवारण, मनुष्य-कर्त्तव्य, कन्या-विक्रय, वर-विक्रय, बाल-वृद्ध-विवाह मृतक के पीछे रोना आदि-आदि व्यावहारिक समझे जाने वाले विषयों पर भी प्रभावशाली प्रवचन करते थे। आपके उपदेश से बहुतों ने बीड़ी-सिगरेट पीना छोड़ दिया। अस्पृश्यता निवारण पर तो आप अत्यधिक भार देते थे और अस्पृश्यता को जैन-धर्म से विरुद्ध समझते थे।

दैनिक उपदेश के अतिरिक्त मानव-धर्म, ब्रह्मचर्य, सन्तति-नियमन आदि विषयों पर आपके विशिष्ट भाषण भी हुए। आपके उपदेशों का श्रोताओं पर अच्छा प्रभाव पड़ा। पंद्रह भाइयों ने सपत्नीक ब्रह्मचर्य-व्रत अंगीकार किया, जिनमें श्रीचुन्नीलाल भाई नागजी वोरा, श्रीडाह्या भाई, श्रीमनसुखलाल भाई तथा कुचेरा (मारवाड़) निवासी श्रीताराचन्दजी सा० गेलड़ा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इसी प्रकार बीड़ी, विदेशी खांड, चर्बी लगे वस्त्र आदि भी अनेक श्रोताओं ने त्यागे। संघ ने मृतक के पीछे रोने-पीटने की प्रथा सर्वथा बंद कर दी। सदर में मारे जाने वाले कुत्तों की रक्षा के लिए एक समिति बनी। अहमदनगर जिला में पड़े दुर्भिक्ष से पीड़ित जनता की सहायता के लिए २२००)रु० सहायता भेजी गई। पर्युषण के समय स्थानीय पिंजरापोल के लिए चन्दा इकट्ठा किया गया और उसमें भी लगभग २२००) रु० की रकम भरी गई। पर्युषण की आठ तिथियों के लिए ५५१) रु० प्रतितिथि के हिसाब से ४४०८) रु० भरे गये। श्रीजैन-गुरुकुल ब्यावर को १२५०) रुपयों की सहायता प्राप्त हुई। अन्य संस्थाओं को भी यथायोग्य सहायता दी गई। कुल २००००) के लगभग सार्वजनिक कार्यों में लगाए गए। अनेक भाइयों और बाइयों ने विविध प्रकार की तपस्या की। पर्युषण के दिनों में लगभग १० हजार श्रोता प्रतिदिन व्याख्यान का लाभ उठाते थे।

पूज्यश्री अमोलकऋषिजी म० का स्वर्गवास

ता० १४-६-३६ को धूलिया में पूज्यश्री अमोलकऋषिजी महाराज का स्वर्गवास हो गया। यह संवाद जब पूज्यश्री के पास पहुंचा तो आपको अत्यन्त खेद हुआ। राजकोट श्रीसंघ में शोक छा गया। उनकी स्मृति में व्याख्यान बन्द रखा गया और चार 'लोगस्स' का ध्यान किया गया। उसी समय जीव-दया के निमित्त चन्दा इकट्ठा किया गया। पूज्यश्री अमोलकऋषिजी महाराज के स्वर्गवास से जैन-संघ में जो कमी हुई है, इसके लिए पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज ने व्याख्यान में दुःख प्रकट किया।

महात्मा गांधी की भेंट

पूज्यश्री जब राजकोट में विराजमान थे, तब २६ अक्टूबर को महात्मा गांधी भी कार्यवश राजकोट आये। पूज्यश्री की उपदेश शैली से, उत्कृष्ट और उदार विचारों से तथा उनकी उच्च-श्रेणी की संयमपरायणता से महात्माजी पहले ही परिचित हो चुके थे। अहमदाबाद से रवाना होते समय ही आपको मालूम होगया था कि पूज्यश्री राजकोट में विराजमान हैं और उसी समय आपने

पूज्यश्री से भेंट करने का विचार भी कर लिया था।

महात्माजी का इधर-उधर निकलना बड़ा कठिन होता है। जनता को मालूम हो जाय कि गांधीजी अमुक समय, अमुक जगह जाने वाले हैं तो वहां हजारों की भीड़ इकट्ठी हो जाती है। इस भय से गांधीजी ने अपना इरादा किसी पर प्रकट नहीं किया। जिस दिन राजकोट से विदा होने वाले थे उस दिन संध्या से कुछ पहले ही आपने पूज्यश्री के पास आने का समय कहला दिया। तदनुसार गांधीजी आ पहुंचे। जनता को पता नहीं चल सका, अतएव बड़ी शान्ति से दोनों महापुरुष मिलें।

गांधीजी ने कहा—जब मैं अहमदाबाद से रवाना हुआ, तभी से आप से मिलने की इच्छा थी। मैं राजकोट आऊँ और आप से बिना मिले चला जाऊँ, यह संभव ही नहीं था। मेरी इच्छा तो आपके उपदेश में आने की थी, मगर लोग व्याख्यान सुनने नहीं देते। क्या किया जाय ?

इस प्रकार प्रारम्भिक वार्त्तालाप होने के बाद पूज्यश्री ने फरमाया—'देखिए, यह सामने घड़ी टँगी है। इसकी दोनों सुइयां चल रही हैं, यह बात तो सभी लोग देखते हैं, पर इन सुइयों को चलाने वाली मशीनरी इसके भीतर है। उसे कितने लोग जानते हैं ? असल चीज तो मशीनरी ही है।

गांधीजी ने सौम्य मुस्कराहट में उत्तर दिया।

इसी प्रकार की कुछ और बातचीत के बाद गांधीजी रवाना हो गए।

आगामी चौमासे के लिए विनतियां

पूज्यश्री के चातुर्मास का सारे काठियावाड़ प्रान्त पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। वहां की जनता ने पूज्यश्री के विषय में जो प्रशंसात्मक बातें सुनी थीं, वे सब उन्हें हीनोक्तियां प्रतीत हुईं। पूज्यश्री के अगाध सिद्धान्तज्ञान, द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव को परखने का अद्भुत कौशल, चमत्कारपूर्ण वक्तृत्व शैली, विशाल प्रकृतिपर्यवेक्षण आदि गुणों के कारण आपका प्रभाव इतना अधिक पड़ा कि सारा काठियावाड़ आपके समागम के लिए उत्कंठित हो उठा। राजकोट का यह चातुर्मास समाप्त भी न होने पाया था कि जगह-जगह के भाई आगामी चातुर्मास की प्रार्थना करने लगे। मोरवी, पोरबंदर और जामनगर के श्रीसंघों ने भी चौमासे के लिए प्रार्थना की। रावसाहब सेठ लक्ष्मणदासजी तथा कुँवर गंभीरमलजी ने जलगांव के लिए आग्रहपूर्ण प्रार्थना की। यह प्रार्थना अत्यन्त भावमय, आग्रहपूर्ण और उत्साहप्रेरक थी। उसमें कहा गया था—

'यह दास आपकी सेवा में आज अपने हृदय की बहुत दिनों की अभिलाषा को प्रार्थना के रूप में प्रकट कर रहा है। इस प्रयत्न में धृष्टता और उद्दण्डता भी संभव है, लेकिन जिस प्रकार पुत्र अपने श्रद्धाभाजन पिता से कुछ चाहने की धृष्टता एवं उद्दण्डता करता है, मेरी धृष्टता और उद्दण्डता भी उसी सीमा की है; इसलिए सर्वथा क्षम्य है।'

'इस दास को उन स्वर्गीय पूज्यश्री १००८ श्री श्रीलालजी महाराज की सेवा का भी सुयोग प्राप्त हुआ है, जिनका जैन-संसार चिर ऋणी है। आचार्यश्री के गुणों, आचार्यश्री की प्रतिभा और शास्त्र-कुशलता से प्रायः सभी लोग परिचित हैं। ऐसे आचार्यश्री की सेवा का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है।......लेकिन दुर्भाग्यवश मेरी यह अभिलाषा—जो मैं आपकी सेवा में निवेदन करना चाहता हूँ—अपूर्ण ही रही। आचार्यश्री ने श्रीमान् को जब युवाचार्य-पद दिया और वे साम्प्रदायिक

कार्य से आंशिक मुक्त हुए, उस समय मेरी भावना थी कि अब थोड़े ही काल में अनुनय-विनय-पूर्वक मैं आचार्यश्री को जलगांव ले आऊँगा और आचार्यश्री की वृद्धावस्था के अन्त तक सेवा का लाभ लूँगा। मैं अपनी इस भावना को प्रकट भी नहीं कर सका और आचार्यश्री असमय में ही स्वर्ग सिधार गए।......'

'श्रीमान् का शरीर अब वृद्धावस्था को प्राप्त हुआ है। श्रीमान् ने सम्प्रदाय का कार्यभार भी विद्वान् एवं सुयोग्य युवाचार्य श्री १००७ श्री गणेशीलालजी महाराज को सौंप दिया है। साम्प्रदायिक कार्य से अब आप श्रीमान् बहुत कुछ निवृत्त हैं। वृद्धत्व भी पहले की तरह उग्र विहार करने से रोकता है। श्रीमान् का शरीर अब किसी एक स्थान पर रहकर शान्ति चाहता है। इसलिए मैं निवेदन करता हूं कि श्रीमान् जलगांव पधार कर सदा के लिए वहीं विराजें।

जलगांव में श्रीमान् के विराजने से मेरे श्रावक भाइयों को भी सब प्रकार से सुभीता रहेगा। जलगांव भारत के मध्य में है। इसलिए पंजाब और मद्रास तथा कलकत्ता और सिंध के लोगों को समान दूर पड़ेगा।'

अन्त में मेरा यही निवेदन है कि आप श्रीमान् वृद्ध हुए हैं और मैं भी वृद्ध हुआ हूं। इसलिए आप जलगांव में विराजकर मुझको तथा अन्य दक्षिण-निवासियों को अपनी सेवा का लाभ देने की कृपा कीजिए। आपके द्वारा उत्तर भारत का बहुत उपकार हुआ है, अब दक्षिण भारत को भी पावन कीजिए।'

रावसाहब की प्रार्थना लम्बी थी। उसके कतिपय अंश ही यहां उद्धृत किये गये हैं। इस प्रार्थना से उनकी मनोभावना और पूज्यश्री की सेवा की उत्कंठा टपकी पड़ती है। आपने पूज्यश्री से साहित्योद्धार के कार्य के लिए भी प्रार्थना की थी और उसमें आवश्यक रकम लगाने का भी विचार प्रकट किया था।

यह सब प्रार्थनाएं सुनकर पूज्यश्री ने ४-१०-३६ को व्याख्यान में निम्नलिखित उत्तर फर्माया:—

मेरे समक्ष मोरवी, पोरबंदर और जामनगर के श्रीसंघ की विनति आई है। एक विनति सेठ लक्ष्मणदासजी जलगांव वालों की है। वह विनति विवेक से भरी है कि जब मैं काठियावाड़ छोड़ूँ तब जलगांव ठहरूं और शास्त्रों का उद्धार करूं। उनकी प्रार्थना की शक्ति ऐसी है कि वह जिसे चाहें, अपनी ओर खींच सकती है। धनवान् तो बहुत हैं किन्तु धन का सदुपयोग करने की उदारता रखने वाले कम होंगे। सेठजी ने शास्त्रीय कार्य के लिए जो उदारता दिखाई है, वह कार्य चाहे कभी भी हो, और मैं अपने को उसके लिए समर्थ भी नहीं मानता, लेकिन इन्होंने तो विनति करके पुण्य कमा ही लिया और अपने साथ अपने उत्तराधिकारी को खड़ा करके बता दिया कि यह मेरा पुत्र केवल मेरे धन का उत्तराधिकारी नहीं है किन्तु मेरे धर्म का भी उत्तराधिकारी है। सेठजी ने तो इस तरह उदारता दिखाई। आपको भी इसका अनुमोदन तो करना ही चाहिए।

समाज की स्थिति उसके साहित्य से ही है। मैंने एक पुस्तक में पढ़ा था—हमारा और चाहे सब-कुछ चला जाए लेकिन यदि हमारा साहित्य बचा रहेगा तो हम सब-कुछ कर सकते हैं। वास्तव में जिस समाज का साहित्य अच्छा है वही समाज उन्नत हो सकता है। इसलिए आप अनुमोदन करके तो सुकृत उपार्जन कर ही सकते हैं।

इन सब विनतियों का उत्तर देने से पहले मैंने अपने संतों और खास-खास श्रावकों से परामर्श किया। सभी की यह सम्मति है कि अभी एक वर्ष और कठियावाड़ में विचरना ठीक होगा। यह सम्मति होने पर भी मुझे अपनी आत्मा से विचार करना है। आगामी चौमासा कहां किया जाय, यह तो अभी कह ही नहीं सकता,लेकिन एक वर्ष काठियावाड़ में ही विचरने की बात निश्चित रूप से कहना भी कठिन है। अतएव यही कहता हूं कि यदि मेरा एक वर्ष या कम-ज्यादा कठियावाड़ में रहना हुआ तब मैं दूसरी रीति से विहार करूंगा और यदि जाना हुआ तो अलग रीति से। अभी किसी भी विनति का निश्चयात्मक उत्तर देने में मैं असमर्थ हूँ। आप सबकी प्रेमभरी प्रार्थना मेरे ध्यान में है और सेठ लक्ष्मणदासजी की प्रार्थना भी ध्यान में रहेगी। द्रव्य-क्षेत्र काल-भाव के अनुसार जैसा अवसर होगा, किया जायगा।

कार्तिकी पूर्णिमा के दिन बीकानेर-श्रीसंघ ने भी प्रार्थना की, किन्तु उसे भी कोई निश्चित उत्तर नहीं मिल सका।

सरदार पटेल का आगमन

ता० १२ अक्टूबर को तीन बजे सरदार वल्लभभाई पटेल पूज्यश्री के दर्शनार्थ पधारे। सरदार का आगमन सुनकर दूसरी जनता भी बड़ी संख्या में एकत्रित हो गई। उन दिनों गांधी-सप्ताह चल रहा था। अतएव आगत जनता को पूज्यश्री ने गांधी-सप्ताह के संबंध में अपना संदेश दिया—महात्मा गांधी के मौखिक यशोगान मात्र से गांधी-सप्ताह नहीं मनाया जाता, परन्तु महात्माजी ने जिस खादी को अपनाकर देश को समृद्ध बनाने का सुन्दर उपाय खोज निकाला है और गरीबों के भरण-पोषण का द्वार खोल दिया है, उसे अपनाने से ही सच्चा गांधी-सप्ताह मनाया जा सकता है। ऐसा करने से महारंभ से बचाव होता है, इसलिए धर्म की भी आराधना होती है। इस प्रकार कहते हुए आपने देश-सेवा और धर्म-सेवा का समन्वय करते हुए संक्षिप्त किंतु सारगर्भित भाषण दिया।[1]

सरदार पटेल ने जनता को संबोधन करते हुए कहा—'आप लोग धन्य हैं, जिन्हें ऐसे महात्मा मिले हैं, जिन्हें नित्य ऐसे व्याख्यान सुनने को मिलते हैं। मगर यह सुनना तभी सफल है जब उपदेशों को जीवन में उतारा जाय।' इत्यादि संक्षिप्त भाषण करने के पश्चात सरदार पटेल ने पूज्यश्री से विदाई ली।

कार्तिक शुक्ला चतुर्थी के दिन पूज्यश्री की जयन्ती थी। अत्यन्त उत्साह और प्रगाढ़ श्रद्धा के साथ संघ ने जयन्ती-समारोह मनाया। उसी दिन श्रीसूयगडांगसूत्र के प्रकाशन का निश्चय किया गया, जो पूज्यश्री की देखरेख में पं० अम्बिकादत्तजी ने तैयार किया था। इसके निमित्त सुप्रसिद्ध दानवीर सेठ छगनमलजी मूथा बलुंदा, श्रीचुन्नीलालनागजी वोरा आदि सज्जनों ने अच्छी रकमें प्रदान कीं।

चातुर्मास के पश्चात्

राजकोट का चिरस्मरणीय चातुर्मास पूर्ण हुआ और पूज्यश्री ने मार्गशीर्ष कृष्णा प्रतिपद् को विहार कर दिया। आप सदर में पधारे। अष्टमी तक आप यहां विराजे। राजकोट दशाश्री माली बोर्डिंग के कार्यकर्त्ताओं के अनुरोध पर आपका एक व्याख्यान छात्रालय में हुआ। पोर-

1भाषणों के लिए 'जवाहर-ज्योति' देखिए।

बन्दर के भाई लक्ष्मीदासजी ने ५००) रु० तथा श्रीचुन्नीलाल नागजी वोरा ने १००) छात्रावास को भेंट किये। पूज्यश्री ने काठियावाड़ निराश्रित बालाश्रम का भी निरीक्षण किया। बहुत-से अजैन विद्वान् पूज्यश्री के परिचय में आये।

सदर से जब आपका विहार हुआ तो करीब १० हजार जनता आपको पहुंचाने आई विहार करके कोठारिया पधारे। राजकोट की जनता यहां भी हजारों की संख्या में उपस्थित हु पूज्यश्री का व्याख्यान हुआ। राजकोट श्रीसंघ ने सारे कोठारिया ग्राम को प्रीति-भोज दिया, य तक कि ग्राम के सब पशुओं को भी मिठाई आदि खिलाई गई। यहां वृक्षों की सघन छाया पूज्यश्री का व्याख्यान हुआ। राजकोट तथा अन्य स्थानों से आये यात्रियों की मोटरों, तांगों अ का तांता-सा लग गया। सारा मार्ग सवारियों से व्याप्त हो गया। जनता की भक्ति अपूर्व थी। विदाई की वेला वह और प्रबल हो उठी थी। कोठारिया के ठाकुर साहब ने व्याख्यान का ल उठाया और पूज्यश्री के प्रति अत्यन्त श्रद्धा-भक्ति प्रकट की।

कोठारिया से विहार करके मार्ग के ग्रामों में एक-एक दिन रुकते हुए पूज्यश्री गों पधारे। यहां सिर्फ एक सप्ताह ही रुकने का कार्यक्रम था मगर श्रीसंघ के अनिवार्य आग्रह से ब दिन रुकना पड़ा। सभी प्रकार की जनता ने आपके उपदेशों से लाभ उठाया। दो विशिष्ट ख्यान भी हुए।

गोंडल से वीरपुर पधारे। यद्यपि आप दो ही दिन वीरपुर में ठहरे मगर वीरपुर-नरेश इतने समय में ही पूज्यश्री के समागम से अच्छा लाभ उठा लिया। पूज्यश्री के उपदेश से उ ऊपर गो-सेवा विषयक अच्छा प्रभाव पड़ा और वह प्रभाव सिर्फ हृदय की भावना में ही नहीं उन्होंने उसे कार्यान्वित भी किया।

वीरपुर से विहार कर एक दिन पीठड़िया विराजकर जेतपुर पधार गए। जेतपुर में पू का अभिनन्दन करने के लिए पांच हजार नर-नारी एकत्रित थे। गोंडल सम्प्रदाय के मु पुरुषोत्तमजी महाराज तथा मुनि श्रीप्राणलालजी महाराज आदि साधु तथा साध्वियां ध तक आपके सामने पधारे। पूज्यश्री जेतपुर में दो सप्ताह विराजे। पहले-पहल तो व्याख्य जैनों की बहुतायत होती थी, धीरे-धीरे अजैनों की संख्या इतनी बढ़ी कि जैनों से भी अधि गई। शास्त्रीय विषयों के साथ पूज्यश्री कुरीति-निवारण पर भी सुन्दर प्रवचन करते थे। प यह हुआ कि बहुत-सी कुरीतियां समाप्त हो गईं। चार सज्जनों ने पत्नी सहित ब्रह्म अंगीकार किया। और भी अनेक व्रत-नियम ग्रहण किये गये। मुनि श्रीप्राणलालजी म अन्य संतों एवं सतियों ने खूब प्रेम-वात्सल्य प्रकट किया, जो प्रशंसनीय कहा जा सक पूज्यश्री ने भी साधु-सम्मेलन और कान्फ्रेंस के नियमों के पालन, संघबल तथा साधुओं के पर प्रकाश डाला। भावनगर-जनरल-कमेटी से लौटकर कांफ्रेंस के अनेक सदस्य पूज्यश्री नार्थ आये। साधु-सम्मेलन और कान्फ्रेंस के विषय में वार्त्तालाप हुआ।

जेतपुर की एक बात का उल्लेख करना आवश्यक है। अस्पृश्य कहलाने वाले भ विषय में पूज्यश्री का मन्तव्य पहले ही दिया जा चुका है। यहां अस्पृश्य भाई भी आपका श्रवण करने आये। उन्हें व्याख्यान-पीठ से काफ़ी दूर बिठलाया गया। पूज्यश्री को यह अन्यायपूर्ण प्रतीत हुआ। उन्होंने श्रावकों को प्रभावशाली शब्दों में उपदेश दिया। न

हुआ कि दूसरे दिन उन्हें आगे बैठने को स्थान दिया गया। अस्पृश्य जाति की महिलाएँ भी उपदेश-श्रवण के लिए उपस्थित हुई थीं। पूज्यश्री के उपदेश से अस्पृश्य भाइयों और उनकी महिलाओं ने मांस-मदिरा का त्याग किया।

जेतपुर में अमृत-वर्षा करके पूज्यश्री जेतलसर और धोराजी होते हुए ता० २०-१-३७ को मध्याह्न के समय जूनागढ़ पधारे। आपके साथ रावसाहब टाकरसी भाई घीया भी थे, जिन्होंने काठियावाड़ प्रवास में पूज्यश्री के साथ ही पैदल भ्रमण करने का निश्चय किया था और उसे पूरा भी किया।

यहां के भाइयों, बहिनों और बालकों ने तीन मील तक सामने आकर पूज्यश्री का स्वागत किया। पूज्यश्री स्थानकवासी जैन-संघ के स्थान में उतरे थे। उसी के विशाल मैदान में व्याख्यान-मण्डप बना था। पूज्यश्री का उपदेश सुनने के लिए जैनों के अतिरिक्त सैकड़ों हिन्दू-मुस्लिम भाई उपस्थित होते थे। अनेक विद्वानों ने भी लाभ उठाया। पूज्यश्री की सरल तथा हृदयस्पर्शी वाणी ने श्रोताओं का हृदय इतना आकर्षित कर लिया था कि प्रतिदिन श्रोताओं की संख्या बढ़ती जाती थी। अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, वीरता, आधुनिक विज्ञान और जड़वाद, इन्द्रियों और आत्मा की भिन्नता, आत्मा की अनन्त शक्ति आदि गंभीर विषयों पर पूज्यश्री ने ऐसी सुगम और सुन्दर भाषा में विवेचन किया कि जनता मंत्रमुग्ध-सी हो गई।

पूज्यश्री के उपदेश से प्रेरित होकर यहां के स्थानकवासी श्रीसंघ ने मृत्यु हो जाने पर रोने-पीटने की रिवाज में सुधार करने का प्रस्ताव किया। काठियावाड़ स्थानकवासी जैन-समाज के संगठन और सुधार के लिए सात गृहस्थों की एक समिति बनाई गई। अन्य श्रीसंघों से भी इसी प्रकार की समितियां बनाने की अपील की गई।

मध्याह्न और रात्रि के समय पूज्यश्री धार्मिक विषयों पर चर्चा-वार्त्ता; शंका-समाधान किया करते थे। उस समय भी जैनेतर विद्वान्, राज्याधिकारी और मुस्लिम भाई उपस्थित होते और पूज्यश्री की अनुभवभरी विवेचनाओं से लाभ उठाते थे। पूज्यश्री के उच्चतर तप-त्याग पर तथा विद्वत्ता पर जैन और जैनेतर समान भाव से मुग्ध थे। इस प्रकार जूनागढ़ में धार्मिक भावना का एक नवीन गढ़ खड़ा करके पूज्यश्री ने विहार किया। बहुसंख्यक जनता आपको विदाई देने आई।

प्रांसवा, खड़िया, बिलखा, मेंदरड़ा, वेरावल, मांगरौल, राजवाड़ आदि स्थानों में विचरते हुए आप फाल्गुन शुक्ला ६ को पोरबंदर पधारे। बिलखा दरबार ने पूज्यश्री के उपदेश से प्रभावित होकर रियासत में हिंसाबन्दी का ऐलान किया।* मेंदरड़ा में पूज्यश्री आलिधा दरबार श्री अमरा

---

* प्रतिलिपि इस प्रकार है:—

मोहर
बिलखा दरबार

Naj Manzil,
Bilkha (Kathiawar)

बी. स्टे. ओ. ओ नं० २७

ओफीस आर्डर

अमारा स्वस्थानमां दारु तथा शीकारनो प्रतिबंध छे। अने ते माटे कायदाओ अस्तित्वमां छे।

अहीना प्रजाजनो अने अमारी विनती तथा आग्रहने मान आपी विद्वद्वर्य पूज्य स्वामी

मोका के दरबारगढ़ में ठहरे थे और भोजनशाला में बनाये गये पंडाल में आपका उपदेश होता था। आसपास के करीब पच्चीस ग्रामों के लोग आपका उपदेश सुनने इकट्ठे होते थे। दरबार श्रीनाजा-वाला वगैरह भी उपदेश श्रवण करके हर्षित हुए। प्रजा, राज्याधिकारी, हिन्दू, मुसलमान आदि सभी भाई उपदेशों से लाभ उठाते थे। आपका एक व्याख्यान बालमंदिर में भी हुआ। सेठ नथु भाई मूलजी की अध्यक्षता में पोरबंदर का शिष्टमंडल पूज्यश्री से पोरबंदर पधारने की प्रार्थना करने आया। वेरावलमें पूज्यश्रीका एक व्याख्यान हरिजन-निवास में हुआ। अनेक हरिजनों ने मांस-मदिरा का त्यागकर अपना जीवन सुधारा।

पोरबंदर में पूज्यश्री के स्वागत के लिए सैकड़ों स्त्री-पुरुष माधवपुर तक गए। पूज्यश्री जब ओडगर गांव में पधारे तो लगभग ४०० व्यक्ति दर्शनार्थ उपस्थित हो गए। दूर-दूर से आपका भावमय स्वागत करने आये हुए भावुक नर-नारियों का समूह इकट्ठा था। वह दृश्य अतिशय भव्य और अपूर्व प्रतीत होता था।

पोरबंदर रियासत के मंत्री श्रीप्रतापसिंहजी भी पूज्यश्री के दर्शन और स्वागत के लिए सामने गए। पूज्यश्री के पदार्पण के समय ऐसा लगता था मानों कोई बड़ा-सा धार्मिक मेला भरा हो! आपके उपदेश दशाश्रीमाली महाजनवाड़ी में होते थे। यहां के दीवान श्रीत्रिभुवनदास जे. राजा तथा राज्यरत्न सेठ भाणजी लवजी, राज्यरत्न सेठ मंचरशाह हीरजी भाई वाड़िया आदि की पूज्यश्री के प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा थी। स्थानीय संघपति सेठ नथुभाई मूलजी ने आपका सार्वजनिक रूप से स्वागत किया। गोंडल सम्प्रदाय की सतियों ने भी पूज्यश्री के प्रति बहुत भक्ति प्रकट की। श्रीसंघ में उत्साह का पूर आ गया। अहिंसा, गो-सेवा, मानव-दया आदि विषयों पर आपके प्रभावशाली व्याख्यान हुए।

ता० २-४-३७ को पोरबंदर के राणासाहब श्रीनटवरसिंहजी, दीवान साहब, उच्च राज्याधिकारी तथा समस्त गण्य-मान्य व्यक्ति पूज्यश्री के उपदेश में सम्मिलित हुए। पूज्यश्री के समागम से राणा साहब अत्यन्त प्रभावित हुए। आपने पूज्यश्री से यहीं चौमासा करने की प्रार्थना की और सब प्रकार के समुचित सहयोग का आश्वासन दिया। मगर पूज्यश्री उस प्रार्थना को स्वीकार न कर सके। यहां मांगरोल, राजकोट, जूनागढ़, अमरेली, मोरवी जेतपुर आदि से आये हुए दर्शनार्थियों की भीड़ लगी। जो साधक पूज्यश्री की अमी-वाणी का रसास्वादन कर चुके थे और जिन्होंने उनकी तप-तेज से विराजमान मुखमुद्रा की भव्यता का पान किया था, उन्हें पूज्यश्री के दर्शन और उपदेश-श्रवण की उत्कंठा व्यग्र कर देती थी। उस अलौकिक विभूति को विस्मरण कर देना सहज

श्रीजवाहरलालजी महाराज पधारतां ते श्रीश्रीना उपदेशनो लाभ प्रजाजनोए संपूर्ण रीते लीधेल छे। तेश्रीश्रीनां अहीं पधारवाना मानमां आज रोज एम ठरावबामां आवे छे के अमारा राज्यमां दरसाल महावीरजयन्तीना रोज एकादशी तथा अमावस्या माफक अगतो पालवो। दुधवाला प्राणीओनी कायम माटे अमारी मंजूरी सीवाय नीकाश करवी नहीं।

आ ओफीस ओर्डरनी खबर लागता वलगताओ तरफ आपवी अने एक नकल पूज्यपाद महाराज श्रीजवाहरलालजी महाराज तरफ सादर मोकलवी। वीलखा ता० १-२-१९३७

(Sd.) Rawatvala
वीलखा दरबार

बात नहीं थी। ऐसे महान् संत का समागम प्रबल पुण्ययोग से मिलता है। जब वह सुलभ हो तो कौन अपने को धन्य नहीं बनाना चाहेगा ?

श्री पट्टाभी सीतारामय्या का आगमन

डाक्टर पट्टाभी सीतारामय्या भारतीय राजनीतिक संग्राम के एक प्रसिद्ध लड़वैया हैं। विद्वान्, धाराप्रवाह वक्ता और गंभीर विचारक हैं। जिन दिनों पूज्यश्री पोरबंदर में विराजमान थे आप भी वहां आये। पूज्यश्री की पुण्य-प्रशस्ति कहां-कहां नहीं पहुंच चुकी थी ? आपने पूज्यश्री की प्रशंसा सुनी तो दर्शनार्थ आये।

पूज्यश्री से मिलकर और वार्तालाप करके डाक्टर पट्टाभी अत्यन्त प्रसन्न हुए। खादी के विषय में आपने जनता के समक्ष संक्षिप्त भाषण भी किया।

पूज्यश्री की सेवा में मोरवी तथा जूनागढ़ से चातुर्मास की प्रार्थना करने के लिए प्रतिनिधि-मंडल आये थे। आपने मोरवी वालों को यह वचन दिया था कि अवसर होगा तो मोरबी स्पर्श किये बिना अन्य स्थान की चातुर्मास की प्रार्थना स्वीकार नहीं की जायगी। मगर तारीख ८-४-३७ के दिन पोरबंदर श्रीसंघ ने चौमासे के लिए बहुत जोरदार प्रार्थना की। वहां के दीवान साहब भी प्रार्थना में सम्मिलित थे। उन्होंने भी बहुत आग्रह किया। मगर पूज्यश्री मोरवी वालों को जो वचन दे चुके थे वह टल नहीं सकता था। अतएव उस समय चौमासे के विषय में कोई निर्णय न हो सका।

ता० १५-४-३७ को पोरबंदर की महारानी साहिबा पूज्यश्री का उपदेश सुनने आईं। आपने भी चौमासे के लिए विनति की।

मासकल्प विराजकर चैत्र शुक्ला ६ को पूज्यश्री ने जामनगर की ओर विहार किया। शतशः नर-नारियों ने दुःखपूर्ण हृदय से पूज्यश्री को विदाई दी। विदाई का दृश्य बड़ा ही करुणापूर्ण था। महात्मा गांधी की इस जन्मभूमि में इस महापुरुष के पदार्पण से बहुत उपकार हुए।

चैत्री पूर्णिमा को पूज्यश्री भाणवड़ पधारे। यहां हरिजन भाइयों ने भी व्याख्यान का लाभ उठाया। अन्य जनता ने उनके साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार किया। वहां से विहार कर जाम जोधपुर, धाफा, मोटी, पानेली, भायावदर होते हुए अक्षय तृतीया के दिन आप उपलेटा पधारे। पूज्यश्री के पधारने से छोटे-से-छोटे गांव में भी उत्साह और उमंग का प्रवाह बह जाता था। पानेली के तालाब में पानी कम रह गया था। अतः जीव-दया पर पूज्यश्री का संयत भाषण हुआ। वहां के दयाप्रेमी सज्जनों ने मछलियों के लिए पानी और गौओं के लिए घास की समुचित और शक्य व्यवस्था की। दोनों कार्यों के लिए अच्छा फण्ड इकट्ठा हो गया। जाम जोधपुर में श्री गोवर्धनदास मोरारजी वकील की अध्यक्षता में एक डेपुटेशन पूज्यश्री से जामनगर पधारने की प्रार्थना करने के लिए आया। पूज्यश्री ने सुखे-समाधे जामनगर पहुंचने का आश्वासन दिया। सेठ नथु भाई मूलजी तथा सेठ लक्ष्मीदास पीताम्बर के साथ सौ आदमी आपके दर्शनार्थ आये। धाफा में बहुत-से गरासी भी पूज्यश्री का उपदेश सुनने आये। उन्होंने मांस और मदिरा का त्याग किया। सभी स्थानों पर पूज्यश्री का हार्दिक स्वागत किया गया।

उपलेटा से कालावाड़ के रास्ते जामनगर की ओर विहार हुआ। खण्डेरा गांव में अचानक आपके दाएं पैर में बात का प्रकोप होगया। तकलीफ इतनी बढ़ गई कि विहार होना कठिन होगया

श्रीफूलचन्दजी महाराज ने १८ का थोक किया। सोलह वर्षीय बालक बाबूलाल चुन्नीलाल नागनिया ने आठ उपवास किये! ता० १०-९-३७ को दोनों का पारणा हुआ। जलगांव के सेठ लक्ष्मणदासजी ने और भीनासर (बीकानेर) के सेठ बहादुरमलजी तथा सेठ चम्पामलजी साहब बांठिया ने अपने-अपने स्थानों पर स्थिरवास करने की प्रार्थना की।

पूज्यश्री के पैर का दर्द अभी तक बिलकुल ठीक नहीं हुआ था। आपके दर्शनार्थ श्रीहेमचन्द भाई मेहता, दीवान बहादुर सेठ मोतीलालजी मूथा, सेठ वर्धमानजी सा० पीतलिया, उदयपुर के भूतपूर्व दीवान ए. ए. कोठारी श्रीबलवन्तसिंहजी आदि प्रतिष्ठित सज्जन उपस्थित हुए थे मारवाड़, मेवाड़, मालवा, गुजरात, काठियावाड़, दक्षिण आदि सभी प्रान्तों से अनेक सद्गृहस्थ भी आये थे।

ता० २६-९-३७ को पूज्यश्री का 'अहिंसा और समाजसेवा' विषय पर प्रभावशाली व्याख्यान हुआ। इस दिन भी उच्च पदाधिकारी, वकील, डाक्टर तथा अन्य प्रतिष्ठित पुरुष उपस्थित थे।

ता० ४-१०-३७ को श्रीठक्कर बापा तथा श्रीमती रामेश्वरी नेहरू ने पूज्यश्री के दर्शन किये। आधा घंटे तक पूज्यश्री से हरिजनोद्धार संबंधी वार्त्तालाप करके बहुत प्रसन्न हुए।

ता० १४-१०-३७ को श्री हरखचंद मूलजी एवं ता० १९-१०-३७ को श्रीरतनसी कानजी पुनातर वकील ने पत्नी सहित ब्रह्मचर्य-व्रत अंगीकार किया।

गांधी-जयन्ती के दिन श्रीनारायणदास गांधी राजकोट से जामनगर आये थे। उन्हें ५५१) रु० सार्वजनिक हित के लिए भेंट किये गये। स्थानीय अस्पताल को, अपाहिजों को तथा घाटकोपर जीवदया खाते को भी आर्थिक सहायता प्रदान की गई।

समाज में फैली हुई कुरीतियां जीवन को ऐसा गंदला बनाये हुए हैं कि उनके कारण वास्तविक धार्मिकता पनपने नहीं पाती। जीवन की तह में कुरीतियां चट्टान की भांति जमी हैं, जिन पर धर्म का अंकुर बढ़ नहीं सकता। जब तक इस चट्टान को उखाड़ कर न फैंक दिया जाय तब तक धर्म-वृद्धि के लिए किये जाने वाले प्रयत्न प्रायः निरर्थक से हो जाते हैं। पूज्यश्री इस तथ्य को भली-भांति समझते थे और इसी कारण वे सर्वत्र कुरीतियों के विरुद्ध उपदेश दिया करते थे मृत्यु के बाद रोने-पीटने की प्रथा घोर आर्त्तध्यान रूप है। राजकोट-चातुर्मास से ही पूज्यश्री ने इसके विरुद्ध उपदेश देना आरंभ कर दिया था। राजकोट-संघ ने प्रस्ताव करके उसे बन्द भी कर दिया था। जेतपुर-संघ ने भी राजकोट का अनुकरण किया था। अब जामनगर-संघ ने भी इस प्रकार का प्रस्ताव किया। इस प्रकार पूज्यश्री के उपदेश से यह रूढ़ि लगभग खत्म-सी हो गई।

ता० १७-११-३७ को धर्मप्राण लौंकाशाह की जयन्ती थी। पूज्यश्री ने श्रीलौंकाशाह के जीवन पर प्रकाश डालते हुए, निंदा, क्लेश आदि दुर्गुणों का त्याग करके एकता साधने का उपदेश दिया। करीब २०० पौषध उस दिन हुए।

सूर्य-किरण-चिकित्सा

सूर्य-किरण-चिकित्सा के विशेषज्ञ डाक्टर प्राणजीवन मेहता जामनगर के चीफ मेडिकल आफिसर थे। पूज्यश्री पर उनकी अगाध श्रद्धा-भक्ति हो गई थी। उन्होंने अपने सूर्यगृह में पूज्यश्री का उपचार आरंभ किया। पूज्यश्री के विनीत संत आपको सूर्यगृह तक उठाकर ले जाते थे।

मास तक उपचार चला। इस उपचार से पूज्यश्री को धीरे-धीरे कुछ लाभ हुआ।

यद्यपि आप साधारणतया चल-फिर सकते थे परन्तु लम्बे विहार का सामर्थ्य अभी तक नहीं आया था। परीक्षा करने के लिए पूज्यश्री ने एक दिन पांच-छह मील का भ्रमण किया। भ्रमण से कुछ दर्द मालूम हुआ। डाक्टर के कुछ दिन और विश्राम कर इलाज कराने की सम्मति दी। अतएव चातुर्मास के पश्चात् भी पूज्यश्री को कुछ दिन और ठहरना पड़ा।

बीकानेर-श्रीसंघ की ओर से सेठ वदनमलजी बांठिया और सेठ सतीदासजी तातेड़ ने पूज्यश्री से बीकानेर पधारने की विनति की। पूज्यश्री ने फरमाया—'द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की अनुकूलता का ध्यान रखते हुए मारवाड़ फरसने का भाव है।'

धीरे-धीरे पैर का दर्द कुछ ठीक हो गया और पूज्यश्री ने विहार करने का निश्चय कर लिया।

जवाहर-जयन्ती

कार्तिक शुक्ला ३ को पूज्यश्री का जन्म-दिवस था। उस दिन पं० र० मुनिश्री श्रीमलजी महाराज ने एक घंटे तक पूज्यश्री के जीवन पर बड़े ही श्रद्धापूर्ण और सुन्दर शब्दों में प्रकाश डाला। फिर डा० प्राणजीवन मेहता, श्रीगोवर्धन भाई वकील आदि भाइयों ने अपने उद्‌गार प्रकट किये।

जैन और जैनेतर भाइयों ने आपके गुणों की मुक्तकंठ से प्रशंसा की और चातुर्मास में उपदेश देकर कृतार्थ करने के लिए आभार माना। जब सब लोग अपने-अपने उद्‌गार प्रकट कर चुके, तब पूज्यश्री ने फर्माया—

मैंने इतना समय दक्षिण, मालवा, मेवाड़ और मारवाड़ में बिताया। मैं दिल्ली की तरफ भी गया था मगर गुजरात-काठियावाड़ बाकी था। इस प्रदेश में पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज पधारे थे और यहां की धर्म-श्रद्धा और सरलता के विषय में मैंने बहुत कुछ सुना था। अतएव यहां की जनता के लिए मुझे आकर्षण था।

पहले तो मेरा विचार बीकानेर की ओर जाने का था, मगर आप लोगों का आग्रह बहुत प्रबल हुआ। सूरजमलजी, श्रीमल्लजी, वक्तावरमलजी आदि संतों ने भी मुझे इस ओर आने के लिए बहुत उत्साहित किया। कहा—'जीवन का कोई भरोसा नहीं अतः श्रावकों का आग्रह पूरा करना चाहिए।'.........मैं काठियावाड़ आ गया।

आप सबने अभी जो कहा है, उस पर विचार करते हुए मुझे बैठे-बैठे ख्याल आ गया। उपनिषद् में एक वाक्य है—

[यानि अस्माकं सुचरितानि तानि त्वया पालनीयानि]

'गुरु, शिष्य से कहता है—हे शिष्य ! मुझमें जो सुचरित्र हो, उसी की तू उपासना कर। मुझ में जो बात प्रपंचभरी जान पड़े उसे तू मत ग्रहण करना।'

यही बात मैं तुमसे कहता हूं। आप लोगों ने मेरी प्रशंसा में जो कुछ कहा है, वह मेरे लिए भार स्वरूप है। वास्तव में मुझे भाषा का भी पूरा ज्ञान नहीं। गुरु चरणों के प्रताप से जो वस्तु मुझे विरासत में मिली है, वही तुम्हें सुनाता हूं और उसी के द्वारा सब के अन्तःकरण को संतुष्ट करने का प्रयत्न करता हूं। वह बात सुनाने में मुझे भूल होती हो या जिसे आपका आत्मा

स्वीकार न करे, उसे आप न मानो। जिसे आपका आत्मा स्वीकार करे, उसी को मानो।

मैं अपनी उम्र के ६२ वर्ष पूर्ण करके त्रेसठवें वर्ष में प्रवेश कर रहा हूं। हालांकि मेरी इच्छा यह थी कि मैं सदैव अपने आत्मा का कल्याण करने में ही लगा रहूं और किसी भी दूसरे प्रपंच में न पड़ूं। मगर नहीं कहा जा सकता, वह सुअवसर कब प्राप्त होगा! फिर भी मेरी भावना तो यही रहती है। मेरे विषय में आपने जो कुछ कहा है, उसे सुनकर मुझे अभिमान नहीं करना चाहिए। मुझे यह विचार करना चाहिए कि मुझमें जो गुण बतलाये गये हैं, वे अभी तक मुझमें नहीं आए हैं और उन्हें प्राप्त करने का मुझे प्रयत्न करना है। परमात्मा से यही प्रार्थना है कि मुझे सद्‌बुद्धि प्राप्त हो और सद्‌भावना की वृद्धि करके स्व-पर का कल्याण साधन करूं।......

मैं तुम्हारे समक्ष जो कुछ कहता हूं, उसे विचार कर ग्रहण करो। ठीक हो सो ग्रहण करो, ठीक न हो उसे छोड़ दो। मैंने अपने गुरु के समीप जो प्राप्त किया है, उसका यथावत् पालन करने में अभी तक मुझे पूर्णता प्राप्त नहीं हुई। मुझमें अभी तक बहुत-सी अपूर्णताएं हैं। जैसे हंस मोती चुगता है वैसे आप मेरे कथन में से अच्छी बातें चुन लो और ग्रहण करो। समुद्र में लहरें तो बहुत आती हैं मगर सब लहरों में मोती नहीं आते। लेकिन मोती चुगने वाला हंस उन्हीं लहरों में से मोती चुन ही लेता है।......

डाक्टर प्राणजीवन मेहता

इस चातुर्मास में तथा उससे पहले और बाद में भी डाक्टर प्राणजीवन मेहता की पूज्यश्री के प्रति सराहनीय सेवा रही। डाक्टर मेहता सूर्य-किरण-चिकित्सा के विशेषज्ञ हैं और जामनगर रियासत के चीफ मेडिकल आफिसर हैं। आपने तीव्र लगन और सच्चे सेवा-भाव से पूज्यश्री की चिकित्सा की। पूज्यश्री जब तक जामनगर के आसपास विचरते रहे, आप प्रतिदिन मोटरकार से सेवा में पहुंचते रहे और पूज्यश्री के स्वास्थ्य की देखभाल करते रहे। उन्हीं के परिश्रम, लगन और सतत सेवा से पूज्यश्री को स्वास्थ्यलाभ हुआ। उनके हृदय में पूज्यश्री के प्रति असीम श्रद्धा और अपार भक्ति है।

जामनगर से विहार

ता० २४-१२-३७ को पूज्यश्री ने विहार करने का अंतिम रूप से निश्चय कर लिया था। अत्यन्त सर्दी होने पर भी प्रातःकाल से ही सैकड़ों स्त्री-पुरुष लौंकागच्छ के उपाश्रय में एकत्र हो गए। उपाश्रय खचाखच भर गया। ६ बजे पूज्यश्री ने विहार किया। भक्तिपूर्ण हृदय से जनता ने दूर तक साथ चलकर विदाई दी। पूज्यश्री ने विदाई-सन्देश देते हुए फर्माया—जैसे सुगन्धित फूल अपनी सुगन्ध अधिकाधिक फैलाता है, उसी प्रकार मैंने सात महीना में जो उपदेश दिया है, उसकी सुगंध आप लोग फैलाना। बालकों को जैसे व्यावहारिक शिक्षा देते हो उसी प्रकार धार्मिक शिक्षा भी अवश्य देना। उगते हुए बालक रूपी पौधों पर उपदेश रूपी जल अवश्य सींचना। अगर आप ऐसा करेंगे और हम सुनेंगे तो हमारा हृदय प्रफुल्लित होगा।'

श्रीयुत मानसिंह मंगलजी मेहता ने कहा—श्रीमान् का किसी कारण मन दुखा हो या संघ की ओर से कोई त्रुटि हुई हो तो हम क्षमाप्रार्थी हैं। आप क्षमा के सागर हैं। क्षमा प्रदान कीजिए।

पूज्यश्री ने प्रतिदिन घंटा, आधा घंटा, बीस मिनट, दस या पांच मिनट तक भगवान् महावीर के नाम का जाप करने का उपदेश दिया। बहुत से भाइयों और बहिनों ने यह नियम अंगी-

कार किया। तब पूज्यश्री ने कहा—'प्रस्थान के समय यही हमारा पाथेय है।'

पूज्यश्री उसी दिन हपा पहुंच गए। वहां से विहार करके अलीपावाड़ा पहुंचे। यहां ता० २६-१२-२७ को जामनगर संघ स्पेशियल ट्रेन से दर्शनार्थ आया। विशाल मैदान में पूज्यश्री का व्याख्यान हुआ। आपने राम-वनवास और भरत के दुःख का रोमांचकारी वर्णन किया। जामनगर के वकील गोवर्धनदास मुरारजी ने संघ की ओर से हुई त्रुटियों के लिए क्षमायाचना की। वह दृश्य बड़ा ही करुण था। प्रत्येक व्यक्ति की आंखों में आंसू छलछला आए। पूज्यश्री अब जामनगर से दूर होते जा रहे थे और इस कारण जामनगर की जनता का विषाद उग्र से उग्रतर होता जा रहा था। अन्त में पूज्यश्री ने सत्य के विषय में एक कथा कहकर व्याख्यान समाप्त किया जनता ने उस दिन प्रीतिभोज किया, जिसमें १५०० व्यक्ति सम्मिलित हुए। पूज्यश्री ने ध्रोल के रास्ते मोरवी की ओर विहार किया।

मोरवी में पदार्पण

माघ कृष्ण ६, ता० २१-१-२८ को प्रातःकाल १० बजे पूज्यश्री मोरवी पधार गए। मोरवी की जनता पूज्यश्री के दर्शन के लिए चिरकाल से उत्कंठित थी। श्रीदुर्लभजी भाई झवेरी तो कई वर्षों से अपनी जन्मभूमि में आपको लाने के लिए प्रयत्नशील थे। अचानक पैर-दर्द के कारण आपका चौमासा मोरवी में न हो सका और मोरवी को बड़ी निराशा हुई। मगर निराशा के बाद की आशा, उत्सुकता और प्रतीक्षा का आनन्द अद्‌भुत ही होता है।

जामनगर से विहार करके पूज्यश्री जब वालंभा पधारे तब मोरवी के मुखिया श्रावक पूज्यश्री की सेवा में उपस्थित हुए और मोरवी पधारने की प्रार्थना की। उसके बाद तो मोरवी के धर्म-प्रेमी लोगों का आगमन होता ही रहा। ता० २०-१-२८ को चार बजे पूज्यश्री शनाला पधारे। उस समय से तो सैकड़ों लोग दर्शनार्थ आने लगे। रात को नौ बजे तक तांता लगा रहा। ता० २१-१-२८ को बहुत सुबह ही लोगों ने शनाला की तरफ जाना आरम्भ कर दिया। शतशः कण्ठों से निकलने वाले जयघोष के साथ पूज्यश्री ने मोरवी की ओर प्रस्थान किया। मोरवी पहुँचते-पहुंचते भीड़ बेशुमार हो गई। स्वागत में उत्साहपूर्वक भाग लिया। दृश्य बड़ा ही भावमय, सात्विक और सुन्दर रहा!

पूज्यश्री भोजनशाला के विशाल भवन में उतरे। प्रातःकाल ८॥ बजे से ९ बजे तक मुनिश्री श्रीमल्लजी महाराज व्याख्यान बांचते और फिर १० बजे तक पूज्यश्री पीयूष-वर्षा करते। सारी भोजन-शाला श्रोताओं से खचाखच भर जाती, फिर भी खूब शान्ति रहती। बाहर से अनेक सज्जन पूज्यश्री के दर्शनार्थ आए।

ता० २३-१-२८ को कान्फ्रेंस के अध्यक्ष श्रीहेमचन्द भाई आए। उसी दिन धर्मवीर सेठ दुर्लभजी भाई ने तथा अन्य तीन सज्जनों ने सपत्नीक ब्रह्मचर्य-व्रत अंगीकार किया। चार जोड़ों के साथ ब्रह्मचर्य-व्रत ग्रहण करने की यह घटना मोरवी में पहली ही थी। श्री हेमचन्द भाई ने चारों सज्जनों को दुशाले और चारों बहिनों को साड़ियां भेंटकर उनका सत्कार किया। तत्पश्चात् पूज्यश्री ने ब्रह्मचर्य की महिमा पर सुन्दर और मननीय प्रवचन किया और बतलाया कि जो पूर्ण ब्रह्मचर्य नहीं पाल सकते उन्हें एकपत्नीव्रत का पालन अवश्य करना चाहिए। पूज्यश्री ने अपने जीवन में ब्रह्मचर्य की अलौकिक महिमा का चमत्कार साक्षात् अनुभव किया था। यही कारण था कि आप

अत्यन्त तेजस्वी वाणी में, अधिकारपूर्ण शैली से ब्रह्मचर्य की महिमा का प्रतिपादन किया करते थे। आप अकसर फर्माया करते थे—'अखंड ब्रह्मचारी में अद्भुत शक्ति होती है। उसके लिए क्या शक्य नहीं है? वह चाहे सो कर सकता है। अखंड ब्रह्मचारी अकेला सारे ब्रह्माण्ड को हिला सकता है।'

इस व्रतग्रहण के प्रसंग पर श्रीदुर्लभजी भाई झावेरी ने विविध संस्थाओं को २५०४) रुपये का दान दिया।

मोरवी-नरेश का आगमन : जौहरीजी का दान

ता० ५-१-३८ को प्रातःकाल मोरबी के नामदार महाराजा साहब पूज्यश्री के दर्शनार्थ पधारे। महाराजा साहब अभी बीमारी से उठे थे और आपका शरीर काफ़ी कमज़ोर था; मगर पूज्यश्री का आगमन सुन अपने-आपको रोक नहीं सके। उनकी चिरकालीन आशा फलवती हुई। वे पूज्यश्री के दर्शन करके बड़े प्रसन्न हुए। जब आप पधारे तो उस समय राज्याधिकारी और जनता विशाल संख्या में उपस्थित थी। उस समय धर्मवीर श्रीदुर्लभजी भाई जौहरी ने कहा—महाराजा साहब मोरबी में कलाभवन स्थापित करना चाहते हैं। इस संबंध में बड़ौदा से पूछताछ भी की गई थी। इसी बीच महाराजा साहब की तबीयत खराब हो गई और वह योजना अभी तक यों ही रही है। अब महाराजा साहब स्वस्थ होकर यहाँ पधारे हैं। हम उनके दीर्घजीवन के लिए प्रार्थना करते हैं। कलाभवन के लिए मैंने भाजपुर में तथा उसके पीछे वाली अपनी दस हजार फुट ज़मीन पट्टे लिख दी है। अब उस ज़मीन में भवन बनवाने के लिए पाँच हजार रुपया भी भेंट करता हूं। कुल मिलाकर आपने १५०००) रु० का दान दिया।

रविवार के रोज़ मोरबी-श्रीसंघ ने पूज्यश्री से चातुर्मास की प्रार्थना की। पूज्यश्री ने फरमाया—'मेरे पूर्ववर्त्ती आचार्य पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज ने काठियावाड़ में दो चातुर्मास किये थे। मैं भी दो चातुर्मास कर चुका हूं। फिर भी सङ्घ की विनति मेरे ध्यान में है।

बांकानेर का सङ्घ भी चातुर्मास की प्रार्थना करने आया। मगर साम्प्रदायिक नियम के अनुसार होलिका से पहले चातुर्मास का निर्णय नहीं हो सकता था।

पूज्यश्री उत्तमचन्द्रजी महाराज का मिलाप

दरियापुरी सम्प्रदाय के पूज्यश्री उत्तमचन्द्र जी महाराज वृद्ध होने पर भी आपसे मिलने के लिए बांकानेर से पधारे। श्रीसङ्घ ने सामने जाकर उनका हार्दिक स्वागत किया। दोनों पूज्यों का सस्नेह समागम हर्षाश्रु बरसाने वाला था। पूज्यश्री के संतों ने नवागत आचार्यश्री का स्वागत और सन्मान किया। दोनों आचार्य हार्दिक उमंग के साथ मिले। श्रीसङ्घ के श्रेयस के लिए बात-चीत की। साधु-सम्मेलन के प्रस्ताव के अनुसार दोनों के सम्मिलित व्याख्यान के लिए प्रार्थना की गई। किन्तु दरियापुरी सम्प्रदाय के आचार्यश्री ने फरमाया—'हम सुनने आये हैं, सुनाने के लिए नहीं आये। हमें पूज्यश्री से मारवाड़, मालवा, मेवाड़ और दक्षिण आदि के अनुभव जानने हैं।'

प्रातःकाल और मध्याह्न में दोनों पूज्य वार्तालाप करके स्नेह एवं हर्ष की वृद्धि करते थे। श्रावक-समाज भी यह दृश्य देखकर अपना साम्प्रदायिक दायरा भूल रहा था।

सोमवार के दिन मोरबी-महाराजा फिर उपदेश-श्रवण करने उपस्थित हुए। पौन घण्टा बैठने के बाद आपने पूज्यश्री से निवेदन किया—'गत वर्ष का चौमासा आकस्मिक बीमारी के

कारण यहां नहीं हो सका। इस वर्ष हमें अवश्य लाभ मिलना चाहिए। धर्म के प्रताप से अच्छे कार्य होंगे।

सोमवार ता० २७-२-३८ को महाराजा साहब फिर तीसरी बार पधारे। इस बार आपने एक घंटे तक उपदेशामृत का पान किया। जैनशाला तथा कन्याशाला के बालकों को आपने पारितोषिक वितरण किया।

मोरवी-नरेश जब चौथी बार उपदेश सुनने आये तो आप भी मोरवी-सङ्घ द्वारा चातुर्मास के लिए की गई पुनः प्रार्थना में सम्मिलित हुए। मकान, उतारा आदि सभी प्रकार की राजकीय सहायता के लिए आपने संघ को वचन दिया। समवसरण सरीखे इस अवर्णनीय प्रसंग पर पूज्यश्री ने मोरबी-महाराजा की धर्म-भावना और संत-समागम की अभिलापा का अभिनंदन किया; किन्तु सम्मेलन के नियमानुसार चातुर्मास के विषय में कोई वचन नहीं दिया।

इधर मोरबी-महाराजा तथा वहां की धर्मप्रिय जनता पूज्यश्री के चातुर्मास के लिए प्रयत्नशील थी और उधर अन्य स्थानों के विवेकशील श्रावक भी सावधान हो गए थे। चातुर्मास का समय सन्निकट-आ रहा था और लोग सोचते थे कि पहले चेतने वाला जीतेगा। तदनुसार काठियावाड़ में सर्वत्र चौमासा कराने की हलचल आरंभ होने लगी। मगर गुजरात कब पीछे रहने वाला था? वहां के केन्द्रस्थान अहमदाबाद में भी चातुर्मास-चर्चा आरंभ हो गई। इसी सिलसिले में ता० ३०-१-३८ के 'स्थानकवासी जैन' पत्र के सम्पादक ने एक टिप्पणी इस प्रकार लिखी.—

परमपूज्य जैनाचार्य श्रीजवाहरलाल जी महाराज सा० नी व्याख्यान श्रेणी काठियावाड़नी भूमिने पावनकर्त्ता बनी छे। एटलु'ज नहिं पण काठियावाडनी जनताए शक्तिना प्रमाणमां स्वलक्ष्मीनो सद्व्यय करी पोतानां गुरुदेवोनु' उचित सन्मान कर्यु' छे। स्थले-स्थले धर्मभक्ति, परोपकार, साहित्यविकास, चारित्रविकास आदि गुणोनी वृद्धि थई छे अने ए रीते प्रस्तुत जैन मुनिओनो काठियावाडनो प्रवास उभयने माटे कल्याणप्रद नीवड्यो छे। जो के तेओश्रीए हजु तो काठियावाडनो एक भाग स्पर्श्यो छे अने भावनगर तरफनो बीजो भाग स्पर्शवो बाकी छे। साथे-साथे पूज्यश्रीनी शारीरिक स्थिति बराबर न होवा थी मारवाड़ तरफना स्वधर्मी उदार भक्तो पूज्यश्रीनु' कायमी निवास पोताना प्रदेश में तात्कालिक करावना इच्छे छे, ज्यारे बीजी तरफ काठियावाड़ नो जे भाग पूज्यश्री नी व्याख्यान वाणी थी वंचित छे ते भाग ते ओ श्री नो लाभ लेवा उत्कट इच्छा धरावे छो।

आजे स्थानकवासी जैनो नु कार्य प्रदेश अने धर्म श्रद्धा के टलेक अंशे उज्जड जेवा बनी गया छो, तेवे प्रसंगे विद्वान् कार्यदत्त मुनि महाराजना बोधनी अत्यन्त आवश्यकता छे। आथी अमे इच्छीए छीए के पूज्यश्री काठियावाड ना बीजा भागना घणा खरा क्षेत्रो स्पर्शी ल्ये, तो उने श्री ने अमदावाद पधारतां घणो समय-व्यतीत थई जाय ते स्वाभाविक छे अने पछी चातुर्मास के कायमी निवास माटे मारवाड़ तरफ पहोंची शयाम पण नहीं अने ए रीते स्थिति साधारण रीते विचारात्मक बने। आथी अमे अमदावादनी धर्म प्रेमी जनता जेओ पूज्यश्री ने शेषकाल माटे पधारवानो आमन्त्रण मूकी चुकी छे, एटलु' ज नहीं पण थोडा ज दिवसो यां रूबरू आमन्त्रण करवा माटे एक डेपुटेशन मोरवी मुकामे जनार थे, ते ओ ने अमे विनन्ति करीर के पूज्यश्रीनुआ चातुर्मास पोताने आंगणे (अमदावाद) मां थाय एवा प्रयत्नो करे अने ए रीते अमदावाद की समस्त

स्था० जैन प्रजा ने पूज्यश्री की अद्भुत वाणी नो लाभ मली शके । साथे साथे अन्य स्थलों मां पण ते ओ श्री ठीक ठीक समय सुधी रोकाई ने अन्य क्षेत्रों मां धर्म ना सुदृढ़ संस्कारो रेडी शके ।............'

अहमदाबाद का शिष्टमंडल

पूज्यश्री से अहमदाबाद में चौमासा करने की विनति करने के लिए गुजरात के अन्य संघों का भी प्रतिनिधित्व करने वाला एक शिष्ट मण्डल ता० ७–२–३८ को पूज्यश्री की सेवा में उपस्थित हुआ। पूज्यश्री के व्याख्यान के अनन्तर श्रीदुर्लभजी भाई ने शिष्टमण्डल का स्वागत करते हुए कहा—अहमदाबाद गुजरात का पाटनगर है और व्यापार का प्रधान केन्द्र है। किन्तु स्थानकवासी समाज के धर्मप्राण लौंकाशाह द्वारा किये गये क्रियोद्दार का आदि स्थान होने के कारण उसे और भी अधिक गौरव प्राप्त है। सूत्रों का टब्बा लिखने की प्रथा चलाने वाले पूज्यश्री धर्मसिंहजी महाराज की दरियापुरी सम्प्रदाय का यह पवित्र धाम है। श्रीधर्मदासजी, और श्रीलवजी ऋषि जैसे आद्य प्रचारकों ने यहीं से अपना धर्म-प्रचार आरंभ किया था और सैकड़ों वर्ष पहले पैदल विहार करके काश्मीर तक क्रियोद्धार की ज्योति जगाई थी। आज भी काश्मीर के मुख्य नगर जम्मू में साधुओं के चातुर्मास होते हैं। भक्तशिरोमणि नरसिंह मेहता और दुनिया के सर्वश्रेष्ठ महापुरुष महात्मा गांधी की निवास भूमि तथा क्रियोद्धार की कर्मभूमि में पूज्यश्री अवश्य नई प्रेरणा प्राप्त करेंगे और उसका फल हमें मिलेगा।

इसके बाद आपने एक एम० डी० डाक्टर का नीचे लिखा पत्र पढ़ा—

भगवान् महावीर का पुनीत वेषधारी

पूज्यश्री म्हारा भावपूर्वक वंदन करशो अने कहेशो के हजी म्हारा संत-समागमना अंतरायओछा थया नथी, आपश्रीनी वाणीनो सदुपदेश गले उतरे छे पण हजी रगोरगमां उतरतो नथी. त्यां सुधी अमर आत्मानी प्रवृत्ति मूकी नाशवंत देहनी प्रवृत्तियां रच्यापच्या रहीए छीए. क्षण भर स्मशान—वैराग्य सभ संसारिनी प्रवृत्ति रोकना अभिलाष थाय छे,पण बीजी क्षणे संसार-समुद्रमें क्यां घसडाई जईए छीए तेनी खबर पण पड़ती नथी. धोलने पादर झाड़ नीचे छेल्लो उपदेश आपी हसते चेहरे महाराज साहेब विदाय थई झड़पमेर चाली नीकल्या. ते दृश्य नजर आगल तर्या करे छे, जाणे के पूज्य महाराज आपण संसारीनो संग छोडी मुक्तिना मार्गे प्रमाण करी रह्या होय ! पूज्य महाराजश्रीना आहार-विहारनो बारीक अवलोकन करवानो प्रसंग आ वखते मल्यो, साधुदशामां शरीरने शु' कष्ट हाँसे-हाँसे देवाय तेनो ख्याल आव्यो, दुःखता पगे, उघाड़ा पगे चालीने विहार करवो, भिक्षा मांगी समयनु' माप जालवी जे मले तेपर आहारनो आधार ! कोई वेला न पण मले !

रहेवाना स्थाननी अगवड़ता, टाढ़, तड़का, मच्छर विगेरे जीवातनो परिषह, कोई साधन नहिं, कोईनी माया नहिं, आ तो देहनी परम अजब जीतज गणाय. देहने जे आटलो काबूमां राखी शके तेने देह तावेदार बने छे, जे देहने फुलावी-फुलाची ने पोसे छे ते देहनो तावेदार छे, देह नोकर बने तो आत्मा मुक्त बने छे, देह धणी थाय छे तो आत्मा एटलोज बधु बंधाय छे,'

शिष्टमण्डल की ओर से श्रीचन्दूलाल अचरजलाल शाह ने पूज्यश्री से अहमदाबाद पधारने की प्रार्थना की।

पूज्यश्री ने उत्तर दिया—'नामदार मोरवी महाराज साहेब तथा मोरवी-सङ्घ की प्रार्थना

होने पर भी शारीरिक कारणों से मैं आगे बढ़ने की इच्छा रखता हूं। साम्प्रदायिक मर्यादानुसार होली से पहले चातुर्मास के विषय में निर्णय नहीं किया जा सकता। फिर भी शेष काल के लिए अहमदाबाद फरसने की भावना है।'

शिष्य-मंडल के उत्सुक सदस्य पूज्यश्री के इस आश्वासन से अत्यन्त प्रसन्न हुए। अहमदाबाद की जनता पूज्यश्री के चतुर्मास के लिए बहुत उत्कंठित थी। इस उत्तर से सभी को सान्त्वना मिली।

पूज्यश्री बुधवार को मोरवी से विहार करना चाहते थे किन्तु मुनिश्री श्रीमल्लजी महाराज तथा श्रीमोतीलालजी महाराज की अस्वस्थता के कारण आपको कुछ दिन और ठहरना पड़ा। अन्ततः ता० २६-२-२८ के दिन तीन सन्तों को मोरवी छोड़कर पूज्यश्री ने विहार कर दिया। सनाला, लज्जाई, टंकारा होते हुए फाल्गुन शुक्ला सप्तमी को आप वांकानेर पधार गए। लज्जाई गांव में भी मोरवी-नरेश आपके दर्शन और उपदेश-श्रवण के लिए पधारे और चौमासा मोरवी में न हो सकने की सम्भावना पर खेद-खिन्न हुए। कुछ दिनों बाद पीछे रहे तीनों सन्त मुनिराज भी वांकानेर पधार गए।

जहां कहीं पूज्यश्री पधारे वहां व्याख्यान में श्रोताओं की, क्षेत्र की मर्यादा के अनुसार, अपूर्व भीड़ इकट्ठी हो जाती थी। यह घटना तो एक सामान्य बात बन गई थी। तदनुसार वांकानेर में भी वेशुमार भीड़ इकट्ठी होती थी। चातुर्मास का समय समीप होने के कारण अहमदाबाद और मोरवी आदि के अगुवा श्रावक उपस्थित थे। पूज्यश्री ने अहमदाबाद फरसने की स्वीकृति पहले ही दे दी थी, इस बार सुखे-समाधे चौमासा करने की भी स्वीकृति दे दी।

स्थानीय युवकमण्डली की प्रार्थना पर पूज्यश्री ने 'समाज-व्यवस्था' विषय पर विशिष्ट व्याख्यान दिया। जैनेतर जनता भी बहुत बड़ी संख्या में उपस्थित थी। ता० १४-३-२८ को जब वांकानेर-नरेश पूज्यश्री का उपदेश सुनने के लिए अपने तीनों कुमारों और अमात्यवर्ग के साथ पधारे तो पूज्यश्री ने 'अहिंसा और राजधर्म' पर डेढ़ घण्टा तक अपूर्व वाणी-धारा प्रवाहित की। उपदेश के बाद महाराजा साहब ने अपनी प्रसन्नता प्रकट की और इस सुअवसर की प्राप्ति के लिए अपने-आपको धन्य समझा।

फिर राजकोट में

कुछ दिनों तक वांकानेर विराजकर पूज्यश्री राजकोट पधारे। पूज्यश्री की महिमा से यहाँ की जनता भली-भांति परिचित हो चुकी थी, अतएव जब आप दोबारा राजकोट पधारे तो नगर में उत्साह और उल्लास फैल गया। आपके साथ इस बार बोटाद सम्प्रदाय के वयोवृद्ध मुनिश्री माणिकचन्द्रजी महाराज तथा दरियापुरी सम्प्रदाय के वयोवृद्ध आचार्य पूज्यश्री उत्तमचन्द्रजी महाराज भी थे। तीनों महापुरुषों का राजकोट में आना ऐसा मालूम होता था मानों ज्ञान, दर्शन और चारित्र रूप रत्न-त्रय का आगमन हुआ हो! तीनों महानुभाव जब व्याख्यान मंडप में विराजते तो अपूर्व शोभा मालूम होती, जैसे त्रिवेणी-सङ्गम हुआ हो! प्रतापी पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज के व्याख्यानामृत का पान करने के लिए जनता आतुर रहती थी। जैन और जैनेतर सभी लाभ उठाते थे। पर्यूषण-पर्व जैसा आनन्द-मङ्गल छा रहा था। पूज्यश्री के दर्शन और उपदेश का लाभ उठाने के लिए कोठारिया एवं सरदारगढ़ के दरबार तथा मोरवी-नरेश

के भाई कुमार रणजीतसिंहजी दो बार आए और दोनों बार प्रसन्नता प्रकट करके विदा हुए।

मोरवी-महाराजा की प्रार्थना

बांकानेर में अहमदाबाद के शिष्टमंडल को अहमदाबाद-चातुर्मास का आश्वासन पूज्यश्री दे चुके थे। आपने अपने विहार का क्रम भी इसी के अनुसार निश्चित किया था। जब पूज्यश्री राजकोट पधारे तो डाक्टर प्राणजीवन मेहता पूज्यश्री के दर्शनार्थ आये। जब उन्हें पता चला कि पूज्यश्री अहमदाबाद पधार रहे हैं तो उन्होंने मनसुखभाई को एक पत्र लिखा। ता० २६ को मोरवी के महाराजा साहब तथा अन्य प्रतिष्ठित सज्जन मोरवी में चौमासा करने की प्रार्थना के लिए आ पहुंचे। पूज्यश्री ने कहा—'मैं अहमदाबाद श्रीसङ्घ को आश्वासन दे चुका हूँ।' अब सङ्घ की बात मानने के लिए बाध्य हूँ।' उसके बाद मोरवी-नरेश ने जो विनति की उसकी विगत इस प्रकार है:—

ता० २६-३-३८ शनिवार को सायंकाल, साढ़े चार बजे नामदार मोरवी-नरेश पूज्यश्री के दर्शन के लिए दशाश्रीमाली वणिक् भोजनशाला के भवन में पधारे। उनके साथ मोरवी स्टेट रेलवे के ट्राफिक सुपरिंटेंडेंट श्रीमनसुखलाल भाई भी थे। मोटर से उतरते ही वे वणिक दवाखाने के हाल में प्रविष्ट हुए। श्रीसङ्घ के अग्रगण्य व्यक्तियों ने आपका स्वागत किया। तदनन्तर आप पूज्यश्री की सेवा में उपस्थित हुए। पूज्यश्री से सुख-साता की पृच्छा करने के पश्चात् नरेश ने कहा-मनसुखलाल ने मुझे कहा कि 'पूज्यश्री का यह चातुर्मास अहमदाबाद में होगा और चातुर्मास समाप्त होने के पश्चात् पूज्यश्री मोरवी पधारेंगे।' तब मैंने कहा—'यह कैसे हो सकता है? अहमदाबाद जाने के बाद पूज्यश्री का मोरवी पधारना तो उलटी गङ्गा बहाना है। मारवाड़ जाते समय तो अहमदाबाद बीच में आएगा ही। अतएव यह चातुर्मास पूरा करके मारवाड़ जाते समय अहमदाबाद जाना सीधी-सादी बात है।'

मैंने मनसुखभाई से फिर कहा—'तुमने भी खूब कही! मालूम होता है, तुमने काल को जीत लिया है। मुझे भी भीम की तरह घोषणा करनी पड़ेगी कि मैंने काल को जीत लिया है! आगामी चातुर्मास तक कितनी घटनाएं घटेंगी, इसका क्या पता है!' अतएव इस वर्ष का चौमासा तो मोरवी में ही होना चाहिए। ऐसी सीधी-सादी बात में किसी को हठ नहीं होना चाहिए। अहमदाबाद के भाई हठ करें तो आप कह दीजिएगा कि मोरवी के ठाकुर आये और मुझे ले गए मैं क्या करता।'

'दूसरी बात यह है कि अहमदाबाद जाने के बाद फिर मोरवी बुलाने का कष्ट मैं आपको नहीं देना चाहता। इसलिए मेरी प्रार्थना है कि यह आगामी चातुर्मास मोरवी में कीजिए और फिर अहमदाबाद जाइए। अहमदाबाद के भाइयों को कहलाने आदि के विषय में जो कुछ करना हो वह अपनी रीति के अनुसार कर लीजिए।'

इसके बाद उठते समय मोरवी-महाराज ने हँसते हुए कहा—'अब मैं मानता हूँ कि अगला चातुर्मास मोरवी में ही होगा। मैं तो पक्का करके जाता हूँ। इस पर भी आप नहीं आएँगे तो मानूंगा कि आपके विचार ढीले हैं।

महाराजा साहब ने मांगलिक सुना और पूज्यश्री ने फरमाया—आपकी विनति मेरे ध्यान में रहेगी और यथावसर देखा जायगा।'

पूज्यश्री उलझन में

सांसारिक वैभव को निस्सार समझकर तज देने वाले अकिंचन अनगार भिक्षु की दृष्टि में राजा-रंक समान हैं। सिर्फ राजा होने के कारण कोई पुरुष उनके लिए महिमाशाली नहीं बन जाता और रंक होने के कारण उपेक्षणीय नहीं हो जाता। फिर भी श्रद्धालु की श्रद्धा और भक्त का का भक्तिभाव उन्हें आकर्षित किये बिना नहीं रहता। मोरवी-नरेश ने जिस अविचल विश्वास के साथ मोरवी में चौमासा करने की बात कही, उसने पूज्यश्री के मृदु अन्तःकरण को स्पर्श कर लिया। मोरवी-नरेश की भावना को ठेस पहुंचाना पूज्यश्री को उचित प्रतीत नहीं हुआ।

मोरवी की ओर आकर्षित होने का दूसरा कारण भी हो सकता है। आपके पूर्ववर्त्ती आचार्य पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज ने मोरवी में चौमासा किया था और आप उन्हीं के चरण-चिह्नों पर चलना चाहते थे। मोरवी-चातुर्मास का पहले निश्चय हो गया था, लेकिन आकस्मिक बीमारी के कारण उसमें परिवर्त्तन हो गया। यह परिवर्त्तन यद्यपि मोरवी-संघ की स्वीकृति से ही किया गया था तथापि मोरवी-संघ को यह परिवर्त्तन अभीष्ट नहीं था। इस परिवर्त्तन के कारण उसे दुःख हुआ था। पूज्यश्री यह अनुभव करते थे और इस कारण इस संघके प्रति उनके हृदयमें सहानुभूति थी।

तीसरा कारण धार्मिक प्रचार संबंधी हो सकता है। पूज्यश्री की क्षत्रिय वंश के प्रति गौरव-पूर्ण भावना थी। आपके यह विचार ध्यान देने योग्य हैं—

तीसरा कारण धार्मिक प्रचार संबन्धी हो सकता है। पूज्यश्री की क्षत्रिय वंश के प्रति गौरवपूर्ण भावना थी। आपके यह विचार ध्यान देने योग्य हैं—

'एक समय ऐसा था जब क्षत्रियों ने अपने धर्म का पालन करके संसार को इस प्रकार प्रकाशित कर दिया था, जैसे सूर्य अपने प्रखर प्रताप से विश्व को आलोकित कर देता है। बड़े-बड़े राजों-महाराजों ने और ऋषि-महर्षियों ने धर्म के तेज को धारण करके पाप के अंधकार को विलीन-सा कर दिया था। उन तेजस्वी पुरुषों की जीवन-कथा आज भी हमें उनके पदानुसरण के लिए प्रेरित और उत्साहित करती है। प्राचीन काल में क्षत्रियों ने अपना क्षात्र-धर्म किस प्रकार दिखाया था, इसका उल्लेख इतिहास के पन्नों पर सुवर्ण-वर्णों से हुआ है।'

'वीर क्षत्रिय वंश ने अपने कर्त्तव्य में रत रहकर, न केवल अपने ही वंश को, वरन् चारों आश्रमों को देदीप्यमान कर दिया था। शास्त्रों में इस कथन के पोषक बहुत-से उल्लेख मौजूद हैं। जैनियों के देवाधिदेव तीर्थंकरों ने क्षत्रिय वंश में ही जन्म लिया था। क्षात्र-तेज के बिना धर्म प्रकाशित नहीं होता। धर्म को प्रकाशित करने के लिए वीर क्षत्रियों ने अपने प्राण न्यौछावर कर दिये।'

'बहादुर क्षत्रिय जिस प्रकार अन्य अन्यायों को सहन नहीं कर सकते थे, उसी प्रकार रमणियों के आर्त्तनाद को भी सुन नहीं सकते थे। वे स्त्रियों की गोद में पड़ा रहना पसंद नहीं करते थे।'

'मित्रो ! तुम—ओसवाल भाई—पहले वीर क्षत्रिय थे। तुम्हारे विचारों में बनियापन बाद में आया है। अपने इन बनियापन के विचारों को हृदय से निकाल दो।.......तुम्हारे शरीर में शुद्ध क्षत्रिय-रक्त दौड़ रहा है। उठो ! तुम्हारे उठे बिना बेचारा रक्त भी क्या करेगा ?'

मोरबी-महाराजा साधारण क्षत्रिय नहीं, एक नरेश हैं। उन्हें धर्म का प्रतिबोध देने से प्रजा का विशेष कल्याण होने की संभावना थी।

संभवतः इन्हीं सब कारणों से पूज्यश्री का झुकाव मोरबी की ओर हो गया तो क्या आश्चर्य है? मगर यह सब होते हुए भी अहमदाबाद-संघ के प्रति वे वचनबद्ध हो चुके थे। कुछ भी हो मगर साधु अपने विचार से मुकर नहीं सकते। जब तक अहमदाबाद के श्रीसङ्घ की स्वीकृति न मिल जाय तब तक पूज्यश्री अहमदाबाद जाने के लिए बाध्य हैं। पूज्यश्री के सामने यही उलझन उपस्थित थी।

चातुर्मास के निश्चय में परिवर्त्तन

पूज्यश्री ने समाज के अनुभवी और प्रमुख व्यक्तियों से परामर्श किया। यह निर्णय हुआ कि अहमदाबाद श्रीसङ्घ के सामने सारी परिस्थिति रख दी जाय और उसी से अंतिम निर्णय करा लिया जाय। इस निश्चय के अनुसार सात सज्जनों का एक डेप्यूटेशन अहमदाबाद गया, जिसमें धर्मवीर श्रीदुर्लभ जी भाई, रा०ब० मणिलाल वनमालीदास, राय साहब ठाकरसी भाई आदि मोरबी और राजकोट के प्रमुख व्यक्ति थे।

मुलाकात के बाद ९॥ बजे सारंगपुर दौलतखाने के उपाश्रय में एक आम सभा का आयोजन किया गया। उस समय श्रीकालीदास जसकरण झवेरी ने कहा :—

दो वर्षों से पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज काठियावाड़ की भूमि को पवित्र कर रहे हैं। मुझे एक अवसर पर रतलाम जाना पड़ा। वहां पूज्यश्री के व्याख्यान सुनकर मुझे लगा कि आपके व्याख्यान समय के अनुसार और उच्च कोटि के हैं। इसलिए मैंने उस समय उन्हें गुजरात पधारने की प्रार्थना की। काठियावाड़ी भाइयों के आग्रह से उन्होंने राजकोट तथा जामनगर में चातुर्मास किये। इसी बीच मुझे समाचार मिला कि पूज्यश्री इसके बाद बीकानेर पधार जायंगे। उस समय मैंने सोचा-उनका सीधे पधार जाना ठीक नहीं है। वे गुजरात में पधारें तो ठीक रहे। यह बात मैंने दूसरे भाइयों से कही। उसके बाद डाक्टर पी०पी० सेठ के सभापतित्व में एक सभा की गई और चौमासा कराने का निश्चय किया गया। तत्पश्चात् १५-१७ भाइयों का एक डेप्यूटेशन मोरबी गया। उसमें मारवाड़ी भाई भी सम्मिलित थे। हम मोरबी में पूज्यश्री से मिले, विनति की। उसमें श्रीदुर्लभजी भाई ने भी हमारी तरफ से वकालत की। अहमदाबाद को मुनि श्री धर्मसिंहजी का धाम बताया। उससे पूज्यश्री का मन आकृष्ट हुआ। उसके बाद हम फिर वांकानेर गए। उस समय भी राजकोट तथा वांकानेर के भाइयों ने हमें अश्वासन दिया। श्री-चिमनलाल भाई वकील और श्रीगुलाबचंद संघाणी वहीं रुक गए और निश्चय करके आए कि पूज्यश्री जेठ में यहाँ पधारेंगे और चातुर्मास यहीं करेंगे। हम लोग उतरे तथा व्यवस्था संबंधी बातों का विचार करने लगे। पूज्यश्री राजकोट पधारे। ता० २६ को मोरबी-नरेश पधारे और उन्होंने अपने नगर में चातुर्मास करने की पूज्यश्री से प्रार्थना की। इस संबंध में विशेष विवरण हमें डेप्यूटेशन के सभ्यों से सुनने को मिलेगा।'

तत्पश्चात् राजकोट के श्रीमणिलाल भाई ने राजकोट में डाक्टर प्राणजीवन मेहता के आने से लेकर सारी हकीकत सुनाई। इसके बाद कहा--स्व० पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज को मोरबी के स्वर्गस्थ नरेश श्री सर वाघजी साहेब ने पधारने की विनति की थी। उन्हीं की प्रेरणा से मोरबी

में स्थानकवासी कान्फरेंस हुई थी। राजा लोगों की विनति का हमारे सामने यह पहला उदाहरण है। इसके धर्म का लाभ होने की आशा है। अहमदाबाद मारवाड़ के रास्ते में आता है, इसलिए उसे तो लाभ मिलेगा ही। इसलिए मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप मोरवी की विनति मंजूर करें।

इसके बाद श्री दुर्लभ जी भाई ने कहा–अहमदाबाद लोंकाशाह की जन्मभूमि है। क्रियोद्धार का महाधाम है। स्था० सङ्घ की गद्दी का गांव है। स्था० जैन धर्म पालने वाली पांच लख जनता अहमदाबाद की ऋणी है। हम मोरवी सङ्घ की तरफ से नम्रतापूर्वक प्रार्थना करते हैं कि मोरवी में चातुर्मास के लिए स्वीकृति दीजिए। भविष्य का अधिकार कायम रखते हुए मोरवी चातुर्मास से अपनी महासभा का भी हित होने की सम्भावना है। धर्म का भी उद्योत होगा। इन सारी हित-दृष्टियों को सामने रखकर मैं आपसे कहता हूं।

इसके बाद श्री पी०एन० शाह ने आचार्यश्री की प्रशंसा तथा डेपुटेशन का सत्कार करते हुए विनति मान लेने की अपील की।

इसके बाद श्री त्रिकमलाल वकील ने कहा–मेरा आग्रह था कि पूज्यश्री का चातुर्मास यहाँ हो तो अच्छा। किन्तु सारी बात जानने के बाद मैं अपना विचार मोरवी के लिए प्रकट करता हूं। जो विरुद्ध हों वे यहाँ बोल सकते हैं। किसी ने विरुद्ध मत नहीं बताया। मोरवी की विनति मंजूर हो गई।

डेपुटेशन ने वापिस आकर अहमदाबाद श्रीसङ्घ का निर्णय बताया। तदनुसार पूज्यश्री ने मोरवी चातुर्मास का निश्चय कर लिया।

जैन गुरुकुल पाठशाला की स्थापना

पूज्यश्री समाज में विद्या के प्रचार पर बहुत जोर दिया करते थे। उन्हीं के सदुपदेश से चातुर्मास के समय राजकोट में 'श्रीमहावीर जैन ज्ञानोदय सोसाइटी' को पुनर्जीवन दिया गया था और धार्मिक साहित्य के प्रचार के निमित्त ८०००) रुपये एकत्र हो गए थे।

इस बार श्रीमहावीर जयन्ती के दिन गुजरात-काठियावाड़ में धार्मिक शिक्षा के प्रचार के हेतु श्रीजैन गुरुकुल-पाठशाला स्थापित करने का निश्चय हुआ। उत्साह के साथ धनवानों ने धन-दान दिया। निश्चय के बाद ही अठारह हजार रुपये इकट्ठे हो गए। महिला-समाज ने भी अच्छी रकमें देकर अपना सहयोग प्रदर्शित कर दिया।

पूज्यश्री तीन सप्ताह राजकोट में रुके। इस अर्से में सात भाइयों ने सपत्नीक ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार किया। इनमें से राजकोट संघ के मंत्री ए० मणिलाल वनमालीशाह ने ५००) रुपया शुभ कार्यों में तथा मेहता वनमाली धरमसी ने १०००) रुपया गुरुकुल को भेंट देने की घोषणा की। सामाजिक रिवाज के अनुसार सातों भाइयों को पोशाक भेंट की गई। श्रीचुन्नीलाल भाई नागजी वोरा की धर्मपत्नी श्रीसांकली बहिन ने सबको चांदी के प्याले भेंट किए।

वैशाख कृष्णा द्वितीया के दिन पूज्यश्री ने सरधार की ओर विहार किया। वहां से विछिया होते हुए बोटाद पधारे। बोटाद में काठियावाड़ जैन गुरुकुल पाठशाला की व्यवस्था के लिए एक मीटिंग हुई, जिसमें काठियावाड़ के मुख्य-मुख्य सभी स्थलों के प्रमुख सज्जन एकत्र हुए। उसी समय लींबड़ी-श्रीसंघ ने पूज्यश्री से लींबड़ी पधारने की प्रार्थना की। किन्तु समयाभाव के कारण

वह स्वीकृत न हो सकी। यहां एक बात रह गई है और वह यह कि पूज्यश्री जब बोटाद पधार रहे थे उस समय सापला—ठाकुर साहब के गद्दी पर विराजने का संस्कार हो रहा था। इस प्रसंग पर बहुत-से ठाकुर साहब वहां उपस्थित हुए थे। जब उन्हें पता चला कि पूज्यश्री उधर होकर पधार रहे हैं तो कई ठाकुर साहब पूज्यश्री की सेवा में उपस्थित हुए और अत्यन्त आग्रह के साथ आपको सापला ले गए। वहां पूज्यश्री का महत्त्वपूर्ण व्याख्यान हुआ। वीरपुर के दरबार भी वहां उपस्थित थे। इन सब नरेशों का भक्तिभाव देखकर पूज्यश्री बहुत प्रभावित हुए।

पूज्यश्री जब चोटीला होते हुए थान पधारे तो थाने के थानेदार ने पत्नीसहित ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया और अनेक त्याग-प्रत्याख्यान हुए। छोटे-छोटे ग्रामों में भी पूज्यश्री के प्रति परम भक्ति थी। यहां बहुत से जागीरदार आपके दर्शनार्थ आए और आपके उपदेश से कइयों ने बीड़ी-शराब तथा पर-स्त्री-गमन का त्याग किया।

इस प्रकार जगह-जगह धर्मोपदेश करते हुए तथा अनेक जनों को सन्मार्ग पर लगाते हुए पूज्यश्री आषाढ़ कृष्णा १४ को मोरबी पधारे। कुछ दिनों तक आप नगर के बाहर विराजमान रहे। आषाढ़ शुक्ला ३ के दिन आपने नगर में प्रवेश किया। मोरबी की जनता ने चातुर्मास के लिए बहुत परिश्रम किया था। अनेक कठिनाइयों के बाद अपने श्रम को सार्थक होते देख वहां की जनता हर्ष-विभोर हो रही थी। राजा और प्रजा में सर्वत्र उत्साह ही उत्साह नजर आता था। अत्यन्त भक्ति, श्रद्धा और सद्भावना के साथ जनता ने पूज्यश्री का स्वागत किया। मोरबी-नरेश भी पधारे बहुत देर तक वार्त्तालाप की।

छयालीसवां चातुर्मास
(सं० १९९५)

श्री श्वे० स्थानकवासी जैन कांफ्रेंस की जन्म-भूमि मोरबी में पूज्यश्री ने सं० १९९५ का चातुर्मास किया। पूज्यश्री दशाश्रीमाली-भोजनशाला के विशाल भवन में ठहरे थे, किन्तु व्याख्यान में इतनी भीड़ इकट्ठी होती थी कि वह भवन भी तंग पड़ता था। अतएव विशेष अवसरों पर अन्य स्थानों में व्याख्यान का आयोजन करना पड़ता था।

पूज्यश्रीके चातुर्मास के संबंध में वहां के नगरशेठ श्रीयुत वीकमचंद अमृतलाल ने समाचार पत्रों में निम्नलिखित विज्ञप्ति प्रकाशित की—

मोरबीनुं आदर्श चातुर्मास

प्रसिद्ध पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराजना काठियावाड़ प्रवासे अनेते श्रीश्रीना समयोचित व्याख्यानोए श्रोताओं पर आदर्श असर करी छे काठियावाड़ी मुनिश्रो माटे मार्गदर्शन, सिंचन करेल छे जेने पोषवा-पालवानुं काम हवे कालजी थी तो ए वी वहेली तके पांगलशे।

धार्मिक, सामाजिक अने व्यावहारिक विटंबनाओनो तेओश्रीए सचोट, अहिंसक उपायो सूचवी श्रद्धा दृढ़ करी छे, बनी शके तेटलो लाभ लुंटी लेवो जोइए, वृद्ध शरीरे पण सिंहनी पेठे गर्जना करता ए आचार्यश्रीनी अमृतवाणी हृदय सोंसरी उतरी जाय छे, दर्शने आववा माटे सवार ने सांजनी गाड़ी अनुकूल छे, रातनी गाड़ीमां मुश्केली रहे छे, मोरबी श्रीसंघे स्वागत समितिओ नीमी छे।

राजकोट की स्पेशियल ट्रेन

ता० ९-८-३८ को राजकोट से लगभग ४०० व्यक्ति स्पेशियल ट्रेन द्वारा पूज्यश्री के दर्शनार्थ आए। मोरबी के प्रमुख श्रावक तथा बोर्डिंग के विद्यार्थी उनके स्वागत के लिए स्टेशन पर उपस्थित थे। सभी आगत और स्वागतार्थ उपस्थित जनसमूह नगरकीर्तन करता हुआ पूज्यश्री की सेवा में उपस्थित हुआ। वह दृश्य कितना सुहावना, कितना भव्य, कितना प्रेरक और मनोहर रहा होगा! इस दृश्य के निर्माता और दर्शक दोनों ही धन्य हैं और इन सबसे बढ़कर धन्य है पूज्यश्री की उज्ज्वल आत्मा, जिसने जनता में एक नवीन स्फूर्ति भर दी!

राजकोट-संघ ने मोरबी-संघ को प्रीतिभोज दिया। ४००० व्यक्ति सम्मिलित हुए।

व्याख्यान में महाराजा और राजकुमार

मोरबी-महाराजा साहब, पूज्यश्री का उपदेश सुनने अकसर आते ही रहते थे। उन्होंने जिस उत्साह के साथ चातुर्मास करवाया था उसी उत्साह के साथ सेवा का भी लाभ ले रहे थे। इस बार वे सापला के ठाकुर साहब और वीरपुर के पाटवी राजकुमार को साथ लाए। मोरबी के पाटवी राजकुमार तथा अन्य राजकुमार व्याख्यान में आते रहते थे। इनके अतिरिक्त राजकीय अतिथि, अधिकारी और अन्य राजवर्गीय सज्जन भी पूज्यश्री के उपदेशों से लाभ उठाते थे। वीरपुर-नरेश तो व्याख्यान सुनने के निमित्त ही आए थे। यह सब दृश्य देखकर जैनधर्म के प्राचीन क्षत्रिय युग की याद आ जाती थी, जब भारतवर्ष के राजा-महाराजा और सम्राट् अनगारोंके चरणों में मस्तक झुकाकर धर्म की विजय-घोषणा करते थे!

जोधपुर, बीकानेर, ब्यावर, अजमेर, राजनांदगांव आदि दूर-दूर के प्रदेशों से भी सैकड़ों दर्शनार्थी आते थे। राजकोट-गुरुकुल के विद्यार्थी भी पूज्यश्री का आशीर्वाद लेने आये थे। संघ की ओर से सब के स्वागत की समुचित व्यवस्था थी। मोरबी की जैन-जैनेतर प्रजा स्वागत में समान रूप से भाग लेती थी। भोजनशाला का भवन व्याख्यान के लिए छोटा पड़ने लगा तो दरबार-गढ़ में व्याख्यान की व्यवस्था की गई। मकान और मोटरों आदि की सुविधाएं राज्य की ओर से प्रस्तुत थीं।

जूए की बन्दी

जन्माष्टमी के अवसर पर बहुत-से मारवाड़ी और गुजराती भाई पूज्यश्री के दर्शनार्थ आए। जन्माष्टमी के दिन पूज्यश्री का व्याख्यान दरबारगढ़ के चौक में हुआ। हिन्दू, मुसलमान, आदि सभी जातियों के लोग विशाल संख्या में उपस्थित थे। मोरबी-नरेश और राज्याधिकारी भी आए थे। पूज्यश्री ने श्रीकृष्ण के चरित पर बड़ा ही ओजस्वी और मार्मिक भाषण दिया। आपने जन्माष्टमी के दिन खेले जाने वाले जूए की असरकारक शब्दों में निन्दा की।

इस व्याख्यान का फल यह हुआ कि मोरबी के नामदार महाराजा साहब ने कानून बना कर जूए को बंद कर दिया। जूए के ठेके से हजारों रुपया वार्षिक की आमदनी रियासत को होती थी। महाराजा साहब ने इस हानि की परवाह न की और प्रजा के नैतिक विकास को ही अधिक मूल्यवान् माना।

डा० प्राणजीवन मेहता का सत्कार

आश्विन कृष्णा ११-१२ को हितेच्छु श्रावक मंडल, रतलाम का सत्तरहवां वार्षिक अधि-

वेशन हुआ ! समाज के प्रमुख व्यक्ति इस अधिवेशन में सम्मिलित हुए। अधिवेशन में दूसरी कार्रवाई के साथ जामनगर में पूज्यश्री की सेवा करने वाले धर्म-प्रेमी डा० प्राणजीवन मेहता को अभिनन्दन पत्र अर्पित किया गया।

डाक्टर साहब ने अभिनन्दन पत्र के उत्तर में कहा—मण्डल ने अभिनन्दन पत्र देने का निश्चय किया और श्रोदुर्लभजी भाई ने मुझे स्वीकार करने के लिए बाध्य किया। किन्तु मेरे खयाल से ऐसा कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं थी। पूज्यश्री के पैर में दर्द हुआ। यह उनके असातावेदनीय का उदय था, लेकिन मुझे तो प्रत्येक दृष्टि से लाभ ही हुआ। पाश्चात्य संस्कारों के दोष से जैनधर्म और साधुओं पर आस्था बहुत कम थी। पूज्यश्री के सम्पर्क में आने पर, सेवा के लाभ के साथ ही मुझे तत्त्व-ज्ञान की खूबियां समझने का अवसर मिला। मैंने जो उपचार किया सो अपना कर्त्तव्य-पालन किया है। इसमें विशेषता कुछ नहीं थी। फिर भी आपने मेरी सेवा की कद्र की, इसके लिए मैं आपका आभार मानता हूं।'

इसके पश्चात् आपने तत्त्व-ज्ञान संबंधी अपना एक लेख पढ़ा जो मननीय और रोचक था।

आश्विन शुक्ला १,२,३ को काठियावाड़ के दशा श्रीमाली भाइयों का जातीय सम्मेलन हुआ। समस्त कठियावाड़ के सैकड़ों प्रतिनिधि उपस्थित हुए। सभी ने पूज्यश्री के दर्शन किये, उपदेश सुना और जाति सुधार का सन्मार्ग पूज्यश्री के संसर्ग से प्राप्त किया।

श्रीफूलचंद्रजी महाराज ने मासखमण तप किया।

मोरवी में भावनगर, बीकानेर तथा बगड़ी के सङ्घ पूज्यश्री से अपने-अपने क्षेत्रों में पधारने की प्रार्थना करने आये।

कार्तिक शुक्ला ४ पूज्यश्री का जन्म दिन था। उस दिन मोरवी के नामदार महाराजा ने अपनी आन्तरिक प्रेरणा से दीन-हीन, गरीब लोगों को भोजन-दान दिया। पशुओं को भी उस दिन विशिष्ट भोजन दिया गया। इस प्रकार महाराजा साहब ने पूज्यश्री के प्रति अपनी आन्तरिक भक्ति का परिचय दिया।

मोरवी-चातुर्मास पूर्ण होने पर पूज्यश्री ने वांकानेर की ओर विहार किया। मोरवी-नरेश तथा हजारों नर-नारियों ने दुःखपूर्ण हृदय से आपको विदाई दी। हजारों आदमी आपको दूर तक पहुँचाने गए। बहुत-से लोग तो सनाला ग्राम तक भी साथ-साथ गए। विदाई का दृश्य अत्यन्त करुणापूर्ण और भावमय था।

बीच के ग्रामों को पवित्र करते हुए आप वांकानेर पधारे। यहाँ राजकोट पधारने की प्रार्थना करने आया। तदनुसार आप राजकोट पधारे।

काठियावाड़ जैन गुरुकुल में

राजकोट श्रीसंघ की प्रार्थना से ता० ४-१२-३८को पूज्यश्री ने अपने चरणकमलोंसे गुरुकुल को पवित्र किया। राजकोट की भावुक जनता विशाल संख्या में उपस्थित थी। शहर से दूर होने पर भी लगभग ८०० नर-नारी गुरुकुल भूमि में उपस्थित थे। सबसे पहले गुरुकुल के एक छात्र ने मधुर कण्ठ से प्रार्थना-गायन किया। इसके बाद गुरुकुल के प्रिंसिपल श्रीअमृतलाल सबचन्द गोपाणी एम. ए. ने प्रासंगिक प्रवचन किया। आपने कहा—

जिस महापुरुष के समयोचित उपदेश से प्रेरित होकर समाज नेताओं ने गुरुकुल जैसा

सर्वोच्च संस्था स्थापित की है, उस महापुरुष के चरणकमलों से हमारी इस संस्था को पवित्र होते देखकर हमें अपूर्व हर्ष हो रहा है। प्रत्येक धर्म ने अपनी संस्कृति, तद्गत मौलिकतत्त्व-ज्ञान और क्रिया-काण्ड को सुरक्षित रखने के अनेक प्रकार से अनेक प्रयत्न किए हैं। अब भी सभी प्रयत्न कर रहे हैं। संस्कृति को जीवित रखने के प्रबल साधनों में साहित्य, संघ और संस्था, इन तीनों का मुख्य स्थान है। प्राचीन समय में नालन्दा विश्व-विद्यालय तथा तक्षशिला विश्व-विद्या-ाय ने अपनी संस्कृति फैलाने में प्रबल सहयोग किया था। ऐतिहासिक सत्य खोजा जाय तो 'संस्था' ाम का अंग उपर्युक्त तीन अंगों में भी विशेष बल वाला है, ऐसा हम कह सकते हैं। क्योंकि इस ं सेवा का आदर्श सुरक्षित रखने के लिए शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास के सुन्दर मन्वय की ओर व्यवहार्य ध्यान देने का पूरा अवकाश है। ऐसी संस्था में से आदर्श से ओत-प्रोत ्क विभूति निकल जाय तो भी कम नहीं है। ऐसी एक ही विभूति गुरुकुल जैसी अनेक आदर्श ंस्थाएं स्थान-स्थान पर स्थापित कर देगी। वह अनेक विभूतियों को उत्पन्न करेगी तथा जगदु-द्धारक, अहिंसा-प्रधान, तथा विश्व-संस्कृति बनने योग्य जैन संस्कृति का साम्राज्य स्थापित कर देगी।

वक्तव्य के बाद विद्वर्य मुनिश्री श्रीमलजी महाराज ब्रह्मचारियों की संस्कृत, अर्धमागधी ाथा धार्मिक विषयों की परीक्षा ली। चार महीने के अल्प समय में गुरुकुल की प्रगति देखकर हर्ष ाकट किया। पूज्यश्री के आदेश से मुनिश्री श्रीमल्लजी महाराज ने प्रसंगोचित प्रवचन करते हुए छात्रों को उपयोगी उपदेश दिया। उस समय गुरुकुल को करीब ४००) रु० भेंट मिला।

दो उल्लेखनीय प्रसंग

राजकोट में यों तो बहुत-से भाई पूज्यश्री के समागम के लिए आते-जाते रहते थे, मगर इनमें दो प्रसंग यहां उल्लेखनीय हैं—

एक दिन अहमदाबाद के करोड़पति-परिवार की सदस्या श्रीमती मृदुला बेन पूज्यश्री की सेवा में उपस्थित हुईं। पूज्यश्री की उदार और प्रभावक वाणी सुनकर उन्होंने कहा—

साधुओं के विषय में मेरा अनुभव बड़ा कटुक है। मेरा खयाल था कि साधु हमारे समाज के कलंक हैं। पर आज पूज्यश्री का उपदेश सुनकर मुझे लगा कि मेरा खयाल भ्रमपूर्ण था। सब धान बाईस पसेरी नहीं होते—सभी साधु एक सरीखे नहीं हैं। मेरा भ्रम दूर करने के लिए मैं पूज्य महाराज की बड़ी आभारी हूं।

एक बोहरा सज्जन थे—गांधीजी के कट्टर भक्त। गांधीजी के प्रति उन्हें प्रगाढ़ श्रद्धा थी। गांधीजी के सिवाय उनकी निगाह में और कोई संत पुरुष था ही नहीं। अचानक वे अपने एक मित्र से मिलने के लिए राजकोट आये। उनके यह मित्र पूज्यश्री के व्याख्यानों का अमृत चख चुके थे। प्रायः प्रतिदिन वे व्याख्यान सुनने आते थे। उन्होंने अपने मेहमान मित्र से पूज्यश्री की प्रशंसा की और व्याख्यान सुनने के लिए कहा।

मगर वह गांधी—अद्वैतवादी थे। कहने लगे—मैं गांधीजी को छोड़ और किसी को साधु ही नहीं समझता और न किसी का उपदेश सुनता हूं। मुझे माफ करो। मैं नहीं चलूंगा।

मेजबान अपने मेहमान का रुख देखकर, उनकी उचित व्यवस्था करके व्याख्यान सुनने चले गये। लौटकर जब घर पहुंचे तो व्याख्यान की अपने मेहमान के सामने तारीफ करने लगे। मगर कट्टर मेहमान का मन आकर्षित नहीं हुआ।

दूसरे दिन भी बहुत कुछ कहने-सुनने पर भी वह बोहरा भाई व्याख्यान सुनने नहीं गया। लेकिन मेजबान से नहीं रहा गया। उसे एक दिन का नागा सहन नहीं हुआ। वह फिर अकेला व्याख्यान सुनने चला गया।

जब वह अकेला घर पर रह गया तो उसने सोचा—मैं थोड़े ही दिनों के लिए अपने मित्र से मिलने आया हूं। मेरा मित्र मुझे छोड़कर व्याख्यान सुनने चला जाता है। वह मुझे छोड़ सकता है मगर व्याख्यान सुनना नहीं छोड़ सकता! ऐसी क्या विशेषता है उस साधु में?

इस प्रकार विचारों की तरंगों में बोहरा भाई डूबता-उतराता था कि उसी समय व्याख्यान सुनकर उसका मित्र लौट आया। आज उसका मित्र और दिनों से अधिक प्रसन्न था। आते ही बोला—भाई, मैंने तुम्हें मनाया था कि चलो व्याख्यान सुनने, मगर तुम नहीं माने। चलते तो आंखें खुल जातीं! कितना सरस और सुन्दर उपदेश था! कल तुम्हें साथ ले चले बिना नहीं रहूंगा।

आखिर तीसरे दिन वह बोहरा सज्जन अपने मित्र के साथ व्याख्यान सुनने को राजी हो गए। पूज्यश्री के उपदेश में पहुंचे। पूज्यश्री का दिल हिला देने वाली मार्मिक वाणी सुनकर गांधी-भक्त बोहरा चकित रह गया। बड़ी उत्कंठा के साथ उसने सम्पूर्ण उपदेश सुना। जब पूज्यश्री का उपदेश समाप्त हो चुका और अन्य श्रोता उठ-उठकर जाने लगे तो वह पूज्यश्री के समीप आया। कहने लगा—महाराज, मैं बड़े घाटे में आ गया! तीन दिन से राजकोट में हूं और आज ही उपदेश सुन पाया। दो दिन मेरे वृथा चले गये। अब इस घाटे की पूर्ति करनी होगी। और वह इस तरह कि आप मेरे साथ भावनगर पधारें। भावनगर की जनता को आपका लाभ दिलवाऊंगा और मैं भी लाभ लूंगा। तब मेरा घाटा पूरा होगा।

पूज्यश्री ने हल्की-सी मुस्कराहट के साथ कहा—'मौका होगा तो देखा जायगा।'

बोहरा—मौका ही मौका है। कल प्रातःकाल की ट्रेन से मैं जा रहा हूं। आप भी साथ ही पधारिये। वहां आपकी समस्त आवश्यक व्यवस्था हो जायगी। किसी किस्म का खयाल मत कीजिए।

पास में खड़े एक श्रावक भाई बीच ही में बोले—महाराज तो ट्रेन में नहीं चलते, पैदल ही भ्रमण करते हैं।

बोहरा भाई इस प्रकार चकित रह गये, मानो किसी ने ठग लिया हो। फिर भी उन्होंने कहा—तो फिर पैदल ही सही। मगर एक बार भावनगर पधारना ही पड़ेगा। आप सरीखे संत बड़े भाग्य से मिलते हैं। मैं अच्छी तकदीर लेकर आया था कि आपके दर्शन हो गए।

पूज्यश्री ने फिर वही उत्तर दिया। बोहरा सज्जन भक्ति से गद्गद् होकर लौट गये।

राजकोट का सत्याग्रह

पूज्यश्री जब राजकोट पधारे तब राजकोट का प्रसिद्ध सत्याग्रह चालू था। प्रजा में असंतोष की ज्वाला धधक रही थी। सैकड़ों प्रजा-सेवक जेल में ठूंसे जा रहे थे और उन्हें नाना प्रकार के कष्ट दिये जा रहे थे। राजा और प्रजा का यह संघर्ष घोर अशान्ति का कारण बना हुआ था।

पूज्यश्री ने उस समय शान्त और त्यागमय जीवन बिताने की प्रेरणा की। साथ ही जब तक सत्याग्रही भाई-बहिन कारावास की यातनाएं भोग रहे हैं तब तक पक्वान्न न खाने, ब्रह्मचर्य

पालने आदि के नियम रखने का अनुरोध किया। जैन और जैनेतर जनता ने आपके उपदेश को आदेश की तरह पालन किया।

पूज्यश्री ने सत्याग्रह के अवसर पर जनता को यह जो उपदेश दिया है, इसे पढ़-सुनकर साधारण बुद्धि वाला कह सकता है कि इन बातों से सत्याग्रह का क्या संबंध है? मगर सूक्ष्म बुद्धि से विचार किया जाय तो इनका भारी महत्त्व मालूम होगा। गांधीजी ने राजनीतिक क्षेत्र में सर्व प्रथम अहिंसा का प्रयोग किया, मगर पूज्यश्री के तो समग्र जीवन की साधना अहिंसा ही थी। उन्होंने अहिंसा की बारीकियों को, अहिंसा के तेज को, अहिंसा की अमोघता को न केवल समझा ही था, वरन् अपने प्रत्येक व्यवहार में उसका अनुसरण किया था। यही कारण है कि वे अहिंसात्मक उपायों द्वारा ही सत्याग्रह में योग देने की प्रेरणा कर सकते थे। उन्होंने तप-त्याग का जो उपदेश दिया है, इससे सत्याग्रह के प्रति सहयोग की भावना और सत्याग्रहियों के साथ सहानुभूति की भावना उत्पन्न होती है। और प्रजा की सहानुभूति ही सत्याग्रही का सर्वोत्तम बल है। इस प्रकार प्रजा के मानस में सत्याग्रह और सत्याग्रहियों के प्रति सहानुभूति उत्पन्न करके पूज्यश्री ने सत्याग्रहियों को बलवान् और सत्याग्रह को प्रभावशाली बनाने का महत्त्वपूर्ण, कौशलपूर्ण, और व्यवहार्य उपाय खोज निकाला है। पूज्यश्री ने यह उपदेश देकर साधारण राज-नीतिज्ञ की बुद्धि से भी परे की राजनीतिपटुता प्रकट की है। यह उनकी प्रतिभाशालिता का प्रमाण है।

सत्याग्रह के विषय में पूज्यश्री की धारणा मनन करने योग्य है। आपके यह शब्द कितने प्रभावशाली हैं:—

'सत्याग्रह के बल की तुलना कोई बल नहीं कर सकता। इस बल के सामने, मनुष्यशक्ति तो क्या, देवशक्ति भी हार मान जाती है। कामदेव श्रावक पर देवता ने अपनी सारी शक्ति का प्रयोग किया, लेकिन कामदेव ने अपनी रक्षा के लिए किसी अन्य शक्ति का आश्रय न लेकर केवल सत्योपार्जित आत्मबल से ही उस देवता की सारी शक्ति को परास्त कर दिया।

प्रहलाद के जीवनका इतिहास भी सत्याग्रह का महत्त्वपूर्ण दृष्टान्त है। प्रह्लाद ने अपने पिता की अनुचित आज्ञा नहीं मानी। इस कारण उस पर कितने ही अत्याचार किये गए, लेकिन अन्त में सत्याग्रह के सामने अत्याचारी पिता को ही परास्त होना पड़ा।

भगवान् महावीर ने सत्याग्रह का प्रयोग पहले अपने ऊपर कर लिया था। इससे वे चण्ड कौशिक ऐसे विषधर सर्प के स्थान पर, लोगों के मना करने पर भी निर्भयतापूर्वक चले गए।'

जिस प्रकार धर्म-सिद्धान्त के लिए मनुष्य को असहयोग करना आवश्यक उसी प्रकार लौकिक नीतिमय व्यवहारों में राज्यशासन की ओर से अन्याय मिलता हो तो ऐसी दशा में राज्य-भक्ति युक्त सविनय असहकार-असहयोग करना प्रजा का मुख्य धर्म है। वह प्रजा नपुंसक है जो चुपचाप अन्याय को सहन कर लेती है और उसके विरुद्ध चूं तक नहीं करती। ऐसी प्रजा अपना ही नाश नहीं करती परन्तु उस राजा के नाश का भी कारण बनती है, जिसकी वह प्रजा है। जिस प्रजा में अन्याय के प्रतीकार का सामर्थ्य नहीं है, उसे कम-से-कम इतना तो प्रकट कर ही देना चाहिए कि अमुक कानून या कार्य हमें हितकर नहीं है और हम उसे नापसंद करते हैं।'

अन्याय के प्रति असहयोग न करने से बड़ा भारी अनर्थ हो जाता है। इस कथन की पुष्टि के लिए महाभारत के युद्ध पर ही दृष्टि डालिए। अगर भीष्म और द्रोण आदि महारथियों ने

कौरवों से असहयोग कर दिया होता तो इतना भीषण रक्तपात न होता और इस देश के अधः-पतन का आरंभ भी न होता। अन्याय से असहयोग न करने के कारण रक्त की नदियाँ बहीं और देश को इतनी भीषण क्षति पहुँची कि सदियाँ व्यतीत हो जाने पर भी वह संभल न सका।'

राजकोट के सत्याग्रह में पूज्यश्री का धर्मार्पित योगदान बहुत सहायक रहा। पूज्यश्री के उपदेश के कारण सर्व साधारण जनता में उनका मान और भी अधिक बढ़ गया।

मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी को राजकोट से विहार करके पूज्यश्री चोटीला आदि स्थानों की जनता को धर्म का अमृतपान कराते हुए माघ कृष्णा १४ को राणपुर पधारे। यहाँ भावनगर, लींबड़ी आदि अनेक संघों ने विनती की किन्तु आपने शीघ्र अहमदाबाद पधारने का विचार प्रकट किया। धुंधुका होते हुए आप सुदामड़ा पधारे। यहाँ दो भाइयों ने ब्रह्मचर्य-व्रत अंगीकार किया। सेजकपुर में आपके उपदेश से श्रावकों का पारस्परिक वैमनस्य हट गया।

पूज्यश्री ने वृद्धावस्था और अस्वस्थता होने पर भी काठियावाड़ में सं० १९९३ में ४१७ मील का और सं० ९४ में ३२८ मील का लंबा प्रवास किया और धर्म की अपूर्व प्रभावना की। तत्पश्चात् आप गुजरात पधारे।

अहमदाबाद में पदार्पण

ता० १७–२–३९ को पूज्यश्री अपनी शिष्य मण्डली के साथ अहमदाबाद पधारने वाले थे। आपके आगमन की सूचना एक पत्रिका द्वारा नगर में फैला दी गई थी। आपके स्वागत के लिए नगर में अपूर्व उत्साह नजर आ रहा था। हजारों नर-नारी प्रातःकाल ही एलिस ब्रिज की ओर चले जा रहे थे। विक्टोरिया गार्डन से जुलूस बनाकर पूज्यश्री को नगर में लाने का निश्चय किया गया था। अतएव सब को विक्टोरिया गार्डन के पास रोक लिया गया। कुछ आगेवान व्यक्ति मोटरों से प्रीतमनगर, पालडी और सरखेज तक पहुंच गए।

लगभग साढ़े आठ बजे पूज्यश्री विक्टोरिया गार्डन के पास पधारे। पूज्यश्री के जयनाद से आकाश गूंज उठा और जनता जुलूस के रूप में परिणत हो गई थी। सबसे आगे राष्ट्रीय ध्वजा लिए स्थानकवासी जैन बोर्डिंग के विद्यार्थी चल रहे थे। उनके पीछे छोटे-छोटे बालकों का समूह था। बालकों के हाथ में आदर्श वाक्य सुशोभित हो रहे थे। भगवान् महावीर तथा पूज्यश्री की जयध्वनि से बीच-बीच में दिशाएं गूंज उठती थीं। उनके पीछे पूज्यश्री अन्य मुनियों के साथ अपनी गंभीर एवं तेजोमय मुखमुद्रा के साथ चल रहे थे। पीछे श्रीसंघ के आगेवान नेता थे। सब के पीछे महिलामण्डल था। महिलाएं मांगलिक गीत गाती हुई उत्साह के साथ चल रही थीं।

जुलूस नगर के प्रधान भागों से होता हुआ घीकांटा रोड पर आ पहुँचा। फिर दिल्ली दरवाजे से निकल कर माधवपुरा में समाप्त हुआ। वहीं पूज्यश्री ठहरने वाले थे। समस्त नर-नारियों के बैठ जाने पर पूज्यश्री ने मंगलप्रार्थना की। और फिर पन्द्रह मिनिट भाषण दिया। अन्त में सब लोग विदा हुए। दूसरे सम्प्रदाय के संतों और सतियों ने भी आपके स्वागत में स्नेहपूर्वक भाग लिया था। दरियापुरी सम्प्रदाय के संतों के साथ, जो वहाँ मौजूद थे, पारस्परिक वात्सल्य रहा।

पूज्यश्री माधवपुरा में ठहरे थे किन्तु व्याख्यान देने के लिए जैन बोर्डिंग के समीप, एम० वाडीलाल के नवीन विशाल भवन में पधारते थे। प्रथम तो अहमदाबाद नगर ही काफी बड़ा है

और फिर वहां पूज्यश्री जैसे महान् प्रभावक महापुरुष का पधारना हुआ। ऐसी स्थिति में भीड़ का क्या ठिकाना था! मूर्तिपूजक भाई तथा जैनेतर बन्धु भी बड़ी संख्या में उपस्थित होते थे। व्याख्यान के अंत में लोग तमाखू, बीड़ी, चाय आदि का त्याग करते थे। बाहर के दर्शनार्थियों की भीड़ रहती थी। फिर भी अहमदाबाद श्रीसंघ उत्साह के साथ सबका स्वागत करता था।

विविध विषयों पर पूज्यश्री का प्रवचन होता था। आपके प्रवचन श्रोताओं के अन्तःकरण पर गहरी छाप लगा देते थे। अपूर्व भक्ति और अद्भुत श्रद्धा का वातावरण था।

अहमदाबाद में पूज्यश्री का चातुर्मास कराने के लिए वहां की जनता बहुत अर्से से प्रयत्नशील और उत्सुक थी। शेष काल के लिए पधारने पर वहां के श्रावकों ने फिर प्रार्थना की। पूज्यश्री ने फरमाया—'सम्प्रदाय के नियमानुसार द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव अनुकूल होगा तो इस वर्ष चातुर्मास अहमदाबाद में करने का भाव है।

पूज्यश्री की इस स्वीकृति से जनता के हर्ष का पार न रहा। पूज्यश्री विहार करके, नगर के बाहर एलिसब्रिज में श्रीत्रीमकलाल वकील की कोठी में विराजे।

फिर विहार

एलिसब्रिज से पूज्यश्री ने ठा० ६ से विहार किया। अस्वास्थ्य के कारण शेष संत अहमदाबाद में ही रह गए। अहमदाबाद से आप अनुक्रम से आकर बड़ौदा पधारे। मारवाड़ से आकर दो संतों के मिल जाने के कारण आप ८ ठाणा हो गए।

पूज्यश्री पहली बार ही बड़ौदा पधारे थे। यहां स्थानकवासी जैनों की संख्या भी बहुत अधिक नहीं है। किन्तु आपकी व्यापक कीर्ति और व्याख्यानशैली से प्रभावित होकर श्रोताओं की विशाल संख्या इकट्ठी हो जाती थी। वहां की विद्वान् जनता पर भी पूज्यश्री का अच्छा प्रभाव पड़ा। यहां आप करीब १५-२० दिन ठहर कर क्रमशः विचरते हुए वीसलपुर पधारे। स्थान छोटा था और इस कारण अधिक धूमधाम नहीं रहती थी। पूज्यश्री को यह स्थान शान्तिकारक प्रतीत हुआ। आप यहां आठ दिन ठहरे। गांव वालों के मानों भाग्य खुल गये! उन्होंने अतीव विनम्रता के साथ पूज्यश्री की सेवा की। वीसलपुर से मौरैया साणन्द होते हुए फिर एलिसब्रिज पधारे और श्रीत्रीकमलाल वकील की कोठी में विराजमान हुए। आषाढ़ शुक्ला सप्तमी को नगर में प्रवेश किया।

२५ मई से घोर तपस्वी श्रीकेसरीमलजी महाराज ने तपस्या आरंभ कर दी। पूज्यश्री ने भी पांच उपवास किए। आषाढ़ शु० ६ को आपका पारणा हुआ।

सैंतालीसवां चातुर्मास (१६६६)

संवत् १६६६ का चातुर्मास पूज्यश्री ने ठा० १० से अहमदाबाद में किया। अहमदाबाद व्यावहारिक दृष्टि से व्यापार का बड़ा केन्द्र है। वस्त्र व्यवसाय का तो भारत में वह सर्वप्रधान केन्द्र है। मगर उसका विशिष्ट महत्त्व तो इस बात में है कि वह अनेक महापुरुषों की तपोभूमि और कर्मभूमि है।

अहमदाबाद में पूज्यश्री कुछ अस्वस्थ रहने लगे। बीच-बीच में उपवास, बेला आदि तप करने से कुछ लाभ हुआ और तपस्या के बल पर आप अपने स्वास्थ्य को टिकाए रहे, फिर भी

सुस्ती और कमजोरी बढ़ती गई। इस कारण वैद्य की सलाह से आपने व्याख्यान देना बंद कर दिया। विश्रान्ति लेना आवश्यक हो गया।

तपस्वी मुनि श्रीकेसरीमलजी महाराज ने ६७ उपवास गर्म जल के आधार पर किए। श्रावणी पूर्णिमा के दिन आपने पारणा किया। पक्खी के दिन आपकी तपस्या का पूर था। उस दिन के व्याख्यान में अढ़ाई हजार से भी अधिक जनता थी। अनेक व्रत-नियम लिए गये और करीब दो हजार रुपये जीव-दया के निमित्त इकट्ठे हुए। बाहर से बहुत से दर्शनार्थी आये।

कुछ दिनों बाद औषधोपचार से पूज्यश्री का स्वास्थ्य सुधर गया और आप फिर व्याख्यान फरमाने लगे। पर्युषण से पहले ही आपके व्याख्यान आरंभ हो गए थे, अतः अत्यन्त उत्साह और आनंद के साथ पर्युषण पर्व व्यतीत हुआ। संवत्सरी के दिन आपने लगातार दो घंटा तक व्याख्यान दिया। हजारों नर-नारी उपस्थित थे। बहुत लोगों ने तप और धर्मध्यान किया। पूज्यश्री के निर्देशानुसार सभी श्रावकों ने कांफ्रेंस के नियम का पालन करते हुए एक प्रतिक्रमण तथा २० लोगस्स का ध्यान किया। प्रतिक्रमण कराने में 'स्थानकवासी जैन' के सम्पादक श्रीजीवनलाल भाई संघवी ने मुख्य भाग लिया।

कुछ दिनों बाद पूज्यश्री की दाहिनी जांघ में गांठ हो गई और आप फिर अस्वस्थ हो गए। व्याख्यान बंद कर देना पड़ा किन्तु स्वस्थ होने पर फिर व्याख्यान आरंभ हो गया।

पूज्यश्री की जन्म-भूमि थांदला से शाहजी श्रीजोरावरसिंहजी दर्शनार्थ उपस्थित हुए। २१ सितम्बर को उन्होंने सपत्नीक ब्रह्मचर्य-व्रत अंगीकार किया और चातुर्मास समाप्त होने के पश्चात् थांदला की ओर पधारने की प्रार्थना की। इससे पहले भी थांदला के भाइयों ने वहां पधारने की प्रार्थना की थी। रतलाम-चातुर्मास में पूज्यश्री ने आश्वासन भी दिया था कि रतलाम से सीधा काठियावाड़ जाना होगा तो थांदला फरसने का भाव है। किन्तु उस समय आप मारवाड़ की ओर पधार गए और वहीं से सीधे काठियावाड़ की ओर। आपको थांदला गये ३२ वर्ष हो चुके थे। यद्यपि जन्मभूमि होने कारण थांदला की याद आपको बहुत प्रिय थी, तथापि अस्वास्थ्य के कारण आप वहां पहुंचने का वचन न दे सके। जोधपुर से करीब १५०-२०० श्रावक-श्राविकाएं आपके दर्शनार्थ आए।

आश्विन कृष्णा १२ को गांधी जयन्ती के दिन पूज्यश्री ने चर्बी लगे वस्त्रों के त्याग, वर्गगत ऊंच-नीच के भेद-भाव का त्याग, नौकरों के साथ सद्व्यवहार आदि विषयों पर विवेचन करते हुए अहिंसा का सच्चा स्वरूप बतलाया और उसके पालन की प्रेरणा की।

कार्तिक वदि में पूज्यश्री फिर अस्वस्थ हो गए। जुकाम, खांसी, बुखार तथा गले में दर्द आरंभ हो गया। बहुत दिनों से जंघा के पिछले भाग में एक मसा था। उसमें से खून आने लगा। दुर्बलता बढ़ने लगी। औषध—सेवन से कुछ उपद्रव शान्त तो हुए किन्तु पहले जैसी अवस्था नहीं आई।

बीच-बीच की अस्वस्थता ने यह चौमासा कुछ फीका-सा कर दिया। पूज्यश्री में अब पहले जैसा उत्साह, वह गंभीर गर्जना और वह विशिष्ट शक्ति न रह गई। प्रतीत होने लगा कि अब पूज्यश्री के वह दिन समीप आ रहे हैं, जब विश्राम और स्थिरवास आवश्यक हो जाता है।

घाटकोपर श्रीसंघ ने पूज्यश्री को ठाणापति के रूप में घाटकोपर में विराजने के लिए

अहमदाबाद आकर प्रार्थना की। आगत दर्शनार्थी भाइयों के स्वागत के लिए ८० हजार के वचन भी वहाँ मिल चुके थे किन्तु जामनगर चातुर्मास के समय पूज्यश्री बीकानेर-श्रीसङ्घ को मारवाड़ की तरफ विहार करने का आश्वासन दे चुके थे। तदनुसार चौमासा पूर्ण होते ही मारवाड़ की ओर आने का विचार था। मालवा की धर्मप्रेमी जनता को भी इससे बड़ी निराशा हुई। उनकी अभिलाषा थी कि पूज्यश्री मालवा-मेवाड़ होते हुए मारवाड़ पधारें। रतलाम, खाचरौद और थांदला आदि मालवा के श्रीसङ्घों ने बहुत आग्रह किया किन्तु पूज्यश्री इतना चक्कर काटकर मारवाड़ तक पहुँचने में अशक्त प्रतीत होते थे। रतलाम-श्रीसङ्घ ने चाहा कि अगर आप मारवाड़ न पधार सकें तो रतलाम में ही स्थिरवास करें। वहाँ सब प्रकार उन्हें शान्ति मिलेगी। मगर पूज्यश्री ने उस समय कोई निश्चित उत्तर नहीं दिया।

कार्तिक शुक्ला ४ को पूज्यश्री का जन्म-दिन था। अशक्ति के कारण उस दिन भी आप व्याख्यान में नहीं पधार सके। पंडित मुनिश्री श्रीमल्लजी महाराज ने पूज्यश्री के जीवन पर बहुत सुन्दर ढंग से प्रकाश डाला। अहमदाबाद-संघ के मंत्रीजी ने उस दिन जीव-दया के लिए ६०००) रु० एकत्रित होने की घोषणा की।

अहमदाबाद से मारवाड़

मगसिर वदी १ को पूज्यश्री ने अहमदाबाद से विहार किया। हजारों नर-नारी आपको श्रद्धा के साथ विदाई देने आए। माधवपुरा से विहार करके आप जमालपुर दरवाजे के बाहर पधारे। यहाँ से एलिसब्रिज होते हुए ता० २-१२-३९ को ८ ठाणों से वीसलपुर पधारे।

वीसलपुर का जल-वायु अनुकूल होने के कारण वहाँ आपका स्वास्थ्य कुछ ठीक रहा। सङ्घ ने बहुत भक्ति की। २० दिन वहाँ विराज कर ता० २२ दिसम्बर को कलोल ओर विहार किया। १५ दिन कलोल में विराजमान रहे और फिर महसाणाकी ओर पधारे। तदनन्तर सिद्पुर, ऊम्भा और फिर पालनपुर पधार गए।

शतावधानी पं०र० मुनि श्रीरत्नचन्द्रजी महाराज पूज्यश्री से मिलना चाहते थे और मारवाड़ से उग्र विहार करके पधार रहे थे। उनकी प्रतीक्षा में पूज्यश्री पालनपुर विराजे रहे। ता० १०-२-४० को शतावधानीजी पालनपुर पधारे। दोनों महापुरुष बड़े प्रेम और वात्सल्य के साथ मिले। शतावधानीजी ने सम्मेलन-समिति के विषय में बातचीत की। उस समय राजकोट, अहमदाबाद, रतलाम, उदयपुर तथा अजमेर आदि अनेक स्थानों के भाई उपस्थित थे। घाटकोपर में होने वाली साधु-सम्मेलन-समिति के सदस्य भी मौजूद थे। शतावधानीजी ने पूज्यश्री से उनकी बनाई हुई 'वर्द्धमानसंघ' की योजना ली और उसके आधार पर घाटकोपर में एक नई योजना बनाई। इस प्रकार विचार-विनिमय के बाद ता० १८-२-४० को शतावधानीजी ने सिद्धपुर की ओर विहार किया। ता० २३-२-४० को पूज्यश्री मारवाड़ की ओर पधारे।

अनेक स्थानों को पावन करते हुए पूज्यश्री फाल्गुन शुक्ला १ को सादड़ी (मारवाड़) पधार गए। फाल्गुन शुक्ला १२ को युवाचार्यश्री भी पूज्यश्री की सेवा में सादड़ी पधारे। धर्म का ठाठ लगा रहा।

सादड़ी से विहार हुआ और चैत्र कृ० ७ को आप ठा० ६ से राणावास पधारे। दो दिन यहाँ विराजे। देवगढ़ से १५० श्रावक-श्राविकाएँ आपके दर्शनार्थ उपस्थित हुए। एक श्रावक ने

सपत्नीक ब्रह्मचर्य-व्रत अंगीकार किया। यहां से विहार करके सिरियारी, सारण होते हुए पूज्यश्री बगड़ी पधार गए। युवाचार्यश्री पहले दिन प्रातःकाल ही बगड़ी पधार चुके थे।

बगड़ी के सुप्रसिद्ध सेठ लक्ष्मीचंदजी धाड़ीवाल, उनकी धर्मपत्नी सौ० श्रीमती लक्ष्मीबाई तथा समस्त श्रीसङ्घ की उत्कट अभिलाषा थी कि पूज्यश्री का एक चौमासा बगड़ी में होना चाहिए। कई वार प्रार्थना की गई थी। पूज्यश्री ने मारवाड़ की ओर पधारने पर बगड़ी फरसने का आश्वासन भी दिया था। तदनुसार आप बगड़ी पधारे।

बगड़ी पधारने पर श्रीसङ्घ ने और वहाँ के कुंवर साहब ने चातुर्मास के लिए प्रार्थना की। पूज्यश्री ने अत्यन्त आग्रह देख अपनी मर्यादा के अनुसार चातुर्मास करने की स्वीकृति दे दी।

ब्यावर में

पूज्यश्री जब सादड़ी विराजमान थे, ब्यावर के कई श्रावकों ने पूज्यश्री की सेवा में उपस्थित होकर ब्यावर पधारने की आग्रहभरी प्रार्थना की थी। ब्यावर में मण्डल का अधिवेशन होने वाला था और साम्प्रदायिक विषयों पर अन्य मुनियों के साथ विचार-विनिमय भी करना था। अतः पूज्यश्री ने ब्यावर पधारने की स्वीकृति दे दी थी। तदनुसार ता० १२-४-४० को आप १७ ठाणों से ब्यावर पधारे। युवाचार्यश्री साथ ही थे। लगभग २००० नर-नारियों ने दूर तक सामने जाकर पूज्यश्री का हार्दिक स्वागत किया। पूज्यश्री ने जय-घोषों के साथ ब्यावर में प्रवेश किया।

पूज्यश्री के पधारने से आसपास विचरने वाले संत भी ब्यावर पधार गए। २६ साधु एकत्रित हो गए। ७३ सतियां भी वहां पधार गईं। इनके अतिरिक्त श्रीनन्दकुंवरजी महाराज तथा पूज्यश्री हस्तीमलजी महाराज के सम्प्रदाय की सतियां भी वहीं विराजमान थीं।

इतने संतों और महासतियों के एकत्र दर्शन करने के निमित्त बाहर की जनता का आना स्वाभाविक ही था। तिस पर पूज्यश्री लम्बे अर्से बाद गुजरात-काठियावाड़ की तरफ से पधारे थे और इस प्रांत की जनता आपके दर्शनों की प्यासी थी। सैकड़ों भाई बाहर से आए। बीकानेर और भीनासर के भक्त दर्शनार्थी अधिक संख्या में थे। उस समय ब्यावर का क्या कहना! वह एक तीर्थ-धाम-सा प्रतीत होता था। बड़ी उमंग, असीम उत्साह और उत्कृष्ट धर्मप्रेम देखकर हृदय प्रफुल्लित हो उठता था। अब की बार विशेषता यह थी कि सभी सम्प्रदायों के श्रावक समान भाव से व्याख्यान में आते थे। झगड़े की झोंपड़ी ने शान्ति-कुटीर का रूप धारण कर लिया था। करीब ४ हजार जनता व्याख्यान में उपस्थित होती थी।

युवाचार्यश्री ही प्रायः व्याख्यान फ़रमाते थे और कभी-कभी पंडित—मुनिश्री श्रीमल्लजी महाराज भी। पूज्यश्री के मुखारविंद से निकलने वाली वाणी सुननेकी लोगों की उत्कट अभिलाषा थी। उसके बिना लोगों के हृदय में एक प्रकार की असंतुष्टि-सी रहती थी। किन्तु कमजोरी के कारण पूज्यश्री व्याख्यान न फरमा सके। महावीर जयन्ती के दिन अत्यन्त आग्रह होने से पूज्यश्री ने व्याख्यान आरंभ किया किन्तु आप प्रार्थना भी पूरी न कर सके और व्याख्यान स्थगित करना पड़ा।

मुनिश्री श्रीमल्लजी महाराज के व्याख्यानों से ब्यावर का युवक-समाज बहुत प्रभावित हुआ। आपका व्याख्यान सामयिक और सरस होता था। निरन्तर पूज्यश्री की सेवा में रहने से उनके विचारों में पूज्यश्री के विचारों की छाप दिखाई देने लगी थी। ता० १४ को जनता के

आग्रह से आपने व्याख्यान फरमाया। श्रोता बहुत प्रभावित हुए। दूसरे दिन व्याख्यान का स्थान खचाखच भर गया। आपने सादगी, देशभक्ति, धर्मप्रेम आदि पर सुन्दर प्रकाश डाला। नवयुवक-समाज आपके व्याख्यानों के लिए उत्कंठित रहने लगा।

अजमेर के प्रसिद्ध सेठ गाढ़मलजी लोढ़ा ने ब्यावर आकर पूज्यश्री से अजमेर पधारने की आग्रहपूर्ण प्रार्थना की। पूज्यश्री, युवाचार्यश्री के साथ ता० ९-५-४० को अजमेर पधारे। आपके पधारने से अजमेर में काफी धर्मजागृति हुई। ता० १० को अक्षय-तृतीया के दिन, युवाचार्यश्री ने भगवान् ऋषभदेव के पारणा का सरस वर्णन करते हुए भगवान् के जीवन पर प्रभावक प्रकाश डाला। ता० ११-५-४० को युवाचार्यश्री ने वृद्ध-विवाह की हानियां बतलाते हुए हृदयस्पर्शी व्याख्यान फरमाया। बहुत से भाइयों ने ४० वर्ष से अधिक उम्र वाले की शादी में सम्मिलित न होने और बाइयों ने गंदे गीत न गाने की प्रतिज्ञा की। पूज्यश्री शेष काल अजमेर विराजे। उदयपुर, बीकानेर, टोंक, ब्यावर आदि नगरों के बहुत-से दर्शनार्थी भाई पूज्यश्री की सेवा में आए।

ता० १०-६-४० को अजमेर से विहार करके ब्यावर और फिर नीमाज पधारे। यहां लोगों में पार्टी-बन्दी हो रही थी। पूज्यश्री के उपदेश से वैमनस्य हट गया और प्रेम की प्रतिष्ठा हुई। श्रीचांदमलजी फूलपगर ने सपत्नीक ब्रह्मचर्य-व्रत धारण किया। यहां से विहार कर आप आषाढ़ शु० १ ता० ५-७-४० को ठा० ७ से बगड़ी पधारे। श्रीसंघ ने अत्यन्त समारोह के साथ स्वागत किया और अपनी उत्कृष्ट भक्तिभावना प्रकट की।

अड़तालीसवां चातुर्मास (सं १९९७)

वि० सं० १९९७ का चातुर्मास पूज्यश्री ने ठा० ८ से बगड़ी में किया। यहां आपका स्वास्थ्य कुछ सुधर गया। कभी-कभी व्याख्यान भी फर्माने लगे। नित्य का व्याख्यान मुनिश्री श्रीमलजी महाराज फर्माते थे।

प्रवर्त्तिनी महासती श्रीकेसरकुंवरजी महाराज ने ठा० १० से तथा प्र० श्रीआनन्दकुंवरजी महाराज के सम्प्रदाय की महासती कालीजी महाराज ने भी ठा० ४ से बगड़ी में चातुर्मास किया था। मुनि श्रीसूरजमलजी महाराज ने एकान्तर तप किया और महासती श्रीकालीजी ने १३ का थोक किया। पूज्यश्री के उपदेश और ब्यावर के खींवराजजी छाजेड़ के प्रयत्न से यहां के कसाई कासिमखां ने जीव-हिंसा का त्याग कर दिया। श्रावण और भाद्रपद महीनों में खूब तपस्या हुई। एक बाई ने १५ का थोक किया श्रीलालचन्दजी देवड़ा ने परिपूर्ण पौषध के साथ अठाई की। एक ३१ वर्ष के जवान मोची भाई ने सपत्नीक ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार किया और श्रद्धा ग्रहण की। १० और ५ की तपस्या तो बहुतों ने की। काफी तपस्या हुई। अठाई, बेला, तेला, पंचरंगिया थोक आदि भाइयों और बहिनों ने करके अपने कर्मों की निर्जरा की। खूब धर्मध्यान हुआ। पूज्यश्री का स्वास्थ्य साधारण तौर से ठीक रहा। पर्युषण के दिनों में आधा घंटा तक प्रवचन करते रहे। चातुर्मास के अंत में चार सज्जनों ने सपत्नीक ब्रह्मचर्य-व्रत अंगीकार किया।

कार्तिक शुक्ला चतुर्थी के दिन यहां समारोह और उत्साह के साथ श्रीजवाहर-जयन्ती मनाई गई। पं० र० मुनिश्री श्रीमलजी महाराज ने पूज्यश्री के प्रभावक चरित्र पर प्रकाश डाला और आपकी गुणगाथा गाई। अन्य भाइयों ने भी पूज्यश्री को श्रद्धांजलि अर्पित की। यहां के उत्साही भाइयों ने इस उपलक्ष्य में 'जवाहर-ज्योति' (हिन्दी) प्रकाशित करने का निश्चय किया।

बाद में यह महत्त्वपूर्ण पुस्तक प्रकाशित हो चुकी है।

बगड़ी का चातुर्मास समाप्त होने पर पूज्यश्री ने विहार किया। एक सप्ताह सेवाज श्रौ- १०-१२ दिन सोजतरोड ठहर कर सोजत सिटी पधार गए। यहां अन्य संतों के पधार जाने कुल संत ठा० १७ हो गए।

जब पूज्यश्री चौमासे में बगड़ी विराजते थे, उन्हीं दिनों मोरवी की ओर भयंकर अक पड़ा था। इस अकाल के समय मोरवी-नरेश ने किसानों को बैल आदि देकर तथा कुंए खुदवा सराहनीय कार्य किया। हजारों—मनुष्यों को मरने से बचा लिया। मोरवी-नरेश ने श्रीविनय भाई जौहरी के साथ संदेश भेजा—यह सब पूज्यश्री का ही प्रताप है कि मुझमें दुखियों के प्र दया-भाव् उत्पन्न हुआ है!

सौ० सेठानी लक्ष्मीबाईजी

बगड़ी-चातुर्मास के लिए वहां के संघ की प्रार्थना तो थी ही, मगर वहां के अग्रग श्रावक सेठ लक्ष्मीचंदजी धारीवाल का विशेष आग्रह था और कहना चाहिए कि सेठ साहब अपेक्षा भी उनकी धर्मशीला और पतिपरायणा धर्मपत्नी श्रीमती लक्ष्मीबाई का और भी अधि आग्रह था।

सेठानी लक्ष्मीबाईजी पहले तेरापंथी सम्प्रदाय की अनुयायिनी थीं। एक बार तेरहपं पूज्यश्री कालूरामजी स्वामी बगड़ी में आये। सेठानीजी पढ़ी-लिखी और समझदार महिला आपने कालूरामजी स्वामी से अनेक प्रश्न किये, जिनमें एक प्रश्न यह भी था कि—अगर दुराचारी पुरुष किसी शीलवती महिला का शील भंग करके अपनी पाशविक वृत्ति को तृप्त व चाहता है और वह महिला शील की रक्षा के लिए पास के लोगों से सहायता की याचना व है। कहती है—'भाइयो! तुम मेरे भाई और पिता के तुल्य हो। मेरे शील की रक्षा करो' चारी पुरुष समझाने-बुझाने से नहीं मानता। ऐसी स्थिति में अगर कोई दयालु धर्मप्रेमं धक्का देकर अलग कर देता है तो उस शील के रक्षक पुरुष को धर्म होगा या पाप लगेगा

महिलाओं के जीवन से संबंध रखने के कारण यह प्रश्न बहुत महत्त्वपूर्ण था और व विवेकवती महिला इसका समाधान चाहे बिना संतुष्ट नहीं हो सकती। प्रश्न के उत्तर में कालू स्वामी बोले—'दुराचारी पुरुष को अलग हटा देने वाले को भोगान्तराय कर्म लगता

सेठानीजी ने कहा—महिला शीलवती है। उसे भोग करने की लेश-मात्र भी नहीं है। दुराचारी पुरुष बलात्कार करने की चेष्टा कर रहा है। ऐसी स्थिति में शील की सहायता देने वाला भोगान्तराय कर्म का बंध कैसे करेगा?

कालूरामजी ने कहा—महिला की इच्छा नहीं है तो न सही, पुरुष की तो इच्छा

जब यह प्रश्नोत्तर हो रहे थे तो करीब १००-१२० साधु वहां एकत्र हो गए। ने कहा—जिस मत में शील की रक्षा करना भी पाप बतलाया जाता है, वह मत व महिला समाज के लिए तो ग्राह्य नहीं हो सकता।' इतना कहकर वे वहां से चली आईं से उन्होंने तेरापंथ त्याग दिया।

श्रीमती लक्ष्मीबाई विवेकशीला और धर्मनिष्ठा हैं। समाज में ऐसी महिलाओं आवश्यकता है। इस चातुर्मास में आपने बड़े ही उत्साह से धर्म-सेवन किया।

चौथा अध्याय

जीवन की संध्या

काठियावाड़-प्रवास के पश्चात् ही पूज्यश्री के जीवन की संध्या का आरंभ होता है। दीक्षा लेने के कुछ ही दिनों बाद आप सूर्य के समान चमकने लगे। दक्षिण, मारवाड़, मेवाड़, मालवा, पूर्वीय पंजाब तथा देहली प्रान्त को आपने अपनी प्रकृष्ट प्रतिभा से प्रभावित किया। थली के रज-कणों पर भी आपने अपनी अमर छाप लगा दी। रेत के नीरस टीलों को दान-दया के अमृत-जल के सींच डाला। रेगिस्तान को हरे-भरे उद्यान के रूप में परिणत कर दिया।

काठियावाड़ पधार कर पूज्यश्री ने जैनधर्म का जो गौरव बढ़ाया वह न केवल स्थानक-वासी इतिहास में, बल्कि जैन समाज के इतिहास में भी अमर रहेगा। मंत्र-तंत्र तथा ऐसी ही अन्य कार्रवाइयों से दूर रहकर, सिर्फ शुद्ध आध्यात्मिकता और वाग्वैभव के द्वारा नरेशों के हृदय में धर्म का बीज बोने वाले महानुभाव विरले ही हुए हैं। समूचे धार्मिक इतिहास पर दृष्टिनिपात किया जाय तो भी ऐसे महात्मा उंगलियों पर गिनने योग्य ही मिलेंगे। पूज्यश्री ऐसे ही महान् पुरुषों में से एक थे।

राजा, रंक, विद्वान्; साधारण गृहस्थ, वैज्ञानिक और अध्यात्मवादी, आधुनिक शिक्षा-संस्कार से संस्कृत और रूढ़िप्रिय वृद्ध, सभी आपके उज्ज्वल और तेजोमय व्यक्तित्व से प्रभावित थे।

खादी, मादक-द्रव्य-निषेध, अस्पृश्यता निवारण, गो-रक्षा, कुरीति-निवारण आदि विषयों पर भी आपने धार्मिक दृष्टिकोण से सुन्दर-से-सुन्दर और प्रभावशाली-से-प्रभावशाली अनेक प्रवचन किये और धार्मिकता के साथ उनका समन्वय किया। यह देखकर उनकी सिद्धान्त-ज्ञान-कुशलता का पता चलता है और साथ ही उनकी दूरदर्शिता और व्यवहार पटुता की प्रतीति हुए बिना नहीं रहती।

जो लोग साम्प्रदायिकता को देश का अभिशाप समझते हैं, उन्हें पूज्यश्री ने अपने जीवन-व्यवहार से और अपने प्रवचनों से करारा उत्तर दिया है। एक रूढ़ि चुस्त सम्प्रदाय का आचार्य होने पर भी इतने उदार विचार रखने वाला महात्मा शायद ही दूसरा कहीं मिल सकता है। पूज्यश्री की साम्प्रदायिकता विशालता की विरोधिनी नहीं थी। उन्होंने अपने जीवन व्यवहार द्वारा यह प्रकट कर दिया था कि कोई भी व्यक्ति सम्प्रदाय विशेष के प्रति पूरी तरह वफादार रहते हुए भी विश्व-हित और विश्व-प्रेम की ओर किस प्रकार अग्रसर हो सकता है! उनके अबतक के प्रवचनों का बारीक निगाह से और विवेचनात्मक बुद्धि से अध्ययन करने पर यह बात स्पष्ट प्रतीत होने लगती है।

इन सब कारणों से पूज्यश्री अपने जीवन को सफल बनाने में तो समर्थ हुए ही, साथ ई अनगिनते लोगों को भी सुमार्ग सुझा सके। काठियावाड़ के नरेशों के हृदय में भी धर्म की महिम अंकित करने में वे समर्थ हुए। मगर अत्यन्त विषाद के साथ लिखना पड़ता है कि इस समः पूज्यश्री का शरीर शनैः शनैः क्षीण होने लग गया था।

जामनगर की बीमारी के बाद पूज्यश्री उत्तरोत्तर अशक्त होते गए। मोरवी में भी कई बा व्याख्यान बंद करना पड़ा। अहमदाबाद की जनता को पूज्यश्री से तथा पूज्यश्री को अहमदाबा की जनता से बहुत कुछ आशाएं थीं। किन्तु अहमदाबाद आने पर अनेक शारीरिक उपद्रव उ खड़े हुए। बीमारी ने घर दबाया।

यों तो साधुओं का जीवन संयममय ही होता है किन्तु पूज्यश्री अपने भोजन-पान में बेह संयमी थे। जलगांव में हाथ के आपरेशन के बाद आपने अन्न का सेवन लगभग छोड़ दिया था प्रायः दूध और शाक पर ही रहते थे। जामनगर के बाद वह परहेज और बढ़ गया। अपने परहे के कारण ही आप अहमदाबाद में अपना स्वास्थ्य संभाल सके।

रोगों के साथ वृद्धावस्था अथवा वृद्धावस्था के साथ रोग प्रबल वेग से आक्रमण कर लगे थे। पूज्यश्री अपने जीवन के तिरेसठ वर्ष व्यतीत कर चुके थे। जनता जान गई थी कि आ अधिक विहार नहीं कर सकेंगे।

बगड़ी छोटा गाँव है। यद्यपि वहाँ स्थानकवासी सम्प्रदाय की जनसंख्या काफी और गांव के लिहाज़ से सम्पत्तिशाली लोग भी बहुत बड़ी संख्या में हैं, तथापि जनसंख्य की दृष्टि से बगड़ी छोटा गाँव है। पूज्यश्री के यौवन-काल के लिए स्थान इतना उपयुक्त न था वहाँ आपकी शक्तियों का पूरी तरह उपयोग नहीं हो सकता था। मगर अब ऐसा ही स्थान उप युक्त था जहाँ अधिक भीड़भड़क्का न हो, जल-वायु अच्छा हो और शान्तिपूर्वक समय विताया ज सके। इन दृष्टियों से बगड़ी स्थान उपयुक्त रहा।

बीकानेर की ओर

पूज्यश्री के लिए अब स्थिरवास का समय आ गया था। इसके लिए भीनासर, बीकाने अजमेर, ब्यावर, रतलाम, उदयपुर और जलगांव आदि से बहुत आग्रह था। मगर भीनास बीकानेर की जनता चिरकाल से प्रार्थना कर रही थी। भीनासर-बीकानेर का अहोभाग्य था कि पूज्यश्री ने उनकी प्रार्थना स्वीकार करली और तदनुसार उस ओर विहार कर दिया।

सोजत सिटी से आप जयतारण पधारे। वहां जोधपुर का एक डेप्यूटेशन पूज्यश्री से जोध पुर पधारने की प्रार्थना करने आया। श्रीजसवन्तराजजी मेहता, डिप्यूट सुपरिंटेंडेंट, जैन समा की ओर से तथा श्रीउमरावसिंहजी कौंसिल सेक्रेटरी तथा पुष्टिकर समाज के नेता श्रीटल्लूजी त ज्वालाप्रसादजी जैनेतर समाज की ओर से नेतृत्व कर रहे थे। शेष सभी जोधपुर के प्रतिष्ठित औ गण्यमान्य सज्जन थे। इन आगत सज्जनों ने शेष काल तक जोधपुर पधार कर विराजने क आग्रहपूर्ण प्रार्थना की। पूज्यश्री ने फरमाया-मेरा शरीर अस्वस्थ है। चौमासे से पहले बीका फरसने का वचन दिया जा चुका है। जोधपुर होकर बीकानेर पहुँचने में समय ज्यादा लगेगा इस अवस्था में गर्मी में मुझसे विहार होना कठिन है। अतएव अब जोधपुर ले जाने का आग्र आप न करें। मेरी स्थिति का खयाल कीजिए।'

वलुंदा में अस्वस्थता

जोधपुर के सज्जन वापस लौट गए और पूज्यश्री विहार करके वलुंदा पधारे। हाथों में और जांघ में फुंसियाँ निकलने के कारण आप फिर अस्वस्थ हो गए। कुछ दिनों के लिए विहार स्थगित कर देना पड़ा। अजमेर के सुप्रसिद्ध डाक्टर सूरजनारायणजी ने पूज्यश्री के शरीर की परीक्षा की और विहार कम करने की सलाह दी। पूज्यश्री के रुकने के कारण वलुंदा में आसपास के सैकड़ों दर्शनार्थी आने लगे। वलुंदा के प्रसिद्ध दानवीर, उदार हृदय सेठ छगनमलजी साहेब मूथा ने पूज्यश्री की सब प्रकार से संभव सेवा बजाई, आगत अतिथियोंका हार्दिक स्वागत किया। सब प्रकार की सुविधाएँ दीं और अच्छा धर्मप्रेम प्रकट किया।

कुछ दिन वलुंदा विराजकर, स्वास्थ्य कुछ ठीक होने पर मेड़ता होते हुए माघ शुक्ला ८ को कुचेरा पधारे। कुचेरा से नागौर, गोगोलाव और फिर नोखामंडी पधार गए। नोखामंडी में कुछ तेरापंथी भाई शंका-समाधान के लिए आए। सात बहिनों ने दया-दान विरोधी श्रद्धा त्याग कर पूज्यश्री को अपना गुरु स्वीकार किया। पूज्यश्री के आगमन के उपलक्ष्य में यहाँ 'श्री-जैन जवाहर लाइब्रेरी' की स्थापना हुई।

नोखा से विहार करके पूज्यश्री सूरपुरा, देशनोक होते हुए उदयरामसर पधारे। कुछ लोग देवी के मंदिर में बकरे की बलि चढ़ाने के लिए तैयार खड़े थे। युवाचार्यश्री ने मौके पर पहुंच कर उन्हें ऐसी सुन्दरता से समझाया कि उन्होंने बकरे को अभयदान दे दिया। वे लोग दूसरे दिन उपदेश सुनने आये। यहां त्याग-प्रत्याख्यान अच्छे हुए।

उदयरामसर से पूज्यश्री भीनासर पधारे। भीनासर का बांठिया-परिवार स्थानकवासी समाज में समाज और धर्म की सेवा करने के लिए प्रख्यात है। पूज्यश्री के पधारने पर इस परिवार का तथा अन्य भाइयों का उत्साह अनुपम था। कुछ दिनों भीनासर विराजकर आप बीकानेर पधारे।

बीकानेर की जनता भी बहुत दिनों से चातक की तरह पूज्यश्री की प्रतीक्षा कर रही थी। उदयरामसर और भीनासर में ही सैकड़ों दर्शनार्थी आने लगे थे। जिस दिन पूज्यश्री ने भीनासर से विहार किया, हजारों श्रावक और श्राविकाएं सामने आईं। श्रावकों के जयघोष और श्राविकाओं के मंगलगीतों के साथ पूज्यश्री ने ठा० १८ से बीकानेर में पदार्पण किया। पूज्यश्री पहले तो बीकानेर के प्रसिद्ध दानवीर और शिक्षाप्रेमी सेठ अगरचंदजी भैरोंदानजी की कोटड़ी में विराजे थे किन्तु गर्मी अधिक होने के कारण आप श्रीडागाजी की कोटड़ी में पधार गए। फिर भी कभी-कभी आप इच्छानुसार दिन को सेठियाजी की कोटड़ी में और रात को डागाजी की कोटड़ी में विराजते थे। व्याख्यान युवाचार्यश्री फरमाते थे।

बीकानेर बड़ा नगर होने के कारण गर्मी अधिक थी। सफाई की व्यवस्था भी उतनी अच्छी नहीं थी। उधर भीनासर के बांठिया-परिवार की तथा समस्त श्रीसङ्घ की आग्रहपूर्ण प्रार्थना थी। अतएव पूज्यश्री ने भीनासर में चातुर्मास करने के भाव प्रकट किए। साथ ही आपने यह भी फरमाया कि मैं अपनी सुविधा के अनुसार बीकानेर, गंगाशहर और भीनासर में से कहीं भी रह सकता हूं।

युवाचार्यश्री की इच्छा पूज्यश्री की सेवा में रहने की थी; मगर सरदारशहर-सङ्घ के सत्या-

ग्रह से पूज्यश्री के आदेशानुसार उन्हें सरदारशहर में चौमासा करना पड़ा। पूज्यश्री के साथ पं० मुनिश्री श्रीमल्लजी महाराज तथा पं० मुनि श्री जौहरीमलजी महाराज थे। आषाढ़ शुक्ला सप्तमी को पूज्यश्री चातुर्मास के लिए भीनासर पधार गए।

उनंचासवां चातुर्मास (सं० १९९८)

संवत् १९९८ का चातुर्मास पूज्यश्री ने भीनासर में किया। भीनासर बीकानेर का उपनगर है। अतएव बीकानेर से प्रतिदिन सैकड़ों श्रावक दर्शन और व्याख्यान श्रवण के हेतु आते थे। मुनिश्री श्रीमल्लजी महाराज और मुनि श्रीजौहरीमलजी महाराज व्याख्यान फरमाते थे। पूज्यश्री व्याख्यान भवन में पधारते थे और विराजमान भी रहते थे, मगर अशक्ति के कारण व्याख्यान नहीं फरमाते थे।

महासती श्रीकालीजी महाराज ने ठा० ७ तथा श्रीसुन्दर कुंवरजी ने ठा० ५ से भीनासर में ही चातुर्मास किया।

पूज्यश्री के विराजने से बीकानेर, गंगाशहर तथा भीनासर के श्रावकों और श्राविकाओं में धर्मोत्साह छा गया। सब ने यथाशक्ति खूब धर्म ध्यान किया। मुनि श्रीकेशूलालजी म० ने पंच-रंगी की तपस्या की। ब्यावर से करीब १२५ श्रावक-श्राविकाओं का जत्था आया और उसने पूज्यश्री से ब्यावर पधारने की विनती की।

आसौज शुक्ला में हितेच्छु श्रावकमंडल की बैठक हुई। बंबई, सतारा, रतलाम आदि के प्रतिष्ठित पुरुष सम्मिलित हुए। जैनरत्न विद्यालय, भोपालगढ़ को ६००) रुपये की सहायता प्राप्त हुई।

श्री जवाहर किरणावली का प्रकाशन

जिस भीनासरमें अनेकों बार पूज्यश्रीकी गंभीर गर्जना सुनाई पड़ी थी, वही भीनासर आज पूज्यश्री की वाणी से वंचित था। सन् १९२७ में पूज्यश्री का चातुर्मास भीनासर में था। उस समय के उनके व्याख्यान अत्यन्त गंभीर और प्रभावशाली थे। यह देखकर वहाँ के अग्रगण्य उत्साही श्रीमान् सेठ चम्पालालजी बांठिया के हृदय में यह विचार आया कि पूज्यश्री के वर्त्तमान व्याख्यानों के अभाव में पहले के व्याख्यान क्यों न प्रकाशित किये जाएँ? कोई भी शुभ विचार आना चाहिए, फिर बांठियाजी उसे अमल में लाने के लिए कसर नहीं रखते। तदनुसार आपने उसी समय रतलाम, हितेच्छुश्रावक मंडल से आज्ञा मँगवाई और पं० श्रीशोभाचन्द्रजी भारिल्ल-न्यायतीर्थ व्याख्यानों के सम्पादन का कार्य सौंप दिया। वे व्याख्यान 'श्रीजवाहर किरणावली' के रूप में प्रकाशित हुए। यह किरणावली अभी तक चालू है।

श्रीजवाहर जयन्ती

सन्त पुरुष विश्व की अनमोल निधि हैं। सन्त पुरुष को 'निधि' कहना ठीक जंचता नहीं किन्तु उनकी महिमा प्रकट करने योग्य और कोई उपयुक्त शब्द भी तो हमारे पास नहीं हैं। जिस निधि के लिए दुनिया मरी जाती है, लोग क्रूर-से-क्रूर कर्म करते नहीं हिचकते, अपने प्राप्त सुखों का, यहां तक कि प्राणों का भी उत्सर्ग कर देते हैं, उसी निधि को सहज भाव से ठुकरा देने वाले संत महात्मा को 'निधि' कहना कहां तक उचित होगा?

संत की महिमा का किन शब्दों द्वारा वर्णन किया जाय? संत पुरुष संसार के अकारण

वन्धु हैं, निस्पृह सेवक हैं, मनुष्य की आकृति में मनुष्यता का बीज बोने वाले कुशल माली हैं, नीति और धर्म के महान् शिक्षक हैं, लोकोत्तर पथ के प्रदर्शक हैं। संसार के कल्याण के लिए रत रहते हैं। कौन-सा ऐसा भीषण-से-भीषण कष्ट है, जिसे वे जगत् के उद्धार के लिए सहन करने को तैयार नहीं रहते !

जगत् को उनकी देन असाधारण है। संत पुरुषों के चरणों के प्रताप से ही जगत् स्थिर है। संसार की घोर अशांति में अगर कहीं शान्ति का आभास होता है तो उसका सम्पूर्ण श्रेय उन महान् संतों को ही है, जिन्होंने मनुष्य की मनुष्यता को कायम रखने का अश्रान्त श्रम किया है। संत पुरुष समय-समय पर हमारा पथ-प्रदर्शन न करते तो मनुष्य-समाज दुनिया के पशुओं की ही एक श्रेणी में खड़ा होता ! अतएव कहा जा सकता है कि मनुष्य का निर्माता कोई भी हो, मगर मनुष्यता का निर्माता तो संत ही है।

कहते हैं, संत पुरुष संसार से विरक्त होता है। वह दुनिया की ओर पीठ फेर लेता है। मगर इससे क्या ? उसकी विरक्त ही तो हमारे लिए अमोल वरदान है। महाकवि हरिचंद भट्टारक के शब्द बड़े सुन्दर हैं—

पराङ्मुखोऽप्येप परोपकार व्यापारभारक्षम एव साधुः।
किं दत्तपृष्ठोऽपि गरिष्ठधात्री प्रोद्धार कर्म प्रवणो न कूर्मः ? ॥

साधु पुरुष विमुख होकर भी परोपकार का भार सहन करने में समर्थ होता है। पुराणों के अनुसार कछुवा ने यद्यपि पृथ्वी की ओर पीठ कर रखी है, वह पृथ्वी से विमुख है, फिर भी क्या वह भारी से भारी धरती को ऊपर नहीं उठाए हुए हैं ? उसी की पीठ पर धरती टिकी है !

यह महाकवि की कल्पना है ! इसमें संत के स्वभाव का बड़ी सुन्दरता के साथ वर्णन किया है।

इस प्रकार संसार का अपार उपकार करने वाले संतों का ऋण कैसे चुकाया जा सकता है ? सारे संसार का वैभव एकत्र करके उनके चरणों में अर्पित करने की चेष्टा की जाय तो वे हमारी इस बाल-चेष्टा पर कदाचित् मुस्करा देंगे ! वैभव की उन्हें चाहना नहीं। उन्होंने ठुकरा दिया है। पूजा–प्रतिष्ठा का उन्हें लोभ नहीं। फिर उनके उपकारों से उऋण होने का क्या उपाय है ? वास्तव में कोई उपाय नहीं कि हम उनसे बेबाक हो सकें। मगर बहुत कुछ लेते ही लेते जाना और देना कुछ भी नहीं, यह दीवालिया की स्थिति स्वीकार करना भले आदमी को नहीं सोहत। अतएव हम उनके असीम उपकारों के बदले में अपनी आन्तरिक श्रद्धा-भक्ति प्रकट करके और कृतज्ञताज्ञापन करके ही अपना कर्त्तव्य पालन कर सकते हैं।

पूज्यश्री जैसे महान् संत ने आधी शताब्दी पर्यन्त भारत के विभिन्न भागों में पैदल-भ्रमण करके जो अनिर्वचनीय उपकार किये थे, उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के उद्देश्य से, उनके अंतिम जीवनकाल में पूज्यश्री की जयन्ती और दीक्षास्वर्ण जयन्ती मनाने का निर्णय किया गया। बीकानेर—भीनासर का श्रीसंघ और विशेपतः इसके आयोजनकर्त्ता सेठ चम्पालालजी बांठिया इस सूझ के लिए बधाई के पात्र हैं।

पूज्यश्री की जयन्ती

कार्तिक शु० चतुर्थी ता० २४-१०-४१ को भीनासर में पूज्यश्री का जन्मदिवस मनाया

गया। सेठ चम्पालालजी बांठिया के बगीचे के विशाल भवन में भीनासर, गंगाशहर और बीकानेर के श्रावक-श्राविका विशाल संख्या में उपस्थित थे। प्रातःकाल सवा आठ बजे पं० मुनिश्री श्रीमल्लजी महाराज ने व्याख्यान प्रारम्भ किया। आपने पूज्यश्री के जन्मस्थान, बाल्यकाल, दीक्षा आदि का संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित शब्दों में विवेक किया। इसके बाद बांठिया कन्या-पाठशाला की बालिकाओं ने मधुर शब्दों में पूज्यश्री का अभिनन्दन गीत गाया। वह इस प्रकार था—

सेवो सेवो रे भविजन मन से पूज्य जवाहरलाल॥
सेवो भक्ति-भाव से भाई, भवमय भंजन हारी।
कर्म महारिपु मेट न, भेटन शिव सुख जगप्रतिपाल॥ सेवो०॥
परम् तपस्वी उग्र बिहारी, ज्ञान भानु साकार।
पाखण्डी मद मर्दन गुरुवार, कर्म महारिपु काल॥ सेवो०॥
देश मालवा गांव थांदला, नाथीबाई मात।
सोलह वर्ष में भए मुनीवर, जीवराज के लाल॥ सेवो॥
दूर-दूर विचरे अब ठाए, भीनासर चौमास।
नरनारी नगर अयवासी, पाए मंगल माल॥ सेवो०॥
कन्याशाला की बालाएं, करतीं यह अभिलाष।
युग-युग जीवें पूज्य जवाहर, मुनिमन मान मराल॥ सेवो०॥

इसके बाद पं० घेवरचन्दजी बांठिया 'वीरपुत्र' न्याय व्याकरण तीर्थ, सिद्धान्तशास्त्री का भाषण हुआ। जिसमें आपने बताया कि पूज्यश्री के उपदेशों के प्रभाव से घाटकोपर में जीव-दया खाते की स्थापना हुई। जहां प्रतिवर्ष हजारों पशु मृत्यु के फन्दे से छुड़ाए जाते हैं। राजकोट में आपही के प्रभाव से 'जैन गुरुकुल पाठशाला' की स्थापना हुई। भीनासर-गंगा शहर और बीकानेर के श्रीसंघों ने मिलकर 'श्रीसाधुमार्गी जैन हित कारिणी संस्था' की स्थापना की। जिसमें एक लाख से अधिक कोश है। इसकी तरफ से नोखा गांव, नोखा मंडी, सारुंडा, भोजास, उदासर, रासीसर आदि स्थानों में पाठशालाएं चल रही हैं। अन्त में आपने हितकारिणी संस्था के सदस्यों से प्रेरणा की कि पूज्यश्री का जीवनचरित्र प्रकाशित होना चाहिए। इसके बाद बाबू केसरीचन्दजी सेठिया ने अपनी कविता सुनाई। बाबू खेमचन्दजी सेठिया, सूरजमलजी बघावत, नेमिचन्दजी बच्छावत, श्यामलालजी जैन एम० ए०, इन्द्रचन्दजी शास्त्री, शास्त्राचार्य, न्यायतीर्थ, वेदान्त वारिधि एम० ए० के भाषण हुए। पं० मुनिश्री जवरीमलजी महाराज ने पूज्यश्री के जीवन पर प्रकाश डाला। आपने बताया कि ध्यान और प्रभु प्रार्थना में कितनी शक्ति रही हुई है। इन्हीं दोनों बातों से पूज्यश्री का साराजीवन ओत-प्रोत है।

सेठ चम्पालालजी बांठिया ने जन्मदिवस के उपलक्ष्य में जीव-दया के लिए दान करने की अपील की। उसी समय २३१५) रु० की रकम लिखी गई। उसे घाटकोपर जीव-दया खाते में भेज दिया गया।

बीकानेर श्रीसंघ की ओर से श्रीभानमलजी दसाली ने पूज्यश्री से बीकानेर पधारने की प्रार्थना की। पूज्यश्री ने फरमाया कि चातुर्मासके बाद सुखे-समाधे बीकानेर फरसने के भाव हैं। अन्त में बालिकाओं ने एक गायन और गाया और पूज्यश्री के जयनाद के साथ सभा विसर्जित हुई।

भीनासर में पूज्यश्री के विराजने से बहुत धर्मध्यान हुआ। अनेक संस्थाओं को सहायता प्राप्त हुई। चातुर्मास पूर्ण होने पर, १०-११-४१ को पूज्यश्री बीकानेर पधार गए।

दीक्षा स्वर्ण जयन्ती

मार्गशीर्ष शु० २ ता० १८ फरवरी १९४२ को पूज्यश्री अपनी दीक्षा का पचासवां वर्ष पूरा करके इक्यावनवें वर्ष में प्रवेश कर रहे थे। उसके लिए 'श्रीइन्द्र' ने जैन प्रकाश ता० १-११-४१ में नीचे लिखी विज्ञप्ति प्रकाशित की।

पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज का दीक्षा स्वर्ण महोत्सव

मार्गशीर्ष शु० २ तदनुसार ता० १८ फरवरी रविवार को पूज्यश्री जवाहरलालजी महराज साहेब अपनी दीक्षा का पचासवां वर्ष पूरा करके इक्यावनवें वर्ष में प्रवेश कर रहे हैं। अपनी इस लम्बी साधना में उन्होंने आत्महित और समाजहित के लिए जो कुछ किया है उससे स्थानकवासी समाज भली-भांति परिचित है। आचार्यश्री के कठोर संयम की गाथा भारतवर्ष के कोने कोने में गाई जाती है। उनकी ओजस्विनी वाणी ने जैन तथा जैनेतर जनता के हृदय में घर कर लिया है। उनके उपदेश वैयक्तिक तथा सामाजिक समस्याओं को सुलझाने में मार्ग प्रदर्शन का काम कर रहे हैं। उनका जीवन, उनकी चर्या और उनका प्रत्येक क्षण महान् आदर्श और शिक्षाओं से भरा है।

जिस व्यक्ति ने आचार्यश्री के एक बार दर्शन किए हैं या व्याख्यान सुना है वह अच्छी तरह जानता है कि आचार्यश्री की वाणी में कैसा जादू है। अदम्य उत्साह, प्रखर प्रतिभा, गम्भीर तर्कशक्ति और मोहिनी वाणी को लेकर आपने जगह-जगह अहिंसा धर्म का प्रचार किया। भयङ्कर कष्ट और महान् कठिनाइयों का सामना करके आपने सच्चे धर्म को बताया और पाखण्डियों का किला तोड़ डाला।

मारवाड़, मेवाड़, मालवा, मध्यप्रान्त, गुजरात, काठियावाड़, बम्बई, महाराष्ट्र आदि दूर-दूर के प्रान्त आपके उपदेशामृत का पान कर चुके हैं। पूज्यश्री के आगमन पर अपनी प्रसन्नता दिखाने के लिए स्थानीय श्रीसंघों ने ऐसे कार्य किए हैं जिनका समाज को ऊँचा उठाने में बहुत बड़ा हाथ है। घाटकोपर जीव-दया फण्ड, श्री श्वेताम्बर साधु मार्गी जैन हितकारिणी संस्था बीकानेर, राजकोट गुरुकुल आदि संस्थाएं आप ही के उपदेशों का फल हैं।

महात्मा गान्धी, मालवीय जी, लोकमान्य तिलक, सरदार पटेल आदि देश के महान् नेताओं ने आप का व्याख्यान सुनकर परम सन्तोष प्रकट किया है। जैनेतर जनता के सामने जैन धर्म का वास्तविक स्वरूप रख कर आपने बड़े-बड़े विद्वानों को प्रभावित किया है और स्याद्वाद का मस्तक ऊँचा किया है।

अहिंसा, खादी-प्रचार आदि कर्त्तव्यों का राष्ट्रीय और धार्मिक दृष्टि से पूर्ण समर्थन करके आपने धर्म और राजनीति के कार्यक्षेत्र को एक बनाने में महान् उद्योग किया है।

स्थानकवासी समाज, जैन जाति और अखिल भारतवर्ष आपके इन कार्यों के लिए सदा ऋणी रहेगा।

उनके इस उपकार के लिए कृतज्ञता प्रकाशित करना और इस स्वर्णमहोत्सव पर श्रद्धांजलि प्रकट करना प्रत्येक भारतीय का कर्त्तव्य है।

स्थानकवासी समाज को तो उस दिन कोई ऐसा कार्य करके दिखाना चाहिए जिससे आचार्यश्री की स्मृति अमर होजाय और साथ में उनके उपदेश कार्यरूप में परिणत हो जांय। ऐसा करने के लिए त्याग की आवश्यकता है किन्तु त्याग के बिना किसी महापुरुष का उत्सव मनाया भी तो नहीं जा सकता।

रतलाम, उदयपुर, जोधपुर, अजमेर, ब्यावर, बीकानेर, बम्बई, सतारा, मद्रास आदि सभी नगरों के श्रीसंघ यदि किसी फण्ड की स्थापना करके उसे समाजोन्नति के किसी उपयोगी कार्य में लगावें तो समाज का भविष्य शीघ्र उज्वल बन सकता है।

स्थानकवासी समाज सब तरह से सम्पन्न है। अगर चाहे तो प्रत्येक श्रीसंघ लाखों का चन्दा कर सकता है और एक ही दिन में विद्यापीठ ही नहीं विश्वविद्यालय की स्थापना हो सकती है। इस प्रकार के परमप्रतापी आचार्य की दीक्षा का स्वर्णमहोत्सव सदियां बीतने पर भी भाग्य से ही प्राप्त होता हैं। ऐसा अपूर्व अवसर स्थानकवासी समाज तथा प्रत्येक श्रीसंघ को न चूकना चाहिए और कुछ ठोस कार्य करके दिखाना चाहिए। इस प्रकार के कार्य से ही आचार्यश्री के प्रति अपनी भक्ति का ठीक-ठीक प्रदर्शन हो सकता है।

आशा है, स्थानकवासी समाज के अग्रणी इस बात पर ध्यान देंगे और उस दिन कोई स्थायी कार्य करके आचार्यश्री के प्रति अपनी सच्ची श्रद्धा प्रकट करेंगे।"

इस पर हितेच्छु श्रावक मण्डल रतलाम के मन्त्री श्री बालचन्दजी श्री श्रीमाल ने तथा दूसरे सज्जनों ने अपने-अपने विचार प्रकट किए। परिणाम स्वरूप महोत्सव के दिन भारतवर्ष में अनेक स्थानों पर पूज्यश्री की स्वर्ण जयन्ती मनाई गई और विविध प्रकार के शुभ कार्य हुए। नीचे लिखे स्थानों की कार्रवाई उल्लेखनीय है—

जैन गुरुकुल ब्यावर

ता० २०–११–४१ की रात्रि को ८ बजे परमप्रतापी पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज की पचास वर्ष जैसे सुदीर्घ समय तक संयम साधना की स्वर्णजयन्ती मनाने के उपलक्ष्य में गुरुकुल परिवार की एक सभा गुरुकुल के कुलपति श्री सरदारमलजी सा० छाजेड़ के सभापतित्व में की गई।

प्रारम्भ में गुरुकुल के अधिष्ठाता श्री धीरजलाल भाई ने पूज्यश्री के प्रभावोत्पादक साधक जीवन का परिचय देते हुए सारगर्भित व्याख्यान दिया। तत्पश्चात् पं० शोभाचन्द्रजी भारिल्ल, श्री शान्तिलाल व० सेठ, पं० दुग्धनारायणजी शास्त्री, श्री मुलकराजजी लिग्गा B.A., LL.B. तथा श्री मुनीन्द्र कुमार जैन इत्यादि ने पूज्यश्री के गुणगान करते हुए जीवन पर प्रकाश डाला। तत्पश्चात् निम्नलिखित प्रस्ताव सर्व सम्मति से पास हुए:—

प्रस्ताव १—जैन समाज के ज्योतिर्धर, जैन-संस्कृति के प्राण रक्षक और प्रचारक परम-प्रतापी पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज की पचास वर्ष जैसे सुदीर्घ समय तक संयम साधना के उपलक्ष्य में 'ब्यावर जैन गुरुकुल' का परिवार हार्दिक प्रमोद अभिव्यक्त करता है और शासन-देव से प्रार्थना करता है कि पूज्यश्री चिरकाल तक संसार को मार्ग प्रदर्शित करते रहें।

प्रस्ताव २—पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज के उपदेश सार्वजनिक, मौलिक, शास्त्रीय रहस्यों से परिपूर्ण और युग के अनुकूल हैं। उन में आध्यात्म, धर्म और राष्ट्रीयता की असाधारण

संगीत है। ऐसे लोकोपयोगी साहित्य के प्रकाशन और प्रचार के लिए यह सभा श्री हितेच्छु श्रावक मण्डल रतलाम, श्री श्वेताम्बर साधुमार्गी जैन हितकारिणी संस्था बीकानेर, श्री जैन ज्ञानोदय सोसायटी राजकोट तथा अन्य महानुभावों से अनुरोध करती है।

प्रस्ताव ३—यह सभा ऐसे महान् प्रभावक आचार्य और धर्मोपदेशक के जीवन चरित्र तथा अभिनन्दन ग्रन्थ का प्रकाशन उनकी स्वर्णजयन्ती के उपलक्ष्य में उपयोगी समझती है। और रतलाम हितेच्छु श्रावक मण्डल से आग्रह करती है कि शीघ्र ही पूज्यश्री का जीवन प्रस्तुत किया जाय।

प्रस्ताव ४—यह सभा जैन समाज की महान् विभूति, पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज के पचास वर्ष जैसे सुदीर्घकालीन साधक जीवन की स्वर्णजयन्ती के उपलक्ष्य में कोई जीवन्त स्मारक रखने के लिए समाज से साग्रह अनुरोध करती है और समाज के कर्णधारों से प्रार्थना करती है कि इस शुभ अवसर पर कोई महान् कार्य अवश्य हाथ में उठावें और उसे सफलीभूत बनावें।

प्रस्ताव ५—उक्त प्रस्ताव रतलाम, बीकानेर, राजकोट तथा अखबारों में भेजे जावें।

उक्त प्रस्ताव होने के बाद सभापतिजी का पूज्यश्री के जीवन पर सारगर्भित भाषण हुआ। इसी प्रकार जोधपुर, फलौदी आदि बहुत से स्थानों में महोत्सव मनाया गया।

घुटने में दर्द

बीकानेर में पूज्यश्री के घुटने में फिर दर्द आरम्भ हो गया। वृद्धावस्था और दुर्बलता के कारण औषधियों ने अपना प्रभाव कम कर दिया। बाहर आना-जाना स्थगित हो गया। दिनोंदिन कमजोरी बढ़ती गई और शारीरिक स्थिति बिगड़ती चली गई। प्रिंस विजयसिंहजी मेमोरियल हास्पिटल बीकानेर के मेडिकल ऑफिसर प्रसिद्ध डाक्टर वेनगार्टन ने चिकित्सा प्रारंभ की।

कुछ दिनों बाद थली प्रान्त से युवाचार्यश्री, पूज्यश्री की सेवा में पधार गए। कुछ दिन सेवा करके आपने झज्जू आदि ग्रामों को फरसने के लिए विहार किया।

बीकानेर की गर्मी सहन न होने के कारण पूज्यश्री फिर भीनासर पधारे और श्रीबांठियाजी के विशाल मकान में ठहरे।

पक्षाघात का आक्रमण

घुटने के दर्द तथा अशक्ति आदि ने पहले ही पूज्यश्री को घेर लिया था। डाक्टरों के इलाज का कोई विशेष प्रभाव नहीं दिखाई देता था। ऐसी स्थिति में एक नई व्याधि और आ गई।

जेठ शुक्ला पूर्णिमा, ता० ३०-५-४२ के दिन पूज्यश्री प्रतिदिन की भांति स्वाध्याय करने बैठे। उस समय तक कोई विशेष बात नहीं थी। जब आप स्वाध्याय करके उठने लगे तो आधे अंग में कुछ शिथिलता प्रतीत हुई। आप सहारा लेकर उठे और शौच पधारे। तदनन्तर अधिक शिथिलता प्रतीत होने लगी। सेठ चम्पालालजी बांठिया ने उसी समय डाक्टर बुलवाया और शरीर की परीक्षा करवाई। पूज्यश्री के दाहिने अंगों में पक्षाघात का आक्रमण हो गया था।

देशनोकमें विराजमान युवाचार्यश्री को सूचना दी गई और आप दो तीन दिनों में ही भीनासर आ पहुँचे।

डा० वेनगार्टन की चिकित्सा आरम्भ हुई।

क्षमा का आदान-प्रदान

'विश्व के समस्त प्राणियों पर निर्वैरभाव रखना और विश्वमैत्री की भावना विकसित करना क्षमापणा का महान् आदर्श और उद्देश्य है। मनुष्य के साथ मनुष्य का सम्बन्ध अधिक रहता है, अतएव मनुष्य-मनुष्य में कलुषता की अधिक सम्भावना है। अतएव मनुष्यों के प्रति निर्वैरवृत्ति धारण करने के लिए सर्वप्रथम अपने घर के लोगों के साथ, अगर उनके द्वारा कलुषता उत्पन्न हुई हो तो क्षमा का आदान-प्रदान करके विश्वमैत्री का शुभ समारंभ करना चाहिए।

क्षमा का आदान-प्रदान करने से चित्त में प्रसन्नता होती है। चित्त की प्रसन्नता से भाव की विशुद्धि होती है।'

'क्षमाधर्म की आराधना करने वाला सम्यग्दृष्टि इस बात का विचार नहीं करता कि दूसरे मुझसे क्षमायाचना करते हैं या नहीं? इस बात का विचार किये बिना ही वह अपनी ओर से विनम्रभाव से प्रेरित होकर क्षमा की प्रार्थना करता है। इस विषय में बृहत्कल्पसूत्र के शब्द स्मरणीय हैं। 'जो उवसम्मइ तस्स अत्थि आराहणा, जो न उवसमइ तस्स नत्थि आराहणा। अर्थात् जिसके साथ तुम्हारी तकरार हुई है वह तुम्हारा आदर करे या न करे। उसकी इच्छा हो तो वंदन करे, इच्छा न हो तो वंदन न करे। उसकी इच्छा हो तो तुम्हारे साथ भोजन करे, इच्छा न हो तो भोजन न करे। उसकी इच्छा हो तो तुम्हारे साथ रहे, इच्छा न हो तो न रहे। उसकी इच्छा हो तो तुम्हारे प्रति उपशान्त हो, इच्छा न हो तो उपशान्त न हो। तुम उसके इन कृत्यों को मत देखो। तुम अपने अपराध के लिए क्षमा मांग लो और उसके अपराधों को अपनी ओर से क्षमा कर दो।'

जिन महापुरुष ने अपने अनुयायियों को इस प्रकार क्षमाधर्म का उपदेश दिया और उनके अन्तःकरण को निष्कषाय बनाने का उपाय बताया, वह स्वयं उसका व्यवहार किये बिना कैसे रह सकता था? पूज्यश्री ऐसे उपदेशक थे जो किसी भी सद्वृत्ति को अपने जीवन में व्यवहृत करते थे और फिर दूसरों को उपदेश देते थे। उनका समस्त उपदेश उनके जीवन व्यवहार में ओतप्रोत था। इसी कारण उनके उपदेश की प्रभावकता बहुत बढ़ गई थी।

पूज्यश्री के शरीर पर जब विविध व्याधियों का हमला होने लगा और शरीर उनका सामना करने में असमर्थ प्रतीत होने लगा और लम्बे जीवनकी सम्भावना न रही तब आपने प्राणी मात्र से क्षमायाचना कर लेना उचित समझा। कौन जाने, कब, क्या स्थिति हो? क्षमायाचना का सुअवसर मिले या न मिले? अतएव पहले ही अपना हृदय पूर्णरूप से विशुद्ध रखना उचित है। इस प्रकार विचार करके पूज्यश्री ने ता० १८-६-४२ के दिन नीचे लिखे आशय के उद्गार प्रकट किए—

(१) साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविकारूप चतुर्विध श्रीसंघ से मैं अपने अपराधों के लिए अन्तकरण पूर्वक क्षमायाचना करता हूँ।

(२) मेरा शरीर दिन प्रतिदिन क्षीण होता जा रहा है। जीवन-शक्ति उत्तरोत्तर घट रही है। इस बात का कोई भरोसा नहीं है कि इस भौतिक शरीर को छोड़कर प्राणपखेरू कब उड़ जायँ। ऐसी दशा में जब तक ज्ञान-शक्ति विद्यमान है, भले-बुरे की पहचान है तब तक संसार के सभी प्राणियों से, विशेषतया चतुर्विध श्रीसंघ से क्षमा-याचना करके शुद्ध हो लेना चाहता हूँ। मेरी आप सभी से विनम्र प्रार्थना है कि आप भी शुद्ध हृदय से मुझे क्षमा प्रदान करें।

(३) मेरी अवस्था ६७ वर्ष की है। दीक्षा लिए भी पचास वर्ष से अधिक हो गए हैं। इस समय में मेरा चतुर्विध सङ्घ से विशेष सम्पर्क रहा है। सं० १६७५ से श्रीसङ्घ ने तथा पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज साहेब ने सम्प्रदाय के शासन का भार मेरे निर्बल कन्धों पर रख दिया था। पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज के समान प्रतापी महापुरुष के आसन पर बैठते हुए मुझे अपनी कमजोरियों का अनुभव हुआ था, फिर भी गुरु महाराज तथा श्रीसङ्घ की आज्ञा का पालन करना अपना कर्त्तव्य समझकर मैंने उस आसन को ग्रहण कर लिया। इस के बाद शासन की व्यवस्था के लिए मैंने समयोचित बहुत से परिवर्तन और परिवर्द्धन शास्त्रानुसार किए हैं। सम्भव है उनमें से कुछ बातें किसी को गलत या बुरी लगी हों। मैं उनके लिए सभी से क्षमा मांगता हूँ।

(४) मैं साधुवर्ग का विशेष क्षमाप्रार्थी हूँ। उनके साथ मेरा गुरु और शिष्य के रूप में, शासक और शास्य के रूप में, सेव्य और सेवक के रूप में तथा दूसरे कई प्रकारों से घनिष्ट सम्बन्ध रहा है। मैंने शासनोन्नति के लिए, ज्ञान, दर्शन और चारित्र की रक्षा के लिए, संगठनवृद्धि के लिए शास्त्रानुमोदित कई नियमोपनियम बनाए हैं,जिन्हें मुनियोंने सदा वरदान की तरह स्वीकार किया है। फिर भी यदि मेरे किसी वर्ताव के कारण किसी मुनि के हृदय में चोट लगी हो, उन्हें किसी प्रकार का कष्ट पहुँचा हो तो मैं उसके लिए बार-बार क्षमा-याचना करता हूँ। मेरी आत्मा की शांति और निर्मलता के लिए वे मुझे क्षमा प्रदान करें। इसी तरह जो मेरे द्वारा क्षमा के उत्सुक हैं उन्हें मैं भी अन्तःकरणपूर्वक क्षमा प्रदान करता हूँ। मैंने अपनी आत्मा को स्वच्छ एवं निर्वैर बना लिया है।

(५) अपनी सम्प्रदाय का संचालन करने और सामाजिक व्यवस्था करने के लिए मुझे दूसरी सम्प्रदाय के आचार्य तथा बहुत से स्थविर मुनियों के सम्पर्क में आना पड़ा है। किसी-किसी बातपर मुझे उनका विरोध भी करना पड़ा है। उस समय बहुत सम्भवहै, मुझसे कोई अनुचित या या अविनय-युक्त व्यवहार हो गया हो। मैं अपने उस व्यवहार के लिए उन सभी से क्षमा माँगता हूँ। मेरी प्रार्थना पर ध्यान देकर वे सभी आचार्य तथा स्थविर मुनि मुझे क्षमा प्रदान करने की कृपा करें।

(६) मैं जिस बात को हृदय से सत्य मानता हूँ उसी का उपदेश देता रहा हूँ। बहुत से व्यक्तियों से मेरा सैद्धान्तिक मत-भेद भी रहा है। सत्य का अन्वेषण करने की दृष्टि से उनके साथ चर्चा वार्ता करने का प्रसंग भी बहुत बार आया है। यदि उस समय मेरे द्वारा किसी प्रकार प्रतिपक्षियों का मन दुखा हो, उन्हें मेरी कोई बात बुरी लगी हो तो उसके लिए मैं हार्दिक क्षमा चाहता हूँ। मेरा उसके साथ केवल विचार-भेद ही रहा है। वैयक्तिक रूप से मैंने उन्हें अपना मित्र समझा है। और अब भी समझ रहा हूँ। आशा है वे मुझे क्षमा प्रदान करेंगे।

(७) मैंने जो व्याख्यान दिए हैं उनमें से मण्डल ने कई-कई चातुर्मासों के व्याख्यानों का संग्रह कराया है। इस विषय में मेरा कहना है कि जिस समय जो-जो मैंने कहा है वह जैन आगमों और निर्ग्रन्थ प्रवचनों को दृष्टि में रखकर ही कहा है। यह बात दूसरी है कि समय के परिवर्तन के साथ-साथ द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के अनुसार विचारों में भी परिवर्तन होता रहता है। फिर भी मैं छद्मस्थ हूँ। मुझसे भूल हो सकती है। मैं सत्य का गवेषक हूँ। सभी को सत्य ही मानना चाहिए। असत्य के लिए मेरा आग्रह नहीं है। मुझे अपनी बात की अपेक्षा सत्य अधिक प्रिय है।

(८) मेरी शारीरिक अशक्ति के बाद और पहले जो साधु मेरी सेवा में रहे हैं, उन्होंने मेरी सेवा करने में कुछ भी बाकी नहीं रहने दिया। अपने कष्टों को भूलकर वे प्रत्येक समय प्रत्येक प्रकार से मेरी सेवा में तत्पर रहे हैं। स्वयं सरदी, गरमी एवं भूख प्यास के परीषहों को सह कर भी उन्होंने मेरी सेवा का ध्यान-रखा है। इसके लिए मैं उनकी सेवा का हार्दिक अनुमोदन करता हूँ। उनके द्वारा की गई सेवा का आदर्श नवदीक्षितों के लिए मार्गदर्शक बनेगा।

(९) लगभग आठ वर्ष से शारीरिक अशक्ति के कारण मैंने साम्प्रदायिक शासन का भार युवाचार्यश्री गणेशीलालजी को सौंप रखा है। उन्होंने जिस योग्यता, परिश्रम और लगन के साथ इस कार्य को निभाया और निभा रहे हैं, वह आपके समक्ष है। मुझे इस बात का परम सन्तोष है कि युवाचार्यश्री गणेशलालजी ने अपने को इस उत्तरदायित्वपूर्ण पद का पूर्ण अधिकारी प्रमाणित कर दिया है। और कार्य अच्छी तरह सँभाल लिया है। साथ में इस बात की भी मुझे प्रसन्नता है कि श्रीसंघ ने भी -इनको श्रद्धापूर्वक अपना आचार्य मान लिया है। इनके प्रति आपकी भक्ति तथा आप सभी का पारस्परिक प्रेम उत्तरोत्तर वृद्धिगत होता रहे और इसके द्वारा भव्य-प्राणियों का अधिकाधिक कल्याण हो, यही मेरी हार्दिक अभिलाषा है।

(१०) सज्जनों! जिसने जन्म लिया है उसकी मृत्यु अवश्यम्भावी है। संसार में जन्म-मरण का चक्र चलता ही रहता है। यह शरीर तो एक प्रकार का चोगा है। जिसे प्राणि स्वयं माता के गर्भ में तैयार करता है और पुराना होने पर छोड़ देता है। पुराने चोगे को छोड़कर नए-नए चोगे पहिनते जाना जीव के साथ अनादि काल से लगा हुआ है। इसमें हर्ष या विषाद की कोई बात नहीं है। हर्ष की बात तो हमारे लिए जब होगी जब इस चोगे को इस रूप में छोड़ेंगे कि फिर नया न धारण करना पड़े। वास्तव में नवीन चोगे का धारण करना ही बन्धन है और उसे उतारना छुटकारा है। जब यह चोगा हमेशा के लिए छूट जाएगा वही मोक्ष है। अतः यह चोगा छूटने पर भी आत्म-समाधि कायम रहे, यही मेरी भावना है।

(११) अन्त में मैं यही चाहता हूँ कि मैंने संसार त्याग करके भगवती दीक्षा स्वीकार की है। उसकी आराधना में जो प्रयत्न अब तक किया है उसमें मेरी शारीरिक या मानसिक स्थिति कैसी भी रहे, भंग न हो। उसमें प्रतिदिन वृद्धि हो और मैं आराधक बना रहूँ।

पूज्यश्री के यह उद्‌गार व्याख्यान में सुनाए गए। श्रोताओं के हृदय गद्‌गद् हो उठे। अनेकों की आंखों ने अश्रु बहाकर उनका अभिनन्दन किया। व्याख्यान-सभा में अनोखी शान्ति छा गई। विषाद फैल गया। महान् संत की इस सात्विक वाक्यावली में उनके जीवन की साधना का सार था। उन्होंने क्षमायाचना करके जो आदर्श और उपदेश उपस्थित किया, वह उनके समस्त उपदेशों का कलश कहा जा सकता है। इस परोक्ष उपदेश में जो शक्ति है, वह किसका हृदय नहीं हिला देती?

जीवन साधना की परीक्षा

पूज्यश्री ने अपने जीवन के अनमोल पचास वर्षों में जो परम उच्च साधना की थी, उसका एकमात्र लक्ष्य आत्मशुद्धि था। अमर आत्मा के लिए आपने नाशवान् शरीर की ममता त्याग दी थी। आपने कहा था—

'अनादिकाल से जड़ का चेतन के साथ संसर्ग हो रहा है। जबतक चैतन्य के साथ जड़

के रहने का सिलसिला जारी है तब तक आत्मा के दुःख का भी सिलसिला जारी रहेगा। जिस दिन जड़-चेतन के संसर्ग का सिलसिला समाप्त हो जायगा, उसी दिन दुःख भी समाप्त हो जायगा और एकान्त सुख प्रकट हो जायगा।'

पूज्यश्री ने इस संसर्ग के सिलसिले को खत्म करने में ही अपना जीवन लगा दिया। उन्होंने शरीर और आत्मा का भेद पहचान लिया था। इस पहचान को आपने इन शब्दों में घोषित भी किया था—

जो तुम्हारा है, वह तुमसे कभी विलग नहीं हो सकता। जो वस्तु तुमसे विलग हो जाती या हो सकती है, वह तुम्हारी नहीं है। पर पदार्थों में आत्मीयता का भाव स्थापित करना महान् भ्रम है। इस भ्रमपूर्ण आत्मीयता के कारण जगत् अनेक कष्टों से पीड़ित है। अगर 'मैं' और 'मेरी' की मिथ्या धारणा मिट जाय तो जीवन में एक प्रकार की अलौकिक 'लघुता, निरुपम निस्पृहता और दिव्य शांति का उदय होगा।'

इस प्रकार पूज्यश्री ने आत्मा और शरीर आदि बाह्य वस्तुओं के भेद को समझा और समझाया था।

विद्यार्थी वर्ष भर पढ़ता है और अन्त में उसकी परीक्षा ली जाती है। पढ़ाई विद्यार्थी की साधना है। परीक्षा देकर वह अपनी साधना की सफलता से संतोष मानता है। जिसकी जितनी उत्कट साधना होती है, उसको परीक्षा भी उतनी ही कठोर ली जाती है। जिसकी साधना ही कठोर न होगी, उसकी परीक्षा कठोर क्या ली जायगी! इसी नियम के अनुसार पूज्यश्री की परीक्षा प्रकृति ले रही थी। उनकी साधना बड़ी लम्बी और कठोर थी, अतएव परीक्षा भी लम्बी और कठोर हुई।

जहरी फोड़ा (Carbuncle)

लकवा की शिकायत पूरी तरह दूर भी नहीं हो पाई थी कमर के पीछे बाईं ओर कार्बं-कल फोड़ा उठ आया। फोड़े के कारण दुस्सह वेदना थी और इसी कारण बुखार भी हो आया था। फोड़ा भयंकर रूप धारण कर रहा था। सभी को विश्वास हो गया कि अब आचार्य महाराज का अंतिम समय सन्निकट आ गया।

बीकानेर के चीफ सर्जन डा० एलन पूज्यश्री को देखने आए। उनकी सम्मति थी कि फोड़े का आपरेशन न किया गया तो पूज्यश्री का बचना असंभव है। साथ ही आपरेशन करने में भी आधी जोखिम है।

चीफ मेडिकल आफीसर जब दूसरी बार पूज्यश्री को देखने के लिए बुलाया गया तो उसने आश्चर्य के साथ कहा—ओह! आचार्य अब तक जीवित हैं! दवा नहीं, ईश्वर ही उनकी रक्षा कर रहा है। बीमारी की ऐसी स्थिति में साधारण मनुष्य बच नहीं सकता था!

अन्त में फोड़ा बिना आपरेशन किये ही फूट गया। दुस्सह वेदना होने पर भी पूज्यश्री अत्यन्त शान्तभाव से सब कुछ सहन कर रहे थे। 'आत्मा जगत् के एक दुःख को दूर करने के प्रयास में दूसरे अनेक दुःखों का शिकार बन जाता है। वह इस मूल तथ्य की ओर नहीं देखता कि—मैं जिन कष्टों को दूर करने के लिए व्यग्र हो रहा हूं, उन कष्टों का उद्गम स्थान कहां है? वह कष्ट क्यों और कहां से आए हैं? और वे कष्ट किस प्रकार विनष्ट किये जा सकते हैं?' यह

वाक्य जिसके मुख से निकले थे वह महात्मा भला शारीरिक कष्ट आने पर कैसे व्याकुल हो सकते थे ? उनकी सहनशक्ति और शान्ति अद्भुत थी, आश्चर्यजनक थी।

संघ के सौभाग्य से १०-१५ दिन बाद फोड़े में कुछ सुधार दिखाई दिया। गंगाशहर स्टेट हास्पिटल के डाक्टर श्री अविनाशचन्द्र प्रतिदिन आकर फोड़े में से मवाद निकाल देते थे और मरहमपट्टी कर जाते थे।

छह महीने में फोड़ा बिलकुल साफ हो गया, किन्तु फोड़े के दिनों में लगातार लेटे रहने से पूज्यश्री के बाएँ अंगों में इतनी कमजोरी आ गई कि उठना-बैठना कठिन हो गया। यह अशक्ति अन्त तक बनी रही।

ता० २५-७-४२ को राजकोट के डाक्टर रा० सा० लल्लू भाई पूज्यश्री के दर्शनार्थ आए। उन्होंने पूज्यश्री के इलाज की सराहनी की और स्वस्थ हो जाने की आशा प्रकट की।

पचासवाँ चातुर्मास (सं० १९९९)

बीमारी के कारण पूज्यश्री ने संवत् १९९९ का चातुर्मास भी भीनासर में ही किया। युवाचार्य महाराज भी साथ थे और पं० मुनिश्री श्रीमल्लजी महाराज तो काठियावाड़ प्रवास और उसके बाद भी बराबर पूज्यश्री की सेवा में ही थे। कुल १९ ठाणा थे।

पूज्यश्री के फोड़े में लाभ होते देख बीकानेर-श्रीसङ्घ के अत्याग्रह से भाद्रपद कृष्णा ३ को युवाचार्यश्री बीकानेर पधार गए।

सेवा की सराहना

पूज्यश्री के दर्शनार्थ यों तो प्रतिवर्ष सैकड़ों-हजारों दर्शनार्थी आया करते थे किन्तु इस वर्ष बहुत बड़ी संख्या में दर्शनार्थी आए। लोगों को प्रतीत होने लगा था कि संभवतः यह दर्शन आपके अन्तिम होंगे। अतः दूर-दूर से दर्शनार्थियोंकी भीड़ लग गई। बांठिया बन्धु तथा भीनासर-गंगासर सङ्घ सभी अतिथियों का उत्साहपूर्वक स्वागत कर रहा था। पूज्यश्री की रुग्णावस्थामें बांठिया-परिवार ने तथा श्रीसङ्घ ने जो सेवा बजाई वह अत्यन्त सराहनीय थी।

ता० २९ दिसम्बर १९४२ को भीनासर में हितेच्छुश्रावक मंडलकी बैठक हुई। स्थानीय सदस्यों के अतिरिक्त बाहर से भी अनेक सज्जन पधारे। बैठक में बांठियाबंधुओं और चिकित्सकों के संबंध में निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकृत हुआ:—

'श्रीमज्जैनाचार्य पूज्यवर्य १००८ श्री जवाहरलालजी महाराज साहब के शरीर में इस वर्ष भयंकर पीड़ा हो गई थी, जिससे आपके जीवन विषयक आशंका हो गई थी। किन्तु संघ के प्रबल पुण्योदय से श्रीमान् के शरीर में शान्ति हो गई और फोड़ा बिलकुल साफ हो गया। इसके लिए मंडल की यह सभा अपना अहोभाग्य मानती है और अत्यन्त हर्ष व्यक्त करती है। परन्तु फिर भी शरीर में कमजोरी बढ़ती जा रही है। इसके लिए यही कामना करती है कि पूज्यश्री का स्वास्थ्य शीघ्र ही सुधरे। साथ ही पूज्यश्री की पीड़ा के समय में डाक्टर अविनाशचन्द्रजी ने पूज्यश्री की जो महती सेवा बजाई है, इसलिए मंडल उनकी सेवाओं को लक्ष्य में लेकर उनको अभिनन्दनपत्र देने का ठहराता है।

इसी तरह श्रीबीकानेर, गङ्गासर, भीनासर के संघ ने एवं श्रीमान् सेठ कनीरामजी, बादरमलजी तथा चम्पालालजी साहब बांठियाने विशेष रूपसे पूज्यश्री की महती सेवा बजाई व बजा

रहे हैं, उसके लिए यह मंडल आपका अन्तःकरणपूर्वक आभार मानता है तथा डाक्टर साहब श्रीमान् वेन गार्टन, पी० एम० ओ०, डा० सूरजनारायणजी आसोपा, वैद्य रामनारायणजी महन्त, स्वामी केवलरामजी, पं० भैरवदत्तजी आसोपा एवं पं० रामरत्नजी ने भी बहुत सेवा बजाई है। इतना ही नहीं वैद्यवर्यों ने फीस भी नहीं ली। इसलिए मंडल इन सब का आभार मानता है।'

दो दीक्षाएँ

चौमासेके अनन्तर मार्गशीर्ष कृ० ४ को श्रीईश्वरचंदजी सुराणा देशनोक-निवासी और श्रीनेमीचंदजी सेठिया गंगाशहर (बीकानेर) निवासी की भीनासर में दीक्षाएँ हुईं। श्रीईश्वरचंदजी सरदारशहरमें ही दीक्षा लेने का विचार कर रहे थे किन्तु माताजी की बीमारी के कारण विलम्ब हो गया। माताजी का स्वर्गवास होने के अनन्तर आपने बड़े भाई की आज्ञा लेकर दीक्षा ग्रहण की। श्रीनेमीचंदजी ने पहले सपत्नीक शीलव्रत खंध लिया और अपनी रुग्ण पत्नी की अम्लान-भाव से अच्छी सेवा की। कुछ समय पश्चात् पत्नी का देहान्त हो जाने पर आप दीक्षित हुए।

आप (नेमीचंदजी सेठिया) अन्यत्र गोद गये थे। वहाँ प्रकृति न मिलनेके कारण आप दिशावर चले गये और वहाँ कमाने लगे और इस प्रकार स्वावलंबन का जीवन बिताने लगे। कुछ समय पश्चात् आप दिशावर से लौट आये। और आपके हृदय में वैराग्य भाव जागृत हो गये। आपकी सोजायत माता की ओर से जो जेवर आपकी शादी में चढ़ाया गया था वह सब वापिस उन्हें संभलाकर उनके चित्त को सन्तुष्ट कर दिया। फिर उनसे दीक्षा की आज्ञा प्राप्त कर उत्कट वैराग्य के साथ दीक्षा धारण की। आपका दीक्षा-महोत्सव सुप्रसिद्ध दा० वी० सेठ भैंरोंदानजी सेठिया के दूसरे पुत्र श्रीयुत पानमलजी सेठिया की ओर से समारोहपूर्वक सम्पन्न हुआ।

उक्त दोनों वैरागियोंको पूज्यश्री ने 'करेमि भंते' का प्रत्याख्यान कराया।

पंजाबकेसरी की अभिलाषा अपूर्ण रही

पूज्यश्री की अस्वस्थता के समाचार सुनकर पञ्जाबकेसरी पूज्यश्री काशीरामजी महाराज ने आपसे मिलने की इच्छा प्रकट की। आप जोधपुरमें चौमासा पूर्ण करके पीपाड़ तक पधारे, मगर अचानक छाती में दर्द हो आने के कारण आगे विहार न कर सके। अतएव आपने अपने शिष्य कविवर मुनिश्री शुक्लचन्द्रजी महाराज को पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज की सेवा में भेजा। पंजाब-सम्प्रदायके तीन संत पंजाब की ओर से पधार गए। पूज्यश्री के संत और श्रावक उनके स्वागतार्थ सामने गए। दोनों सम्प्रदायों के संतों में खूब प्रेमपूर्ण व्यवहार रहा। सम्मिलित व्याख्यान होता था। कुछ दिन तक पूज्यश्री की सेवा में विराजकर पंजाबी संत विहार कर गए।

सूर्यास्त का समय

वज्र की बन जा लेखिनी! नहीं तो पूज्यश्री के अंतिम जीवन का चित्र तू अंकित न कर सकेगी। और हृदय! तू पाषाण की भाँति कठोर हो जा। अरे हाथ! तू थर्राता क्यों है?

जिस उत्तरोत्तर उमंग के साथ और उछलते हुए उत्साह की तरंगों पर चढ़कर, तुम सबने मिलकर एक महापुरुष की शाब्दिक आकृति खड़ी की है वह उमंग भंग हो गई और वह उत्साह समाप्त हो गया है। चित्रकार ने जो चित्र बड़ी श्रद्धा के साथ अंकित किया था और जिस पर उसे बड़ा अभिमान था, अब उसी चित्रकार को अपने चित्र के विनाश का भी चित्र अंकित करना पड़ेगा! हाय विडम्बना!

अन्तिम दर्शन

प्राण निकलते समय पूज्यश्री के मुख-मण्डल पर दिव्य शान्ति विराज रही थी। वेदना का विषाद कहीं लेशमात्र भी दृष्टिगोचर नहीं होता था। ऐसा जान पड़ता था, जैसे जीवन-संग्राम में सफलता पाने के बाद वीर योद्धा सन्तोषपूर्वक विदाई ले रहा हो।

पूज्यश्री ने अन्त तक शान्ति का सेवन किया। घोर कष्ट के नाजुक प्रसंग पर भी उनकी आत्मा में पूर्ण समाधि रही। उनका समग्र जीवन आदर्श रहा और उनकी मृत्यु भी आदर्श रही। जीवन-व्यापिनी संयम-साधना की परीक्षा में वे पूर्ण रूप से सफल हुए। उन्होंने पंडितमरण प्राप्त किया। उनका जीवन मनुष्य मात्र के लिए एक महान् कल्याणमय उपदेश था और उनकी मृत्यु एक आदर्श सन्देश दे गई।

जिन भाग्यशालियों ने पूज्यश्री की अन्तिम समय की छवि देखी, उनके नेत्रों में वह सदा के लिए समा गई। कितनी सोमता! कितनी भव्यता। कैसी शान्ति! कैसी समाधि! निहारने वाले निहाल हो गए!

शोक-सागर लहराने लगा

पूज्यश्री के स्वर्गवास का समाचार बिजली की तरह सारे भारतवर्ष में फैल गया। शोक के बादलों से आंसू बरसने लगे। धरती और आकाश सभी रोने लगे। प्रकृति अपना हृदय न संभाल सकी। उसने भी आंसू गिराकर उस दिव्य आत्मा के प्रति अपनी श्रद्धांजलि प्रकट की!

बीकानेर, गंगाशहर, भीनासर, उदयरामसर आदि आसपास के स्थानों के तथा बाहर से आए हुए सहस्रों श्रावक हृदय को किसी प्रकार थामकर आते और पूज्यश्री के निष्प्राण शरीर का दर्शन करके, अश्रुधारा की श्रद्धांजलि भेंट करते हुए चले जाते थे। भीनासर और बीकानेर के श्रीसंघ को ऐसा लगा मानों उसने समूचे संघ की अनमोल धरोहर खो दी हो।

बालक-वृद्ध, नर-नारी, अमीर-गरीब, साक्षर-निरक्षर सभी के चेहरे पर अपूर्व गहरा विषाद दिखाई देता था। अकारण जगबन्धु का वियोग हृदय में ऐसा चुभ रहा था, मानो किसी अत्यन्त स्नेहपात्र आत्मीय जन का वियोग हो गया हो! पूज्यश्री के वियोग से जैनों ने अपना जवाहर खोया, सन्तों ने सिरताज खोया, धर्म ने आधार खोया, सङ्घ ने सेनानी खोया, पण्डितों ने पथ-प्रदर्शक खोया, पथभ्रष्ट पथिकों ने प्रकाशस्तंभ खोया, ज्ञान के पिपासुओं ने अमृत का स्रोत खोया।

देवताओं ने एक महात्मा अपने बीच पाकर कौन जाने, किस श्रद्धा के साथ उसका स्वागत किया है। काश, हमारी दृष्टि वहां तक पहुंच पाती!

श्मशान-यात्रा

भीनासर के सेठ चम्पालालजी बांठिया की पूज्यश्री के प्रति अनुपम भक्ति थी। पूज्यश्री जब तक भीनासर में विराजमान रहे, आपने समस्त घरू काम-काज से छुटकारा लिया और अनन्य भाव से उन्हीं की सेवा में तल्लीन रहे। न दिन गिना, न रात। तन-मन-धन की तनिक भी पर-वाह नहीं की। पूज्यश्री की चिकित्सा में उन्होंने कोई बात उठा न रखी। फिर भी जब पूज्यश्री की हालत निरन्तर गिरती ही चली गई तो उन्होंने एक वर्ष पहले ही चांदी का एक सुन्दर विमान बनवाकर तैयार करा लिया।

पूज्यश्री की श्मशान-यात्रा के लिए आषाढ़ शुक्ला ६ का प्रातःकाल निश्चित किया गया था।

सूर्योदय के साथ-साथ हजारों की भीड़ भीनासर में एकत्र होने लगी। सर्वप्रथम युवाचार्य श्रीगणेशी-लालजी महाराज को चतुर्विध श्रीसङ्घ के समक्ष आचार्य-पद की चादर ओढ़ाने की क्रिया विधि-पूर्वक की गई।

निश्चित समय पर पूज्यश्री का शव स्वर्ण मंडित रजत-विमान में विराजमान किया गया। पूज्यश्री के जयनाद के साथ श्मशान का जुलूस रवाना हुआ। आगे-आगे पूज्यश्री के प्रति सन्मान प्रकट करने के लिए राज्य की ओर से भेजे हुए नगाड़ा, निशान और बैंड था। उनके पीछे पूज्यश्री के यशोगीत गाती हुई भजन मंडलियां चल रही थी। उसके बाद पूज्यश्री का विमान था। विमान के पीछे महिलाएँ गीत गाती हुई चल रही थीं और फिर पुरुषों का विशाल समूह था। सबसे पीछे उछाल करने के लिए ऊँटों पर सवार चल रहे थे। श्रावकों की पूज्यश्री के प्रति इतनी अधिक भक्ति थी कि करीब बीस हजार रुपया उछाला गया। धरती रुपयों से बिछ गई। कई एक मेहतरों के हिस्से में १००-१२५ रु० आए।

थोड़ी-थोड़ी देर में विशाल जन-समूह पूज्यश्री का जयघोष करता था। आकाश गूंज उठता था।

भीनासर और गंगाशहर में घूमता हुआ जुलूस १२ बजे श्मशान में पहुंचा। चन्दन, घी, कपूर, खोपरा आदि सुगंधित पदार्थों से विमान-सहित पूज्यश्री का अग्नि-संस्कार किया गया।

बीकानेर में आषाढ़ महीने में घोर गर्मी रहती है और धूप इतनी तेज कि चार क़दम चलना कठिन हो जाता है। मगर आज एक प्रकृतिविजयी महात्मा पुरुष की श्मशानयात्रा थी, अतएव प्रकृति ने अपना रूप पलट लिया। श्मशानयात्रा आरंभ होने से पहले, प्रातःकाल ६ बजे ही उसने करीब आधा इंच जल की वर्षा की और पृथ्वी शीतल हो गई। श्मशानयात्रा जब तक जारी रही तब तक मेघों ने सूर्य के आड़े आकर धूप को रोक रखा। अलबत्ता जब पूज्यश्री के शव का चिता-रोहण किया गया तब मेघ हट गए और धूप चमकने लगी। संतों की महिमा अपार है। प्रकृति भी उनकी तेजस्विता का लोहा मानती है।

राज्य का सन्मान

पूज्यश्री के प्रति सन्मान प्रदर्शित करने के लिए राज्य ने डंका, निशाम, लवाज़मा आदि तो भेजा ही, साथ ही पूज्यश्री के शोक में आषाढ़ शुक्ला नवमी को राज्य भर में छुट्टी भी घोषित की। सारे राज्य के स्कूल, कॉलेज तथा आफिस बंद रखे गये। इसी प्रकार बाजार, कसाईखाने भट्टियाँ भी बंद रखने की आज्ञा जारी की गई।

शोक सभाएं

पूज्यश्री के स्वर्गवास का समाचार बिजली की तरह सारे भारतवर्ष में फैल गया। इससे सारे जैन समाज में शोक का समुद्र उमड़ आया। पूज्यश्री के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करनेके लिए स्थान-स्थान पर सभाएं हुईं। बाजार बन्द रखे गए और दूसरे प्रकारों से भक्ति एवं श्रद्धा प्रकट की गई।

स्वर्गवास के समाचारों के बाद फिर दूसरा तार आया—

Conterence extremely sorry to hear sad demise of Pujyashri and prays Almighty for eternal peace to his soul. Irreparable loss to gain Community.

तत्पश्चात महासती श्रीउज्ज्वलकुँवरजी महाराज ने श्रद्धांजलि अर्पित की। आपने मार्मिक शब्दों में कहा—पूज्यश्री के स्वर्गवास से जैन-समाज के सूर्य का अस्त हो गया। इससे आन्तर-सृष्टि में अन्धकार छा गया है। जहाँ सूर्य का प्रखर प्रकाश भी नहीं पहुँच सकता ऐसे अज्ञान तिमिराच्छादित हृदय पटलों को पूज्यश्री ने प्रकाशित किया था। दीर्घजीवन में विशेषता नहीं है। महत्त्व तो आदर्श जीवन का है। पूज्यश्री का जीवन आदर्श था। जिस प्रकार यात्रा के जल, स्थल और आकाश तीन मार्ग हैं और उनमें आकाश मार्ग सर्वोत्कृष्ट है, इसी प्रकार जीवन यात्रा के भी तीन मार्ग हैं—आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक। आध्यात्मिक मार्ग सर्वोत्तम है। पूज्यश्री ने अपनी जीवन यात्रा इसी मार्ग से पूर्ण की। इसीलिए वे पूजे जा रहे हैं और पूजे जाएँगे! समाज का दुर्भाग्य तो यह है कि वह महापुरुषों के लिए फांफां मारता है। मगर जब महापुरुष मिल जाता है तो उसे पचा नहीं पाता। जैन समाज को महापुरुषों का पचाना सीखना होगा।"

पश्चात् कान्फ्रेंस के मानर मन्त्री श्रीयुत चिमनलाल पोपटलाल शाह ने अन्तःकरण से शोक प्रदर्शित करते हुए नीचे लिखा शोक प्रस्ताव उपस्थित किया—

"श्री अखिल भारतवर्षीय श्वे. स्थानकवासी जैन कान्फ्रेंस, श्री श्वे. स्था. जैन सकल-संघ बम्बई और श्री र. चिं. जैन मित्र मंडल बम्बई की तरफ से बुलाई गई यह आम सभा पूज्यश्री १००८ श्री जवाहरलालजी महाराज साहेब के दुखद एवं आकस्मिक स्वर्गवास के प्रति अपना हार्दिक शोक प्रकट करती है। पूज्यश्री जैनसिद्धान्तों के प्रकाण्ड विद्वान्, अहिंसा और सत्य के प्रखर प्रचारक एवं जीव-दया, ग्रामोद्योग, खादी आदि राष्ट्रोद्धारक प्रवृत्तियों के हिमायती थे। ऐसे संयमी चारित्रवान् और विद्वान् धर्मनायक के स्वर्गवास से जैन समाज ने तो सचमुच 'जवाहर' खोया है। जैनेतर जनता को भी विश्वप्रेम, सत्य और संयम के निष्परिग्रही प्रचारक की अनिवार्य क्षति पहुँची है। ऐसा यह सभा मानती है। यह सभा पूज्यश्री गणेशीलालजी महाराज साहेब और उनके शिष्ट-मंडल तथा चतुर्विध स्थानकवासी जैन श्रीसङ्घ के दुख में अपनी हार्दिक समवेदना प्रकट करती है और स्वर्गस्थ पवित्रात्मा को चिरस्थायी शान्ति प्राप्त हो, ऐसी भी शासनदेव से अन्तःकरणपूर्वक प्रार्थना करती है।"

४. श्री श्वे० स्था० जैन सङ्घ, घाटकोपर।
५. श्री सार्वजनिक जीवदया खाता, घाटकोपर।
६. पं० रत्नचन्द्रजी जैन कन्यापाठशाला, घाटकोपर।
७. श्री स्थानकवासी जैन-समाज सङ्घ, राजकोट।
८. दी ग्रेन मर्चेण्ट एसोसिएशन, बम्बई।
९. दी क्लोथ मार्केट एसोसिएशन, इन्दौर।
१०. सराफा बाजार, इन्दौर।
११. श्री स्थानकवासी जैन सङ्घ, इन्दौर।
१२. ,, ,, ,, ब्यावर।
१३. श्री हितेच्छु श्रावक मण्डल, रतलाम।
१४. ,, धर्मदास जैन मित्र-मंडल, खाचरोद।
१५. ,, स्था० जैन बालचर सङ्घ, सादड़ी।
१६. ,, स्था० जैन सङ्घ, जमुनिया।
१७. ,, श्वे० साधुमार्गी शि० संस्था, उदयपुर।
१८. ,, वर्द्धमान सेवाश्रम, उदयपुर।
१९. ,, जैन सभा, अमृतसर।
२०. ,, स्थानकवासी सङ्घ, बड़ी सादड़ी।
२१. ,, श्वे० स्थानकवासी सङ्घ, सादड़ी।
२२. ,, जवाहर मित्र-मंडल, मन्दसोर।
२३. ,, श्वे० स्था० जैन वीर-मंडल, केकड़ी।
२४. ,, जवाहर शोक सभा, बादेवड़।
२५. ,, ,, सींगापेसमल।
२६. ,, जैन गुरुकुल, ब्यावर।
२७. ,, तिलोकरत्न स्था० जैन परीक्षाबोर्ड, पाथर्डी।
२८. श्री जैन रत्न पुस्तकालय, पाथर्डी।
२९. ,, अमोल जैन सिद्धान्त शाला, पाथर्डी।
३०. जाटर सभा, वीले पारले।
३१. ,, स्थानकवासी जैन सङ्घ, माले गांव।
३२. ,, जैन बोर्डिङ्ग स्कूल, कुचेरा।
३३. ,, का० शि० ओसवाल बोर्डिङ्ग, जलगांव।
३४. ,, स्थानकवासी जैन सङ्घ, लुधियाना।
३५. ,, स्था० जैन जवाहर हि० श्रा० मण्डल, उदयपुर।
३६. ,, जैन श्वे० स्था० संघ, कोटा।
३७. ,, शान्ति जैन पाठशाला, पाली।
३८. ,, जैनोदय प्रिंटिंग प्रेस, रतलाम।

३९. ,, स्था० जैन श्रीसङ्घ, नीमच।
४०. ,, ,, ,, अहमदनगर।
४१. ,, ,, ,, चित्तौड़गढ़।
४२. ,, जैन सभा, जम्मू।
४३. ,, महावीर जैन स्कूल, जम्मू।
४४. ,, विजय जैन स्कूल, कानोड़।
४५. ,, सारा बाजार, कानोड़।
४६. ,, सारा बाजार, मालेगांव।
४७. ,, श्री जैनसङ्घ जोधपुर।

इनके अतिरिक्त और बहुत से नगरों और ग्रामों में शोक सभाएँ की गईं।

श्रीजवाहरविद्यापीठ की स्थापना

आषाढ़ शुक्ला १० को प्रातःकाल ९ बजे बीकानेर, गंगाशहर और भीनासर के चतुर्विध संघ की सम्मिलित शोक-सभा हुई। पूज्यश्री के प्रति अपनी श्रद्धांजलि प्रकट करने के बाद श्रीमान् लहरचंदजी सेठिया ने अपील की। आपने कहा—'स्वर्गस्थ पूज्यश्री के प्रति वास्तविक और स्थायी श्रद्धाभाव व्यक्त करने के लिए आवश्यक है कि एक अच्छा स्मारक फंड कायम किया जाय और उसके द्वारा समाज-हित का कोई अच्छा कार्य किया जाय।' कई वक्ताओं ने इसका समर्थन किया पूज्यश्री गणेशीलालजी महाराज ने भी अपनी मर्यादा के अनुसार, संघ के हित में यथाशक्ति सहयो देने की सूचना दी। पश्चात् अपील करने वाले लहरचंद जी सेठिया ने सेठिया-बंधुओं की ओर ११०००) रुपये भेंट करने का वचन दिया। उसी समय बांठिया-बंधुओं ने भी ११०००) रुपये की घोषणा की। उसी समय चंदा एक लाख के लगभग पहुँच गया।

स्व० पूज्यश्री शिक्षा के प्रबल हिमायती थे और धार्मिक शिक्षा पर बहुत जोर दिया थे। अतएव आपकी स्मृति में शिक्षा-संस्था की स्थापना करना उचित समझा गया। तद: भीनासार में 'श्रीजवाहरविद्यापीठ' नाम से एक संस्था स्थापित की गई है। यह संस्था प्रारंभिक रूप में है—शैशवकाल में है। सेठ चम्पालालजी साहब बांठिना के अतिथिगृह में चल रही है। आशा है भीनासर-बीकानेर-गंगाशहर का सम्पन्न श्रीसङ्घ उसे विशाल और रूप प्रदान करेगा।

परिशिष्ट

पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज साहिब

के प्रति

मुनियों, राजा महाराजाओं

तथा

प्रतिष्ठित व्यक्तियों

की

श्रद्धाञ्जलियां

परिशिष्ट नं० १

मुनियों की श्रद्धाञ्जलियां
राजन्य वर्ग की ,,
प्रतिष्ठित व्यक्तियों की ,,
पद्य में ,,

परिशिष्ट नं० २

जवाहर विचार-बिन्दु

परिशिष्ट नं० ३

जयतारण शास्त्रार्थ

पूज्यश्री के प्रति मुनियों की श्रद्धाञ्जलियां

१—प्रभावक पूज्यश्री

(ऋषि सम्प्रदाय के आचार्य पं० रत्न पूज्यश्री आनन्द ऋषि जी महाराज)

शास्त्रविशारद, जैनाचार्य पूज्यश्री जवाहरलाल जी महाराज साधुमार्गी समाज में जवाहर के समान चमक रहे हैं। आपकी व्याख्यान शक्ति बड़ी ओजस्विनी है। यद्यपि पूज्यश्री के साथ रहने का विशेष सौभाग्य नहीं मिला, फिर भी अजमेर मुनि सम्मेलन के अवसर पर आपके दर्शन हुए थे और वाणी सुनने का शुभ प्रसंग भी प्राप्त हुआ। वे दिन मुझे याद आते हैं।

श्रमण संस्कृति की तरफ पूज्यश्री का लक्ष्य होने से लोगों के ऊपर अच्छी छाप पड़ती है, क्योंकि विद्वान् और क्रियावान् दोनों बातें क्वचित् ही मिलती हैं। यही कारण है कि पूज्यश्री ने काठियावाड़ की तरफ विहार करके कान जी मुनि (सोनगढ़ वाले) के पंजे में फँसने वाले अज्ञान श्रावक श्राविकाओं को शुद्ध श्रद्धा में कायम किया। इसी तरह जिस स्थली प्रदेश में श्री ऋषि सम्प्रदाय के ज्योतिःशास्त्र विशारद, पंडित मुनि श्री दौलत ऋषिजी महाराज ने जाने के लिए प्रस्थान किया था, और जैनाचार्य स्वर्गीय पूज्यश्री श्रीलाल जी महाराज ने भी धर्म प्रचार करने की भावना से विहार किया था, परन्तु वे इष्टसिद्धि नहीं कर सके ; उसी स्थली प्रदेश में पूज्यश्री ने तप संयम में सुदृढ़ रहते हुए अपनी विद्वान् शिष्य मंडली के साथ हिम्मत से जाकर चूरू, सरदार शहर आदि स्थानों में जहाँ तेरहपंथी समाज का विशेष प्राबल्य है, जो एक प्रकार के दुर्ग हैं, उन में प्रविष्ट होकर शुद्ध स्थानकवासी धर्म का प्रचार किया। उस प्रदेश के जैनेतर लोग जैन धर्म के रहस्य को नहीं जानते थे, उनके दिलपर भी प्रकाश डाला। यह कुछ साधारण बात नहीं है।

पूज्यश्रीजी ने साहित्यिक सेवा भी उत्कृष्ट रीति से की है। जो कि व्याख्यान-संग्रह में से श्रावक का अहिंसाव्रत, सत्यव्रत आदि बारहव्रतों पर स्पष्टीकरण हितेच्छु श्रावक मण्डल रतलाम ने प्रकाशित किया है। उससे लोगों के अन्तःकरण में धर्म भावना सुदृढ़ होती है। राजकोट व्याख्यान संग्रह, जामनगर व्याख्यान संग्रह, श्री सूयगडांग सूत्र का सविवेचन भाषान्तर आदि प्रयास विशेष प्रशंसनीय हैं।

तेरहपंथी समाज की तरफ से अनुकम्पा की ढालें नामक पुस्तक छपी है। भ्रमविध्वंसन नामक ग्रंथ जयाचार्य जी (जीतमलजी) विरचित है। उस ग्रन्थ में दया, दान, विनय रूप गुण-रत्नों का खण्डन करने के लिए कुयुक्तियां लगाकर जनता की आँखों में धूल फेंकने का काम किया है। उसमें अज्ञान जनता का फँस जाना स्वाभाविक है। गुरुगम से रहित पढ़े लिखे व्यक्ति भी उस के चक्कर में आ जाते हैं। ऐसे अज्ञान और सज्ञान लोगों की दया, दान, विनय की ओर प्रवृत्ति कराने के लिए सचोट शास्त्रीय प्रमाण देकर उनकी कुयुक्तियाँ बताते हुए, शुद्ध धर्म की श्रद्धा बढ़ाने

के लिए 'सद्धर्म मण्डन' नामक बृहत् पुस्तक की रचना की है। उसी प्रकार अनुकंपा विचार नामक पुस्तक भी दया भगवती की स्थापना करने के लिए उसी भाषा में तैयार की। पूज्यश्री का यह कार्य भी आदर्श और अद्वितीय है।

इस कार्य के करने से जैन धर्म और स्थानकवासी जैन सम्प्रदाय का मुख उज्वल हुआ है ऐसा कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है।

पूज्यश्री जी के समान धुरंधर, विद्वान्, प्रतिभासंपन्न वक्तृत्व शक्ति धारक, सुपरिश्रमी और और सुलेखक जवाहर अपने समाज में अनेक उत्पन्न होकर जैन धर्म की उन्नति करें, ऐसी शुभाकांक्षा रखता हूँ।

२—पूज्य-परिचय

(पूज्य श्री रत्नचन्द्र जी महाराज की संप्रदाय के आचार्य पंडितप्रवर पूज्य श्री हस्तीमलजी महाराज)

आज हमारे सामने तीर्थंकर या वैसे अन्य कोई अतिशय ज्ञानी नहीं हैं जो सुनिश्चित रूप से धर्मका स्वरूप समझावें और मतभेद या शंकाओं का निरसन कर सकें। मात्र एक धर्माचार्य ही आज संसार के पथ प्रदर्शक रहे हैं और यह आचार्य पद ही ऐसा है जो तीर्थंकर के अभाव में भी चतुर्विध संघका धर्ममार्ग के उद्बोधन व संचालन आदि के द्वारा नेतृत्व कर सकता है। इसीलिए धार्मिक मर्यादाओं में योग्य परिवर्तन का अधिकार भी शास्त्रकार ने इन के हाथ में दिया है। इन आचार्यों के बहुमत से स्वीकृत नियमावली जीत व्यवहार समझी गई है। इस से निश्चित है कि शास्त्र का सत्यरूप संसार को दिखाने वाले धर्माचार्य ही हैं। मगर इस उल्लेख से पाठक यह नहीं समझ बैठें कि धर्माचार्य नामधारी सभी में यह शक्ति होती है। क्योंकि योग्य धर्माचार्य संसार का तारक है वैसे अयोग्य धर्माचार्य संसार के मारक भी होते हैं। अत एव योग्य धर्माचार्य का संयोग प्राप्त करने के लिए पहले उनके योग्यता सूचक गुणों का परिचय करना आवश्यक है। शास्त्र में इन्द्रिय संयम आदि धर्माचार्य के ३६ गुण बताए हैं, जो प्रायः प्रसिद्ध हैं। किन्तु दशा श्रुतस्कन्ध की चतुर्थ दशा में उनका संक्षेप ८ दशाओं में मिलता है। जैसे— १ आचार विशुद्धि, २ शास्त्रों का विशिष्ट और तलस्पर्शी वाचन, ३ स्थिर संहनन और पूर्णेन्द्रियता ४ वचन की मधुरता तथा आदेयता आदि, ५ अस्खलित वाचना व मूल अर्थ की निर्वाहकता, ६ ग्रहण एवं धारणा मति की विशिष्टता, ७ शास्त्रार्थ में द्रव्य, क्षेत्र व शक्ति की अनुकूलता से प्रयोग करना, ८ समय के अनुसार साधुओं के संयम निर्वाहार्थ साधन संग्रह की कुशलता। इन आठ विशेषताओं के साथ निर्दोष चारित्र धर्म का पालन करना एवं आश्रित संघ को ज्ञान क्रिया में प्रोत्साहित करते रहना यह आचार्य की खास विशेषता है।

मुझे आज जिन पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज का परिचय देने को प्रसंग मिला है, उन में पाठकों को इन विशेषताओं का अधिकांश दर्शन हो सकता है। आप धीर वीर और प्रभावक तथा प्राचीनता का न्याय युक्ति से शोधन करने वाले हैं। आपकी उपदेश शैली स्था० समाज में आदर्श समझी जाती है। आपके प्रवचन क्रान्तिकारी एवं सुधारणा के विचारको लिए रहते हैं। इन उपदेशों ने जिस सम्प्रदाय के आप आचार्य हैं उस में ही नहीं, किन्तु स्था० समाज में क्रान्ति की लहर उत्पन्न कर दी है। आज से ३०-३५ वर्ष पूर्व जो साधु साध्वियों का पण्डित से शिक्षण लेना अधिकांश सम्प्रदायों में (खासकर आपकी सम्प्रदाय में) निषिद्ध समझा जाता था, विरोध का

सामना करके भी आपने उस प्रथा को आवश्यकतानुसार स्वीकार किया और आज जब प्रत्येक साधु साध्वी पण्डित प्रथा को अपनी प्रतिष्ठा समझने लगे और उनके लिए गृहस्थों से चन्दा इकट्ठा करके फंड बनानेलगे तब उसके दुरुपयोगकी आशंका होते ही अपनी सम्प्रदायमें उसका प्रतिबन्ध करके आपने अपवाद रूप से ही उसको अपनाने की छूट रखी है। यह पूज्यश्री की समयज्ञता है। इसके सिवाय चारित्र रक्षण की बाह्य मर्यादाओं में भी निर्भीकता से आपने कई परिवर्तन किए हैं। स्था० समाज की विशाल शक्ति संगठित रूपमें आकर जगत को अपना अनुपम कार्य दिखा सके, इसके लिए मुनि सम्मेलन अजमेर के खास मुनियों के समक्ष "वर्धमान संघ"की एक योजना भी रखी। किन्तु उस समय अनुकूल भूमिकाके अभावसे वह योजना कार्य रूपमें नहीं आ सकी। अस्तु, जैसा समाज का भाग्य। उपरोक्त घटनाओं से आपकी प्रभावशालिता व उदार वृत्ति ज्ञात होती है। बुद्धिपूर्वक स्वीकृत तत्व के आग्रह में जैसे आप दृढ़ थे वैसे प्रेमानुराग में आग्रह त्यागी अतिशय मृदु भी थे। सम्मेलन के सामान्य परिचय के सिवाय मेरा पूज्यश्री से दोही वार समागम हुआ है। प्रथम सम्मेलन के पूर्व लीरी गाँव में और दूसरा जेठाने में। उस समय के वे प्रेमल प्रसंग आज भी स्मृति चिह्न बनाए हुए हैं। विहार के समय तो आपने प्रीति की अतिशयता कर दिखाई। प्रीत्यर्थ या मेरे आचार्यपद के सम्मानार्थ मुझे मांगलिक सुनाने को फरमाया जो प्रेमावेश के बिना छोटे मुँह से बड़ी बात सुनना होता। मैंने भी आपके अनुरोध से मौन खोलकर काठियावाड़ से पुनरावर्तन की कुशल कामना करते हुए मांगलिक सुनाया। उस समय आपकी भावुकता व श्रद्धा का दृश्य दर्शनीय था। साम्प्रदायिक झंझटों को भी आत्मरमण में बाधक समझ कर पूज्यश्री ने कई वर्षों से अपना अधिकार युवाचार्य जी को दे दिया है। अपनी मौजूदगी में ही युवाचार्य जी संघ-संचालन का पूर्ण अनुभव प्राप्त कर लें और अपनेको आत्मरमणमें विशेष लाभ मिले इस दृष्टि से आपका यह कार्य भी आदर्श व दूरदर्शिता पूर्ण है। इस प्रकार आपकी विशेताओं का संक्षिप्त परिचय है। विशेष परिचय पाठकों को जीवन चरित्र से मिलेगा ही। शास्त्र में कहा है कि—

जह दीवो दीवसयं, पइप्पए जसो दीवो।
दीवसमा आयरिया, दिप्पंति परं च दीवंति॥

अर्थात्—आचार्य दीपक के समान है। जैसे दीप सैकड़ों दीपकों को जलाता है और खुद भी प्रकाशित रहता है, ऐसे दीप के समान आचार्य स्वयं ज्ञान आदि गुणों से दीपते और उपदेश ज्ञान आदि से दूसरों को भी दीपाते हैं। अन्त में यही सदिच्छा है कि आप दीर्घायु लाभ करें और "वर्धमान गच्छ" जैसी योजना से समाज का दृढ़ हित साधने में यशस्वी बनें।

३—एक महान् ज्योतिर्धर

(जैनाचार्य पूज्यश्री पृथ्वीचन्द्रजी महाराज)

किसी का नाम अच्छा होता है काम नहीं और किसी का काम अच्छा होता है, नाम नहीं। अच्छा नाम और अच्छा काम किसी विरली आत्मा को ही मिलता है। हमारे सौभाग्य से पूज्य श्रीजवाहरलाल जी महाराज को दोनों प्राप्त हुए हैं। 'जवाहर' कितना सुन्दर, सरस एवं महत्वसूचक नाम है। और काम! वह तो आज जैन संसार के प्रत्येक स्त्री, पुरुष के समक्ष सूर्य के समान प्रकाशमान है।

पूज्य श्री के जीवन का हर पहलू उज्वल है। उनका ज्ञान ऊँचा है, उनका दर्शन ऊँचा है, उनका चरित्र ऊँचा है; अतएव उनका रत्नत्रय ऊँचा है। उनके जीवन का प्रत्येक प्रगति-बिन्दु ऊँचा है।

पूज्य श्री का साहित्य 'जीवन साहित्य' है। उसने सुप्त-समाज में जागरण पैदा किया है। साधुधर्म और गृहस्थ धर्म के पृथक्करण में वास्तविक मार्ग का प्रदर्शन किया है। वर्तमान बीसवीं शताब्दी में, जैन आचार विचारों का महत्व यदि किसी ने नवीन दृष्टिकोण से संसार के सामने रखा है और साथ ही पुरातन संस्कृति का भी संरक्षण किया है तो वह पूज्य श्री जवाहरलालजी महाराज हैं। उन्हें जितना भूतकाल का पता है उतना ही वर्तमान काल का पता है और इन सब से बढ़कर पता है भविष्य काल का। अतएव आप समाज की प्रत्येक परिस्थिति का एक चतुर वैद्य की भाँति निदान करते हुए हमारे सामने उस परिस्थिति के उपचार और परिचालन का आदर्श उपस्थित करते हैं। वर्तमान जैन समाज के पूज्य श्री बहुत बड़े आध्यात्मिक वैद्य हैं, जिनकी चिकित्सा-प्रणाली अमोघ है। जिनके अहिंसा और सत्य के प्रयोगों से हजारों दुष्कर्म दूषित आत्माएं आध्यात्मिक स्वास्थ्य प्राप्त कर चुकी हैं।

पूज्य श्री का भक्तियोग बहुत ऊँची कोटि का है। व्याख्यान देने से पूर्व प्रार्थना के रूप में जब गद्‌गद हृदय से चौबीसी गान करते हैं तो साक्षात् मूर्तिमान भक्ति रस सामने उपस्थित हो जाता है। कट्टर से कट्टर नास्तिक हृदय भी एक बार भक्ति से झूम उठता है। और जब प्रार्थना पर विवेचनात्मक प्रवचन होता है तब शान्त रस का समुद्र ठाठें मारने लगता है। जीवन की उलझी हुई गुत्थियों का गहन जाल एक एक करके सुलझने लगता है। श्रोताओं के अन्तर्हृदय से अविश्वास एवं मिथ्याविश्वास का चिरकाल लग्न पाप मल बाहर बह निकलता है।

पूज्यश्री के प्रकाण्ड पाण्डित्य का परिचय हमें 'सद्धर्ममंडन' से मिलता है। तेरा पंथ समाज की युक्तियों का जाल बहुत विकट माना जाता है। अच्छे अच्छे दिग्गज विद्वान् भी कभी-कभी उनके कुतर्कों में उलझ जाते हैं, परन्तु पूज्यश्री की प्रखर प्रतिभा के समक्ष 'भ्रमविध्वंसन' की एक भी युक्ति सुरक्षित नहीं रह सकी। 'भ्रमविध्वंसन' पर सद्धर्ममंडन वह घातक चोट है जिसकी चिकित्सा के लिए तेरापंथ समाज के पास कोई औषधि नहीं है।

जिनभद्रगणि का विशेषावश्यक भाष्य बहुत दुरूह माना जाता है। किन्तु पूज्यश्री का उस पर कितना अधिकार है, यह चरखी दादरी (जिंद स्टेट) में देखा जब आप शिष्यों को पढ़ाते हुए उस पर मौलिक विवेचन करते थे तो जटिल से जटिल फक्किकाओं को सहज ही में सुलझा डालते थे। आपका आगम ज्ञान भी बहुत उच्च कोटि का है। इसका पता पाठकों को आपके तत्वावधान में सम्पादित होने वाले सूत्रकृताङ्ग के अनुपम संस्करण से मिलता है।

पूज्यश्री की कौनसी विशेषताएँ वर्णन की जायँ और कौनसी नहीं—यह चुनाव ही अटपटा जान पड़ता है। आपके महान् जीवन की प्रत्येक विशेषता अक्षरों का रूप लेना चाहती है, परन्तु महान् आत्माओं के सम्बन्ध में ऐसा कभी नहीं हो सका है। पूज्यश्री वर्तमान जैन संसार के महापुरुष हैं; अतः उनका महान् जीवन कलम के नीचे न अब आ सकता है और न कभी आ-सकेगा। यह तो आपके महान् व्यक्तित्व के प्रति साधारण सा हार्दिक भावना का परिचय मात्र

है। आज आपकी ६२वीं जन्मजयन्ती के अवसर पर जैन जाति के प्रत्येक हृदय में मंगल संकल्प है कि 'पूज्यश्री युग युग चिरंजीवी रहें।'

४—स्थानकवासी सम्प्रदायनो सितारो

(मुनिश्री प्राणलाल जी महाराज)

विश्व मां जेओ आत्माना दरेक गुणोने सम्पूर्ण खीलावी वीतराग ना स्वरूप बनी गया छे ते-ओ सम्पूर्ण गुणी याने अविकारी गुणवन्त आत्मा परमात्मा स्वरूप गणाया छे। ए सिवायना दरेक आत्मा अपूर्ण गणाय छे। चालु वर्तमान काल मां आ भारतवर्ष नो दरेक मानवी पण अपूर्ण गणाय छे छतां जे मानवो सिद्धपद प्राप्त करवाना लक्ष्य बिन्दुए साधक दशामां आत्मगुणोनो विकास करी रह्या छे तेवा अनेक साधको वर्तमान मां विद्यमान छे। ते साधक वर्गमानां पूज्यश्री पण आपणी दृष्टीए एक उत्तम कोटिना साधक गणाय छे। आ सुसाधक पूज्यश्रीए पोतानी आत्म-साधना उपरान्त अनेक आत्माने साधक दशा तरफ लाववानो सारो प्रयत्न कर्यो छे।

पूज्यश्री महान् पुण्यशाली अने प्रभावशाली छे एम ज्यारे तेओना समागम मां जेतपुर स्थाने महापुरुष शास्त्रज्ञ पुरुषोत्तम जी स्वामीनी साथ मां हुँ अने अन्य अमारा सन्तो आव्या हता त्यारे जोवायु हतु। तदुपरान्त पूज्यश्री स्वशास्त्र अने पर शास्त्र मां पण घणाज कुशल छे एम चौद दिननां टुंक सामगम मां समज्यु छे।

पूज्यश्री नी व्याख्यान शैली पण उत्तम अने सुरसवाई थई जैन अने जैनेतर समाज ने आकर्ष्या. ते सारी लाभदायक नीवड़ी छे।

विशेष शु लखु। पूज्यश्री स्थानकवासी समाजना एक सारा जोतरूप गणाया छे।

५ (बोटाद सम्प्रदायके आचार्य तरणतारण आत्मार्थी पूज्य मुनिश्री माणेकचन्दजी महाराज)

प्रसिद्ध वक्ता, जैन शासन दिवाकर परम पूज्य महाराज श्री जवाहरलालजी महाराज श्रीए, सं० १९९२ मां काठियावाड़ जेवी पवित्र भूमि मां तेओए पधारी राजकोट मुकामे प्रथम चोमासु कर्यु। अने एवा विशाल प्रदेश मां स्थले स्थले विचरी जैन तेमज जैनेतर उपरान्त राजा महा-राजाओं ने पोतानी अमूल्य अने सदुपदेशनो मीठी लहाण करी 'दयाधर्म' नी जगत जनो ना हृदय पट पर घणो छाप पाडी जे उपकार कर्यो छे ते अवर्णनीय छे।

सं० १९९४ मां अमे शेषकाल राजकोट हता ते वखते पू० म० श्री जवाहरलाल जी म० श्री नो अमोने समागम थयो। अने तेमनी अमूल्य वाणीनो लाभ पण अमोने मल्यो अने ते वखते 'गुरुकुल' जेवी जे उत्तम संस्था अस्तित्व मां आवी ते पण पू० म० श्रीजवाहरलाल जी महाराज श्री ना सदुपदेश ने ज आभारी छे। अमोने तेओनी साथे खूबज प्रेम बंधायेल छे।

६ (वादिमानमर्दन, शास्त्रार्थ विजयी, अजमेर साधु सम्मेलनके शान्तिरक्षक)

महास्थविर गणि श्री उदयचंजी महाराज

निःसन्देह पूज्यश्री जवाहरलालजी इस समय के आचार्यों में एक श्रेष्ठ और माननीय आचार्य हैं जिन के उपदेश से श्री जैन संघ में बहुत सी उन्नति हुई है और इस समय जैन साहित्य में जो सुन्दर सुन्दर पुस्तकें उपलब्ध हो रही हैं उनका सारा यश इन्हीं पूज्यश्री को है।

७—आचार्य श्री जवाहरलाल जी महाराज का युगप्रधानत्व

(लेखक साहित्य रत्न जैन धर्म दिवाकर उपाध्याय श्री आत्माराम जी महाराज
तथा
कविरत्न उपाध्याय श्री अमरचंद जी महाराज)

आज भारत के एक कोने में, मरुभूमि के सुन्दर नगर भीनासर में जैन संस्कृति का एक महान् उज्वल, समुज्वल, अत्युज्वल प्रकाशमान 'प्रतीक' विराजमान है। आजकल कितनी लेखलियां उन के उपकारों के गुरुभार से लदी हुई कागज के पथ पर दौड़ रही होंगी, और उस सत्पुरुष के चरणों में अपनी अपनी भावभरी श्रद्धांजलियां अर्पण कर रही होंगी! लेखक होने के नाते अपनी लेखनी को भी कुछ लिखने का अभ्यास है; अतः यह क्यों चुप बैठे! यह भी चल पड़ी है, मंगल भावनामय मोतियों की लड़ियाँ अक्षरों के रूप में अर्पण करने के लिए।

एक उपमा है। वर्षा की सुहावनी ऋतु हो। मेघाच्छन्न सुनील नभ से नन्ही नन्ही जलकणिकाएं गिर रहीं हों। फलस्वरूप भूतल पर नानाविध वृक्षावलियों से परिमण्डित उपवन की *शोभा को चार चाँद लग रहे हों। चारों ओर रंग बिरंगे फूलों की भीनी भीनी सुगन्ध* हवा के घोड़े पर चढ़ कर सुदूर देश की यात्रा को जा रही हो। भृङ्गावलियाँ मधुर झनकार के साथ विदाई दे रही हों। भला कौन वह सहृदय सज्जन होगा, जो उपवन की प्रस्तुत मनोमोहक सुषमा को देखने के लिए लालायित न हो। यह साधारण सा उपमान है और उपमेय? वह तो उपमान से अनन्त, अनन्त, अनन्तगुणा बढ़ चढ़ कर है। विद्या एवं चारित्र से संपन्न, दीर्घदर्शी, अनुभवी, देशकालज्ञ, श्रमणसंघ के एक मात्र आधार स्तम्भ, दूरातिदूर देशों में अनेकान्त की जयपताका फहराने वाले कर्तव्य के पथ पर आचार्य पद जैसे महान् गौरव मय पद को पूर्णतया चरितार्थ करने वाले, उत्सर्ग एवं अपवाद मार्ग की जटिलतम गुत्थियों को सहज ही सुलझाने वाले आचार्य देव की अद्वितीय महिमा एवं सुषमा को जानकर कौन प्रसन्न न हो? और कौन होगा वह महाअभागा जो अपने इस भांति परमोपकारी सत्पुरुषों का गुण कीर्तन न करना चाहे। [1]"वाग्जन्य वैफल्यमसह्यशल्यं, गुणाधिके वस्तुनि मौनिता चेत्"

महामहनीय आचार्य श्री जवाहरलाल जी महाराज उन महापुरुषों में से हैं जिन्होंने अपने जीवन की अमर ज्योति जला कर जैनसंस्कृति के महान् प्रकाश से संसार को प्रकाशित कर दिया है। आप जिधर भी गए उधर ही ज्ञान दीपक का प्रकाश फैलाते गए, जनता के बुझे हुए हृदय-दीपकों में ज्ञान प्रकाश का संचार करते गए और शास्त्रोक्त 'दीवसमा आयरिया' के सिद्धान्त को पूर्ण सत्य के रूप में चमकाते गए। साधारण चन्द्र, सूर्य, तारा आदि का महत्त्व अपने चमकने में ही है; किन्तु दीपक तथा आचार्य का महत्त्व अपने सा प्रकाश स्वसंबन्धित दूसरों में उतारने के लिए है। आचार्य श्री ने अपने महान् व्यक्तित्व की छाया में युवाचार्य श्री गणेशीलाल जी आदि वे महान् सन्त तैयार किए हैं, जो भविष्य में अधिकाधिक उद्भासित होते जाएंगे। आचार्य के जीवन का महत्व अपने निर्माण करने तक ही सीमित नहीं है; प्रत्युत उसके जीवन की सफलता पार्श्वचरों के जीवननिर्माण तक है; इस दिशा में आचार्य श्री जी की सफलता शतप्रतिशत अभिनन्दनीय है।

---

१. अधिक गुणों वाली वस्तु को देख कर मौन रहना वाणी और जन्म को व्यर्थ खोना है। यह बात हृदय में असह्य कांटे के समान चुभती है।

आपकी भाषण शैली बड़ी ही चमत्कृति पूर्ण है। जिस किसी भी विषय को उठाते हैं, आदि से अन्त तक उसे ऐसा चित्रित करते हैं कि जनता मंत्रमुग्ध हो जाती है। चार चार पाँच पांच हजार जनता के मध्य आप का गंभीर स्वर गरजता रहता है, और बिना किसी शोरोगुल के श्रोता दत्तचित्त से एकटक ध्यान लगाए सुनते रहते हैं। बड़ी से बड़ी परिषद् पर आप कुछ ही क्षणों में नियन्त्रण कर लेते हैं। आप के श्रीमुख से वाणी का वह अखण्ड प्रवाह प्रवाहित होता है कि बिना किसी विराम के, बिना किसी परिवर्तन के, बिना किसी खेद के, बिना किसी अरुचि के, निरन्तर अधिकाधिक ओजस्वी, गम्भीर, रहस्यमय एवं प्रभावोत्पादक होता जाता है। व्याख्यान में कहीं पर भी भाव और भाषा का सामञ्जस्य टूटने नहीं पाता। प्राचीन कथानकों के वर्णन का ढंग, आपका ऐसा अनुपम एवं सुरुचि पूर्ण है कि हजार हजार वर्षों के जीर्ण शीर्ण कथानकों में नव जीवन पैदा हो जाता है। आप की विचार धारा आध्यात्मिक,तीक्ष्ण, सूक्ष्म एवं गंभीर होती है। सहसा किसी व्यक्ति का साहस नहीं पड़ता कि आपके विचारों की गुरुता को किसी प्रकार हलका कर सके, या उसे छिन्न भिन्न कर सके। आपका कल्पनाशील मस्तिष्क विचारों की इतनी अच्छी ऊर्वरा भूमि है कि प्रत्येक व्याख्यान में नए से नए विचार, नए से नया आदर्श, नए से नया संकल्प उपस्थित करती है।

आप की साहित्य सेवा भी कुछ कम श्लाघनीय नहीं है। श्रावक के बारह व्रतों का आपने जिस सुन्दर और अद्यतन शैली से वर्णन किया है; उस ने जैन आचारप्रणाली के महत्व को आकाश की भूमिका पर चढ़ा दिया है। अहिंसा और सत्य आदि का हृदयस्पर्शी मर्मभरा वर्णन प्रत्येक भावुक हृदय को गद्गद् कर देने वाला है। आप की वर्णन पद्धति इतनी सचोट होती है कि पढ़ने वाला सहसा आप के चरणों में श्रद्धा अर्पण कर देता है। 'धर्मव्याख्या' में तो आपने कमाल ही कर दिखाया है। स्थानांगसूत्र के संक्षिप्त नाममात्र दस धर्मों को लेकर आपने वह अनुपम व्याख्या की है कि जो युग युग तक ग्राम, नगर, राष्ट्र और संघ आदि के गौरव को अक्षुण्ण रख सकेगी। धर्म के साथ राष्ट्र को और राष्ट्र के साथ धर्म को छूते रहने की आप जैसी अनूठी कला विरल ही किसी सौभाग्य शाली सत्पुरुष को मिलती है। आप के हाथों यदि आगमों की टीका का निर्माण होता तो क्या ही अच्छा होता! भूत और वर्तमान का मेल बैठाने में आप जैसा सिद्धहस्त और कौन मिलेगा?

एक आप की सब से बढ़ कर अमर कृति और है। वह है "सद्धर्ममंडन" तेरा पंथ संप्रदाय के आचार्य श्री जीतमल जी ने भ्रम विध्वंसन नामक ग्रंथ में जैनधर्म के अहिंसा, दया, दान, आदि सिद्धान्तों को बहुत विकृत रूप में उपस्थित किया है। आगमों के पाठों को तोड़ मरोड़ कर ऐसा विकृत बना दिया है कि सहृदय पाठक सहसा जैनधर्म से घृणा करने लगता है। आजतक भ्रमविध्वंसन के कुतर्कों का इतना अच्छा स्पष्ट, अकाट्य सयुक्तिक उत्तर नहीं दिया गया था जैसा कि आपने सद्धर्ममंडन में दिया है। आगम पाठों एवं युक्तियों को लेकर वह अभेद्य दुर्ग निर्माण किया गया है, जो युगयुगान्तर तक विपक्षियों को कुतर्कवाहिनी के लिये अजेय, सर्वथा अजेय बना रहेगा। सद्धर्ममंडन की प्रत्येक पंक्ति आप के गंभीर आगमाभ्यास का प्रमाण है। कहीं कहीं तो आप इतनी सूक्ष्मता में उतर गए हैं कि बड़े बड़े तर्क शास्त्री भी जहां पहुँच कर हतप्रभ हो जाते हैं। आप केवल सद्धर्ममण्डन लिख कर ही सन्तुष्ट न हुए, प्रत्युत थली में जाकर तेरा पंथ समाज से साक्षात् शास्त्रीय टक्करें भी लीं। धर्मजिज्ञासु जनता जो मिथ्या प्रपंच में फँसी उलझ रही थी, आपके सत्यसमर्थक प्रचण्ड व्याख्यानों के प्रकाश से उद्बुद्ध हो उठी और शीघ्र ही दया दान रूप

सत्य धर्म पर आरूढ़ हो गई। जानने वाले जानते हैं कि तेरापंथ समाज का संगठन कितना द
होता है, उनके विरोध में प्रचार करने वालों को किन रोमहर्षण कठिनाइयों का सामना करन
होता है। किन्तु आपके अदम्य साहस ने आपत्तियों की कोई परवाह न की। दृढ़ता से कर्तव्यप
पर अग्रसर होकर माया का जाल एक बार छिन्न भिन्न कर ही तो दिया। आप का यह कार्य जै
इतिहास के उन सुनहले पृष्ठों में से है, जो शत शत वर्षों तक अध्ययन का प्रिय विषय बने रहें
तथा समय समय पर सम्यग्ज्ञान का विमल प्रकाश देते रहेंगे।

मानव जीवन के उत्थान के दो पहलू हैं—विचार और आचार। विचार के बिना आचा
निष्प्राण रहता है और आचार के बिना विचार। दोनों का समतुलन सौभाग्य से इनी गिनं
आत्माओं में ही दृष्टिगोचर होता है। हर्ष है कि पूज्य श्री दोनों ही पहलुओं से उन्नत हैं। आ
के आचार और विचार दोनों ही एक दूसरे के पूरक हैं। आपकी आचार सम्बन्धी कड़क कार्य
ख्यातिप्राप्त है। जब से आपने आचार्यपद का गुरुतर भार संभाला है, आज तक आप कर्तव्य वे
प्रति सतत जागरूक रहे हैं। आगम में संयमसमाचारी, तपसमाचारी, गणसमाचारी, आदि जितन
भी समाचारियों का उल्लेख आया है; आप ने सभी के महत्व को यथास्थान सुरक्षित रक्खा है
अपनी शासन संबन्धी कठोर नीति के कारण आप के मार्ग में बाधाएं भी कुछ कम उपस्थित नहं
हुईं। किन्तु सब विघ्नबाधाओं को कुचलते हुए, सब की खरी खोटी सुनते हुए, निर्भय निष्कम्प
गजगति से अपने कर्तव्य पथ पर दृढ़ता से बढ़ते ही गए। दशवैकालिक सूत्र के "अणासए
जो उ सहिज्ज कंटए, वईमए कन्नसरे सपुज्जो' के कथनानुसार सच्चे शब्दों में आप पूज्यपद के
अधिकारी हुए।

आप का विहार क्षेत्र अत्यधिक विशाल है। आपने अपने पर्यटक जीवन में मारवाड़, मेवाड़,
मालवा, गुजरात, पंजाब प्रान्त आदि दूर दूर तक के प्रदेशों में भ्रमण करके जैन संस्कृति का विशुद्ध
रूप जनता के समक्ष उपस्थित किया है और भगवान महावीर के शासन का गौरवगान गुंजाया
है। जहाँ आप के पास साधारण से साधारण जनता पहुँची है, वहाँ देश के धुरंधर अधिनायक
महात्मा गाँधी जैसे नेता भी श्रद्धा और स्नेह का अर्घ्य लिए पहुँचे हैं। आज के युग में गाँधीजी
का महान् व्यक्तित्व भारत की सीमाओं को लाँघ कर दूर दूर फैला हुआ है। राष्ट्र के इस महान्
नेता का आप जैसे सन्तों की सेवा में पहुँचना वस्तुतः श्रमण संस्कृति के लिए महान् गौरव की
बात है।

आपका महान् व्यक्तित्व अनेकानेक चमत्कारों से भरा पड़ा है। जीवन का बहुमुखी होना
ही युगप्रधानत्व के महान् गौरव का प्रतीक है। आचार्य श्री सभी के आदरास्पद हैं। जैन संस्कृति
की महान् विभूति हैं। उनकी सेवा में श्रद्धांजलि अर्पण करना प्रत्येक सहयोगी का कर्तव्य है।
इसी कर्तव्य के नाते उपरोक्त पंक्तियां लिखी गई हैं। हम समझते हैं कि आचार्य श्री की महत्ता
इन अक्षरों में आबद्ध नहीं हो सकती, फिर भी भाषण और लेखन मनुष्य के आन्तरिक भावों के
परिचय का आंशिक किन्तु अनन्य संकेत है। हृदय का पूर्ण चित्रण इसमें नहीं हो सकता।

आचार्यश्री के जैन संघ पर महान् उपकार हैं, उन्हें स्मृतिपथ में लाकर पंजाब प्रान्त के
सुदूर प्रदेश में अवस्थित हमारा हृदय अतीव पुलकित है, हर्षित है, आनन्दित है। 'चिरंजीव
महाभाग।'

आचार्य श्री के प्रति हम क्या मंगल कामना करें ! उनका महान् उत्कृष्ट जीवन ही मंगल मय है ! जिसके लिए भगवान् महावीर स्वामी ने भगवती सूत्र में कथन किया है--

आयरिय उवज्झाएणं भंते ? सविसयंसि गणं अगिलाए संगिण्हमाणे अगिलाए उवगिण्ह-माणे कतिहिंभवग्गहणेहिं सिज्झति जाव अंतं करेति ? गोयमा ! अत्थेगतिए तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झति, अत्थेगतिए दोच्चेणं भवग्गहणेणं सिज्झति, तच्चं पुण भवग्गहणं णातिक्कमति ।

(भगवती श० ५, उ० ६ सू० २११)

'शुद्ध भावना से गच्छ की सार-सँभाल रखने वाला आचार्य तीसरे भव में तो अवश्य ही मोक्ष प्राप्त करता है । इससे बढ़कर जीवन की सफलता के सम्बन्ध में और कौनसा मंगल प्रमाण हो सकता है ? परन्तु संक्षेप में संपूर्ण जैन समाज की हार्दिक भावनाओं के साथ हम भी अन्त-र्हृदय से भावना करते हैं कि आचार्य श्री की जैन संसार में अभी बड़ी आवश्यकता है । उन जैसा अनुभवी, कार्यदक्ष एवं प्रौढ़ विचार आचार्य मिलना कठिन है । जैन संसार को आपकी पवित्र छत्रछाया चिरकाल तक मिलती रहे और उससे जैन समाज की दिन प्रति दिन अधिकाधिक सर्वा-ङ्गीण उन्नति होती रहे । 'किं जीवनं दोषविवर्जितं यत् ।'

८—एकज आचार्य

(योगनिष्ठ मुनिश्री त्रिलोकचन्द जी महाराज)

साधु पणुं लेवुं साव सहेलुं छे, परन्तु साधुताना आदर्श ने पहुंचवुं अने तेने परिपूर्ण जिन्दगी सुधी पालवुं ते बहुज विकट छे । सिद्धान्तवादी पुरुषोज आपणा जीवन मां मार्गदर्शक थई शके छे । एवां पुरुषो मां ना एक पूज्य श्री जवाहरलाल जी महाराज ने हुं पोते मानुं छुं ।

तेओ श्रीनो अने मारो समागम बहु लाम्बो नथी । अमदावाद माधवपुरा मां हुं एमना दर्शन ना माटे हांसोल गाम थी आवेलो । बे कलाक एकान्त बेठेला । योगविषय नी जिज्ञासा जाणी मने बहु आनन्द थयो । साठ थी सित्तेर वर्ष नी दीक्षा पर्याय होवा छतां मनोनिग्रह करवानी अने करावानी अंशमात्र पण तमन्ना रहेती नथी । त्यारे तेओ श्रीए निर्विकल्प स्थितिमां रही शकाय याने मनोनिग्रह करी शकाय ए वस्तु नी चर्चा मारी साथे करी हती । हूं तेओ श्रीने पूर्ण संतोष आपी शक्यो के नहीं ते तेओ श्री कही शके । परन्तु निर्विकल्प स्थितिनी प्राप्ति माटे एकांत मां रहेवुं होय तो पण तेओ श्रीए पोतानी तैयारी बतावी ।

आपणा साधुसमाज मां द्रव्यानुयोगनो अभ्यास घणाज ओछा प्रमाण मां होय छे। कथानु योग, चरणानुयोग, गणितानुयोग ए त्रण योग करतां द्रव्यानुयोग जैन आगमनी इमारत उठावी शके छे। षट्द्रव्यो नुं ज्ञान ए सूत्रधारी ने तेनां शास्त्रो मां श्रुतकेवली गणाव्या छे । मने जे जे द्रव्यानुयोगना ज्ञाताओ मल्या छे अने चर्चाओ थई छे तेमांना केटलाकोए द्रव्यानुयोगना ज्ञाता तरीके पूज्यश्री जवाहरलाल जी महाराज ने गणावी मुक्तकंठे वखाण कर्या छे।

पंचमकाल नी व्यापकता तो सर्व स्थले ओछावत्ता प्रमाण मां देखाय छे । एथी संघाड़ा संघाड़ा वच्चे भाग्येज ऐक्य जोई शकाय छे । कोई महान् पुरुष नो उदय होय तो एक गच्छ ना आचार्य नी आज्ञाए एक गच्छ वर्ती शके छे । आवा तमाम गच्छ अगर संघाड़ा ना आचार्य मली ने पोताना नियामक तरीके एकज आचार्य ने निमवानो प्रसंग उपस्थित थाय तो हुंतो पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज ना तरफ अंगुली निर्देश करी शकुं ।

१—जैन समाजना क्रान्तिकार आचार्य

(आत्मार्थी मुनिश्री मोहनऋषि जी महाराज)

जेम दारूडियो राजपंथ त्यजीने कंटक पथ स्वीकारे छे ने राजपंथ बतावनार ने मूर्ख माने छे तेज स्थिति सामाजिक तथा धार्मिक क्षेत्र मां अनुभवाय छे ने तेमां जो कंई सुधारनुं आशामय कीरण देखातुं होय तो वर्तमानना आपणा परम प्रतापी धर्माचार्य पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराजनोज प्रताप छे। तेओ श्रीए समाज तथा सम्प्रदायना खुशामदखोरी नो खुशबोमय पुष्प पंथ त्यजीने नग्न सत्यमय कंटकमय पथ पोताना प्रयाण माटे आदर्यो ने तेमां तेओ श्रीने सफलता मली चुकी छे, वरी चुकी छे। तेओश्रीनुं जीवन कथन सफलता ने वरेल छे।

धार्मिक तथा सामाजिक नियमोमां व्यापक अंधाधुंधी श्रीजीए अनुभवी तेमनो अन्तरात्मा जैन शासन ना श्रावकोना दयामय जीवन जोईने ककली उठ्यो सावद्य जीवन, धंधा, व्यवसाय खानपान, वस्त्राभूषण आदि नो निर्णय। ने निर्वद्य ने सावद्य, अल्पारंभ ने महारंभ, ने महारंभ ने अल्पारंभनी मान्यतानो प्रचार आ प्रमाणे व्यापक अनर्थ जोई श्रीजीए पोतानी प्रखर व्याख्यान धारा द्वारा समाज पर प्रकाश फेंक्यो, जे प्रकाश ने समाज जोई न शकी। जेम घुवड़ सूर्यना प्रकाश ने न जीखी शके तेम श्रीजीना ज्ञान प्रकाश ने न जीखी शकी ने जेम घुवड़ सूर्यना प्रकाश ने अंधकार माने छे तेम श्रीजीना उपदेशने सावद्य—पापमय मानवा लाग्या ने ते माटे जैनत्व थी अज्ञ ने सम्प्रदायांध साधु तथा श्रावकोए यदवा तदवा आलाप करवो शुरू कर्यो छतां ते बाल जीवो ना प्रलाप पर ध्यान न आपतां सत्य जैन धर्मनुं स्वरूप समजाव्युं ने तेनो असर समाजना मोटा भाग पर पड़ी पण सम्प्रदायान्धों नी अज्ञ समाज पूर्ववत् वर्तमान मां पण घुवड़ दृष्टि ने लीधे कायम छे। ते बाल वर्ग श्रीजी ने अपमानित करवा अनेक प्रयत्नो कर्या, पण जेम सूर्य सामे घुवड़ पोतानी शक्ति प्रमाणे लाखो प्रयत्न करवा छतां सूर्यना एक किरण ने पण दाबी शकतो नथी, तेम सम्प्रदायान्धो निष्फल थया ने तेमनी निष्फलता अज्ञानता जेमनीतेम तेमनी बाल दशा ने लीधे कायम छे।

वर्तमान मां वीसमी सदी मां लोंकाशाहना जमाना करतां पण समाजनी सविशेष करुणापात्र ने विज्ञान ने लीधे यन्त्रवादी महारंभी प्रवृत्ति अनुभवाई; जेथी श्रीजीए समाज मां अल्पारंभ ने महारंभनी व्याख्या नो बोध आपवो शुरू कर्यो।

समाजनी बाल समजना नमूनाः—

श्रावक लीलोतरी वेची न शके पण विलायती दवा निर्भयता थी वेचीशके ने तेमां पोतानुं सन्मान समजे छे ने लीलोतरी वेचनार ने पापी ने दयापात्र माने छे, पोताने धर्मात्मा मानी संतोष वेदे छे. धान्य नो वेपार न थाय पण मोतीनो व्यापार थई शके.

मीठु या माटी न वेचाय पण विलायती टाल विलायती नलियां तथा चीनी ना कप रकाबी आदि वेची शकाय, माटीना वासण न वेचाय पण धातुना वेचाय ने माटीना वासण करता धातुना वासण वेचवा मां ओछुं पाप.

माटीना कोड़ोया न वेचाय विजली ना दीवा वेची शकाय. गेस ना दीवा वेची शकाय, दूध न वेचाय पण वेजीटेबल घी वेची शकाय, लाकडां न वेचाय पण कोलसा वेचाय. वांस ना पंखा न वेचाय पण विजली ना पंखा वेचाय. वांस न वेचाय पण लोढ़ा नम गडर वेचाय। फूल न

वेचाय पण अतर वेचाय. कपास न वेचाय पण चरबी ना तथा रेशम ना वस्त्र निष्पाप मानी निर्भयता थी वेचाय. घाणी न चलावाय पण तेल नी मील खोलाय. चर्खा नो धंधो न कराय, मील खोली शकाय, गाड़ा न चलावाय न वेचाय पण मोटर वेचाय तथा चलावाय.

आदि व्यापार ना विषय माँ अंधाधुंध महारंभ ने अल्पारंभ ने अल्पारंभ ने महारंभ. आवी समाजनी विपरीत समज माटे श्रीजीए प्रकाश पाड्यो ने समाज ने सम्यक् पंथ बताव्यो के गृह उद्योग करतां यंत्रवाद मां सविशेष आरंभ ने महापाप छे. जीवनोपयोगी वस्तुओ सिवायना तमाम अन्य विलासी श्रृङ्गारो ने शोखना पदार्थों आत्मानुं पतन करे छे. तेवा पदार्थों नो व्यापारी पोताना एक ना स्वार्थ माटे करोड़ो नुं पतन करे छे. यंत्रवाद थी लाखो मानव तथा करोड़ो पशुओ नी हिंसा थाय छे. मील मालेक तेनां वस्त्र वेचनार खरीदनार पहेरनार सीवनार धोनार ने खानार तमाम यंत्र वादना महा पाप ने पोषण आपे छे. गृह उद्योग ते आर्य धंधो छे. यन्त्रवादी साधनो ते अनार्य छे.

व्यापार नी श्रावक ने विलासी साधनो नो विनाश थतो होवा थी अंध परम्पराए श्रीजीनो उपदेश सावद्य मान्यो ने ते माटे अनेक मिथ्या दलीलो ने कुतर्कों करवा लाग्या. छतां श्रीजी पोताना सत्य सिद्धान्त माटे आज सुधी अचल रह्या छे ने रहेवा माटे, सर्व ने बोध आपे छे।

धर्मने नामे पण व्यापक अंधाधुंधो जोईने श्रीजी नो आत्मा विचार मग्न बन्यो, क्यां प्रभुनो अहिंसा संयम सादगी ने रसना विजय नो मार्ग अनेक्यां दया पालवा ना निमित्ते रात्रे तथा दिवसे कंदोई नी भट्टिओ चलाववी ने विविध प्रकारनी नवी नवी मीठाइओ मगाववी ने दया ना त्याग तप व्रत मां ठांसी ठांसी ने खावानो रिवाज. रसना ने वश थई ने विशेष खावानो स्वभाव ने पाचन न थवाथी शरीर मां अनेक प्रकार ना रोगो नी उत्पत्ति तथा मनुष्यो ने अजीर्ण ना ने दस्त लाग वाना रोगनी गंदकी अनुभवी. जेथी श्रीजीए दयाना व्रतमां सादु भोजन करवानो उपदेश आप्यो ने कंदोई ना त्यांनी अयत्नामय मीठाईओ खरीदवाना महा पाप थी बचवा माटे समाज ने उपदेश आप्यो छे. दर्शनार्थे आवनार माटे पण विविध प्रकार नी मीठाइओ बनवा लागी तो तेनो पण विरोध कर्यो ने सादा भोजन थी संतोष मानवानो बोध आप्यो. आ उपदेश थी रसना लोलुपी रोषे भराया पण श्रीजीए पोतानो उपदेश प्रवाह चालु राख्यो ने समाज ने महारंभ ना पापमांथी बचावी समाज पर परम उपकार करेल छे.

बाल लग्न, वृद्ध लग्न, कन्या विक्रय, वर विक्रय, लग्न तथा मरण पाछल थतां जमणवारो आ प्रथा बंध करवा माटे पण श्रीजीए पोतानो उपदेश प्रवाह वड़े वडावी समाज पर महान् उपकार कर्यो छे.

नाना काची उमर ना बलद या घोड़ा गाड़ी ने जोड्याहोय ने तेमां बेसनार मानव दयालु न गणी शकाय तेम बाल लग्न मां भाग लेनार तो सविशेष दया करुणा तथा मानवता हीन मानी शकाय. आवा प्रकारनी अकाट्य दलीलो थी समाज वस्तु स्वरूप समजती थई ने पूज्यश्री ना प्रवचन नी परम प्रशंसक बनी.

आनंद तथा कामदेव आदि श्रावको ४० हजार, ६० हजार ने ८० हजार सुधी गायो राखता हता, तेथी पशुओनी हिंसा थती न होती, खेती ने पोषण मलतुं. दुष्काल आदि नो भय न होतो त्यारे वर्तमान नो श्रावक समाज गोपालन ने खेती करवा मां पाप मानवा लाग्यो ने बाजारू घी

खावा मां ने व्याज नो धंधो करी पोतानु' पेट भरवा मां पोतानु' जीवन पाप रहित ने धार्मिक मानना लाग्यो, आवी समाज नी विपरीत समज माटे पण पूज्य श्री ने प्रकाश नाखवानी फरज पड़ी काची समज ने काची आंखवाली समाज श्रीजीनो उपदेश पाचन न करी शकी. ने उपदेश नो विरोध थवा लाग्यो, छतां श्रीजी सत्य सिद्धान्त मां परम दृढ़ रह्या ने.

मुंबई ना कसाई खाना नो अनुभव श्री जी ने थयो नित्य हजारो पशुओ दूध माटे कपातां अनुभव्यां आ प्रत्यक्ष देखाव थी बजारू दूध तो लोही करतां विशेष पवित्र नज मानी शकाय तेवा दृढ़ निश्चय मां वृद्धि थई ने मुंबई नी जनता ने बजारू दूध पीवानु' परम पाप समजाव्यु'. पशुओ प्रति पोतानी फरज समझावी जेथी त्यांना विचारशील श्रावकोए कसाई खाते कपाता पशु अटके ने जनता ने अहिंसक शुद्ध दूध मले एवी योजना विचारी ने ते प्रमाणे श्रावकोए गोरक्षक संस्था नी स्थापना करी; जेना प्रतापे हजारो कतलखाना मां कपातां पशुओनी रक्षा थई ने नित्य हजारो मानवोने शुद्ध अहिंसक दूध मली रहेल छे।

समाज पण बजारू दूध ने हिंसक दूध मानवा लागी ने पशुओनी प्रतिपालना करी, अहिंसाधर्म नी आराधना करवा लागी।

व्याजखाउ व्यापारीओ ने समजाव्यु' के व्याजना लोभे वेपारीओ कसाई आदि ने पण पैसा धीरे छे ने कीड़ी मकोड़ा नी दया पालनार पोताना पैसा थी व्याजना लोभे कसाई ना धंधा ने उत्तेजन आपे छे. ते धंधो परम पापनो छे।

कापड़ना वेपारी ने रूपीया व्याजे आपनार पण चरबीवालां तथा रेशमनां पापमय व्यापार ने उत्तेजन आपे छे ने ते व्याजखाउपण ते पापनो भागीदार बने छे।

व्याजनो धंधो या सट्टा नो धंधो तेने समाज पवित्र ने पापरहित मानती हती पण ते धंधा सविशेष पापमय समजावी ते धंधाना पाप थी बचावी श्रीजी समाज नी महान् रक्षा करी शक्या छे।

बेंकमां व्याजे रूपीया आपनार ना रूपीया बेंक तोप बंदूक मशीनगन ने बोम्ब गोला बनाववाना कारखाना ने विशेष व्याजे आपे छे ने तेज बोम्ब गोला तथा बंदूक नी गोलीओ बेंक मां व्याजे मूकनारनी छाती मां वागे छे तो मरण पामे छे। तेना रुपीया बेंक मां रही जाय छे।

मुसलमानों मां व्याज लेवानी प्रथा नथी। त्यारे साहूकारो व्याज वसूल करवा माटे कचेरी मां दावा करे छे ने गरीब ना घर, खेतर तथा पशु आदिनु' निर्दयता थी लीलाम करावे छे।

कसाई मछली मार या अन्य पापना धंधा करनार ने पोतानी एज दूकान नु' पाप लागे छे त्यारे व्याजखाऊ वेपारी व्याज वसूल करवा माटे तमाम कसाइयो तथा अन्य पाप ना व्यापारी ओनी दूकान नी चिन्ता करे छे. कसाई नी दुकान सारी पेठे चाले तोज तेने व्याज टाइम पर मलीशके, कसाई एकज दुकान चलावे छे त्यारे व्याज खाउ सेंकडो कसाइओनी दुकानो चलावे छे कसाई ने पोताना धंधा माटे पश्चात्ताप थाय छे त्यारे व्याजखाउ ने पश्चात्ताप ने बदले विशेष व्याज मलवा थी प्रमोद अनुभवाय छे।

पूर्वना साहूकारो कुवा वावड़ी धर्मशाला औषधालय ने सदाव्रतो माटे प्रतिवर्ष लाखो रुपीया दानमां खरचता हता त्यारे वर्तमान नो व्याजखाउ व्यापारी मक्खीचूस बनी व्याज द्वारा पाई पाई भेगी करी पोतानी पाप परंपरा मां वृद्धि करे छे

जेना हाथ पग न चलता होय तेवा लुला लंगड़ा आंधला बहेरा ने मुंगा माणसो व्यापार न करी शके तो तेवा आपत्ति काल समजी ने व्याज थी· विधवा, अनाथ स्त्री वृद्ध पोतानु' पेट भरी शके छे।

कोड़ी, पाई तथा पैसा थी जुगार रमनार सरकार नी सजाने पात्र थाय छे त्यारे नित्य सट्टा मां लाखो नी हार जीत करवा छतां सरकार पोते तेने सन्मान आपे छे ने ते साहूकार मनाय छे आ थी विशेष आश्चर्य अन्य शु' होई शके ?

चामड़ा नो व्यापारी तथा घी नो व्यापारी बन्ने नफा नी आशा राखे छे। सुकाल थाय तो पशु न मरे या पशु मां रोग फेलवा न फामे तोज चामडु' मोंघु' थाय ने तेने नफो मली शके छे त्यारे घी वाला ने दुष्काल पड़े या पशु मां रोग फेलाय तोज घी मोंघु थये नफो मली शके छे बन्ने नी भावना पर आधार छे।

धान्यना व्यापारी पण नफा नी आशाए व्यापार करे छे ने दुष्काल पड़े तेज वर्ष तेमने माटे सारु' गणाय छे. प्रजा मां रोग चारो वधे त्यारे डाक्टर कमावानी ऋतु माने छे प्रजा मां क्लेश वधे त्यारे वकील कमावानी ऋतु माने छे.

लड़ाई मां तमाम पदार्थों ना भावो वमणा त्रणगणा थवा थी व्यापारी प्रसन्न थाय छे ने लड़ाई बध थवा थी भावो घटी गया थी व्यापारी खेद नो अनुभव करे छे लड़ाई जल्दी पूरी थाय तेवी भावना लड़नार राजाओ नो होय छे त्यारे व्यापारीओ लड़ाई विशेष लंबाय तो विशेष लाभ मले तेवी भावना राखे छे जेथी लड़नार राजाओ करतां पण व्यापारी तंदुल मच्छवत् विशेष मलीन भावना भावी पाप उपार्जन करे छे.

आवा प्रकार नी पूज्य श्री नी सचोट दलील थी श्रोताओ ना मन पर शीघ्र असर थवा पामे छे छतां केटलाक मताग्रही पोतानी मिथ्या समज ने सत्य मानी तेवी समज नी स्थापना तथा प्ररूपणा करे छे ने पाप परंपरा मां वृद्धि करे छे.

समाज नी समज नो प्रवाह अंधपरंपरा नो छे छतां प्रवाह ने भेदी ने श्रीजीए समाज समीप सत्य तत्त्व मूकी ने समाज पर परम उपकार कर्यो छे.

धार्मिक विकृतिओ माटे पण श्रीजीए पूर्ण प्रकाश पाडेल छे.

दयाकरो ने लीलोतरी न खाय, पण मेवा मीठाई खावामां पाप न माने.

आठम चौदस लीलोतरी न खाय पण झूठ बोलवाना या गरीब ने ठगवाना विशेष व्याज या नफो न लेवाना त्याग न करी शके.

पर्वना दिवसे स्नान करवा मां पाप माने पण तेवु' पाप चरवी ना रेशमनां आभूषण पहेरवा मां न माने।

दलवा खांडवा भरडवाना त्याग करे पण ते दिवसे रसास्वाद माटे विविध प्रकार नी वानीओ बनाववाना त्याग न करे.

रात्रि भोजन ना त्याग करे पण सीनेमा रात्रे जोवा न जवु' तेवा त्याग भाग्येज करे.

एक वखतना जमवाना या आयंबोलना त्याग करनार घणा छे. पण व्यापारादि मां मात्र एकज भाव बोलनार अल्प छे ने व्यापार मां असत्य बोलवा मां पाप मानवा मां भाग्येज आवे छे.

उपवास करवो सरल अनुभवाय छे. पण चाय कपना त्याग करवा माटे ध्यान अपातु' नथी.

नवकारसी या पोरसी करवानो रीवाज छे पण तेटला समय माटे सत्य या क्षमामय जीवन माटे भाग्येज ध्यान अपाय छे.

काचु पाणी पीवाना त्याग कराय छे. पण ग़रीबो पासे थी विशेष व्याज या विशेष नफो लेवा मां भाग्येज पाप मानवामां आवे छे.

आदि त्याग प्रत्याख्यान माटे ध्यान अपाय छे पण व्यापार मां सत्य नीति न्याय नो प्रमाणिकपणानो व्यवहार राखवामाटे भाग्येज लक्ष आपवां मां आवे छे. आ विषय पर प्रकाश पाड़ी ने श्रीजीए समाज नो व्यापार तथा व्यवहार मां सत्य नीति ने न्याय मय जीवन वीतावबा माटे समाज ने सत्यबोध आपी जागृत करी छे.

धर्मना सत्य स्वरूप ना बोध ना अभावे धर्मना नामे मानव ज्यां त्यां फांफां मारतो अनुभवाय छे ने पोताने धर्मात्मा मानवानो ढोंग करे छे ने जगत पासे थी धर्मात्मा नु प्रमाण पत्र मेलववा यत्न सेवे छे.

मोती नो व्यापार करे छे ने माछलाने ममरा नाखे छे.

रेशम नो व्यापार करेछे ने गरणां नी प्रभावना करे छे.

मील चलावे छे ने शरीर पर खादी धारण करे छे.

संघ जमाड़े ने ग़रीबों ने मजूरी आपवा मां करकसर करे. अन्याय करे.

रोज सामायिक करे ने बजार मां एक पैसा माटे क्लेश झगड़ा ने गाला गाली करे.

रोज व्याख्यान सांभले पण वचननो संयम न राखी शके प्रतिक्रमण नित्य करे पण प्रमाणिकत्वानु पालन न करी शके.

खानपान ना द्रव्यो नी मर्यादा करे पण द्रव्य कमावानी मर्यादा न करे.

पौषध करे ने पारणु करी ने कचेरी मां झूठो दावो मांड़े

हजारोनु दान आपे ने ग़रीबो थी लेवाय तेटलु विशेष व्याज ने विशेष नफो ले. व्यापार मां असत्य अनीति करे ने बारह व्रत नी पुस्तक छपावी प्रभावना करे. ।

पृथ्वी पाणी वनस्पति नारकी देवता पशु तथा पक्षी साथे खमत खामणा करे पण मनुष्यो साथे वैर राखे.

आवा प्रकार ना सगवड़ीया नियमो ने धर्म ना नियमो मानी समाज धर्म ने मोक्ष मार्ग मानती हती त्यारे श्रीजीए सत्य व्रत नियम ने प्रत्याख्यान नु स्वरूप समजावी सत्य वस्तु स्वरूप समजाववा माटे समाज ने नवीन प्रेरणा आपी छे.

वर्तमान मां श्रावको ना जीवन मां जेवी अंधाधुंधी जोवामां आवे छे तेथी विशेष दयापात्र स्थिति साधु समाजनी श्रीजीए अनुभवी शिष्य ना लोभी साधु आर्याओ योग्य नो विचार कर्या सिवाय जेवा तेवाने या वेचाता छोकरा छोकरीने लेवरावीने दीक्षा आपवा लाग्या ते थी साधु समाज मां शिथिलाचार ने शासन तथा जैनागम विरोधी प्रवृत्ति श्रीजीए अनुभवी. साधु संस्था नी पामर ने पतित दशा जोई श्रीजीए शासन नी उन्नति माटे सविशेष जागृत थवा ने अयोग्य दीक्षाओ अटकाववा माटे आचार्य सिवाय कोईए पोताना शिष्यो न बनाववा नवा शिष्यो मात्र आचार्यनी नेश्राय मां करवा. आ नियमनु पालन थायतो गमे तेवा जेवातेवा ने अयोग्य दीक्षा आपे छे ते अटकी जाय. आ पवित्र आशये अयोग्य दीक्षा पर प्रतिबंध मूक्यो.

भिन्न भिन्न सम्प्रदायो नी भिन्न भिन्न मान्यता ने समाचारी जोई ऐक्यता माटे संगठन माटे अजमेर सम्मेलन समये यत्न सेव्यो छतां ते योजना अमल मां न आवी शकी ने निरंकुशता नो पवन वधवा लाग्यो.

साधु साध्विओ वेचाता शिष्यो लेवा माटे, पण्डितो राखवा माटे, पुस्तको छपाववा माटे पोताना मण्डल तथा समिति ने धनवान बनाववा मटे, पोताना नाम नी संस्थाओ खोलाववा माटे, पोताना फोटू पड़ाववा माटे तेना ब्लोक बनाववा ने प्रचार करवा माटे साथे मुनीमो, पण्डितो राखवा लग्या छे ने तेमनी द्वारा अनेक बहाना तले द्रव्य स्वहस्ते नहीं पण पर हस्ते लेवा लाग्या पुस्तकों छपाववी ग्राहको बनाववा, वेचवी पैसा एकत्र करवा ने पुनः छपाववी आवी साधु समाज नी प्रवृत्ति थी श्रीजीए वीर संघ या ब्रह्मचारी वर्ग नी मध्यम योजना विचारी जेथी साधु धर्म चारित्र धर्म नी मश्करी थवा न पामे. ते योजना हजीसुधी मूर्त स्वरूप मां आवी नथी. ने साधुता ने नामे असाधुता, दंभ ने पाखंड अनुभवाय छे. जेथी श्रीजीए सविशेष प्रकाश पाड़ी निवृत्ति धारण करी ने एकान्त आत्म साधना ना मार्ग ग्रहण करवानी पोता नी भावना सफल करी छे.

साधु संस्था मां पण्डित प्रथा नो पवन वधवा लाग्यो ने ते माटे महाव्रत नी मर्यादा ने मूकी ने केटलाक साधुओ गामोगाम फरी हजारो रूपीया एकत्र करवा लाग्या. पंडितोना स्थायीत्व माटे पाप परंपरा वधवा लागी ने साधुओ पंडितोना गुलाम बनी तेमनी खुशामद करवा लाग्या ने तेमनी प्रसन्नता माटे यत्न सेववा लाग्या. पण्डितो पासे पुस्तको लखावी पोताने नामे छपाववा लाग्या. पोताना यशोगान पंडितो पासे लखावी छपाववा लाग्या. साहित्य छपाववा माटे तथा शिक्षण ना बहाने पंडित प्रथा नो प्रचार वधवा लाग्यो. अजैन पण्डितोना संसर्ग थी साधु साध्विओ मां शिथिलाचार वधतो श्रीजी ना सांभलवा मां आव्यो. पंडितो पासे आर्याओ पण भणवा लागी ने जैनागमनो आदर्श नष्ट थतो अनुभव्यो जे थी श्रीजीए पोतानी संप्रदाय मां पगारदार पंडितो न राखवानो नियम कर्यो. ने पंडित प्रथाना पाप थी पोतानी संप्रदाय ने बचावी. समाज समीप संयम मार्ग नो आदर्श राखी महान् उपकार करेल छे.

मेरूथी अनन्त उच्च ने समुद्र थी अनन्त विशाल जैन धर्म मां पण अस्पृश्यता नो प्रवेश थवा पाम्यो हतो ते अस्पृश्यता ना कलंक ने दूर करवा माटे श्रीजीए पोतानी उपदेश धारा द्वारा प्रकाश पाड्यो ने पोताना व्याख्यान मां हरिजनो ने आववा माटे व्याख्यान सांभलवा ने चर्चा करवा माटे सहर्ष धर्मस्थानना बंध दरवाजा उघाड़ा कराव्या. ने पोतानी विशालता नो सर्व प्रथम परिचय आप्यो जेना परिणामे वर्तमान मां केटलाक गामोमां हरिजनो व्याख्यान श्रवण करे छे. सामायिक पौषध आदि धार्मिक क्रियाओ करे छे. केटलाक श्रावकोए हरिजनो ने पोताने त्यां नौकर राख्या छे. केटलाक श्रावको हरिजन आश्रमो चलावे छे ने तन मन ने धन थी तेमने मदद करे छे.

पूज्यश्रीए जे सम्प्रदाय ना आचार्य छे ते सम्प्रदायना श्रावको सविशेष पणे रूढ़िना पूजारी हता तेमनी संख्या पण घणी मोटी संख्या मां छे ने तेओनो मोटो भाग श्रीमन्त छे. छतां समाज नी खुशामद कर्या सिवाय पोताना तत्वचिन्तवन ने मनन मां जे सत्य अनुभव्यु तेनी प्ररूपणा करी. ते माटे स्व सम्प्रदाय तथा पर सम्प्रदाय ना चारे तीर्थना अनेक विरोधो हिम्मत करी ने झीलया, पचाव्या ने पोतानी निर्भयता मां वृद्धि करी. समाज सामे सत्यतानां प्रकाश किरणो फेंकी, समाज ने अज्ञानांधकार मांथी काढ़ी प्रकाशना पंथना पथिक तरीके बनावा पोताना जीवन नी

सफलता करी चुक्या छे. जे माटे समस्त समाज तेमनी परम ऋणी छे.

हाथे दलवाना खांडवाना भरड़वाना रांधवाना चर्खो चलाववाना वणवाना आदिना त्याग रूढ़ी चुस्तो करावबा लाग्या जेथी बकरी काढतां ऊंट पेसवा जेवो अनर्थ-वधतो श्रीजीए अनुभव्यो. हाथे दलवाना त्याग थी आटानी मीलो ने उत्तेजन मलवा लाग्युं जेमां पाप वहेवारनो पार नहीं ते उपरान्त धान्य ना सत्वनो नाश ने शरीर मां रोगो नी उत्पत्ति आदि अनर्थो ने महारंभनी उत्तेजना जोई श्रीजीए अल्पारंभनी व्याख्या समजावी.

चर्खाना त्याग करावबा थी मीलोनी उत्पत्ति वधवा लागी ने मीलो द्वारा मानवो नो शोषण ने पशुओ नी हिंसा थवा लागी जेथी अल्पारंभी खादी नी पवित्रता श्रीजीए समजावी.

गोपालन ने खेती ना पण रूढी चुस्तो त्याग करावबा लाग्या. जेथी गोधन नो नाश खेती नो नाश आर्य धर्म नो नाश ने कसाईखाना ने उत्तेजना आदि पापथी बचाववा सत्योपदेश फरमा यो ने रूढ़ी चुस्तो द्वारा समाज नी चक्षुओ पर महारंभ ना महापाप ना पाटा बांधवामां आव्याहता. ते महा पापना पाटा करुणाभावे श्रीजीए छोड़ाव्या. ने समाज ने अल्पारंभ महारंभ गृहउद्योग ने यंत्रवाद आदि नी व्याख्या समजावी ज्ञानचक्षु नुं दान आपी समाज पर महान् उपकार कर्यो छे. छतां केटलाक रूढ़ी चुस्तो पोतानी आँखे महारंभ ने यंत्रवादना पापना पाटा बाँधी रहे छे. ने समाज ने बंधावी रहेल छे. जेथी पाटा बांधनार तथा बंधावनार उभय महाअज्ञानना खाड़ा मां पड़ी ने सम्यक् ज्ञान थी अनन्त काल माटे विमुख बनी दुर्लभ बोधी बनी रहेल छे.

श्रीजीना परम उपासको ने शास्त्र ना ज्ञाता श्रीमंत श्रावको श्रीजीना दर्शनार्थे या व्याख्यान मां रेशम ना कोट, रेशमना खमीस, रेशमना धोतीया ने गला मां मोती ना हार पेहरी ने आवता आवा श्रृङ्गारी वस्त्राभूषण थी श्रीजीनो आत्मा ककली उठ्यो. स्त्री समाजना वस्त्राभूषणने श्रृङ्गार तो मर्यादा नी हद बाहर हतो छतां श्रीजीना पवित्र सदुपदेश ना परिणामे श्रीजीना अनुयायी श्रावक ने श्राविका वर्ग परम शुद्ध-पवित्र खादी धारक बन्या ने पवित्र सादगी प्रधान खादी धारण करवा थी आभूषणो नो मोह पण स्वाभाविक घटी गयो ने समाजमां सादगी ने संयम नी वृद्धि थवा लागी।

वर्तमान मां जैन समाज मां गौपालन, खादी स्वावलंबी जीवन ने सादगी मय जीवन नी समाजमां प्रवृत्ति जोवामां आवती होय तो ते श्रीजीना प्रवचननोज पुण्य प्रभाव छे।

वर्तमान मां रूढी चुस्त साधुओ खादी पहेरवा मां विशेष पाप माने छे ने दलील करेछे के तेने धोवा मां पाणी ना जीवो नी हिंसा थाय छे आवी दलील करनाराओ ने भान नथी होतुं के मीलना कपड़ा मां तो चरबी नुं महापाप लागे छे। ते महापाप ने भूली ने कुतर्को करी पोते विपरीत पंथे गमन करेछे। ने समाज ने पाप पंथ ना पथिक बनावे छे।

सद्भाग्ये श्रीजीना सदुपदेश ने श्रावको समजवा लाग्या ने ते प्रमाणे पोताना जीवन मां शक्य सुधारा माटे पण यत्न सेवेछे।

जेम मांसाहार दोष रहित मले तो पण मुनिराज या श्रावक पोताना प्राणना भोगे पण न वापरी शके। तेवी रीते चरबी वालां कपड़ा दोष रहित मलता होय तो पण महाव्रतधारी मुनिराज या श्रावक ते नज वापरी शके जेम खान पान मां वनस्पत्याहार नो आग्रह राखवा मां आवे छे तेवी रीते वस्त्रो माटे पण शुद्ध खादी नो आग्रह राखे तोज श्रावक या साधु पोताना अहिंसा व्रतनं

पालन करीशके छे। अन्यथा तेमने अहिंसानु ज्ञान नथी ने जो तेमने ज्ञान न होय तो ते पोताना व्रत केवी रीते पालीशके ने व्रतधारी तरीके नो वेष केवी रीते धारण करीशके। अनेकानेक प्रकार नी समाज नी मिथ्या समज पर श्रीजीए प्रकाश पाड़ी महान् उपकार करेल छे।.सूर्यना सामे धूलनाखनार पोतानी आंखमांज धूल नाखे छे तेज स्थिति विरोधी रूढ़ी.चुस्तो नी थवा पामी छे। तेवाने पण सद्‌बुद्धि नी प्राप्ति माटे श्रीजीनी भावना ने प्रार्थना चालुजछे।

प्रभु महावीर ना शासन तथा वीतराग धर्मना सत्य प्रचार माटे श्रीजीए मारवाड़ नी रेताल भूमि मां ने गुजरात तथा काठियावाड़ मां उग्र विहार करी सत्य धर्मनो ध्वज फरकाव्यो।

गमे ते धर्मवाला साथे धार्मिक चर्चा करवानो प्रसंग उपस्थित थाय त्यारे गमे तेवा वादी ने पोताना कुशाग्र बुद्धि थी निरुत्तर करी देवानी प्राकृतिक बक्षीस श्रीजीनी छे। जेथी समस्त जैन समाज माटे गौरवनो विषय छे।

व्याख्यान शैली पण अलौकिक छे। तेमना जेवा वक्ता जैन समाज मां तो नहीं पण भारत-वर्ष मां आंगली ना टेरवे गणी शकाय जेटली संख्या मां भाग्येज हशे। जेथी वर्तमान पत्र ना सम्पादक श्री मेवाणीए श्रीजी माटे खास एडीटोरियल लेख लख्यो के भारतवर्ष मां एक नहीं पण बे जवाहर छे। एक राष्ट्र नेता छे त्यारे बीजा धर्मनेता छे। श्रीजीनी व्याख्यान शैली थी प्रो० राममूर्ति मदनमोहन मालवीया जी ने लोकमान्य तिलक आदि प्रसन्न थया हता ने महात्मा गांधी जी पण श्रीजीनी सुवास थी आकर्षाई समागम माटे आव्या हता।

पूज्य श्री ना व्याख्यान नो विशाल संग्रह समाज पासे छे। ते लोक भोग्य ने सर्व माटे समान उपयोगी छे। साधु साध्वी गण पोताना व्याख्यान मां आ संग्रहनो उपयोग करे तो ते समाज माटे विशेष उपकारी नीवड़शे ने स्व० तत्त्वज्ञ वा० मो० शाह नी पूज्यश्री ना व्याख्यान माटे नी जें भावना हती ते सफल थवा पामशे।

आ लेखक मां जे कई अल्प प्रमाण मां सत्य समज होय तो ते श्रीजीना साहित्य ने समागम नो ज प्रताप छे।

१०—पूज्यश्री की निखालसता

(गोंडल सम्प्रदाय के पण्डितरत्न मुनि श्री पुरुषोत्तम जी महाराज)

अजमेर मां साधु सम्मेलन थयु त्यारे त्यां मारी हाजरी न हती, परंतु हुँ पालणपुर मां ते वखते हतो। त्यां रही हुं सम्मेलन मां शी शी प्रवृत्ति थई तेथी वाकेफ रहेलो। पूज्य श्री जवाहर लालजी महाराजे लाउड स्पीकर ऊपर प्रवचन न कर्यु। तेमज तेओ सम्मेलन मां कोई नी शोर मां न दबाता पोताना मन्तव्य मां मक्कम रह्या। ए बे बावतो थी मारा अन्तः करण मां ते श्रीना माटे छाप पड़ी अने पालणपुर व्याख्यान मां उपर्युक्त माहिती मलतां नी साथेज त्यां ना अग्रगण्य श्रावको हीराभाई, जीवा भाई भणसाली आदि समक्ष मारा मुख मां थी उद्‌गारो नीकली पड्याके "शाबास जवाहर"।

राजकोट संघ ना आगेवानो पूज्य श्री ने चातुर्मास नी वीनती करवा त्रण वखत मारवाड़ तरफ गयेल। ते त्रणे वखत मारी सम्मति थी गयेल अने मे पण हार्दिक सम्मति आपेली अने पूज्य श्री कठियावाड मां पधारवाना छे ए समाचारने हर्ष पूर्वक वधावी लीधा हता।

काठियावाड़ मां त्रण चातुर्मास करी तेओ श्रीए पोतानी प्रतिभा शाली व्याख्यान शैली,

गुजराती भाषा ऊपर नो काबू अने समाज ने योग्य रस्ते दोरवानी शक्ति वडे तेओए काठियावाड नी जैन अजैन जनता ऊपर जे प्रभाव पाड्यो छे अने जैन शासन नी उन्नति मां जे प्रशंसनीय फालो आप्यो छे ए वधु जोई ने जाणी ने मने खूबज आह्लाद उत्पन्न थयो छे।

राजकोट मां तेओ श्रीए चातुर्मास कर्युं त्यार थी तेओ श्री ने मलवानी मारा हृदय मां घणी उत्कण्ठा हती। अने राजकोट चातुर्मास पूर्ण थया पछी तेओ श्री जेतपुर पधार्या त्यां तेओ श्री ना दर्शन नो लाभ मेलवी हुं घणोज आनन्द पाम्यो। तेओ श्रीनी साथे शास्त्रीय चर्चा मां पण मने बहु रस उपजतो। विविध प्रकारना प्रश्नो में तेमने पूछेलां, तेना तेओ श्रीए शास्त्री शैली अने टीकाने आधारे यथा शक्ति खुलासा कर्या। आ चर्चा दरमियान "हुं आचार्य छुं के ज्ञानी छुं" एवुं वलण जरा पण जोवा मां न आव्युं। ऐ तेमनी निखालसता अने निरभिमानताए मारा हृदय उपर सुन्दर छाप पाड़ी।

पूज्यश्री नो अमारा ऊपर नो अगाध प्रेम भूलाय तेम नथी।

११—उज्वल रत्न

(पूज्य श्री जयमल जी महाराज की सम्प्रदाय के पण्डितप्रवर मुनि श्री मिश्रीमल्ल जी महाराज, न्याय-काव्यतीर्थ.)

यद्यपि पूज्य श्री के साथ मेरा विशेष और गहरा परिचय नहीं रहा फिर भी ऐसी बात नहीं है कि उनके तेजस्वी जीवन से मैं अनभिज्ञ होऊँ।

पूज्य श्री के जीवन की महत्ता बहुत व्यापक है। आपके जीवन इतिवृत्त से आपके प्रतिभा शाली व्यक्तित्व का अच्छा परिचय मिलता है और व्यक्तित्व ही जीवन है। व्यक्तित्व हीन जीवन किस काम का! वह तो निरा पामरपन है।

पूज्य श्री जवाहरलाल जी महाराज अपने समाज के उज्वल रत्न हैं। आपके अध्ययन में गम्भीरता है, भावों में विशदता है, विचारों में विशालता है। यही नहीं आपका वक्तृत्व भी प्रभाव शाली, विशुद्ध, व्यापक और युगानुसारी है। भाषा में सरलता, संयतता और अलंकृति है। शैली प्रवाहमयी, रसोद्भिन्न और प्रौढ़ है।

पूज्यश्री के संसर्ग में आने के दो प्रसंग मुझे खूब याद हैं। पहले प्रसंग पर मेरे श्रद्धेय गुरु पूज्यश्री जोरावरमलजी महाराज भी विद्यमान थे। मेरे गुरु महाराज भी अपनी समाज के एक माने हुए मनीषी मुनि महात्मा थे। जैन शास्त्रों के समझाने में आप अगाध पाण्डित्य रखते थे।

जब पूज्य श्री ब्यावर का चौमासा पूर्ण करके बीकानेर की ओर विहार करते हुए कुचेरा पधारे उस समय मेरे गुरु महाराज भी वहीं विराज रहे थे। यह घटना सन् छब्बीस की है। आप के और मेरे गुरु महाराज के बीच बहुत अच्छा व्यवहार था। दोनों आचार्य बड़े प्रेम के साथ मिला करते थे। वह सुन्दर दृश्य अब भी मेरे नेत्रों के सामने ज्यों का त्यों है। दोनों आचार्य सूर्य निकलने के बाद जंगल में पधारते और बहुत लम्बे समय तक प्रेमभीनी सात्विक चर्चा किया करते।

दूसरी बार भी आप का सम्मेलन कुचेरा में ही हुआ। यह घटना सन् चालीस की है. जब आप बगड़ी चातुर्मास के बाद वहां पधारे थे। संयोग वश उस समय भी मेरे वर्तमान पूज्य गुरु महाराज अर्थात् मेरे पूज्य बड़े गुरु भ्राता शान्तस्वभावी प्रवर्तक मुनि श्री हजारी मलजी महाराज

भी वहीं विराजमान थे। आप भी एक उदार, आदर्श, प्रकृत्या भद्र और पवित्र मुनि महाराज हैं। इस वार भी दोनों महानुभावों में कितना प्रेम रहा यह लिखा नहीं जा सकता। वास्तव में वह प्रेम अपार था।

यद्यपि दोनों प्रेम प्रसंगों पर मैं आप से यथेष्ट लाभ न ले सका, क्योंकि पहली बार मैं नव दीक्षित और अल्पवयस्क था और दूसरी बार आप वयः परिपाक और शारीरिक अस्वस्थता के कारण अधिकतर मौन रहते थे। फिर भी जितना आप से परिचय हुआ, उस से मुझे अधिक आनन्द का ही अनुभव हुआ है और उन के व्यक्तित्व की छाप हृदय पर अंकित हुई है।

पूज्य श्री के विचारों और व्यवहार की उदारता प्रकट करने के लिए इतना लिखना ही पर्याप्त होगा कि आप को और आपकी साम्प्रदाय के दूसरे सन्त मुनिराजों को मैंने अपने गुरु महाराज से सद्भावना और प्रेमपूर्वक पेश आते देखा है।

मैं अपने समाज का अहोभाग्य समझता हूँ कि जिस में आप सरीखे पूज्यपाद सन्त मुनिराज हैं।

आज अगर समाज में साम्प्रदायिकता की वज्रभित्तियाँ खड़ी न होतीं तो मेरा खयाल है पूज्य श्री सरीखे परमपुनीत मुनिराजों के सम्पर्क से अपना यह समाज अपने अतीत गौरव को प्राप्त करने में बहुत बढ़ गया होता।

१२—जैनाचार्य पू. श्री जवाहरलालजी म. सा. की जीवन झांकी

(प्रवर्तिनी महासतीजी श्री उज्वल कंवरजी)

जैनाचार्य जैसे महान् विचारक एवं विवेचक सन्तपुरुष के लिए कुछ कहना मेरे लिए जितना सद्भाग्य पूर्ण है, उतना ही मुश्किल भी; क्योंकि उनके घनिष्ट परिचय में आने का मुझे अवसर ही नहीं मिला! परन्तु सूर्य को दूर से देखने वाला कोई भी व्यक्ति यह तो कह सकता है कि सूर्य पृथ्वी पर प्रकाश फैलाने वाला ज्योतिपुंज है; वैसे ही मुझे भी कहना चाहिए कि वे एक धर्म प्रवर्तक हैं!

विद्वानों का यह वाक्यः—"I come like light in the world" भावार्थः—मैं जगत में प्रकाश की तरह आता हूँ' धर्म (सत्य) प्रवर्तकों ही के लिए है। इतना होने पर भी वास्तव में देखें तो धर्मप्रवर्तकों का रास्ता हमेशा सरल साफ नहीं होता। उन्हें प्रचंड विरोधों का सामना करते हुए प्रगति करनी पड़ती है। सच कहें तो सर्वसाधारण लोग सत्य–प्रकाश को समझ भी नहीं पाते हैं। वे तो अज्ञान अंधकार में चाहे जिसके पीछे घूमते रहते हैं। यही कारण है कि आम जनता का मानसिक और आत्मिक विकाश बहुत ही कम हो पाता है। इस वास्ते कह सकते हैं कि सामान्य लोगों के हृदय उल्लू के नेत्रों की तरह ज्ञानयुक्त प्रकाश को ग्रहण करने में असमर्थ रहते हैं। उल्लू अपने नेत्रों की कमजोरी न समझते हुए सूर्य–प्रकाश को चाहे बुरा कहे या नहीं, परन्तु साधारण लोग तो अपने हृदय की दुर्बलता नहीं पहचान कर सत्य–प्रकाश को ही बुरा बताते हैं।

अन्याय, दुराग्रह और प्रमाद (आलस्य) के पहलुओं को सर्व सामान्य लोग आज भक्षक के बदले रक्षक मान बैठे हैं। इस कारण आज के सत्यप्रवर्तकों के कंधों पर लोगों के इन मोह जालों को चीरने की दुगुनी जिम्मेवारी आई हुई है। क्योंकि इन मोहजाल के पर्दों को चीर

बिना उनके दिलो-दिमाग सत्य-प्रकाश को ग्रहण नहीं कर सकेंगे।

पूज्यश्रीजी के जीवन की विशेषताएं भी ऐसी ही हैं। उनके भी जीवन का अधिक भाग (ऊपर लिखे अज्ञानियों की गैरसमझ दूर करके सत्य-प्रकाश उनके दिलोदिमाग में पहुँचाते हुए) अनेक विरोधों एवं विरोधियों का सामना करने में व्यतीत हुआ, कहा जा सकता है। इस वास्ते वे आज न केवल जैन पथ प्रदर्शक के नाते से, बल्कि मानवीय उदारता के मार्गदर्शक की भांति चमक रहे हैं और यह चमक हर प्रवर्तक को अनेक खडतर विरोधों का मुकाबिला करने पर ही मिल सकती है।

वर्तमान युग में वैज्ञानिक शोधों के फलस्वरूप उसकी यशस्विता विमान, रेडियो और वायरलेस जैसे साधनों के रूप में हम प्रत्यक्ष देख सकते हैं। ये सब धीरज, लगन, विवेक और साहस के परिणाम हैं, इतने पर भी वैज्ञानिकों के सहारे से तो हम हजारों मील दूर की बातें ही देख और सुन सकते हैं; परन्तु पूज्यश्री जैसे वैज्ञानिकों के सहारे से हम बिना किसी साधन के केवल अपने हृदय रूपी यंत्र का उपयोग करके विश्व भर की भूत, वर्तमान और भविष्यकी बातें देख, सुन और बता भी सकते हैं; इतना ही नहीं चाहें तो हम अपना आत्मिक विकास साध कर अमरता को भी प्राप्त कर सकते हैं। अब पाठक स्वयं बतावें कि कौनसा वैज्ञानिक कल्याणकारी एवं महान है? इस तरह स्वयं पूज्यश्री भी वर्तमान समाज में जैन समाज का गौरव बढ़ाने वाले वैज्ञानिक हैं। इनकी वाणी हमें महारम्भ (यंत्रवाद) की सत्यानाशी प्रवृति से बचा कर अल्पारंभ (गृह उद्योग) की प्रवृति की ओर लेजाने वाली है। इसलिए स्तुत्य है।

इस तरह की विवेचना के बाद हर व्यक्ति जान सकता है कि मनुष्य जीवन की महत्ता उसकी भौतिक विजय पर ही नहीं, किन्तु उसके आत्मिक सत्य की शोध पर आश्रित है। इसलिए वास्तविक तौर पर आत्मिक सत्य ही मनुष्य को हर जगह चिर शांति दे सकता है। वैसे ही इतिहास में भी उन्हीं के नाम सुवर्णाक्षरों में लिखे रहते हैं; जिन्होंने आत्मिक विजय पाई है।

इसलिए कह सकते हैं कि समय शूरवीरों को भुला सकता है; परन्तु सत्पुरुषों को नहीं। सत्पुरुषों को भुलाना उसके सामर्थ्य से बाहर है। पराक्रमी पुरुष प्रजा के शरीर पर राज्य कर सकता है न कि हृदय पर। जनता के हृदय सम्राट् तो सन्त महात्मा ही हो सकते हैं।

पराक्रमियों की पाशविक शक्ति अपने भय द्वारा लोगों से अपने सामने अपनी आज्ञा आज भी मनवा सकती है। परन्तु 'गाय बछड़े' की भांति अपने पीछे लोगों को रखने वाली तो सत्पुरुषों की दैवी शक्ति और उनकी विश्वप्रेम की भावना ही है। हम आज 'जैन जवाहर' का इस हेतु अनुसरण कर सकते हैं कि उनके सहारे से अपने भक्त हृदय को विकसित कर उनके साथ आत्मविकास कर सकें।

राजा-रईसों आदि की श्रद्धांजलियां

१३—महाराजा साहेब श्री लाखाधिराज बहादुर एस. वी. ई., के. ई. एस. आई., एल. एल. डी., मोरवी नरेश—

श्री स्थानकवासी जैन सम्प्रदाय ना प्रतिभाशाली धर्मनायक जैनाचार्य पूज्यश्री जवाहर-लाल जी महाराजश्री जेवा वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध संतनु' राजकोट मां सं० १९९२ नु' चातुर्मास थतां, मोरवी मां तेमज काठियावाड़नां अन्य स्थलों मां तेमनी यशकीर्ति फेलातां, आवा महानुभावनु' चातुर्मास मोरवी मां थाय तो अमारी जैन अने जैनेतर प्रजा तेमना सदुपदेश नो लाभ लई कृतार्थ बने एवी भावना थी अमारा शहेरना अग्रेसरो मारफत मोरवीना चातुर्मास माटे अमे पू० महाराजश्री ने विनंती करेली, जे तेओ श्रीए सहर्ष स्वीकारी सं० १९९३ नु' चातुर्मास मोरवी मां पसार कर्यु' ।

मोरवी नी अमारी स्थानकवासी जैन प्रजाए जे उत्साह, खंत अने प्रेमभरी लागणी थी पूज्यश्री नु' स्वागत कर्यु', तेमज बहारना सैंकड़ो मेमानो नां अतिशय सत्कार माटे अमारी जैन प्रजाए जे जेहमत उठावी हती, तेनी अत्रे नोंध लेवामां अमने संतोष थाय छे ।

पू० महाराजश्री ना चातुर्मास दरम्यान तेओश्रीना प्रवचन नो तेमज अंगत परिचय नो लाभ लेवानां अपने घणा प्रसंगो मल्या हता । पू० श्री ना व्याख्यान मां जैन धर्म नी व्यापकता, संस्कारिता अने उदारता ने व्यक्त करता, जैन तत्व विषयक मधुर व्याख्यानो अमे सांभलेला । तेनी अमारा ऊपर ऊंडी छाप पडी छे ।

पू० श्री ना दरेक व्याख्यानो मां प्रार्थना ने महत्व नु' स्थान मलतु' । जीवन ने सार्थक अने प्रभुमय बनाववामां प्रभु प्रार्थना एक अमोघ साधन छे, अने ए कारण पूज्यश्री प्रार्थना उपर हृदय-स्पर्शी विचारों द्वारा सचोट उपदेश आपता अने प्रभु भक्ति तरफ जनता नु' लक्ष खेंचता ।

पूज्य महाराज श्री नी तलस्पर्शी विद्वत्ता, समन्वय शैली अने कोई ने पण कडवु' न लागे छतां हितकर सत्य उच्चारवानी सादी छतां भव्य पद्धति थी अमने घणोज संतोष थयो हतो ।

पूज्य महाराजश्री दीर्घायु भोगवे, धर्मशास्त्र नी उन्नति ना कार्यो करता रहे अने एमना देदीप्यमान प्रकाश थी भारतवर्षी कल्याण सधे एज अमारी भावना छे ।

१४—श्रीमान् ठाकुर श्री दीपसिंह जो साहेब वीरपुर नरेश

श्रीमान् जैनाचार्य महाराज श्री जवाहरलाल जी महाराज ज्यारे विक्रम संवत् १९९२ थी १९९५ सुधी काठियावाड़मां विहार करता हता ते दरम्यान मने युवराज अने राजकर्ता तरीके तेमने वीरपुर, राजकोट, सायला अने मोरवी मां मलवानो प्रसंग सल्यो हतो । जवाहरलाल जी महाराज ज्यारे सं० १९९२ ना अरसा मां पहेला वीरपुर पधार्या त्यारे संयोगवशात् हूँ राजना काम प्रसंगे

बाहरगाम गयेलो। पाछल थी पूज्य पिताश्री हमीरसिंह जी साहेब तेमने मलवा पधार्या। तेमने मली पोते बहुज खुशी थया अने तेमना ज्ञाननो तथा तेमना प्रवचन नो लाभ पोताना युवराज ने मले एटला खातर एक दिवस आग्रह करी वीरपुर मां वधारे रोक्या अने मने तुरत वीरपुर मां बोलानी महाराज साथे मीलाप कराव्यो। महाराजनु प्रवचन पांच मिनट सांभलतांज मारा मननी अंदर छाप पड़ी के "यथा नाम तथा गुणाः।" प्रमाणे जवाहरलाल जी महाराज नु जेनु नाम एवाज पोते भारतवर्ष ना एक जवाहीर छे, एवी जातनी मने ऊँडी छाप पड़ी अने तेमनु प्रवचन खूब सांभल्यु। छतां एटला थी मने संतोष नहीं थवाथी में ऊपर लख्या स्थलोए अनेक बखत पोताने मलवानो प्रसंग उपस्थित करी बखतो बखत हुँ तेमना प्रवचन मां राजा अने प्रजा ने पोत पोताना कर्तव्य नो बोध आपता सांभली बहु आनंद मेलवतो अने ते कोई दिवस भुलाय तेम नथी। एटलुंज नहीं पण तेमना प्रवचन नो बखतोबखत लाभ लेवा ज्यां महाराजश्री विहार करता होय त्यां जई सांभलवानी तीव्र इच्छा थती अने हजी थाय छे पण महाराजश्री काठियावाड़ मां विहार करता हता ए दरम्यान मां ज पूज्य पिताश्री नो स्वर्गवास थतां राजनो बोझो शिर ऊपर आवी पड़तां सांसारिक उपाधि ने लई जवाहरलाल जी महाराज ना दर्शन नो लाभ वधारे उठावी शक्यो नथी जे माटे घणो दीलगीर छुं।

प्रभु पासे मारी एवी प्रार्थना छे के परमात्मा तेमने तंदुरुस्ती साथे लांबु आयुष्य आपे अने तेमना ज्ञाननो लाभ भारतवर्षनी जनता लीए अने जीवन मां तेमनो बोध उतारी जीवन ने उज्वल बनावे।

१५—हिज हाईनेस महाराणा राजा साहेब बहादुर श्री वांकानेर नरेश

श्री स्थानकवासी जैन सम्प्रदाय ना जैनाचार्य पूज्य श्रीमान् जवाहरलाल जी महाराज श्रीनुं वांकानेर पधारवुं थयुं ते बखते तेओ श्रीना प्रवचनो सांभलवानो लाभ अमने प्राप्त थयो हतो। पूज्यश्रीना व्याख्यान घणा सुंदर अने आकर्षक हता। तेओश्रीना उत्तम चारित्र नी, सरल मायालु स्वभाव नी अने ऊँचा ज्ञाननी अमारा ऊपर ऊंडी छाप पड़ी छे। पूज्यश्री दीर्घायु भोगवे अने पतित अवस्थाने पामेला जीवने पोताना ज्ञाननो लाभ आपे एज अमारी भावना छे।

१६—श्रीमान् ठाकुर साहेब श्री मूली नरेश

श्री स्थानकवासी जैन सम्प्रदायना पूज्यश्री जवाहरलाल जी महाराजनुं राजकोट चातुर्मास थएलुं ते वखते राजकोट जतां एक दिवस माटे अहीं तेओनुं पधारवुं थएलुं, ज्यारे अमोने तेओश्रीनो फकत एकज व्याख्यान सांभलवानो प्रसंग प्राप्त थएल हतो।

पूज्य महाराज श्रीए व्याख्यान मां जैन धर्म मां समाएला कटेलाक पवित्र तत्वोनी सारी समजावट करवां उपरान्त शुद्ध चारित्र साथे प्रभु भक्ति करवा थी थता महान् लाभो अने मनुष्य जिंदगीनुं सार्थक्य ए बहुज सुन्दर रीते समजावेलुं हतुं।

पोते वयोवृद्ध छतां, धर्मना फेलाववा खातर घणो परिश्रम वेठे छे। तेओनी बोध आपवानी एवी तो असाधारण शैली छे के जैन अने जैन सिवायना वधा सांभलनाराओ ने तेओश्री तरफ पूज्यभाव उत्पन्न थाय।

टुंक वखतना परिचय मां पण तेओश्री ना ज्ञान अने विद्वत्ता माटे अमोने घणीज खुशी उत्पन्न थयेल छे।

१७—श्री मालदेव राणा साहब, पोरबन्दर

परम कृपालु, परमपूज्य, जैनाचार्य, सन्तशिरोमणि श्री जवाहरलाल जी महाराज श्रीना पवित्र चरण कमलनी सेवा मां—

पोरबंदर थी लखी चरण रज सेवक मालदेव राणा ना सविनय साष्टांग दण्डवत् प्रणाम स्वीकारशो जी. लखवा विनंती ए के आप श्री अत्रे पोरबंदर पधारी पोरबंदर नी प्रजाने तेमना आत्मकल्याण माटे जे सद्बोध रूपी अमृत रसनु' पान कराव्यु' छे ते कदी पण भुलाय तेम नथी। आप श्रीनो सर्वमान्य उपदेश, आप श्रीनु' अति सादु' जीवन, उच्च चारित्र, शुद्ध अहिंसा पालन आदि उच्च सद्गुणो सदा याद आव्या करे छे। आप श्रीना उदार दिल ना परिणामे कोई पण जात के धर्म नो भेदभाव राख्या शीवाय समभावे विशाल दृष्टि थी आप श्रीए प्राणिमात्र नु' कल्याण केम थाय ए भावना थी जे उपदेश आप्यो छे ए खरेखर अमूल्य अने प्रशंसा पात्र छे। महाराज श्री ! आप श्री ना जीवन ने धन्य छे। आप श्री ना सदुपदेश मुजब जो अमे वर्ती शकीए तो जरूर अमे मानव जीवन नी सार्थकता करी शकीए।

आप श्री ना उपेशनां वचनो हृदयना ऊंडापण थी निकलतां। ए हतो शुद्ध आत्मा नो आवाज अने तेथीज श्रोता जनो पर तेनी सचोट छाप पड़ती। संत पुरुषो पोतानी प्रशंसाना लोभी न ज होय छतां गुणवान् विभूति ना सत्य गुणगान करवा मां पण एक प्रकार नो आनन्द छे। एटले आप श्री ने प्रिय लगाडवा मां आ शब्दो नथी पण जे सद्गुणो आप श्री मां जोया ए स्वाभाविक बोलाई जाय या पत्र मां लखाइ जाय तो कदाच आप श्रीने प्रिय न लागे तो क्षमा करशो जी। संतो ते खुशामद प्रिय होता नथी।

एटले आ खुशामद ना शब्दो नथी पण अनुभवेली सत्य हकीकत छे। अने ते स्वाभाविक लखाइ जाय छे।

१८—सर मनुभाई मेहता kt. C. S. I., फोरेन एण्ड पोलिटिकल मिनिस्टर ग्वालियर, भूतपूर्व प्रधान मंत्री बड़ौदा तथा बीकानेर—

I had the prevelige and rare advantage of attending at Vyakhyanas of Swami Guru Jawaharlalji at Bikaner when I had the honour of holding the post of Prime Minister here. Swami Jawaharlalji has the art of expressing highly philosophic truths in language easily intelligible to the masses. He holds liberal and Catholic views about the truths of Diverse religious creads in the country and his mode of treatment of a subject that is capable of polemical and controversíal treatment with tolerance and fair play was very praiseworthy.

I wish him a long and successful carrier as a spiritual Guru and guide to the Jain fraternity.

हिन्दी-अनुवाद

"जब मैं बीकानेर में प्रधान मन्त्री था उस समय स्वामी गुरु जवाहरलालजी महाराज के व्याख्यान सुनने का दुर्लभ अवसर एवं लाभ प्राप्त हुआ था। स्वामी जवाहरलालजी में महान दार्शनिक तत्वों को ऐसी सरल भाषा में प्रकट करने की कला है जिसे साधारण जनता भी आसानी से समझ सकती है। देश के विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों में रहे हुए सत्य के प्रति आपके उदार सहानुभूतिपूर्ण विचार हैं। विवाद अथवा चर्चावाले विषय को सहनशीलता एवं न्याय के साथ प्रकट करने का आपका ढंग बहुत प्रशंसनीय है।

जैन समाज के पथ-प्रदर्शक तथा आध्यात्मिक गुरु के रूप में मैं उनके दीर्घ एवं सफल जीवन की कामना करता हूँ।"

१९—दीवान बहादुर, दीवान विशनदासजी kt. जम्मू

I had the honour of paying my homage to the most venerable Jain muni Shree Maharaj Jawaharlalji During my visit to Ajmer. In the course of several interviews which His Holiness permitted me to hold with him there I was much impressed by his vast Knowledge of Jain Shastras.

जब मैं अजमेर गया हुआ था मुझे जैन मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज के प्रति अपनी भक्ति प्रदर्शित करने का लाभ प्राप्त हुआ था। पूज्यश्री के साथ वार्तालाप करने के जो थोड़े से अवसर प्राप्त हुए उनमें उनके जैनशास्त्र सम्बन्धी विशाल ज्ञान का मुझ पर बहुत प्रभाव पड़ा।

× × ×

२०—श्री त्रिभुवनदास जे. राजा, चीफ मिनिस्टर, रतलाम।

I came in contact with the gifted teacher when he was on a religious tour and paid a visit to Porbandar in 1937 April-May on his way to Morvi to spend the Chaturmasa at the latter place. I attended his many of soul-stirring lectures at Porbandar and the lay public both Jain and non-jain were so keen to persuade Pujyashri to stay on at Porbandar During the ensuing rainy season that I was literally compelled to make an open and public Appeal to him. His Highness the Maharaja Rana Sahib Shri Natwarsinghji Bahadur K. C. S. I. of Porbandar and other members of the Raj family, state Officials and gentry, learned Brahmins, Sirdars and Jagirdars, Orthodox Vaishnavas, even musalmans, flocked in thousands to hear Pujyashri's learned discourses and almost every one male and female, audience felt personally ennobled by his direct appeal to live and let other live, a life of Peace and Piety and Non-Violence. Maharaj Shri Jawaharlalji is not only a great

orator but a great soul whose human sympathies extend for beyond the narrow pole of Jain asceticism or dogma. I wish there were more religious teachers in India of the type of Pujya Shri so that there would be no communal bitterness. I have personally felt myself a betterman after having come in contact with him and the influence that his spiritual megnatism has exerted on me would not be wiped off.

I called on Pujyashri again while he was indisposed at Jamnagar and another happy audience with him.

सन् १६३७ का एप्रिल-मई महीना था। पूज्यश्री का चातुर्मास मोरवी में तय हो चुका था। धर्म प्रचार करते हुए आप पोरबन्दर पधारे। उसी समय मुझे इस प्रतिभाशाली धर्मशिक्षक का परिचय हुआ। मैंने पोरबन्दर में आपके कई व्याख्यान सुने जो आत्मा में हलचल पैदा कर देते थे। आगामी चातुर्मास में पूज्यश्री को पोरबन्दर ठहराने के लिए जैन एवं जैनेतर जनता इतनी उत्कण्ठित थी कि मुझे सर्वसाधारण की ओर से खुले रूप में प्रार्थना करने के लिए वस्तुतः बाध्य होना पड़ा। पूज्यश्री के विद्वत्तापूर्ण भाषण सुनने के लिए हिज हाईनेस महाराजा राणासाहेब श्री नटवरसिंहजी बहादुर के० सी० एस० आई० पोरबन्दर नरेश, राज परिवार, राज्याधिकारी और प्रतिष्ठित नागरिक, विद्वान् ब्राह्मण, सरदार और जागीरदार, कट्टर वैष्णव, यहां तक कि मुसलमान तक हजारों की संख्या में आते थे। जीना और जीने देना, एवं शान्ति, पवित्रता तथा अहिंसामय जीवन के लिए जब आप साक्षात् देशना देते थे तो प्रत्येक स्त्री पुरुष अपने व्यक्तित्व को ऊंचा उठा हुआ पाता था। महाराजश्री जवाहरलालजी महान् उपदेशक ही नहीं किन्तु महान् आत्मा हैं। आपकी सहानुभूति जैन साधु संस्था या सिद्धान्तों तक ही सीमित नहीं है किन्तु उनके बाहर भी दूर तक फैली हुई है। मेरी कामना है कि भारतवर्ष में पूज्यश्री के समान बहुत से धर्मोपदेशक हों जिससे साम्प्रदायिक कटुता दूर हो जावे। आपके परिचय में आने के बाद से मैं, अपने व्यक्तित्व को कुछ उन्नत अनुभव कर रहा हूं। आपके आध्यात्मिक आकर्षण ने मुझपर जो असर डाला है वह कभी मिट नहीं सकता।

जामनगर में जब पूज्यश्री अस्वस्थ थे, मुझे मिलने का फिर सौभाग्य प्राप्त हुआ था। इस समय के वार्तालाप से भी मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।

× × ×

२१—श्री जे. एल. जोवनपुत्र, चीफ मिनिस्टर सचिन स्टेट

I had the privilege to hear three sermons of this learned Swamiji when he had kindly camped at Rajkot in 1938-39. India is still a land of saints and Jawahar Lalji Maharaj is one of the eminent jewels in the galaxy. His attitude towards life's noble mission is robust and cheerful. He possess in a pre-eminent degree the most outstanding qualities of an Acharya and his sermons

balanced with fitting anecdotes full of worldly wisdom go deep into the mind of his hearers. Truth is one and indivisible, but so long as there appears the veil of Maya or ignorance, the preachings of such Sadhus help to clear the way of the Sadhakas. While every soul (Jivatma) is on its evolutionary path to liberation and catches so much of the preachings of such Sadhus for which they have "Adhikar" the benevolent associations of such Sadhus with the public do not fail to do some good to every one of them. They are like trees that give shelter to all who resort to them and like rivers that purify the land they traverse. They come on earth to help and guide the souls that have developed and need nourishment. Every sermon of Jawaharlalji Maharaj was full of not only of his Masterly groop of the Jain Philosophy, but replete with his deep study of comparative philosaphy of other Darshanas.

विद्वान् स्वामी जी (जवाहरलाल जी महाराज) सन् १९३८–३९ में जब राजकोट विराजमान थे उस समय मुझे उनके तीन व्याख्यान सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। भारतवर्ष अभी तक संतभूमि है और जवाहरलाल जी महाराज उस संतमाला के प्रधान रत्नों में से हैं। जीवन के महान् उद्देश्य के प्रति उनका रुख दृढ़ और आनन्दपूर्ण है। उनमें एक आचार्य की मुख्यतम विशेषताएं अत्यधिक मात्रा में विद्यमान हैं। दुनियावी सूझ से परिपूर्ण छोटे छोटे चुटकुलों वाले उनके व्याख्यान श्रोताओं के हृदय में गहरे उतर जाते हैं। सत्य एक तथा अविभाज्य है। किन्तु जब तक माया या अविद्या का परदा रहता है, ऐसे साधुओं के उपदेश साधकों के मार्ग को स्पष्ट करने में सहायता करते हैं। जब कि प्रत्येक जीवात्मा अपनी मुक्ति के लिए विकास के पथ पर चल रहा है और ऐसे साधुओं के उपदेशों को ग्रहण करता है जिन के लिए उनका अधिकार है; जनता का ऐसे साधुओं के साथ उपयोगी सत्संग प्रत्येक व्यक्ति के लिए कुछ न कुछ लाभ अवश्य करता है। वे वृक्षों के समान हैं जो पास आने वाले को आश्रय देते हैं और उन नदियों के समान हैं जो जहाँ जहाँ प्रवाहित होती हैं उस क्षेत्र को पवित्र बना देती हैं। वे उन आत्माओं को सहायता पहुँचाने तथा पथप्रदर्शन करने आते हैं जिन्होंने मार्ग प्राप्त कर लिया है और उस पर चलने के लिए शक्ति चाहते हैं। पूज्यश्री जवाहरलाल जी महाराज का प्रत्येक व्याख्यान उनके जैन दर्शन पर पूरे अधिकार के साथ साथ दूसरे दर्शनों के भी गहरे तथा तुलनात्मक पाण्डित्य से परिपूर्ण होता है।

२२—राव साहेब अमृतलाल टी. महेता बी. ए. एल. एल. बी., भूतपूर्व दीवान पोरबन्दर, लीमडी और धर्मपुर स्टेट

I had the good fortune to attend several lectures of the highly revered Jain Acharya pujya maharaj Shri Jawaharlalji in Morvi as well as Rajkot. My admiration for him is not due to only his being Jain Ascetic but to his being a preacher of moral princi

pals common to most religious.

I was very much impressed by his learning, earnestness, eloquence and morvellous lucidity of expression. and ex-position His strong desire for the welfare of his flock often prompted him to take a deep interest in their social life and entitled him and endeered him to them to be called their guide, philosopher and friend.

मोरवी तथा राजकोट में परमपूज्यश्री जैनाचार्य पूज्यश्री जवाहरलाल जी महाराज के कुछ व्याख्यान सुनने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था। केवल जैन साधु होने के नाते ही नहीं किन्तु सर्वधर्म साधारण नैतिक नियमों के उपदेशक होने के कारण भी वे मेरी प्रशंसा के विषय हैं।

उनकी विद्वत्ता, भावप्रवणता, वाग्धारा एवं व्याख्यान तथा अभिव्यंजना की सरसता ने बहुत प्रभावित किया है। अपने अनुयायियों के हित की तीव्रभावना से प्रेरित होकर वे सामाजिक कार्यों में बड़ी रुचि लेते हैं। इसी लिए वे लोग आपको अपना नेता, धर्माचार्य तथा मित्र मानते हैं जिसके कि आप पूर्ण अधिकारी हैं।

२३—राव साहेब माणेक लाल सो. पटेल, रिटायर्ड डिपुटी पोलिटिकल एजेंट W. I. S. Agency

I had occasion to listen to some of his (Pujya Shri Jawahrlal ji, s) sermons during the first satyagraha Campaign of the year 1938 when I was member of the State Executive Council. He was then on a tour in Kathiawar and came down to Rajkot from Jamnagar with a view to bring about peace between the Rajkot State and its people. He had religious ceremonies performed, delivered sermons and used all his persuasive powers and influence to bring about peace which was attained when his camp was actually at Rajkot. His sermons preached constructive peace and contentment in a spirit of duty and bore the impress of a disciplined life with a broad minded univarsal morality acceptable to all creeds and communitjes. I wish the Maharaj Shri a long life in his useful humanitarian mission in the disturbed times of brutal wars through which the earth is passing at the present moment.

१९३८ में राजकोट के प्रथम सत्याग्रह संग्राम के समय मुझे आपके (पूज्यश्री के) कुछ व्याख्यान सुनने का अवसर प्राप्त हुआ था। उस समय मैं स्टेट एक्जीक्यूटिव काउंसिल का सदस्य था। पूज्यश्री उन दिनों काठियावाड़ में विचरते हुए राजकोट राज्य तथा प्रजा में शान्ति स्थापित करने के लिए जामनगर से पधारे थे। आपने धार्मिक अनुष्ठान करवाए, व्याख्यान दिए और शान्ति स्थापित करने के लिए अपनी सारी प्रवर्तक शक्तियों तथा प्रभाव का प्रयोग किया। परिणाम स्वरूप उनके राजकोट में विराजते समय ही शान्ति होगई। वे अपने व्याख्यानों में

श्री द्वारकाप्रसाद एल. सरय्या, बी. ए. एल-एल. बी., पोलिटिकल सेक्रेटरी, नवानगर स्टेट

I first attended his discourse on the life of Lord Shri Krishna on Shravan Vad 8th. in that year. I was struck by the great spirit of toleration shown by him in his remarks about Lord Shri Krishna whom I revere and adore sincerely being a Vaishnav muself.

There is no mention in Sanatani Shastras about the near relationship of Lord Shri Krishna with the great Jain Tirthankar Shri Neminath ji, which he explained at great length. I was charmed with his nice performance and so greatly attracted that I then made it a point to attend as many of his discourses as possible consistently with my other duties. I remember to have not only attended several of his discourses but also found pleasure in seeking his company, whenever it suited me to do so. His lectures were charactinized by a high pitch of learning and erudition. His eloquence was so impressive and attractive that many non-jain like myself took pleasure in listening to him.

I may be pardoned if I mention that he even once paid a visit to my humble habitation. It so happened that the late Modi Shamji Shivji who was a great philanethropist was my next door neighbour. He invited the Maharaj Shri once to his place. I was then at home and on my request the Maharaj Shri immediately came to my house and not only honoured me by a visit, but accepted some milk from my house. It so happened that my cows were being milked at the time and following the Jain Principle of सूजतो आहार of the spontenous gift, he was pleased to accept it from me. I think it is the theory of कर्म or action, that every man is responsible not only for his own actions but also for thing done for him. That is, if certain things are done not by you, but for you by others, you cannot escape your responsibility for such things. I think this सूजतो आहार means the acceptrence gifts not intended for the recipient. It creates no responsibility for the individual enjoying its benefit. This is how I understand this principle and I believe in accepting this gift of milk from my cows, being spon-

teneous and not originally meant for the Maharaj Shri, was acceptable to him. What I want to convey by this incident is that, his spirit of toleration was so great as not to make any distinction between a Jain and non-Jain. In his eyes all were equal and this spirit of true generasity adorns his life. I take this opportunity of paying my humble but sincere homage to Maharaji Shri Jawaharlal ji by this short note of mine which I hope will be acceptable to him like my milk.

उस वर्ष की श्रावण वदी अष्टमी के दिन मैंने पहले पहल भगवान् कृष्ण के जीवन पर उन का व्याख्यान सुना। मैं स्वयं वैष्णव हूं और भगवान् कृष्ण का भक्त तथा पुजारी हूँ। मुनि श्री ने श्री कृष्ण का वर्णन करते हुए जो सहिष्णुता की भावना बताई मैं उस से चकित रह गया। भगवान् श्री कृष्ण और महान् जैन तीर्थङ्कर श्री नेमिनाथ जी के निकट सम्बन्ध की बात सनातनी शास्त्रों में नहीं है। इस कथा का उन्होंने बड़े विस्तार के साथ वर्णन किया। मैं उन के सुन्दर भाषण पर मुग्ध होगया और इतना अधिक आकृष्ट हो गया कि मैंने अपने दूसरे कार्यों के साथ साथ उन के यथा सम्भव अधिक से अधिक भाषण सुनने का निश्चय कर लिया। मुझे स्मरण है कि मैंने उन के भाषण ही नहीं सुने किन्तु सुविधानुसार सत्संग भी किया। उनके भाषण शिक्षा और पाण्डित्य के उच्च आदर्श से भरे होते थे। उनका भाषण प्रभावशाली तथा आकर्षक था कि मेरे सरीखे बहुत से अजैन भी उसे सुन कर प्रसन्न होते थे।

इस बात का निर्देश करते हुए मैं क्षमा चाहता हूँ कि उन्होंने मेरे तुच्छ निवास स्थान पर भी पदार्पण किया था। बात यह थी कि प्रसिद्ध दानी स्वर्गीय मोदी शाम जी शिवजी मेरे पड़ोसी थे। मुझ से दूसरा उन के घर का द्वार था। उन्हों ने एक बार महाराज श्री को अपने घर पर निमन्त्रित किया। मैं उस समय घर पर था। मेरी प्रार्थना को महाराज श्री ने शीघ्र स्वीकार कर लिया और मुझे आपने पदार्पण द्वारा ही सन्मानित नहीं किया किन्तु मेरे घर से थोड़ा सा दूध अङ्गीकार किया। मेरी गौएं उसी समय दुही जा रही थीं और 'सूजतो आहार' के सिद्धान्तानुसार उस स्वतःसिद्ध भेंट को उन्होंने स्वीकार कर लिया। मेरे खयाल में यह कर्मवाद का सिद्धान्त है कि मनुष्य अपने द्वारा किए गए कार्यों के लिए ही नहीं किन्तु उन बातों के लिए भी उत्तरदायी है जो उस के लिए की जाती हैं। तात्पर्य यह है कि कुछ वस्तुएं आप नहीं करते, किन्तु आपके लिए दूसरे करते हैं। ऐसी वस्तुओं के उत्तरदायित्व से आप नहीं बच सकते। मेरी दृष्टि में सूजतो आहार का अर्थ है ऐसी वस्तु को स्वीकार करना जिसमें ग्रहीता का निमित्त न हो। इस प्रकार से उपभोग करने वाला व्यक्ति उस वस्तु के उत्तरदायित्व से बच जाता है। मैंने इस सिद्धान्त को इसी रूप में समझा है।

यही बात मेरी गौओं का दूध स्वीकार करने में भी मैंने समझी है, क्योंकि वह दूध स्वाभाविक रूप से दुहा जा रहा था महराज श्री के निमित्त से नहीं, इसीलिए वह उनके लिए स्वीकरणीय हुआ। इस घटना से मैं यह कहना चाहता हूँ कि उन में सर्वधर्म सहिष्णुता की भावना इतनी बढ़ी हुई है कि वे जैन और अजैन में कोई भेद नहीं डालते। उन की दृष्टि में सभी

समान हैं। यह सच्ची उदारता उन के जीवन को अलङ्कृत करती है। मैं इस छोटे लेख द्वारा महाराज श्री जवाहरलालजी के प्रति नम्र और श्रद्धापूर्ण भक्ति अर्पित करता हूँ। आशा है, मेरे दूध की तरह वे इसे भी स्वीकार करेंगे।

२६—एक मुस्लीम ना हृदयोद्गार

(ले० जनाब अब्दुल गफुर नूरमहम्मद बलोच, कामदार मटियाणा स्टेट जूनागढ़)

पूज्यपाद धर्मात्मा सुप्रसिद्ध जैनाचार्य गुरुवर महाराज श्रीजवाहरलालजी नु ं जीवन-चरित्र लखाय छे एम मारा सांभलवामां आवतां ते सांपडेली अमूल्य तके मारा जेवा एक मुस्लीम श्रोता ने तेओ श्री नी वाणि-श्रवण अने वांचन तेमज अनुभव थी थयेल धर्म भावनाए उत्पन्न करेली मानवुद्धिना आवेशे ते पूज्य महात्मा निसबते बे शब्दो अखवा प्रेरायो छु ं।

तेओ श्री पोतानी जन्मभूमि मारवाड़ दूर देश थी विहार करी वि० सं० १९९२ मां काठिया-वाड़ मां पधारी आप्रान्तनी जनता ने दर्शन नो लाभ आपवा उपरान्त राजकोट, जामनगर अने मोरबी मां सं० १९९२ थी १९९४ सुधीत्रण चोमासा करी जे धर्मोपदेश आपी लाखो श्रोताजनों ना मलीन आत्माओं ने पावन कर्या छे तेमज पावन थवाना नेक पवित्र रस्ते चडाव्या छे ते महान् उपकार काठियावाड़ नी धर्मनिष्ठ प्रजा सैंकड़ों वर्ष नहीं भूलवा साथे तेओश्रीए आपेला ज्ञानसागर रूपी व्याख्यानों ऊपर थी भविष्यनी प्रजापण वोध गृहण करती रही पावन थती रहे शे. अने तेओ पूज्य महात्मा नी वार्षिक जन्म तिथि उजववाना के ते निमित्ते कई धर्मनीम करवानो हमेशने माटे योग्य प्रबन्ध करी ते ऋषिवर नु ं संस्मरण ताजु ं राखता रही जन समाज अने विशेषे करीने जैन समाज ऊपर करेला उपकार नु ं यत्किंचित् ऋण अदा करता रहेशे एम मानु छु ं.

ज्यारे पूज्य महर्षि विहार करता-करता जूनागढ़ पधारेला त्यारे अकिंकरने दर्शन नो लाभ मारा परम पूज्य परमोपकारी वडील भ्राता के पिता जे कहूं तेओ मा. मे. वकील मुरब्बी जेठालाल भाई प्रागजी रूपाणी ना अहर्निश समागम ना प्रतापे मेलववा हूं भाग्यशाली थयो हतो. अने महा-राज श्री ना व्याख्यानों तथा धर्म चर्चा सांभलवा नो अमूल्य लाभ मल्यो हतो. ए सन्त समागम तेमज धर्मना महान् सैद्धान्तिक व्याख्यानों नी मारा अन्तःकरण ऊपर थयेली विजलीक असर थी मारा हृदय मां थी अन्धकार रूपी मलीनतानो नाश थवा साथे प्रकाशरूपी धर्मभावना जो जागृत थई होय तो ते वन्दनीय पूज्य तपस्वी जवाहरलालजी महाराज श्री नी धन्यवाणि नो ज प्रताप मानी रह्यो छु ं.

तेओश्रीए पोताना अलौकिक ज्ञान सागरमां थी मधुरवाणी रूपी आपेलां व्याख्यानों ना तय्यार थयेला पुस्तको नो हूं ग्राहक हतो. ते बधा पुस्तको खरीद करी तेना वाचन मनन नो पूरतो लाभ मे लाधो छे. ए वाचन मनन थी मारो आत्मा रंगाई जवा साथे मारा भविष्यना बाकी रहेला जीवन ने दया, नीति, सत्कर्म, अहिंसा, दान, धर्म विगैराना सत्यमार्गे दोरनारा तरीके हमेश ने माटे सहायभूत बनशे. ए बोध ने हूं मारा जीवननी ज्ञान नौका तरीके मानु ं छु.

जैन धर्म ना महान् आचार्य पूज्य जवाहरलालजी महाराज पोताना उपदेश व आचरण द्वारा लोको पर जे महान् उपकार करे छे ते कांई ओछो उपकार नथी। पण तेओ पोते उपकार करेलो नहि मानता पोताना आत्म-कल्याणार्थे करी रहेला माने छे। परन्तु तेओ श्री ना महाज्ञान प्रतापे लाखो मनुष्यों ना आत्मकल्याण थयां छे थाय छे अने थशे. ए वात जन समाज भूली

शकशे नहीं. खरेखर तेओ श्री जगद्गुरु सम छे.

महात्मा श्री पोते जैन धर्म ना आचार्य महापंडित छे अने महान् उपदेशक छे. परन्तु पोताना व्याख्यान मां सर्वधर्म मां थी बोधिक दाखला दृष्टान्तो आपी सर्वधर्म नुं सरखापणुं बतानी श्रोता जनो मां दुनियाना सर्वधर्मों प्रत्ये मानवुद्धि उत्पन्न करावे छे. कोई पण धर्म नी निंदा करवी के सांभलवी तेमां पाप माने छे अने मनावे छे. तेओ श्री कुरान शरीफ, गीता रामायण, भागवत, बाईबल आदि ग्रन्थों नो अभ्यास करी वाकेफी मेलवी चुका छे. तेओश्री लांबु आयुष्य भोगवे एम इच्छुं छुं.

२७—राव बहादुर मोहनलाल पोपट भाई, भू० पू० सदस्य स्टेट कांउसिल, रतलाम

सन् १९३५ में श्रीमज्जैनाचार्य पूज्यश्री जवाहरलालजी म० सा० के शुभ दर्शन का सौभाग्य मुझे रतलाम में प्राप्त हुआ था। उस समय पूज्यश्री के व्याख्यानों का लाभ मैंने पूरे चार मास तक लिया था तथा आपकी यथेष्ट सेवा भी की थी। पूज्यश्री की भव्य एवं प्रभावान्वित मुख मुद्रा का मेरे अन्तस्तल पर जो प्रभाव पड़ा था वह शब्दों द्वारा नहीं कहा जा सकता। आपके मुख-कमल से वह शान्तिस्रोत प्रवाहित होता है, जिसमें अवगाहन करके मानवमात्र कृतकृत्य हो जाता है। जब आपके दर्शनमात्र से मानव अपना अहोभाग्य समझता है, तब हार्दिक उद्‌गारों के साथ प्रवाहित होनेवाली आपकी सात्विक वाग्धारा से मनुष्य कितना प्रभावित हो सकता है यह स्वतः कल्पनागम्य है। इसका अनुभव जब मैं श्रीमान् रतलाम नरेश के साथ चातुर्मास में गया था, तब हुआ था।

श्रीमान् रतलाम नरेश ने आपका व्याख्यान सुनने के लिए आधा घंटा निश्चित किया था, किन्तु जब पूज्यश्री ने योग्य राजा, प्रजा एवं योग्य अधिकारियों के कर्तव्याकर्तव्यों की तात्विक मीमांसा प्रारम्भ की तब आधे घंटे के बजाय दो घंटे का समय व्यतीत हो जाने पर भी श्रीमान् रतलाम नरेश की व्याख्यान श्रवण करने की पिपासा शान्त नहीं हुई। व्याख्यान की सर्वप्रियता का इससे बढ़कर और उदाहरण क्या दिया जा सकता है। आपके व्याख्यानों में जैनदर्शन के साथ अन्य दर्शनों की तुलनात्मक प्रक्रिया और साथ ही सर्वधर्म-समन्वय की जो पद्धति दृष्टिगोचर होती है वह बड़ी ही चित्ताकर्षक है। किसी भी गूढ़ातिगूढ़ विषय को सर्वसाधारणगम्य भाषा में समझाना तो आपकी व्याख्यान शैली की खास विशेषता है।

जब पूज्यश्री प्रभु प्रार्थना करते हैं तब आपकी तन्मयता के साथ सारा श्रोतृ मण्डल भी तन्मय हो जाता है। आपकी अलौकिक प्रार्थना शैली से भक्त एवं भगवान के अनन्यतम सम्बन्ध का मानों प्रत्यक्ष दर्शन हो जाता है। आत्मा और परमात्मा का साक्षात्कार करा देने का सामर्थ्य आपकी प्रार्थना में विद्यमान-सा प्रतीत होता है। संक्षेप में कहा जाय तो एक सुयोग्य प्रतिभाशाली वक्ता में जो गुण होने चाहिए, वे सब गुण पूज्यश्री में पूर्णतया विद्यमान हैं।

पूज्यश्री भारतीय महापुरुषों में अग्रगण्य हैं। सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन एवं सम्यक् चरित्र रूप रत्नत्रय का पूर्ण सामञ्जस्य आपके जीवन में ओतप्रोत दिखाई देता है। आप केवल जैन समाज के लिए ही नहीं बल्कि सारे भारतवर्ष के लिए आदर्श स्वरूप एवं पथप्रदर्शक हैं। पूज्यश्री 'जवाहर' नाम वाले यथार्थ में भारत के जवाहर हैं।

अन्य शब्दों में कहा जाय तो पूज्यश्री अहिंसा और सत्य के महान् प्रचारक, श्रमण संस्कृति

के जाज्वल्यमान रत्न, धर्म और कर्म मार्ग के अप्रतिम प्रकाशक, मोक्ष मार्ग के अद्वितीय प्रसाधक, तत्वज्ञान के अपूर्व व्याख्याता एवं जैनधर्म के प्रबल प्रचारक हैं। आप जैसे आदर्श मुनिराज के जीवन-चरित्र के प्रकाशन की कमी का दीर्घकाल से अनुभव किया जा रहा था परन्तु बड़े हर्ष की बात है कि उस कमी को पूरा करने का श्री 'जवाहर-जीवन-चरित्र-समिति' भीनासर ने निश्चय किया है।

अन्त में मेरी शासनदेव से यही विनम्र अभ्यर्थना है कि पूज्यश्री दीर्घायु हों एवं देश, समाज और राष्ट्र के पथप्रदर्शन में सदैव अग्रगण्य रहें।

२८ –श्रीयुत काजी ए, अख्तर, जागीरदार, जूनागढ़ स्टेट

The late Swami Dayanand was an ideal monotheis, whom the fertile soil of our Kathiawar had produced and who wrought a mighty change to the Hindu hierarchy by his gigantic reformation. Of such a class of reformers and preachers comes Maharaj Shree Jawaharlal ji as very learned preacher and a great missionary of the Sthankwasi cult. It is a privilege to write something about such a sainty personage who is deeply revered not only by the votaries of his own faith but has a large circle of admirers outside it, and as such an admirer I have been asked to give here a reminiscence of my personal contact with him some six years ago.

It was in the year 1936 that I came in contact with this great man who during his missionary perigrimations came down to Junagarh by travelling on foot from a long distance to give bene-

different religious topics and the satisfactory answers to my queries on certain pertinent inter-religious points made me to think of the man as a compromising theosophist rather than a garrulous controversialist.

I was much interested in his talks or rather popular lectures which he delivered to a large audience including men, women and members of other sects and creeds. I attended those sermons for three consecutive days and was much benifitted by his moral and religious precepts which represented the gist and essence of all the true religions. His delivery and power of speech in Hindi and even in Gujarati which he spoke with same ease were remarkable and the audience heard him with rapt attention. He did not confine himself to any particular topic but spoke on different aspects of religion and commented on the ethical and spiritual teachings of great sages of yore in a masterly fashion. He mostly dwelt on the intricacies of human life, its miseries and troubles and showed the way how to get out of this tangle by means ascetic practices and austere habits through which a higher plane of spiritual life could be reached. His philosophical analysis of the subjects he dealt with, was not only non-technical and free from scientific terminology, but it was so clear cut, expressive and practical that it went home to the hearts of his hearers. The parables and stories which he related by way of illustration were not only amusing but were informing and instructive and left indelible impression on the minds of his audience. Mostly he dilated upon the present day degradation and demoralization and in a lighter vein he used to under rate the irreligiosity and the corrupt ingenuity of the so called religious-minded people. He was designed to expose the rack hypocracy of the so called religious heads and their priestly importunity and the shameless treachery with which they were sucking the life blood of their own community. During the course of his speeches he dwelt on certain reforms to be introduced among the followers of his sect by sheer forces of arguments supported by the authority of the Jain Shashtras which greatly appealed to his audience and once

I remember that during the course of his speech the ladies i: sed by his admonition resolved on the spot to forsake the unuesi-rable custom of wailing and lamenting over the dead by making a public demonstration. His arguments were so convincing that one felt an urgency of prompt and immediate action.

The Maharaj Shree is not only a scholar of his own religion but he seems to have studied the teachings of other religions. His theosophical observation of different religions have inspired in him fellow feeling, sympathy, love and regard towards the followers of other faiths and creeds a tolerant spirit lacking in the present day teachers, much less in the reformers and politicians of the day. He preached for tolerance and inter-religious amity which the sores need of the our. I wish there were many preachers of Maharaj Shree Jawaharlal ji's type who could alone bring about harmonious relations among the followers of different creeds. Had there been many Jawaharlal, the task of national unity could have been easier.

In the end I pray that the Maharaj Shree may be spared a long life to fulfill his laudable mission of binding people in the sacred tie of religion and leading them on the path of heavenly bliss and enternal happiness.

स्वर्गीय स्वामी दयानन्द आदर्श एकेश्वर वादी थे। उन्हें काठियावाड़ की उपजाऊ भूमि ने जन्म दिया था। अपने विशाल सुधार द्वारा हिन्दु रूढिवाद में उन्होंने शक्तिशाली परिवर्तन किया। महाराज श्री जवाहरलाल जी ऐसे ही सुधारक तथा उपदेशकों की श्रेणी में आते हैं। वे उच्च श्रेणी के विद्वान् उपदेशक तथा स्थानकवासी सम्प्रदाय के महान् प्रचारक हैं। ऐसे सन्त पुरुष के लिए कुछ लिखना सौभाग्य की बात है। वे भक्ति पूर्वक अपनी सम्प्रदाय के अनुयायियों द्वारा ही नहीं पूजे जाते किन्तु उस के बाहर भी आप के प्रशंसक बड़ी संख्या में हैं। एक ऐसा प्रशंसक होने के कारण ही मुझे कहा गया है कि आप के साथ छह साल पहले मेरा जो वैयक्तिक परिचय हुआ है, उस के संस्मरण लिखूं।

इस महापुरुष के परिचय में मैं सन् १९२६ में आया था। स्थानकवासी समाज को अपने विद्वत्ता पूर्ण भाषणों का लाभ देते हुए, धर्म प्रचार के लिए स्थान-स्थान पर विचरते हुए आप पैदल विहार कर के बड़ी दूर से जूनागढ़ पधारे थे। सांसारिक जीवन की अविरत झंझटों और चिन्ताओं के बाद प्रत्येक व्यक्ति को आध्यात्मिक विचारों वाले नेता तथा विद्वान् मुनियों के सत्संग में बड़ी शान्ति तथा सुख प्राप्त होते हैं। मेरे परम मित्र जेठालाल भाई रूपाणी ने मुझे एक ऐसा ही अवसर प्रदान किया। उन्हीं की भद्रता के कारण मुझे उपरोक्त आचार्य श्री के दर्शनों का लाभ

प्राप्त हुआ। आप की सादगी, नम्र व्यवहार, सहन शीलता तथा सौहार्द ने मुझे एक दम प्रभावित कर लिया। आपकी विद्वत्तापूर्ण वार्तालाप श्रोताओं के हृदय को हर लेता है। आपका सत्संग करते समय प्रत्येक व्यक्ति ऐसा अनुभव करता है जैसे वह अपने किसी मित्र के साथ बैठा हो और विभिन्न विषयों पर बातचीत कर रहा हो। आप में न तो पवित्रता के दिखावे की झलक है और न उदासी से भरी हुई गंभीरता है। शान्त, स्वस्थ, संयत तथा शुद्ध आचार का औचित्य आप सरीखे ज्ञानी मुनि के उच्च तथा विशाल मस्तिष्क का परिचय देता है। कुछ धार्मिक विषयों पर मैंने आप से संक्षिप्त वार्तालाप किया। धर्मों के पारस्परिक व्यवहार के विषय में मैंने जो प्रश्न पूछे, आपने उन का सन्तोष जनक समाधान किया। उस से मेरे मन में आया कि आप एकता के प्रेमी तथा ईश्वरी सत्य का आदर करने वाले महापुरुष हैं। कलहपूर्ण विचार आप को पसन्द नहीं हैं।

मुझे आप के वार्तालाप तथा सार्वजनिक भाषणों में बड़ी रुचि थी। वे भाषण ऐसी सभा में हुए थे जिस में स्त्री-पुरुष तथा दूसरे धर्मों और संप्रदायों के अनुयायी भी बड़ी संख्या में थे। मैंने उन उपदेशों को लगातार तीन दिन तक सुना। आप के नैतिक तथा धार्मिक उपदेशों में सभी धर्मों का सारांश तथा निचोड़ निकाल कर रख दिया गया था। हिन्दी तथा गुजराती, जिसे वे सरलता से बोल सकते थे, में आप के भाषण की शैली तथा शक्ति आश्चर्यजनक थी। जनता उसे पूरे ध्यान से सुना करती थी। आप किसी एक विषय में ही सीमित नहीं रहते थे किन्तु धर्म के विविध पहलुओं पर भाषण दिया करते थे। प्राचीन आचार्यों के नैतिक तथा अध्यात्मिक उपदेशों पर पाण्डित्यपूर्ण व्याख्यान किया करते थे। मानव जीवन की उलझनों तथा उन से होने वाले कष्टों और झंझटों पर आप बहुत अधिक बोला करते थे। साथ में यह भी बताया करते थे कि तपस्या तथा संयमी जीवन द्वारा इस जंजाल से कैसे निकला जा सकता है और आध्यात्मिक जीवन की उच्च श्रेणी को कैसे प्राप्त किया जा सकता है। किसी भी विषय का दार्शनिक विवेचन करते समय आप पारिभाषिक तथा वैज्ञानिक शब्दों से बहुत दूर रहते थे। आप का प्रतिपादन इतना स्पष्ट, प्रभावशाली तथा व्यावहारिक होता था कि वह श्रोताओं के हृदय में सीधा उतर जाता था। उदाहरण के रूप में जो चुटकले तथा कहानियां सुनाते थे, वे केवल मनोरञ्जक ही नहीं किन्तु ज्ञान और शिक्षा से भी पूर्ण होती थीं। जनता के हृदय पर उनका स्थायी असर होता था। आधुनिक अवनति तथा नैतिक पतन पर भी आप बहुत बोलते थे। धर्मात्मा कहलाने वाले व्यक्तियों के विकृतज्ञान तथा उनमें वास्तविक धर्म के अभाव की आप बहुत निन्दा किया करते थे। धर्मनेता कहलाने वाले व्यक्तियों का घोर पाखण्ड, धर्म की ओट में होने वाली नीचता तथा लज्जापूर्ण धोखेबाजी जिसके द्वारा वे समाज के जीवनरक्त को चूस रहे हैं, आदि का भी वे स्पष्ट चित्र खींचा करते थे। अपने व्याख्यानों में आपने स्थानकवासी समाज के लिए कई सुधार भी पेश किए। शास्त्रों के प्रमाण तथा युक्तिबल से उनका ऐसा समर्थन किया कि वे जनता को बहुत अच्छे लगे। मुझे याद है कि आपकी उपदेशपूर्ण फटकार से प्रभावित होकर स्त्रियों ने उसी समय मृत व्यक्ति के लिए सार्वजनिक प्रदर्शन करते हुए रोने-पीटने की प्रथा को छोड़ दिया। आपकी युक्तियाँ इतनी असरकारक होती हैं कि प्रत्येक व्यक्ति उस बात को उसी समय कार्यरूप में परिणत करने की नितान्त आवश्यकता अनुभव करने लगता है।

महाराज श्री अपने धर्म के ही विद्वान् नहीं हैं किन्तु आपने दूसरे धर्मों के सिद्धान्तों का भी अध्ययन किया है। धर्म ग्रन्थों के इस तुलनात्मक अध्ययन के कारण ही आपकी सभी धर्मों के प्रति सद्भावना है। आप विविध धर्मों में ईश्वरीय सत्य को देखते हैं। इसी कारण आप में अन्य धर्मों के अनुयायियों के प्रति मित्रता सहानुभूति, प्रेम तथा सद्भावना जागृत हुई है। वर्तमान धर्मोपदेशकों में यह सहनशीलता नहीं पाई जाती। सुधारकों और राजनीतिज्ञों में तो यह और भी कम है। आप सहन शीलता तथा धर्मों में पारस्परिक मित्रता पर बहुत जोर देते थे। आजकल की यह सब से बड़ी आवश्यकता है। मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि महाराज श्री जवाहरलाल जी सरीखे बहुत से उपदेशक हों। ऐसे उपदेशक ही धार्मिक सम्प्रदायों में मधुर संबन्ध स्थापित कर सकते हैं। यदि अनेक जवाहरलाल होते तो राष्ट्रीय एकता का कार्य सरल बन जाता।

अन्त में मैं प्रार्थना करता हूँ कि महाराज श्री चिरजीवी हों और जनता को धर्म के पवित्र बन्धन में बाँधने तथा उसे स्वर्गीय आनन्द और अनन्त सुख का पथ-प्रदर्शन करने के अपने महान् उद्देश्य को पूरा करें।

२६—सौराष्ट्र द्वारे स्वागत

(श्री कालीदास नागरदास शाह, एम. ए., एज्युकेशनल आफिसर वढ़वाण स्टेट)

परमप्रतापी जैनाचार्य पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराजना दर्शननो तथा व्याख्याननो अनुपम लाभ वढ़वाण शहेरना श्री स्थानकवासी जैन संघ ने संवत् १९९२ ना जेठ मास मां मलेल हतो।

श्री सौराष्ट्र ना द्वार रूपी श्री वर्धमानपुरी मां पूज्यश्री जवाहरलाल जी महाराज नो प्रवेश थयो त्यारे तेओश्रीना स्वागत माटे तथा दर्शन माटे जैन समाज मां जे आनन्द अने उत्साह उभ-राई रह्या हता ते अवर्तनीय हता। आखा काठियावाड़ ना जे शहेरो तथा गामडोना संघोने आ बाबत ना खबर अगाउ पडेल हता। ते ते संघोना संख्याबन्ध पुरुषो अने स्त्रियो पूज्य साहेब ना दर्शन माटे आवी पहोंच्या हता। हजारो नी संख्या मां पूज्यश्रीनुं स्वागत घणा हर्ष थी करवामां आव्युं हतुं। वढ़वाण शहेर ना बाहरना भाग मां श्री हाजीपुरा मां आवेल श्री महाजन नी विशाल धर्मशाला मां पूज्य साहेब तथा तेमनी साथे पधारेल अनेक शिष्योंने उतारवा मां आवेल हता, अने व्याख्यानो पण तेज स्थले राखवा मां आवेल हतां।

श्री महावीर प्रभुना समय मां जेम जैन तथा जैनेतर पुरुषो अने स्त्रियो प्रवचन सांभलवा माटे हजारो ना टोला मां जतां हतां तेम वढ़वाण शहेर मां पण ज्ञाति अने धर्मनो भेद जाण्या सिवाय सैकड़ों स्त्री पुरुषो व्याख्यान नो लाभ लेवा माटे आवतां हतां। पूज्यश्रीना आगमन थी खरेखर स्थानकवासी धर्मनो घणो उद्योत थयो हतो। अने हालना समय मां श्री स्थानकवासी संघो मां एक या बीजा कारणे जे छिन्न-भिन्नता थयेल हती तथा श्री महावीर प्रभुना फरमावेल सिद्धान्तो प्रमाणे वर्तन करवानुं शिथिल थई गयुँ हतुं, ते समये पूज्य साहेबनुं आगमन एक महान् धर्मप्रचारक, धर्मोत्तेजक तरीके उपयोगी थई पडेल हतुं। तेओ साहेबनुं जैनधर्मनुं ऊंडुं अने तलस्पर्शी ज्ञान दरेक सिद्धान्त ने सरल रीते समजाववानी शक्ति, अति प्रशंसनीय वक्तृत्वशैली वगेरे गुणो थी श्रोताओ ना हृदय मां अंतर ना प्रेम अने उत्साह ना झरणा सजीवन थयां हतां, अने तीव्र गति थी वहेता हतां।

आवा कठिन काल मां पांचमां आरामां पण चोथा आरानी स्थितिनु' चित्र खडु' करनार आ महान् आचार्य प्रति एक एक व्यक्ति नो प्रेम अने पूज्य भाव उभराई जतां हतां। तेओ साहेब नी सरलता, निर्व्याजता, संस्कारिता, राष्ट्रप्रेम देदीप्यमान थई विद्युत् नी माफक दरेकने असर करता हता। जैन धर्मना ऊँडा ऊँडा तात्विक रहस्यो सादा दाखला दलील थी तेओ साहेब एवी सरस रीते समजावता अने एवी सचोट रीते असर करता के ते असर मनन्न तथा हृदय ना ऊँडा ऊँडा चेत्र मां सचोट रीते प्रसरती हतो। अने तेथी ते समय ना काठियावाड मां वयायेल बीजो मां बहु सुन्दर वृक्षो फली फूली नीकलेल छे।

राजकोट जामनगर मोरवी वगेरे स्थले पूज्य साहेब चातुर्मास पधारवा कृपा करेल हती, जेना फल रूपे राजकोट मां जैनगुरुकुल नी उत्पत्ति थयेल छे। जे संस्था आजे सारी प्रगति करी रहेल छे।

तेओ साहेब ना काठियावाड ना, प्रवास दरम्यान घणां वेर भेद भूली गया हतां। अने धर्म प्रेम तथा मानव प्रेम मां मानवदयाना मोजाओ संसाररूपी दरिया मां उछली रहेल हतां।

आजे विद्वानो अने तेवा साधुमार्गी उच्चतम रहेणी करणी वाला साधुजीओ मां तेमनी मुख्य गणत्री छे। तेओ सरलहृदयी, उच्चतम ज्ञानी, अने बोलवानी अनुपम छटा तथा उपदेशक तरीके एक महान् विजेता काठीयावाड़ मां निवड्या छे, एम सौ कोइए कह्या वगेर चाले तेम न थी।

३०—पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज

ले० श्री गौरीशंकर दफ्तरी L. C. E. सुपरिण्टेण्डिग इंजिनीयर, बम्बई।

सने १९२३-२४ ना चौमासां मां ज्यारे महाराजश्री घाटकोपर मां विराजता हता त्यारे हुं दसेक माइल दूर थाणा मां एक्जीक्यूटिव इंजिनीयर हतो। त्यारे महाराज श्री ना व्याख्यान माटे अवार जवार घाटकोपर जतो। ते प्रसंगे तेओश्रीना व्याख्यान, तेमनी बात समजाववानी छटा तेमना ऊँच चारित्र वगेरेनी मारा ऊपर घरिज ऊँडी छाप पड़ी हती। ते वर्षमांना तेमना प्रयासोने अंगेज घाटकोपर गोशाला संस्था हयाती मां आवी अने हाल पण ते संस्था जे उमदु' काम करी रहेस छे तेनो भाग्गो यश पूज्य महाराज श्री जवाहरलालजीनेज आपवो घटे छे।

सने १९३७ मां म्हारा न्हाना भाईना लग्न प्रसंगे हुं जामनगर डाक्टर प्राणजीवन म्हेता ने त्यां गयेल, त्यारे पू० महाराज श्रीनु' त्यां चोमासु' होई म्हारे त्रणेक रोज नो मेलाप थएल। ते दिवसो मां महाराजश्री साथे एक प्रश्न चर्चायेल अने तेओश्री तेनो करेल खुलासो आजे पण तादृश खड़ो थाय छे। सवाल ए हतो के जमानाने अंगे आपणा साधु मुनिराजोए पण पोताना रहेणी करणी मां फेरफार करवो न घटे के? हालनु' घोरण पूज्य लोंकाशाए सैकाओ पूर्वे घड्यु' त्यार बाद काल मां घणा घणा पलटा आवी गया। खास करीने छेला ३०-४० वर्ष मां थएल अजब शोधो अने सुधारा ना जमानां मां वर्षो पहेला नु' बंधाएल धोरण नीभाववु' अशक्य बनतु' चाल्यु' छे।

पूज्य महाराज श्री नो जवाब हतो के जवाब बे भांगो मा वेहचवो जोइए। (१) एक तो चालु व्रतधारी साधुओ के जूना घोरण मुजब व्रतो आदरी बेठा छे—जेवा के पोताने अने तेमना शिष्यो विगेरे—तेवाओ ने माटे तो तेमनी फरज एज छे के तेमणे लीधेला व्रतो सांगोपांग पा

उतारवा अने तेमां व्रतभंग नो दोष क्यांय आववा देवो नहीं।

(२) बीजो भाग रह्या भविष्य ना धर्म उजालनाराओ जेओ व्रतधारी थया नथी। ते वाओ जरूर सारा अने विद्वान श्रावको नु एक मंडल रची तेमां चर्चा अने विचारनी आपलें करता कांई--जमाना ने बंध बेस्तु धोरण नीपजावी काढे - मोटे भागे पूज्य महाराज नो आग्रह "श्रावकनु धोरण जमाना ने बंध बेस्तु गोठववामां अने ते प्रमाणे आचार मां मूकवा मां आवे ते तरफ नो हतो। ऊँचा चारित्रधारी श्रावको पण धर्मप्रचारक थई शके छे। अने आगम मा साधुपणा ना जूना रिवाज तेमने कडक अगर काल ने नहीं बंध बेसता लागता होय तो तेओ पोता ने माटे जरूर बीजु सारु अने बंध बेसतु धोरण नीपजावी शके छे। आ बात अंगत पसन्दगीना पसंदगी नी नही रहेता साम्प्रदायिक निर्णय अने धोरण नी बनवी जोइए।

पू० महाराज श्री आपणा स्थानकवासी गच्छ मां एक घणा अग्रगण्य मुनि छे। पोताना चारित्र-चुस्तता, ऊँडा ज्ञान, समजाववानी शैली, उदार विचार, गंभीर वाणी वगेरे अनेक ऊँचा गुणो थी आपणी जनतानी तेओ श्रीए घणी अमूल्य सेवा वर्षो सुधी बजावी छे। अने तेथी ते श्रीनो आपणा सर्व ऊपर महा उपकार थयो छे। प्रभु तेमने दीर्घायुष्य आपे एम प्रार्थना।

३१—दानवीर खां साहेब होरमशाह कुंवरजी चौधरी, (एक पारसी सज्जन)
काठियावाड़ अनाथालय तथा चौधरी हाई स्कूल के भवन निर्माता राजकोट

पूज्य महाराज श्रीजवाहरलालजी नु गुणगान करवु ते पण जे आत्माए तेमना आत्मा नु अवलोकन कर्यु तेना थीज बनी शके।

मारे प्रथम थीज कहेवु जोइए के मने एमनो अंगत परिचय नो लाभ लेवा बहु थोड़ी तक मली छे, एटले—तेमनां व्याख्यान जे मे सांभल्या छे ते उपरज हुं बे शब्दो कही शकुं छुं।

तेमनी विद्वत्ता, पोताना परमात्मानी कृपा थी तेमनां हृदय मां जे प्रज्ञा रूपे उद्भवेल छे ते तेमणे पोताना जीवन मां उतारी छे। एटले एवा व्याख्यान करनारानो वाणी जनता नां आत्मा ऊपर शिक्षा रूपे असर कारक थाय, ए एक खरा सिद्धान्त नी बात छे।

एमना व्याख्यान मां थी जे बे बोलोए मारा ऊपर सचोट असर करी छे ते ब्रह्मचर्य अने भक्तिमार्ग नो महिमा छे।

आ रीते पूज्य महाराज श्रीए पोतानां 'जवाहरलाल' नाम ना खरा गुण प्रमाणे जनता ने ब्रह्मचर्य अने मुक्ति मार्ग ऊपर जे अति अमूल्य व्याख्यान अप्या छे ते सांभलनाएओ मांथी जेओए पोताना जीवन मां उतार्या हशे, तेओ ज तेनो लाभ पामी पूज्य महाराज श्रीना व्याख्यान नी खरी कद्र करशे अने गुण गाता रहेशे।

बीजी तेमना व्याख्यान नी खूबी मने जणाई हती ते तेमनी जिंदगी पर्यन्त ना शुद्ध चारित्र ने परिणामे तेमनी समझाववानी शैली, ऊंच विचार अने गम्भीर वाणी हता।

आ रीते पूज्य महाराज श्री पोताना जवाहीर ना नाम प्रमाणे गुणो धरावता होई ने तेमणे जनता नी जे अमूल्य सेवा बजावी छे, ते तेमना तरफ थी एक महान् उपकार तरीके स्वीकारवाने आपणने हर्ष थाय छे।

तेमनो वियोग आपणने निराश करे ए स्वाभाविक होवा थी जनता मां थी घणा आत्माओ

तेमनी साथे पगे चाली ने लाम्बो साथ आपी छुटा पड्या हता, जे हृदयना प्रेमनी भावना वगर बनी शकतुं नथी।

महाराज श्री जैन समाज नुं जवाहर छे एम कहेवामां आवे छे, पण तेम कहेवा मां कांई अपूर्णता मने देखाय छे। ते ए छे के ते एक जैन धर्म ना जवाहर करतां 'सर्वधर्मो नुं जवाहीर' तरीके गणवा ने लायक छे, केमके तेमणे विश्वधर्म ने ध्यान मां राखीनेज सघला व्याख्यानो जनता ने समजाव्या छे। ते थी तेओ जैनोनी साथे बीजी सर्व जनता ने प्रिय थई पड्या छे।

परमात्मा तेमनुं दरेक रीते रक्षण करो, देहना अन्त सुधी पूरतुं आरोग्य भोगवो, अने जेने परिणामे पोता थी बनतो लाभ जनता ने आपता रहे एवी सहृदयनी भावना, अने प्रार्थना साथे।

एक पुण्य स्मरण

३२--राजरत्न सेठ मंचरशाह हीरजी भाई वाडिया, पोरबन्दर

पांचेक वर्ष ए पुण्यस्मरण ने फोराए वही गयां परन्तु मानसदेशे ए सदा जीवन्त रहेशे। पोरबन्दर मां प्रतिदिन प्राकृटना दोरा फूटे अने ज्ञान तरस्या मुमुक्षुओं मां प्राणने पगला माणेक चौकनी उत्तरे स्थानिक दशा श्रीमाली वाणिआनो महाजनवाडी नी पगथार पर पलतां। घड़ीआल ना नव ने चणकारे जडवाद डूब्या जगत ने आध्यात्मिकता ना आदेश आपवा तप्यां तरणि ना तापने टालवा, जर ने जंजाल सरजी माया छायड़ी मां भूलेला जीवन नी साची केडी दर्शाववा उत्तरीय ओढ़ेला प्रचंड कायधारी, शान्ति ने अहिंसा नी साक्षात् सौम्य मूर्ति शा एक साधुराज पधारता अने जरा शा उन्नत आसने विराजता त्यारे तो उल्टेली मानवभेदिनी लली लली नमती तोये न नम्याना ओरना सेवती। एवो एमनो अप्रतिम पुण्य परिमल म्हेक हतो। पोताना प्रिय अने पथ्य प्रवचन नो प्रारम्भ प्रार्थना थी आदरता ने जाणे जुग जुग नो जोगन्दर सर्वधर्म समभावनी आराधना ने आराधतो न होय एवी आत्म प्रतीति थती। एनां नयनो तपप्रभानी पुण्य प्रोज्वलता थी प्रकाशतां, ललाटे तत्वचिन्तन नी रेखाओ दोराती, ने ज्ञानभारे नमतां पोपचा मां थी अभ्यास ने अनुभवनां अमी आपोआप ढलतां। एमना सौम्य ने साधु जीवन नां प्रेरणा बोल कैं कैं ने 'निद्रा' मां थी लवड़ दई ने जगाडता। एतो शोधी दाखवता हता जीवन मां, जगतमां ने जिंदगानी मां हटाई गयेलां जवाहीरो ने। हता ए जैन आचार्य, परन्तु समत्व ने सत्याग्रह भावे थया हता जनो ना आचार्य, उद्बोधता श्री महावीरना मोंघाभूला उपदेश मन्त्रो परन्तु पारकाना गुणधर्म ने परभागवानी ने नाणवानी महानुभाविता एमने सहज वरी हतो। ए महानुभाव महाराज ते जैनाचार्य श्री जवाहीरलाल जी महाराज। जनता ने एओश्री नो केवल भीस दिवसनो ज लाभ मल्यो, परन्तु त्रीस वर्षे पण न पचे एवी ए आत्म औषधि हतो। पुण्य होय, पुरुषार्थ होय तो पचे।

शास्त्रो ने शोधे, सत्वसंग्रही आचारो उद्बोधे ने आचरावे एवा ए अहिंसा ना आचार्य छे। एमनो अहिंसा ने भावना विशाल ने विस्तृत छे। व्यावहारिक जीवन मां जीवो जीवी शकाय एवी छे। एक अथवा अन्य प्रकारे हिंसामां डूबेलो जनता ने एमवुं अहिंसा दर्शन आध्यात्मिकता नुं वातावरण उभुं करे छे। ने ते साथे पोताने सदा अपूर्व मानता मानव मां केवी ने कटेली अमाप आत्मशक्ति सदुपयोग साधे तो वसेल छे तेनु आत्मदर्शन थाय छे। आवा एक तपस्वीना सद्बोध श्रवण नो सुयोग मने जे सांपडेलो अने सवलुं मारु आ जीवन जीवन-धन रहेशे। आत्म-

सागरना मोघामूलां मोती ने मूलवंतां आवडे तो ए संतो नी सात्विक भूमिका जवाय।

संतनी ए पुण्य प्रोज्वल सात्विकता ने मारा सदाना सहस्रधा वंदन हो।

३३--मेहता तेजसिंह जी कोठारी, बी.ए. एल. एल. बी., कलेक्टर उदयपुरः—

श्रीमद् जैनाचार्य पूज्य श्री १०८ श्री श्री जवाहरलाल जी महाराज बाईस संप्रदाय व जैन ाज में ही नहीं किन्तु संसार की इनी गिनी उच्चकोटि की महान् आत्माओं में से एक महान् मा जीती जागती तपश्चर्या की सजीव मूर्ति एवं धर्म की एक महान् विभूति हैं।

चरित्र गठन, तपबल, आदर्शधर्म दृढ़ता, संयम शीलता, शास्त्र-निपुणता, एवं विद्वत्ता ाके प्रवचन श्रवण के पहले ही प्रथमदर्शनमात्र से दर्शक को हृदयंगम होकर उसे प्रभावित कर ा है। यदि ऐसे सौ पचास महात्मा भी इस समय विद्यमान होकर देशसेवा, समाजसेवा एवं ाप्रसार में अपना सर्वस्व लगादें तो गृह, समाज एवं राष्ट्र का महान् उद्धार होकर उन्नत दशा की ेत अवश्यमेव सुलभ हो सकती है।

मुझे आपके दर्शनों का एवं सत्संग का शुभ अवसर मेरे पूज्य स्व० पितामह के पुण्य- ाप से प्रायः प्राप्त हुआ करता था. और लगभग मेरे बाल काल से (अब से पांच वर्ष पीछे तक ा तक पूज्य पितामह आरोग्य थे व अब भी) अब तक करीब तीस वर्ष का समय होजाता है— ापके तपोबल, दर्शन श्रवण एवं मनन से दिनों दिन मेरी भावना आपके सद्गुणों की ओर बढ़ती ी है। सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, परिग्रह, त्याग एवं तपश्चर्या आपके व आपके धर्म के तीव्र द्गुण हैं।

आपकी विशेष प्रशंसा करना मेरे जैसे अल्पज्ञ एवं सामान्य व्यक्ति के लिए सूर्य को दीपक खाने के तुल्य होगा. किन्तु आपके प्रति श्रद्धा एवं भक्ति ने मेरे मनमन्दिर में स्थान क्यों किया ौर उसका मूल कारण क्या था इसको यदि प्रकट न किया जाय तो मैं अपने आपको कर्तव्यशून्य वं कृतघ्न मानने को बाध्य होजाता हूँ। अब इस विषय में दो शब्द नीचे कहना चाहता हूं।

मैं ऊपर कह चुका हूँ कि ऐसे महात्मा की सेवा का महान् लाभ प्राप्त होना केवलमात्र मेरे ज्य पितामह स्व० कोठारी जी साहब बलवन्त सिंह जी भूतपूर्व प्रधान राज्य मेवाड़ की पहली ापा का कारण था. मेरी ५ वर्ष की आयु में मेरी माता का स्वर्गवास होगया तब से पूज्य पितामह ा मुझे अपने पास ही रख लालन पालन किया. मेरे शिशु काल से यौवन काल तक जब तक मुझे ज्य पितामह की सेवा का लाभ एवं सौभाग्य मेरे भाग्य में बदा रहा एवं उनका कृपा रूपी छत्र ेरे मस्तक पर सुशोभित रहा, लगातार पितामह की सेवा में मेरे बराबर साथ रहने से पूज्यश्री ी सेवा का सौभाग्य भी प्रायः प्रतिवर्ष मुझे मिलता ही रहा. और उन्हीं पूज्य पितामह की कृपा का फल है कि उन्हीं संस्कारों के कारण अब भी पूज्यश्री की सेवा का लाभ लेने की सद्भावना बनी हुई है।

पूज्य पितामह अन्धविश्वासी एवं वेशपुजारी न थे वे विचारशील एवं स्पष्टभाषी व्यक्ति थे। यों तो जैन समाज में मुख्यतः बाईस सम्प्रदाय के साधुओं के प्रति उनके विचार श्रद्धायुक्त एवं भक्ति को लिए हुए न थे, यही नहीं वल्कि विरोधी भाव को लिए हुए कहा जाय तो भी अत्युक्ति नहीं होगी. उन्हें इन साधुओं के प्रति प्रेम न था वल्कि यहाँ तक अमान्यता थी कि १९४९ के वर्ष हमारे घर में पितामह की विमाता ने जैन साधुओं का चातुर्मास करवाया तो भरे

चातुर्मास में कारण विशेष पर उन्होंने उन्हें घर से निकलवा दिया था।

संयोगवश १९५३ वि० के वर्ष स्व० पूज्यश्री श्रीलाल जी महाराज का चातुर्मास उदयपुर में हुआ तब आपका भी स्व० पूज्यश्री से समागम हुआ. पितामह ने संथारा व स्वहत्या करने में क्या अन्तर है, मैले कुचैले कपड़े की क्या आवश्यकता है इत्यादि इत्यादि अनेक प्रश्न स्व० पूज्य श्री से किये और उन सब ही प्रश्नों का संतोषजनक उत्तर मिलने व जैन धर्म के विशेषतः हृदयंगम होने पर आपकी विरोधी भावना मिटकर यकायक इस धर्म के प्रति उच्च भावना एवं श्रद्धा बढ़ने लगी और तब से लेकर अन्त समय तक आप पूज्यश्री की सेवा का लाभ बराबर उठाते रहे और हमेशा के लिये अनन्य भक्त बन गये। इतना होने पर भी जिस विषय में आपको शंका रह जाती खुले दिल पूज्य श्री से प्रश्न कर शंका समाधान करते थे। हाँ में हाँ मिलाना व अन्धविश्वासी बन हाथ जोड़े रहना यह पितामह के स्वभाव से परे था. पूज्य पितामह को महाराणा साहब की सेवा का अवसर प्राप्त हुआ और स्व. म. सा. फतहसिंह जी जैसे न्यायशील, नीतिनिपुण, धर्मनिष्ठ नरेश के दीर्घकाल तक मुख्य मन्त्री रहे आप अपने विचारों के धनी एवं चरित्र के मानी थे संसार के सुख व दुःख दोनों का आपको अनुभव था। जो आप से परिचित हुआ वह प्रभावित हुए बिना नहीं रहा। ऐसे योग्य अनुभवशील वयोवृद्ध मंत्री को दोनों पूज्य श्री के तपोबल ने क्योंकर अपनी ओर आकर्षित किया. इस विषय में क्या ही अच्छा होता यदि पूज्य पितामह द्वारा उनके जीवन काल में उनकी सम्मति के दो शब्द लेखनी द्वारा पृष्ठ में अवतीर्ण होजाते किन्तु सचमुच दुःख का विषय है कि इस देश में प्रायः इतिहास एवं ऐतिहासिक सामग्री की ओर लोगों की धारणा व लक्ष्य बहुत ही कम रहता है। पूज्यश्री जैसे महापुरुष ने हजारों ही उपकार किये और कई एक को धर्ममार्ग दिग्दर्शन कराया होगा किन्तु इनके शुभ कार्यों का संग्रह, जो भावी जनसमुदाय को भी कल्याणकारक एवं सन्मार्गदर्शक बन सके, करने की ओर अब तक उद्योग नहीं किया गया। फिर भी किसी कद्र यह जान कर संतोष एवं हर्ष होता है कि पूज्यश्री के जीवन चरित्र की सामग्री तैयार की जा रही है। ऐसे समय में पितामह के विद्यमान नहीं होने से उनकी लिखित सम्मति प्राप्त नहीं है, किन्तु मैं पूर्ण विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि स्व० पूज्यश्री एवं वर्तमान् पूज्यश्री के प्रति पूज्य स्व० पितामह के विचार उच्च एवं श्रद्धा युक्त थे और अन्त समय तक वे पूज्य श्री के अनन्य भक्त रहे हैं। इन दोनों महापुरुषों के आदर्श चरित्र, धर्म तप एवं संयम के बल ने पितामह को प्रभावित किया और वे नित्य इनके सत्समागम के लिए तृषित ही रहे। पूज्यश्री के दर्शन, श्रवण एवं मनन से पूज्य पितामह ने धार्मिक तत्वों का मनन कर बहुत कुछ लाभ उठाया। और आत्मोन्नति में साधक बनाया था।

मेरे दो शब्द प्रकट करने से पितामह के विचारों का रूप किसी अंश में भी यहाँ परिस्थित हो सका है तो मैं अपने को कृतकृत्य मानता हुआ परम पिता परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ कि ऐसे सन्मार्गदर्शी महात्मा को आने वाले कई वर्षों के लिए चिरायु करे और एक वट की अनेक शाखा तुल्य ऐसे महापुरुष से अनेक महापुरुष बन जायें व साथ ही पूज्यश्री के युवाचार्य श्री गणेश-लाल जी महाराज आदि सन्त समुदाय पूज्य श्री के गुणों का अनुकरण करते हुए स्व आत्मा एवं पर आत्मा के कल्याणदायक एवं हितकर सिद्ध हों।

जैन शासन की वर्तमान परिस्थिति
और
परम प्रभावशाली आचार्य श्री जवाहरलालजी म० जैसे मुनिश्वरों की आवश्यकता

३४—(डा० प्राणजीवन माणिकचन्द मेहता, एम. डी. M. S., F. C. P. S.
चीफ मेडिकल आफिसर, नवानगर स्टेट)

महाराज श्री जवाहरलालजी तत्वज्ञानोपदेश और अपने विशुद्ध चारित्र द्वारा जैन धर्म और जैन चतुर्विध संघ की उत्कृष्ट सेवा कर रहे हैं। भक्त गुरु की प्रशंसा करे, यह प्रेम और विनय की सामान्य प्रथा है। उसके द्वारा कहे गए प्रशंसावचन यथार्थ हैं या अयथार्थ, यह जानने के लिए वैज्ञानिक दृष्टि की आवश्यकता होती है। जब इस दृष्टि से गुरु की श्रेष्ठता सिद्ध होगी तभी वे जगत् के वंदनीय गिने जाएंगे।

जैन तत्वज्ञान विश्व का अनुपम तत्वज्ञान है। जैन साधु संस्था कठोर चारित्र की उच्चतम श्रेणी पर टिकी हुई है। नवयुग में श्रावक-संस्था धर्मरहित होती जा रही है। ऐसे समय में धर्म की ज्योति जाज्वल्यमान रखने वाले उच्च चारित्रवान् साधु ही हैं। अपना चारित्र सर्वदा पूर्ण विशुद्ध रखते हुए जैन जनता को धर्मोपदेश देने वाले, विश्वप्रेम की भावना पैदा करके समाज को रुचिकर, हृदयंगम और देश कालानुकूल व्याख्यान देने वाले साधु ही जैनधर्म की ज्योति को अखण्ड रख सकते हैं।

ऐसे परम प्रभावशाली महाराज श्रीजवाहरलालजी के दर्शन हमारे लिए बड़े भाग्य की बात थी। वि० सं० १९९२ के शेषकाल में एक मास निवास करने के लिए पूज्य महाराज जामनगर आए। उस समय आपके दाहिने घुटने में शोथ के कारण दरद हो रहा था। मास पूर्ण होने पर आपने विहार किया। यहां से पांच मील 'हाया' नामक गांव में पहुंचते ही दरद बढ़ गया। स व्याधि के उद्भव से जामनगर की जनता का भाग्य खुल गया। पूज्यश्री का चातुर्मास ोरवी में निश्चित हो चुका था। उसके बदले जामनगर में ही चातुर्मास हुआ। सूर्यकिरण चिकित्सा के लिए पूज्यश्री को डोली में बैठाकर जामनगर लाया गया। उस मुनीश्वर के चारित्र, र्शन और अमुपम उपदेश से जनता को बहुत लाभ मिला। इतने समय में सोलेरीयम के भाव से पूज्यश्री के घुटने की व्याधि निर्मूल हो गई। चातुर्मास पूर्ण होने पर आपने पैदल हार किया।

एक बार उनसे प्रार्थना की गई कि विद्युच्चिकित्सा से तत्काल आराम हो जायगा। धार्मिक ाधा के कारण पूज्यश्री ने उसे स्वीकार नहीं किया।

महाराज श्री की हम कितनी प्रशंसा करें? प्रतिभाशाली देह, मधुर वाणी, तेजस्वी ुखारविन्द, गद्यपद्य दृष्टान्त तथा शास्त्रीय प्रामाणों से भरपूर प्रवचन। केवल जैन जनता के ेए ही नहीं किन्तु जामनगर की अन्य, जनता के लिए भी महाराज श्री का प्रवचन रुचिकर था आकर्षक था। न किसी की निन्दा न किसी के प्रति बुरे विचार, विवाद में भी उदार और

उदात्त भावना आदि अनेक गुणों से आकृष्ट होकर अनेक विद्वान् मध्याह्न और संध्या समय पूज्य-श्री के पास धर्मचर्चा के लिए आते थे।

काठियावाड़ को दो वर्ष के बदले तीन वर्ष महाराजश्री के सदुपदेश का लाभ मिला। यदि पांव में दरद न होता तो दो वर्षों में ही अपना संकल्प पूरा करके पूज्यश्री दूसरी जगह पधार जाते।

महाराज श्रीजवाहरलालजी पंचम आरे में जैनधर्म के आभूषण रूप हैं। जैनधर्म की ज्योति प्रकाशित रखने के लिए आपने यावज्जीवन उच्चतम चारित्र का पालन किया है। लोकोपयोगी पद्धति से जनता को उपदेश दिया है। सहस्रों जीवों को सन्मार्गगामी भी बनाकर स्वकीय साधुजीवन दीप्त किया है।

उस मुनि को मेरा अनन्तानन्त वन्दना हो।

३५—श्रीरतिलाल थेला भाई मेहता, एज्यूकेशनल इन्स्पेक्टर, राजकोट स्टेट—

From a few of the sermons I attended, however, I could see, as everybody else, that the Maharaj Shree adopted his teachings and methods in such a way as to suit all conditions of modern life. He expounded the spiritual truths in a simple and lucid, yet vigorous and impressive manner, which appealed not only to the inellect but also to the hearts of large congregation of men and women of all classes, Jains of course, preponderating, who, one and all, though they could ill afford to miss the sermon ever for a day.

The precepts of Maharaj Shree suited men and women of all castes, creeds and communities, and in all circumstances of life, be they philosophers or simple folk-a peculiar aspect which was the secret of his success as an ideal Guru. He stressed the doctrine of Universal love and brotherhood and warned the Jain Devotees against internal dissentions asking them to realise that self seeking had no place in the higher ideal of humanity.

What charmed the hearers most,was the fact that he invariably prefaced his discourses by prayers. explaining their efficacy as an aid to meditation and elevation of the mind.

He showed in the course of his narratives, how a householder (गृहस्थी) can best discharge his duties as such, by a strict observance of the religions vows and abandonment of last, hatred, unity and other foes of mankind, as running after earthly pleasures only tend to shorter the happiness and peace of mind.

In conclusion it would be no exaggeration to say that the education of the soul under such a worthy Acharya as the Maharaja Shree can alone elevate our minds to the highest perfection our life would be worth living only if we know ourselves and what we live for.

This was all the essence of the Maharaj Shree's teachings as I understand it.

मैंने महाराज श्री के थोड़े से व्याख्यान सुने। उन से मालूम पड़ा कि आप के उपदेश तथा भाषण ऐसे ढांचे में ढले होते हैं जिस से वर्तमान जीवन की सभी अवस्थाओं के लिए उपयोगी बन सकें। आप के व्याख्यान सुन कर प्रत्येक व्यक्ति इस बात को जान सकता है। आप आध्यात्मिक सत्यों को सरल तथा सुगम किन्तु ओजस्वी एवं प्रभावशाली ढंग से प्रकट करते थे। आप के भाषण विद्वानों को ही नहीं सुहाते किन्तु सभी श्रेणियों के स्त्री पुरुष उन्हें हृदय से पसन्द करते हैं। जैनियों की संख्या निःसन्देह बहुत अधिक रहती है। वे तो एक दिन के लिए भी आपके व्याख्यान को नहीं चूकना चाहते।

महाराज श्री के उपदेश सभी जाति, पन्थ, समाज तथा जीवन की अवस्थाओं के लिए उजयोगी होते हैं। बड़े बड़े दार्शनिक और साधारण गृहस्थ आप के व्याख्यानों से समान लाभ उठाते है। यह विशेषता आदर्श गुरु की सफलता का रहस्य है। विश्वप्रेम तथा बन्धुत्व के सिद्धान्त पर आप बहुत जोर देते थे। जैनधर्म के अनुयायियों को आन्तरिक कलह से दूर रहने का उपदेश देते थे तथा कहते थे कि मानवता के उच्च आदर्श में स्वार्थ साधना का कोई स्थान नहीं है।

वे अपने सभी व्याख्यान ईश्वर की स्तुतियों से प्रारम्भ करते थे। इस के बाद प्रार्थना का महत्व बताते हुए कहते थे कि आत्मचिन्तन तथा मानसिक उन्नति के लिए यह समर्थ साधन है। यह बात सभी श्रोताओं को मोह लेती थी।

कथानकों के आख्यान में आप ने बताया कि गृहस्थ अपने कर्त्तव्यों को उत्तम रूप से कैसे पाल सकता है। धार्मिक व्रतों का कठोर पालन, राग, द्वेष, अहंकार तथा मानव जीवन के दूसरे शत्रुओं का त्याग श्रावक को ऊँचा उठा सकता है। भौतिक सुखों के पीछे दौड़ना मानसिक शान्ति तथा आनन्द को नष्ट कर देता है।

अन्त में यदि यह कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी कि ऐसे आचार्यों की सेवा में आत्मशिक्षा प्राप्त करके ही हमारा मस्तिष्क ऊँचा उठ सकता है तथा पूर्णता प्राप्त की जा सकती है। हमारा जीवन तभी सफल है जब हम अपने को पहिचानें तथा यह जानें कि हमारे जीने का क्या प्रयोजन है।

मैंने जहाँ तक समझा है पूज्य श्री के उपदेशों का यही सार है।

३६—डा० ए.सी.दास, एम.डी. (U.S.A.) बंबई

I had a great fortune to meet Pujaya Shree Jawaharlalji Maharaj (a Jain Sadhu) twice or thrice at Jalgaon and Ratlam. I had also occasion to listen to his discourses on spiritual subjects.

४०—डाक्टर मोहनलाल एच० शाह M. B. B. S. (Bom) D.T. M. (Zia Z. U. (Wien)

प्रतापी पूज्य श्री जवाहरलाल जी महाराज नी अस्वस्थावस्था वखते जलगाँव मां त्रण मास जेटलो लाम्बो वखत सेवा करवानो अलभ्य लाभ मने मल्यो हतो।

पूज्य श्री नो पोताना मन ऊपर नो काबू, देह पर नी अममत्व, प्राणिमात्र प्रत्येनो उभरातो अनुकम्पाभाव अद्भुत अनुभव्यो। एमनो अने एमनी साथे ना मुनिमंडल नो त्याग, संयम, शान्ति, ज्ञानरमणता, अने चरित्रशीलताए मारा ऊपर अद्भुत जादू कर्यूं। अर्हन्नीति ऊपर ना एमना व्याख्यानोए मारा मन ऊपर घणीज ऊंडी असर कीधी हती। आ समय मारा जीवन माटे परम सुख अने शांतिमय हतो। जीवन मां आवी धन्य पलो थोड़ी पण मले तो स्वर्गीय सुख अनुभवाय एम मने लागे छे।

समाज धर्म अने देशना उत्कर्ष माटे एमनी लागणी तीव्र हती। प्रभु एमने दीर्घायुषी बनावो अने एमनी मधुर वाणी थी समाज तथा धर्म ने वधु अने वधु उत्कर्षमय बनावे एवी प्रार्थना थी विरमुं छुं.

पूज्यश्री के सम्बन्ध में

श्री पी० एल० चूडगर बार एट० ला० राजकोट

less out-look on the many burning problems of modern life and more than all the magnificient catholicity of his teachings was little short of a revelation to me. To my mind today as it was, is vivid the picture of heat broken Jodhpur at the departure of His Holiness from our midst, and if I am permitted to say so, few religious personalities have created greater impression on my little self then that of the great Maharaj. His Holiness is without doubt the pride of the Jain wherever they may be and occupies a highly honoured place wherever religious and ethical thought and culture shine in their true light. It is my earnest hope and prayer that the Guru Maharaj may bespared long to help, heal the gaping wounds of the erring humanity irrespective of caste or creed.

पूज्यश्री जवाहरलाल जी महाराज के प्रति भक्तिपूर्ण श्रद्धांजलि प्रकट करने का अवसर प्राप्त होना मेरे लिए सौभाग्य की बात है। बारह वर्ष पहिले गुरु महाराज का चातुर्मास जब जोधपुर में हुआ था, उस समय मुझे उनकी चरणसेवा का सुअवसर प्राप्त हुआ था। आपका असाधारण व्यक्तित्व और उससे भी बढ़कर जैनधर्म के सिद्धान्तों का युक्तियुक्त प्रतिपादन आधुनिक जीवन की ज्वलन्त समस्याओं पर निर्भय विचार और सब से अधिक स्वर्गीय विश्वप्रेम से परिपूर्ण आपके उपदेश मेरे लिए ईश्वरीय सत्य के समान थे। पूज्यश्री के विदा होते समय जोधपुर को जो हार्दिक दुःख हुआ उसका चित्र मेरे हृदय में अब भी स्पष्ट रूप से अंकित है। पूज्यश्री का मुझ पर जो प्रभाव पड़ा ऐसा किसी दूसरे धार्मिक नेता का नहीं पड़ा। निःसन्देह पूज्यश्री सभी जैनों के गौरव हैं चाहे वे कहीं भी रहते हों। जहाँ भी धार्मिक एवं नैतिक विचार तथा संस्कृति अपने वास्तविक प्रकाश में चमक रहे हैं वहाँ पूज्यश्री का बहुत ऊँचा तथा सम्मानित स्थान है। मेरी हार्दिक कामना है कि गुरुमहाराज दीर्घ काल तक जीवित रहें तथा जाति और पन्थ की पर्वाह न करते हुए गलत रास्ते पर चलती हुई जनता के बढ़ते हुए घावों को भरने में सहायता करें।

३६—श्री शंभूनाथ जी मोदी, सेशन जज, उपाध्यक्ष साधुमार्गी जैन सभा जोधपुर

मुझे जोधपुर के चातुर्मास के समय श्रीमज्जैनाचार्य पूज्य श्री जवाहरलाल जी म० सा० के उपदेशप्रद व्याख्यान श्रवण का सुखद सौभाग्य प्राप्त हुआ। पूज्यश्री की विद्वत्ता, व्याख्यान; गम्भीरता, विवेचन शक्ति की पटुता, सैद्धान्तिक तात्विक रहस्योद्घाटन की दक्षता ही उनकी मुख्य विशेषताएँ हैं। आप श्री के व्याख्यानों में एक ऐसी चमत्कारान्विता शक्ति की प्रधानता रहती है जो कि जैन व जैनेतर सभी जनसमुदाय के हृदयपट पर समान रूप से धार्मिक प्रभाव अंकित करती है।

आप श्रीमान् के प्रकाण्ड पाण्डित्य से केवल जैन विद्वान् ही मुग्ध नहीं हुए हैं अपितु जैनेतर जनता भी पर्याप्त मात्रा में प्रभावित हुई है। पूज्यश्री की इस गौरवगाथा पर हमें व हमारी समाज को नाज है; साथ ही शासननायक से प्रार्थना करते हैं कि पूज्य श्री दीर्घायुष्य होकर जैन जनता को विशेष कर्तव्य-ज्ञान कराने में सहायक सिद्ध हों।

४०—डाक्टर मोहनलाल एच० शाह M. B. B. S. (Bom) D.T. M. (Zia Z. U. (Wien)

प्रतापी पूज्य श्री जवाहरलाल जी महाराज नी अस्वस्थावस्था वखते जलगाँव मां त्रण मास जेटलो लाम्बो वखत सेवा करवानो अलभ्य लाभ मने मल्यो हतो।

पूज्य श्री नो पोताना मन ऊपर नो काबू, देह पर नी अममत्व, प्राणिमात्र प्रत्येनो उभरातो अनुकम्पाभाव अद्‌भुत अनुभव्यो। एमनो अने एमनी साथे ना मुनिमंडल नो त्याग, संयम, शान्ति, ज्ञानरमणता, अने चरित्रशीलताए मारा ऊपर अद्‌भुत जादू कर्यु। अर्हन्नीति ऊपर ना एमना व्याख्यानोए मारा मन ऊपर घणीज ऊंडी असर कीधी हती। आ समय मारा जीवन माटे परम सुख अने शांतिमय हतो। जीवन मां आवो धन्य पलो थोड़ी पण मले तो स्वर्गीय सुख अनुभवाय एम मने लागे छे।

समाज धर्म अने देशना उत्कर्ष माटे एमनी लागणी तीव्र हती। प्रभु एमने दीर्घायुषी बनावो अने एमनी मधुर वाणी थी समाज तथा धर्म ने वधु अने वधु उत्कर्षमय बनावे एवी प्रार्थना थी विरमु छु.

पूज्यश्री के सम्बन्ध में

श्री पी० एल० चुडगर बार एट० ला० राजकोट

41

1. It gives me very great pleasure and I esteem it a very rare privilege indeed to have got this opportunity of contributing my humble tribute to the venerable Shree Jawaharlal ji Maharaj for his profound scholarship, his deep study of Jain philosophy along with the comparative study of Jain religions of the world and the clear exposition of the principles of the religion in their practical Application to the daily life of the community.

2. Shree Jawaharlal ji's great fame had preceded his visit to Western India and particularly to Kathiawar and tens of thousands of Jains all over this side of the country were very eager to have his Darshan and to hear him and learn at his feet the cardinal principles of the Jain religious philosophy.

3. He very kindly honoured us with his visit in the year 1936-37 and gave the benefit of his learning to tens of thousands of Jain and inumerable followers of other faiths in the principle cities and towns of Kathiawar such as Rajkot, Junagarh. Morv and Porbandar etc.

4. I was one of the fortunate persons who attended some of his lectures which proved to be the great inspiration of my life.

5. He delivered five lectures in the Rajkot Civil Station Connought Hall, in each one of which, the Hall was full to suffocation and the lectures were attended not only by the Jains, but by other Hindus, Moslems, Parsis, Christians etc. The resounding thundering voice and his inimitable eloquence won the admiration of all and inspired every body with the greatness of the Sthanakwasi Jain religion and the Philosophy of life as expounded by him. Each lecturer created an eagerness to hear more and more from him, and the appetite became simply voracious.

6. Every day left with the firm impression that he was as indeed a great teacher of mankind, a profound scholar. a reformer and above all a great patriot.

7. If Shree Jawaharlal ji Maharaj was free to travel by vehicles and if he was permitted to tour all over the world, I have no doubt that he would have easily won over millions of peoples all over the world and converted to be followers of the Jain religion.

8. Shree Jawaharlal ji Maharaj is one of those great men who not only elevate the moral and spiritual life of men but bring into being ideas and forces that control and regulate in a great measure, the ordinary day to day life of peoples and permanently affected their out look and their ideas. He left everlasting and inefficable influence when he goes and creates a wonderful spiritual atmosphere and he shows the light to thousands struggling in darkness for it.

9. I may sum up Shree Jawaharlal ji's greatness in the words of Thomas Carlyle "Great men are the fire pillars in this dark pilgrimage of mankind. They stand as heavenly signs, everliving witnesses of what has been prophetic tokens of what still may be revealed, embodical possibilities of human nature."

10. May he be spared long and may his mental and physical strength be maintained throughout his life so as to enable him to continue his great mission for the moral and spiritual uplift of mankind.

पूज्य श्री जवाहरलाल जी महाराज की विशाल विद्वत्ता, संसार के महान धर्मों के तुलनात्मक

अध्ययन के साथ-साथ जैन दर्शन का तलस्पर्शी ज्ञान, समाज के दैनिक जीवन में व्यावहारिक उपयोग बताते हुए धार्मिक सिद्धान्तों का विशद विवेचन आदि बातों के लिए अपनी विनम्र श्रद्धांजलि प्रकट करने का अवसर प्राप्त होना मेरे लिए अलभ्य लाभ है।

२. पश्चिमी भारत और विशेषतया काठियावाड़ में पूज्य श्री जवाहरलाल जी महाराज के पधारने से पहले ही उनका यश फैल चुका था। इस प्रदेश के हजारों जैन उनका दर्शन करने, व्याख्यान सुनने और उनकी चरणसेवा से जैनधर्म के मूल सिद्धान्तों को सीखने के लिए अत्यधिक उत्सुक थे।

३. सन् १९३६-३७ में आपने परम कृपा करके अपने पदार्पण द्वारा हमें सन्मानित किया और राजकोट, जामनगर, मोर्वी, पोरबन्दर आदि काठियावाड़ के प्रधान नगरों में हजारों जैन तथा अनगिनत अन्य मतावलम्बियों को अपनी विद्वत्ता का लाभ दिया।

४. मैं उन भाग्यशाली व्यक्तियों में से था, जिन्होंने उनके कुछ व्याख्यान सुने थे। अगर मैं कहूं कि उनके व्याख्यान मेरे जीवन में सब से अधिक प्रभाव करने वाले हुए तो इसमें तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं है।

५. उन्होंने राजकोट सिविल स्टेशन के कनाट हाल में पाँच व्याख्यान दिये थे। प्रत्येक व्याख्यान में सारा भवन ठसाठस भर जाता था। आपका व्याख्यान सुनने जैन ही नहीं, किन्तु दूसरे हिन्दू, मुसलमान पारसी और क्रिश्चियन आदि भी आते थे। आपकी प्रतिध्वनित गरजती हुई वाणी तथा अनुकरणातीत वाग्मिता सभी की प्रशंसा को प्राप्त कर लेती थी तथा स्थानकवासी जैनधर्म तथा उनके कहे गए जीवन-सिद्धान्तों की महानता से उन्हें प्रभावित कर लेती थी। प्रत्येक व्याख्यान उनसे अधिकाधिक सुनने को उत्सुकता पैदा करता था और सुनने की भूख बढ़ती थी।

६. उठने से पहले प्रत्येक व्यक्ति में यह दृढ़ विश्वास जम जाता था कि वे वास्तव में मानवता के महान् उपदेशक, गम्भीर विद्वान, सुधारक तथा सब से ऊपर महान् देशभक्त हैं।

७. यदि जवाहरलाल जी महाराज गाड़ी से मुसाफरी करने में स्वतन्त्र होते और उन्हें समस्त संसार की यात्रा के लिए अनुमति मिल जाती तो इसमें सन्देह नहीं है कि वे संसार में करोड़ों व्यक्तियों को अपना भक्त तथा जैनधर्म का अनुयायी बना लेते।

८. श्री जवाहरलाल जी महाराज उन महापुरुषों में से हैं, जो जनता के आध्यात्मिक तथा नैतिक जीवन को ही ऊँचा उठाने की कोशिश नहीं करते, किन्तु उन विचार तथा शक्तियों को भी अस्तित्व में लाने की कोशिश करते हैं, जिन से एक बड़े परिमाण में जनता का साधारण दैनिक जीवन नियन्त्रित तथा नियमित होता है और जो उनके दृष्टिकोण तथा विचारों पर स्थायी असर डालते हैं। वे जहाँ जाते हैं वहीं अपना स्थायी तथा कभी नहीं मिटने वाला असर डाल देते हैं, वहाँ एक आश्चर्यपूर्ण आध्यात्मिक वातावरण पैदा कर देते हैं और उन हजारों व्यक्तियों को आलोक प्रदान करते हैं, जो इसके लिए अँधेरे में झगड़ रहे हैं।

९. टॉमस कार्लाइल के शब्दों में मैं श्री जवाहरलाल जी महाराज की महानता का उपसंहार करता हूँ—"मानवसमाज की अंधकारपूर्ण यात्रा में महापुरुष अग्निस्तम्भ हैं। वे नक्षत्रों के समान चमकते रहते हैं, बीती हुई घटनाओं के सदातन साक्षी हैं, भविष्य में प्रकट

होने वाली बातों के लिए भविष्यसूचक चिह्न हैं तथा मानवप्रकृति की मूर्तिमती संभावनाएँ हैं।

१०. वे चिरकाल तक बने रहें तथा उनकी बौद्धिक तथा शारीरिक शक्ति आजीवन काम देती रहे, जिससे वे मानवसमाज की आध्यात्मिक तथा नैतिक उन्नति के अपने लक्ष्य को जारी रख सकें।

श्रेष्ठ ज्ञान और चरित्र के धनी

(श्री मणिलाल एच० उदानी० एम० ए० एल-एल० बी० एडवोकेट, राजकोट)

42

I had the good Luck of knowing Jainacharya pujya Shree Jawaharlalji, when he happened to pass his monsoon sojourn at Rajkot in the year 1936. I heard from the city that an orthodox Jain Saint has come to Rajkot in the Bhojanshala and was giving his lectures which were very valuable. I inquired from different directions and heard that he was very particular in rites & rituals according to the Jain Sutra, was keeping anti-granted dress and that many Persons who were orthodox Jains were collecting round him every day for religious discussions.

It came into my mind then not to lose the opportunity of paying a visit to him and coming into his contact. So I went to his place one afternoon and saw him. On seeing the very face of pujya Maharaj Shree and his brilliant forehead his deep and peaceful discussions, I could immediately find that he was a person of sound knowledge. His very physiognomy impressed upon me and inspired respect for him in my heart. This was our first meeting. A learned pandit was reading a Sanskrit Book of philosophy with him and he was following every Stanza with very great interest. I could find that at this age Maharaj Shree was studying Sanskrit like a student. He was comparing the Jain and Vedant philosophy and minutely showing the substance and the truth of Jainism. I could see that he had read all the Jain Scriptures thoroughly well and had a sound knowledge of the Magdhi language. After that his reading with the pandit was finished, I commenced discussions and after a few questionnaire, I could see the vast knowledge that Pujya Maharaj Shree had acquired and thoroughly dijested. We went upon discussing the soul-philosophy according to Jainism and he explained it fully

well to my entire satisfaction. He could show me how soul and matter were two different objects and with what chord of Karm-as they were joined together and causing birth and re-birth. His simplicity of style and masterly way of explaining were sufficient proof of his vast knowledge and his great experience. Our first interview was sufficient to impress upon my mind that he was one of the Geno in the Jain Saintsangh the preaching of such a great person would be very ueseful to the society.

Then I went to his lecture. A number of Sadhus were sitting on different benches with pujya Maharaj Shree in the middle. He commenced with a manglacharan (introductory song) with a tingling voice and in a Chorus and then pujya Maharaj Shree caught one sentence from it and went on preaching for an hour and a half on one word. He never looked up into any of the books which is usually done by other sadhus. His brain was like an ocean from which all the waves of thought were coming out with all their force. In the lecture, he was preaching sound principles of Jainism, comparing them with other religions, taking out the substance of all and giving out the cream of all his vast reading to the public and I found that even if a man were to attend, understand, grasp and digest one lecture it was sufficient for him to get the right knowledge and to acquire Samkit. (true knowledge) He was illustrating every philosophical text with illustrations from the Jain Sutras which were also at the tip of his tongue. It was in the same style that Lord Mahavir was preaching Jain principles in the Samavsaran. He concluded his lecture with blessings and benedictions to the audience. Having found that pujya Maharaj Shree was an ocean of right knowledge I made up my mind then not to miss any of his lectures, although it was difficult for me to spare time in the morning and to go to such a long distance every day. But the value of his lecture was thousand times more precious than my time and so I went to his lectures practically every day during his stay at Rajkot.

In the other lactures I could find various distinguishing features; although orthodox in stayle & dress, I could find that in

his knowledge, he was upto date, with the present educated persons who very rarely attend the Jain temples, would find from his lactures anything and everything about religious, social, moral, intellectual & prectical lessons of life, If a man were to follow his directions, he can move in the fashionable society with perfect ease and comfort; can aquire wealth name and fame and still remain a true Jain who would be honoured in every society and who can still conqur his karmas & acquire salvation. One day when he was talking of the educated persons, he distinguished independence from insolence with a masterly hand; and convinced that Everybody should have independence of thinking but it should be- in perfect harmony with the principles of religion and with complete respect to the leaders. It should not be self conceitad and insolent which is always due to want of thorough knowledge he impressed very well on different occasions upon the necessity of complete obedience to the parents and respecting their experienced mind. He said that real education consists in acquaring knowledge and in putting it into practice by a correct understanding of the various phases of life and how to become useful to society:

One day he gave preaching on the subject of birth-control; and it was a very important subject & his lecture was also very valuable.In these fashionable times when the value of Brahmacharya, its masterly results are totally forgotten and when men and women forget their real manners of living and go about openly in the publications, send for advertisement of birth-control appliances,Pujya Maharaj Shree's lecture was a marvelous lesson. He started with the stavan of lord Neminath and showed the instance of his great Brahamcharya. He said that the world was a garden and all the living beings were different trees in it. Man is a-mango tree. They do not know how to keep the mango tree sweet and fertile. People have no control over the tongue. They have no control over the other organs and thus they create. children, make themselves miserable and come into trouble. if they have to preserve Brahmchaya, power, knewledge, position strenth and religion would all come automatically. He gave many instances of greatmen, who by

preserving their strength, left an immortal name in the world. He said "man has to understand whether passion is the enemy of men or whrther creation is the enemy. This is to understand by the right sanse and there would be a solution to problems He gave the instance of Bhishampitamah & explained how people of India were strong in the past and passionate thoughts and waste of energy. He gave the instance of Sati Anjana & impressed upon the audience that it was absolutely necessary for every man and woman to own benefit that every man should be devoted to his wife and every woman should be devoted to her husband. If the generation is getting weaker, every day, it is due to bad company and their own actions of thinking.

one day he gave a very useful lecture upon the present condition of the society and he explained so nicely the necessity of complete union in the family, in the country, and in all the societies. people should do away with all sorts of jealousy and evil thoughts for each other, should regard every creature as a soul, should maintain divine love towards each other and should see how he can be useful to the society and to the humanity in general. On the New Year's day people put on new clothes and go to their friends and relatives for offering their best wishes but on the very next day they put quarrels and so all such false show is absolutely unnecessary and there should complete Harmony and feelings for all,pujya Maharaj Shree said 'disiples of shri Mahaveer should visit of helpless and distressed and if they can be he lpful- in the houses removing their miseries,that would be their real duty on the Diwali holiday. On this day, we have to think why our situation in the world is so much lowered, and by what means and ways we can elevate the status of our people. put the principle of Lord Mahavir into the depths of your heart and see what are the defects and self examination will make you completely perfect. He explained with complete scientific treatment. how by religion alone, one can make oneself happy, acquire Nirvan and can become useful to society and the present miserable condition of the people will then come to an end.'

I went to several of his lectures and I must say that they were very instructive and coming out from masterly brain and on all the subjects. Pujya Maharaj Shree had complete knowledge and was up to date. He was always punctual in each and every programme and I found him working for the whole-day at this advanced age. Everybody who came to him was received respectfully and I found that sometimes youngmen coming to him for jokes were also appeased and passified with the coolness of replies of Maharaj Shree and they went away ashamed of their own behaviour.

When Maharaj Shree went for bringing his food, he was very particular that everything was served with perfect obedience to Jain rituals and he was always regular in every respect. He had a number of disciples, who are all trained under his own direct care and they were also remaining busy with the work that was allotted to them.

Pujya Maharaj Shree is a person of very high character very great knowledge and experience, sound intellect, and sharp memory and he was devoting all his time to make his life useful to the society. He has done a great obligation upon the people of Kathiawar by coming to Rajkot and giving us the blessings of his very high preachings. His life is extremely pious and beneficial to all. Many of his lectures are printed and it is a very useful accumulation of excellent thoughts.

I went to Morvi also and I found that he had impressed so highly upon the people of Morvi by his very high preachings. He could give the best of thoughts and the substance of philosophy in a very simple and impressive language and the orthodox as well as the refined classes had both very muct to learn from him. His gospel of non-violence and peace and not injuring the feelings of anybody was also very impressive and I must say in a word that I could see in pujya Maharaj Shree all the traits of highest knowledge, highest cheracter, simplest living and highest thinking. I found myself very fortunate to have come to know him and to have the pleasure of hearing his valuable lectures

which have benefitted me so much. He is a very useful asset in the Jain Community and has done valuable work throughout his life and I do not think any word would be sufficient for expressing our gratitude to him for all this valuable service.

In conference matters, Pujya Maharaj Shri is also taking keen interest, giving all practical directions and was giving spirit to the leaders of the dlfferent provinces. He was perfect in everything and by his experience could guide even the minds of the best of the leaders.

I wish and pray that his great and masterly soul may always remain healthy. He may continue to give his valuable preachings to the community and may be able to improve the present condition of the Jains and that he may have a healthy long-life which is always useful and serviceable to every body.

जैनाचार्य पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज ने सन् १९३६ का चातुर्मास राजकोट में किया था। उसी समय मुझे उनके परिचय में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मैंने सुना कि एक साम्प्रदायिक जैन महात्मा राजकोट की भोजनशाला में पधारे हैं। उनके व्याख्यान बड़े महत्वपूर्ण हैं। विविध उपायों से पूछताछ करके मैंने जान लिया कि वे जैन शास्त्रानुसार क्रियाकांड का पालन करने में बहुत सावधान हैं किन्तु रूढ़ि की परवाह नहीं करते। बहुत से रूढ़िवादी जैन प्रतिदिन उनके पास जाकर चर्चावार्ता करते हैं।

उस समय मेरे मन में आया कि उनके दर्शन और परिचय में आने के इस अवसर को न खोना चाहिए। एक दिन सायंकाल मैं उनके स्थान पर गया और दर्शन किए। पूज्य महाराजश्री की मुखाकृति, दीप्त भाल तथा गंभीर एवं शान्त चर्चावार्ता को देखते ही मैं समझ गया कि वे ठोस विद्वान् हैं। उनकी आकृति ने ही मुझे बहुत प्रभावित कर लिया और मेरे हृदय में उनके प्रति सन्मान पैदा कर दिया। यह हमारा प्रथम मिलन था। एक विद्वान् पण्डित संस्कृत में लिखी हुई दर्शनशास्त्र की पुस्तक उन्हें सुना रहे थे और वे प्रत्येक श्लोक को बड़ी रुचि के साथ समझ रहे थे। मुझे ऐसा मालूम पड़ा कि इस अवस्था में भी महाराजश्री एक विद्यार्थी के समान संस्कृत पढ़ रहे हैं। वे जैन और वेदान्त दर्शन की तुलना कर रहे थे तथा जैनदर्शन के रहस्य तथा उसकी सत्यता का सूक्ष्म निरूपण कर रहे थे। मुझे ऐसा मालूम पड़ा कि वे सभी जैन आगमों के पूर्ण ज्ञाता हैं और मागधी भाषा के भी अच्छे पण्डित हैं। पण्डितजी का वांचन समाप्त हो जाने के बाद मैंने चर्चा प्रारम्भ की। पूज्यश्री ने जो विशाल ज्ञान प्राप्त करके पचा लिया है उसका पता मुझे कुछ प्रश्नों के बाद लगा। हमने जैनदर्शन के अनुसार आत्मतत्त्व पर चर्चा की। पूज्यश्री ने उसकी सर्वांगीण तथा सुन्दर व्याख्या की। मुझे उससे पूर्ण सन्तोष हो गया। उन्होंने बताया कि किस प्रकार आत्मा और पुद्गल दो भिन्न वस्तुएँ हैं, किस प्रकार वे कर्मों की रस्सी से जुड़ी हुई हैं तथा जन्म और पुनर्जन्म का कारण बनी हुई हैं। तत्त्वों को समझाने का ढंग

तथा अधिकारपूर्ण वार्तालाप उनके विशाल ज्ञान तथा महान् अनुभव को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त थे। प्रथम दर्शन से ही मैं मानने लगा कि वे जैन महात्माओं में एक रत्न हैं। ऐसे महा-पुरुष के उपदेश समाज को बहुत उपयोगी होंगे।

इसके बाद मैं उनके व्याख्यान में गया। कई साधु भिन्न-भिन्न आसनों पर बैठे हुए थे। पूज्यश्री सबके मध्य में थे। पूज्यश्री ने कांपती हुई वाणी में मंगलाचरण किया, अपने गीत का ध्रुवपद गाया और उसी में से एक शब्द लेकर डेढ़ घंटे तक बोलते रहे। जैसा कि दूसरे साधु साधारणतया किया करते हैं, पूज्यश्री ने एक बार भी किताब में नहीं देखा। उनका मस्तिष्क एक समुद्र के समान मालूम पड़ता था जिसमें से विचारों की तरंगें अपनी पूर्ण शक्ति के साथ उठ रही थीं। उस व्याख्यान में वे जैनधर्म के मूल सिद्धान्तों का उपदेश दे रहे थे, उनकी दूसरे धर्मों के साथ तुलना कर रहे थे, जनता को उन सभी का निचोड़ कर तथा अपने विशाल अध्ययन का मक्खन निकालकर दे रहे थे। मुझे ऐसा मालूम पड़ा कि यदि कोई व्यक्ति उनके एक व्याख्यान को भी सुन ले, समझ ले, ग्रहण कर ले और पचा ले तो वह सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के लिए पर्याप्त है। अपने उपदेशों के साथ-साथ वे जैन शास्त्रों के उद्धरण देते जाते थे, जो कि उनके जिह्वाग्र पर स्थित थे। भगवान् महावीर इसी प्रकार समवसरण में जैन सिद्धांतों का उपदेश दिया करते थे। जनता के लिए शुभ कामना तथा आशीर्वाद के साथ उन्होंने अपना व्याख्यान समाप्त किया। यद्यपि प्रतिदिन सुबह समय निकालना और इतनी दूर जाना मेरे लिए कठिन था फिर भी जब मैंने यह जान लिया कि पूज्यश्री यथार्थ ज्ञान के समुद्र हैं तो निश्चय कर लिया कि उनके किसी भी व्याख्यान को न चूकूंगा। उनके व्याख्यानों का मूल्य मेरे समय से हजार गुना अधिक था। जब तक वे राजकोट में ठहरे मैं प्रतिदिन व्याख्यान में जाता रहा।

दूसरे व्याख्यानों में कई प्रकार की असाधारण विशेषताएँ मालूम पड़ीं। यद्यपि उनका ढंग और वेशभूषा पुरानी थीं किन्तु उनमें भरा हुआ ज्ञान पूर्णतया सामयिक तथा वर्तमान जनता के उपयोग का था। मेरा विश्वास है कि वर्तमान शिक्षित व्यक्ति, जो जैनमन्दिरों में बहुत कम जाते हैं, उनके उपदेशों से धार्मिक, सामाजिक, नैतिक, बौद्धिक तथा व्यावहारिक सभी प्रकार की जीवनोपयोगी शिक्षाएँ प्राप्त कर सकते हैं। यदि मनुष्य उनके उपदेशानुसार चले तो वह वर्तमान सभ्य समाज में सुख और सरलता के साथ उठ बैठ सकता है, धन, यश तथा नाम कमा सकता है और फिर भी सच्चा जैन बना रह सकता है। प्रत्येक समाज में उसका आदर भी होगा और साथ ही कर्मों का क्षय करके वह मोक्ष भी प्राप्त कर सकता है। एक दिन वे शिक्षित व्यक्तियों के साथ वार्तालाप कर रहे थे। उस समय उन्होंने अधिकारपूर्ण ढंग से स्वतन्त्रता को धृष्टता से अलग करके समझाया। सुनने वाले अच्छी तरह मान गए कि वर्तमान सन्तति धृष्टता और स्वत-न्त्रता का सम्मिश्रण कर रही है और इसी लिए जीवन में विफल हो रही है। प्रत्येक व्यक्ति को विचार करने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए किन्तु धर्म के मूल सिद्धान्तों के साथ पूरी संगति और नेताओं के प्रति आदर होना आवश्यक है। स्वतन्त्रता का अर्थ आत्म वञ्चना या मिथ्या दर्प नहीं है। इसके विपरीत धृष्टता हमेशा पूरे ज्ञान की कमी से होती है। माता-पिता की आज्ञा का पालन तथा उनके अनुभवी मस्तिष्क के प्रति आदरभाव होने की आवश्यकता पर उन्होंने कई अवसरों

पर उपदेश दिया और इस बात को जनता के हृदय में बैठा दिया। उनका कथन है कि ज्ञान को प्राप्त करना तथा जीवन के विविध पहलुओं को ठीक-ठीक समझकर और समाज के लिए उपयोगी बनने के उपायों को सीख कर उन्हें जीवन में उतारना ही सच्ची शिक्षा है।

एक दिन उन्होंने सन्ततिनियमन पर व्याख्यान दिया। जिस प्रकार विषय महत्वपूर्ण था, उसी प्रकार पूज्य श्री का व्याख्यान भी मननीय था। फैशन के इन दिनों में, जब कि ब्रह्मचर्य की कीमत और उसके अचूक परिणाम सर्वथा भुला दिए गए हैं, स्त्रियाँ और पुरुष जीवन के वास्तविक तरीकों को भूलकर अपने विचारों का खुल्लमखुल्ला प्रचार करते हैं, सन्ततिनियमन के विज्ञापन देखते हैं और कृत्रिम साधनों को काम में लाते हैं, ऐसे समय में पूज्य श्री का उपदेश अत्यधिक शिक्षाप्रद था। उन्होंने अपना व्याख्यान भगवान् नेमिनाथ के स्तवन के साथ प्रारम्भ किया और उनके उत्कृष्ट ब्रह्मचर्य का उदाहरण पेश किया। उन्होंने कहा कि संसार एक उद्यान है और इसमें रहने वाले सभी प्राणी विविध प्रकार के वृक्ष हैं। मनुष्य आम्र वृक्ष है। लोग यह नहीं जानते कि इस वृक्ष को मीठा और हरा भरा कैसे रक्खा जाय? रसनेन्द्रिय उनके वश में नहीं होती। इसी प्रकार दूसरी इन्द्रियों पर भी नियन्त्रण नहीं होता। बच्चे पैदा होते हैं और दुख एवं आपत्तियाँ खड़ी हो जाती हैं। यदि वे ब्रह्मचर्य का पालन करें तो शक्ति, ज्ञान, सन्मान, बल और धर्म सभी स्वयं आ जायेंगे। उन्होंने बहुत से महापुरुषों के उदाहरण दिए जिन्होंने वीर्य की रक्षा करके संसार में अमर नाम प्राप्त किया। उन्होंने कहा कि मनुष्य को विवेकपूर्वक समझना चाहिए कि उसका शत्रु काम है या सन्तान? यदि इस बात को ठीक ठीक समझ लिया जाय तो उपरोक्त समस्या अपने आप सुलझ जाय। भीष्म पितामह का उदाहरण देते हुए आपने बताया कि प्राचीन समय में लोग कितने बलवान् होते थे और आजकल वीर्यनाश और गन्दे विचारों के कारण कितने निर्बल हो गए हैं! सती अंजना का उदाहरण देकर आपने श्रोताओं के चित्त में बैठा दिया कि पत्नी को अपने पति में अनुरक्त रहना चाहिए और पति को अपनी पत्नी में अनुरक्त रहना चाहिए। इससे स्त्री और पुरुष का लाभ है। सन्तान के प्रतिदिन निर्बल होने का कारण बुरी संगति और बुरे विचार ही हैं।

एक दिन आपने समाज की वर्तमान दशा पर सारगर्भित भाषण दिया। परिवार, देश तथा सभी समाजों में पूर्ण एकता की आवश्यता का आपने बहुत सुन्दर प्रतिपादन किया। जनता को पारस्परिक ईर्ष्या और बुरे विचार छोड़ देना चाहिए। प्रत्येक प्राणी को अपनी आत्मा के समान समझना चाहिए। परस्पर पवित्र प्रेम बढ़ाकर समाज और मानवमात्र के लिए उपयोगी बनने का प्रयत्न करना चाहिए। नए वर्ष के दिन लोग नए कपड़े पहनते हैं। अपने मित्रों और सम्बन्धियों से मिलने जाते हैं और अपनी शुभ कामना प्रकट करते हैं। किन्तु दूसरे ही दिन झगड़ा खड़ा कर लेते हैं। ऐसी दशा में मिथ्या प्रदर्शन से कोई लाभ नहीं है। सभी के प्रति एकता और प्रेम की भावना वास्तविक होनी चाहिए। महावीरनिर्वाण के दिन पूज्यश्री ने कहा कि महावीर के अनुयायियों को दुखी और असहायों के घर जाना चाहिए। यदि वे उनके कष्टों को दूर करने में कुछ भी सहायक हो सकें तो दीवाली के त्यौहार की सच्ची आराधना होगी। आज हमें सोचना चाहिए कि संसार में हमारी दशा इतनी गिरी हुई क्यों है, किन साधनों तथा उपायों से हमारे समाज का स्तर ऊँचा किया जा सकता है। भगवान् महावीर के सिद्धान्त को

हृदय में उतारो और अपनी कमियों पर विचार करो। आत्मपरीक्षा तुम्हें पूर्ण बना देगी। आपने सर्वथा वैज्ञानिक ढंग से बताया कि किस प्रकार केवल धर्माराधना से मनुष्य आनन्द प्राप्त कर सकता है, निर्वाण हासिल कर सकता है और समाज के लिए भी उपयोगी बन सकता है। उस समय संसार की वर्तमान अशान्ति का अन्त हो जाएगा।

मैं उनके बहुत से व्याख्यानों में गया। यह कहना पड़ेगा कि वे सभी शिक्षा से भरे हुए होते थे। वे एक अनुभवी तथा परिपक्व मस्तिष्क की उपज थे। सभी विषयों पर पूज्यश्री का ज्ञान सर्वाङ्गीण और बिलकुल सामयिक था। वे अपने प्रत्येक कार्यक्रम के लिए समय के पूरे पाबंद थे। वृद्धावस्था में भी सारा दिन काम में लगे रहते थे। वे अपने पास आने वाले प्रत्येक व्यक्ति का सन्मान करते थे। मैंने कई बार देखा कि नवयुवक जो उनका मजाक उड़ाने के लिए आते थे वे भी पूज्यश्री के शान्तिपूर्ण उत्तरों से शान्त तथा सन्तुष्ट होकर अपने व्यवहार के लिए शर्मिन्दा होते हुए लौटते थे।

जब महाराज श्री आहार के लिए जाते तो इस बात का बहुत ध्यान रखते थे कि प्रत्येक वस्तु जैन शास्त्रानुसार शुद्ध प्राप्त हो रही है। वे प्रत्येक बात में सदा नियमित रहते थे। उनके साथ कुछ शिष्य भी थे। वे सभी उनकी साक्षात् देखरेख तथा चारित्र की शिक्षा प्राप्त करते थे। वे पूज्य श्री द्वारा बताए कार्यों में व्यस्त रहते थे।

पूज्य श्री का चारित्र बहुत ऊँचा है। ज्ञान तथा अनुभव अति विशाल हैं। बुद्धि स्वस्थ तथा प्रगाढ़ है, स्मरण शक्ति तीव्र है। उन्होंने अपना सारा समय जीवन को समाज के लिए उपयोगी बनाने में लगा दिया है। राजकोट पधारकर और अपने उत्तम उपदेशों का वरदान देकर आपने काठियावाड़ पर महान् उपकार किया है। आपका जीवन परम पवित्र और सभी के लिए कल्याणप्रद है। आपके बहुत से व्याख्यान छप चुके हैं। वे श्रेष्ठ विचारों के उपयोगी संग्रह हैं।

मैं मोरवी भी गया था। वहां भी अपने श्रेष्ठ भाषणों द्वारा आपने जनता को प्रभावित कर लिया था। उत्तम से उत्तम विचार और दर्शनशास्त्र के रहस्यों को वे सरल और प्रभावशाली भाषा में समझा सकते हैं। पुराने और सुधरे हुए विचारों वाले सभी उनसे बहुत कुछ सीख सकते हैं। आपका अहिंसा शान्ति और दूसरे के मन को न दुखाने का संदेश भी बहुत प्रभावोत्पादक था। एक शब्द में कहा जाय तो पूज्यश्री में श्रेष्ठ ज्ञान, श्रेष्ठ चारित्र तथा सादा जीवन और श्रेष्ठ विचार के सभी गुण विद्यमान हैं। मैं इस बात के लिए अपने को भाग्यशाली मानता हूँ कि आपके परिचय में आने तथा अमूल्य व्याख्यान सुनने का अवसर मिला। उन व्याख्यानों से मुझे बहुत लाभ हुआ है। आप जैन समाज के अत्युपयोगी रत्न हैं। आपने सारा जीवन उपयोगी कार्यों में लगा दिया है। आपकी अमूल्य सेवाओं के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिए हमारे पास शब्द नहीं हैं।

कांफ्रेंस के मामलों में भी पूज्यश्री बहुत रुचि लेते रहे हैं। वे विभिन्न प्रान्तों के नेताओं को व्यावहारिक आदेश देते थे और सभी के मार्ग-प्रदर्शक थे। वे प्रत्येक बात में पूर्ण थे और अनुभव द्वारा सर्वश्रेष्ठ नेताओं के मस्तिष्क को भी संचालित कर सकते थे।

मेरी हार्दिक अभिलाषा है और साथ ही ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि उनकी महान् आत्मा सदा स्वस्थ बनी रहे। वे अपने अमूल्य उपदेश समाज को सुनाते रहें जिससे जैन समाज

की वर्तमान दशा सुधरे। उन्हें और दीर्घ जीवन प्राप्त हो जो कि सदा से प्रत्येक व्यक्ति की सेवा और उपयोग में लगा हुआ है।

४३—श्रीमूलजी पुण्यस्मरण भाई सोलंकी, राजकोट

श्री जवाहरलालजी म० मोरबी हता सन् १९३८ ना चातुर्मास दरम्यान मने तेमनो प्रथम परिचय थयो। आ समये मोरवी शहर दूर-दूर देश थी आवतां जैन स्त्री पुरुषो अने बालको थी उभरातु' ते एक महान् यात्रा ना परमधाम समु' बनी रह्यु हतु'। कोई एक व्यक्ति ना दर्शनार्थे आटली मोटी मानव मेदिनी मे आ पहेला कदी जोई न हती। ए मात्र मानव मेदिनी नहिं परंतु भावभीना अने कल्याण कांक्षी लोको ना प्रेम नो सतत चालतो स्रोत हतो।

तेमना प्रथम दर्शन कर्या ते पहेलां तेमने विषे जाण्यु' हतु' के श्री जवाहरलाल जी एक प्रखर विद्वान्, सम्पूर्ण चारित्रवान् अने महान् आत्मनिष्ठ व्यक्ति छे। मारा प्रथम परिचयेज तेमना विषे में जे सांभल्यु हतु' तेनी प्रतीति थई। त्यार पछी तो वखतो वखत तेना व्याख्यानमां जतो अने व्याख्यान ना समय बहार पण तेमना सत्संग नो लाभ लेतो। तेमना व्याख्यानोनी मारा ऊपर शु' असर थएली तेनी नोंध हु'मारी रोजनीशि मां राखतो। ते रोजनीशिमांथी केटलांक अवतरणो आ साथे मोकलु' छु'। ते अवतरणो थी आप समजी शकशो के ते वखते श्रीजवाहरलालजी प्रत्ये मारो शु' भाव हतो।

शुद्ध खादी ना बनेला मात्र बे चीवर थी ढंकाएलु' तेमनु' जरा-जर्जरित स्थूल शरीर व्याख्यान माटे आसनबद्ध' थतु' त्यारे तेमनामां साचा धार्मिक जीवननी प्रभा; निर्भयता अने आत्मविश्वास थी उत्पन्न थती कार्यशक्ति, नरवरता ते वखते तेमना प्रसन्न मुख नेत्रवान् दर्शनथी तेमना प्रत्ये जनसमूह पूज्य भावथी आकर्षातो।

तेमना व्याख्याननी शैली शान्त छतां असरकारक हती। तेमना व्याख्यान सांभलनार भाग्येज कोई व्यक्ति हशे के जेने ते व्याख्यान सांभया पछी पोताना जीवननी धर्मशिथिलताथी दुःख थतु' न होय। तेमना व्याख्यानो सामान्य जन समाज माटे करवामां आवता होई तेमां जैन तत्वज्ञान नी झीणी छणावट आवती नहीं। परन्तु भगवान बुद्ध तथा महावीरे लोको ने नैतिक जीवनना उत्कर्ष माटे जे बोधपद्धति ग्रहण करेली तेज पद्धति स्वामीजी नी पण हती। सामान्य जनता ने माटे तत्वज्ञान नी सूक्ष्म चर्चा साधारण रीते शुष्क बने छे।

पोताने जे सत्य लाग्यु' ते कहेवामां पोताना संघाड़ा नी के श्रोताजनमांनी कोई व्यक्ति नी तेमना मां परवाह न हती। साचा साधु जीवननी तेमनी निर्भयताने छाजे तेवी विवेक मर्यादा ते कदी भूलता नहीं। घड़ी वखत मोरवी संघना केटलाक अटपटा प्रश्न ऊपर ते छुट थी बोलता त्यारे संघनी कहेवाती 'समझदार' व्यक्तियों ने लागतु' के महाराज श्री मां व्यवहारकुशलता नथी। आवा व्यवहारकुशल माणसो धार्मिक जीवन मां आर्जवता नु' स्थान न समजी शके, तेमां कांई आश्चर्य थवानु' नथी। To be great is to be misunderstood (महान् बनने का अर्थ है गलत समझा जाना) जगत् नी महान् व्यक्तिओ ना संबन्ध मां आ सूत्रमां जणावेली स्थिति सामान्य बने छे। जेटली तेमना संबंधमां वधारे गेरसमज तेटलीज तेवी व्यक्तिओ नीमहत्ता छे।

मोरवी राज्यमां सप्तमीना तहेवारमां मेला भराय छे। आ मेलाओमां राज्य तरफ थी जुगार रमवाना खास परवाना अपातां अने तेमां थी राज्य ने ठीक आवक पण थती। आ बात

नी महाराज ने जाए थतां जुगार नी बंदी ऊपर तेमने व्याख्यान आप्युं। आ बाबत मोरवी ना श्रीमान् महाराजा साहेब पण हाजर हता। तेमना ऊपर स्वामीजी ना व्याख्यान नी एटली सुंदर असर पड़ी के स्वामी जी नुं व्याख्यान पूरुं थयुं के तरतज श्रीमान् महाराजा साहेबे जुगारना परवाना नहीं आपवा हुक्म कर्यो। श्रीजवाहरलालजी नुं मोरवी नुं चतुर्मास आ एकज बनाव थी चिरकाल स्मरणीय रहेशे।

पूज्य श्री स्वामी जी मां धर्मसंकुचितता नथी तेनो परिचय आपणने तेमना कृष्णजयन्ति ऊपर ना व्याख्यान थी थयो। तेज वखते अमारी खात्री थई के हिन्दु धर्म अने जैन धर्म एकज महान् वृक्ष नी बे शाखाओ छे। ते दिवसे तेमना गोपालन ना उपदेशनी बहु सुन्दर असर थई। चुस्त जैन जे अन्य धर्मो प्रत्ये उभय सहिष्णुता बतावतां चूके तो तेमने जैन कहेतां मने आंचको लागे। स्वामी जी जेवा चुस्त जैनज अन्य धर्मो प्रत्ये उदार वलण राखी शके। कोई पण धर्म के संप्रदाय नी श्रेष्ठता-ते धर्म अथवा संप्रदाय अन्य धर्म तथा संप्रदाय तरफ केटली उदारता बतावी शके तेना ऊपर थी ज धरावी शकाय। आ श्रीकृष्ण जयन्ती ना व्याख्यान ना अन्ते स्वामीजी मां में जैनधर्म नी मूर्ति ना दर्शन कर्या।

व्याख्यान ना समय बहार पण घणी वखत श्री जवाहरलालजी ना उत्तम सत्संग नो मने लाभ मल्यो छे। त्यां में तेमनो विद्याप्रेम अनुभव्यो छे। बीजा पण प्रसंगो छे परंतु आपनी समिति नुं काम हुँ करवा मांगतो नथी। एटले विरमुं छुं।

पूज्य स्वामी जी ने अने तेमना शिष्य श्रीमल जी ने मारा वंदन कहेवडावशो तो उपकृत थईश।

43
EXTRACTS FROM MY DIARY.

22nd. July, 1938.

In the morning I went to the Upashraya to hear Swami Jawaharlal ji, a reputed Jain Muni, I was anxious to hear him as I had heard he has the reputation of a good speaker and a learned man. Moreover he has a reputation of a man who puts in practice his conviction. When I went to the lecture I found him quite upto his reputation. He has certain peculiarities common to Jain Munis, but one can easily see in him a noble soul. His words are really stimulating.

30th, July, 1938.

Yesterday morning I had been to the Vyaknayan of Jain Muni Jawaharlal ji. I find in Muniji a sincere and transperent soul. His speaches are learned, pratical and inspiring, because, I believe, Muniji does not give advice which he does not practice or desire to practice.

महाराज श्री खूब शान्तिपूर्वक ते वहेन ने कह्यु के "वहन" खाद्य वस्तुओ नी बाधा लेवी; सामायक प्रतिक्रमण ना नियम लेवा; आयंबील, उपवास विगेरे तपश्चर्या करवी अने देहदमन करवु ते घणु दुष्कर छे। अने मनोनिग्रह तो तेथी पण वधारे दुष्कर छे। तमारो सत्य बोलना आचरवा माटे आग्रह हशे परन्तु आ रूपरानु वातावरण तम ने ज्यारे तमारी प्रतिज्ञा पालवा मां प्रतिकूल जणाशे त्यारे तमने कोई कोई वार खेद थशे। हमणां थोड़े समय तमे वातावरण जोता रहो अने तेने सुधारता रहो। आ प्रश्न ऊपर हजु वधारे मंथन करजो अने पछी निर्णय पर आवजो।"

ते बहेने मक्कम मनथी अने सरल भावे एटलुं ज कह्यु—"महाराज श्री, मे विचार करी जोयो छे, मात्र कोइक वार भूल थई जाय छे प्रतिज्ञा मने वधारे जागृत राखशे। आप प्रतिज्ञा लेवरावी अने ते पालवानु मने बल मले तेवी आशीर्वाद आपो।"

पूज्य महाराज श्रीए योग्य समजण आप्या पछी बाधा आपी। आपणे आथी उल्टु घणी-वार जोइए छीए। पात्र नी पूरी शक्ति जोया सिवाय, साधुवर्ग तेमने प्रतिज्ञा लेवडाववा मां बहु तत्पर होय छे। तेओ अति उत्तम आशय थी प्रेरायला होय छे के प्रतिज्ञा अने व्रतो माणसना जीवन ने उच्च कक्षाए लाववामां मदद रूप थाय छे। ते वात साची छे। छतां योग्यायोग्य नो विचार तो करवो जोइए। केटलाक बाधा लेनारा भाई बहेनो समाज निन्दा ने कारणे अने केटलाक शरमथी परंतु अनिच्छाए हा पाडे छे अने तेथी तेवा माणसो पाछल थी प्रतिज्ञा न पाली शके तो तेओ ऊँचे आववाने वदले नीचे जाय छे। अने प्रतिज्ञा प्रत्ये वधारे उदासीन बने छे। पूज्यश्रीए सामे थी प्रतिज्ञा लेवा आवनार व्यक्ति ने वधी वस्तुस्थिति समजावी ने पछी योग्य निर्णय करवा जणाव्यु। तेओश्री नी आ रीत प्रत्ये मने वणुंज मान थयु।

एक बीजो प्रसंग—श्री अखिल हिंद हरिजन सेवक संघ वाला श्री अमृतलाल विट्ठलदास ठक्कर जेओने 'ठक्कर बापा' ना अति परिचित नामे ओलखीए छीए, एतेओ राजकोट खाते आव्या छे-एवी पूज्य गुरुदेव ने खबर पडी। तेओ हमेशा साधु जीवन नी मर्यादा मां रहीने पोतानु जीवन गाले छे। छतां देशोदय अने समाजोद्धारना कार्यो मां शुद्ध प्रवृत्ति करनाराओ तथा आत्म-भोग आपनाराओ प्रत्ये तेमना हृदय मां आदर अने सहानुभूति हतां। तेओए तेमने मलवानी इच्छा व्यक्त करी, अने अमे ते वात श्री ठक्करबापा ने करी। ते ओ राजी थया अने अतिव्यवसायी अने पोताना कार्यक्रम ने अति चुस्तपणे वलगी रहेनारा तरीके तेमने वधा ओलखे छे। तेओ समय नो योग्य प्रवन्ध करी महाराज श्री ना दर्शने जैन उपाश्रय मां आव्या।

महाराज श्रीए तेओ ने उद्देशी ने कह्यु के "अमारा श्रावक समुदायना थोड़ा आगेवानो आ प्रसंगे अहीं हाजर छे। तो आप हरिजनो, भीलो विगेरे पछात कोमोनी वच्चे जे काम करो छो ते विषे अने तमारा अनुभव विषे वे शब्दो कहो।" श्री ठक्कर बापाए अति नम्रता भावे जणाव्यु के "महाराजश्री! हुं तो आपना दर्शने आव्यो छुं। आप अमने कांईक वाणी संभलावो।" परन्तु पूज्य महाराज श्री ना आग्रह थी तेओ थोडु बोल्या अने पछी महाराज श्री ए हरिवल मच्छीमार, मेतारज मुनि वगेरे नु जीवन प्रथम केटलु पतित हतु? पछी तेमनो केवी रीते उद्धार थयो? ते वधु सविस्तर समजाव्यु जैन। साधुओए भूतकाल मां पतितोनी केवी रीते सेवा करी छे, तेना दृष्टान्तो आप्या। जैन शास्त्र मां 'अस्पृश्यता' विषयनु मन्तव्य शु छे, ते

पण स्पष्ट शब्दो मां कह्यु'। तेओए जणाव्यु' के वर्ण धर्म, ज्ञातिभेद अने अस्पृश्यता ने जैन-धर्म मां स्थान नथी परंतु काले करीने हिन्दुधर्म अने जैनधर्मनी परस्पर एक बीजाना ऊपर घणी असर थई छे, वगेरे वधु' सूक्ष्मरीते समजाव्यु'। ते थी अमे जोयु' ठक्कर बापा ने बहु संतोष थयो इशे। अमे बहार नीकल्या त्यारे ठक्कर बापा मात्र एटलु' बोलेला के "महाराज श्री मां साम्प्रदायिकतानी संकुचितता नथी, के एवो कोई जातनो आग्रह नथी। ए जोइने मने बहु आनंद थाय छे। आवा पवित्र आत्माओ समाजने घणी सेवा आपी रह्या छे।

आ बे प्रसंगो उपरान्त महाराजश्री साथे मारे एकाद बे मुद्दा ऊपर चर्चा थई हती। आपणे जैनो अत्यारे जे प्रकार नी जीवदया पालीए छीए अने जे री ते जीवरक्षा करीए छीए आसंबंधे ते ओ श्री नु' मन्तव्य पूछयु' हतु'। महाराज श्री शास्त्र आज्ञाओने मान्य राखी आ मुद्दा ऊपर एटली वधी सुन्दर तलस्पर्शी मीमांसा करी के सनातन अने सुधारक विचारवाला बन्नेने—तेमना मोटा भागने मान्य रही शके। बन्नेने तेओश्रीनो उपदेश ग्राह्य जणाता, तेओ श्री ए एक वस्तु बहु स्पष्ट करी अने क्यां भूल थाय छे ते जणाव्यु' "साधु जीवन नी अमुक मर्यादाओ छे परन्तु "विशेषनु' विशेष फल" एवा खयालो मां साधु जीवन नी मर्यादाओं ने श्रावकजीवन साथे मेलवी आमां थी केटलोक गोटालो वधी वस्तुस्थिति ने जोई तपासी काले काले मिश्रित थई गयेली वस्तुओ नु' सम्मार्जन करवु' जोईए।"

आ प्रश्न तेओ श्रीए सप्तनय विगेरे वधी दृष्टीए चर्च्यो हतो जेना उपर घणु' लखी शकाय। परंतु में तो पूज्य गुरुदेवना टु'का परिचयनी नोंध करी छे।

पूज्य महाराज श्री संवत १९९४ ना विहार दरम्यान समढीआ थी पसार थतां तेओ श्रीए 'श्रीग्राम सुधारणा समिति' नी मुलाकात लीधी हती। परंतु ए समये हु' अने मारा पत्नी विगेरे मलाया अने जावानी मुसाफरी ऊपर गया हता। एटले ए समये अमारी गैरहाजरी मां अमारी श्री सार्वजनिक होस्पिटल ना डाक्टर श्री मणिलाल शाह M.B.B.S., तथा श्रीरामजी भाई विगेरेए तेमनो सत्कार कर्यो हतो अने संस्था विषेनो तेओश्री ने परिचय आप्यो हतो। महाराजश्रीए पोतानो संतोष व्यक्त कर्यो हतो अने शिष्य समुदाय साथे तेओश्रीए पछी आटकोट विहार कर्यो हतो।

पूज्य महाराज श्री काठियावाड मां ज्यां ज्यां विचर्या छे त्यां त्यां जैनो अने जैनेतरो ऊपर तेमना पवित्र जीवन नी अने उपदेश शैली, जेमां हमेशा मिष्ट, प्रिय अने हितकारी वाणी नो उपयोग थतो रह्यो हतो तेनी घणी ऊँडी असर थई छे। एम मे अनुभव्यु' छे।

पूज्य महाराज श्री नो शिष्यवर्ग गुरुदेवनी उत्तम प्रणालिका ने चालु राखवा शक्तिमान थाओ एवी हार्दिक नम्र प्रार्थना साथे विरमु' छु'।

अगणित-वन्दन

४५:—रायसाहेब डाक्टर लल्लूभाई सी० शाह लल्लूभाई बिल्डिंग, राजकोट

राजकोट चतुर्मास माटे मारवाड तरफ थी विहार करता करता पूज्य श्री चोटीला मुकामे पधार्या (राजकोट थी ३० माइल दूर) ते वखते हु' मारा कुटु'ब साथे मोटर मां चोटीला पूज्य श्री ना दर्शनार्थे गयो। सौथी प्रथम चोटीला गामे में तेमना दर्शन कर्या। व्याख्यान मां गाम ना

प्रमाण मां माणस वधुं हतुं। पूज्यश्रीए व्याख्यान नो विषय पण बहु सुंदर पसंद कर्यो। भगवान श्री रामचन्द्रजीना जीवन मां ना केटलाक प्रसंगो ऊपरनुं पूज्य श्री ए घणी सारी सुंदर अने सरल गुजराती भाषा मां असर कारक व्याख्यान आप्युं। (तेम नी मातृभाषा गुजराती नहीं होवा छतां तेमनो गुजराती भाषा ऊपरनो काबू अजब हतो)। शुं भगवान श्रीरामचन्द्रजी चा बीड़ी पीता हता ? ज्यारे तमो तेना भक्तो चा बीड़ोना व्यसन राखो ते केटलुं शरम भरेलुं कहेवाय ? आ सचोट उपदेश थी घणा लोकोए ते वखते चा तेमज बीड़ी नहीं पीवानी बाधाओ लीधेला।

आ तो चीटीला गाम पूरती प्रस्तावना करी। हवे पूज्यश्री राजकोट पधार्या। राजकोट नी जैन प्रजाए घणी मोटी संख्यामां राजकोट थी अमुक माइल सुधी सामे जइने घणो भाव-भीनो सत्कार कर्यो। चातुर्मास दरम्यान पूज्यश्रीए श्री अनाथी मुनि नो अधिकार (सनाथ-अनाथ) घणीज सुंदर सचोट विद्वत्ताभरी अने सांभलनारी प्रखदा ने असर करे अने छाप पाडी शके तेवी सादी-सीधी अने सरल गुजराती भाषा मां आवो अधिकार समझावेलो ते भूली शकाय तेम नथी (पुस्तक रूपे सनाथ अनाथ निर्णय प्रकट थयो छे) सार्वजनिक उपदेश खातर दर रविवारे तेमना व्याख्यानो जुदा जुदा विषय ऊपर राखवामां आव्या हता, जे सांभलवा माटे जैनेतर वर्ग मोटी संख्या मां आवतो अने लाभ मेलवतो। आ व्याख्यानोनुं नुं पुस्तक श्री महावीर जैन ज्ञानोदय सोसाइटीए 'श्री जवाहर ज्योति' ना नाम थी प्रकट करेल है। उपरान्त तेमना हमेश ना व्याख्यानो पण पुस्तक रूपे 'श्री जवाहर व्याख्यान संग्रह' भा० १।२ श्री महावीर जैन ज्ञानोदय सोसाइटीए प्रगट करेल छे।

व्याख्यानमां प्रखदा घणीज मोटी संख्यामां भराती। अने व्याख्यान शैली एवी सुंदर हती के सांभल्याज करवानुं मन थाय। तेमनी व्याख्यानथी शरुआत प्रार्थना थी थती। प्रार्थना मां श्री चौवीस तीर्थंकर प्रभुनी सरनि राखवा मां आवी हती। प्रार्थना वखते बधा संतो साथे गाता गाता पूज्य श्री एक तार थई जता। व्याख्यान पूरुं थवाना पहेलां थोड़ो टाइम श्रीसुदर्शन चरित्र नो अधिकार समझावतां, जेनुं पण काव्य-रूप मां 'श्री सुदर्शन चरित्र' नाम थी पुस्तक प्रगट थयेल छे।

पूज्य श्री नो अभ्यास एकलो जैन धर्मना सूत्रो पूरतो न होतो। श्री गीताजीना दरेक अध्ययन तेमने कंठस्थ हता। व्याख्यान मां गीताजी ना श्लोको तथा वेद कुरान तेमज बाइबिल मां थी पण समय अनुसार दृष्टांतो आपता। ते थी पूज्यश्रीने जैनधर्म उपरांत बीजा धार्मिक ग्रंथों नो अभ्यास घणो सारो होवो जोइए, एम श्रोताओं ने लाग्या विना रहे नहीं।

एक अति महत्व नो प्रसंग ए हतो के ज्यारे अत्रे सत्याग्रह नी चलवल चालती हती अने अशान्तिनु वातावरण हतुं ते प्रसंगे पूज्य श्री फकत शेष काल माटे श्री वांकानेर थी (राजकोट थी ३० माइल) राजकोट नी जैन जनता ना खास आग्रह था अत्रे पधारेला। ते प्रसंगे तेमने विचार आव्यो के जो एक अठवाडीआ सुधी श्री शान्तिनाथ प्रभु नो जाप अखंड रात अने दिवस सतत चालू रहे तो जरूर राजकोट मां शान्ति थाय। तेमनी इच्छा ने मान आपी-ने श्री शान्तिनाथ प्रभु नो जाप अखंड रात अने दिवस आठ दिवस सुधी चालू राख्यो हतो। अने आश्चर्य साथे राजकोट नी लडत नुं समाधान थयुं अने शान्ति थई जवाथी तेओ श्री ना

श्रद्धापूर्वक ना कथन माटे अमो तेमना ऋणी छीए ।

मारा ऊपर तेमनो घणोज उपकार छे। मारी मांदगी वखते पूज्य श्री सीडी ऊपर चढी शकता न होतां छतां मने मंगलीक संभलाववा माटे पूज्य श्री वारंवार मारा घरे पधारता। मंगलीक तथा आत्मिक औषध रूपी धार्मिक उपदेश थी मने अत्यन्त शाता उपजती अने मारुं मांदगीनु दर्द भुलाई जतुं ते खातर हुं तेम नो सदानो ऋणी छुं ।

आवा संत महात्माओ ना पगला थी अने तेमनी सुवाणी अने सु उपदेश थी जैनधर्म नो वावटो फरकी रह्यो छे ।

एक छेल्लो हमणा नोज प्रसंग। पूज्यश्री नी भीनसर (बीकानेर) गामे घणी सखत मांदगी ना समाचार अत्रे आव्या। मारे डाक्टरो नी मीटींग ने अंगे ते अरसा मां दील्ही जवानुं हतुं। दील्ही जवानी तारीख मोडी हती। छतां पण पूज्य श्री नी मांदगी सांभली ने हुं तुरत अत्रे थी बीकानेर गयो। ते वखते तेमनी सेवा करवानो जे लाभ मने मल्यो ते माटे हुं मारी जात ने घणी भाग्यशाली मानुं छुं। तेमनी मांदगी घणीज भयंकर हती अने तेमने दर्द पण घणुं असह्य हतुं, छतां तेमनी शान्ति अने समभाव आश्चर्य पमाडे तेवा हता। दील्ही थी मारे बनारस (मारा दीकरानी त्यां बनारसी कापड़ नी दुकान छे) जवानो विचार हतो, परन्तु पूज्य श्री नी मांदगी नी स्थिति चिंताजनक हती जे थी मीटींग नु काम पूरुं थये हुं तरतज पाछो बीकानेर गयो। पूज्य श्री नी तबीयत सुधारा ऊपर जोई, अने तेम नो सेवानो विशेष लाभ मल्यो।

ते वखते त्यांना श्रीमान् सेठ चंपालाल जी बांठिया, स्व० सेठ श्री अमृतलाल रायचन्द झवेरी ना पत्नी गं० स्व० बेन केसरबाई नी तथा अन्य गृहस्थो नी तथा त्यां ना डॉक्टर श्री अविनाश जेओ पूज्यश्रीनो सारवार करता हता ते बधानी सेवा जोईने मने घणोज आनंद थयो। पूज्यश्री पासे तेओ बधा उभे पासे हाजर रहेता हता।

श्रीमान् सेठ चम्पालाल जी बांठिया ना समागम मां हुं पहेल वहेला आ प्रसंगे आव्यो। मारा भीनासर पहोंच्या पछीना बीजेज दिवसे पूज्य श्री नी मादगी छणीज भयंकर अने अति वेदना वाली हती। तेनु आ दुःख जोईने श्रीमान् सेठ चंपालाल जी बांठीयाए मने जणाव्युं के पूज्य श्री ने कोईपण रीते वहेलो आराम थाय अने जेम बने तेम दर्द ताकीदे ओछुं करी शकाय तेम तमो ने लागतुं होय अने ते माटे कोई पण मुंबई ना मोटा डॉक्टर ने बोलाववानी जरूर लागती होय तो गमे ते खर्च ना भोगे तमो बोलावी शको छो। आ सांभली ने पूज्य श्री तरफ नी तेमनी आवी महान् भक्ती जोई मने छणोज हर्ष थयो। श्रीमान् सेठ चंपालाल जी बांठिया नी पूज्य श्री प्रत्येनी केटली वधी अजब भक्ति छे तेनो वांचनारने आ ऊपर थी खयाल आवशे। बे दीवस तबीयत तपास्या वाद तबीयत मां सारो सुधारो जोवा थी वहारगाम थी डॉक्टर ने बोलाववा नी जरूर मने लागी नहीं।

राजकोट थी ज्यारे पूज्य श्री विहार कर्यो त्यारे शहेर नी बाहर वीदाई-वाणी सांभळी श्रोताओ नी चक्षुओ अश्रु भीनी थएली, एवुं मानीने के हवे आ संत महात्मा नी अमृत वाणी [illegible] [illegible] राजकोट मां मलवानी नथी। पूज्य श्री बधा संतो साथे आगल अने आगल विहार करे अने तेमना पवित्र चरणरजनी प्रसादी पामता उदास भावे प्रखदा वीखरवा लागी।

आवा संत महात्मा ने मारा अगणित वंदन हो।

दो--पत्र

४६—(प्रसिद्ध देशभक्त श्रीमान् सेठ पूनमचन्द जी रांका)

वेलोर जेल १४—१०—४२

जवाहरज्योति नाम की पुस्तक इस बार जेल में पढ़ने का अनायास ही मौका मिल गया। मघाकी कथा में सारा निचोड़ आगया। आप की राष्ट्रवृत्ति विद्वत्ता त्याग आदि से परिचित हूँ। इसी भावना से आप की याद बनी रहती है। मैंने अनेक संतों के दर्शन किए। राष्ट्रवृत्ति में आप की रुचि विशेष देखी। ऋषि संप्रदाय के मुनिश्री मोहन ऋषि जी की वृत्ति भी ठीक देखी। भगवान् महावीर के तत्त्वों के प्रचार तथा आचार का यही समय है। अहिंसा सत्य का संसार पर असर होकर रहेगा पर उस के लिए त्याग आदि भी जरूरी है। गतवर्ष नागपुर जेल में स्व० से० जमनालालजी बजाज आदि साथ थे। वे आप से जलगाँव में मिले थे। एक दिन आप के संबन्ध में हम दोनों की बात हुई कि कभी मौका मिला तो दर्शन करने चलेंगे। ऐसा सोचा गया पर उनकी इच्छा सफल नहीं हुई। एक दिन आगे पीछे सभी को इसी रास्ते पर जाना है। कृपा रखें। प्रत्यक्ष में मैंने आप की सेवा की नहीं और भविष्य में भी होगी नहीं। यह होते हुए भी परस्पर का प्रेम अंत तक रहेगा। दोनों का मार्ग एक ही है।

× × ×

पूज्य श्री को राष्ट्र के दृष्टिकोण से देखा और समझा। मैंने उनको जो कुछ समझा वह ठीक है या नहीं, इस लिए महात्मा भगवानदीन जी तथा स्व० सेठ जमनालाल जी बजाज को पूज्यश्री से मिलाया। हम तीनों का एक मत रहा। वह इस स्थल (जेलसे) लिखने में उपयोगी नहीं होगा। पूज्य श्री ने अपने जीवन का सदुपयोग ही किया पर शिष्य और श्रावकों में उन से उपयोग लेने वाले नहीं निकले। वर्तमान परिस्थिति भगवान् का मार्ग दीपाने की है पर पूज्य श्री का २-३ वर्ष से शारीरिक रोग से लाचार हो जाने से विशेष उपयोग न होना स्वाभाविक है। फिर भी पूज्यश्री को ऐसे समय में भक्तों की तो क्या, शिष्य गणों को प्रेरणा कर के उन की परीक्षा ले लेनी चाहिए। २-४ भी मिल जाएंगे तो पूज्य श्री की आयु, त्याग, तपश्चर्या का उपयोग हो जाएगा। पूज्य श्री का भी यह अंतिम समय है। जो कुछ संचय किया है वह भगवान् के अहिंसा सत्य में होम दें। उस का उनके पीछे समाज को कुछ भी तो उपयोग होगा।

४७—पूज्य श्री संबंधी मेरे संस्मरण:—

(ले०—धर्मभूषण, दानवीर सेठ भैरोंदानजी सेठिया, बीकानेर)

श्रीमज्जैनाचार्य पूज्य श्री जवाहरलालजी महाराज के प्रति मेरी जो सहज स्वाभाविक श्रद्धा सदा से रही है और उनके उच्च आचार विचारों से प्रभावित होने के कारण जो उत्तरोत्तर वृद्धिंगत होती रही है उसी की प्रेरणा ने मुझे यहाँ अपने मनोभाव संक्षेप में व्यक्त करने को प्रेरित किया है। उनके जीवन की मीमांसा, आलोचना, अथवा विश्लेषण करने की मेरी स्थिति नहीं है। यह कार्य तो विद्वद्वरों की लेखनी से ही सुसंपन्न होता है। एक पूज्य आचार्य के प्रति एक श्रद्धालु श्रावक की दृष्टि से ही मैंने उन्हें देखा है और उसके बाद तटस्थ होकर जब तब उस पर विचार किया है, उसी का सारांश मैं यहाँ दे रहा हूँ।

पूज्य श्री का मेरा सम्पर्क बहुत पुराना है। युवा तपस्वी की उग्र तेजस्विता मैंने उनके

चेहरे पर देखी थी, वही धीरे धीरे सौम्य, स्निग्ध शांति में कैसे परिवर्तित हो गई ? यह मैं जब आज सोचता हूँ तो हृदय पुलकित हो उठता है। मुझे लगता है कि उन्होंने जीवन के इस परम सत्य को किस अच्छी तरह अवगत कर लिया था कि मानवजीवन कुशा की नोक पर रखी हुई ओस की उस बूंद की तरह है जो क्षण भर में अपने अस्तित्व से रहित हो जायगी। इसीलिए छाया के मोह को उन्होंने छोड़ दिया था। असह्य वेदना को कितनी दृढ़ता और कितने धैर्य के साथ उन्होंने सहन किया था ! इस बीच मुझे जब जब उनके दर्शनों का सुअवसर मिला था, मैंने कभी उनके मुख पर व्यथा या वेदना के चिह्न नहीं देखे, उनकी जिह्वा से कभी सिसकना नहीं सुना। हम आप सब को विदित है कि Carbuncle (जहरी फोड़े) में कैसी असह्य वेदना मनुष्य को होती है। उसकी यंत्रणा के समय बड़े बड़े धैर्यशालियों का धैर्य छूट जाता है। वे छट-पटाते हुए देखे जाते हैं। पर पूज्य श्री ने जैसे उस वेदना पर विजय प्राप्त कर ली हो, इस प्रकार परम शांति से उसकी घोर पीड़ा को समभाव पूर्वक सहन किया। मैंने ही क्या, किसी ने भी उनके मुँह से उफ़ तक न सुनी। शायद वे इस आस्था से सदा बलवान् रहे कि वेदना से जीव कभी अजीव नहीं हो सकता। कर्मों के ऋण को चुकाने पर ही जीव मुक्ति पा सकता है।"

अपने जीवन के अंतिम समय में बीकानेर व भीनासर में पूज्यश्री ने लगभग तीन वर्ष तक स्थिर वास किया था। इस बीच वे कुछ दिन पारखजी की बगीची में, कुछ दिन डागाजी की बगीची में, कुछ दिन ऊनप्रेस में और फिर बाद में अन्त समय तक भीनासर में थे। मुझे इस बीच अनेक बार आपके दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। आपके व्यक्तित्व में जो विशेष प्रकार का आकर्षण था उससे लोग सहज ही आपकी ओर खिंचते थे। आपके चेहरे पर महर्षियों का शीतल, सौम्य तेज इस काल में मैंने सदा विराजमान देखा। उसी प्रकार आपकी वाणी में अपूर्व संयम और विशुद्ध निर्मल भावना का प्रसार पाया। ऐसा प्रतीत होता था कि मन, वचन और काया के अन्तरबाह्य दोनों को उन्होंने परिशुद्ध कर लिया है। ऐसी परिशुद्धि जीवन में तभी सम्भव हो सकती है जब तपश्चर्या और साधना की चरम प्राप्ति के कठोर और कष्टकर मार्ग पर चल कर उसकी मंजिल पूरी कर ली गई हो एवं कषायों पर विजय प्राप्त कर ली गई हो। ऐसा सुयोग और सद्भाव बड़े बड़े महात्माओं और योगनिष्ठ भाग्यशालियों को ही प्राप्त होता है। मनोभावों और परिणामों की अत्यन्त निर्मलता बिना कौन इसे पा सका है ? मुझे यह देख कर सदा ही संतोष हुआ कि चतुर्विध संघ के शीर्ष पर विराजमान हमारे धर्माचार्य श्री में वही देवोपम ज्योति झलमला रही थी। जिस आदर्श की स्थापना के लिए वे पूज्य पद पर आरूढ हुए थे, जिनवरों के उस आदर्श को उन्होंने चरितार्थ करके दिखा दिया था। समाज की आत्मा ने उसे अवश्य ही ग्रहण किया होगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

पूज्यश्री ने साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका रूप चतुर्विध संघ से जिन शब्दों में क्षमा-याचना एवं क्षमादान किया था वे बार बार याद करने योग्य हैं। आपने फरमाया था:—

"मेरा शरीर दिनप्रति दिन क्षीण होता जा रहा है। जीवन शक्ति उत्तरोत्तर घट रही है, इस बात का कोई भरोसा नहीं कि इस भौतिक शरीर को छोड़ कर प्राणपखेरू कब उड़ जांय ? ऐसी दशा में जब तक ज्ञानशक्ति है, भले बुरे की पहचान है तब तक संसार के सभी प्राणियों से तथा विशेषतया चतुर्विध श्रीसंघ से क्षमायाचना करके शुद्ध हो लेना चाहता हूँ, मेरी आप सभी से

विनम्र प्रार्थना है कि आप भी शुद्ध हृदय से मुझे क्षमा प्रदान करें।.........इसी तरह जो मेरे द्वारा क्षमा पाने के उत्सुक हैं उन्हें मैं भी अन्तःकरणपूर्वक क्षमा प्रदान करता हूँ। मैंने अपनी आत्मा को स्वच्छ एवं निर्वैर बना लिया है।"

यह केवल कथन मात्र नहीं था। जिन्होंने अन्तिम समय में उनके दर्शन किये हैं उन्हें इस बात का अनुभव होगा कि ये शब्द उनकी आत्मा के अन्तरतम प्रदेश से निकले हुए स्वाभाविक उद्‌गार थे। संसार के व्यवहार के प्रति उन्हें समदृष्टि रखने की अवस्था प्राप्त होगई थी। जीवन-व्यापी साधना की परम सिद्धि पर उन्होंने अधिकार कर लिया था। यदि ऐसा न होता तो क्या उनके चेहरे पर वह परम शान्ति रह पाती जिसका अखण्ड साम्राज्य अन्त समय तक अक्षुण्ण रहा। उन्होंने इसी समाधि की अवस्था में वैर-विरोध, यशकीर्ति, रागद्वेष सब से तटस्थ होकर पण्डितमरण पूर्वक शान्ति की अमर गोद में शयन किया। उनका सारा जीवन ही इस परिणाम की प्राप्ति में निरत रहा। बीच बीच में जो कई ऐसे स्थल आये हों जहाँ शासन के उत्तरदायित्व के लिए या सत्य की स्थापना के लिए उन्हें कठोर होना पड़ा हो, ये उनके द्वारा प्रस्तुत आदर्शों में मुख्य नहीं हो सकते, क्योंकि आखिर उन्होंने ऐसे प्रसङ्गों के लिए भी क्षमायाचना कर ली थी, उनके प्रति किसी तरह का आग्रह नहीं दिखाया था प्रत्युत अपनी आत्मा को निर्वैर बना कर समस्त प्राणियों के साथ मैत्री भाव स्थापित किया था। किसी के साथ किसी प्रकार के वैर-विरोध को शेष नहीं रखा था। तब आज उनके जीवन से आलोक की किरणें बटोरते समय हमें क्या अधिकार है कि हम उन्हें स्थान दें? हमारे लिए क्यों न उनके चारित्र का वही परमोज्ज्वल शांत और संयतरूप पथप्रदर्शन का काम करे—वही जो उनके महिमाशाली जीवन का सार तत्त्व था।

पूज्यश्री का हृदयस्पर्शी उपदेश

(४८—श्रीयुत पं० शोभाचन्द्रजी भारिल्ल, ब्यावर)

जीवन को ऊंचा उठाने के लिए प्रवृत्ति और निवृत्ति रूप दो पंखों की आवश्यकता है। जिस पंखी का एक पंख उखड़ जायगा वह अगर अनन्त और असीम आकाश में विचरण करने की इच्छा करेगा तो परिणाम एक ही होगा—अधःपतन। यही बात जीवन के संबन्ध में है। जीवन में एकांत निवृत्ति निरी अकर्मण्यता है और एकांत प्रवृत्ति चित्त की चपलता है। इसी लिए ज्ञानी पुरुषों ने कहा है—

असुहादो विणिवित्ती सुहे पवित्ती य जाण चारित्तं॥

अर्थात्—अशुभ से निवृत्त होना और शुभमें प्रवृत्ति करना ही सम्यक्‌चारित्र समझना चाहिए। और चारित्र ही धर्म है इसलिए इस कथन को सामने रखकर विचार करने से स्पष्ट हो जाता है कि धर्म प्रवृत्ति और निवृत्तिरूप है। 'अहिंसा' निवृत्ति भेद है पर उसकी साधना विश्व-मैत्री और 'समभावना' को जागृत करने रूप प्रवृत्ति से होती है। इसी से अहिंसा व्यवहार्य बनती है। किन्तु हमें प्रायः जीवघात न करना सिखाया जाता है पर जीवघात न करके उसके बदले करना क्या चाहिये? इस उपदेश की ओर उपेक्षा बताई जाती है।

आचार्य श्री जवाहरलालजी महाराज के उपदेशों ने इस त्रुटि को पूर्ण किया था। उन्होंने धर्म को व्यवहार्य, सर्वांगीण और प्रवर्त्तकरूप देने की सफल चेष्टा की थी। अपने प्रभावशाली

प्रवचनों द्वारा उन्होंने शास्त्रों का जो नवनीत जनता के समक्ष रखा, निस्संदेह उसमें संजीवनी शक्ति है। उनके विचारों की उदारता ऐसी ही थी जैसे एक मार्मिक विद्वान जैनाचार्य की होनी चाहिये।

आचार्य श्री की वाणी में युगदर्शन की छाप थी। समाज में फैले हुए धर्म संबंधी अनेक मिथ्या विचारों का निराकरण था। फिर भी वे प्रमाणभूत शास्त्रों से इंच मात्र भी इधर-उधर नहीं होते थे। उनमें समन्वय करने की अद्भुत क्षमता थी। वे प्रत्येक शब्दावली की आत्मा को पकड़ते थे और इतने गहरे जाकर चिन्तन करते थे कि वहां गीता और जैनागम एकमेक से मालूम होने लगते थे।

गृहस्थ जीवन को अत्यन्त विकृत देखकर कभी-कभी आचार्यश्री तिलमिला उठते थे और कहते थे--'मित्रो! जी चाहता है, लज्जा का पर्दा फाड़कर सब बातें साफ-साफ कह दूँ'। नैतिक जीवन की विशुद्धि हुए बिना धार्मिक जीवन का गठन नहीं हो सकता, पर लोग नीति की नहीं, धर्म की ही बात सुनना चाहते हैं। आचार्य श्री उन्हें साफ-साफ कहते थे—"लाचारी है मित्रो! नीतिकी बात तुम्हें सुननी होगी। इसके बिना धर्म की साधना नहीं हो सकती।" और वे नीति पर इतना ही भार देते थे जितना धर्म पर।

आचार्य के प्रवचन ध्यानपूर्वक पढ़ने पर विद्वान् पाठक यह स्वीकार किये बिना नहीं रह सकते कि व्यवहार्य धर्म की ऐसी सुन्दर, उदार और संगत व्याख्या करनेवाले प्रतिभाशाली व्यक्ति अत्यन्त विरल होते हैं। आचार्यश्री अपने व्याख्येय विषयको प्रभावशाली बनाने के लिए और कभी-कभी गूढ़ विषय को सुगम बनाने के लिए कथा का आश्रय लेते थे। कथा कहने की उनकी शैली निराली थी। साधारण से साधारण कथानक में वे जान डाल देते थे। उसमें जादू-सा चमत्कार आ जाता था। उन्होंने अपनी सुन्दरतर शैली, प्रतिभामयी भावुकता एवं विशाल अनुभव की सहायता से कितने ही कथा-पात्रों को भाग्यवान् बना दिया है। वे प्रायः पुराणों और इतिहास में वर्णित कथाओं का ही प्रवचन करते थे पर अनेकों बार सुनी हुई कथा भी उनके मुख से एकदम मौलिक और अश्रुतपूर्व-सी जान पड़ती थी।

आचार्यश्री के उपदेश की गहराई और प्रभावोत्पादकता का प्रधान कारण था—उनके आचरण की उच्चता। वे उच्च श्रेणी के आचारनिष्ठ महात्मा थे।

आचार्य श्री के प्रवचनों का उद्देश्य न तो अपना वक्तृत्व कौशल प्रगट करना था और न विद्वत्ता का प्रदर्शन करनाही, यद्यपि उनके प्रवचनों से उक्त दोनों विशेषताएं स्वयं झलकती हैं श्रोताओं के जीवन को धार्मिक एवं नैतिक दृष्टि से ऊंचा उठाना ही उनके प्रवचनों का उद्देश्य था यही कारण है कि वे बार-बार उन बातों पर प्रकाश डालते हुए नज़र आते थे जो जीवन की नींव के समान हैं। इतना ही नहीं, उनके एक ही प्रवचन में अनेक जीवनोपयोगी विषयों पर भी प्रकाश पड़ता था। उनका यह कार्य उस शिक्षक के समान था जो अबोध बालक को एक ही पाठ का कई बार अभ्यास कराकर ऊँचे दर्जे के लिए तैयार करता है।

गुरुदेव!

(४६) श्री बालेश्वरदयालजी, संस्थापक एवं संचालक, डूंगरपुर विद्यापीठ—

मैं तुलसीदास नहीं जो अपने राम के प्रति श्रद्धा प्रकट कर सकूँ, अर्जुन जितनी प्रतिभा

नहीं जो योगिराज कृष्ण का शिष्य कहला सकूँ, स्वर्गीय महादेव भाई की भांति शान्त एवं क्रियाशील भी नहीं, जिन्होंने अपने चरित्रनायक गांधी की जीवनसफलता के लिए अपनी श्रद्धा और भाव की भेंट चढ़ा दी, मैं गुरुदत्त विद्यार्थी भी नहीं जिसने स्वामी दयानन्द के जीवन को अपने हृदय पर अंकित कर लिया, बड़ी देर यही विचारमन्थन रहा कि क्या मैं इतना योग्य हूँ कि पूज्य श्री के जीवन के प्रति यथार्थ श्रद्धाभाव का परिचय दे सकूँ, अन्त को चंचल मन ने इस विचार-विनिमय पर विजय पाई।

पूज्य श्री के दर्शन के अवसर मुझे बहुत कम मिले हैं, मैं जब-जब उनकी सेवा में उपस्थित हुआ मुझे वे एक ही आशय का प्रश्न पूछते—कहिये भीलों की क्या हालत है? इस वर्ष उनकी फसल कैसी है? प्रश्न एकसा ही होता परन्तु उत्तर में मुझे सदैव नवीनता का अनुभव होता, ठीक उसी भांति जैसे कि सूर्य्य प्रति दिन एक-सा ही उगता है, परन्तु प्रत्येक दूसरे दिन उसमें नवीन स्फूर्ति; नव्य जीवन एवं नया ही संदेश रहता है।

मेरे कल्पित किले के नायक! भीलों के आंतरिक जीवन के प्रति आपकी इतनी लागणी देखकर हे गुरुदेव! कभी-कभी मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि यदि संयोगवश इस महाविभूति की शक्ति कोई भीलसेवा की दिशा में प्रयुक्त कर देता तो अधोगति की इस मौजूदा अवस्था में भील जनता न दिखाई देती प्रत्युत लाखों भीलों का यह इलाका रचनात्मक सेवा का एक आदर्श उपस्थित करता, जो भारत के अन्य प्रान्तों के सेवकों को कष्टसहन और त्याग में पथ-प्रदर्शन का काम देता।

कल्पना बड़ी सुन्दर और सुखद है कि पूज्य श्री इस सेवा क्षेत्र के आचार्य होते और लेखक उनकी उद्देश्यपूर्ति में एक छोटे से सेवक का स्थान सम्हालता। विदेश की कलुषित सभ्यता के जो कांटे आज सरल और सौम्य भावपूर्ण देहाती भील जनता में घर कर गये हैं वे न होते...और होता एक प्राचीन समाज का अर्वाचीन चित्र जिसे देख हिन्दुस्थान तो क्या बिजली की चकाचौंध वाला जगत चकित हो उठता। परन्तु...ऐसा होता कैसे!!! आपको तो लाखों ही नहीं वरन् कोटि-कोटि जनता में वीर वाणी का सुरसरि-स्रोत बहाना था।

करोडों के उद्धारक को लाखों में सीमित कर रखने की मेरी कल्पना कोरी विचार-कृपणता ही सही परन्तु भाव भीनी होने से क्षम्य है।

गरीब की गुदडी के लाल

नारकी जीवनलीला के क्षेत्र में नर कंकाल और भूखे नंगे भीलों के डूंगरों (पर्वतों) में कहीं कोई जवाहर भी हाथ लग जायगा यह किसे कल्पना थी?

अज्ञान-तिमिर में चलने वाली डूंगर प्रदेश की जनता ने "अन्धे के हाथ बटेर" की भांति जवाहर की ज्योति पाई। इस अलौकिक देन के लिये मैं प्रकृति और परमात्मा का आभारी हूँ। महान आत्माएं धनवानों के महलों में भी जन्म ले सकती हैं और गरीबों की झोंपडियों में भी। इस बात की एक नई पुष्टि आपके गौरवशाली जन्म से मिलती है। प्रायः निर्धनता और तपस्या का वातावरण ऐसे महापुरुषों के शुभागमन के लिये अधिक अनुकूल होता है। आपका एक साधारण कुल में पैदा होना इन सब बातों का एक ज्वलन्त उदाहरण है।

began. My feeling is that he said this last in reference to his position as one of the most important leaders of the Jain Sadhus.

Whatever this be, I found in the course of these too short but extremly intime personal talks that he is a true Sadhu and when I say this I am paying him a great tribute. I found in him the most important qualities, according to my own idea of the Sadhu life viz, Simplicity of soul, humility of heart and sincerity. He has certainly the qualities usually expected in a Jain Sadhu, but the ones mentioned above are the basic qualities and also the crown and fulfilment of the ordinary virtues of Sadhu life. It is these which prevent a man and much more a Sadhu from becoming a prey to pride, which is always ready to attack and take possession of those who would follow the higher path. Pride, especially in its subtler form is the grêatest enemy of those who are apt to think themselves as Sadhu, and as such superior to laymen or the Shrawaks, and it is still more so of those who attain to a high position among the Sadhus. Both in the East and the West, a number of Saints have said that it is easy to renounce the world, both (कंचन और कामिनी) the Kanchan and Kamini, wealth and woman, but that the hardest thing to renounce is pride. Because of this one must have true humility in one's heart. and the roots of this must go deep into one's soul. I am glad to say that I found something of this humility in Acharya Shri Jawaharlalji and it was this which evoked true love and respect for him in my heart. I have seen a number of deeply religious men and women of various communities such as the Jains, the Brahmans, the Christians, the Hindus etc., etc. and I place Shri Jawaharlalji among the very few who have impressed me the most for their truly Sadhu life.

This is what it should be, especially in a congregation numbering hundreds of people and containing all sorts of men and women and even boys and girls. In such congregations the teaching should be such as sustains the interest of all throughout, a matter in which Shri Jawaharlalji Maharaj's sermons never failed. The teaching was full of illustrations of all kinds drawn from Jain scriptures and other books and also from the scriptures of other

religions and even from ordinary life. From the way in which Shri Jawaharlalji Maharaj dealt with various subjects, it seemed to me that he is not only extremely tolerant towards all religions but has a positive, friendly and reverent attitude towards them. This too is but proper and it adds to his spiritual stature. While drinking deeply from the fountains of Jain Scriptures, he has drawn much inspiration from such great scriptures as the Gita, the Upanishads and the Bhagvata. Even the Bible and the Kuran are not alien to him and he is ready to receive inspiration from them. In this also I found him a class by himself among the Jain Sadhus, especially when we look to his age and early surroundings His power of impressing the congregation also lay in the fact that he is fully alive to what is going on in the world to-day, in his close acquaintance with our present political, economic and social problems. He knows the besetting temptations and the sins of our people to-day and has sound advice to give as to how we should avoid these. All this makes his sermons truly vital.

In addition to this, I found in these sermons an original quality which I have noticed in few Jain preachers. This comes from Shree Jawaharlalji's deep thinking on various subjects and from talents which he has been endowed with from his birth. There is a touch of poetry in this originality which also must be mentioned. Had he thought it proper to devote himself to literary work, I am sure he could have earned a good name for himself in the literary world. But he has wisely chosen to be a Sadhu and his occupation is certainly higher than that of a literary man.

The qualities mentioned above have with them another which may be partly the cause and partly the effect thereof. This is no other than what is called child-likeness, one of the greatest qualities a human being can have. When some children were brought to Jesus christ by their mothers to be blest by him, his disciples would not allow them to come near him, thinking that thereby his dignity would suffer. Seeing this he said to the disciples, "Let them come for such is the Kingdom of heaven made". The innocence, the sense of wonder, the teachableness etc. are

the qualities of children and I found in Maharaj Shri Jawaharlalji some of these. He is alive to the fact that knowledge is infinite and that it can be had in all directions, provided one does not close the doors of ones' soul by stupid bigotry. I found in him this openness of soul, this readiness to learn and appreciate other people's points of view and even to assimilate whatever may be good in them.

I had a concrete proof of this not only in my talks with him but in the following incident, which is indeed remarkable. I presented him two small books of mine before leaving him finally, one of these was (जीवन-वेद) Jeewan Veda by the great Bengali religious teacher Brahmarshi Keshub Chander Sen. It is a kind of his autobiography and is in many ways a most remarkable production. After leaving this book with him, I went to hear him the next day in the open meeting and my surprise can only be imagined when he gave us a talk on prarthana, prayer, which is indeed a favourite Sadhan with him, but which was in the present case suggested to him by the very first chapter of (जीवन-वेद) the Jeewan Veda. He had read it and even based his sermon on it, of course he treated the subject from his own point of view, but his appreciation of the other was visible throughout. He did a similar thing again the next day when he gave his talk on the Sense of Sin, which formed the second chapter of the book. An incident of this kind shows the magnanimity of his mind as nothing else can.

I believe very soon after this he left Rajkot, perhaps the next day, and when we went to see him off, there was a large crowd of people, all of whom were extremly sorry to part with him. After having bade him good-bye to them all amidst scenes of sorrow and pain, when his eyes fell on me while passing by me he said to me "We are carrying with us your booklets."

After having such experience with him, I must say that things of this kind are not done by ordinary men. I may also add that, taken all in all, Acharya Shri Jawaharlalji is a Sadhu, in the truest sense of the term.

कुछ वर्ष पहले जब आचार्य श्री जवाहरलालजी महाराज यहाँ विराज रहे थे, मुझे उनकी वक्तृताएं सुनने का अवसर प्राप्त हुआ था। निस्सन्देह उनका मुझ पर गहरा असर पड़ा। मुझे उन में एक ऐसी विशेषता मालूम पड़ी जो जैनों द्वारा व्याख्यान शब्द से कहे जाने वाले उपदेशों में प्रायः नहीं होती। आचार्य श्री के उपदेशों में जो बात आकर्षक और प्रभाव को पैदा करती है वह उन का कथनीय विषय नहीं किन्तु उसे जनता के सामने रखने की शैली है। वे उपदेश उन के मस्तिष्क से नहीं किन्तु उस हृदय से निकलते हैं जो श्रोतृसमाज के प्रति सहानुभूति और प्रेम से पूर्ण है। यह बात नहीं है कि उनका विषय महत्त्वपूर्ण और ऊँचे दर्जे का नहीं होता किन्तु प्रभाव का वास्तविक रहस्य उनकी शैली है। वे अपने धार्मिक जीवन के गहरे अनुभव के आधार पर बोलते हैं। इस कारण एक ऐसा वातावरण उत्पन्न कर देते हैं जो श्रोतृवर्ग के लिए बड़ा सहायक है।

उनके उपदेशों का सब से अधिक महत्व इस बात में है कि वे उन्हें प्रार्थनाओं के साथ प्रारम्भ करते हैं। उस के बाद प्रार्थनाओं के अर्थ तथा जीवन में प्रार्थना के स्थान पर छोटा सा भाषण देते हैं। यह बात उनके व्याख्यानों को एक दूसरे स्तर पर पहुँचा देती है। वे उस समय सच्चे अर्थ में धर्मोपदेशक बन जाते हैं। मैंने अपने बचपन से बहुत से जैन साधुओं के व्याख्यान सुने हैं किन्तु प्रार्थना को इतना महत्व देने वाला कोई नहीं मिला। जवाहरलाल जी महाराज के उपदेशों में यह बात नई जान डाल देती है। सारा वातावरण भक्ति में परिणत हो जाता है और जनता असली व्याख्यान को सुनने के लिए अधिक तैयार हो जाती है।

आप का व्याख्यान नीति और धर्म के ठोस उपदेशों से भरा होता है। वह सारा का सारा व्यावहारिक होता है। थोथी सैद्धान्तिक बातें उसमें कम रहती हैं। उपदेश ऐसा ही होना चाहिए विशेष रूप से ऐसी सभा में जहाँ सैकड़ों की संख्या में स्त्री, पुरुष, बालक, बालिकाएं आदि सभी प्रकार की जनता हो। ऐसी सभा में ऐसा व्याख्यान होना चाहिए जिसमें सभी के काम की बातें हों। श्री जवाहरलाल जी महाराज के उपदेश इस बात में कभी नहीं चूकते। उनके व्याख्यान विविध प्रकार के दृष्टान्तों से भरे होते हैं, जिन्हें वे जैन आगम तथा दूसरे ग्रन्थों के साथ साथ इतर सम्प्रदायों के धार्मिक ग्रन्थों तथा सामान्य जीवन से उद्धृत करते हैं। श्री जवाहरलाल जी महाराज भिन्न भिन्न विषयों की जिस रूप से चर्चा करते हैं उन से मालूम होता है कि दूसरे धर्मों के प्रति वे अत्यधिक सहनशील ही नहीं हैं किन्तु विध्यात्मक मित्रता तथा सम्मान का भाव रखते हैं। यह बात भी उन की विशेषता है और उनके आध्यात्मिक पद को ऊँचा करती है। जैन वाङ्मय के गहरे अध्ययन के साथ साथ गीता, उपनिषद् आदि भागवत सरीखे महान् ग्रन्थों से भी उन्हें महती प्रेरणा मिली है। बाइबिल और कुरान से भी वे अपरिचित नहीं है और उनसे भी आध्यात्मिक प्रेरणा लेने को तैयार हैं। इस बात के लिए भी जैन साधुओं में आप अपनी श्रेणी के एक ही हैं, विशेषतया जब हम उनके समय और आस पास के वातावरण को देखते हैं। उनमें जनता को प्रभावित करने की जो शक्ति है उसका एक कारण यह भी है कि वे संसार की सामयिक हलचल में पूर्ण जागरूक रहते हैं। वर्तमान राजनीतिक, आर्थिक, तथा सामाजिक समस्याओं से वे पूर्ण परिचित हैं। आधुनिक जनता को जो प्रलोभन और पाप घेरे हुए हैं वे उन्हें जानते हैं तथा उन्हें दूर करने के लिए निर्दोष परामर्श देते हैं। ये सभी बातें उनके उपदेशों को

साधुओं में भी ऊँचे पद को प्राप्त करने वालों के लिए तो यह और भी घातक है। पूर्वीय और श्चिमीय बहुत से साधुओं ने कहा है कि कंचन और कामिनी को छोड़ना आसान है किन्तु भिमान को छोड़ना कठिन है। अभिमान को छोड़ने के लिए हृदय में सच्ची नम्रता होनी ाहिए और इस की जड़ें आत्मा में गहरी उतरनी चाहिएं। मुझे यह कहते हुए हर्ष होता है कि ज्य श्री जवाहरलाल जी महाराज में यह नम्रता मुझे किसी हद तक मिली और इसी ने मेरे हृदय उनके प्रति सच्चे प्रेम और आदर को जन्म दिया। जैन, ब्राह्मण, क्रिश्चियन, हिन्दु आदि ातियों के धर्म में गहरे उतरे हुए बहुत से स्त्री और पुरुषों के मैंने दर्शन किए हैं, उन में जिन्होंने पने सच्चे साधु जीवन के द्वारा मुझ पर प्रभाव डाला है उन थोड़े से इने गिने महापुरुषों के ाथ श्री जवाहरलाल जी महाराज के लिए मेरे हृदय में स्थान है।

ऊपर बताई गई विशेषताओं के अतिरिक्त एक और विशेषता है जो कि कार्य और ारण दोनों रूप से विभक्त है। वह है उनकी बालक-सी सरलता। यह मानवजीवन की सबसे ड़ी विशेषताओं में से है। ईसामसीह का आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए जब कुछ माताएँ अपने च्चों को लेकर उनके पास आईं तो उनके शिष्यों ने बालकों को पास न आने दिया। वे सोचने लगे कि इससे ईसामसीह का माहात्म्य घट जायगा। यह देख कर ईसामसीह ने अपने शिष्यों से कहा—बच्चों को आने दो। इन्हीं के द्वारा स्वर्ग का साम्राज्य बनता है।" भोलापन, आश्चर्यान्वित बुद्धि, ग्रहणशीलता आदि बालकों के गुण हैं। इनमें से कुछ मुझे जवाहरलालजी महाराज में भी प्राप्त हुए। वे इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि ज्ञान अनन्त है और वह सभी दिशाओं से प्राप्त किया जा सकता है, बशर्ते कि मूर्खतापूर्ण धर्मान्धता के द्वारा व्यक्ति अपनी आत्मा के द्वार बन्द न करे। आत्मा का यह खुलापन, दूसरे व्यक्तियों के दृष्टिकोण को समझने, उनका आदर करने तथा उनमें रहे हुए अच्छेपन को अपनाने की तत्परता पूज्य श्री में मुझे स्पष्ट प्रतीत हुई है।

उनके साथ की गई बातचीत ही नहीं किन्तु एक घटना के रूप में मेरे पास इस बात के लिए ठोस प्रमाण है। यह घटना वास्तव में उल्लेखनीय है—

अन्तिम विदा से पहले मैंने उन्हें दो छोटी-छोटी पुस्तकें दीं। उनमें से एक का नाम था 'जीवन वेद' जो कि बंगाली धर्मोपदेशक ब्रह्मर्षि केशवचन्द्र सेन द्वारा लिखी गई थी। यह एक प्रकार से उनकी आत्म-कथा है और कई बातों के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण पुस्तक है। वह किताब उनके पास छोड़ने के बाद दूसरे दिन मैं उनका जाहिर व्याख्यान सुनने गया। जब उन्होंने प्रार्थना, जिसे वे अपने जीवन का साधन मानते हैं, पर व्याख्यान दिया तो मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उसमें 'जीवन वेद' के पहले अध्याय की बहुत सी बातें थीं। उन्होंने उसे पढ़ा था और अपने उपदेश को उसी के आधार पर दिया था। निःसंदेह उन्होंने विषय की चर्चा अपने दृष्टिकोण के अनुसार ही की थी किन्तु 'जीवन वेद' के प्रति उनका आदर सारे व्याख्यान में प्रतीत होता था। यही बात दूसरे दिन भी हुई जब उन्होंने 'पाप की वृद्धि' पर व्याख्यान दिया। यह पुस्तक का दूसरा अध्याय था। यह घटना उनके हृदय की विशालता को प्रकट करती है, जिसके बिना यह हो ही नहीं सकता।

इस घटना के बाद बहुत शीघ्र सम्भवतया दूसरे ही दिन उन्होंने राजकोट छोड़ दिया।

जब हम उन्हें पहुँचाने गये तो वहाँ बहुत भीड़ इकट्ठी हुई थी। उनके वियोग से सभी बहुत दुखी थे। शोक और दुःख के उस दृश्य में सब को अन्तिम मंगलाचरण सुनाने के बाद मेरे पा से निकलते समय जब उनकी दृष्टि मुझ पर पड़ी तो कहा—आपकी पुस्तकें हम अपने सा ले जा रहे हैं।

उनके विषय में इस प्रकार का अनुभव प्राप्त करके मैं कहूँगा कि ऐसी बातें साधार व्यक्ति नहीं कर सकता। सभी बातों को लिया जाय तो हमें कहना पड़ेगा कि श्री जवाहरलालज महाराज साधु शब्द के सच्चे अर्थ में साधु हैं।

श्रद्धांजलि

बा० मस्तराम जैनी, एम० ए० एल० एल० बी० अमृतसर

51

It was in the summer of, most probably, 1932, that I had Darshans of His Holiness at Delhi Baradari, Chandni Chowk, where I had gone, with the Punjab batch, to attend a meeting of the All India Sthanakwasi Sadhu Sammelan, which was held a year after at Ajmer. Before I had heard a good deal about the austerity learning and diction of His Holiness discourses, which made an impression on the hearts of his audience, At Delhi what struck me the most was the disciplined and spontaneous divotion of the Shrawak Sangh that he enjoyed, as over a thousand people were sitting spell bound, while he was delivering his discourse in the morning, in a lucid manner in which he was placing, will find and intricate philosophical principles before his audience. It was really a treat to hear him, and I consider myself lucky indeed that I was afforded an opportunity of being present there. In that discourse I remember what a fine tribute he paid to his late-Holi ness Acharya Shiromani Shri Pujya Sohanlalji Maharaj for his piety, learning and austerity; and who can deny the worth of such a tribute when paid by one great man to another equally great, for merit and worth alone can recognise and apperciate what merit and worth means and where it lies.

Just on the eve of the Ajmer Sadhu Sammelen, at Beawar, I had his darshan again along with Rai Sahib Tekchand ji and lala Rattanchandji of Amritsar. As it is a open secret, he could not

easily reconcile himself with the holding of the Sammelan and the final Sanction attaching to its decisions, till some preliminary doubts were resolved and removed. But once this was over, he was a whole hearted supporter of the Sammelan. As soon as we entered, he was having a talk with the late Seth Gadhmalji Lodha, of Ajmer. He immediately had a talk with us regarding the sammelan, and what impressed me was the ready and quick manner in which he was catching our points, and vast and comprehensive out look that he was bringing to bear on the problems discussed, and at once appreciating the point of view other than his own. I had so far the experience of people leading a life of specialisation seclusion having a great natural difficulty to understand other points of view, what to say of appreciating them . This meeting was really a pleasant and welcome surprise for me.

Then finally his opening speech at the time of the open session of the Ajmer Sadhu Sammelan by itself an event of great historical importance was the most important and impressive event of the occasion, and I noticed what command he had over the hearts of the largest member of men and women present in the whole concourse, and the utmost devotion that was shown to him. It is not wonder that with this devotion and discipline on the one side, and the deep insight, knowledge, piety, austerity, lofty idealism, save and well balanced views and a comprehensive out look on the other is a combination, which, though luckily, is a very rare one indeed, but is nevertheless capable of producing results most fruitful and abiding.

I along with others, join in paying my humble tribute to the qualities of head and heart of His Holiness and pray that he be spared for more time, in full possession of his physical and mental powers, to guide the destinies of the Jain Samaj.

सम्भवतया १९३२ की गरमी में जब पूज्यश्री चांदनी चौक देहली की बिरादरी में ठहरे हुए थे, मैंने आप के दर्शन किए। मैं उस समय अखिल भारतीय स्थानकवासी साधु सम्मेलन की एक बैठक में सम्मिलित होने के लिए पंजाबी दल के साथ गया था। सम्मेलन का अधिवेशन एक साल बाद अजमेर में हुआ था। पूज्यश्री के कठोर संयम, विद्वत्ता और श्रोताओं के हृदय पर स्थायी प्रभाव डालने वाली आप की भाषण-शैली के विषय में मैंने पहले सुन रखा था। देहली

में जिस बात ने मुझे सब से अधिक प्रभावित किया वह थी श्रावक संघ की आपके प्रति स्वाभाविक तथा अनुशासनपूर्ण भक्ति। प्रातः काल जिस समय आप भाषण दे रहे थे, हजारों व्यक्ति मंत्र-मुग्ध से बैठे थे। अत्यन्त सूक्ष्म तथा उलझे हुए दार्शनिक सिद्धान्तों को श्रोताओं के सामने आप बड़ी प्रांजल भाषा और सुगम शैली में रख रहे थे। वास्तव में आपका भाषण सुनना एक दुर्लभ वस्तु है। उस समय उपस्थित होने का अवसर मिलने के लिए मैं अपने को भाग्यशाली मानता हूँ। मुझे स्मरण है कि उस समय स्वर्गस्थ आचार्यशिरोमणि पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज के प्रति उनकी पवित्रता, विद्वत्ता, संयम के लिए श्रद्धांजलि समर्पित की थी। जब एक महापुरुष अपने ही समान दूसरे के प्रति श्रद्धांजलि समर्पित करता है तो उसके महत्त्व के विषय में किसी को संदेह नहीं हो सकता। क्योंकि गुण और योग्यता किसे कहते हैं और वे कहाँ रहते है, इस बात की पहिचान और कदर गुण और योग्यता ही कर सकते हैं।

अजमेर साधु-सम्मेलन के कुछ ही पहले मैंने ब्यावर में आप के फिर दर्शन किए। उस समय रायसाहेब लाला टेकचन्द जी और अमृतसर के लाला रतनचन्द जी मेरे साथ थे। यह एक सर्वविदित रहस्य है कि पूज्य श्री साधु-सम्मेलन करने और उसके निश्चयों को मानने के लिए तब तक तैयार नहीं थे जब तक कि उन की प्रारम्भिक शङ्काएं समाधान द्वारा दूर न कर दी गईं। किन्तु एक बार शङ्काएं दूर होने पर वे सम्मेलन का हार्दिक समर्थन करने लगे। जिस समय हम अन्दर गए, आप स्व० सेठ गाढ़मलजी लोढ़ा अजमेर से बात कर रहे थे। आपने तुरन्त हमारे साथ सम्मेलन के विषय में बातचीत आरम्भ कर दी। जिस शीघ्रता और तत्परता के साथ वे हमारे विचारों को समझ रहे थे, विवादग्रस्त समस्याओं के लिए वे जिस विशाल तथा व्यापक दृष्टिकोण को अपना रहे थे और विरोधी दृष्टिकोणों का जिस प्रकार स्वागत कर रहे थे, इन सब का मुझ पर बहुत असर पड़ा। मुझे अब ऐसे व्यक्तियों का अनुभव हुआ था जो या तो अपने विचारों को बहुत महत्त्व देते हैं या सर्वथा अलग हो जाते हैं। दूसरे के दृष्टिकोण को समझना भी उन के लिए स्वभावतः कठिन होता है उस का आदर करना तो दूर की बात है। यह मुलाकात मेरे लिए वास्तव में आनन्द और आदरणीय आश्चर्य से भरी थी।

अजमेर में साधुसम्मेलन का खुला अधिवेशन हुआ। यह बात स्वयं अपना ऐतिहासिक महत्त्व रखती है। किन्तु उस में भी सब से अधिक महत्त्वपूर्ण और प्रभावशाली घटना थी सम्मेलन का प्रारम्भ करते समय दिया गया आपका भाषण। सम्मेलन में बहुत बड़ी जनसंख्या थी। सभा स्त्री और पुरुषों के हृदय पर आपका प्रभुत्व और आपके प्रति सभी की अत्यन्त भक्ति मुझे उसी समय देखने को मिली। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि एक ओर इस प्रकार की भक्ति और अनुशासन तथा दूसरी ओर गम्भीर सूक्ष्म दृष्टि, ज्ञान, पवित्रता, तपस्या, उच्च आदर्श, सुसंगत और समतुल विचार तथा व्यापक दृष्टिकोण एक ऐसा मेल है जो भाग्य से बहुत ही विरले महापुरुषों में उपलब्ध होता है। ऐसा मेल बहुत ही लाभदायक तथा स्थायी कार्य कर सकता है।

पूज्यश्री के हृदय और मस्तिष्क की विशेषताओं के लिए दूसरों के साथ मैं भी अपनी श्रद्धांजलि समर्पित करता हूँ और प्रार्थना करता हूँ कि वे अपनी शारीरिक मानसिक शक्तियों को अक्षुण्ण रखते हुए चिरकाल तक जीवित रहें और जैन समाज के सिद्धान्तों के लिए मार्गप्रदर्शन करते रहें।

जैनसमाजनुं जवाहर

५२—(ले० प्रो० केशवलाल हिंमतराय कामदार एम० ए० बड़ोदा)

मैं अनेक जैन साधु साध्वीओनो समागम कर्यो छे, तेमां श्री जवाहरलाल जी महाराज ने हुँ उच्च कोटिमां मूकुं छुं। मने स्थानकवासी, मूर्तिपूजक अने दिगम्बरी साधुओनो थोड़ो घणो परिचय छे। तेमनी पासे थी में अनेक वार बोध लीधो छे। तेमां ना घणाओ साथे मारो संपर्क गाढ़ छे एम पण हुं कही शकुं। ए बधा मंडलमां मने श्री जवाहरलाल जी महाराज उच्च कोटिना साधु लाग्या छे।

बोटाद मुकामे अमे त्रण चार दिवस रोकाया हता। त्यारे मने पूज्य महाराजनां व्याख्यानो सांभलवानो लाभ मल्यो हतो। महाराज श्री व्याख्यान शरू करता ते अगाड़ी हमेशां तेओ एकाद तीर्थंकरनुं स्तवन करता हता। ए स्तवन अत्यन्त भाववाही हतुं। ते ते स्तवन नो अर्थ तेओ अमने सुन्दर रीते समजावता हता। वृद्ध उमरे पण तेमनो आवाज सैंकड़ो नर नारीओना समुदाय ने छेड़े सुधी जई शकतो। महाराज श्री नां व्याख्यानो श्रोता जनोना स्वभाव ने अनुकूल पड़े तेवा हतां। तेमां न्याय, विद्वत्ता, करुणारस, बोध, लोककथा, फिलसुफी, वगेरे बधां तत्वो आवतां। नरो फिलसुफी सामान्य श्रोता जनोने स्पर्शी शकती नथी। नर्यो न्याय सामान्य श्रोता-जनोना भगजमां बेसी शकतो नथी। नरी विद्वत्ता लूखी लागे छे। महाराजश्रीना व्याख्यानो मां बधा तत्वो नो समावेश थतो हतो ते थी अमने तेमां घणो रस पडतो अने अमारा ऊपर तेनी सचोट असर पड़ती। एवां तेमना व्याख्यानो ना संग्रहो राजकोट निवासी तेमना प्रशंसको तरफ थी अने तेमां पण मारा मित्र भाई श्री चुनीलाल नाग जी वोराना प्रयास थी बहार पड़ेला छे, जे वाचकोने मली शके छे। अनेक कुटुम्बो आ संग्रहोने वाचीने चरित्रशील अने विनय-शील बन्यां छे।

महाराज श्री जवाहरलाल जी वृद्ध उमरे पण नवीन विचारो धरावे छे। एटले के तेओ सर्व स्वभावना समुदाय ने अनुकूल नोवड्या छे। तेओ सम्प्रदाये स्थानकवासी साधु छे, पण तेमना मां कशो दुराग्रह नथी। अलबत्त, स्थानकवासी संप्रदायनी साधुत्वभावना ने अवलंबी ने तेओ रहे छे, ते खरुं छे। तेओ बीजा मत मतान्तर प्रत्ये उदार दृष्टि धरावे छे। शास्त्रो नो अर्थ तेओ नवीन दृष्टि ने अनुकूल पड़े तेवी रीते करी शके छे। तेना पालन मां तेओ कशी शिथिलता चलावता नथी। पोताना प्रशंसको द्रव्य संग्रह करी जैन समाज नी व्यावहारिक उन्नतिमां तेने उपयोग करे ते प्रत्ये तेओ एकदम उदासीनता सेवे छे। स्थानकवासी संप्रदायनी संघव्यवस्था-मां जैन दृष्टि सचवाई रहे तेटलुं तेओ इच्छे छे। तेमने पक्षापक्षी जरा पण गमती नथी, जो के स्थानकवासी दृष्टि थी कोई साधु नुं वर्तन विरुद्ध जाय तो ते तेमने अनुकूल आवतुं नथी।

महाराज श्री जवाहरलालजीनो पोतानो शिष्यसमूह मोटो छे। ते समूहमां योग्य व्यक्तिओ ने तेओ अनुकूल शिक्षण आपवा हमेशा तत्परता धरावता रह्या छे। तेम ना शिष्यो मां केटलाएकोनुं संस्कृत साहित्यनुं ज्ञान मने उच्चकोटिनुं लागेलुं। वडोदरा मुकामे तेओ पधार्या हता त्यारे तेमना एक शिष्य ने हुं प्राच्य विद्यालयांम लई गएलो, त्यारे मने तेनो, खास अनुभव थएलो।

पूज्य श्री जवाहरलाल जी ना चातुर्मासो बधा जैन समुदाय ने अवलंबे छे। तेओ एकज देशमां के विभागमां रह्या नथी। तेमणे जैनोने मोटे भागे बोध्या छे। पोते जैन साधु छे ते वात तेओ भूली जता नथी। जैन साधुओ जैनेतर समाज ने बोधे ते वरजनीय छे, पण केटलीक वार कोइ कोइ जैन साधुओ फकत जैनेतर समाजनेज सेवे छे अने जैन वेश धारे छे छतां जैनेतर दृष्टि थी जीवन चर्चा करे छे अने लोकोनो प्रेम मेलववा प्रयत्न करे छे। श्री जवाहरलाल जी महाराज आवा विचित्र स्वभाव थी दूर रह्या छे, अने छतां तेओ जैनोने जेटला प्रिय छे तेटलाज जैनेतरो ने पण प्रिय छे।

महाराजश्री के साथ कुछ घड़ियां

५३—कुमारी सविता बेन मणिलाल पारेख, बी० ए० राजकोट C. S.

In the year 1939-Maharajshri Jawaharlalji with his disciples benefited the Rojkot public by his arrival in Rajkot. Rajkot was thus made a sacred place.

But this fact I realized only a few days before the Maharajshri's departure from Rajkot to other places; and so far I was quite unfortunate because I could not take full advantage of the religious knowledge of the holy-minded Saint.

I was made to respect him and was attracted to talk to him by his instructions in holy knowledge to the Rajkot public and especially the Jains. I heard him in Hindi too and that made me pay my respects to him more and more.

First I shall deal with his (व्याख्यान) "Vyakhyans" and the impressions they left upon my mind.

The thing which impressed me the most is that he is a nationalist saint. He aspires after the 'Kalyan' of Bharat and Bhartiya. He asks and preaches the people to follow Gandhiji, the great national leader of India, in Ahimsa and Khadi especially. He gives much importance to Gandhiji's constructive programme. His meetings, here, in Rojkot, with Gandhiji and Vallabhbhai Patel shows that he is really a nationalist Saint. That he is a nationalist Saint is a truism; but at the same time he can never even think of injuring the Britishers' interests, which show his greatness. Britishers and other nations are in no way his enemies; they are brethern to him and he aspires after their 'Kalyan' too.

Another great thing in him is his philosophy. Much can be said about it. Prayer and the Prayed one are the most impor-

अहिंसा और खादी के लिए महान् राष्ट्रीय नेता गांधी जी का अनुसरण करने के लिए कहते तथा उपदेश भी देते हैं। वे गांधी जी के रचनात्मक कार्यक्रम को बहुत महत्व देते हैं। राजको में गांधी जी और वल्लभ भाई पटेल के साथ उन की जो मुलाकात हुई थी, उस से स्पष्ट मालू पड़ता है कि वे राष्ट्रीय सन्त हैं। राष्ट्रीय सन्त होने के साथ साथ यह भी सत्य है कि वे ब्रिटे निवासियों के स्वार्थों पर आघात करने की कभी इच्छा भी नहीं करते। यह बात उन की महानत को प्रकट करती है। ब्रिटिश निवासी या दूसरे राष्ट्र उन के शत्रु नहीं हैं। वे उन के भाई हैं, औ वे उन के भी कल्याण की कामना करते हैं।

उन में दूसरी बड़ी बात उन के दार्शनिक विचार हैं। इस विषय में बहुत कुछ कहा ज सकता है। उन के दार्शनिक विचारों में प्रार्थना और जिस की प्रार्थना की जाय, ये दोनों महत्व पूर्ण तत्त्व हैं। ये वह हैं जिन के चारों तरफ उन के विचार घूमते हैं। वे कहते हैं कि प्रार्थना निष्काम होनी चाहिए जो कि गीता का सब से बड़ा सिद्धान्त है। वे कहते हैं कि प्रार्थना सब साधारण के कल्याणार्थ होनी चाहिए। मन की शान्ति को वे बहुत महत्व देते हैं और कहते कि प्रार्थना ही एक ऐसा मार्ग है जो हमारे जीवन को आनन्दमय और शान्तिपूर्ण बना सकता है

थोड़ी सी घड़ियाँ ही मैंने उनके साथ बिताईं। उन से मालूम पड़ा कि वे धर्म की आत्मा हैं

उन की दयालुता जनता को उन की ओर विशेष आकृष्ट करती है। वे सभी के सा समान वर्ताव रखते हैं। यद्यपि मैं उस समय बहुत छोटी थी और बिलकुल बच्ची थी फिर भी मे साथ उन का वर्ताव ऐसा ही था जैसा कि वे बड़े कहे जाने वाले व्यक्तियों से करते थे। वे बच्च के साथ बच्चे बन जाते हैं और इस प्रकार उन्हें प्रसन्न कर देते हैं। इस के साथ यह भी कहना पड़ेगा कि वे इतने प्रभावशाली हैं कि बड़े बड़े व्यक्तियों को भी प्रभावित कर सकते हैं।

भिन्न भिन्न प्रकार के व्यक्तियों के साथ उन का जो वर्ताव है उस से वे समाजवादी मालू पड़ते हैं। हम उन्हें आध्यात्मिक समाजवादी कह सकते हैं। किसी बड़े आदमी के आने पर भी बालक से बातचीत करना बन्द नहीं करते।

मैं गांधी जी के घनिष्ठ परिचय में नहीं आई हूँ किन्तु उन के विषय में मैं जितना जानती हूं उसके आधार से कह सकती हूँ कि महाराज श्री जवाहरलाल जी और महात्मा गांधी जी बहुत सी बातों में समान हैं। वे जैन समाज के गांधी हैं।

अनुभवोद्‌गार

५४—(ले० श्री जयचन्द व्हेचर झवेरी वकील, जूनागढ़)

टुंक वखत मां तेओ श्रीए मारा अन्तःकरण पर जे सुन्दर छाप पाडी छे अने तेओ श्री माटे मने जे मान तथा प्रेम अने सद्भावना प्रकट्यां छे तेनो खरो चितार शब्दो द्वारा हुं आपी शकुं तेम नथी। परन्तु तेओ श्री प्रत्येनी मारी सद्भावना व्यक्त करी आत्मसन्तोष मेळववा खातर हुं मारा अनुभवोद्‌गार अति संक्षेप मां व्यक्त करुं छुं।

श्रोत्रिय अने ब्रह्मनिष्ठ सद्‌गुरु

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः, गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुरेव परं ब्रह्म, तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

गुरु ब्रह्म रूप छे, गुरु विष्णु रूप छे, गुरु महेश्वर (महादेव) रूप छे, गुरुराज परब्रह्म छे, माटे श्री गुरु ने नमस्कार हो ।

गुरु गोविन्द दोनु' खड़े, किसके लागू' पाय ।
बलिहारी गुरुदेव की, गोविन्द दियो बताय ॥

पूज्यपाद महाराज श्री जैनधर्म ना एक महान् आचार्य होवा उपरान्त अन्य सम्प्रदाय वालाओ ने पण पोताना सदुपदेश द्वारा धर्म नु' रूड़' रहस्य समजावी पावन करे छे । अने आथी करी अन्य सम्प्रदाय वाला घणा माणसो पण तेओ श्री प्रत्ये गुरु-भावना राखी तेओ श्री ने परम वंदनीय माने छे । तेओ श्री सद्‌गुरु होवा साथे श्रोत्रिय (शास्त्र विशारद) अने ब्रह्मनिष्ठ (परमात्मा-परायण) छे । जैन समाज ने आवा सद्‌गुरु सहेजे प्राप्त छे । तेमने हुं परमभाग्यशाली मानु' छु' ।

प्रखर वक्ता

पूज्यपाद महाराज श्री वयोवृद्ध अने अति प्रभावशाली छे । शान्त, गंभीर, अने सौम्य मुद्रा वाला, प्रसन्न वदन छे । आथी करी पोताना व्याख्यान थी श्रोता पर सारी छाप पाड़े छे । तेओ श्री नी व्याख्यान करवानी पद्धति, हलक अने वाक्यपटुता एवां तो कोई अजब छे के व्याख्यान वखते श्रोताओ ने तन्मय बनावी दे छे । तेओश्रीनी मातृभाषा मारवाड़ी होवा छतां गुजराती भाषा पर पण सारो काबू धरावे छे ।

समर्थ ज्ञानी

महाराजश्रीनु' ज्ञान पण कोई अजवज छे । तेओश्रीना व्याख्यान मां हरवख्त प्रसंग ने अनुसरतां हृदयस्पर्शी सुन्दर दृष्टान्तो आवे छे । आथी तेओश्रीनु' बहु श्रुतपणु' जणाई आवे छे । व्यावहारिक अने शास्त्रीय अने सुन्दर आख्यायिकाओथी श्रोताओनां मन रंजन करी शके छे । एटलु' ज नहिं पण कोई दिव्य शक्ति थी श्रोताओ ने पोता प्रत्ये गुरु भावना वालां बनावी तेओ श्री ना वधु वधु व्याख्यान सांभलवा सौ कोई ने परम उत्सुक बनावे छे ।

पूर्ण-त्यागी

कोई कविए कह्यु' छे के—

"त्याग अने वैराग्य विण ज्ञान न शोभे लगार"

गमे तेवु' ज्ञान अने चाहे तेवु' वक्तृत्व होय छतां पण जो त्याग के वैराग्यवृत्ति न होय तो ज्ञान के वक्तृत्व शोभतु' नथी । महाराज श्री तो 'आचारः प्रथमो धर्मः'माननार छे अने कहे छे ते सहस्र गणु' अनुसरणा करी लोकोने पोताना दाखला थी सन्मार्गे वालनारा छे । पूज्यपाद महाराज श्री ने मारा स्नेही वकील बंधु जेठालाल भाई प्रागजी रूपाणीए एक नानु' सरखु' उपवस्त्र व्होरी पावन करवा विनंती करेली । परन्तु पोताने हाल तो जरूर नथी एम प्रसन्न वदने कही ते उप-वस्त्र पण लीधेलु' नहिं ।

में पोते एक पुस्तक वांचवा माटे महाराज श्री ने आपेलु' । विदाय थती वखते ते पुस्तक मने पाछु' आपवा मांड्यु' त्यारे मारा थी सहेज भावे बोलायु' के आप आ पुस्तक राखो । जवाब

आं जणाव्युं के अमारे अमारो भार मुसाफरी मां जातेज उपाडवो जोइए एटले विना कारणे आ भार लेवो नथी। पुस्तक मने पाछुं आपेलुं।

महाराज श्री फरतां फरतां एक वखत पूज्यपाद महाराज श्रीनाथ शर्म्मा ना विलक्षाना आनन्दाश्रम मां पधारेला। ज्यां तेमने दूध के कई फलाहार व्होरवा विनती करवा मां आवेली। जेना जवाब मां तेओ श्री ए जणावेलुं के नियत स्थल विना तेमज नियत समय विना पोता थी आहार पाणी लई शकाय नहिं।

कहो आवा अद्भुत त्याग अने वैराग्यशील महात्मा ने कोण पोतानां मस्तक न नमावे! आचार अने विचार नी एकता दाखवनार संत महानुभाव नो ज्वलन्त दाखलो महाराजश्री बतावी आपे छे। अने कहेणी रहेणा एक बतावनार विरला पैकी ना एक छे।

कहेणी मिसरी खांड है, करणी कच्चा लोह।
कहेणी रहेणी एक होय, ऐसा विरला कोय॥

अति नियमित अने सतत उद्योगी

महाराजश्री समयपालनमां पण पूर्ण आग्रही छे। सवारथी सांज सुधीना तमाम नियत कर्मो शरीर वृद्ध छतां नियमसर अने समयसर करवा आग्रह राखी करे छे अने अति नियमितता जालवे छे। तेमज क्षण पण नकामी जवा देता नथी। स्वाध्याय पण कर्या करे छे अने शिष्यो ने अध्यापन पण कराव्या करे छे।

मनुष्य बनावनार

व्यवहार सुधर्या विना परमार्थ सुधरतो नथी। महाराज श्री ना उपदेशनुं मुख्य लक्ष्य मनुष्यो ने मनुष्य बनाववानुं छे। एटले मनुष्यो पोतानो व्यवहार सुधारी परमार्थ ने पंथे चले ए उद्देश्य ने प्रधानपणे जालवी उपदेश आपे छे।

'धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः'

आकृतिए मनुष्य रूपे देखाता छतां जो धर्म थी रहित होय तो पशु समान गणाय। ब्राह्मण कुल मां जन्मवाथी नहिं पण उपनयन संस्कार थी ब्राह्मण थवाय छे।

जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद् द्विज उच्यते।

मनुष्य योनि मां जन्म ग्रहण करवा थी नहि पण मनुष्य ना गुण ग्रहण करनार मनुष्य बने छे। महाराज श्री असत्य, कुसम्प, रागद्वेष, ईर्ष्या, काम, क्रोध, लोभ, मोह, विश्वासघात, दगो, फटको, चौर वृत्ति वगेरा पशु भावो त्यजी सत्य, सम्प वगैरा सद्‌गुणो पालवा उपदेश आपी धर्म नुं खरुं रहस्य समजावी धर्म भावना जाग्रत करावी, पशुवृत्ति तजावी मनुष्याकारे देखाता मनुष्यो ने खरां मनुष्य एटले धर्म संस्कार वाला बनावे छे।

समाजसुधारक

महाराज श्री दुर्व्यसन वजवा अने समाजना सडा काढ़वा नो पण सद्‌बोध आप्या करे छे। …धा, तमाकु, बीडी, भांग, दारु, मद्य, मांस, परस्त्री गमन, जुआ, चोरी आदि अनेक दुर्व्यसनो

तजवा अने रोवुं कूटवुं, छोटा नात वरा, बाललग्न, वृद्धलग्न, कन्या विक्रय वगेरा अनेक कढंगा रीति रिवाजो तजवा व्याख्यान मां आग्रह पूर्वक भलामण करे छे अने चमत्कारी ढंगे प्रतिज्ञा करावे छे ।

सर्वधर्मसमभाव

महाराजश्री श्रेय नो सर्व शास्त्र मां सामान्य रीते प्रतिपादन करेल पंथ एटले सामान्य धर्म नां मूल तत्त्वो बहुज युक्ति प्रयुक्ति थी समजावी बधा धर्मनी एकता प्रतिपादन करे छे। अने 'राम कहो रहेमान कहो' एवा वाक्य थी शुरु थतुं पद अजब प्रेमाई भावे ललकारी बधा धर्मनी एकता सिद्ध करी विश्व बंधुत्व नो पाठ भणावी अन्य धर्म पंथ के सम्प्रदाय वाला ने पोता प्रत्ये मान, प्रेम अने गुरु भावना वालां करी दे छे।

कुटुम्ब धर्मे वैष्णव होवा छतां जैन धर्म प्रत्ये मने मान तथा प्रेम तो हतां ज, परन्तु महाराजश्री ना सत्समागम पछी तेमां घणो वधारो थयो छे।

समाजसुधारक अने राष्ट्रप्रेमी

५५—(ले० श्री जटाशंकर माणेकलाल मेहता, मंत्री जैन युवक संघ राजकोट)

प्रथम परिचयः—स्थानकवासी जैन कॉन्फरंसना बीकानेर नी पासेना भीनासर नामना गामडा मां पूज्य श्री जवाहरलाल जी महाराज विराजता हता। तेमना दर्शनार्थे हुं दर रोज सवार-मां जतो अने तेमना व्याख्यान नो लाभ मेलवतो. आ व्याख्यानो मां में पहेली ज वखत जैन साधु ने सचोट रीते अने धर्मशास्त्रो नां अनुमोदनो टांकी ने सामाजिक सुधारणा नो उपदेश आपता जोया। एमनो उपदेश मुख्यत्वे वरविक्रय, कन्या विक्रय नी रूढीनो विरोध, व्यापार धंधा नी प्रामा-णिकता, बाललग्न सामे विरोध, रेशम ना उपयोग सामे सख्त विरोध, अस्पृश्यता निवारण, सादुं जीवन, खर्चाल न्यात वरा अने सामाजिक प्रसंगों मां सुधारा नी आवश्यकता वगेरे सम्बन्ध मां हतो. तेओ श्री एम पण कहेता 'ज्यां सुधी मनुष्य मानव धर्म समज्यो नथी अने एनुं सामाजिक जीवन शुद्ध नथी, त्यां सुधी आध्यात्मिक जीवन गालववानो ते अधिकारी थतो नथी;

आ सांभली मने संतोष थयो, तेमां पण खास करी ने पूज्य महाराज श्री आ सामाजिक सुधारणा नी आवश्यकता पर धर्मशास्त्र नी छाप मारता अने 'ज्यां सुधी माणस मां ए प्रकार ना दोष रह्या होय त्यां सुधी ए जैन कहेवा ने लायक नथी' एवुं मन्तव्य स्पष्ट रीते जाहेर करता, ते सांभली ने मने वधु आनन्द थयो। आ महा पुरुषना दर्शन थी मारी जात ने कृतकृत्य थयेली मानतो, अने जे आशय थी हुं आटले दूर सुधी घसडाई आव्यो हतो, ते एक नहिं तो बीजे प्रकारे परिपूर्ण थयेलो जोइने मारुं मन तृप्त थयुं।

बीजी मुलाकात—आ बात ने आठ नव वर्ष वीती गया। अमे काठियावाड जैन युवक परिषद् नुं प्रथम अधिवेशन बोलववानो निर्णय कर्यो हतो. आज अरसा मा पूज्य श्री नुं स्वागत करवा हुं अने मारा मित्रो वढवाण गया. जवा मां अमारो ए पण आशय हतो के परिषद् ना अधिवेशन वखते पूज्य श्री ना विचारो थी अमने अमारा काम मां सहायता मलशे के विरोध।

विचारोनी उदारता

अमे महाराज श्री नी मुलाकात लीधी, अनेक सामाजिक प्रश्नो नी मुक्त रीते चर्चा करी.

एमना विचारो अमने बधाने गम्या. जो के विधवा विवाह अने लग्न विच्छेद ना विचारो सामे एमनो विरोध हतो। ते तेमणे स्पष्ट रीते जाहेर कर्यो। परन्तु तेओ श्री एकंदरे अमारी प्रवृत्तिओ थी खुश थया हता। अने परिषद् ना अधिवेशन ने आवकार आप्यो हतो। आ तेमना विचारो नी उदारता अने खेलदिल स्वभाव नो नमूनो हतो।

अधिवेशन वखते नवी गप उड़ी के पूज्य महाराज श्री नो आ अधिवेशन सामे विरोध छे। तरत अमे एमनी सेवा मां पहोंच्या अने हकीकत सांभली ने एमने खरेखर नवाई लागी। बीजी सवारे व्याख्यान मां तेमणे जाहेर कर्युं के 'जुवान वर्ग ना अमुक उद्दाम विचारो साथे हुं सहमत न होवा छतां नवजुवानो नी प्रवृत्तिओ अने एमना विचारो जाणी ने मने आनन्द थयो छे। एमनी परिषद् सामे मारे कोई जातनो विरोध नथी। जेमने एमना विचार भूल भरेला लागता होय, तेमनी फरज परिषद् मां हाजरी आपी एमनी भूल दर्शाववानी अने पोतानुं मंतव्य रजु करवानी छे।

राष्ट्रीय प्रेम—

मारा परिचित एक बहेन ने हुं घणा समय थी खादी पहेरवा समजावी रह्यो हतो पण हुं सफल न थयो। परन्तु आचार्य महाराज ना उपदेश थी अने खादी मां अहिंसा नुं पालन होवानुं तेओ श्रीए कारण दर्शाव्या थी आ बहेने आजीवन खादी परिधान नुं व्रत अंगीकार कर्युं हतुं। राष्ट्रीय भावना मां महाराज श्री नी प्रगतिशीलता में राजकोट सत्याग्रह नी लड़त वखते निहाली हती। जुगार विरोधक लड़त मां जेल जई आव्या पछी पूज्य महाराज श्रीए मने एमनी समक्ष बोलावी ने अभिनंदन आप्यां हतां।

राजकोट सत्याग्रह वखते जेल मां पण मने समचार मल्या हता के आ प्रजाकीय लड़त प्रत्ये पूज्य महाराज श्री नी सहानुभूति छे। अने तेओ श्री जोरशोर थी खादी प्रचार अने स्वदेशी नी भावनाने उत्तेजन आपी रह्या छे। लड़त चालु होवा थी आ मंथनकाले संघ जमण न करवा तेमणे आगेवानो ने आपेली सलाह सफल निवडी हती।

समाधान थतां राजद्वारी केदीओ ने मुक्त करवा मां आव्या। तेमनो सरघस ज्यारे पूज्य महाराज श्री ना निवासस्थान पासे थी पसार थतुं हतुं त्यारे महाराज श्री बहार पधार्या, जेल गएला सत्याग्रहीओ नुं सन्मान कर्युं अने प्रजा ने अंतर ना आशीर्वाद आप्या। आ दृश्ये मारा हृदय ऊपर वणी मोटी असर करी हती।

महात्मा जी साथे मुलाकात—

राजकोट मां पूज्य महात्मा गांधी जी नुं तेमना काका श्री खुशालचंद भाई नी मांदगी ने कारणे पधारवुं थयुं। ते वखते माहात्मा जी अने पू० आचार्य महाराज नी मुलाकात नो प्रसंग खरे-खर हृदयंगम हतो। महाराज श्री ने म० गांधी जी अने तेमना सिद्धान्तो प्रत्ये घणुं ऊंचुं मान हतुं। ए हुं आ मुलाकात वखते ज जाणी शक्यो।

आज नो आपणे साधु समाज पूज्य श्री जवाहरलाल जी म० ना जीवन मां थी कांइ प्रेरणा मेलवशे तो तेओ देश अने समाज नुं घणुं कल्याण साधी शकशे।

स्टेट जेल

राजकोट १२-११-४२

प्रभावक वाणी और उच्च विचार

५६—लेखक—ला० रतनचन्द जी तथा राय सा० टेकचन्द जी जैन

We had the good fortune of paying our respects to His Holiness on several occasions. First of all we had his Darshana at Delhi, where we were rightly struck to note his devotion to Shree Jain Dharma and force of his character and strict discipline. The way of his speech and expression of his thoughts was so powerful that it pierced right through the hearts of his hearers who were just convinced of the doctrines preached by His Holiness.

Afterwards during the tour of the All India Jain Deputation convened for inviting the acharyas and prominent munis of different sampradayas of India to attend the All India Sadhu Mahasammelan to be held at Ajmer. We visited Jodhpur and made our request to His Holliness. He was not at first favourably inclined to join the deliberations of the Sammelan as he was doubtful about the ultimate result. But on discussion and pursuation he was pleased to give way and thus proved his high sense of responsibility and showed that he was always amiable to reason and right.

At Ajmer we came in contact with His Holiness almost everyday and had continued opportunities to notice his force of character, straight-forwardness and willingness to do justice to all but not to yield haphazardly to any one. In our opinion His Holiness is a symbol of a true Monk, devoted to right path and wedded to firm convictions of righteousness and piety.

At all times we noted how sincerely he was revered and held in esteem by all who happened to see him. Lala Rattan-Chand Ji had also another occassion of his Darshans at Morvi in 1938, where even His Highness the Maharaja of Morvi regularly attended and heard his sermons and discourses. He was accompanied by Lala Moti Lal, Lala Hans Raj of Amritsar and Lala Muni Lal of Lahore. These gentlemen also got a very high impression about His Holiness as anyone who heard him once wished to hear him again and again.

एमना विचारो अमने बधाने गम्या. जो के विधवा विवाह अने लग्न विच्छेद ना विचारो सामे एमनो विरोध हतो। ते तेमणे स्पष्ट रीते जाहेर कर्यो। परन्तु तेओ श्री एकंदरे अमारी प्रवृत्तिओ थी खुश थया हता। अने परिषद् ना अधिवेशन ने आवकार आप्यो हतो। आ तेमना विचारो नी उदारता अने खेलदिल स्वभाव नो नमूनो हतो।

अधिवेशन वखते नवी गप उडी के पूज्य महाराज श्री नो आ अधिवेशन सामे विरोध छे। तरत अमे एमनी सेवा मां पहोच्या अने हकीकत सांभली ने एमने खेरेखर नवाई लागी। बीजी सवारे व्याख्यान मां तेमणे जाहेर कर्युं के 'जुवान वर्ग ना अमुक उद्दाम विचारो साथे हुं सहमत न होवा छतां नवजुवानो नी प्रवृत्तिओ अने एमना विचारो जाणी ने मने आनन्द थयो छे। एमनी परिषद् सामे मारे कांई जातनो विरोध नथी। जेमने एमना विचार भूल भरेला लागता होय, तेमनी फरज परिषद् मां हाजरी आपी एमनी भूल दर्शाववानी अने पोतानुं मंतव्य रजु करवानी छे।

राष्ट्रीय प्रेम—

मारा परिचित एक बहेन ने हुं घणा समय थी खादी पहेरवा समजावी रह्यो हतो पण हुं सफल न थयो। परन्तु आचार्य महाराज ना उपदेश थी अने खादी मां अहिंसा नुं पालन होवानुं तेओ श्रीए कारण दर्शाव्या थी आ बहेने आजीवन खादी परिधान नुं व्रत अंगीकार कर्युं हतुं। राष्ट्रीय भावना मां महाराज श्री नी प्रगतिशीलता में राजकोट सत्याग्रह नी लड़त वखते निहाली हती। जुगार विरोधक लड़त मां जेल जइ आव्या पछी पूज्य महाराज श्रीए मने एमनी समक्ष बोलावी ने अभिनंदन आप्यां हतां।

राजकोट सत्याग्रह वखते जेल मां पण मने समचार मल्या हता के आ प्रजाकीय लड़त प्रत्ये पूज्य महाराज श्री नी सहानुभूति छे। अने तेओ श्री जोरशोर थी खादी प्रचार अने स्वदेशी नी भावनाने उत्तेजन आपी रह्या छे। लड़त चालु होवा थी आ मंथनकाले संघ जमण न करवा तेमणे आगेवानो ने आपेली सलाह सफल निवडी हती।

समाधान थतां राजद्वारी केदीओ ने मुक्त करवा मां आव्या। तेमनो सरघस ज्यारे पूज्य महाराज श्री ना निवासस्थान पासे थी पसार थतुं हतुं त्यारे महाराज श्री बहार पधार्या, जेल गएला सत्याग्रहीओ नुं सन्मान कर्युं अने प्रजा ने अंतर ना आशीर्वाद आप्या। आ दृश्ये मारा हृदय ऊपर घणी मोटी असर करी हती।

महात्मा जी साथे मुलाकात--

राजकोट मां पूज्य महात्मा गांधी जी नुं तेमना काका श्री खुशालचंद भाई नी मांदगी ने कारणे पधारवुं थयुं। ते वखते माहात्मा जी अने पू० आचार्य महाराज नी मुलाकात नो प्रसंग खरे-खर हृदयंगम हतो। महाराज श्री ने म० गाधी जी अने तेमना सिद्धान्तो प्रत्ये घणुं ऊंचुं मान हतुं। ए हुं आ मुलाकात वखते ज जाणी शक्यो।

आज नो आपणे साधु समाज पूज्य श्री जवाहरलाल जी म० ना जीवन मां थी कांइ प्रेरणा मेलवशे तो तेओ देश अने समाज नुं घणुं कल्याण साधी शकशे।

स्टेट जेल

राजकोट १२-११-४२

प्रभावक वाणी और उच्च विचार

५६—लेखक—ला० रतनचन्द जी तथा राय सा० टेकचन्द जी जैन

We had the good fortune of paying our respects to His Holiness on several occasions. First of all we had his Darshana at Delhi, where we were rightly struck to note his devotion to Shree Jain Dharma and force of his character and strict discipline. The way of his speech and expression of his thoughts was so powerful that it pierced right through the hearts of his hearers who were just convinced of the doctrines preached by His Holiness.

Afterwards during the tour of the All India Jain Deputation convened for inviting the acharyas and prominent munis of different sampradayas of India to attend the All India Sadhu Mahasammelan to be held at Ajmer. We visited Jodhpur and made our request to His Holliness. He was not at first favourably inclined to join the deliberations of the Sammelan as he was doubtful about the ultimate result. But on discussion and pursuation he was pleased to give way and thus proved his high sense of responsibility and showed that he was always amiable to reason and right.

At Ajmer we came in contact with His Holiness almost everyday and had continued opportunities to notice his force of character, straight-forwardness and willingness to do justice to all but not to yield haphazardly to any one. In our opinion His Holiness is a symbol of a true Monk, devoted to right path and wedded to firm convictions of righteousness and piety.

At all times we noted how sincerely he was revered and held in esteem by all who happened to see him. Lala Rattan-Chand Ji had also another occassion of his Darshans at Morvi in 1938, where even His Highness the Maharaja of Morvi regularly attended and heard his sermons and discourses. He was accompanied by Lala Moti Lal, Lala Hans Raj of Amritsar and Lala Muni Lal of Lahore. These gentlemen also got a very high impression about His Holiness as anyone who heard him once wished to hear him again and again.

पूज्यश्री के दर्शन करने का हमें कई बार सौभाग्य प्राप्त हुआ है। पहले पहल हमने आपके देहली में दर्शन किए थे। जैनधर्म के प्रति आपकी श्रद्धा, चारित्र-बल, और आपके कठोर अनुशासन को देख कर हम चकित हो उठे। आपकी वाणी और विचारों को व्यक्त करने का ढंग इतना प्रभावशाली था कि वह श्रोताओं के हृदय में सीधा उतर जाता था। आपके उपदेश श्रोताओं के हृदय में जम जाते थे।

अजमेर में होने वाले अखिल भारतीय साधु-सम्मेलन में सम्मिलित होने की प्रार्थना करने के लिए सभी आचार्यों और प्रमुख मुनियों के पास समस्त भारत के चुने हुए व्यक्तियों का एक जैन शिष्ट-मण्डल गया था। उस समय भी हमने पूज्य श्री के दर्शन किए थे। हम आप से जोधपुर में मिले और सम्मिलित होने की प्रार्थना की। प्रारम्भ में उन्हें सम्मेलन की बात पसन्द न आई। आपको उसके अन्तिम परिणाम के विषय में सन्देह था। किन्तु विचार-विनिमय और लगातार प्रार्थना करने पर वे हमारी बात मान गए। अपने उत्तरदायित्व का आप को कितना भान है, यह बात इससे सिद्ध हो जाती है। आपने यह भी बता दिया कि युक्ति और सत्य के सामने आप सदा झुकने को तैयार हैं।

अजमेर में प्रायः प्रतिदिन हम पूज्यश्री के परिचय में आते थे। आपके चारित्र-बल, स्पष्टवादिता, सभी के प्रति न्याय करने की अभिलाषा तथा बिना सोचे विचारे किसी की न मानना आदि गुण देखने के हमें बहुत से अवसर प्राप्त हुए। हमारी राय में पूज्यश्री सच्चे साधुत्व के प्रतीक हैं, सत्य मार्ग में लीन हैं तथा सत्य और पवित्रता पर दृढ़ विश्वास रखते हैं।

हमने इस बात को हमेशा ध्यान से देखा कि जो व्यक्ति आपके दर्शन करने आते हैं वे सब प्रकार हृदय से आपका सन्मान करते हैं। १९३९ में लाला रतनचन्दजी ने आपके दर्शन मोरवी में भी किए थे। मोरवी नरेश भी आपके भाषणों में आया करते थे और उन्हें अच्छी तरह सुनते थे। लाला रतनचन्द जी के साथ अमृतसर के लाला मोतीलाल और लाला हंसराज तथा लाहौर के लाला मुन्नीलाल भी थे। इन सज्जनों के भी पूज्यश्री के विषय में बहुत ऊँचे विचार हैं। आपकी वाणी को जो एक बार सुन लेता था वह बार-बार सुनने की इच्छा करता था।

जीवन कला का दिव्य-दान

५७—(ले० शान्तिलाल वनमाली शेठ जैन-गुरुकुल, ब्यावर)

पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज एक साधक महात्मा हैं। उन्होंने अपने जीवन का बहुत बड़ा भाग 'आत्म-साधना और जन-कल्याण-साधना' रूप धर्मकला की उपासना करने में व्यतीत किया है। ५१ वर्ष जितनी सुदीर्घ संयमी-जीवन की सतत 'साधना' ने उनको धर्म-जीवन के कुशल कलाकार और 'स्थविर'-कर्णधार-धर्मनायक बना दिया है। सच्चा स्थविर-धर्मनायक कैसा होना चाहिए इसके विषय में ठीक ही कहा गया है कि —

न तेन वयो सो होति येनस्स फलितं सिरो।
परिपक्को वयो तस्स मोघजिण्णो'त्ति वुच्चति॥
यम्हि सच्चं च धम्मो च अहिंसा संजमो दमो।
स वे वन्तमलो धीरो सो थेरोत्ति पवुच्चति॥
—धम्मपद

अर्थात्--जिनके मस्तक के बाल पक गये हैं अथवा जो वयोवृद्ध हो गये हैं उन्हें 'स्थविर' नहीं कह सकते। उन्हें तो 'मोघजीर्ण' ही कह सकते हैं। सच्चे स्थविर धर्मनायक तो वे ही हैं जिनके हृदय में अहिंसा, संयम, सत्य, दम-तप इत्यादि धर्मगुणों का वास हो और जो दोष रहित और धीर-वीर हो।

खुद के जीवन को सफल बनाना और दूसरों का जीवन-निर्माण करना—इन दोनों में काफी अन्तर है। जगत में आत्म-साधना और आत्म-ध्यान करनेवाले और उसी में तल्लीन रहने वाले निवर्तक साधु-पुरुष कम नहीं हैं लेकिन शास्त्रविहित निवृत्ति धर्म के आचार-नियमों का यथाविधि पालन करने के साथ-साथ जन-समाज का जीवन-निर्माण करना, जन को ज्ञान और चरित्र का शक्ति-दान देकर 'जैन' बनाना और मानव-समाज को सद्धर्म का मर्म शास्त्र-रीति तथा विज्ञान-नीति के द्वारा युक्ति प्रयुक्तिपूर्वक समझाकर धर्मनिष्ठ बनाना—आदि धर्ममूलक सत्प्रवृत्तियाँ करने वाले साधु पुरुष-महात्मा विरले ही होते हैं। ऐसे विरले महापुरुषों में पूज्यश्री का स्थान अपूर्व और अद्वितीय है।

बंबई के सुप्रसिद्ध गुजराती दैनिक पत्र 'जन्मभूमि' साहित्य-विभाग के संपादक ने 'कलम अने किताब' नामक स्तंभ में पूज्यश्री की 'जीवन-कला' पर (पूज्यश्री के व्याख्यानों के आधार पर इन पंक्तियों के लेखक द्वारा संपादित 'धर्म अने धर्मनायक' नामक पुस्तक की) समालोचना करते हुए थोड़ा-सा प्रकाश इस प्रकार डाला है—

"धर्माचार्यों पर ऐसा आरोप-आक्षेप किया जाता है कि उन्होंने प्राचीन शास्त्रग्रंथों को संकीर्ण अर्थों में कैद कर रक्खा है। आज एक जैनाचार्य ने अपने आदि पुरुषों की धर्म-वाणी को उदार रूप देकर बंधनमुक्त कर दिया है। जिस सरलता से दधिमंथन नवनीत को उपरितल पर ला देता है उसी सरलता को इस विद्वान् आचार्यश्रीने शास्त्र-दोहन और शास्त्र-मंथन की 'कला' के रूप में रख दिया है। उन्होंने शास्त्र अर्थ को मोड़ा-तोड़ा नहीं है, न किसी प्रकार की खींचातानी ही की है। उन्होंने तो प्राचीन जैन-ग्रन्थों को नवयुग के नूतन मानव-धर्मों के स्वर वाहक बना दिये हैं। यह उनकी प्रतिभा का द्योतक है।

वर्तमान जीवन को महत्त्व देकर जिन आचार्य श्रीने प्राचीन धर्मबोध को पुनर्जीवित किया है उन्हें हम सच्चे समय-धर्मी-युगप्रधान के नाम से संबोधित करेंगे और सच्चा समयधर्म-युगधर्म-सनातनधर्म से भिन्न नहीं है यह भी हम साथमें कहेंगे"

पूज्य श्री के जीवन-परिचय में एक बार भी आने वाले और उनकी धर्मवाणी सुननेवाले उक्त उल्लेख से पूर्ण सहमत होंगे, ऐसा मुझे विश्वास है। उक्त उल्लेख से पूज्यश्री ने जैनधर्म को शास्त्रमर्यादाओं को ध्यान में रखते हुए युगधर्म का रूप देकर और उसे विश्व-शान्ति का सन्देश वाहक बनाकर समाज और राष्ट्र में नवजीवन का संचार किया है और इस प्रकार श्रमण-संस्कृतिका समुत्थान करने में अपनी जीवन कला का दिव्य दान दिया है—इस बात का सामान्य प्रतिभास मिलता है।

पूज्यश्री को अपने उत्तरदायित्व का पूरा भान है। उन्होंने अपनी सारी जीवन-शक्ति सद्धर्म के प्रचार में और मुख्यतः जैन समाज के तथा सामान्यतः जन-समाजके उद्धार के लिए समर्पित करदी है और उनकी उद्बोधक प्रेरक और रोचक व्याख्यान-वाणी के द्वारा समाज और राष्ट्र को

आशातीत लाभ भी पहुँचा है।

उन्होंने धार्मिक अन्धश्रद्धा के स्थान पर 'धार्मिकता' की पुनः प्रतिष्ठा की है। समाज-जीवन में घुसी हुई कुरूढ़ियों के थरों को समाज के अंग-प्रत्यंग क्षत-विक्षत न हों ऐसी सतर्कता के साथ—एक कुशल कलाकार के से कौशल से उखाड़ कर फैंक दिया है और उनके स्थान पर समाज की नवरचना की है। समाज में से, रूढिच्छेद करने से धार्मिक अन्धश्रद्धा दूर करने से समाजोद्धार संघोद्धार और राष्ट्रोद्धार की प्रवृत्ति को काफी बल मिला है और समाज व धर्म की जागृति के द्वारा राष्ट्र की जागृति भी हुई है। इसका श्रेय पूज्यश्री की धर्म-प्रचारकता, समय-सूचकता और उनकी जीवन-कला की उपासना को प्राप्त होता है।

इस प्रकार जब पूज्यश्री की सर्वाङ्गीण जीवन-विकासकी-जीवन-कला के अन्य उपासक और उसके प्रखर प्रचारक की दृष्टि से—समीक्षा करते हैं तब हमें कहना पड़ता है कि पूज्यश्री केवल जैन-समाज की ही नहीं अपितु समस्त भारतवर्ष की वंदनीय विभूति हैं। जैन-समाज के तो जगमगाते ज्योतिर्धर 'जवाहर' हैं ही उन्होंने अपनी जीवन ज्योति के द्वारा राष्ट्र समाज और धर्म को आलोकित किया है।

वास्तव में पूज्यश्री-की ओजस्विनी प्रभावोत्पादक धर्मवाणी वाग्विलास की बानगी नहीं है अपितु सुदीर्घ संयम-साधना के फलस्वरूप अन्तस्तल से निकली हुई युगवाणी है। इस उदात्त-वाणी के उद्‌गाताने जैनधर्म के प्राण भूत तत्त्वों का युगदृष्टि से पर्यवेक्षण करके जैन धर्म को युगधर्म बनाने में बड़ा भारी योगदान दिया है। यही उनका दिव्य-दान है। पूज्यश्री-की यह बहुत बड़ी देन है।

हिन्दना धर्मगुरुओ अने क्रान्ति

५८ (सौराष्ट्र-राष्ट्रनायक राजकोट सत्याग्रह सेनानी श्री ढेबर भाई)

खरेखर हिन्दुस्तान बीजा देशो करतां जुदी जातनो मुल्क छे। बीजा देशो करतां तेनी विशिष्टता एमां समायेली छे के तेनो बंधार सामाजिक तथा राजकीय होवा छतां साथे-साथे आध्यात्मिक पण छे। हिन्दुस्थान नी भूतकाल नी लगभग बधीज क्रान्तिओना प्रणेताओ राजपुरुष होवा ने उपरान्त अथवा विशिष्टपणे संत अने महात्माओ हता। अने आजे पण तेज इतिहास नुं पुनरावर्तन आपणी नजर समक्ष आपणे देखीए छीए।

आथी ज्यारे-ज्यारे हिन्दनी वर्तमान क्रान्ति नुं विचार करुं छुं त्यारे साथो साथ हिन्दमां विचरता धर्मगुरुओ धारे तो, हिंदने अत्यार नी पतित अने अनाथ दशा मां थी उगारवानी दिशामां जे कार्य हाल थई रह्युं छे तेने केटलो वेग मले ? अने टेको आपी शके ! तेना-विचारो मारा मन आगल तरी आवे छे।

मारी आ लागणीना जवाब रूपेज जाणे होय नहि तेम १९३८ नी सालमां राजकोट सत्याग्रह वखते श्रीमद् जवाहरलालजी महाराज राजकोट मां विराजता हता। आने जैन अने जैनेतर समाज ने हिम्मत भरी रीते तेज दिशामां मार्गदर्शन आपी रह्या हता।

तेमनुं प्रभावशाली व्यक्तित्व, तेमनुं सिद्धासन, तेमनो अस्खलित वाणी प्रवाह, आध्यात्मिक विषयनी चर्चा करती वखते पण श्रोताओनी मर्यादा अने तेने परिणामे उपस्थित थती

धर्म-प्रवक्ता तरीकेनी पोतानी जवाबदारी नो ऊंडो खयाल, ए-मर्यादाओ ने लक्षमा राखी ने व्यवहार शुद्धि ऊपर तेमनो भार, अने अहिंसा ना आचार धर्म तरीके खादी ने अपनाववानो, दरिद्र नारायण मात्रनी सेवा करवानो, राष्ट्रभावना नो विकास साधवानो अने सर्व रीते जीवन मां स्वाश्रयी बनवानो तेमनो आग्रह ए वधां आज पण मारी नजर आगल तरे छे।

गीताशास्त्र के मर्मज्ञ

५६ (श्री हरनाथजी टल्लू, पुष्करणा-समाज नेता, जोधपुर)

जब से पूज्यश्री जोधपुर में चतुर्मास कर अपने व्याख्यान रसास्वादन का मुझे चस्का लगा कर गये हैं, तब से आज तक मेरी यही हार्दिक मनोकामना रही आई है कि मैं एक बार उसी आत्मशान्ति का पुनः अनुभव करूं, जो कि पूर्व चातुर्मास में कर चुका हूँ। तदनुसार प्रयत्न आरंभ कर एक बार मैं स्वयं कौंसिल-सेक्रेटरी श्रीउमरावसिंहजी के साथ जेठाणे तथा दूसरी बार श्रीमान् जसवन्तराजजी के साथ जयतारण भी विनत्यर्थ गया किन्तु पूज्यश्री की शारीरिक अस्वस्थता के कारण हमें अपने प्रयास में सफलता प्राप्त न हो सकी। फिर भी मुझे उनके सम्पर्क में रहने पर उनके व्यक्तित्व के सम्बन्ध में जो कुछ अनुभव हुआ है उसके आधार पर मैं यह दावे के साथ कह सकता हूँ कि पूज्यश्री जवाहरलालजी म. सा. गीता-शास्त्र के पूर्ण मर्मज्ञ हैं। गीता के गंभीर श्लोकों का जो अर्थ-स्पष्टीकरण करते हैं, वह वास्तव में अनुपम, सरल और सुबोध है। ऐसे मर्मज्ञ साधु अन्य समाज में कम पाये जाते हैं। उनकी शान्त मुखमुद्रा और ध्यान-स्थिति ने मेरे हृदय पर भक्तिभावना के नवीन ही अंकुर अंकुरित किये हैं।

प्रभावक प्रवचन

६०—(शाहजी श्री हनवन्तचन्द्रजी लोढ़ा, जोधपुर)

मेरे मन में चिरकाल से यह उत्कंठा तीव्र रूप धारण करती जा रही थी कि मैं पूज्यश्री जवाहरलालजी म. सा. जैसे उच्च महात्मा पुरुष का समागम करूं व उनके सारगर्भित रहस्य-पूर्ण व्याख्यान का श्रवण करूं। निदान मेरी यह भावना उनके जोधपुर चातुर्मास के समय पूर्ण हुई। उक्त महात्मा के प्रवचनामृत का पान मैंने पूर्ण उमंग और हार्दिक भक्तिभावना से किया। अन्य संत महात्माओं की अपेक्षा भी उनमें जो प्रशंसनीय गुण मैंने पाया वह यह कि उनके उपदेश-तत्व विद्वान, मूर्ख, आबाल-वृद्ध वनिता आदि सब पर एक समान जादू का असर डालकर सबको सन्मार्ग की ओर तत्काल आकर्षित कर लेते हैं। उनकी व्याख्यानशैली की विशिष्टता भूरि-भूरि प्रशंसनीय है।

परम प्रतापी पूज्य श्री जवाहरलाल जी म० के घाटकोपर चातुर्मास की एक महती स्मृति

६१—श्री छत्रसिंह चुन्नीलाल परमार मेनेजर घाटकोपर जीवदया खाता

शास्त्र में और व्यवहार में यह बात सर्वमान्य कही जाती है कि जहाँ जहाँ संत पुरुष के पदार्पण होते हैं वहाँ सुख और शान्तिका साम्राज्य छा जाता है। यह भी एक ऐसी घटना है जो उपरोक्त कथन का सविशेष समर्थन करती है।

समान ही भारत के राष्ट्रीय क्षितिज पर अपनी दिव्य ज्योति के साथ चमकते। एवं यह भी निस्संकोच कहा जा सकता है कि उस दशा में भी इनकी कार्यप्रणाली और साधन अहिंसा, एवं सत्य ही रहते।

आचार्य श्री का पांडित्य पल्लवग्राही नहीं था, बल्कि वर्षों तक आपने भारतीय दर्शनों के साथ साथ भारतेतर-मुस्लिम, ईसाई आदि के धर्म-ग्रंथों का भी वाचन, मनन और श्रवण किया था। आपकी व्याख्यानशैली-मधुर, अनुभूतिपूर्ण, सरल किन्तु मार्मिक और शब्दाडम्बरों से रहित होती हुई भी प्रभावशाली एवं हृदयतक पहुँच करने वाली होती थी। व्याख्याता की वाणी श्रोताओं के हृदय तक तभी पहुंच सकती है जबकि वह हृदय से निकली हुई हो। वे केवल व्याख्यान देने के लिये व्याख्यान नहीं देते थे, किन्तु हृदय की अनुभूति को प्रकाश में लाने के लिये ही व्याख्यान दिया करते थे। उनकी त्यागमय श्रद्धा शब्द-शब्द में टपकती थी। उनका आत्मबोध स्वपर कल्याणकर था। उनकी ईश्वरीय भक्ति सांसारिक मोह को काटने में एक अमोघ अस्त्र थी।

उनके स्वतंत्र व्यक्तित्व ने यह उक्ति प्रचलित कर दी है कि भारत में दो जवाहिर हैं-एक धर्मनायक तो दूसरे राष्ट्रनायक। निस्संदेह इस उक्ति में सच्चाई है, क्योंकि उनके त्यागमय जीवन और वैराग्यमय भावना ने उनको एक आध्यात्मिक महापुरुष के रूप में परिणत कर दिया था। भारतीय दार्शनिक संस्कृति के अनुरूप उनमें अनुभूति पूर्ण आत्मिकता और ईश्वरीय प्रेम, ईश्वरीय-अनुभव, प्राचीन ऋषियों के समान ही ज्योति रूप से विद्यमान था। इसी मौलिक विशेषता में उनका स्वतंत्र व्यक्तित्व निवास करता था, जो कि जनता को उनके प्रति आकर्षित, मोहित और श्रद्धामय करता था।

इनकी मौलिक विचार-धारा का पता इसी से लगता है कि ये अपने राष्ट्रऋण राष्ट्र-धर्म को साधु-मर्यादा में भूल नहीं गये थे बल्कि खादी, अछूतोद्धार, देशभक्ति और राष्ट्र-प्रेम के मार्ग में बड़ा सुन्दर और स्तुत्य प्रयत्न व्याख्यानों द्वारा जीवन-पर्यंत चलता रहा। स्थानकवासी-जैन समाज के साधुओं की व्याख्यानों की परिपाटी में उपरोक्त प्रयत्न से सुधार का विकाश हुआ और अनेक साधुओं के हृदय में "देश क्या है और समाज का—श्री संघ का क्या कर्त्तव्य है" की भावना और विचार जागृत हुए।

अल्पारंभ-महारंभ का प्रश्न उनके जीवन में बड़ा ही सुन्दर चला था। आपने बड़ी सुन्दर रीति से तात्विक तर्कों के साथ—मशीन वाद रूप महारंभ को और अन्य कृत वस्तु को खरीदने में, हाथ की कारीगरी और स्वीकृत-वस्तु के उपयोग के आगे; महारंभ सिद्ध किया था। आज भी अनेक साधुओं के मस्तिष्क में यह बात नहीं आ रही है—यह आश्चर्य और दुःख की बात है। स्थलसंकोच से इस विषय में यहाँ पर अधिक नहीं लिखकर यह प्रयत्न करूँगा कि एक अलग ही स्वतन्त्र लेख में इस विषय पर प्रकाश डालूं।

खादी उनके व्याख्यानों का एक अभिन्न अंग थी। खादी में वे सत्य और अहिंसा की झांकी देखते थे। मीलवाद बनाम मशीनरीवाद उनकी दृष्टि में आत्मा का हनन करने वाला और नैतिक पतन के साथ साथ महान् गरीबी लाने वाला था। खादी को वे गरीबों की रोटी, विधवाओं का सहारा और अन्धों की लकड़ी समझते थे कहना प्रासंगिक ही होगा कि स्थानकवासी समाज

के अनेक धनाढ्य व्यक्तियों ने आप ही के उपदेश से खादी को पहनना प्रारम्भ किया था।

उनकी साहित्य रचना की शैली भी युगानुसारिणी थी। यही कारण है कि आपका साहित्य सैकड़ों वर्षों तक जनता में इसी प्रकार आदर प्राप्त करता रहेगा जैसा कि उसे आज आदर प्राप्त है। उनकी स्मृति में जो धन-राशि एकत्र की जा रही है, अच्छा यह हो कि इस धन-राशि से उनके अमर साहित्य का अत्यल्प मूल्य में जैनतर-जनता में प्रचार किया जाय, एवं नूतन-मौलिक साहित्य की रचना करवा कर उसे प्रकाशित किया जाय। तात्पर्य यह है कि उनकी पवित्र स्मृति की रक्षा साहित्य-निर्माण के कार्य से की जाय और एकत्र धन-राशि का यही उपयोग किया जाय।

धर्माचार्य जवाहर

६३—श्री इन्द्रचन्द्र शास्त्री एम० ए० शास्त्राचार्य, वेदान्तवारिधि, न्यायतीर्थ प्रोफेसर वैश्य कालेज, भिवानी।

विशाल हृदय, सूक्ष्म निरीक्षण, दृढ़ निश्चय तथा मानव समाज को उन्नत-ऊँचा उठाने की तीव्र भावना महापुरुष के आवश्यक गुण हैं। जीवन के आन्तरिक रहस्य को खोजकर संसार के सामने रखना महान् आत्माओं का सब से बड़ा कार्य होता है। जो व्यक्ति सर्वप्रथम उस रहस्य को अभिव्यक्त करता है उसे अवतार कहा जाता है। जो उसे संगीतमय बना देता है वह महाकवि है। जो उसके लिए युद्ध करता है वह नेता है। जो उसके लिए साधना करता है वह तपस्वी है। जो उसे जनता में फैलाता है वह उपदेशक है। धर्माचार्य में नेता, तपस्वी और उपदेशक तीनों का सम्मिश्रण होता है। पूज्य श्री जवाहरलाल जी महाराज सच्चे धर्माचार्य थे।

एक सम्प्रदाय के गद्दीधर नायक होने पर भी उन का हृदय विशाल था। मत मतान्तरों में का पारस्परिक-विरोध आपकी दृष्टि नगण्य था। समुद्र की एक तरंग इधर से उठती है, एक उधर से उठती है। दोनों शत्रु बनकर टकराती हैं किन्तु समुद्र में विलीन होकर एक हो जाती हैं। गम्भीर समुद्र एक है। तरंगें ऊपर का खेल हैं। इसी प्रकार वास्तविक धर्म एक है। मत मतान्तर तो केवल तरंगें हैं। उसका विकार हैं। बुदबुदे हैं। आध्यात्मिक रहस्य एक ही है। विभिन्न परिस्थितियों के कारण ऊपरी विरोध खड़े होते हैं और परस्पर टकराकर एकता में लीन हो जाते हैं। चिरकाल से परस्पर विरोधी मानी जानेवाली श्रमण और ब्राह्मण संस्कृतियों के मूल में भी पूज्य श्री एकता का दर्शन करते थे। भगवद्गीता और जैन शास्त्रों में आपको निष्काम कर्मयोग या अनासक्तिवाद का तत्त्व समान रूप से दिखाई देता था।

आप मानवता के परम पुजारी थे। मानवता आपकी दृष्टि में सब से बड़ा धर्म था। दया, प्रेम, परस्पर सहानुभूति मानवता के स्वाभाविक गुण हैं। जो मत या सम्प्रदाय इनके विरुद्ध प्रचार करे वह आपकी दृष्टि में मानवता का रोग है। उसका प्रबलतम विरोध करना तथा उसे मिटा देना आप अपना कर्तव्य मानते थे। इसके लिए कष्टों की परवाह न करते हुए वाणी, लेखनी और तपस्या के साधनों द्वारा आपने अथक परिश्रम किया और जनता के सामने सचाई रखी। आप कहा करते थे—"जब गरीब आपको प्यारे नहीं लगते तो क्या दूसरों को मारने के लिए ईश्वर से बल की याचना करते हो?"

ईश्वर रक्षा के लिए बल देता है, संहार के लिए नहीं।

धर्म की निर्जीवता का कारण क्या है ? इस प्रश्न पर आपने सूक्ष्म दृष्टि से विचार किया था। आपका यह विश्वास था कि सांसारिक द्वन्द्वों से डरा हुआ व्यक्ति धर्म का पालन नहीं कर सकता। उन द्वन्द्वों पर विजय प्राप्त करने वाला ही धर्म का सच्चा आराधक हो सकता है। आप की दृष्टि में धर्म केवल उपाश्रय या स्थानक में बैठकर करने की चीज़ नहीं है किन्तु जीवन की प्रत्येक प्रवृत्ति में, प्रत्येक क्षेत्र में और प्रत्येक क्षण में उसकी उपासना होनी चाहिए। धर्मस्थान में सन्ध्या, उपासना, सामायिक आदि करता हुआ भी जो व्यक्ति व्यापार के समय धर्म को भूल जाता है, अपने भाइयों के साथ बर्ताव करते समय धर्म की परवाह नहीं करता वह सच्चा धर्मात्मा नहीं है। उसका धर्म निष्प्राण है। निःसार है। निर्जीव है।

समाज में फैली हुई अन्ध श्रद्धा और कुरीतियों पर आपकी आत्मा तिलमिला उठती थी।

बीकानेर राज्य के प्रधानमन्त्री सर मनुभाई मेहता गोलमेज़ कान्फरेंस में सम्मिलित होने के लिए इंग्लैंड जा रहे थे। उस समय आप आचार्य श्री का सन्देश प्राप्त करने आए। आचार्य ने कहा—

लोग कहते हैं, धर्म व्यक्तिगत वस्तु है। इसलिए गोलमेज़ कान्फरेंस में धर्म का कोई प्रश्न नहीं हो सकता। मैं कहता हूँ, गुलाम और अत्याचार पीड़ित जनता में वास्तविक धर्म का विकास नहीं हो सकता। धार्मिक विकास के लिए स्वतन्त्रता अनिवार्य है।''

''विधवाओं की दुर्दशा देख कर आप की आत्मा पुकार उठती है—मित्रो ! विधवा बहिनें आपके घर की शील देवियां हैं। इनका आदर करो। इन्हें पूज्य मानो। इन्हें खोटे दुखदाई शब्द मत कहो। ये शीलदेवियाँ पवित्र हैं। पावन हैं। मंगल रूप हैं। इनके शकुन अच्छे हैं। शील की मूर्ति क्या कभी अमंगलमयी हो सकती है ?''

''देशसेवा से प्रेरित होकर आपने एक दिन कहा–याद रखिए आपके ऊपर मातृभूमि का ऋण सब से अधिक है। आपके माता पिता इसी भूमि में पले हैं और इसी के द्वारा आपका तथा उनका जीवन टिक रहा है। आपका सर्वप्रथम कर्तव्य मातृभूमि का ऋण चुकाना होना चाहिए। मातृभूमि और माता का ऋण चुकाने के बाद आगे पैर बढ़ाना चाहिए।''

अचार्य श्री की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। राष्ट्रीय, सामाजिक, आध्यात्मिक नैतिक अथवा व्यावहारिक ऐसा कोई भी विषय नहीं है जिस पर आपने अधिकार पूर्ण विवेचन न किया हो। आप की वाणी में जादू था। बिल्कुल साधारण सी बात को प्रभावशाली एवं रोचक बनाने में आप सिद्धहस्त थे। सभी धर्म तथा सभी सिद्धान्तों का समन्वय करके नवनीत निकालने की कला अद्भुत रूप से विद्यमान थी। जीवनकला के आप महान् कलाकार थे। वैयक्तिक तथा सामाजिक, राष्ट्रीय तथा धार्मिक सभी क्षेत्रों में आप की कला अव्याहत थी। आपके उपदेश सभी मार्गों के संगमस्थल थे।

जहाँ प्राणियों का दुख देख कर आपका हृदय रो पड़ता था, वहाँ आप कठोर अनुशासन के भी पक्षपाती थे। किसी प्रकार का दोष लगाने पर प्रिय से प्रिय शिष्य को भी आपने उचित दण्ड दिया। योग्य होने पर दूसरे को भी ऊंचे से ऊंचा पद दिया। जिस बात को आपने ठीक

समझा उसके लिए विरोध की परवाह न की। उसी के युक्ति द्वारा गलत साबित हो जाने पर अपनी भूल स्वीकार करने में कोई हिचकिचाहट नहीं की। उस समय आप विरोधी दल के अग्रणी बन गए। विरोध के सामने झुकना आपने सीखा ही नहीं किन्तु युक्ति के आगे सिर झुकाना अपना कर्तव्य माना।

वह प्रतिभा, वह त्याग, वह तपस्या, वह तेज, वह सत्यप्रियता और वह वाणी अब कहाँ?

६४—अहिंसा और सत्य के महान् प्रचारक प्रतिभाशाली जैनाचार्य पूज्य श्री जवाहरलाल जी महाराज

(श्री पद्मसिंह जी जैन)

जैन जाति के उद्धार के लिये जिन्होंने आजीवन अविश्रान्त श्रम किया, थली जैसे मिथ्या श्रद्धा वाले देश में पैदल भ्रमण कर हजारों मिथ्या श्रद्धा वालों को शुद्ध श्रद्धा वाले बनाये, मोरवी नरेश आदि ऐसे अनेक राजा महाराजाओं को जैन धर्म की श्रेष्ठता और जैन धर्म के सिद्धान्त समझाये। गुजरात, काठियावाड़, मारवाड़, मेवाड़, मालवा, थली, दक्षिण खानदेश, बम्बई, दिल्ली आदि प्रान्तों में पैदल भ्रमण करके जैनों में से अज्ञानजन्य रूढ़ियां दूर कराई और जिनके उपदेश मात्र से अनेक लोकोपकारी संस्थाएं स्थापन हुई, ऐसे स्वनाम धन्य जैनाचार्य पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज के संबंध में यह लेखनी लिखने की कुछ भी शक्ति नहीं रखती।

सामाजिक, धार्मिक एवं देशोद्धारक कार्यों में रात-दिन लगे रहने पर भी आपने अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना ऐसी सरल व सरस भाषा में की है जिसके कारण आज उनके द्वारा जैनत्व और जैन धर्म के सत्य सिद्धान्तों का घर २ में प्रचार हो रहा है।

एक चतुर कलाकार मिट्टी के लोंदे को जिस तरह अपनी अंगुलियों की करामात से जो चाहा रूप दे देता है, उसी तरह पूज्यश्री को लोगों के दिल अपने अनुकूल बना लेने की शक्ति प्राप्त है। आपके उपदेश में एक खास विशेषता है। वह यह कि—यद्यपि पूज्यश्री जवाहरलाल जी महाराज जैनाचार्य हैं परंतु आपका उपदेश सर्वसाधारण के लिये ऐसा रोचक और उपयोगी होता है, जिससे ब्राह्मण, जैन, क्षत्रिय, मुसलमान और पारसी आदि समस्त लोग मुग्ध हो जाते हैं।

वादीमान-मर्दक प्रातःस्मरणीय स्वर्गीय जैनाचार्य श्री माधव मुनिजी तो आपको समाज में शार्दूलसिंह समान शक्तिशाली और शंख जैसा पवित्र समझते रहे। ऐसी महान् आत्मा का साया हम पर बना रहे यही शासन देव से प्रार्थना है।

६५—तीर्थराज जवाहर

(लेखक—श्री तारानाथ रावल विशारद)

यों तो 'तीर्थ' शब्द के कोष में १७ अर्थ लिखे हैं, मुझे उन सबसे कोई मतलब नहीं। मैं तो यहां उन्हीं अर्थों को लिखूंगा जो मुझे अभिप्रेत हैं। वे अर्थ ये हैं:—१-माता पिता, २-ईश्वर, ३-तारने वाला, ४-ब्राह्मण, ५-गुरु, ६-अवतार, ७-यज्ञ, ८-शास्त्र, ९-कोई भी पवित्र

स्थान, १०–वह पवित्र या पुण्य स्थान जहां धर्म भाव से लोग यात्रा, पूजा या स्नान आदि के लिए जाते हों।

अब विज्ञ पाठक समझ गये होंगे, कि 'तीर्थ' शब्द का प्रयोग मैंने यहां किन अर्थों में किया है, और क्यों इस लेख का शीर्षक 'तीर्थराज जवाहर' लिखा है।

मैंने पूज्यश्री के सबसे प्रथम बार दर्शन जयपुर राज्य में किये और अपनी बुद्धि के अनुसार कुछ चर्चा भी की। चर्चा के विषय गांधीजी, अहिंसा और तत्कालीन राजनीतिक समस्यायें थीं। उस समय मुझे यह जानकर बहुत आश्चर्य हुआ कि एक जैन साधु के मस्तिष्क में भी कई राजनीतिक समस्याओं का कितना सुन्दर, सरल और व्यावहारिक हल था। अहिंसा पर काफी देर तक चर्चा हुई। मैंने अनुभव किया कि गांधी जी द्वारा राजनीतिक हथियार के रूप में प्रचारित अहिंसा में और जैन शासन द्वारा प्रचारित अहिंसा में जमीन आसमान का अंतर है। मैंने यह भी अनुभव किया कि जैन शासन द्वारा समर्थित अहिंसा सिद्धांत पर अमल करने वाला व्यक्ति तो गीतावर्णित स्थितप्रज्ञ की दशा को प्राप्त कर ही सकता है। और पूज्यश्री का वाद विवाद का ढंग कुछ ऐसा हृदय ग्राही था कि प्रतिवादी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता था। वे to the point बोलते थे—अपने विषय के केन्द्र पर डटे रहते थे। परिणाम यह होता था कि प्रतिवादी को या तो उनके सिद्धान्तों की लोक हितैषिता स्वीकार करनी पड़ती थी या उनके अकाट्य तर्कों का लोहा मानना पड़ता था। और पूज्यश्री का यही सर्वोपरि गुण था, जो अनगिनत नर नारियों को उनकी ओर आकर्षित कर देता था। यही वह अदृश्य डोरी थी जो असंख्य श्रद्धालुओं को देश के कोने कोने से पूज्यश्री के चरणों पर, फिर वे चाहे जहां हों, ला पटकती थी।

एक दिन खबर सुनी कि कल महाराजश्री के व्याख्यान में दीवान साहब पधारेंगे। उन दिनों बीकानेर में दीवान सर मनू भाई मेहता थे, और वे शीघ्र ही दूसरी गोलमेज कांफ्रेंस में जाने वाले थे। मैं उस दिन व्याख्यानस्थल पर जल्दी ही जा पहुंचा। पूज्यश्री पधार गये थे। व्याख्यान प्रारम्भ करने का समय हो गया था। पर दीवान साहब नहीं आये थे। मैंने समझा, शायद दीवान साहब के आने तक प्रतीक्षा करेंगे। पर यदि उस दिन प्रतीक्षा की जाती, तो मुझ जैसे के मन पर तो दीवान साहब के बड़प्पन की छाप अंकित होना ही स्वाभाविक था, पर नहीं, पूज्यश्री ने अपना भाषण ठीक समय पर प्रारम्भ कर दिया। दीवान साहब देर से आये। आकर वे अपने आसन पर बैठ गये। दीवान साहब के आने पर भी पूज्यश्री के रंग ढंग और व्यवहार में कोई परिवर्तन दृष्टिगोचर न हुआ। वे अपना भाषण उसी प्रकार देते रहे। दस पन्द्रह मिनिट तक तो पूज्यश्री के व्याख्यान में धार्मिक कथाएं चलती रहीं। मैंने मन में सोचा कि इस ढंग की बातों में सर मनूभाई जैसे अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के मुत्सद्दी को क्या रस आ रहा होगा। मगर वाह! पूज्यश्री ने विषयांतर न करते हुए दीवान साहब के आगे कुछ ऐसे सुझाव रखे कि दीवान साहब को वहां पूज्यश्री को धन्यवाद देते हुए विश्वास दिलाना पड़ा।

सन् ४२ के अगस्त या सितंबर में मैं इन्दौर था और वहीं पूज्यश्री की बीमारी की खबर सुनी। दिल में एकाएक धक्का-सा बैठा। मन में सवाल उठा—क्या जैन जाति अपनी इस अलौकिक विभूति से वंचित हो जायगी? पर श्री सेठ चंपालाल जी बांठिया को पूज्यश्री की सेवा करके उन्हें

एक साल और रख लेने का श्रेय मिलना था। हालांकि निराश तो तब ही सभी हो चुके थे। मेरा खयाल है तत्कालीन युवाचार्य और वर्तमान पूज्यश्री श्री गणेशीलाल जी महाराज, पं० मुनि श्री सिरेमल जी महाराज आदि साधु सन्तों की तथा सेठ चंपालाल जी बांठिया और भीनासर, गंगाशहर, बीकानेर तथा आस पास के अन्य श्रावकों की श्रद्धा, भक्ति, निष्काम सेवा और प्रार्थनाओं का ही यह प्रभाव था कि पूज्यश्री का औदारिक शरीर एक साल तक रह गया। नहीं तो उन्होंने अपने शरीर को तप-अग्नि में इतना तपा डाला था कि वह इस लोक में टिक सकने योग्य नहीं रह गया था।

सन् ४३ के फरवरी में और फिर एप्रिल से अन्तिम दिन तक मुझे पूज्यश्री के दर्शन करने का सौभाग्य मिलता रहा। इन्हीं दिनों मुझे अपने अकारण मित्र श्री शोभाचंद जी भारिल्ल द्वारा सम्पादित और भीनासर के श्री सेठ चंपालाल जी तथा सेठ बहादुरमल जी बांठिया द्वारा प्रकाशित जवाहरकिरणावली के तीनों भाग पढ़ने को मिले। उक्त पुस्तकों में महाराज श्री के व्याख्यान पढ़कर तथा उनके विचारों पर मनन करके मैं इस परिणाम पर पहुँचा कि यदि यह विभूति इस पराधीन भारत में, खास जैन जाति में उत्पन्न न होकर, किसी स्वतंत्र देश में उत्पन्न हुई होती तो वहां वाले आज तक इसके विचारों का प्रचार करने के लिए क्या क्या न कर चुके होते। दक्षिण वालों ने पूज्यश्री को जैनियों का 'दयानंद' ठीक ही कहा था। मैं कहता हूं कि यदि ये पाश्चात्य देशों में होते तो क्या इन्हें लूथर न कहा जाता ?

एक दिन मैं महाराज के दर्शन करने गया। पूज्यश्री तख्ते पर लेटे थे। आंखें मुंदी हुई थीं। उन्हें बोलने में कष्ट भी होता था। पूज्यश्री की तन्मयतापूर्वक अनुपम सेवा करने वाले मुनि श्री सिरेमल जी महाराज ने मेरा कुछ परिचय दिया। पूज्यश्री ने आखें खोलीं। मेरे प्रणाम के उत्तर में हाथ उठाकर आशीर्वाद दिया और कहा कि तुम तो गत वर्ष भी मिले थे। मुझे पूज्यश्री की इस स्मरण शक्ति पर आश्चर्य हुआ, फिर ईर्ष्या भी हुई। यह भयंकर बीमारी! यह जरा-जर्जर देह !! और गत वर्ष मिलने की बात याद !!! मुझ से पहले और बाद में, मुझ जैसे कितने ही उपस्थित हुए होंगे। चरण छूकर और अन्य प्रकार से, न जाने कितने अनेकों ने अपनी असीम श्रद्धा और भक्ति का प्रकटीकरण न किया होगा इस तपोधन के आगे! पर मैं, जिसने कभी साधारण प्रकार से प्रणाम करने के सिवा पूज्यश्री के प्रति अपनी भक्ति प्रगट न की, इस असाधारण शारीरिक कष्ट में भी एक वर्ष के बाद तक याद कैसे रह गया।

उक्त पंक्तियां लिखने से मेरा आशय यही है कि पूज्यश्री का पंच भौतिक देह यद्यपि निर्बल था, तो भी उनका मानस निर्बल नहीं था।

ईधर उधर मँडराने लगा पर जब दूसरी दिशा में पहुँचा, तो वहाँ का दृश्य देख कर मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। पूज्यश्री तख्ते पर एक दो शिष्यों के सहारे बैठे थे। और श्री गणेशीलाल जी महाराज श्रीभगवद्गीता का पाठ सुना रहे थे। और पूज्यश्री बड़े प्रेम से सुन रहे थे। मैं भागा-भागा श्री सिरेमल जी महाराज के पास पहुँचा। अपने आश्चर्य का कारण कहा। महाराज ने कहा-पूज्यश्री के लिए न तो यह नई बात है और न आश्चर्य की। आज सोमवार है। प्रति सोमवार को पूज्यश्री मौन रहते हैं। और जैन शास्त्रों के अलावा अन्य धर्म ग्रंथों का भी कुछ समय तक पाठ सुनते हैं। आज श्रीमद् भगवत्गीता की बारी होने से उसी का पाठ हो रहा है।

मैंने मन में कहा--यदि भारत के सभी धर्माचार्य अपने में उदारता रख कर अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णुता रख कर उनके धर्म ग्रंथों का मनन किया करें तो देश के धार्मिक झगड़े बहुत कुछ दूर हो सकते हैं।

इसके बाद फिर मैं जब जब गया पूज्यश्री की तबियत गिरती ही गई।

उस दिन शनिवार था। सायंकाल के चार या पांच बजे में बीकानेर में, सेठिया विद्यालय में बैठा महाराज श्री के विषय में ही अपने एक दो मित्रों से बातें करता करता लगभग गोधूली के समय जब कोट दरवाजे के बाहर पहुँचा और सेठ लाभू जी श्रीमाल के कटले को बंद होते देखा, तभी समझ गया कि पूज्यश्री का संथारा सीझ गया है। और जरा देर में तो सारे शहर में यह बात बिजली की तरह फैल गई।

फिर मैंने उस दिन के अपने सब कामों को छोड़ा और भीनासर चल दिया। रास्ते में [भी]नासर जाने वाले भक्त नर नारियों का तांता सा लगा था। भीनासर पहुँचा। हॉल में घुसा। [भी]ड़ को चीरता हुआ आगे बढ़ा। जो कुछ दिखाई दिया अंतिम दर्शन थे, अंतिम झांकी थी। पूज्यश्री [त]ो वहां जा पहुँचे थे, जहां के लिए भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं, "यद् गत्वा न निवर्तंते तद्धाम [प]रमं मम।" पर पूज्यश्री का औदारिक देह, जो उस दिन से ६८ साल पहिले मालवे के थांदला [ग्रा]म में बालरूप में अवतरित हुआ था, जिसने युवा, प्रौढ़ और वृद्ध रूप धारण किया था, अभी [व]हीं था। अभी उस निर्जीव देह से भी कुछ कार्य होना बाकी था।

एक लकड़ी के तख्ते पर, जिस पर बैठे बैठे पूज्यश्री ने स्वस्थावस्था में अनेक व्याख्यान, [औ]र रुग्णावस्था में अपने भक्तों को आशीर्वाद ही दिये होंगे, उनका देह व्याख्यान देते समय [बै]ठने की स्थिति में रखा था, हॉल के एक खंभे से टिकाया हुआ। मालूम होता था व्याख्यान दे [र]हे हैं। मुख पर मुखवस्त्रिका लगी थी। पास में रजोहरण पड़ा हुआ था। आंखें खुली थीं। दोनों [हा]थ घुटने पर रखे थे। सुखासन से बैठे थे। रात हो चुकी थी। हॉल में लगभग १०० कैंडल [पा]वर की बत्ती जल रही थी। उसी के प्रकाश में पूज्यश्री का मुखमंडल जगमगा रहा था। मानो [दो]नों एक दूसरे की ज्योति को बढ़ा रहे थे। दर्शनार्थी आ जा रहे थे। आते अधिक थे, जाते कम [थे]। क्योंकि जो सुबह वापिस आने का कष्ट न झेलना चाहते थे उन्होंने वहीं रात बिताने का [इ]रादा किया।

इस भीड़ में मैंने सेठ चंपालाल जी बांठिया को ढूंढना चाहा। पर उस समय तो वे पूरे [ज]ंगम जीव बने हुए थे। बीकानेर से बाहर सब जगह तार से सूचना पहुँचाना, राज्याधिकारियों [से] राज्य के लवाजमें का प्रबन्ध करना, और कहां तक गिनाएं सारा प्रबंध उस एक दुबले पतले

१-१॥ मील का चक्कर लगा होगा। पर इतने ही चक्कर में, भीड़ की अधिकता के कारण ३-४ घंटे लगे। श्मशान में विमान की चांदी लूटने को लोग टूट पड़े।

यहां मुझे महाकवि तुलसीदास की एक चौपाई याद आ रही है:—

नयनन्हि संत दरश नहिं देखा। लोचन मोरपंख कर लेखा॥
ते सिर कटु तुंबरि समतूला। जे न नमत हरि गुरु पद मूला॥

यही बात मैं उन लोगों के लिए भी कहूं, जिन्होंने न तो पूज्यश्री के दर्शन किये, न उनके आगे अपना सिर झुकाया, और न उनकी शवयात्रा का जुलूस देखा।

६६—प्रखर तत्त्ववेत्ता श्रीमज्जवाहिराचार्य

(श्री घेवरचन्द बाँठिया 'वीरपुत्र' जैन न्यायव्याकरणतीर्थ, सि० शास्त्री, बीकानेर।)

परम प्रतापी श्रीमज्जैनाचार्य पूज्य श्री जवाहरलाल जी महाराज साहब जैन समाज की ही विभूति नहीं अपितु 'विश्व विभूति' थे। उनमें ऐसे अनेक गुण विद्यमान थे जिन्होंने उन्हें 'विश्व विभूति' बना दिया था। वे सच्चे महात्मा, महान्योगी, प्रखर तत्त्ववेत्ता, कुशल उपदेशक, प्रकाण्ड विद्वान्, महान् त्यागी, तपस्वी और कठोर संयमी थे। उनका हृदय अत्यन्त निर्मल और पवित्र था। इन महात्मा के दर्शन और वाणी श्रवण का सौभाग्य मुझे अनेक बार प्राप्त हुआ था और जब पूज्य श्री का चतुर्मास जोधपुर था तब चार महीने तक उनके निकट सम्पर्क में रहने का भी मुझे सुअवसर मिला था। उस समय पूज्य श्री की समग्र दिनचर्या देखने का मुझे अवसर मिला था। पूज्यश्री प्रातःकाल ब्राह्म मुहूर्त में उठकर तत्वों का चिन्तन किया करते थे। तत्पश्चात् प्रतिक्रमण के बाद वे ध्यान में विराजते थे। उनके ध्यान का आसन महान् योगी सा बड़ा स्थिर होता था। उस समय महान् योगी के चेहरे से संताप के शीताप को मिटा देने वाली अपूर्व शान्ति टपकती थी। प्रकृतिदेवी की छोटी से छोटी बात का भी वे बड़ा सूक्ष्म निरीक्षण करते थे और व्याख्यान के समय उस पर जीवन का कोई महान् तत्व उतारते थे।

व्याख्यान शुरू करने से पहले आप 'विनयचन्द चौवीसी' में से एक तीर्थङ्कर भगवान् की प्रार्थना फरमाते थे। प्रार्थना की कड़ियां बोलते समय वे उसमें तल्लीन हो जाते थे और आत्म-शान्ति का पूर्ण रसास्वाद करते थे। प्रार्थना गा लेने के पश्चात् प्रार्थना में आये हुये विषय पर कुछ फरमाते थे और प्रार्थना का माहात्म्य बतलाते थे। प्रार्थना पर अत्यधिक जोर देते हुए आप फरमाते थे कि:—मुमुक्षु पुरुष को अपना सारा जीवन ही प्रार्थनामय बनाना चाहिए। जिसका जीवन प्रार्थनामय बन जाता है उसे फिर किसी बात की कमी नहीं रहती। वह पूर्ण आत्म-शान्ति का अनुभव करता है। प्रार्थना पर बोलते हुए आप कई वक्त इन कड़ियों को दुहराया करते थे:—

सुनेरी मैंने निर्बल के बल राम।
देखे री मैंने निर्बल के बल राम॥

प्रार्थना तो पूज्य श्री के जीवन का एक विषय बन गया था। प्रति दिन प्रार्थना के विषय में वे कुछ न कुछ अवश्य फरमाते थे। सब दर्शनों का समन्वय करने की क्षमता आपकी अपूर्व थी।

'वज्रादपि कठोराणि, मृदूनि कुसुमादपि'

अर्थात्—सन्तों के हृदय फूल से भी कोमल होते हैं किन्तु परिस्थिति के अनुसार वे ही हृदय वज्र से भी कठोर हो जाते हैं।

सत्य सिद्धान्त का पालन करते हुए उस मार्ग में आनेवाली विघ्न बाधाओं से विरोध से पूज्यश्री तनिक भी घबराते न थे। जिस प्रकार सत्य सिद्धान्त का प्रतिपादन करने में वे निर्भीक वक्ता थे उसी प्रकार उसका पालन करने में भी आप निर्भीक थे। एक ऐसे कठिन परीक्षा के प्रसङ्ग को देखने का मुझे अवसर मिला था। अजमेर साधु सम्मेलन के समय कान्फ्रेन्स के पण्डाल में मुनियों के व्याख्यान हुए थे। वहाँ लगे हुए लाउडस्पीकर में बोलने के लिए आपसे कहा गया तो आपने लाउडस्पीकर में बोलने से साफ इन्कार किया और यह स्पष्ट कहा कि लाउडस्पीकर में अग्नि का स्पर्श होता है। उसमें बोलने से जैन मुनियों को दोष लगता है। इस पर वहाँ उपस्थित जनता के बहुभाग ने बड़ा विरोध किया और लाउडस्पीकर में बोलने के लिए पूज्यश्री को काफी जोर दिया तथा बड़ा कोलाहल मचाया किन्तु पूज्यश्री इस विरोध से तनिक भी न घबराये और सत्यसिद्धान्त की रक्षा के निमित्त वे लाउडस्पीकर में न बोले। हजारों की मानवमेदिनी से भरे हुए पण्डाल में से उठकर आप बाहर चले आये। इस प्रकार ऐसा विकट प्रसङ्ग एवं कठिन परीक्षा का समय उपस्थित होने पर पूज्यश्री ने जिस अपूर्व सत्साहस का परिचय दिया वह हमारे लिए गौरव लेने जैसी बात है। उस महापुरुष के इस सत्साहस को देख कर अपने से विरोध रखनेवाले तेरह-पन्थ समाज के मुंह से भी बरबस प्रशंसा के शब्द निकल पड़े थे :—

"लाउडस्पीकर में न बोल कर पूज्यश्री जवाहरलाल जी महाराज ने समस्त बाईस सम्प्रदाय समाज का मस्तक सदा के लिए उन्नत रखा है और जनता के विरोध से न घबराते हुए सत्य सिद्धान्त पर अटल रह कर उन्होंने महापुरुषोचित सत्साहस का परिचय दिया है"

जिस प्रकार पूज्यश्री का आध्यात्मिक शरीर उत्कृष्ट था उसी प्रकार भौतिक शरीर भी उत्कृष्ट था।

लम्बा कद, गौर वर्ण, विशाल भाल, तेजोमय सुदीर्घ नेत्र, चमकता हुआ ललाट, दीर्घ मस्तक, मुखमण्डल की अपूर्ण कांति, ये सब पूज्यश्री के भौतिक शरीर की उत्कृष्टता को सूचित करते थे। उनकी उत्कृष्ट शारीरिक सम्पदा, देखने वाले एक अनजान व्यक्ति को भी एकदम प्रभावित किये बिना न रहती थी। उनकी आवाज बड़ी बुलन्द थी। जब वे व्याख्यान मण्डप में बैठकर व्याख्यान फरमाते थे तब ऐसा प्रतीत होता था मानों कोई सिंह गर्जना कर रहा हो। जो व्यक्ति एक वक्त उनके दर्शन कर लेता था उसके हृदय पर उनकी तेजोमय सौम्य मूर्ति की छाप सदा के लिए अमिट हो जाती थी। वह उन्हें कभी भूलता न था। जो एक वक्त उनका व्याख्यान श्रवण

कर लेता था वह सदा के लिए उनका श्रद्धालु भक्त बन जाता था। उनके व्याख्यान में जादू की सी शक्ति थी। उनका व्याख्यान तात्त्विक होता था, उसमें शब्दाडाम्बर नहीं होता था। वे शब्दों की आत्मा को पकड़ते थे और उसमें गहरे उतर कर तत्त्व विश्लेषण पूर्वक विचार करते थे। गहन से गहन तत्त्वों की थाह लेने की उनमें क्षमता थी। उनमें ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूप रत्नत्रय का त्रिवेणी संगम था। जिस प्रकार वे अपनी विद्वत्ता और वक्तृत्व कौशल से परमतावलम्बियों को पराजित करने में समर्थ थे उसी प्रकार वे कठोर संयम पालन में भी चुस्त थे।

यद्यपि पूज्यश्री का भौतिक शरीर आज हमारे सामने विद्यमान नहीं है तथापि उनका निर्मल यश रूपी शरीर सदा अजर अमर रहेगा।

ऐसे युगावतारी महापुरुष के चरणों में मैं भक्ति-पूर्वक अपनी श्रद्धाञ्जलि समर्पित करता हूँ। इति शुभम्।

एक मुख से हजारों की वाणी

६७—(श्रीयुत शुभकरनजी)

यों तो मेरे पिता ने मेवाड़ राज्य की काफ़ी सेवा की है, लेकिन मैं भी करीब ३४ वर्ष से मेवाड़ की सेवा कर रहा हूँ। लेकिन मेरा जीवन गोश्त खाना, शराब पीना, पान खाना, सिगरेट-तमाखू पीना, शिकार करना (आदि कामों में) ही ओतप्रोत रहता था। अत्युक्ति न होगी, अगर मैं उस समय का जीवन एक जबर्दस्त शराबी व गोश्त खाने वाला व शिकार करने वाला कहूं। जीवहिंसा करने में कोई पशोपेश नहीं था।

लेकिन सन् २० में उदयपुर में पूज्यश्री जवाहर के दर्शन का सौभाग्य भूतपूर्व दीवान कोठारी बलवंतसिंहजी के साथ प्राप्त हुआ। पूज्यश्री के उपदेश से मेरे मन में घृणा व आत्म-ग्लानि उत्पन्न हुई और मन ही मन बड़ा पश्चात्ताप करने लगा और उपदेश की दिल में इतनी लगन लगी कि गोश्त खाना, शराब पीना, पान, तमाखू, बीड़ी पीना, व शिकार करना सब छोड़ दिया।

मैं कह सकता हूँ कि पूज्यश्री की वाणी में इतनी शक्ति और ऐसी अमृततुल्य है कि मुझसे जबर्दस्त मांसाहारी व शराब पान करने वाले के दिल को भी सच्चा मार्ग सुझा दिया। आप बहुत सरल स्वभावी व अलौकिक-मूर्ति हैं, जिससे मन बहुत ही प्रसन्न होता है।

मेरे जीवन के बदलने के बाद सन् १९२१ के बाद आज तक उसी तरह अमल कर रहा हूं व एक वक्त सादा भोजन (चावल आदि) लेता हूं। स्वास्थ्य पहले से काफ़ी अच्छा है। इस ६० वर्ष की आयु में भी पूज्यश्री के उपदेश से सब बुरी चीजों का सेवन छोड़ देने से जवान की तरह काम कर सकता हूँ और सादगी से समय बिताता हूँ।

सन् २० के बाद पूज्यश्री के चातुर्मास घाटकोपर, रतलाम, सरदारशहर, चूरु, धार, ब्यावर वगैरह स्थानों पर हुए। मैं दर्शन करने को बलवंतसिंह जी के साथ जाता रहा और अमृत-वाणी सुनता रहा हूँ, जिससे काफ़ी शान्ति मिली है।

ज्यादा शब्द मेरे पास नहीं कि मैं ऐसे उच्च मुनि की तारीफ करूँ, लेकिन मेरा जीवन ही उनके गुणों का गान करने के लिए थोड़ा-सा नमूना काफ़ी है।

पद्यमयी श्रद्धांजलियाँ

श्रद्धाञ्जलि

(पं० श्री गजानन्दजी शास्त्री, अजीतसरिया संस्कृतपाठशाला, रतनगढ़)

(१)

प्रतिभाप्रतिभापितशास्त्रचयं,
शरदिन्दुसमानयशोनिलयम् ।
विगतारिभयं भवदुःखदहं,
प्रणमामि जवाहरलालमहम् ॥

(२)

जिन-तत्त्वजुषां विदुषां प्रमुखं,
शरणागतपालनलब्धसुखम् ।
तपसा परिशोभितदिव्यमुखं,
प्रणमामि जवाहरलालमहम् ॥

(३)

सुखशान्तिकरं परमार्तिहरं,
जगतामुपकारविधानपरम् ।
करुणापरिपूर्णविचारधरं,
प्रणमामि जवाहरलालमहम् ॥

(४)

मनसा वचसा महता तपसा,
प्रतिपादित लोकहितंसततम् ।
करुणाकरसाधुजनैकगतिं,
प्रणमामि जवाहरलालमहम् ॥

(५)

अनुकम्पनयोगरतं विरतं,
शमसंयमसाधनतानिरतम् ।
अमृतोपमपुण्यवचःसहितं,
प्रणमामि जवाहरलालमहम् ॥

(६)

सौम्यं प्रशान्तं यशसा महान्तं,
दिव्यैरनेकैः सुगुणैर्विभान्तम् ।
आचार्यवर्यं सुसमाधिचर्यं,
जवाहरं लालयुतं नमामि ॥

(७)

दिव्यं धर्मदिवाकरं कलियुगे व्याप्तेऽपि विद्योतयन्,
पाखण्डं परिखण्डयन् प्रतिदिनं सम्मण्डयन् सज्जनान् ।
कारुण्यं समुपादिशंश्च निरतं विद्यां परां वर्धयन्,
श्री जैनेन्द्रजवाहर यतिवरो जीव्याज्जगत्यां चिरम् ॥

(२)

प्रभविष्णुता उसमें अलौकिक ज्ञान का भंडार था।
निर्भीक तार्किक, शास्त्र ज्ञाता, शील का अवतार था॥
श्रोता-श्रवण पावन हुए, उसके सदा उपदेश से।
श्रावक सदा परितुष्ट थे, उस साधु के वर वेश से॥

(३)

निज-अपर-हित संयम विधायक वह अतीव कठोर था।
हां, ज्ञान-घन लख नाच उठता नित्य मानस-मोर था॥
वह संप्रदायाचार्य था, थे जानते इसको सभी।
पर सांप्रदायिकता न उसके पास फटकी थी कभी॥

(४)

उसकी तपस्या सफल थी, संपूर्ण थी, निष्काम थी।
उपदेश, प्रवचन, वाणियां, अनमोल थीं, अभिराम थीं॥
संयम-सफल, सद्गुण-सदन, सद्भाव-सद्म सुजान था।
आचार्यवर, निजजाति का गौरव तथा अभिमान था॥

(५)

पावन परम उस साधुवर की, जन्म-भू मालव मही।
थी, पर प्रशंसा देश भर में, आज घर घर हो रही॥
अनुयायियों पर प्रेम की, उसकी अनोखी धाक थी।
निर्वाक चख-संकेत बस, आज्ञा कठोर सवाक थी॥

(६)

सर्वस्व त्यागी, निरभिमानी, ब्रह्मचारी, संत था।
तार्किक प्रवर, उसका तथा विद्या विलास अनंत था॥
गुण-गण रसिक, सद्धर्म दश लक्षण-प्रचारक धीर था।
पंडित प्रवर, प्रतिभा-प्रसिद्ध, प्रबुद्ध-पूजित पीर था॥

(७)

था वह स्वदेशी वस्तु-वस्त्र-प्रयोग का हामी बड़ा।
निजदेश की परतंत्रता का हृदय में कांटा गड़ा॥
हर रोम में उसने रमाया अहिंसा सिद्धांत था।
पर-पक्षियों के सामने निश्चल तथा निर्भान्त था।

(८)

संसार में चहुँ ओर उपदेशक दिखाई दे रहे।
जयघोष सुनकर अभ्र भेदी फूल कुप्पा हो रहे॥
पर वह जवाहर था, कि जो सब बात में व्यवहार में।
प्राचीन ऋषियों सा सदा था अनेकांत विचार में॥

(९)

था दयानंद महर्षि लूथर या कि जैन समाज में।
अवधूत पूत, सदा निरत था, लोक सेवा काज में॥
वह एक अंतर्बाह्य था, उसमें न छल का लेश था।
श्रोता समूह विमुग्धकर, उस साधु का वर वेश था॥

(१०)

उस-सा अपर अब कौन है, उसका वही उपमान था।
जब खोलता मुख गूंजता जिन-पंथ-गौरव-गान था॥
वह आर्य जीवन काल में नित लोकहित करता रहा।
मन से, वचन से, कर्म से, शुभ भावना भरता रहा॥

(११)

जिन देव-शासन-शंख फूंका, जोर से किसने कहो।
श्री साधु मार्गी संघ को किसने दिपाया था अहो॥
शुभ राष्ट्र-सेवा-प्रेरणा की संघ में की स्थापना।
ओ शून्य, कह दे जोर से जय जवाहर उन्नतपना॥
निज कर्म से आचार्यवर ने, जैन जाति निहाल की।
हो, पूज्य श्री मुनिवर तपोधन, जय जवाहरलाल की॥

(३)

झोली लेकर निकल पड़े तुम जग का सुनकर हाहाकार।
व्याकुल जग को देख देख तुम व्याकुल भी थे स्वयं अपार॥
भारत के कोने कोने में घूम घूम तुम आये थे।
जग के दुःख बटोर-बटोर कर झोली तुम भर लाये थे॥

(४)

तुमने कहा-"जगत के वासी! क्यों तुम स्वयं दुखी होते?
लगा चोट अपने ही हाथों तुम क्यों स्वयं भला रोते?
ढूंढ रहे सुख कहां जगत में, सुख जग में किसने पाया?
नभ का लेने पार चले हो, पार भला किसने पाया"?

(५)

तुमने कहा-"अरे ओ धनवानो! क्यों धन पर इठलाते हो?
इस धन को अच्छे कृत्यों में हँस-हँस क्यों न लगाते हो?
निर्धन का तुम गला घोंट कर धनिक आज दिखलाते हो?
धनवानो! तुम एक धनिक बन लाखों को रुलवाते हो"॥

(६)

तुमने कहा-"अहिंसावादी! क्यों कायर तू बनता है?
आज देश में युद्ध छिड़ा है, क्यों न युद्ध को ठनता है?

सत्य अहिंसा ले हाथों में, करो युद्ध की तैयारी।
शत्रु भी तब कांप उठेगा लख कर शक्ति तुम्हारी" ॥

(७)

तुमने कहा—"जैन धर्म नहीं कायरता सिखलाता है।
अवसर आने पर वह हँस-हँस बढ़-बढ़ हाथ बताता है ॥
जैनधर्म तो वीरों का ही धर्म सदा बनता आया।
पर हमने अपने ही हाथों घर का मान घटाया" ॥

(८)

तुमने कहा—"सभी मुनिवर से चेत सकें तो चेतें हम।
परिवर्तन करना हमको उपदेश सदा जो देते हम ॥
हम मुनिगण ही इस सेना के कहलाते हैं सेनानी।
हमीं लोग जो झगड़ेंगे तो होगी पतन कहानी" ॥

(९)

तुमने कहा—"जैन जगत से सभी एक हो जाओ।
बीती बातों को सपने में याद कभी मत लाओ" ॥
सुनी नहीं हा ! इन बातों की कीमत हमने पहचानी ना।
एक बार ही सुन लेते तो ऐसी दशा दिखाती ना ॥

(१०)

राष्ट्रदूत ! ओ धर्मदूत !! तुम जीवन के निर्मोही।
तुम-सा अन्य जवाहर हम क्या पा लेंगे अब कोई ?॥
दुख के सागर में धकेल कर चले गये क्यों हमें अहो !
कितना तड़फाना अब बाकी, सचमुच गुरुवर ! हमें कहो ॥

(११)

राष्ट्रवाद आध्यात्मवाद के तुम थे एक पुजारी।
जग का दर्द मिटाने निकले थे तुम एक भिखारी ॥
वही भिखारी, वही पुजारी बीच हमारे नहीं रहा।
बीच जवाहर को नहीं पा सभी व्यथित हैं आज महा ॥

(१२)

बिना हमें कुछ कहे तुम्हें गुरुदेव ! नहीं चल देना था !
जाने से कुछ पूर्व तुम्हें गुरुदेव ! हमें कह देना था ॥
आज तुम्हारी मधुर याद में लगा हुआ जग रोने में।
बतलाओ गुरुदेव ! छिपे हो किस अनन्त के कोने में ॥

'अंजलि'

(कुंवर केशरीचन्द सेठिया, बीकानेर)

मोक्षमार्ग के पथिक पूज्यवर,
हम कृतकृत्य आज सारे।
नमोनमो, अभिनंद्य ! तुम्हारी
महिमा में उज्ज्वल सारे।
आज तुम्हारे त्याग, शील का
यश छाया भूमण्डल में।
हिंसा का अब प्रलय नृत्य
हो रहा व्योम में, जल-थल में।
आज विश्व का उर आहत है,
पीड़ित है वसुधा सारी।
हम सब को तब प्राप्त अहिंसा
का है तुम-सा व्रतधारी।
हम सब के पथ में प्रभुवर तुम
ज्ञान-प्रदीप सजग करते।
हम सबको धर्मामृत देकर
तुम सत्पथ पर ले बढ़ते।
कैसे आज तुम्हारे गुणगण
कहूँ प्रभो ! मैं तुम्हीं कहो।
जिसकी करुणा से भीगा है
रोम-रोम यह आज अहो।
अगर कहें तुमने समाज का
हित ही रक्खा है आगे।
और हमीं सब को है प्रस्तुत
किये एकता के धागे।
दोषारोप आप पर होगा
तो ये पुण्यचरित ! मेरा।
जो समदृष्टि रहा जीवन में;
जिसने सबको सम हेरा।
इसे आपका स्वार्थ कहें
या कहें परार्थ बताओ तो।
विश्वदृष्टि लेकर तुम आये
मुझको भी अपनाओ तो।

जीवन बने यज्ञ की वेदी
अहंकार कुछ हो न जहाँ।
सदा आपके चरणचिह्न का
रहे ध्यान ही मुझे यहाँ।
वही करूँ जो रुचा तुम्हें प्रभु
इस देवोपम जीवन में।
देश, जाति क्या सब जगती को
मानूं अपना-सा मन में।
कभी न मुझसे कष्ट मिले
हो ऐसा, सदा भाव मेरा।
इष्ट हमारा बने वही जो
मंत्र आपने है प्रेरा।

"श्रद्धांजलि-समर्पण"

(लेखक—प्रिंसिपल पं० श्री त्रिलोकनाथ मिश्र, लोहना दरभंगा)

पूज्य जवाहरलाल-सूर्य को किस बादल ने छिपा लिया ?।
किसने हा !! सारी दुनियाँ को, अन्धकार से लिपा दिया ?।
अन्न-वस्त्र लुट कर भारत के, प्राण जवाहर को लूटा।
इस कसाई संवत ने हाहा !! धर्म्म-मर्म्म को भी कूटा॥
जिनके आगे हीरा-नीलम, पुखराज न कुछ दम रखते थे।
वे रत्न जवाहर कहाँ गये, जो-दिन-दिन और चमकते थे ?॥
जिनके वचनामृत को पीकर, मुर्दे भी जिन्दा होते थे।
दुनियां की झंझट को निपटा, आनन्द सेज पर सोते थे॥
जिनके उपदेशों का प्रभाव, राजाओं पर भी रहता था।
जिनकी अविरल वाणी-धारा से अमृत-स्रोत नित वहता था॥
संसार-पूज्य मालवी और गांधी, से भी जो पूजित थे।
जिनके शब्दों से दिगन्त, जल-थल, वन-उपवन गूंजित थे॥
जो सदाचार के उदयाचल, दुर्व्यसन-तिमिर के भास्कर थे।
सन्तापहरण, मृदुवचन, शान्ति में, जो अकलङ्क सुधाकर थे।
जो कटुवाद-कुहेस दिवस थे, धर्मवीरता में बे-जोड़॥
पूज्यपाद वे आज 'जवाहर', कहाँ गये भक्तों को छोड़ ?॥
जिन-प्रवचन का कौन करेगा, अब वैसा सुन्दर उपदेश दे।
कौन सुनावेगा भविजन को, ईश्वर का सच्चा सन्देश॥
कर के सारे भारत ही को शून्य, न केवल राजस्थान।
यद्यपि वे भौतिक शरीर को छोड़ सिधारे दिव्यस्थान॥

तो भी पूज्य जवाहर के विरही भक्तों की यही पुकार ।
एक बार बस रूप दिखाकर भक्तों का कर दें उपकार ॥
मम-हृदय की ज्वाला का नहिं और दीखता है प्रतिकार ।
निज भक्तों के लिए सदा प्रभु का रहता है सब अधिकार ॥
भक्ति-रसामृत को जिस बादल ने बरसाया आठों याम ।
इस तन मन-फल बिन फिर भी वह आ जावे यह है

पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराजनी स्तुति

(रचयिता—गोंडल सम्प्रदायना [illegible] श्री अम्बाजी महा

राग—नंदजीना लाल रमवा आवो ने रे

वर्त्यो छे जय-जयकार, पोरमां पूज्यजी पधार्या
जगत-जीवो तेणे तार्या, पोरमां पूज्यजी पधार्या-टेक
पूज्य जवाहरलालजी जेवा,
ज्ञान-जवेरात लाग्या छे देवा,
मोक्षनां सुखड लेवा......पोरमां० ॥१॥
देशी विदेशी ने निहाल करीने,
पोर बंदरमां पांव धरी ने,
प्रतिबोधे चित्त हरी ने......पोरमां० ॥२॥
शिष्य-परिवार शोभे छे भारी,
कुमति कुबुद्धि ने दूर निवारी
पाँचे समिति ने धारी......पोरमां ॥३॥
वैरागीनुं मन ज्ञानमां वसीयुं,
अजर-अमर पद सेवानुं रसीयुं,
अज्ञान-तिमिर खसीयुं......पोरमां० ॥४॥
अमूल्य तत्व तणी देशना दीधी
सुणतां थाय खरे आत्मनी सिद्धि,
ज्ञान प्रसादी पाय पीधो......पोरमां० ॥५॥
पूज्यश्री तमे छो जग उपकारी,
घणुं जीवी लेजो घणाने तारी,
आंबाजी कहे हर्षधारी......पोरमां० ॥६॥

जैनाचार्य पूज्य श्री जवाहरलालजी महाराजना जीवन-चरित्र अङ्क

(लेखक— श्री टी० जी० शाह)

जैनो तणुं साचुं ए तो जवाहर छे रे (राग)
देश देश मां भ्रमण जेणे कर्युं रे
सँभलाववाने सुत्रो तणो सार (१)

विशेष थी समजाव्युं जेणे प्रमाण दई नय सप्तना।
भय टले भव अनंत केरा जो थाय आतम-सरधना
वसमी छे आगल वाट हा जो थाय न आत्म सरधना
अनंत पुद्‌गल परावर्त्तन लख चौरासी फरसना।

काठियावाड़-विहार-वर्णन

(श्रीवल्लभजी रतनशी वीराणी)

लावणी

मरुधर भूमि संत शिरोमणि जब सोरठ में आय खड़े,
नृपति भूपति सेठ सामंतो प्रेम से उसका पाय पड़े।
राजकोट शहर में चौमासा ज्ञान की नौवत गड़गड़े,
देश-विदेशी मानव आवै दर्शन का वहां हेला पड़े॥
वद बीज वीती कीर्ति जीती जे ताणे प्रभु पाय धरे,
गोंडल के गादीधर आकर आप तणो सत्कार करे।
धोराजी जूनाणों जाणो, ज्यां गिरवर गिरनार खरे।
जैन जैनेतर की नहिं गणना संघ सुधारा शीघ्र करे॥
खडोआ बीलखा मेंन्द्रगढ़े थई वेरावल मंगरोल खरे,
माधवपुर में पहायन जाकर श्रीजी हजूर मुजरो ज करे।
राणा साहब भाविक भारी दीवान दरसन आवी करे,
चटकी लग गई सारे शहर में चौमासे लाएँ केस* लड़े॥
एक विनती मेरी गुरुजी गौवां इधर बहुर खड़े,
आप बिना अवतारी योगी कौन उन्हों की व्हार करे।

जामनगर में—पूज्यश्री

(रचयिता—राजकवि—श्रीकेशवलाल श्यामजी जामनगर)

मारवाड़ते दूर अति देश काठियावार।
होत वहां के साधु को यातें विरल विहार॥१॥
तामें संत तपोनिधि वयोवृद्ध तन स्थूल।
पूज्य जवाहिरलालजी औसर लखि अनुकूल॥२॥
गुर्जर जैन समाज को आग्रह जानि अथोर।
कर निश्चय द्वय वर्ष को विचरे मुनि इस ओर॥३॥
राजकोट में आरहे प्रथमहि चातुर्मास।
जामनगर आये बहुरि कछु दिन करन निवास॥४॥

*मोरबी में निश्चित हुए पूज्यश्री के चातुर्मास को बदलवाकर पोरबंदर में कराने की चर्चा जोरों से छिड़ी थी और पोरबंदर नरेश ने इसके लिए भारी प्रयत्न किया था।

मनोहर

चातुर्मास दूजा मोरबी में आई करिबे का ।
निश्चय था इतने में भई और घटना ॥
केशव निपट वात व्याधि पूज्य चरन में ।
भया मन सोचा अब कैसे राह कटना ॥
डाक्टर मेहता को बुलायके सुनाई बात
डाक्टर ने कहा ठहरो ! यहां से न हटना ॥
हम श्रम ले करेंगे सूर्य किरनोपचार
दैव के अधीन व्याधि मिटना न मिटना ॥६॥
पूज्य ने मंजूर किया केना प्रानजीवन का ।
डोली मेंह बैठ जाने लगे होस्पिटल में ॥
केशव दुमास में विनष्ट भया वातरोग ।
चलन लगे पदाति बढ़ा रक्त बल में ॥
सेवक को ज्ञान रस मिल्यो यश डाकटर को ।
द्विगुन निवास जामनग्र अन्न जल में ॥
विमल चरित्र श्री जवाहिरलाल जैसे
जैनाचार्य आजकल होंगे कोउ स्थल में ॥७॥

मनोहर

पूज्यपाद जैनाचार्य जवाहिरलालजी को ।
चातुर्मास हेतु जामनगर में निवास भौ ॥
केशव उनीसशत आनु के संवत्सर में ।
जैन जनता के हिय परम हुलास भौ ॥
अगनित मानव के सन्निध उपाश्रय में ।
गुरु मुख व्योम ज्ञान भानु को प्रकाश भौ ।
दुर्विचार दुराचार अन्धकार को निवार ।
सद्विचार सदाचार आदि को विकास भौ ॥८॥
मान्यवर महाराज जवाहिरलालजी की ।
प्रवचन शैली अति आकर्षक जानि के ॥
केशव सौं प्रौढ़ गिरा आस्वादन करिबे को ।
आन लगे जैनेतर श्रद्धा उर आनि के ॥
प्रतिदिन चूंटि चूंटि नये नये बोध पुष्प ।
माला बनवाई अनुपम गुन ठानिके ॥

अबलों करत श्रोता मनन उसी को यहां।
सुमरत हैं वक्ता के सुभाव को बखानिकें ॥९॥
कोउ पूछे महाराज जवाहिरलाल जी को।
कैसा है प्रभाव श्वेताम्बर के समाज में॥
केशव तो कहि दीजें बिन ही संकोच बुध।
जैसा है प्रभाव काष्ठ-तुम्बी औ जहाज में॥
दुस्तर अथाह भवसिन्धुकों तरत आप।
तारत अनेक जीव सिद्ध निज साज में॥
वीरता है बाज में ज्यों शौर्य मृगराज में त्यों
मृदुता भरी है इस संत शिरताज में ॥१०॥

परिशिष्ट

परिशिष्ट 'क'

(पृष्ठ नं० ४४ का परिशिष्ट)

जयतारण शास्त्रार्थ का प्रारम्भ

भगवान् महावीर स्वामी के चूकने के विषय में प्रथम प्रश्न था। उसका उत्तर तेरहपन्थियों ने दस स्वप्नों के आधार पर भगवान् को मोहनीय कर्म का उदय होना बताकर दिया था। मुनि श्री जवाहरलाल जी महाराज ने उसी के विषय में प्रश्न किया:—

प्रथम प्रश्न

भगवान् महावीर स्वामी ने जो दस स्वप्न देखे थे, वे सभी सत्य थे। इसलिए सभी धर्म में अन्तर्गत हैं। मोहनीय कर्म का उदय उनका कारण नहीं है। यह बात श्रीदशाश्रुतस्कन्ध सूत्र के पांचवें अध्ययन की तीसरी गाथा में है। उस अध्ययन के अर्थ और टीका से यह बात अच्छी तरह सिद्ध हो जाती है।

श्री फौजमल जी स्वामी का उत्तर

श्री स्थानांग सूत्र के छठे स्थान में छह प्रकार का प्रतिक्रमण बताया गया है। उसमें छठा स्वप्न का प्रतिक्रमण है। भगवती सूत्र के सोलहवें शतक के छठे उद्देशक में पांच प्रकार के स्वप्न बताए गए हैं। उनमें सत्य स्वप्न भी गिना है। धर्म में अन्तर्गत वस्तु का प्रतिक्रमण नहीं होता। इससे सिद्ध होता है कि सभी स्वप्न प्रमाद के कारण होते हैं। चाहे वे सच्चे हों या मिथ्या हों। भगवान् महावीर स्वामी के स्वप्न भी प्रमाद ही थे। इससे मोहनीय कर्म का उदय होना सिद्ध होता है, क्योंकि मोहनीय कर्म के विना प्रमाद नहीं आता।

मुनि श्री जवाहरलाल जी महाराज

श्री स्थानांग सूत्र के छठे स्थान की दीपिका, टीका और टब्बे में नीचे लिखा खुलासा है:— "आउल माउलाए सुमणवित्तियाए" इस प्रकार आवश्यक सूत्र का मूल पाठ है। इसका उद्धरण स्थानांग की दीपिका आदि में दिया गया है। आवश्यक सूत्र में 'आउल माउलाए' का अर्थ है स्त्री के विषय में आकुल चित्त किया हो। 'सुमणवित्तियाए' का अर्थ है अनेक जंजाल आदि का स्वप्न देखा हो। इससे सिद्ध होता है कि मिथ्या स्वप्नों के लिए प्रतिक्रमण कहा गया है, सत्य स्वप्नों के लिए नहीं।

श्री फौजमल जी स्वामी

'आउल माउलाए' यह पाठ अलग है और स्वप्नों का पाठ अलग है। 'आउलमाउलाए' पाठ जाग्रदवस्था के लिए है। स्वप्न के लिए नहीं है। जवाहरलाल जी ने जो उत्तर दिया है उस से हमारे प्रश्न का समाधान नहीं होता।

इस के बाद पहले दिन का शास्त्रार्थ समाप्त हुआ। चारों मध्यस्थों ने हस्ताक्षर किए।

दूसरा दिन

(मुनि श्री जवाहरलालजी महाराज)

प्रतिवादी का कहना है कि 'आउल माउलाए, पाठ जाग्रत अवस्था का है, स्वप्न का नहीं।'' यह कहना मिथ्या है क्योंकि स्थानांग सूत्र की टीका, दीपिका और टबा में यह पाठ स्वप्न-कोटि में मौजूद है। उसे कोई भी देख सकता है।

दूसरी बात यह है दशाश्रुतस्कन्ध सूत्र के पाँचवें अध्ययन में चित्तसमाधि के दस स्थानक कहे गए हैं। उनमें तीसरा स्थान यथातथ्य स्वप्नदर्शन की प्राप्ति है। हमारी और प्रतिवादी दोनों की यह मान्यता है कि जिन कार्यों को भगवान् ने अच्छा कहा है अर्थात् जिन के लिए भगवान् की आज्ञा है उन में पाप नहीं है। चित्त समाधि के दसों स्थान भगवान् की आज्ञा में हैं, इस लिए पाप नहीं हैं। तीसरी चित्तसमाधि की टीका में यथातथ्य स्वप्नों का उदाहरण देते हुए भगवान् के स्वप्नों का उदाहरण दिया है। इस लिए भगवान् के स्वप्न आज्ञा में हैं। वे प्रमाद या पाप रूप नहीं हैं। समवायांग सूत्र के दसवें समवाय में भी भगवान् के स्वप्नों का यथार्थ होना तथा उन का चित्तसमाधि में गिना जाना बताया है।

तीसरा दिन—श्री फौजमल जी स्वामी

वादी का कहना है कि 'आउल माउलाए' पाठ जाग्रदवस्था का नहीं है और स्वप्नावस्था का है। इसे वे दीपिका आदि का प्रमाण देकर सिद्ध करने को तैयार हैं। इसके लिए हमारा यही कहना है कि उस पाठ को देखकर निर्णय कर लेना चाहिए। हमारा कहना तो यही है कि 'आउल माउलाए' जाग्रदवस्था के लिए है और 'सुमिणवित्तियाए' यह स्वप्नावस्था के लिए। सूत्र में दोनों अवस्थाओं के लिए प्रतिक्रमण बताया गया है, क्योंकि दोनों में चित्त का विक्षेप समान रूप से होता है। यदि कोई स्वप्न में समुद्र को भुजाओं से तैरता है अथवा शत्रु को जीतता है तो उसे चित्तविक्षेप से होने वाली क्रिया तो अवश्य लगेगी। चाहे जगने पर वे स्वप्न सत्य ही सिद्ध हो जायँ। भगवान् ने यथार्थ स्वप्न देखे थे, यह बात मैं मानता हूँ। किन्तु स्वप्नकाल में तो चित्त का विक्षेप ही था। विक्षेप मोहनीय कर्म के उदय से होता है। इससे स्वप्न पाप सिद्ध हो जाते हैं।

चौथा दिन-मुनि श्री जवाहरलाल जी म०

'आउलमाउलाए, सुमिणवित्तियाए' इस पाठ के लिए अब तर्क की आवश्यकता नहीं है। मध्यस्थ महाशयों को चाहिए कि विद्वानों से पूछ कर अच्छी तरह निर्णय कर लेवें।

यह प्रसन्नता की बात है कि प्रतिवादी ने भगवान् के स्वप्नों को सत्य स्वीकार कर लिया है। किन्तु ऐसा करने में वे अपने पूर्वाचार्य जीतमल जी का विरोध कर बैठे हैं। क्योंकि उन्होंने 'भ्रम विध्वंसन' में लिखा है—''वलि भगवंत छद्मस्थपने दश स्वप्ना दीठा ते पण विपरीत छै।''

आवश्यक सूत्र में जहाँ स्वप्नों का प्रतिक्रमण बताया गया है वह मिथ्या जंजाल आदि विपरीत स्वप्नों के लिए है। यथार्थ स्वप्नों के लिए नहीं। यह बात स्वयं भ्रमविध्वंसन से सिद्ध होती है। उसमें लिखा है—

इहाँ संवुडो स्वप्नो देखे यथा तथ्य सांचो देखे कह्यो। [illegible]

तो झूंठा पिण आवे छै ! जे आवश्यक अध्ययन चोथे कह्यो—सोवण विात्तियाए। कहतां स्वप्ना में जंजाल आदि देखे करी तथा आगल कह्यो 'पाणभोयणविपरियासयाए' कहतां स्वप्ना में पाणी नो पीवो, भोजन करवो ते अतिचार नो मिच्छा मि दुक्कडं। इहां स्वप्न जंजालादिक जूंठा विपरीत स्वप्ना साधुने आवतां कह्यो छे।

ठाणांग सूत्र में जहाँ प्रतिक्रमण की बात आई है, वहाँ टीका में आवश्यक सूत्र का उद्धरण दिया है और आवश्यक सूत्र में आए हुए पाठ की व्याख्या जीतमल जी ने ऊपर लिखे अनुसार की है। इससे यह स्पष्ट है-कि जीतमल जी भी यह मानते हैं कि सत्य स्वप्न का प्रतिक्रमण नहीं होता। ऐसी दशा में फौजमल जी सत्य स्वप्न के लिए भी प्रतिक्रमण बताकर अपने पूर्वाचार्य और सिद्धान्त ग्रन्थ का विरोध कर रहे हैं।

यह नियम नहीं है कि प्रतिक्रमण उसी बात का होता है जो मोहकर्म के उदय से हो। बृहत्कल्प सूत्र में प्रथम और चरम तीर्थङ्करों के साधुओं के लिए दोनों समय प्रति दिन प्रतिक्रमण करना आवश्यक बताया गया है। बाकी बाईस तीर्थंकरों के साधुओं के लिए दोष लगाने पर प्रतिक्रमण का विधान है। ऐसी दशा में भगवान् महावीर के शासन में प्रतिक्रमण के लिए दोष का होना आवश्यक नहीं है।

हमने कहा था कि तीसरी चित्तसमाधि होने के कारण यथार्थ स्वप्न भगवान् की आज्ञा में हैं, इसलिए पाप नहीं हैं। प्रतिवादी ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। भ्रमविध्वंसन में लिखा है—

"तो इहाँ साचो स्वप्नो देखे इम क्यों कह्यो, एनो न्याय—ये सर्व संवुडा साधु आश्री न थी। विशिष्ट अत्यन्त निर्मल चारित्र नो धणी संवुडो स्वप्नो देखे ते आश्री कह्यो छे।" इति।

भगवती सूत्र १६ शातक ६ उद्देश्य के टब्बे में भी यही बात लिखी है। टब्बाकार और जीतमल जी दोनों इस बात को मानते हैं कि यथार्थ स्वप्न अत्यन्त निर्मल चारित्र वाले को ही आते हैं। फिर यथार्थ स्वप्नों के कारण भगवान् को प्रमाद वाला बताना कितनी बुरी बात है।

आचारांग सूत्र नवमाध्ययन तीसरे उद्देश की ८ वीं गाथा में कहा है—छद्मस्थ अवस्था में भगवान् ने पाप नहीं किया, नहीं कराया, करते को भला नहीं जाना।

इसी उद्देश की पन्द्रहवीं गाथा में कहा है कि भगवान् ने छद्मस्थापने में एक बार भी प्रमाद कषाय आदि पाप नहीं किया।

इन सब प्रमाणों के होते हुए भगवान् को पाप लगने की बात कहना शास्त्रविरुद्ध तथा स्वसिद्धान्त विरुद्ध है।

"स्वप्न में शत्रु जीतना, समुद्र पार करना आदि चित्त का विक्षेप है, इसलिए पाप है।" यह कह कर भगवान् को पाप बताना भी ठीक नहीं है। हम यहाँ शास्त्रों का अर्थ और उससे सिद्ध होने वाली बात का निर्णय करने के लिए बैठे हैं। भगवान् के स्वप्न पाप नहीं है, इसके लिए अनेक शास्त्रीय प्रमाण दिए चुके हैं। उनका विरोध किसी शास्त्र के प्रमाण द्वारा ही होना चाहिए। लौकिक स्वप्नों के साथ भगवान् के स्वप्नों की तुलना करना उचित नहीं है। स्वप्नों का कारण चित्तविक्षेप ही नहीं है। सूत्र में स्वप्नों के बहुत से कारण बताए गए हैं। सब स्वप्नों को बराबर करना ठीक नहीं है। लोकोत्तर बातों के लिए हमें आगम से निर्णय करना चाहिए। अपनी अटकल लगाने से मिथ्यात्व का भागी होना पड़ता है।

उपरोक्त उद्धरण में स्वप्न दर्शन को अचक्षु दर्शन का भेद कहा है। टीकाकार भी इसी प्रकार कहते हैं:—

स्वप्नदर्शनस्याचक्षुर्दर्शनान्तर्भावेऽपि सुप्तावस्थोपाधितो भेदो विवक्षित इति।"

इन प्रमाणों से स्वप्न दर्शन अचक्षुदर्शन का भेद है, यह सिद्ध हो जाता है। अनुयोगद्वार सूत्र में अचक्षु दर्शन को क्षायोपशमिक भाव कहा है—

"खउवसमिया अचक्खुदंसणे।"

तेरहपंथ के प्रणेता भीखम जी ने अपने बनाए हुए तेरह द्वारों में भी यही बात लिखी है—

"दर्शनावरणीय कर्म रो क्षयोपशम निपन्न होवे तो ५ इन्द्रिय, ३ दर्शन एवं ८।"

नन्दी सूत्र में स्वप्नज्ञान को इन्द्रिय मतिज्ञान का भेद बताया है—

"एवं स्वप्नमधिकृत्य नोइन्द्रियस्यार्थावग्रहादयः प्रतिपादिताः।"

इन सब प्रमाणों से सिद्ध है कि स्वप्न का दर्शन और स्वप्न का ज्ञान क्षायोपशमिक भाव है। क्योंकि स्वप्नदर्शन को अचक्षुदर्शन का भेद बताया गया है और अचक्षुदर्शन क्षायोपशमिक भावों में बताया गया है। इससे स्वप्नदर्शन का भी क्षायोपशमिक भावों में होना सिद्ध हो जाता है। निद्राप्रमाद औदयिक भाव है, स्वप्नदर्शन नहीं है।

'आउल माउलाए' पाठ स्वप्न कोटि में है। इसे कोई भी देख सकता है।

प्रतिवादी का छद्मस्थ या साधु को यथार्थ स्वप्न आते हैं या नहीं, इत्यादि पूछना शास्त्रार्थ के नियम विरुद्ध है। क्योंकि निश्चयानुसार पहले हमारे प्रश्न का उत्तर हो जाना चाहिए, फिर प्रतिवादी नया प्रश्न खड़ा कर सकते हैं। बीच में नई नई बातें खड़ी करना ठीक नहीं है। भगवान् ने छद्मस्थपने में प्रमादकषायादि पाप का सेवन नहीं किया, उसके लिए आचारांग सूत्र का निम्नलिखित पाठ टब्बार्थ और टीका के साथ दिया जाता है—

मूल पाठ—छउमत्थो वि परक्कममाणो ण पमायं सयं विकुव्वित्था।

टब्बा—श्री महावीर छद्मस्थ छतो पिण विविध अनेक प्रकार संयम अनुष्ठान ने विषे प्राक्रम करतो एक बार प्रमाद कषायादिक न करे, स्वामी इण परे वरत्या इति।

टीका—न प्रमादकषायादिकं सकृदपि कृतवानिति।

इस पाठ को देख लेने के बाद सन्देह का अवसर नहीं रहता। यदि फौजमल जी इसे भी मानने को तैयार न हों तो हमारे पास कोई उपाय नहीं है। हमारा कार्य तो सत्य वस्तु को प्रकट कर देना है।

प्रतिवादी फौजमल जी का यह कहना भी ठीक नहीं है कि भगवान् के १० स्वप्न निद्रा प्रमाद में हैं और निद्रा प्रमाद मोहनीय कर्म का उदय है। इसके लिए उन्होंने आचारांग तथा ठाणांग की दीपिका आदि के जो प्रमाण दिए हैं, उनमें कहीं पर भी उपरोक्त बात नहीं है।

शास्त्रों में निद्रा दो प्रकार की बताई गई है—द्रव्यनिद्रा और भावनिद्रा। नींद आना या स्वप्न आदि देखना द्रव्यनिद्रा है और मिथ्यात्व, अविरति कषाय आदि भावनिद्रा हैं। भावनिद्रा मोहनीय कर्म के उदय से असंयती जीव को होती है। वही पाप है। द्रव्यनिद्रा दर्शनावरणीय के उदय से होती है, उसमें पाप नहीं है।

भावार्थ—सुप्त दो प्रकार के होते हैं—द्रव्यसुप्त और भावसुप्त। निद्राप्रमाद वाला द्रव्य-सुप्त होता है। जो व्यक्ति मिथ्यात्व और अज्ञान रूप महानिद्रा में सोया हुआ है वह भावसुप्त है। असंयती मिथ्यादृष्टि निरन्तर भावसुप्त हैं। सम्यक् ज्ञान और तदनुकूल अनुष्ठान न होने से वे निद्रा में पड़े हुए हैं। सम्यग् ज्ञान वाले मुनि जो मोक्षमार्ग में चलते हैं वे तो सदा जाग्रत हैं। वे हित की प्राप्ति तथा अहित का परिहार करते हैं। इसलिए दूसरी पौरुषी आदि में द्रव्यनिद्रा लेते हुए भी वे सदा जागते हैं। इस प्रकार दर्शनावरणीय कर्म के विपाक का उदय होने से कहीं पर सोता हुआ भी जो संवेग तथा यतना वाला है वह दर्शनमोहनीय रूप महानिद्रा हट जाने से जाग्रत ही है।

उपरोक्त टीका में भावनिद्रा वाले को अमुनि तथा मिथ्यादृष्टि कहा है। भगवान् तो सर्व श्रेष्ठ मुनि तथा सम्यग्दृष्टि थे। उनके लिए उपरोक्त विशेषण नहीं हो सकते। इसलिए उनमें भाव-निद्रा का होना भी सिद्ध नहीं होता।

भगवतीसूत्र ६ शतक ६ उद्देश में भावनिद्रा वाले को अव्रती कहा है। इसलिए भगवान् को भावनिद्रा न मानकर दर्शनावरणीय कर्म के उदय से होने वाली द्रव्यनिद्रा ही माननी चाहिए। द्रव्यनिद्रा में पाप नहीं है, यह बात भ्रमविध्वंसनकार भी मानते हैं। इसके लिए पाठ ऊपर लिखा जा चुका है। एक और जगह 'भ्रमविध्वंसन' में लिखा है—

"एक मोहनीय रा उदय बिना और कर्मा रा उदय थी पाप न लागे।"

द्रव्यनिद्रा दर्शनावरणीय का उदय है, मोहनीय का नहीं। यह सिद्ध हो चुका है। इस लिए भगवान् को पाप का लगना बताना शास्त्रविरुद्ध तथा भ्रमविध्वंसन विरुद्ध है।

निद्राप्रमाद को मोहनीय कर्म का उदय मूल या दीपिका आदि किसी में नहीं बताया गया है। इसके लिए फौजमल जी का कथन कपोलकल्पित है। द्रव्यनिद्रा के लिए निद्राप्रमाद शब्द हम आचारांग की टीका तथा दीपिका में बता चुके हैं।

फौजमल जी का यह कथन भी ठीक नहीं है कि निद्रा और निद्राप्रमाद दोनों भिन्न भिन्न हैं। उत्तराध्ययन सूत्र के ११वें अध्ययन की तीसरी गाथा में टीकाकार लिखते हैं—

"प्रमादेन मदविषयकषायनिद्राविकथारूपेण।"

इसमें निद्रा को ही निद्राप्रमाद बताया गया है।

आवश्यक सूत्र में अज्ञान का प्रतिक्रमण बताया गया है। उसका पाठ है—

'अन्नाणं परियाणामि'

अनुयोगद्वार सूत्र में तीन अज्ञानों को क्षायोपशमिक भाव कहा है। ऐसी दशा में मोह-नीय के उदय का ही प्रतिक्रमण बताना शास्त्रविरुद्ध है। श्रीबृहत्कल्पसूत्र के चौथे उद्देश का प्रमाण भी पहले दिया जा चुका है।

फौजमल जी का यह कहना ठीक नहीं है कि जीतमलजी ने कहीं पर शास्त्रविरुद्ध प्ररूपणा नहीं की और न भगवान् की अवज्ञा की है। भगवान् ने सत्य स्वप्न देखे थे, ऐसा शास्त्रों में जगह जगह आया है। 'भ्रमविध्वंसन' में उन्हें विपरीत लिखा है। यह शास्त्र और भगवान् दोनों का अनादर है।

फौजमल जी ने हमारे लिए कहा है—शास्त्र में सात निह्नव हैं और जवाहरलाल जी ने

पौष शुक्ला चतुर्दशी को मध्यस्थों ने कहा—ऊपर लिखे पाठ का अर्थ बाईस सम्प्रदाय की तरफ से पण्डित बिहारीलाल जी तथा तेरहपंथ की तरफ से पण्डित बालकृष्ण जी लिखकर दे देवें। हम उसका निर्णय अपनी इच्छानुसार विद्वानों से करा लेवेंगे। वह निर्णय दोनों पक्ष वालों को मान्य होगा।

दोनों पक्ष वालों ने इस बात को मान लिया।

बाईस सम्प्रदाय की तरफ से नीचे लिखे अनुसार लिखा गया—"हमारा कथन यह है कि स्वप्नदर्शन को श्रीमत् ठाणांग जी के आठवें ठाणे में अचक्षुदर्शन का भेद कहा है। यानि अचक्षुदर्शन के गर्भित ही है और अचक्षुदर्शन को श्रीमत् सूत्र अनुयोगद्वार जी में क्षयोपशम भाव में कहा है। तथा प्रतिवादी फौजमल जी के मत के आदि पुरुष भीषमजी ने जो तेरह द्वार बनाए हैं, उनके अष्टम द्वार में भी अचक्षु दर्शन को क्षमोपशम भाव में कहा है। स्वप्न दर्शन अचक्षुदर्शन के अन्तर्गत है, इसलिए क्षयोपशम भाव में है। मोहनीय कर्म के उदय भाव में नहीं है। इस हेतु से यह सिद्ध होता है कि भगवान् महावीर स्वामी द्वारा देखे गए दस स्वप्न मोहनीय कर्म के उदय भाव में नहीं हैं।

श्री भगवती सूत्र की टीका का खुलासा निम्नलिखित है—

"एषां च पिशाचाद्यर्थानां मोहनीयादिभिः स्वप्नफलविषयभूतैः सह साधर्म्यं स्वमूह्यमिति।"

अर्थ—इन पिशाचादि अर्थों का स्वप्नफल के विषय रूप मोहनीय कर्म आदि के साथ सादृश्य स्वयं समझ लेना चाहिए।"

हम अपनी तरफ से समेगी श्री केसरविजय जी को निर्णायक चुनते हैं। यदि टीका का अर्थ ऊपर लिखे अनुसार न हो अथवा इससे स्वप्नों का कारण मोहनीय का उदय सिद्ध होता हो तो केसरविजय जी का निर्णय हमें मंजूर है।

फौजमल जी की तरफ से नीचे लिखे अनुसार लिखा गया—

हमारा यह कथन है कि सूत्र भगवती जी का शतक १६ मां उद्देश छठा छापा की पढ़त का पत्र १२२२ मां की टीका—

"एषां च पिशाचाद्यर्थानां मोहनीयादिभिः स्वप्नफलविषयभूतैः सह साधर्म्यं स्वयमूह्यम्।"

इस टीका से भगवान् महावीर स्वामी ने देखे वह यथातथ्य स्वप्न मोहनीय कर्म के उदय सिद्ध होते हैं।

मध्यस्थों ने पूछा—क्या आपको समेगी केसरविजय जी का निर्णय मान्य होगा?

तेरहपंथी साधु फौजमल जी तथा जयचन्द जी ने विचार करके बाद में उत्तर देने के लिए कहा। दूसरे दिन तेरह पंथियों ने उन्हें निर्णायक तो मान लिया किन्तु केसरविजय जी विहार कर गए।

मुनि श्री जवाहरलाल जी महाराज ने मध्यस्थों से अन्तिम निर्णय के लिए फिर कहा। मध्यस्थों ने दोनों तरफ के पण्डितों की लिखित राय ली।

बाईस सम्प्रदाय की तरफ से पण्डित बिहारीलाल जी ने नीचे लिखे अनुसार राय दी।

"सूत्र भगवती जी का शतक १६ मां उद्देश्य छठा छापा की पढ़त का पत्र १२२२ की

में स्वप्न हुआ उस वक्त छद्मस्थ गुणस्थान ६ कर्म ८ सहित थे। उस वक्त क्षय नहीं हुआ। इस वजे से मोहनी साबित है। इसका प्रमाण पहिला ठाणांग आचरांग की टीका दीपिका टबा आदि प्रमाण पहले दे चुके हैं। सभाजन के सामने मोहनीय कर्म का उदय साबित है।

इन दोनों लेखों का निर्णय करने के लिए पण्डित देवीशङ्कर जी को मध्यस्थ चुना गया उन्होंने नीचे लिखे अनुसार फैसला दिया—

श्रीमान् सर्व मध्यस्थ महाशयों से श्रीमाली ज्ञाति पंडित देवीशङ्कर का यह निवेदन है कि आपने जेतारण ग्राम में तेरापंथी साधु फौजमल जी आदि तथा बाईस टोलों के साथ जवाहरलाल जी आदि का यहाँ समागम होने से विराजने से दोनों साधु जी के परस्पर स्वप्न विषय में चर्चा ठहरी। उसमें साधु जी जवाहरलाल जी का प्रश्न यह है कि भगवान् महावीर स्वामी को दस स्वप्न आए सो चित्तसमाधि में हैं। और धर्मध्यान में हैं। और फौजमल जी का उत्तर यह है कि मोहनीय कर्म का उदय में है। तो यहाँ मध्यस्थों की अपेक्षा हुई जब दोनों की रजावंदी से ४ मध्यस्थ मुकर्रर किए गए। वह मध्यस्थों के नाम--जैनधर्मी सेठ मोकलचंद जी मन्दिरमार्गी, सेठ मुलतानमल जी मन्दिर मार्गी, विष्णुधर्मी कथाव्यास जी सरूपचन्द जी, पंचोली उदयराजजी, और बाईश टोलों की तरफ से पंडित बिहारीलाल जी और तेरह पंथियों की तरफ से पंडित बालकृष्ण जी। और मध्यस्थों की तरफ से दोनों साधु जी की रजावन्दी से मुझ को मुकर्रर किया। जिस पर दोनों साधु जी की तरफ से सूत्र समवायांग जी, ठाणांग जी की टीका, दीपिका टबा का प्रमाण परस्पर दिखलाया। बाद में सूत्र छापा की भगवती जी की संस्कृत टीका की पंक्ति। एषा च पंक्तिः--

> "एषां च पिशाचाद्यर्थानां मोहनीयादिभिः स्वप्नफलविषय-
> भूतैः सह साधर्म्यं स्वयं समूह्यमिति।"

छापा की भगवती सूत्र के पत्र १२२२ के शतक १६ उद्देश ६ में लिखी हुई पंक्ति पर टूट होने की ठहरी। पौष सुदी १४ के रोज, बाद में माघकृष्ण ३ के रोज मध्यस्थों ने मुझको कहा कि आपने इतने दिन बैठके ग्रन्थों का दोनों तरफ से प्रमाण सुना तो इसमें आप की राय क्या है सो लिखो। जब मैंने ग्रन्थों को सुनने से या देखने से या तुच्छ मेरी बुद्धि के अनुसार राय लिखता हूँ सो यथाः—

महावीर स्वामी ने छद्मस्थ अवस्था में दश स्वप्न देखे थे। तो छद्म नाम कपट तत्र कोषः-

> कपटोऽस्त्री व्याजदम्भोपधयश्छद्मकैतवे ।
> कुसृतिर्निकृतिः शाठ्यं प्रमादोऽनवधानता ॥
>
> इत्यमरः।

तर्हि शठत्वात् चित्तसमाधिर्न ज्ञायते। छद्मस्थपणे सें चित्तसमाधि रो ज्ञान नहीं होवै है किन्तु सदा ही काल मोहादिक बने रहते हैं। और वीर प्रभु को दश स्वप्न आये थे उसी समय छठा गुणठाणा था तो छठा गुणस्थान का नाम प्रमादी है प्रमाद नाम भी कपट का होता है। तो धर्मध्यान के साथ बिल्कुल सम्बन्ध है ई नहीं। हमेशे पाप के साथ सम्बन्ध है तो इनसे भी मोहादिक सिद्ध हुए। और भगवती सूत्र की टीका का अर्थ यह है कि--एषां च पिशाचाद्यर्थानां मोहनीयादिभिः स्वप्नफलविषयभूतैः सह साधर्म्यं स्वयमूह्यमिति।'

सुजानगढ़ चर्चा

है, ऐसा वादी कायम कराता है।ॐ अतएव उस पुरुषके जब शास्त्रोक्त अहिंसा सत्य आदि व्रत हैं ही नहीं तो फिर उसके अहिंसा-सत्य आदि व्रत पालनेका प्रश्न करना वन्ध्या-पुत्रकी तरह असम्भव है।

तेरह पन्थ-सम्प्रदायकी ओरसे इस उत्तरके खण्डन और अपने प्रश्नके समर्थनके लिये पुनः नेमीनाथजीने निम्न प्रश्न सुनाकर नोट कराया—

"हमारे पूछनेका अभिप्राय यह है कि, जैनेतर जनता सत्य तप ब्रह्मचर्य अहिंसाका पालन करती है उससे उनका जन्म-मरण घटता है या बढ़ता है ? इसका उत्तर आपने कुछ भी न दिया मेरे प्रश्नको असम्भव बताया। यह तो जब उचित था कि जैन धर्मके सिवाय अन्य धर्मवाले कोई भी सत्य न बोलते हों। किन्तु जैनधर्ममें इसका पुष्ट प्रमाण है कि अन्यधर्म वाले भी सत्यको ग्रहण करते हैं, जिसका प्रमाण प्रश्नव्याकरणमें देखिये। यह है—

अनेग पाखण्ड परिग्गहियं

जिसका यह अर्थ है कि सत्यको अनेक पाखण्डियों ने ग्रहण किया है। इससे सत्य बोलना जैनधर्मानुसार भी अन्यधर्मवालों के लिये प्रमाणित है। तब मेरा प्रश्न सत्यादिके विषयमें असम्भव कैसे हुआ ? और आपने जो 'जैनधर्म के अतिरिक्त कोई भी सत्यधर्मको असत्य मानता है' ऐसा उत्तरमें लिखा है तो वह सत्यधर्म कौनसा है !

इसका जो उत्तर पूज्यश्रीने सुना कर नोट कराया, वह इस प्रकार है—

"प्रश्नकर्त्ता अपने लेखी प्रश्नको भी टालाटूली करके शंकामें लिखता है कि 'हमारा अभिप्राय और था' इत्यादि लिख कर अपना मूल प्रश्न उलटाना चाहता है. परन्तु वह लेखबद्ध होनेसे अब उलट नहीं सकता। जैनेतरके लिये प्रश्न नहीं लिखवाया किन्तु जैनधर्मको असत्य माननेवाले दुराग्रहीके लिये पूछा है। और जो सत्य जैनधर्मको असत्य मानता है, वह अहिंसा सत्य आदि व्रतोंका कदापि पालन नहीं करता है। अतएव प्रथम पूछा हुआ प्रश्न गलत है। वह अपनी गलती स्वीकार किये बिना प्रश्नकर्त्ताका आगे बढ़कर बोलना व मूल प्रश्नको उलटाना कदापि उचित नहीं कहा जा सकता। और जो प्रश्नव्याकरण सूत्रका मूल पाठका अर्थ प्रश्नकर्त्ताने यह भी प्रश्न कर्त्ताके उस पाठकी टीकाका अज्ञानपना सूचित करता है। जब प्रश्न ही गलत है तब उसके विषयमें प्रमाणादिक देने लेने की बातें करना वन्ध्या पुत्रका विवाह करनेकी तरह व्यर्थ है।

अज्ञानता सूचित की है, वह व्यर्थ है; क्योंकि वह टीका मेरे ही प्रमाणके अनुकूल है ।"

"अतएव आप जो मेरे प्रश्नको गलत बताते हैं, वह प्रश्न ठीक है, लेकिन आपकी समझमें ही गलती है । इसलिये मेरे प्रश्नका उत्तर मिलना चाहिये ।"

उक्त बातों को सुनाने व नोट करानेके पश्चात् समय बहुत कम रह गया था । पूज्यश्रीने इन बातोंके उत्तरमें जबानी ही ५-७ मिनिटमें कुछ फरमाया, परन्तु समयाभावसे पूरा उत्तर सुनाया जाकर नोट करा देना असम्भव था और गोठीजी तथा नेमीनाथजीको, जो उत्तर आज सुनाया जाय उसे कल नोट करना स्वीकार न था, अतः कलके लिये भी यही समय नियत होकर तीन बजेके लगभग सभा विसर्जित हुई ।

तीसरे दिन बुधवार ता० १६-२-३० मिती फाल्गुन कृष्ण ७ को फिर उसी प्रकार कार्यारम्भ हुआ । जनता आज भी उसी संख्यामें थी । श्रीनाजिम साहब कार्यवश किसी अन्य ग्रामको चले गये थे और उनके स्थानपर श्रीडिस्ट्रिक्ट सुपरेण्डेण्ट साहब पुलिस सिपाहियों सहित पधारे थे जिन्हों-ने शान्तिरक्षाका कार्य अपने हाथमें लिया ।

नेमीनाथजीने अपने प्रश्नके समर्थनमें कल जो बातें सुनाई थीं और गोठीजी ने जिन्हें नोट कराया था, उन सम्पूर्ण बातोंका क्रमवार उत्तर तथा भविष्यमें उन मुख्य-मुख्य बातों जिनमें तेरह पन्थ और बाईस-सम्प्रदायमें मतभेद है—के विषयमें प्रश्नोत्तर होने आदिके लिये जो लेख पूज्यश्रीकी ओरसे तेरह पन्थ-सम्प्रदायी और दर्शक जनता को सुना कर नोट कराया गया, वह नीचे दिया जाता है —

प्राणी की रक्षा और दीन दुःखियों पर अनुकम्पा लाकर उनके दुःखों को मिटाना इत्यादि पवित्र कार्य को एकान्त पाप कह कर अपवित्र बतलाता हो। वह चाहे आपके मत में सत्याग्रही क्यों न हो, पर मैं उसे दुराग्रही मानता हूं और संसार भी उसे दुराग्रही ही कहेगा।"

"(ङ) शिवराज ऋषि, जैन धर्म स्वीकार करने के पहले अहिंसा सत्य आदि व्रतों का पालन करने वाला था, यह भगवती शतक ११ उद्देशा ६ में नहीं लिखा है। न जैन धर्म को असत्य मानने वाला ही लिखा है। फिर उनके नियमादि का नाम लेकर जैन धर्म को झूठा मानता हुआ अहिंसा-सत्य आदि व्रतों का पालन करने का सम्भव बताना ही शशक शृंगवत् है।"

"(च) प्रश्न व्याकरण सूत्र की टीका को जो आपने अपने अनुकूल बताया, यह आपका भ्रम है। वास्तव में वह टीका, आपने जो अर्थ बताया है उसके सर्वथा प्रतिकूल है, क्यों कि वहां पाखण्डी शब्द का अर्थ व्रतधारी किया है जैसे—

अनेकपाखण्डिपरिगृहीतं नानाविधव्रतिभिरङ्गीकृतम्।*

तथा दशवैकालिक सूत्र की निर्युक्ति में लिखा है—

पव्वइए अणगारे पासण्डे चरग तावसे भिक्खू।
परिवाइए य समणे निग्गन्थे सञ्जए मुत्ते॥ ‡

इसी निर्युक्ति की टीका में पाखण्डी शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए लिखा है—

पाखण्डं-व्रतं तदस्यास्तीति पाखण्डी। ※

इन सबों का तात्पर्य यह है कि पाखण्ड नाम व्रत का है और जो व्रतों को धारण करता है, वह पाखण्ड या पाखण्डी कहलाता है। ऐसे अनेकों व्रत धारियों से स्वीकार किया हुआ होने से सत्य व्रत को 'अनेक पाखण्ड परिगृहीत' कहा है। निर्युक्तिकार ने व्रतधारी-साधुओं के पर्याय में पाखण्ड शब्द की गणना की है। वह निर्युक्ति ऊपर लिख दी गई है और उसकी टीका में पाषण्ड शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए टीकाकार ने 'पाखण्ड' व्रत का नाम बताया है। परन्तु 'पाखण्ड' शब्द का और भी अर्थ है। जैसे कि 'पाखण्डी' दाम्भिक यानी ढोंगी का भी नाम है। परन्तु वह पाखण्डी सत्य व्रत धारी नहीं होता, अतः यहां वह अर्थ नहीं घटता। इस लिये 'पाखण्डी' शब्द का अर्थ 'व्रतधारी' टीकाकार ने किया है, यहां पर वहीं उपयुक्त है।"

"अब आपने अपने पहिले नम्बर के प्रश्न को ठीक बतलाते हुए उसका उत्तर मेरे से मांगा है तो, यदि आपका पूछने का भाव यह हो कि, अहिंसा सत्य आदि व्रतों का धारण करने वाला जो जैन से भिन्न उपाधि धारी पुरुष हो तो वह अपने उक्त व्रत से संसार को घटाता है या बढ़ाता है तथा अपने कर्मों का क्षय करता है या वृद्धि करता है, तो इसका उत्तर यह है कि वह चाहे जैनोपाधि धारी हो चाहे किसी दूसरी उपाधि से विभूषित हो, पर उसके अहिंसा सत्यादि व्रतों के धारण करने से जन्म-मरण घटता ही है बढ़ता नहीं हैं। उसके कर्म क्षीण होते हैं, पर बढ़ते नहीं हैं। इस विषय में उत्तराध्यन सूत्र अ० २८ की गाथा प्रमाण है। जैसे कि—

* अनेक व्रत धारियों ने सत्य व्रत को स्वीकार किया है।

‡ प्रव्रजित, अणगार, पाखण्ड, चरक, तापस, भिक्षु, निग्रन्थ, संयत, मुक्त, परिव्राजित और श्रमण ये पर्यायवाची शब्द हैं।

※ पाखण्ड नाम व्रत का है। यह व्रत जिसके अन्दर मौजूद है, उसे पाखण्डी कहते हैं।

नाणं च दंसणं चेव चरित्तं च तवो तहा ।
एय मग्गमणुप्पत्ता जीवा गच्छन्ति सुग्गइं ॥

अर्थात् ज्ञान दर्शन और अहिंसा सत्यादि सत्यादि व्रतरूप चरित्र मोक्ष के मार्ग हैं। इनका आश्रय लिये हुए जीव मोक्ष प्राप्त करते हैं।

इस गाथा में किसी विशेष उपाधि धारी की चर्चा नहीं करते हुए हर एक का मोक्ष गामी होना कहा है। मोक्ष पाने में, उपाधि विशेष कोई कारण नहीं है। जैसे कि जैन ग्रन्थों में लिखा है--

सेयंबरो य आसंवरो य बुद्धो य अहव अन्नो वा ।
समभावभाविअप्पा लहेइ मुक्खं न सन्देहो ॥

अर्थात् श्वेताम्बर हो या दिगम्बर, बौद्ध हो या शैव, वैष्णवादि अन्य किसी उपाधि का धारी हो, पर समभाव से जिसकी आत्मा भावित है, वह मोक्ष को प्राप्त करता है, इसमें सन्देह नहीं।

इसी आशय के जैन-सूत्रों के अङ्गोपांगों में भी पाठ पाये जाते हैं। जैसे कि—

स्वलिङ्गि सिद्धा, अन्य लिङ्गि सिद्धा और गृहलिङ्गि सिद्धा।

अर्थात् अपने लिङ्ग में अन्य लिङ्ग में तथा गृहस्थ के लिङ्ग में भी सिद्ध होते हैं।

तथा असुत्वा केवली के अधिकार में भगवती सूत्र के अन्दर अन्य लिङ्ग में भी केवलज्ञान प्राप्त होना लिखा है।

किसी विद्वान ने कहा है कि--

भवबीजांकुर जनना रागाद्या क्षयमुपागता यस्य ।
ब्रह्मा वा विष्णुर्वा हरो जिनो वा नमस्तस्मै ॥*

इसी तरह यह भी श्लोक है कि—

यं शैवाः समुपासते शिव इति ।‡

यह मेरा उत्तर जो लोग जैन से भिन्न उपाधिधारी होकर भी अहिंसादि व्रतों के पालन करने वाले हैं, उनके सम्बन्ध में है। पर आपने तो जैन धर्म को झूठा मानने वाले के लिए पूछा है, इस पर तो मेरा कहना है कि, जैन धर्म को असत्य माननेवाला अहिंसादि धर्मों को भी असत्य माननेवाला है। फिर वह अहिंसादि का पालन भी करता हो, यह बात असम्भव है।"

---

* भव-बीज के अंकुर को उत्पन्न करने वाले रागादि दोष जिनके क्षीण हो गये हैं, वह चाहे ब्रह्मा हों, या विष्णु हों, या हर हों, या जिन हों, उनको नमस्कार है।

‡यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो ।
बौद्धाः बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्तेति नैयायिकाः ॥
अर्हन्नित्यथ जैनशासनरता कर्मेति मीमांसकाः ।
सोयं वो विदधातु वांछितफलं त्रैलोक्य नाथो हरिः ॥

अर्थात्—शैव लोग 'शिव कहकर जिसकी उपासना करते हैं, वेदान्ती लोग जिसे 'ब्रह्म' कहते हैं, बौद्ध लोग जिसे 'बुद्ध' कहकर ध्याते हैं, प्रमाण देनेमें निपुण नैयायिक लोग जिसे 'कर्ता' बतलाते हैं, जैन-शासन में रत (जैन) लोग जिसे 'अर्हन्' मानते हैं, मीमांसक जिसे 'कर्म' बतलाते हैं, वह तीनों लोक का नाथ हरि आप लोगों के मनोरथ को पूर्ण करे।

"हमारा अन्तिम वक्तव्य यह है कि प्रश्न के आरम्भ में जबानी तौर पर तेरहपन्थ-सम्प्रदाय की ओर से माना गया था कि, जिन-जिन बातों में आपके साथ हमारा मतभेद है, उन बातों का हम प्रश्नोत्तर द्वारा खुलासा करना चाहते हैं। इसके सम्बन्ध में मैंने यह कहा था कि तेरहपन्थ के पूज्य कालूरामजी मेरे साथ शास्त्रार्थ करते तो अति ही उत्तम होता, परन्तु मेरे खुले चेलेंज देने पर भी शास्त्रार्थ नहीं हुआ। खैर, अब नेमीनाथजी द्वारा आप प्रश्न पूछना चाहते हैं तो भी शान्ति और नियमानुसार प्रश्नोत्तर करने में मुझे कुछ भी आपत्ति नहीं है। जो प्रश्न नेमीनाथजी ने पूछा और दूसरे रोज नेमीनाथजी की ओर से सरदारशहर निवासी तेरहपन्थ-सम्प्रदाय के मुखिया श्रावक श्रीवृद्धिचन्दजी गोठी ने नेमीनाथजी के प्रत्युत्तर में जो लिखवाया, उसका उत्तर मेरी ओर से आज आम सभा में सुनाकर लिखा दिया जाता है। अब आगे व्यर्थ-वाद न बढ़ाकर बाईस-सम्प्रदाय और तेरहपन्थ-सम्प्रदाय में जिन मुख्य-मुख्य बातों का फर्क है, उन्हीं के विषय में विचार होना चाहिए। वे मुख्य-मुख्य बातें ये हैं—

(१) पंच महाव्रतधारी साधु के गले में किसी ने फांसी लगा दी हो उसको कोई दयावान गृहस्थ खोल देंगे तो उसमें बाईस-सम्प्रदाय वाले धर्म बतलाते हैं और तेरहपन्थ वाले एकान्त-पाप।

(२) किसी अबोध बच्चे के पेट में छुरी भोंकते हुए दुष्टों को रोकने और बच्चे को बचाने की अनुकम्पा करने में बाईस-सम्प्रदाय वाले धर्म और तेरहपन्थ-सम्प्रदाय वाले पाप कहते हैं।

(३) गायों के बाड़े में किसी दुष्ट के द्वारा आग लगा देने पर उन गायों पर दया करके कोई यदि उस बाड़े के दरवाजे को खोले अथवा आग लगाते हुए को रोक दे तो, उसमें बाईस-सम्प्रदाय वाले धर्म और तेरहपन्थ वाले एकांत-पाप बतलाते हैं।

(४) ११ प्रतिमाधारी साधु तुल्य श्रावक को कोई निर्दोष आहारादि देवे तो इसमें बाईस-सम्प्रदाय वाले धर्म और तेरह पन्थ वाले एकान्त-पाप बतलाते हैं।

(५) अगली रात और पिछली रात में साधुओं के स्थान में स्त्रियों के आने-जाने और उन्हें रात में मकान के अन्दर व्याख्यानादि सुनाने का बाईस-सम्प्रदाय वाले निषेध करते हैं और तेरहपंथ वाले विधान।

(६) बारी बांधकर गृहस्थों के यहां से भोजन लाना और रास्ते में अपने साथ सेवार्थ गृहस्थों को रखना और उनसे भोजन लेना, इनका बाईस-सम्प्रदाय वाले निषेध और तेरहपन्थ वाले विधान करते हैं।

(७) साध्वियों के साथ बिना कारण आहार पानी आदि के लेने-देने आदि का बाईस-सम्प्रदाय वाले निषेध और तेरहपन्थ वाले विधान करते हैं।

इन बातों का खुलासा होना चाहिये।[१]

—प्रकाशक।

---

[१] नोट—तेरहपन्थ और बाईस-सम्प्रदाय में मतभेद के जो मुख्य-मुख्य विषय ऊपर बताये गये हैं, वे यथार्थ हैं। परन्तु जनता को भ्रम में रखने के लिये तेरह पन्थी लोग प्रायः मतभेद की बातों की असलियत को तो छिपा रखते हैं और इन बातों के लिए यद्वा-तद्वा कहकर दावा द्वो

इस उत्तरादि के सुनाते समय तेरह पन्थ-सम्प्रदायी लोगों ने हो-हल्ला मचाना प्रारम्भ और शान्ति-भङ्ग की चेष्टा अवश्य की, लेकिन श्री डिस्ट्रिक्ट सुपेरण्टेण्डेण्ट साहब पुलिस के प्रशंसनीय प्रबन्ध से वे लोग इसमें असफल रहे।

सुनाये जाने के पश्चात्-जब कि टीकमचन्दजी डागा व नेमीनाथजी, इन दोनों को सुनाया हुआ उत्तर नोट कराया जा रहा था--तेरह पन्थ-सम्प्रदायवालों ने सुपेरण्टेण्डेण्ट साहब पुलिस से इस उत्तर के खंडन और अपने पक्ष के लिये अगले रोज फिर सभा होने के विचार प्रकट किये। उनके विचारों को सुनकर पूज्यश्री ने सुपरेण्टेण्डेण्ट साहब से फरमाया कि, मैंने एक ही प्रश्न का उत्तर तीन रोजतक दिया, परन्तु प्रश्नकर्त्ता हठवश यही कहते हैं कि हमारे प्रश्न का उत्तर नहीं मिला। इतना ही नहीं कहते बल्कि इसके साथ ही असभ्यताके शब्दों का भी प्रयोग कर जाते है। जैसे उनका यह कहना कि,'आपने अपने उत्तरमें हमें गालियें लिखी हैं' आदि अतः यदि प्रश्न-कर्त्ता मेरे उत्तर से असंतुष्ट हैं और मेरे उत्तर को अपने प्रश्न का उत्तर नहीं समझते हैं तो, कल दोनों ओर से किसी को मध्यस्थ नियत कर दिया जाय जो मेरे उत्तर और इनके प्रश्न को गलत सही-का निर्णय देसके। इसके सिवाय यदि तेरहपन्थ सम्प्रदाय वाले शास्त्रार्थ करना चाहते हों तो, नियमानुसार किसी को मध्यस्थ नियत करके शास्त्रार्थ हो जाय। तेरहपंथ के पूज्य कालूरामजी या जो मुझसे शास्त्रार्थ करने के योग्य हो, उससे मैं शास्त्रार्थ करने को तैयार हूं। आप लोगों का; जनता का और मैं अपना स्वयं का इस प्रकार अकारण समय नष्ट नहीं करना चाहता।'

पूज्यश्री के फरमाने को सुनकर सुपेरण्टेण्डेण्ट साहब ने तेरहपन्थ-सम्प्रदाय वालों से प्रश्न किया कि आप लोग मध्यस्थ नियत करके जो प्रश्नोत्तर हुए हैं उनका निर्णय कराना चाहते हैं या शास्त्रार्थ ! लेकिन तेरह पन्थ-सम्प्रदाय की ओर से श्री वृद्धिचंदजी गोठी, श्रीमूलचंदजी सेठिया, श्री झीटूलालजी बोरड, श्री बालचंदजी बैगाणी, श्री आशकरणजी भूतेड़िया, आदि ने इन दोनों बातों में से किसी भी एक को स्वीकार नहीं किया। अतः ३। बजे के लगभग सभा विसर्जित हुई।

इन प्रश्नोत्तरों को सर्वसाधारण की सूचना के लिये हम प्रकाशित किये देते हैं, जिसमें तेरहपंथ-सम्प्रदाय के लोग कोई भ्रमोत्पादक बात न फैला सकें।

अन्त में हम श्री रघुवरदयालसिंहजी नाजिम साहब, श्रीशेरसिंहजी जज साहब, श्री डिस्ट्रिक्ट सुपेरण्टेण्डेण्ट साहब पुलिस, श्री हजारीसिंह जी तहसीलदार साहब और श्रीलक्ष्मण-प्रसादजी प्रेसीडेण्ट सनातनधर्म सभा को उनके निष्पक्ष शांति रक्षा और परिश्रम के लिए धन्यवाद देते हैं। इस कार्य में पंडित अम्बिकादत्तजी ओझा और पंडित शंकरप्रसादजी दीक्षित ने भी प्रशंसनीय परिश्रम किया है, अतः वे भी धन्यवाद के पात्र हैं।

कर देते हैं। इसलिए मतभेद की बातों के विषय में हमारी सूचना है कि, यदि तेरहपन्थ-सम्प्रदायी लोग साधु के गले की फांसी को गृहस्थ के खोलने आदि बातों में पाप न मानते हों तो फिर वे 'इन कामों में हम धर्म मानते हैं, ऐसा स्पष्ट स्वीकार करके प्रसिद्ध कर दें, जिसमें तेरह-पन्थ और बाईस। सम्प्रदाय में मतभेद न रहकर एकता रहे। अन्यथा यह बातें स्वयं सिद्ध है कि तेरहपन्थ-सम्प्रदाय वाले, जो बातें ऊपर बताई गई हैं उन्हें उसी रूप में मानते हैं। इसके सिवाय तेरह पन्थ सम्प्रदाय के प्रकाशित ग्रंथों से भी इन बातों का इसी रूप में माना जाना सिद्ध है। यदि तेरह पंथ-सम्प्रदाय वाले यह कहते हों कि हमारे ये सिद्धांत शास्त्रानुमोदित तो उनके पूज्य कालूरामजी बाईस-सम्प्रदाय के पूज्य जवाहरलालजी से शास्त्रार्थ करें जिसमें र्व साधारण को सन्तोष हो जाय।

[पृ० १७४ का परिशिष्ट]

चूरु-चर्चा

सम्वत् १९८४ की साल में पूज्यश्री १००८ श्री जवाहरलालजी म० सा०, कोठारी मूलचन्दजी की आग्रह भरी विनती को स्वीकार कर बीकानेर, सरदारशहर विहार करते हुए चूरु नगर में पधारे थे और वहां एक अग्रवाल सज्जन के मकान में विराजे थे। संयोगवश उस समय तेरापंथियों का महामहोत्सव भी चूरु नगर में ही था। इस उत्सव में सम्मिलित होने के लिये स्थान-स्थान से तेरापंथी साधु और श्रावक चूरु में एकत्रित हुए थे। पूज्यश्री जवाहरलालजी म० सा० का व्याख्यान जहाँ होता था, वहां जैन तथा जैनेतर जनता की अपार भीड़ होती थी। पूज्यश्री के युक्तियुक्त हृदयाकर्षक व्याख्यान का प्रभाव जनता पर जादू की तरह पड़ता था। एक दिन की बात है कि पूज्यश्री ने अपने व्याख्यान में प्रसंगवश यह फरमाया कि साधु बिना कारण साध्वी का लाया हुआ आहार नहीं ले सकता। यदि लेता है तो चातुर्मासिक प्रायश्चित्त का भागी बनता है। वह साधु तीन बार तक प्रायश्चित्त लेकर गच्छ में रह सकता है, पर चौथी बार निष्कारण साध्वी से आहार पानी लेने पर यदि प्रायश्चित्त स्वीकार करे तो भी वह गच्छ से बाहर कर देने योग्य होता है। इस विषय की सिद्धि के लिये पूज्यश्री ने अनेकों शास्त्रीय प्रमाण बतलाये, जिसका जनता पर गहरा प्रभाव पड़ा। परन्तु यह बात तेरापन्थी श्रावकों को अच्छी नहीं लगी। क्योंकि उनके साधु तो रोज ही बिना कारण साध्वियों से आहार-पानी लेते-देते हैं। अतः व्याख्यान श्रवण के पश्चात् चूरु-निवासी तेरापन्थी श्रावक गौरीलालजी वैद अपने पूज्य कालूरामजी के पास गये और इस विषय की चर्चा करते हुए अपने पूज्यजी से पूछा कि—क्या साधु बिना कारण साध्वी का लाया हुआ आहार-पानी नहीं ले सकता ?

पूज्य कालूरामजी ने उत्तर देते हुए कहा—यदि साध्वी का लाया हुआ आहार पानी नहीं कल्पता तो फिर हम क्यों लेते ?

वैदजी ने कहा—क्या इस विषय में कोई शास्त्रीय प्रमाण भी है ?

पूज्य जी- हां, बहुत प्रमाण हैं।

वैदजी—अगर बाईस सम्प्रदाय के साधु इस विषय में प्रमाण जानने के लिये आपके पास आवें तो क्या आप उन्हें बता सकेंगे ?

पूज्यजी—क्यों नहीं ? अवश्य बतलाएंगे।

इस प्रकार पूज्य कालूरामजी के कहने पर वैदजी पूज्यश्री जवाहरलालजी म० सा० के पास आये और कहा कि—आप तो साध्वी के द्वारा लाये हुए आहार-पानी के लेने का साधु के लिये निषेध करते हैं, परन्तु हमारे पूज्यजी का तो कहना है कि साध्वी का लाया हुआ आहार-पानी साधु ग्रहण कर सकता है।

पूज्यश्री जवाहरलालजी म० सा० ने पूछा—क्या इस विषय में आपके पूज्यजी कोई शास्त्रीय प्रमाण भी बता सकेंगे ?

वैदजी—हां, क्यों नहीं, अगर आप या आपके साधु पधारेंगे तो वे अवश्य बतलायेंगे।

[पृ० १७४ का परिशिष्ट]

चूरु-चर्चा

सम्वत् १९८४ की साल में पूज्यश्री १००८ श्री जवाहरलालजी म० सा०, कोठारी मूलचन्दजी की आग्रह भरी विनती को स्वीकार कर बीकानेर, सरदारशहर विहार करते हुए चूरु नगर में पधारे थे और वहां एक अग्रवाल सज्जन के मकान में विराजे थे। संयोगवश उस समय तेरापंथियों का महामहोत्सव भी चूरु नगर में ही था। इस उत्सव में सम्मिलित होने के लिये स्थान-स्थान से तेरापंथी साधु और श्रावक चूरु में एकत्रित हुए थे। पूज्यश्री जवाहरलालजी म० सा० का व्याख्यान जहाँ होता था, वहां जैन तथा जैनेतर जनता की अपार भीड़ होती थी। पूज्यश्री के युक्तियुक्त हृदयाकर्षक व्याख्यान का प्रभाव जनता पर जादू की तरह पड़ता था। एक दिन की बात है कि पूज्यश्री ने अपने व्याख्यान में प्रसंगवश यह फरमाया कि साधु बिना कारण साध्वी का लाया हुआ आहार नहीं ले सकता। यदि लेता है तो चातुर्मासिक प्रायश्चित्त का भागी बनता है। वह साधु तीन बार तक प्रायश्चित्त लेकर गच्छ में रह सकता है, पर चौथी बार निष्कारण साध्वी से आहार पानी लेने पर यदि प्रायश्चित्त स्वीकार करे तो भी वह गच्छ से बाहर कर देने योग्य होता है। इस विषय की सिद्धि के लिये पूज्यश्री ने अनेकों शास्त्रीय प्रमाण बतलाये, जिसका जनता पर गहरा प्रभाव पड़ा। परन्तु यह बात तेरापन्थी श्रावकों को अच्छी नहीं लगी। क्योंकि उनके साधु तो रोज ही बिना कारण साध्वियों से आहार-पानी लेते-देते हैं। अतः व्याख्यान श्रवण के पश्चात् चूरु-निवासी तेरापन्थी श्रावक गौरीलालजी वैद अपने पूज्य कालूरामजी के पास गये और इस विषय की चर्चा करते हुए अपने पूज्यजी से पूछा कि—क्या साधु बिना कारण साध्वी का लाया हुआ आहार-पानी नहीं ले सकता ?

पूज्य कालूरामजी ने उत्तर देते हुए कहा—यदि साध्वी का लाया हुआ आहार पानी नहीं कल्पता तो फिर हम क्यों लेते ?

वैदजी ने कहा —क्या इस विषय में कोई शास्त्रीय प्रमाण भी है ?

पूज्य जी– हां, बहुत प्रमाण हैं।

वैदजी—अगर बाईस सम्प्रदाय के साधु इस विषय में प्रमाण जानने के लिये आपके पास आवें तो क्या आप उन्हें बता सकेंगे ?

पूज्यजी—क्यों नहीं ? अवश्य बतलाएंगे।

इस प्रकार पूज्य कालूरामजी के कहने पर वैदजी पूज्यश्री जवाहरलालजी म० सा० के पास आये और कहा कि—आप तो साध्वी के द्वारा लाये हुए आहार-पानी के लेने का साधु के लिये निषेध करते हैं, परन्तु हमारे पूज्यजी का तो कहना है कि साध्वी का लाया हुआ आहार-पानी साधु ग्रहण कर सकता है।

पूज्यश्री जवाहरलालजी म० सा० ने पूछा—क्या इस विषय में आपके पूज्यजी कोई शास्त्रीय प्रमाण भी बता सकेंगे ?

वैदजी—हां, क्यों नहीं, अगर आप या आपके साधु पधारेंगे तो वे अवश्य बतलायेंगे।

वडियं करित्तए । अत्थि वा इण्हं केइ वेयावच्चं कप्पइ णं तण्हं वेयावच्चं कारावित्तए। णत्थि वा इण्हं केइ वेयावच्चं करेत्तए, एवं णं कप्पइ अन्नमन्नेणं वेयावच्चं कारावित्तए।''

व्यवहार सूत्र, उ० ५

टीका—ये निर्ग्रन्था निर्ग्रन्थ्याश्च सांभोगिकास्तेषां नो णमिति वाक्यालंकारे कल्पते अन्योऽन्यस्य वैयावृत्यं कारयितुम् । अस्ति कश्चित् वैयावृत्यकरस्ततः कल्पते तं वैयावृत्यं कारयितुम् । नास्ति चेत् क्वचित् वैयावृत्यकर एवं सति कल्पते अन्योन्यस्य वैयावृत्यं कारयितुमिति सूत्रसंक्षेपार्थः।''

भावार्थ—एक गच्छ के (सांभोगिक) साधु साध्वियों को परस्पर में व्यावच्च करवाना नहीं कल्पता है। एकमात्र साधु ही दूसरे साधु की व्यावच्च (वैयावृत्य-सेवा) करे, तथा साध्वी ही साध्वी की व्यावच्च करे। कदाचित् कोई संकट का समय आ गया हो, साधु के पास दूसरा साधु न हो अथवा साध्वी के पास दूसरी साध्वी न हो तो ऐसे संकटकाल में साधु साध्वी परस्पर में एक दूसरे से व्यावच्च करा सकते हैं।

व्यवहार सूत्र की व्याख्या करते हुए भाष्य में कहा है—

उउभजमाणसुहेहिं देहसहावाणुलोमभुज्जेहिं।
कढिणहिययाण वमणं बंधंत चिरेण कइयविया।

टीका—ऋतौ यैर्भजमानैर्भज सेवायामिति वचनात् सुखं जन्यते तानि ऋतुभजमानसुखानि तैस्तथा देहः शरीरं तस्य स्वभावः स्वरूपं देहस्वभावस्यानुलोमान्यनुकूलानि यानि तैर्वैयावृत्यं कुर्वत्यः संयत्यो, ये संयतीभिरानीतं भुञ्जते तेषां कठिनहृदयानामपि धृतिबलिष्ठानामपि संयतात्मनोऽचिरेण कालेन बध्नन्ति बाधयन्तीत्यर्थः। कथंभूता इत्याह कैतविक्यः कैतवेन कपटेन अन्यन्मनसि अन्यद्वाचि इत्यादि लक्षणेन निर्वृत्ताः कैतविक्यः।

अर्थात्—जिस ऋतु में जो पदार्थ सुखदायी होते हैं उन पदार्थों द्वारा तथा शरीर की प्रकृति के अनुकूल पदार्थों द्वारा साधु की सेवा करने वाली—ऐसा आहार लाकर साधु को खिलाने वाली साध्वियां मजबूत दिलवाले अर्थात् धैर्य आदि से सम्पन्न हृदय वाले-धीर-वीर और संयम-परायण साधु के संयम को भी नष्ट कर डालती हैं। उन साध्वियों के हृदय में कुछ और होता है तथा वाणी में कुछ और होता है। वे कपट युक्त होती हैं।

बिना कारण व्यावच्च करने के निषेध का शास्त्रीय पाठ और भाष्य बतलाते हुए पं० मुनि श्री गणेशीलालजी म० सा० ने उसका विवेचन करते हुए कहा कि—हट्टे कट्टे साधुओं के मौजूद रहते हुए भी शास्त्र विरुद्ध साध्वियों का लाया हुआ आहार पानी आदि भोगना साधु के लिये उचित नहीं है। क्योंकि वर्तमान काल के साधु-साध्वियों ने वीतरागावस्था को प्राप्त नहीं कर लिया है। साधु-साध्वी के पारस्परिक अधिक संसर्ग रहने से मानसिक विकृति उत्पन्न होना स्वाभाविक है।

वास्तविक बात यह है कि ब्रह्मचर्य साधु धर्म का प्राण है। वह सब तपों में उत्तम तप है। 'तवेसु वा उत्तम बंभचेरं' कह कर शास्त्रकारों ने ब्रह्मचर्य की महिमा प्रकट की है। अतएव ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए शास्त्रों में अनेक मर्यादाएं साधुओं के लिए बताई गई हैं। दशवैकालिक सूत्र में यहां तक कहा है कि 'चित्तभित्तिं न निज्झाए' अर्थात् जिस दीवाल पर स्त्रियों के चित्र बने हों, उस दीवाल को भी साधु न देखे। ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए ही नौ वाडों का कथन

को भी उपधि लेने की तरह तीन बार तो प्रायश्चित्त देकर गच्छ में रखा जा सकता है, पर चौथी बार प्रायश्चित्त लेने पर भी नहीं रखा जा सकता।

भत्तपाणे' त्ति—उपधिद्वारवद्‌वसेयं, नवरमिह भोजनदानं च परिकर्मपरिभोगयो स्थाने वाच्यमिति।

अर्थात्—भात पानी का संभोग भी उपधि की तरह समझना चाहिये। यहाँ भी साध्वी से लाया हुआ बिना कारण आहारादि ग्रहण करे या बिना कारण साध्वी को देवे तो लेने और देने वाले साधु को तीन बार प्रायश्चित्त देकर गच्छ में रखा जा सकता है, परन्तु चौथी बार प्रायश्चित्त लेने पर भी नहीं रखा जा सकता है।

वैयावृत्यम्—'आहारोपधिदानादिना प्रश्रवणादिमात्रकार्पणादिनाऽधिकरणोपशमनेन साहाय्यदानेन वोपष्टम्भकरणं तस्मिंश्च विषये सम्भोगासम्भोगौ भवत इति।'

अर्थात्—आहार और उपधि देना, लघुनीत और बड़ी नीत को परठना, क्लेश होने पर समझा कर शान्त करना, आसन बिछाना, प्रतिलेखन करना, उठाना-बैठाना, सुलाना आदि सहायता करना यह सब व्यावच्च संभोग का अर्थ है। ये व्यावच्च संबंधी बातें जो साधु निष्कारण साध्वी से करावें तो उसे तीन बार प्रायश्चित्त देकर गच्छ में रखा जा सकता है, परन्तु चौथी बार प्रायश्चित्त लेने पर भी नहीं रखा जा सकता।

इसी तरह छहों संभोगों का समवायांग सूत्र की टीका में निषेध किया गया है। परन्तु विस्तार भय से हम यहाँ सब संभोगों का विवेचन नहीं कर रहे हैं। बचे हुए संभोगों का विवरण भी उपधि आदि की तरह ही समझ लेना चाहिए। जब कि साध्वी से व्यावच्च कराने का व्यवहार सूत्र के मूल में ही निषेध है तो फिर साध्वियों से आहार पानी मँगा कर खाना कहाँ तक उचित कहा जा सकता है ?

इस पर तेरापंथी पूज्य कालूराम जी ने कहा कि व्यावच्च करने का अर्थ हाथ-पैर दबाना ही है, आहार मंगाना, परोसना आदि अर्थ नहीं है।

तब पं० मुनि श्री गणेशीलालजी म० ने कहा कि व्यावच्च शब्द का अर्थ केवल हाथ-पैर दबाना ही है, यह बात शास्त्र-सम्मत नहीं है। व्यावच्च शब्द के इस संकीर्ण अर्थ की कल्पना सिर्फ इसलिए की गई है कि तेरापंथी साधुओं को आहार-पानी लाने का कष्ट न करना पड़े और सीधा साध्वियों का लाया आहार-पानी करने में सुविधा हो। अपनी सुविधा और मौज के लिए यह अर्थ करते समय न तो शास्त्रीय अर्थ पर ध्यान दिया गया है और न अपने मान्य ग्रंथ भ्रम-विध्वंसन पर ही नज़र फेरी है।

व्यवहारसूत्र में वेयावच्च का विवेचन करते हुए कहा है—

दसविहे वेयावच्चे पण्णत्ते, तंजहा—आयरियवेयावच्चे... . इत्यादि। इस पाठ के भाष्य में कहा है—त्रयोदशभिः पदैः वैयावृत्यं कर्त्तव्यम्, तान्येव त्रयोदशपदान्याह—

भत्ते पाणे सयणासणे (मं) पडिलेहपाममच्छिमद्धाणे।
राया तेणे दंडगाहणे य गेलण्णमत्ते य। १२५।

टीका—'भक्तेन भक्तानयनेन वैयावृत्त्यं कर्त्तव्यम्। पानेन-पानीयानयनेन'

अर्थात्—भोजन और पानी लाकर देना व्यावच्च है।

'संभुञ्जित्तए' और 'संवसित्तए' यह दोनों पद एक साथ आये हैं। अगर संभुञ्जित्तए पद के आधार पर आहार-पानी के लेन-देन का बिना कारण ही विधान मान लिया जाय तो संवसित्तए' पद के आधार पर उपाश्रय में बिना कारण एक साथ निवास करना भी विधेय ठहर जायगा। अगर संकट-काल के बिना, साधारणअवस्था में भी साधु-साध्वी का एक जगह बसना शास्त्रानुकूल है तो फिर खेद के साथ कहना पड़ेगा कि ऐसे साधु-साध्वी गृहस्थ पुरुषों और स्त्रियों से किस बात में श्रेष्ठ हैं ?

अगर 'संवसित्तए' पद सिर्फ संकट काल के लिए है, सदा के लिए नहीं तो फिर 'संभुं-जित्तए' पद भी संकट काल के लिए ही मानना उचित है।

तात्पर्य यह है कि जैसे प्रबलतर कारण उपस्थित होने पर साधु, साध्वियों के साथ एक जगह निवास कर सकता है उसी प्रकार प्रबलतर कारण के होने पर ही साधु साध्वी को आहार-पानी दे-दिला सकता है। एक साथ निवास करने के विषयमें ठाणांग सूत्र का निम्न पाठ प्रमाण है—

पंचहिं ठाणेहिं निग्गंथा निग्गंथीओ य एगत्तओ ठाणं वा सिज्जं वा निसीहियं वा चेतेमाणे णातिक्कमंति, तंजहा—अत्थेगइआ निग्गंथा निग्गंथीओ य एगं महं अगामितं छिन्नावायं दीह-मद्धमडविमणुपविट्ठा। तत्थ गओ ठाणं वा सेज्जं वा निसीहियं वा चेएमाणे णातिक्कमति (१) अत्थेगइआ निग्गंथा २ गामंसि वा नयरंसि वा जाव रायहाणिं वा वासं उवगता एगतिया यत्थ उवस्सयं लभंति एगतिता णो लभंति, तत्थेगतितो ठाणं वा जाव नातिक्कम्मंति। (२) अत्थेग-तिआ निग्गंथा य२ नागकुमारावासंसि वा० वासं उवागता; तत्थेगयओ जाव नातिक्कमंति। (३) आमोसगा दीसंति ते इच्छंति निग्गंथीओ चीवरपडिताते पडिगाहित्तते, तत्थेगयओ ठाणं वा जाव णातिक्कमंति (४) जुवाणा दीसंति ते इच्छंति निग्गंथीओ मेहुणपडिताते पडिगाहित्तते, तत्थेगयओ ठाणं वा जाव णातिक्कमंति। (५) इच्चेहिं पंचहिं कारणेहिं जाव नातिक्कमंति।'

भावार्थ—साधु तथा साध्वी निम्न-लिखित पांच कारणों से एक स्थान में कायोत्सर्ग, उप-वेशन (बैठना) शयन तथा स्वाध्याय करते हुए साधु की आचार संबंधी आज्ञा का उल्लङ्घन नहीं करते।

(१) पहला कारण—दुर्भिक्ष आदि कारण से एक देश को छोड़कर दूसरे देश में जाते हुए रास्ते में ऐसा जंगल आ गया हो, जिसके इर्द-गिर्द कोई गांव न हो, जो बहुत बड़ा हो, जिसमें कोई निवास न करता हो, निर्जन हो, जिसमें अपने साथियों के तथा गौ आदि के आने-जाने का पता न चलता हो, मार्ग मालूम न पड़ता हो, जिसे पार करने में बहुत समय लगता हो, ऐसे भयानक निर्जन-वन में साधु-साध्वी एक जगह निवास करें तो उन्हें आज्ञा के उल्लङ्घन का दोष नहीं लगता।

(२) दूसरा कारण—जहां राजा का राज्याभिषेक होता हो ऐसी राजधानी में मनुष्यों की बहुतायत से साधु-साध्वी में से एक को स्थान मिल गया हो और दूसरे को स्थान न मिला हो तो ऐसी अवस्था में एक साथ रह सकते हैं।

(३) तीसराकारण—किसी गृहस्थ का घर रहने को न मिलने की हालत में साध्वियों को सुनसान मंदिर में रहना पड़े या जहां बहुत भीड़भड़क्का हो या जिसकी देख-रेख करने वाला कोई न हो ऐसे स्थान में साध्वियों को रहना पड़े तो उस स्थान पर साध्वियों की रक्षा के निमित्त

गा नहीं, अपितु आज्ञापालक माना जायगा। परन्तु निष्कारण अवस्था में यदि कोई इस अपवाद सूत्र का आश्रय लेकर साध्वी का लाया हुआ आहार स्वयं ग्रहण करे और उसे देवे तो वह अवश्य ही शास्त्रविरुद्ध आचरण करने वाला होगा।

इस तरह पं० मुनि श्री गणेशीलालजी म० के सबल प्रमाणों को ओज भरी वाणी में सुनकर पूज्य कालूरामजी गुमसुम हो गए। उनका मुँह नीचा हो गया। मगर उस व्याख्यानसभा में उनके बहुत से अन्ध भक्त श्रोता मौजूद थे। अपने पूज्यजी की यह दशा देखकर उन्होंने मदद कर दी। श्रोताओं ने अपने अमोघ अस्त्र का प्रयोग किया। वह अमोघ अस्त्र था—हो हल्ला! कोलाहल! चिल्लाहट!! भारी कोलाहल में पं० मुनिश्री की वाणी विलीन-सी हो गई। पांचों मुनिराज अपने स्थान पर शान्ति पूर्वक लौट आये।

चूरू में वर्तमान आचार्य पं० मुनिश्री गणेशीलालजी म० की तेरापंथी पूज्य कालूरामजी के साथ जो चर्चा हुई थी उसका संक्षिप्त वृत्तान्त यही है जो ऊपर दिया जा चुका है। परन्तु यह आश्चर्य के साथ कहना पड़ता है कि तेरापंथ के वर्तमान आचार्य तुलसीरामजी ने अपने 'कालू यश रसायन' नामक ग्रन्थ में चूरू की चर्चा का वर्णन करते हुए स्वरचित ढालों में लिखा है कि चूरू की चर्चा में पूज्य कालूरामजी ने निष्कारण साध्वियों से आहार लेने का विधान करने वाले शास्त्र का प्रमाण बतलाकर बाईस सम्प्रदाय के साधुओं को परास्त किया था। इस प्रकार मिथ्या बातें लिखकर अपनी पोपलीला को जाहिर न होने देने के लिये जो प्रयत्न किया गया है वह समझदारों की दृष्टि में निंद्य ही ठहरेगा। यदि वस्तुतः शास्त्र में ऐसा प्रमाण मिलता हो और तेरापंथी साधु उसे बतलाने का कष्ट करें तो बाईस सम्प्रदाय के साधु अब भी मानने के लिए तैयार बैठे हैं। जब कि शास्त्र में स्थान स्थान पर इस विषय का निषेध पाया जाता है तब फिर इसका विधान हो ही कैसे सकता है—फिर भी तेरहपंथी साधु अपने संयम मर्यादा के घातक मन्तव्य का समर्थन करने के लिए अक्सर ठाणांग सूत्र का पाठ पेश करते रहते हैं। अब यहाँ उस पाठ पर भी जरा विचार कर लेना आवश्यक है। वह पाठ इस प्रकार है—

चउहिं ठाणेहिं णिग्गंथे णिग्गंथिं आलवमाणे वा संलवमाणे वा णातिक्कमति, तंजहा—पंथं पुच्छमाणे वा, पंथं देसमाणे वा, असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा दलेमाणे वा, दलावेमाणे वा।

—ठा० उ० २, सूत्र २१।

टीका—चउहीत्यादि स्फुटं, किन्तु आलपन् ईषत् प्रथमतया वा जल्पन् संलपन् मिथो भाषणेन नातिक्रमति-न लंघयति निर्ग्रन्थाचारं–'एगो एगत्थिए सद्धिं नव चिट्ठे न संलवे' विशेषतः साध्व्या इत्येवं रूपं, मार्गप्रश्नादीनां पुष्टालम्बनत्वादिति, तत्र मार्गं पृच्छन् प्रश्नीयसाधर्मिकगृहस्थपुरुषादीनामभावे–हे आर्ये! कोऽस्माकमितो गच्छतां मार्गः? इत्यादिना क्रमेण मार्गं वा तस्या देशयन्—धर्मशीले! अयं मार्गस्ते इत्यादिना क्रमेण; अशनादि वा ददत्–धर्मशीले! गृहाणेदमशनादीत्येवं, तथा अशनादि दापयन्–आर्ये! दापयाम्येतत्तुभ्यम् आगच्छेह गृहाद्वाविस्यादिविभिनेति।

अर्थ—निर्ग्रन्थ का यह आचार है कि वह अकेला अकेली स्त्री के साथ और खास कर साध्वी के साथ न ठहरे और न बातचीत करे। किन्तु सूत्रोक्त चार कारणों में से कोई कारण